आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य

डा. सरोज के. वोरा

केवल बोध या चिन्तन-प्रणाली नीरस व जड़ क्रियावादी भी हो सकती है, लेकिन इसे ही ललित साहित्य के रूप में प्रस्तुत कर व्यापक व लोकप्रिय बनाया जाता है। अत: ऐसी रचनाओं को प्रकाश में लाकर उनका अनुशीलन-परिशीलन करने का प्रयास प्रस्तुत पुस्तक में किया गया है।

प्रथम अध्याय में जैन धर्म की परिभाषा, महत्त्व, अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर के समय की परिस्थितियाँ, महावीर की विविध क्षेत्र में विश्व को देन, जैन धर्म के प्रमुख तत्त्व व उनकी आधुनिक युग में उपादेयता का विवेचन किया गया है।

दूसरे अध्याय में आधुनिकता का महत्त्व, प्रारंभ व सानुकूल परिस्थितियों के चित्रण के साथ हिन्दी साहित्य में आधुनिक युग का प्रारंभ निर्दिष्ट कर हिन्दी जैन साहित्य में आधुनिक युग का प्रारम्भ और विकास बताया गया है।

तृतीय अध्याय में प्रबंध और मुक्तक के आवश्यक तत्त्वों के परिचय के साथ उपलब्ध महाकाव्यों की कथावस्तु, रस, नेता, कल्पना, जीवन-दर्शन आदि पहलुओं पर विस्तृत विचार किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में आधुनिक युग में गद्य के महत्त्व, प्रारंभ व प्रसार पर दृष्टिपात करके आधुनिक जैन गद्य साहित्य की विविध कृतियों का विषयवस्तु परक परिचय विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया गया है।

पंचम अध्याय में पद्य के बाह्य सौन्दर्य के लिए आवश्यक महत्त्वपूर्ण तत्त्वों के निरूपण के बाद आलोच्य जैन-प्रबन्ध काव्यों के सौन्दर्य पक्ष में छन्द, अलंकार प्रबन्धतत्त्व, भाषा-शैली, वर्णनात्मकता, सूक्ति प्रयोगों की चर्चा के साथ मुक्तक रचनाओं की भाषा-शैली, छन्द, अलंकारादि का विवेचन किया है।

छठा अध्याय गद्य-साहित्य की विशिष्टता व्यक्त करनेवाले तत्त्वों के परिचय के साथ उपलब्ध प्रत्येक विधागत विशिष्ट कृतियों का भाषा-शिल्प, संगठन-सौष्ठव, चारित्रिक विश्लेषण, संवाद, उद्देश्य, शैली आदि दृष्टियों से विवेचन किया गया है।

I.S.B.N. : 81-86050-26-4

पृष्ठ सं॰ 538+xvi, आकार 9"x5.75"

संस्करण : 2000 मूल्य : 600.00

आधुनिक हिन्दी-जैन साहित्य

आधुनिक हिन्दी-जैन साहित्य

लेखिका :
डॉ० सरोज के० वोरा

भारतीय कला प्रकाशन
दिल्ली

प्रकाशक :
भारतीय कला प्रकाशन
3421-ए, द्वितीय तल, नारंग कलोनी,
त्रीनगर, दिल्ली-110035

प्रथम संस्करण : 2000

मूल्य : 600.00

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 81-86050-26-4

अक्षर संयोजक :
ए-वन ग्राफिक्स
एक्स-4, गली नं॰ 2, ब्रह्मपुरी,
दिल्ली-110053
फोन : 2183470

मुद्रक :
संतोष ऑफसेट, दिल्ली

समर्पण

अर्पण

(स्व॰ कैलासचन्द्र वी॰ वोरा को)

आपकी प्रेरणा के बिना जो कार्य शुरू ही न हो पाता,
लेकिन दुर्भाग्य ने आपकी अनुपस्थिति में मैं यह मुद्रित रूप में
आपकी स्मृति को दो अश्रु बिन्दुओं के साथ समर्पित करती हूँ।

अभागी-

सरोज वोरा की स्नेह-सुमन-श्रद्धांजली के साथ

आशीर्वचन

"आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य" शीर्षक शोधप्रबन्ध को प्रकाशित होते देखकर मुझे अतीव प्रसन्नता हो रही है। श्रीमती सरोज के० वोरा ने बड़े परिश्रम से एक शोध-प्रबन्ध मेरे निर्देशन में पूर्ण किया था। श्रीमती सरोज के० वोरा एक विधा-व्यसिनी शोध-छात्रा रही है। जैन धर्म-दर्शन और साहित्य में उनकी गहरी अभिरुचि रही है। शोध-प्रबन्ध में उनकी इस अभिरुचि का प्रतिबिम्बन हुआ है। जैन साहित्य सम्बन्धी सम्भवत: यह प्रथम अध्ययन है। जिसमें साहित्य की समस्त विधाओं का एकत्र आकलन किया गया है। आधुनिक के साथ-साथ प्राचीन एवं मध्यकालीन जैन-साहित्य का भी पृष्ठभूमि और परंपरा के साथ-साथ प्राचीन एवं मध्यकालीन जैन-साहित्य का भी पृष्ठभूमि और परंपरा के अंतर्गत यत्किंचित आधिकारिक उल्लेख हुआ है। लेखिका ने अपने अध्ययन को अधिक प्रमाणित बनाने के लिए जैन धर्म और दर्शन के मूलतत्त्वों, नियमों आदि का प्रथम अध्ययन किया । प्रस्तुत ग्रन्थ में भावि शोध के लिए पर्याप्त सामग्री निहित है। अनेक ऐसे ग्रन्थों का प्रथम बार किसी शोध प्रबन्ध में उल्लेख और अध्ययन हुआ है जो किसी पुस्तकालय की एकान्त शोभावृद्धि करते रहे, किसी अध्येता के स्पर्श से नितान्त दूर अथवा किसी पुस्तक विक्रेता की दुकान के एक कोने में धूल-धूसरित रहें।

श्रीमती डॉ० सरोज के० वोरा का यह शोध-प्रबन्ध तो लेखकीय दीक्षा का प्रथम चरण है। विश्वास है उनकी लोखनी से और भी गम्भीर चिंतन परक तथा रचनात्मक ग्रंथों का प्रणयन होगा। मैं इस ग्रंथ का स्वागत करता हूँ। आशा है इस ग्रन्थ से पाठकों को लाभ पहुँचेगा।

दयाशंकर शुक्ल
7-12-98

'नैमिष'
14 ए, पुनीत नगर,
न्यू सभा रोड
बड़ौदा-2

दो शब्द

आज कितने सालों के बाद शोध-प्रबन्ध का छपवाने का स्वप्न पूरा हुआ है। पारिवारिक जिम्मेदारियों के कारण व परिवार में थोड़े महीनों में बारी-बारी से अचानक निधन–पति की भी अचानक दु:खद मृत्यु के कारण आर्थिक रूप से छपवाने का कार्य नहीं हो पाया था।

मैं अपने गुरुजी निर्देशक डॉ॰ डी॰ एस॰ शुक्ल जी की हृदय से आभारी हूँ। उसी तरह अपने विभागाध्यक्ष व अन्य गुरुजनों के प्रति अपनी कृतज्ञता अभिव्यक्त करना फर्ज समझती हूँ।

ए-वन, ग्राफिक के श्रीपुन भाई श्री रमनभाई चौधरी के प्रति मैं अपना आभार व्यक्त करना अत्यंत उचित समझती हूँ जिन्होंने व्यक्तिगत रूप से ध्यान देकर कम समय में इतने बड़े शोध-प्रबंध को अच्छे सुचारु ढंग से छाप दिया। उनके साथ पारिवारिक सम्बन्ध सा हो गया। एक अच्छे-इन्सान के रूप में मैंने उनको पाया। साथ ही मैं श्री सी॰पी॰ गौतम, प्रबन्धक भारतीय कला प्रकाशन, दिल्ली का विशेष रूप से धन्यवाद करती हूँ जिन्होंने पुस्तक को शीघ्रातिशीघ्र प्रकाशित किया।

पुस्तक में जो भी कमियाँ रह गई हों उनके लिए आप सबसे मैं क्षमा चाहती हूँ। जो कुछ भी बन पड़ा यथाशक्ति-यथामति–आपके समक्ष विनम्र भाव से प्रस्तुत करती हूँ। विद्वाज्जनों-गुरुजनों की बड़ी कृपा रहेगी यदि इसे सभी गलतियों के साथ स्वीकार करेंगे तो-बाकी तो क्या? आप सब का अनुग्रह मेरा सौभाग्य है।

–डॉ॰ सरोज के॰ वोरा

आमुख

जैन धर्म और उसका दर्शन भारत के प्राचीनतम धर्मों में से एक महत्त्वपूर्ण धर्म के रूप में भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों द्वारा स्वीकृत है। उसका दर्शन जहां सिद्धान्तों में तर्क व चिन्तन से समृद्ध है, वहां उसका आचार-परक धर्म-श्रद्धा-निष्ठ व्यवहार की भूमिका पर संस्थित होने से यथार्थवादी है। जैन-धर्म की यह सर्वश्रेष्ठ विशिष्टता कही जायेगी कि उसने आचार में सर्व हितकारी अहिंसा, प्रेम तथा करुणा के श्रेष्ठ तत्त्व, विचार में समन्वयकारी अनेकान्तवाद की उत्कृष्ट विचारधारा तथा व्यवहार में संश्लेशहारी अपरिग्रह वृत्ति का दृष्टि बिन्दु विश्व को प्रदान किया है। अतः आचार, विचार और व्यवहार में समृद्ध जैन दर्शन की विचारधारा व तत्त्व आज के आपाधापी से त्रस्त युग में न केवल एक राष्ट्र के लिए वरन् संपूर्ण मानव जाति के लिए कल्याणकारी व उपादेय सिद्ध होते हैं। इन तत्त्वों को अपनाने से मानव-मानव के बीच समानता, समताभाव, शांति, सहकार, मातृभावना तथा सर्व मंगलकारी उदार दृष्टि का विकास होने से विषमता, वैमनस्य परिग्रह वृत्ति (संग्रह वृत्ति) और शोषण वृत्ति का स्वतः ही ह्रास हो सकता है।

जैन धर्म के करुणा सागर तीर्थंकरों, आचार्यों एवं विद्वान तत्त्वचिन्तकों ने संपूर्ण मानव जाति के उत्थान को दृष्टि समक्ष रखकर ही जैन धर्म की दार्शनिक विचारधारा तथा व्यावहारिक नीति-नियमों का संकलन किया है। भगवान महावीर ने वैदिक युग की जीर्ण-शीर्ण समाज-व्यवस्था तथा घोर हिंसामय धार्मिक विधि-विधानों को दूर करने के लिए कठोर परिश्रम किया। गुलाम से भी बदतर स्थिति में पीड़ित नारी वर्ग और शूद्रों का उद्धार तथा अहिंसा का प्रसार करने के लिए भी साढ़े बारह वर्ष असीम तपस्या के साथ मानसिक रूप से भी निरन्तर मनोमन्थन, चिंतन तथा संघर्ष किया। परिणामस्वरूप 'केवल ज्ञान' प्राप्त करने के बाद तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक परिस्थिति में आमूल अहिंसक क्रान्ति की। स्त्रियों और शूद्रों को भी समानता के अधिकारी घोषित करके महावीर ने धार्मिक नवचेतना के साथ सामाजिक सुधार उपस्थित किए। लोकभाषा में अपनी विचारधारा का प्रसार कर एक नयी चेतना उत्पन्न की तथा प्रत्येक व्यक्ति की समानता व स्वतंत्रता स्वीकार कर 'आधुनिक लोकतांत्रिक दृष्टिबिन्दु' तीर्थंकर महावीर ने आज से 2500 वर्ष पूर्व किया था। प्राणी मात्र

के प्रति मनसा, वचसा कर्मणा अहिंसात्मक, प्रेम तथा करुणापूर्ण व्यवहार आज़ के अणु युग में कितने संघर्षों तथा विनाश को रोक सकता है!

इस महान् आदर्श व व्यवहार-प्रधान धर्म ने हमारे राष्ट्र के दर्शन, नीति, धर्म, संस्कृति, साहित्य, शिल्प-स्थापत्यादि के विकास में अपना अमिट प्रभाव डालकर अपूर्व योगदान दिया है। प्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकार और तत्त्वचिंतक डॉ॰ हीरालाल जैन ने उचित ही लिखा है कि–'जैन धर्म भारत वर्ष का एक प्राचीनतम धर्म है। इस धर्म के अनुयायियों ने देश के ज्ञान, विज्ञान, समाज, कला-कौशल आदि के वैशिष्ट्य-विकास में बड़ा भाग लिया है। मनुष्य मात्र में नहीं, प्राणी मात्र में परमात्म तत्त्व की योग्यता रखनेवाला जीवन विद्यमान है और प्रत्येक प्राणी गिरते-उठते उसी परमात्मत्व की ओर अग्रसर हो रहा है। इसी सिद्धान्त पर इस धर्म का विश्व-प्रेम और विश्व-बन्धुत्व स्थिर है। भिन्न-भिन्न धर्मों के विरोधी मतों और सिद्धान्तों के बीच अपने स्याद्वादनय (अनेकान्तवाद) के द्वारा सामंजस्य उपस्थित कर देता है। जैनाचार्यों ने ऊंच-नीच, जाति-पांति का भेद न करके अपना उदार उपदेश सब मनुष्यों को सुनाया और 'अहिंसा परमोधर्म' के मन्त्र द्वारा इतर प्राणियों की रक्षा के लिए तत्पर बना दिया।[1]

इस प्रकार जैन धर्म जितना समृद्ध और प्राचीन है, उसका धार्मिक और दार्शनिक साहित्य जितना पुष्ट है, उतना ही पुष्कल परिमाण में प्राप्त उसका ललित साहित्य भी है। भगवान महावीर ने पंडितों की संस्कृत भाषा छोड़कर जनता के कल्याणार्थ बोल-चाल की अर्द्ध-मगधी प्राकृत भाषा में कथा-दृष्टान्तों द्वारा बोध प्रदान किया, तब से लेकर निरन्तर जनभाषा में उसका साहित्य लिपिबद्ध होता रहा है। मध्यकाल में अपभ्रंश तथा कालान्तर में उससे निःसृत भाषा में जैन-साहित्य विपुल परिमाण में लिखा गया। आधुनिक काल में भी हिन्दी भाषा में जैन धर्म व दर्शन के तत्त्वों को समाविष्ट कर रचा गया साहित्य प्रभूत मात्रा में उपलब्ध है। आवश्यकता है केवल इन रचनाओं के शोधात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन की। इनको प्रकाश में लाकर इनकी विशेषता स्थापित करने का हार्दिक उपक्रम नितान्त आवश्यक है। विराट जन-मानस में फैले इस धर्म की विचारधारा का प्रभाव जैन या जैनेत्तर साहित्यकार पर पड़ना स्वाभाविक है। जैन धर्म के अनेक श्लाध्य तत्त्वों को अपने साहित्य का मेरुदण्ड स्थापित करनेवाले न केवल जैन धर्मी साहित्यकार ही रहे हैं वरन् जैनेतर साहित्यकारों ने भी अपनी प्रतिभा का उन्मेष जैन दर्शन एवं उदात्त जैन धर्म के तत्त्वों को समाविष्ट करने में किया है। अतः इन तत्त्वों को आधार बनाकर रचे गये

1. डा॰ हीरालाल जैन–ऐतिहासिक जैन–काव्य संग्रह की भूमिका, पृ॰ 13.

साहित्य का शोध पूर्ण अध्ययन एवं अनुशीलन अपेक्षित था। केवल हिन्दी भाषा में ही नहीं, वरन् गुजराती, राजस्थानी तथा दक्षिण भारत की विविध भाषाओं में जैन-साहित्य का सृजन विशाल परिमाण में हुआ है, लेकिन अनुसंधायिका का प्रयोजन हिन्दी भाषा में लिपिबद्ध आधुनिक जैन साहित्य के सम्बन्ध में खोजबीन करने का रहा है। आदिकाल व मध्यकाल के हिन्दी जैन साहित्य को विवेचित होने का अवसर अवश्य प्राप्त हुआ है, किन्तु आधुनिक काल का हिन्दी जैन साहित्य प्राय: उपेक्षित रहा है। अत: प्रस्तुत विषय पर कार्य करने की आवश्यकता अनुभव कर गुरुवर डा॰ दयाशंकर शुक्ल ने शोधार्थिनी को प्रेरणा प्रदान की। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों ने हिन्दी-जैन साहित्य की प्राय: उपेक्षा की है।

अत: इस उपेक्षित किन्तु प्रभूत मात्रा में उपलब्ध साहित्य का अनुशीलन प्रत्येक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण जान पड़ा।

समग्र जैन साहित्य धार्मिक होने पर भी साम्प्रदायिक असहिष्णुता से प्राय: रंजित है। 'जैन साहित्य में आत्मशोधक तत्त्वों की प्रचुरता है। यह वैयक्तिक और सामाजिक दोनों ही प्रकार के जीवन को उन्नत बनाने की पूर्ण क्षमता रखता है। अत: जैन साहित्य को केवल साम्प्रदायिक कहना नितान्त भ्रम है।[1] किसी भी धर्म-विशेष के सिद्धान्तों को कलात्मक साहित्यिक रूप देकर जनता की सात्विक वृत्ति एवं सद्‌गुणों को जगाने वाले साहित्य में साम्प्रदायिकता कभी नहीं आ सकती। हिन्दी साहित्य का पूर्व मध्यकालीन साहित्य तो पूर्णत: धार्मिक साहित्य है। यदि इनमें किसी को साम्प्रदायिकता की बू नहीं आती तो जैन-साहित्य से ही ऐसी अपेक्षा क्यों? इसमें उन्मुक्त शृंगार का वर्णन पर्याप्त मात्रा में प्राप्त नहीं होता है। विवेकशील, रागात्मक व सात्विक वृत्तियों को अनुरंजित करने वाले शांत रस का प्राधान्य ही यहां मिलता है और क्या इन्हीं कारण से तो इस महत्त्वपूर्ण साहित्य को उपेक्षित नहीं हो जाना पड़ा है!

यहां आधुनिक हिन्दी-जैन-साहित्य-विद्वानों के समक्ष निवेदन प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयास किया गया है। इस सम्बन्ध में निवेदित है कि इसमें किसी प्रान्त-विशेष के जैन साहित्यकारों की रचनाओं का अनुशीलन नहीं किया गया वरन् जैन धर्म के प्रमुख लोकोपयोगी तत्त्वों व विचारों को आधार शिला बनाकर हिन्दी में लिखे गये संपूर्ण आधुनिक जैन साहित्य को (सन् 1950 से 1970 ई॰ तक) अध्ययन का विषय बनाया है। इसके लिए अनुसंधायिका अपने विद्वान गुरु की सदैव आभारी रहेगी, जिन्होंने हिन्दी-जैन साहित्य की अपूर्ण

1. नेमिचन्द शास्त्री-'हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन, भाग-1, दो शब्द, पृ॰ 5.

शृंखला को जोड़ने के लिए आधुनिक युग के हिन्दी-जैन-साहित्य पर कार्य करने की प्रेरणा दी। इस प्रेरणा को दृष्टि में रखकर मैंने प्रयत्न प्रारम्भ किया, किन्तु शोध-पथ में अनेकानेक कठिनाइयाँ आती रहीं। कभी-कभी तो गृहस्थी की अनेक झंझटों, समस्याओं, विविध स्थलों पर स्थित जैन-भंडारों में जा-जाकर देखने-टटोलने और उपलब्ध रचनाओं को प्राप्त करने की कठिनाइयों से घबराकर कार्य छोड़ देने की मनोवृत्ति भी बन गई, किन्तु श्रद्धेय गुरुवर द्वारा प्रदत्त धैर्य व सान्त्वना से मैं किसी प्रकार यह कार्य कर पाई हूँ।

यह शोध-कार्य एक विशेष काल-खण्ड को लेकर किया गया है। किसी निश्चित कालखण्ड को लेकर यदि साहित्य का अध्ययन किया जाए तो विषय में गहराई तथा वांछित व्यवस्था आ जाती है। 18वीं शती तक के हिन्दी-जैन साहित्य का अनुशीलन हो चुका है, अतः उसी परम्परा को आगे बढ़ाने के लिए शोधार्थिनी ने एक सौ बीस वर्ष (1850 से 1970 ई० तक) के काल खण्ड के हिन्दी-जैन साहित्य को अपने शोध का विषय चुना है। इस कार्य में लेखिका की मर्यादाएं भी रही हैं। आधुनिक साहित्य विशाल परिमाण में है, तथा विविध भण्डारों, प्रकाशनों व विद्वानों से निरन्तर संपर्क स्थापित करने पर भी सम्पूर्ण प्रकाशित साहित्य प्राप्त करने का दावा करना बेईमानी होगी। ईस्वी 1970 के बाद भी हिन्दी जैन साहित्य विशाल परिमाण में उपलब्ध होता है, विशेषकर भगवान महावीर की 2500वीं निर्वाण तिथि के उपलक्ष्य में (सन् 1976 में) अधिकाधिक साहित्य प्रकाशित हुआ है। इसमें डा० छैलबिहारी गुप्त रचित 'तीर्थंकर महावीर', (महाकाव्य), वीरेन्द्र जैन रचित श्रेष्ठ उपन्यास 'अनुत्तर योगी' (तीन खण्डों में) तथा आ० नेमिचन्द्र शास्त्री लिखित 'तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा' (तीन खण्डों में) शीर्षक ग्रन्थ विशेष उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त अनेक जीवनियां, कथा-साहित्य, निबंध-साहित्य, मुक्तक रचनाएं, खण्ड काव्य आदि उपलब्ध होते हैं।

हिन्दी-जैन साहित्य को मूल्यांकित करके प्रकाश में लाने का कार्य प्रारंभ हुआ है तथा इसके महत्त्व को स्वीकारने की जागृति पैदा हुई है, वह स्तुत्य है। इस दिशा में सर्वप्रथम हिन्दी-साहित्य के विद्वान साहित्यकार पं० नाथूराम 'प्रेमी' ने अथक परिश्रम व निष्ठा से जैन साहित्य और साहित्यकारों को प्रकाश में लाने का भगीरथ प्रयास किया है। पंडितजी ने 'हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास' में आदिकाल एवं मध्यकाल के हिन्दी जैन कवियों के वंश-गोत्र, परिवार, रचना व परिस्थितियों के विषय में ऐतिहासिक तथा साहित्यिक दृष्टिकोण से अत्यन्त खोजपूर्ण लेख प्रकाशित किये हैं। आधुनिक युग के साहित्य के सम्बन्ध में

उन्होंने दिशा-सूचन किया होता तो उसकी उपादेयता असंदिग्ध रूप से सिद्ध होती। बाबू कामताप्रसाद जैन ने भी 'हिन्दी-जैन-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' लिखकर जैन-साहित्य के 10वीं शताब्दी से 18वीं शती तक के विशाल कालखण्ड को समावृत्त किया है। किन्तु आधुनिक काल के साहित्य को उन्होंने भी नहीं स्पर्श किया है। प्रसिद्ध जैन विद्वान डा॰ नेमिचन्द्र शास्त्री ने 'हिन्दी जैन साहित्य-परिशीलन' दो खण्डों में लिखा है, जिनमें आदिकालीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक युग के हिन्दी जैन साहित्य का विवेचन संक्षेप में प्रस्तुत किया है। उनका दृष्टिकोण अपभ्रंश एवं मध्यकालीन जैन साहित्य की ओर जितना आकृष्ट हुआ है, उतना आधुनिक काल के प्रति नहीं हुआ है। ऐसा उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है।[1] तीनों विद्वान इतिहासकारों ने अनेक प्राचीन रस-सिद्ध कवियों की सौन्दर्यपूर्ण साहित्यिक व भक्तिपरक रचनाओं को प्रकाश प्राप्त करवाने का प्रशंसनीय कार्य किया है।

उपरोक्त इतिहासों के अतिरिक्त डा॰ प्रेमसागर जैन ने विद्वतापूर्ण शैली में 'हिन्दी जैन भक्ति की दार्शनिक पृष्ठभूमि' तथा 'हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि' दो खण्डों में शोध प्रबंध प्रस्तुत किया है। उन्होंने जैन-भक्ति की परिभाषा, सिद्धान्त, महत्त्व और विंशिष्टता के साथ दूसरे खण्ड में मध्यकालीन भक्त-कवियों की रचनाओं के विषय में विवरण प्रस्तुत किया है। गुजरात के डा॰ हरिप्रसाद शुक्ल 'हरीश' का 'गुर्जर जैन कवियों की हिन्दी साहित्य को देन' शीर्षक शोध प्रबन्ध हाल में प्रकाशित हुआ है, जिसमें उन्होंने जैन धर्म का महत्त्व व दर्शन की पृष्ठभूमि का संक्षेप में वर्णन कर गुजरात के जैन-कवियों एवं उनकी रचनाओं का विवेचन किया है। डा॰ श्रीलालचन्द्र जैन का 'जैन कवियों के ब्रजभाषा प्रबंध काव्यों का अध्ययन' नामक शोध-ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है, जिसमें मध्यकालीन जैन ब्रजभाषा-प्रबन्ध-काव्यों का विस्तृत विवेचन तत्कालीन परिस्थितियों के साथ किया है और जैन ब्रजभाषा प्रबन्ध काव्यों का भावगत् व शिल्पगत् सौन्दर्य का अच्छा विवेचन है और ब्रजभाषा प्रबन्ध काव्यों का भावगत व शिल्पगत सौन्दर्य का अच्छा विवेचन किया है। डा॰ वासुदेव सिंह ने 'अपभ्रंश एवं हिन्दी जैन रहस्यवाद' नामक महत्त्वपूर्ण शोध-प्रबंध प्रस्तुत किया है। इसमें उन्होंने अपभ्रंश तथा ब्रजभाषा के जैन साहित्य में रहस्यवाद के सम्बन्ध में अध्ययन प्रस्तुत किया है।

उपर्युक्त इतिहासों एवं शोध-प्रबंधों के संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट होता है

---

1. द्रष्टव्य—डा॰ नेमिचन्द्र शास्त्री—हिन्दी जैन साहित्य-परीशीलन, भाग-2, दो शब्द, पृ॰ 10.

कि प्रस्तुत शोध-विषय उपयुक्त रचनाओं से सर्वथा पृथक एवं मौलिक है। हां, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभाव या दिशा-निर्देश अवश्य प्राप्त हुआ होगा, जिसके लिए अनुसंधायिका उन विद्वानों तथा लेखकों की आभारी है। प्रस्तुत शोध-प्रबंध के आलोच्यकालीन युग में हिन्दी जैन साहित्यकारों ने जैन धर्म के किसी न किसी तत्त्व या सिद्धान्त को उद्देश्य रूप में रखकर सृजन किया है, जिससे धर्म के नीरस अथवा गहन तत्त्वों को रसात्मक साहित्य-रूप में प्रस्तुत करने से सामान्य जन समाज सहजभाव से आत्मसात् कर रसानुभूति प्राप्त कर सकता है। इसमें सात्त्विक एवं बोधप्रद साहित्य भी रहता है, तो कलात्मक रसपूर्ण साहित्यिक कृतियां भी रहती हैं। केवल बोध या चिन्तन-प्रणाली नीरस व जड़ क्रियावादी भी हो सकती है, लेकिन इसे ही ललित साहित्य के रूप में प्रस्तुत कर व्यापक व लोकप्रिय बनाया जाता है। यह कार्य आधुनिक युग के जैन-साहित्यकारों ने सिद्ध किया है। अत: ऐसी रचनाओं को प्रकाश में लाकर उनका अनुशीलन-परिशीलन करने का लेखिका का विनम्र प्रयास रहा है।

प्रस्तुत प्रबन्ध छः अध्यायों में विभाजित है। प्रथम अध्याय 'विषय प्रवेश व परम्परा' के अन्तर्गत जैन धर्म की परिभाषा, महत्त्व, अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर के समय की परिस्थितियाँ, महावीर की विविध क्षेत्र में विश्व को देन, जैन धर्म के प्रमुख तत्त्व व उनकी आधुनिक युग में उपादेयता का विवेचन किया गया है। 'परम्परा' के अन्तर्गत हिन्दी साहित्य के प्रारंभ से अर्थात् 10वीं शती से लेकर 19वीं शती तक के अपभ्रंश, ब्रज व हिन्दी जैन साहित्य का संक्षेप में विवेचन किया गया है। इस अध्याय में अनेकानेक ग्रन्थों का सहारा लिया गया है लेकिन विवेचन व निष्कर्ष लेखिका के अपने हैं।

दूसरे अध्याय में 'आधुनिक हिन्दी-जैन साहित्य-सामान्य परिचय' के अन्तर्गत आधुनिकता का महत्त्व, प्रारंभ व सानुकूल परिस्थितियों के चित्रण के साथ हिन्दी साहित्य में आधुनिक युग का प्रारंभ निर्दिष्ट कर हिन्दी जैन साहित्य में आधुनिक युग का प्रारम्भ और विकास बताया गया है तथा गद्य-पद्य के विविध भेद और तद्विषयक आलोच्यकालीन उपलब्ध कृतियों का वर्गीकरण कर संक्षिप्त परिचय देने का प्रयास किया गया है। यह प्रयास लेखिका का निजी है।

तृतीय अध्याय 'आधुनिक-हिन्दी-जैन काव्य-विवेचन' के अन्तर्गत प्रबंध और मुक्तक के आवश्यक तत्त्वों के परिचय के साथ उपलब्ध महाकाव्यों की कथावस्तु, रस, नेता, कल्पना, जीवन-दर्शन आदि पहलुओं पर विस्तृत विचार किया गया है। प्राप्त खण्ड काव्यों पर भी उसी रूप से विचार करने के उपरान्त

इनमें आधुनिक विचारधारा का कहाँ और कैसा प्रभाव प्रतिम्बित हुआ है, इसकी ओर निर्देश किया गया है। विविध मुक्तक रचनाओं के भाव पक्ष पर विस्तार से दृष्टिपात किया गया है। विषय वस्तु में काफ़ी समानता होने पर भी भाव, विचार, कल्पना व प्रस्तुतीकरण की विभिन्नता एवं विशिष्टता के कारण पद्य की प्रत्येक रचना का निजी महत्त्व है। इस अध्याय का समग्र विवेचन अनुसंधायिका का अपना विनम्र प्रयास है।

चतुर्थ अध्याय 'आधुनिक हिन्दी-जैन गद्य साहित्य : विधाएं और विषय-वस्तु' शीर्षक के अन्तर्गत आधुनिक युग में गद्य के महत्त्व, प्रारंभ व प्रसार पर दृष्टिपात करके आधुनिक जैन गद्य साहित्य की विविध कृतियों का विषयवस्तु परक परिचय विस्तृत रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इसमें जहां उत्तम साहित्यिक कला-कृतियां प्राप्त होती हैं, तो भक्ति-परक उद्देश्य से परिपूर्ण सामान्य कृतियां भी विशाल परिमाण में प्राप्त होती हैं।

पंचम अध्याय 'आधुनिक हिन्दी-जैन पद्य-साहित्य का कला-सौष्ठव' के अन्तर्गत पद्य के बाह्य सौन्दर्य के लिए आवश्यक महत्त्वपूर्ण तत्त्वों के निरूपण के बाद आलेच्य जैन-प्रबंध काव्यों के सौन्दर्य पक्ष में छन्द, अलंकार, प्रबन्धत्व, भाषा-शैली, वर्णनात्मकता, सूक्ति प्रयोगों की चर्चा के साथ मुक्तक रचनाओं की भाषा-शैली, छन्द, अलंकारादि का विवेचन अनुसंधायिका ने प्रयास स्वरूप किया है।

छठा अध्याय 'आधुनिक हिन्दी-गद्य साहित्य का शिल्प-विधान' के भीतर गद्य-साहित्य की विशिष्टता व्यक्त करनेवाले तत्त्वों के परिचय के साथ उपलब्ध प्रत्येक विधागत विशिष्ट कृतियों का भाषा-शिल्प, संगठन-सौष्ठव, चारित्रिक विश्लेषण, संवाद, उद्देश्य, शैली आदि दृष्टियों से विवेचन किया गया है।

अंततोगत्वा उपसंहार में उपलब्ध साहित्य की सीमा व विशिष्टता का संक्षेप में उल्लेख करके सन् 1970 के अनन्तर प्रकाशित साहित्य का संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

प्रस्तुत प्रबन्ध लेखन में लेखिका अपने निर्देशक गुरुवर डा॰ दयाशंकर शुक्ल के प्रति अत्यन्त आभार प्रकट करती है। हिन्दी विभाग के प्रोफेसर व अध्यक्ष सम्माननीय डा॰ मदनगोपाल गुप्तजी के प्रति लेखिका अत्यन्त अनुगृहीत है। जिन्होंने न केवल प्रस्तुत विषय पर कार्य करने की अनुमति दी, बल्कि समय-समय पर महत्त्वपूर्ण सुझाव देने की भी कृपा की है। गुजरात विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभागाध्यक्ष एवं प्रो॰ डा॰ अम्बाशंकर नागर तथा एल॰ डी॰ इन्स्टीट्यूट

के नियामक डा॰ दलखुसभाई मालाणिया के मूल्यवान सुझावों के लिए भी लेखिका हार्दिक आभार व्यक्त करती है। लेखिका जैन समाज के विद्वानों एवं आचार्यों के प्रति-जिनसे प्रत्यक्ष व परोक्ष सहायता प्राप्त हुई है- अपनी कृतज्ञता व्यक्त करना अपना कर्त्तव्य समझती है। इस शोध-कार्य के लिए विभिन्न जैन-भण्डारों को देखना पड़ा है, जिसके लिए अनुसंधायिका उन भण्डारों के ट्रस्टियों एवं व्यवस्थापकों के सहयोग के लिए सदैव आभारी रहेगी। गायकवाड़ प्राच्य विद्यामन्दिर के नियामक डॉ॰ अरुणोदय जानी एवं प्रकाशन विभाग के अधिकारी तथा व्यवस्थापक के प्रति शोधार्थिनी आभारी है। जिन्होंने स्नेह और सौख्य भरे वातावरण में पढ़ने-लिखने की विशेष सुविधा उपलब्ध करवाई। मैं अपने पति के प्रति आभार प्रदर्शन कैसे करूं? सब कुछ उन्हीं का तो है उनके सहयोग के बिना यह कार्य प्रारम्भ ही न हो पाता।

शीघ्र एवं उत्साह से शोध-प्रबन्ध का टंकण कार्य करने के लिए श्री आर. एस. दुबे तथा शोध-प्रबन्ध के पठन-पाठन में सहायता करने के लिए भाई श्री लिम्बासिया व चिरंजीव पौरव के प्रति हार्दिक आभार व स्नेह व्यक्त करना अनुसंधायिका उचित समझती है।

प्रबंध में त्रुटियों का रह जाना सहज संभाव्य है, जिनके प्रति विद्वत्जनों की उदार दृष्टि की अपेक्षा है। कमियों का रहना लेखिका का दोष होना, एवं कार्य की थोड़ी-बहुत उपलब्धि का सम्पूर्ण श्रेय पथ-प्रदर्शक गुरु जी को समर्पित है।

संक्षिप्त शब्द-सूची

(1) आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य	–आ.हि.जै.सा.
(2) हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	–हि.सा.सं.इ.
(3) हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन	–हि.जै.सा.परि.
(4) हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास	–हि.जै.सा.इ.
(5) हिन्दी जैन साहित्य का बृहत् इतिहास	–हि.जै.सा.बृ.इ.
(6) आधुनिक जैन कवि	–आ.जै.कवि.
(7) आचार्य	–आ.
(8) पंडित	–पं.
(9) हिन्दी जैन कवि और काव्य	–हि.जै.क.का.

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ संख्या
आशीर्वचन	*(vii)*
दो शब्द	*(ix)*
आमुख	*(xi)*
संक्षिप्त शब्द सूची	*(xix)*
प्रथम अध्याय : 'विषय-प्रवेश'	**1-29**
जैन धर्म और दर्शन की प्राचीनता, महत्ता व परिभाषा-जैन धर्म के तीर्थंकर-अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर के समय की धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थिति-महावीर का योगदान-समानता के स्थापक के रूप में, नारी स्वातंत्र्य के उद्घोषक के रूप में, लोक-भाषा-प्रचारक के रूप में-जैन धर्म के प्रमुख तत्त्व एवं आधुनिक युग में इनकी उपादेयता। परम्परा :-परम्परा का महत्त्व, प्राचीन जैन साहित्य-10वीं शताब्दी से 18वीं शती तक का संक्षिप्त परिचय।	
द्वितीय अध्याय : 'आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य : पूर्व-पीठिका'	**30-79**
हिन्दी जैन-साहित्य का प्रारंभ, आदि काल (11वीं शती से 14वीं शती तक) : गद्य, हिन्दी जैन-साहित्य का मध्यकाल (15वीं शती से 17वीं शती तक) : नाममाला, नाटक समय सार, बनारसी विकास, अर्द्ध-कथानक, मोह-विवेक-बुद्धि, मांझा, इस काल का गद्य, परिवर्तन काल (18वीं शती से 19वीं शती तक)।	
तृतीय अध्याय : 'आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य : सामान्य परिचय'	**80-144**
'आधुनिक' शब्द का विवेचन व महत्त्व-विविध क्षेत्र में आधुनिकता के साथ साहित्य में आधुनिकता का पदार्पण-आधुनिक युग 'गद्य-युग' के रूप में-जैन साहित्य में आधुनिक युग का प्रारम्भ-आधुनिक हिन्दी जैन पद्य-साहित्य-गद्य की विविध विधाएं-कृति परिचय।	

चतुर्थ अध्याय : 'आधुनिक हिन्दी जैन काव्य : विवेचन' **145-256**

महाकाव्य, खण्डकाव्य एवं मुक्तक के प्रमुख तत्त्व व अंतर-उपलब्ध महाकाव्य की कथा-वस्तु, चरित्र-चित्रण, रस, प्रकृति-चित्रण, दार्शनिकता व सर्गबद्धता-उपलब्ध खण्ड काव्यों का विषय वस्तु-विवेचन-मुक्तक रचनाओं का विषय-वस्तु परक विवेचन-निष्कर्ष।

पञ्चम अध्याय : 'आधुनिक हिन्दी-जैन-गद्य साहित्य : विधाएँ और विषय-वस्तु **257-395**

पद्य व गद्य का आधुनिक युग में प्रभाव-गद्य का प्रसार-हिन्दी जैन गद्य साहित्य की विभिन्न विधाएं-उपन्यास और कथा का अन्तर, प्रमुख तत्त्व व प्रमुख रचनाओं का विवेचन, नाटक साहित्य, निबन्ध-साहित्य, जीवनी- आत्मकथा व संस्मरण-रचनाओं का विवेचन निष्कर्ष।

षष्ठम अध्याय : 'आधुनिक हिन्दी-जैन-काव्य का कला-सौष्ठव **396-440**

पद्य-साहित्य के अन्तर्बाह्य तत्त्व में बाह्य तत्त्व रूप कला पक्ष-के प्रमुख तत्त्वों का विवेचन-भाषा, अलंकार, छन्द आदि के परिप्रेक्ष्य में-उपलब्ध काव्य-साहित्य की भाषा अलंकार, छन्द आदि का स्वरूप।

सप्तम अध्याय : 'आधुनिक हिन्दी-जैन-गद्य-साहित्य का शिल्प-विधान' **441-516**

गद्य की चुस्तता के लिए आवश्यक तत्त्व-उपन्यास, कहानी, नाटक-साहित्य संवाद, भाषा-शैली, वातावरण, उद्देश्य, निबन्ध-जीवनी, आत्म-कथा आदि विधाओं की रचनाओं का भाषा-शैली विषयक विवेचन-निष्कर्ष।

उपसंहार **517-523**

आधुनिक हिन्दी-जैन-साहित्य की उपलब्धियां, सीमाएं, आधुनिक युग के सन्दर्भ में इस साहित्य का महत्त्व एवं 1970 के बाद जैन-साहित्य की परिस्थिति।

परिशिष्ठ-(क) सन्दर्भ और आधार ग्रन्थों की सूची **524-531**

परिशिष्ठ-(ख) इंगलिश, संस्कृत और गुजराती -संदर्भ ग्रन्थ **532-533**

परिशिष्ठ-(ग) पत्र-पत्रिकाएं **534**

प्रथम अध्याय

विषय प्रवेश

जैन धर्म की प्राचीनता :

विश्व के प्रमुख धर्मों से एक महत्वपूर्ण धर्म के रूप में जैन धर्म को स्वीकारा जाता है। इस धर्म के अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर (ई. पू. छठीं शताब्दी) ने विश्व को अहिंसा, सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह तथा समानता के महान सिद्धान्त-रत्नों की अनमोल भेंट दी। वैसे भगवान महावीर जैन धर्म के आद्यस्थापक या प्रथम तीर्थंकर नहीं है। जैनधर्म अति प्राचीनकाल से प्रचलित रहा है। इसके प्रथम व्याख्याता व आदि तीर्थंकर के रूप में भगवान ऋषमदेव जैनियों में सर्व स्वीकृत हैं। ऋग्वेद और भागवत पुराण में भी जैन धर्म के संस्थापक और विष्णु के चौबीस अवतारों में वे आठवें अवतार के रूप में उनका महत्व प्राप्त होता है।[1] इसीलिए जैनियों के मतानुसार जैन धर्म भगवान ऋषमदेव ने चलाया तो सचमुच ही उनका मत वैदिकी मत से कुछ कम ही प्राचीन है। भागवत पुराण जैनियों की श्रीमंताई की भी पुष्टि करता है।[2] महावीर के पुरोगाभी 23वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ तो इतिहास-सिद्ध धार्मिक नेता के रूप में मान्य हैं ही। पार्श्वनाथ ने ऋषमदेव के समय से उद्भाषित जैन धर्म के विछिन्न स्वरूप को व्यवस्थित कर संघ स्थापित किया। सभी पौर्वात्य और पाश्चात्य विद्वान पार्श्वनाथ को ऐतिहासिक व्यक्ति के रूप में मान्य करते हैं। पाश्चात्य विद्वान कोलब्रुक कहते हैं कि 'पार्श्वनाथ जैन धर्म के संस्थापक थे, ऐसा मेरा मानना है। महावीर और उनके शिष्य सुधर्मा ने जैन धर्म का पुनरोद्धार करके संपूर्ण रूप से व्यवस्थित किया। महावीर और उनके पुरोगामी पार्श्वनाथ दोनों को सुधर्मा और उनके अनुयायी तीर्थंकर (जिन) के रूप में पूजते थे और आज

---

1. द्रष्टव्य: छान्दोग्य उपनिषद 7, पृ॰ 26, शिवपुराण, 2, ऋग्वेद 1, 7
   कैलासे पर्वतैरम्ये, वृषभो यं जिनेश्वरः।
   चक्कार रचावतारं यः सर्वज्ञः सर्वत्रः शिवः ।।2।। शिवपुराणं प्रोत्त्म
   नाभिस्तु जनवेन पुत्रं, मरुवेप्या मनोहरम्।
   कृषभं क्षत्रिय श्रेष्ठं सर्वदात्रस्य पूर्वजम् ।।2।। ब्रह्माण्डपुराणे प्रोत्त्म
2. डा॰ देवराजन्-दर्शन शास्त्र का इतिहास, पृ॰ 620
   डा॰ राधाकृष्णन्-भारतीय विचारधारा, पृ॰ 133

के जैन भी ऐसे ही पूजते हैं।[1] कोलब्रुक के अतिरिक्त प्रसिद्ध जंर्मन जैन तत्ववेता हर्मन याकोबी, श्रीमती स्टीवन्सन, एडवर्ड थोमस भी निश्चयपूर्वक मानते हैं कि जैन धर्म 'नातपुत्र' (पार्श्वनाथ) और 'शाक्यपुत्र' (महावीर) से भी प्राचीन है। बौद्ध-साहित्य में पार्श्वनाथ के चतुर्याम धर्म के उल्लेख मिलते हैं। स्वयं भगवान महावीर ने अपने उपदेशों में पार्श्वनाथ के लिए अनेक बार 'पुरुष दाणीयम्' (पुरुषदानी) विशेषण का प्रयोग किया है। वे महावीर से 300 वर्ष पूर्व अर्थात् ई॰ पू॰ की 8वीं शताब्दी में हुए थे और 100 वर्ष की आयु भोगी थी। महावीर के माता-पिता उन्हीं को पूजते थे। इस धर्म की प्राचीनता पर प्रकाश डालते हुए डा॰ ज्योति प्रसाद जैन लिखते हैं कि-'वैदिक धर्म के कुछ प्राचीन ग्रंथों से भी सिद्ध होता है कि उस समय जैन धर्म अस्तित्व में था। रामायण और महाभारत में भी जैन धर्म का उल्लेख हुआ है। जैन धर्मानुसार बीसवें तीर्थंकर मुनि सुव्रतस्वामी के समय में रामचन्द्र जी का होना सिद्ध है।'[2] इसी प्रकार प्रो॰ जयचन्द्र विद्यालंकार भी जैन धर्म की प्राचीनता के संदर्भ में अपना विश्वास प्रकट करते हुए लिखते हैं कि-'जैनों की मान्यता है कि उनका धर्म बहुत प्राचीन है और भगवान महावीर के पहले 23 तीर्थंकर हुए हैं। इस मान्यता में तथ्य हैं। ये तीर्थंकर अनैतिहासिक व्यक्ति नहीं हैं। भारत का प्राचीन इतिहास उतना ही जैन है, जितना वैदिक।'[3]

भगवान महावीर के प्रादुर्भाव ने प्राचीन और विशृंखलित जैन धर्म को एक नये वातावरण में सुदृढ़ता एवं व्यवहारिक स्वरूप देकर नया प्रकाश प्रदान किया। नयी चेतना जगाकर जैन धर्म में प्राण फूंक दिया तथा इस धर्म के सात्त्विक व लोकोपयोगी सिद्धान्तों से अपने समय के रूढ़िग्रस्त समाज को अहिंसक परिवर्तन की नयी भूमिका से सुसज्ज किया। उन्होंने भगवान पार्श्वनाथ-प्रचारित चार प्रमुख तत्त्वों की संख्या पांच करके (सत्य, अहिंसा, अचौर्य, अपरिग्रह एवं ब्रह्मचर्य) उनका सामान्य जनता में प्रचार किया। जैन धर्म में स्त्री-पुरुष दोनों को दीक्षित करने की परंपरा प्रारंभ कर अनुयायियों का वर्ग निर्मित किया और जैन समाज को चतुर्विध संघ में (साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका) विभाजित किया। उनके अथक प्रयास से जैन धर्म पुन:जीवित होकर युगानुकूल धार्मिक तथा सामाजिक क्रांति का वाहक बनने में समर्थ हो सका।

1. Colebrook-opardioc-cit, page. 341.
2. श्री ज्योति प्रसाद जैन: महावीर जयन्ति स्मारिका-पृ॰13, राजस्थान जैन सभा-जयपुर।
3. देखिए-प्रो॰जयचन्द विद्यालंकार-भारतीय इतिहास की रूपरेखा-भाग 1, पृ॰343 वल्लसुख मालवाणिया-जैन धर्म।

भगवान महावीर के समय की धार्मिक परिस्थिति :

भारतीय आर्य संस्कृति के समुन्नत विकास में वैदिक धर्मानुयायियों, जैन धर्मानुयायियों तथा बौद्ध मतावलंबियों का समान योगदान रहा है। भगवान महावीर के आविर्भाव के समय में भारतीय संस्कृति की दो प्रमुख परंपराएं प्राणवान थी'–एक वैदिक और दूसरी श्रमण परम्परा।[1] जैन व बौद्ध श्रमण परम्परा के अन्तर्गत आते हैं। जैन धर्म प्रारंभ में श्रमण धर्म के रूप में ही ख्यात था, कालान्तर में वह जैन धर्म के रूप में अभिहित हुआ। 'जो मुक्ति के लिए आत्मसंयम और स्वाश्रय की प्रवृत्ति को महत्व देता है, वह 'श्रमण' कहलाता है' और यही इस परम्परा की विशिष्टता मानी जाती है। उस समय ब्राह्मण धर्म वेद-प्रेरित यज्ञ-याग एवं कर्म काण्डों पर विशेष बल देता था। प्रसिद्ध भारतीय तत्त्वचिन्तक डॉ॰ सुरेन्द्रनाथ दासगुप्ता उस समय के वैदिक धर्म की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं–'यथार्थ में यज्ञादि के कर्मकाण्ड एवं विधि-विधान विशेष रूप से विस्तृत एवं जटिल होते जा रहे थे। इसका सीधा प्रभाव तो यह हुआ कि देवताओं का महत्व अपेक्षाकृत कम होने लगा। मनोकामना की पूर्ति के लिए यज्ञानुष्ठान का चमत्कारपूर्ण विधान एक विशेष परम्परा का स्थान ग्रहण कर रहा था। यज्ञों में बलि और आहुति उस प्रकार की भक्ति और निष्ठा से प्रेरित नहीं होती थी, जिस प्रकार की भक्ति वैष्णव और ईसाई धर्मों में पाई जाती है।'[2] उसी समय महावीर तथा बुद्ध ने चिन्तन-मनन के पश्चात् इंद्रिय-निग्रह, अहिंसा व कर्मवाद के सिद्धान्त द्वारा जाति-पांति, वर्ण-वर्ग, धर्म या संप्रदाय को महत्व न देकर केवल व्यक्ति को ही महत्व दिया। अपने उद्भव काल में श्रमण संस्कृति ने पूर्ण विकसित ब्राह्मण धर्म का घोर विरोध सहन करके भी जनता को अपने सिद्धान्तों का महत्व प्रतीत करवाने में अथक परिश्रम किया। पं॰ दलसुख मालवणिया जी इस संदर्भ में लिखते हैं कि–'ब्राह्मणों में यज्ञ संस्था के प्राधान्य के साथ ही पुरोहित संस्था का उद्भव हुआ; परिणामस्वरूप ब्राह्मण वर्ग श्रेष्ठ और अन्य हीन ऐसी भावना का प्रचार हुआ। अतः समाज में जातिगत ऊँच-नीचता ने धार्मिक क्षेत्र में अपना प्रभाव फैलाया और मानव समाज में विभिन्न वर्ग पैदा हुए। इससे विपरीत श्रमणों में ऐसी कोई 'पुरोहित संस्था के उद्भव को अवकाश था ही नहीं।'[3] उसी प्रकार वैदिक कालीन सीधे सरल

1. डा॰ मोहनलाल मेहता-जैन आचार, पृ॰ 7 प्रस्तावना।
2. डा॰ सुरेन्द्रनाथ दासगुप्ता-भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग-1, अध्याय-2 वेद, ब्राह्मण और उनका दर्शन, पृ॰ 22.
3. डा॰ दलसुख मालवणिया-'जैन धर्म चिन्तन'-अध्याय-1, पृ॰ 9.

यज्ञों का उस समय जो जटिल रूप और बाह्याचार में परिवर्तन हो गया था उस पर भी माल- वणियाजी ने विस्तृत रूप से प्रकाश डाला है।[1] डा॰ हरीश शुक्ल की भी उस संदर्भ में यही विचारधारा है।[2] उस समय न केवल महावीर-बुद्ध ने धार्मिक विचारों द्वारा जन-क्रांति प्रारम्भ कर दी; बल्कि उत्साही एवं विचारशील हिन्दुओं ने भी जटिल कर्म-काण्डों से दूर जाने का साहस किया। स्वयं महावीर के प्रथम पट्शिष्य गौतम स्वामी विद्वान ब्राह्मण थे और उन्होंने अपनी शंकाओं के समाधान प्रभु महावीर से प्राप्त कर अपने 500 शिष्यों के साथ जैन दीक्षा अंगीकार की थी। अन्य भी 11 विद्वान पंडितों ने अपने-अपने समुदायों के साथ जैन धर्म की महत्ता स्वीकार कर दीक्षा ग्रहण की थी। महावीर ने दीक्षा लेने के अनन्तर 12 वर्षों के भ्रमण काल में देखा कि ब्राह्मणों ने यज्ञों में निर्दोष पशुओं की बलि दे देने की प्रथा अपनाकर समाज में हिंसा का वातावरण फैलाया है। अत: निरर्थक जीव-हिंसा की ओर लोगों का ध्यान खींचते हुए उन्होंने अहिंसा प्रधान जैन धर्म का महत्त्व प्रतिपादित किया। जैन धर्म अहिंसा एवं बृहत् मानवतावादी विचारधारा का संदेश देने लगा। ब्राह्मण धर्म उस समय छुआछूत और जाति प्रथा की महत्ता पर बल दे रहा था।

महावीर के समय की सामाजिक स्थिति भी अत्यन्त असमानतापूर्ण थी। ब्राह्मण वर्ग को सत्ता मान और विशेषाधिकार प्राप्त थे, जबकि निम्न जाति के लोग प्राय: गुलाम और पशु तुल्य समझे जाते थे। नारी की दशा भी प्राचीन वैदिक धर्म के समय की गौरवपूर्ण और आभामय न होकर चार दीवारों में बँद कैदी-सी हो गई थी। उन्हें किसी भी प्रकार के अधिकार प्राप्त न थे। धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में ही जब नारी को महत्व नहीं दिया जाता हो, तब राजनैतिक या आर्थिक क्षेत्र में नारी के अधिकारों की तो संभावना ही कहां? पाश्चात्य विद्वान टीले का कहना है कि-'उस समय की सामाजिक व्यवस्था में स्त्री को कुछ स्थान नहीं था और शूद्रों को बिलकुल तुच्छ माना जाता था। मनु के अपने सूत्र 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:। के बावजूद भी ब्राह्मण धर्म ने नारी को धार्मिक अधिकारों से वंचित रखा था और शूद्रों की भी वैसी ही स्थिति थी।'[3] इसके विपरीत श्रमण-संस्कृति ने नारी और शूद्रों को भी ऊँचा उठाकर विशेष स्थान देने का प्रयत्न किया। नूतन विचारधारा के कारण महावीर

1. द्रष्टव्य-डा॰ दलसुख मालवणिया-'जैन धर्म चिन्तन'-अध्याय-1, हिन्दू धर्म और जैन धर्म, पृ॰ 80.
2. देखिए-डा॰ हरीश शुक्ल : 'जैन गुर्जर कपियों की हिन्दी कविता', पृ॰ 35.
3. S. Tille-'Principal or Religions', chap. V, Page. 165.

के समय वैचारिक क्रान्ति के अनन्तर श्रमण-संस्कृति का दृढ विकास संभवलहुआ। भारत के तत्कालीन इतिहास में इसे धार्मिक जीवन का संक्रांतिकाल या बुद्धिवाद का युग भी कहा जा सकता है।[1] जनता भी महावीर की सरल, सौम्य आकृति, अहिंसात्मक व्यवहार व विचारधारा तथा मानव-स्वतंत्रता को महत्व देनेवाली सात्विक उपदेश-पद्धति से प्रभावित होने लगी थी। श्री सी० जे० शाह ने अपनी 'उत्तर भारत में जैन धर्म' नामक पुस्तक में स्पष्ट रूप से लिखा है कि-'हमें साधु दिल से स्वीकार कर लेना चाहिए कि महावीर के उद्देश्य उच्च और पवित्र थे और मनुष्य जाति और अन्य सर्व जीवात्मा की समानता का संदेश भारत के यज्ञ-यागादि से त्रस्त व जाति-भेदों से ऊबे हुए लोगों के लिए उदार व महान आशीर्वाद के समान थे।[2] जाति भेद के प्रखर विरोध के साथ समानता और समताभाव का तत्कालीन श्रमण धर्म में महत्व था। एक तत्वचिंतक व समाज सुधारक के रूप में महावीर ने प्रेमपूर्ण अहिंसात्मक जीवन पद्धति का संदेश समाज को दिया, ताकि विश्व-बन्धुत्व की भावना जनता में पैदा हो सके। पाश्चात्य विद्वान बुलहर महावीर की इस उदात्त दृष्टि से बहुत प्रभावित हैं-सर्व सत्वानां हिताय सुखायास्तु'।

इस प्रकार भगवान महावीर के समय ब्राह्मण धर्म अपनी तेजस्वी प्राचीन परंपरा को थोड़े समय के लिए ही सही, विसर कर शिथिलता महसूस कर रहा था, तब जैन व बौद्ध धर्म अपने-अपने तत्वों के द्वारा लोक-हृदय में स्थान प्राप्त कर भारत के तत्कालीन इतिहास व संस्कृति में योगदान देने का प्रयास कर रहा था। जैन धर्म अनुयायियों की संख्या में विश्वास न कर उच्च चिन्तन-प्रणाली के कारण प्रचार-प्रधान न बन सका, जबकि बौद्ध धर्म मध्यम मार्ग व राज्याश्रय के कारण संपूर्ण सुविधाएं प्राप्त कर जनता में अधिक फैल गया। फलस्वरूप वह चिन्तन प्रधान कम, व्यवहार-प्रधान विशेष बन सका। वैसे बौद्ध धर्म ने भी प्राचीन भारतीय संस्कृति में महत्वपूर्ण योगदान देकर महत्ता प्राप्त की थी। लेकिन आज बौद्ध धर्म भारत में ही जन्म लेकर विकसित होने पर भी विद्वानों से उसे पूरा पूरा न्याय मिला और प्रसिद्धि भी मिली, जबकि जैन धर्म मानव-हित-प्रधान आदर्श व व्यवहारलक्षी, विशिष्ट चिन्तन प्रणाली युक्त होने से ब्राह्मण व बौद्ध धर्म के विशाल अनुयायियों की तुलना में अत्यन्त कम होने पर भी जीवन्त हैं। अहिंसात्मक दृष्टिकोण व तीर्थंकरों के उपदेश में उसकी अडिग निष्ठा हैं। शायद अनुयायियों की अल्प संख्या के कारण नीति-नियमों का

---

1. डा० सी. जे. शाह, उत्तरभारत में जैनधर्म, पृ० 25.
2. श्री सी. जे. शाह, उत्तरभारत में जैनधर्म, पृ० 5.

पालन तत्परता और आस्था के साथ हो सका है। पाश्चात्य विद्वान् शार्पैन्टियर के विचार से 'जैन धर्म के मूल सिद्धान्तों को दृढ़ता से पकड़ रखने में छोटी-सी जैन जाति की पुराण-प्रियता उसका मजबूत साधन हो गया।' यह तो विषयान्तर हुआ, लेकिन कहने का प्रयोजन यह है कि इतने महत्वपूर्ण धर्म को भारत के इतिहास में न राजकीय दृष्टिकोण से अगत्यता प्राप्त हुई, न विद्वानों से उचित सम्मान एवं न्याय मिल पाया। श्री सी॰ जे॰ शाह ने अपने विचार व्यक्त करते हुए स्पष्ट लिखा है कि 'बहुत-सी बातों से सिद्ध किया जा सकता है कि बौद्ध धर्म जैन धर्म का समकालीन बन्धु धर्म है और आज वह हिन्दुस्तान की सरहद से प्राय: अदृश्य हो चुका है, फिर भी विद्वानों से उचित न्याय प्राप्त कर सका है। जबकि जैन धर्म अब तक टिक सका है, इतना ही नहीं, वह इस विशाल देश की संस्कृति और राजकीय व आर्थिक परिस्थितियों पर जबर्दस्त प्रभाव पैदा कर सकता है, फिर भी यह योग्य न्याय प्राप्त नहीं कर सका है, यह दु:ख की बात है।'[1] श्रीमति स्टीवन्सन ने भी जैन धर्म की महत्ता व प्राचीनता पर अपने विचार इसी रूप में प्रकट किये हैं।[2] डा॰ हर्टल भी स्पष्ट रूप से लिखते हैं कि 'हिन्द की संस्कृति पर और विशेषकर हिन्द के धर्म और नीति कला और विद्या, साहित्य और भाषा पर उसने जो प्रभाव पहले डाला था और जो अभी भी डालता ही जा रहा है, वह सब समझने वाले और जैन धर्म की उपयोगिता स्वीकार करने वाले पाश्चात्य विद्वान् बहुत कम हैं।[3] क्योंकि डा॰ होपकिन्स जैसे प्रसिद्ध पाश्चात्य तत्ववेत्ता भी प्रारंभ में जैन धर्म को स्वतंत्र धर्म का महत्व न देते थे, लेकिन बाद में उसके गहन अध्ययन के बाद उसकी महत्ता महसूस की।[4] इसके विपरीत बहुत से पाश्चात्य विद्वानों ने जैन धर्म के महत्व को महसूस किया था और उसे एक स्वतंत्र धर्म की मान्यता दिलाने में और प्रचार करने में कम योगदान नहीं दिया है। इनमें जर्मन तत्ववेत्ता डा॰ हर्मन याकोबी, डा॰ बुल्हर आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है।[5] इस प्रकार जैन धर्म की महत्ता न केवल प्राचीन भारत की संस्कृति के संदर्भ में ही उल्लेखनीय है, बल्कि भगवान महावीर के समय की परिस्थितियों से लेकर वर्तमानयुगीन

---

1. श्री सी॰जे॰ शाह-उत्तर भारत में जैन धर्म, पृ॰ 3.
2. द्रष्टव्य-Mrs. stevenson-'The Heart of Jainism' Page.19.
3. द्रष्टव्य-Mr. Hertel, 'On the literature of the Svetambars of Gujrat,' page. 1.
4. द्रष्टव्य-C.C. Shah, XXiii, Page. 105.
5. द्रष्टव्य-डा॰ सी जे शाह-उत्तरभारत में जैन धर्म, पृ॰11.

वातावरण में भी अहिंसा, अपरिग्रह, सत्य, समानता व अनेकान्तवाद जैसे कल्याणकारी तत्वों के कारण स्वीकार्य होनी चाहिए।

महावीर की 'महावीरता':

जैन धर्म व समाज के लिए भगवान महावीर एक ऐसी अनन्य उपलब्धि रहे हैं कि जिन्होंने अनेकविध प्रयत्नों से जैन धर्म को एक नया जीवन्त रूप प्रदान किया, फलस्वरूप उनके उपरान्त भी जैन धर्म अक्षुण्ण रूप से प्रवाहित होता रहा। भगवान महावीर की महानता के विषय में डा० के. दामोदरन के विचार हैं कि-'श्रमण भगवान महावीर की महानता एवं विशेषता उनके इन प्रयासों में है कि उन्होंने अपने युग में जबकि ब्राह्मण धर्म अपनी पूर्व शक्ति से फैला हुआ था, तब बदलते हुए समय के अनुसार अपने पुरोगामी भगवान पार्श्वनाथ के सिद्धान्तों और मान्यताओं को परिवर्तित एवं परिवर्द्धित करके उनको पुन: स्थापित करने का भगीरथ कार्य किया।[1] महावीर ने अपने समय की धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के संदर्भ में सानुकूलता सिद्ध कर सकने वाली क्रांति का वातावरण चारों ओर निर्मित किया। महावीर को हम समानता के स्थापक के रूप में, नारी को सामाजिक व धाार्मिक महत्व देने वाले समाज सुधारक के रूप में साहित्यिक भाषा का त्याग कर लोक-भाषा में उपदेश देने वाले उपदेशक व विचारक के स्वरूप में तथा मनुष्य की संपूर्ण स्वतंत्रता स्वीकारने वाले जैन धर्म के जागृत अग्रदूत के रूप में निसंकोच मानते हैं।

समानता के स्थापक महावीर :

वैसे सभी धर्म प्रणालियों ने मनुष्य-मात्र को समान समझने का संदेश दिया है, लेकिन भगवान महावीर ने तो मानव समानता को अपने जीवन व संदेश का मूलमंत्र बना लिया था। उनके समय में मनुष्य की समानता व स्वतंत्रता का आदर्श क्षीण पड़ गया था, जिससे समाज जाति-पांति और अमीर-गरीब, ऊँच-नीच आदि वर्गों में विभक्त हो गया था। 'ब्राह्मणों को अमर्यादित अधिकार प्राप्त था, जबकि शूद्रों की दशा गुलाम जैसी ही थी। जाति-पांति के भेदभाव के कारण ब्राह्मण धर्म की मर्यादा भी सीमित बन गई थी। ब्राह्मणों और क्षत्रियों जैसे उच्च वर्गों का ही समाज में विशेष आदर था।[2] जबकि निम्न जातिवालों का दबने और पीसने के अलावा कोई रास्ता ही नहीं था। महावीर ने अपनी साधना के बारह वर्षो में भेदभाव की उस भयंकर खाई

---

1. डा० के. दामोदरन-भारतीय चिन्तन धारा-पृ० 132.
2. द्रष्टव्य-पं० दलसुख मालवणिया-जैन धर्म चिन्तन-पृ० 9.

को निकटता से देखा-परखा, तदनन्तर उस पर गंभीर मनन-मंथन कर उन्होंने घोषित किया कि मनुष्य अपने कर्मों से ऊंच-नीच बन सुख-दुःख प्राप्त करता है, जाति भेद व वर्ग भेद तो ढकोसला मात्र है । सभी मनुष्य में समान आत्मा का बसेरा होने से सुख-दुःख से सब समान मात्रा में प्रभावित होते हैं। अतः सभी का ध्येय 'मानवतावादी' होना चाहिए। सबके प्रति करुणा एवं सौहार्द से व्यवहार करना आवश्यक है। जातिवाद या सम्प्रदायवाद तो किसी भी समाज के लिए कलंकरूप है। महावीर के प्राणीमात्र के प्रति पूर्णतः अहिंसा के संदेश में समानता का ही तत्व निहित है। मानव-मानव के बीच समान व्यवहार को वे सामाजिक स्वस्थता, शुद्धता एवं विकास के लिए परमोपयोगी स्वीकारते थे। इसीलिए तो विश्व-बन्धुत्व की भावना का हार्द वे समझा पाये और इसी के आचरण पर संपूर्ण जोर दिया। महान समन्वयकारी और चिंतक महावीर की संसार को यह अनुपम देन कही जायेगी कि उन्होंने धर्म का सच्चा स्वरूप मानव-मानव की समानता एवं समताभाव के तत्व में निरूपित किया, और इसी का प्रचार-प्रसार किया। प्राणी मात्र का वे कल्याण एवं अभ्युत्थान ही चाहते थे। मनुष्य मात्र को 'आत्मवत्' समझने की विचारधारा का ही संदेश महावीर ने दिया और यही श्रमण-परम्परा की विशिष्टता है। 'दार्शनिक अव्यवस्था के भीतर व्यवस्था को तथा धार्मिक संदेहवाद के भीतर श्रद्धा की प्रकृष्ट प्रतिष्ठा करने के कारण जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म जनता के प्रिय पात्र बने।[1]

महावीर ने जैन धर्म को बोधगम्य और लोकप्रिय बनाने के लिए उसे केवल सिद्धान्तों तक सीमित न रखकर आचार प्रधान बना कर विशाल सामाजिकता तथा व्यावहारिकता का समन्वयकारी रूप प्रदान किया। अतः उन्होंने मानव-मानव के बीच प्रेम, सद्भाव एवं सहानुभूति पूर्ण सद्व्यवहार का प्रचार किया, क्योंकि समभाव की साधना ही व्यक्ति को सच्चा श्रमण बना सकती है। महावीर ने मनुष्य की समानता पर किसी जाति, वाद, धर्म या सम्प्रदाय का 'लेबील' (Label) नहीं चिपकाया, सभी के लिए उनके द्वार खुले थे। सामाजिक चेतना को जागृत करने के लिए उन्होंने मानव-महिमा तक पूर्ण अहिंसा का जो जोरदार समर्थन किया वह उनकी अनुपम उदार दृष्टि का परिचायक है। धर्म और दर्शन का वैज्ञानिक स्वरूप सदा स्वीकार्य होना चाहिए, ऐसा उन्होंने चिन्तन कर प्रतिपादित किया। क्योंकि सामाजिकता तथा मानवीयता के परे धर्म का अस्तित्व ठोस नहीं हो सकता और समानता की स्थापना के

1. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास-सं० डा० राजबली पांडेय, द्वितीय खण्ड-द्वितीय अध्याय-जैनधर्म-पृ० 439

बिना मानवीयता प्राप्त नहीं हो सकती। इस विचारधारा ने 'सामान्य' जन समाज को काफी हद तक प्रभावित किया।[1]

मनुष्यत्व में ईश्वरत्व की स्थापना करनेवाले भगवान महावीर :

महावीर ने कितने वर्षो के तीव्र मनोमंथन के परिपाक स्वरूप अपनी उदार विचारधारा के द्वारा न केवल सामाजिक क्रांति उपस्थित कर सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित किया, बल्कि साथ ही ईश्वर के अस्तित्व को नकार कर मानव की संपूर्ण स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार किया, क्योंकि न कोई किसी का दास है न कोई किसी का स्वामी। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर पूर्ण ज्योतिस्वरूप आत्मा का निवास है। इसलिए सभी आत्माएं स्वतंत्र है लेकिन कर्मों के कारण सभी के सुख-दु:ख की स्थिति भिन्न-भिन्न है। महावीर ने ही सर्वप्रथम मानव की व्यक्तिगत स्वतंत्रता के साथ उसकी सामाजिक समानता का समन्वय किया। प्रभु महावीर ने यही महामन्त्र दिया कि मानव स्वयं अपना मित्र-दुश्मन हैं। बंधन से मुक्त होना उसी के हाथ में हैं। बुरे कर्मो का त्याग कर सत्कर्मो के प्रति जीव की गति हो जाने से वेदना और दु:खो का क्षय स्वत: हो जाता है और फलस्वरूप मनुष्य शांति व सुख प्राप्त कर सकता है। इसके लिए मनुष्य को माया-मोह, राग-द्वेषादि से मुक्त होने का प्रयास करना चाहिए। परिग्रहों को कम करके इन्द्रियों का यथाशक्य निग्रह (Control) करना पड़ता है। उन्होंने व्यक्ति की शक्ति के अनुसार व्यक्तिगत साधना के मार्ग से मोक्ष की सच्ची राह बताई। व्यक्ति की योग्यता को ही महावीर ने दृष्टि बिंदु में रखकर घोषित किया कि मानव अपने ही सद्-प्रयासों से उच्चतम विकास प्राप्त कर सकता है। प्रत्येक आत्मा स्वकर्मो का नाश करके सिद्धलोक में सिद्ध पद की प्राप्ति की क्षमता रखता है, क्योंकि आत्मा तो स्वयं प्रकाशी ब्रह्म का अंश है। उस पर माया-मोह, राग-द्वेषादि के पड़े हुए रंगीन पर्दे को चीरने से वह परम प्रकाश मनुष्य के हृदय और मस्तिष्क में फैल जाता है और मनुष्य दिव्य गति को प्राप्त कर सकता है। मनुष्यत्व में हर संपूर्णता का तत्व देखने की विचारधारा महावीर

---

1. देखें–हर्मन जेकोबी का जैन धर्म पर लेख–(ई. आर. ई) डा॰ सुरेन्द्रनाथ दासगुप्ता के 'भारतीय दर्शन का इतिहास', भाग 1, पृ॰ 182 से साभार उद्धृत–अनु. कलानाथ शास्त्री, (अहिंसा अथवा किसी भी जीव की 'किसी भी प्रकार हिंसा न हो पाए' इस सिद्धान्त को निभाने में पराकाष्टा की सतर्कता भिक्षुओं के जीवन में पूरी तरह, अपनी अंतिम हद तक, क्रियान्वित की जाती है। सामान्य जनजीवन को इसी ने बड़ी हद तक प्रभावित किया है। +++ किसी भी जीव की हिंसा न करने के इस सिद्धान्त ने उन्हें कृषि जैसे उद्योगों से हटाकर केवल वाणिज्य तक सीमित रख दिया है।'')

की सबसे बड़ी सिद्धि-उपलब्धि कही जाएगी तथा प्रजातंत्रात्मकता का बीज भी इसी में देखा जा सकता है। मानव की समानता व स्वतंत्रता को स्वीकार कर उसे 'मोक्षपद' का अधिकारी घोषित किया।

मानव-स्वतंत्रता के संदर्भ में ही उन्होंने ईश्वर के अस्तित्व को नहीं स्वीकारा है। वेदान्त, सांख्य और अन्य हिंदू दर्शन प्रणाली में ईश्वर के अस्तित्व और उसकी संपूर्ण सत्ता को स्वीकार कर विश्व-संचालक के रूप में उसकी परिकल्पना की गई है। जैसे कोई राजा अपनी प्रजा का पालन-पोषण, रक्षा एवं न्याय-दण्ड देता है, उसी प्रकार ईश्वर भी इस सृष्टि की संरचना कर पालन करता है। जबकि जैन धर्म एवं बौद्ध धर्म ईश्वर नामक तत्व या सत्ता को स्वीकारते ही नहीं, उसके अनुसार 'विश्व आदि और अनन्त है। लोक वह स्थान है, जहां अच्छे और बुरे कार्यो के परिणाम स्वरूप सुख और दु:ख का भोग या अनुभव होता है। ईश्वर की सत्ता स्वीकार्य ही नहीं होती।[1] यह भिन्न बात है कि उनके अनुयायी महावीर-बुद्ध को ईश्वर समकक्ष मान कर उनकी पूजा-भक्ति करते हैं। लेकिन मेरे विचार से जैन दर्शन में एक विशिष्टता दृष्टिगत होती है कि महावीर को अलौकिक शक्तिशाली ईश्वर के रूप में नहीं, लेकिन धर्म रूपी तीर्थ को बांधने वाले तीर्थंकर स्वीकार कर श्रद्धापूर्वक भक्ति करते हैं और उनकी तरह हर मनुष्य स्वयं अपना भाग्य निर्माता बनकर मोक्ष का अधिकारी होने की अभिलाषा से उनके प्रति श्रद्धा व विश्वास व्यक्त करते हैं।

महावीर ने विश्व की प्रकृति स्वधर्म अनुप्राणित एवं स्व-निर्मित मानी है। आज का वैज्ञानिक दृष्टिकोण (विकास) भी यही सिद्ध करता है। जगत का यह चक्र-काल, स्वभाव, नियति, कर्म एवं पुरुषार्थ के पांच तत्वों से ही चलता है। अनादिकाल से यह चक्र स्वत: ही चलता आया है। इसकी उत्पत्ति के आदि कारण के लिए कोई ईश्वरत्व की महत्ता नहीं स्वीकारते। इसी तरह जगत के स्व-निर्माण की भांति 'मनुष्य ईश्वर का बनाया हुआ न होकर तत्वों से निर्मित स्वतंत्र अस्तित्व है।'[2] 'मनुष्य के विकास की उच्चतम कल्पना का नाम ही ईश्वरत्व है।'[3]

---

1. देखें-डा० सुरेन्द्रनाथ दासगुप्ता-भारतीय दर्शन का इतिहास, पृ० 207, अध्याय-1, जैन दर्शन, अनु. कलाधर शास्त्री
   पं० दलसुख मालवणिया कृत-जैनधर्म चिन्तन-पृ० 132-234
2. द्रष्टव्य : (1) Dr. C.R. Jain 'what is Jainism?' Page 5.
   (2) The fundamental principal of Jainism is that 'Man is a spiritual beings'. H.L. Zeveri ' The first principals of Jain Philosophy', London, 1970.
3. दिनकर जी–साहित्यमुखी-पृ० 6.

इस प्रकार ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार कर मानव की पूर्ण स्वतंत्रता को स्वीकार करने के साथ ही मनुष्य की व्यक्तिगत चेतना को जागृत करने के लिए महावीर ने कर्मवाद का सिद्धान्त दिया, ताकि मनुष्य के भीतर आलसवृत्ति या प्रमाद पैदा न हो और सत्कर्मों के प्रति निरन्तर ध्यान बना रहे। निरन्तर सद् प्रयासों से ही सुख प्राप्त हो सकता है, अकर्मण्य बनकर मनुष्य आत्मा के प्रकाश को प्राप्त नहीं कर पाता। व्यक्तिगत साधना के साथ सामाजिक उत्तरदायित्व को निभाते हुए प्राणीमात्र के कल्याण के लिए निरन्तर गतिशील रहना ही प्रत्येक मनुष्य का पवित्र कर्तव्य होने पर महावीर ने जोर दिया। इस प्रकार भगवान महावीर ने ईश्वर की कल्पना के स्थान पर मानव-महत्ता स्थापित करते हुए कर्मवाद की आवश्यकता को प्रतिपादित किया था।

नारी को समानाधिकार देने वाले युगदृष्टा महावीर :

महावीर के समय में जैसे ऊपर चर्चा की जा चुकी है कि नारी और शूद्रों को कोई अधिकार ही प्राप्त नहीं थे। नारी का प्राचीन वैदिक कालीन गौरवपूर्ण स्थान समाप्त हो चुका था और वह चारदीवारी में बंधकर रह गई थी। उसे सामाजिक, आर्थिक या धार्मिक क्षेत्र में किसी प्रकार के अधिकार प्राप्त नहीं थे। महावीर ने नारी को पुरुष के समकक्ष महत्व प्रदान किया और उसे सामाजिक तथा धार्मिक कार्यों में समानता का अधिकार देकर उनका उद्धार किया। उन्होंने ही सर्वप्रथम नारी को प्रवज्या देने का श्लाघनीय कार्य किया। इसका प्रभाव अन्य धर्मों पर भी पड़ना स्वाभाविक है। समाज की महत्वपूर्ण ईकाई होने के नाते नारी को भी पुरुष की तरह आत्मविकास की संपूर्ण सुविधा उपलब्ध होनी चाहिए। महावीर के युग में नारी को दीक्षित होने की महत्ता तो दूर की बात, उसे धार्मिक आचार-विचार-व्यवहार की स्वतंत्रता भी प्राप्त नहीं थी। महावीर ने सर्वप्रथम उन्हें सभी अधिकारों से संपन्न कर दिया। भगवान बुद्ध तक नारी को दीक्षा देने के लिए प्रारंभ में झिझकते थे, लेकिन महावीर ने साध्वियों को अपने चतुर्विध संघ का एक महत्वपूर्ण अंग माना और उसे मुक्ति की अधिकारिणी समझा।

लोकभाषा के अध्येता महावीर :

प्राचीन भारत में जब ब्राह्मण धर्म वर्चस्व में था, तब साहित्यिक भाषा के रूप में संस्कृत को भी गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था। उसी संस्कृत भाषा में धार्मिक एवं ललित साहित्य का निर्माण होता था। वह सामान्य जनता से हटकर विद्वानों एवं शिक्षित जनता तक सीमित रह गई थी और सामान्य जनता में पाली व प्राकृत भाषा का ही प्रचलन था। लोक बोली के रूप में पाली विकसित हो

चुकी थी। शिक्षा का प्रसार केवल उच्च वर्ग तक सीमित था। भगवान महावीर ने ही सर्वप्रथम लोक शिक्षण का कार्य प्रारंभ किया तथा उसके माधयम से जनता में जागृति का घोष भर दिया। लोक-शिक्षण के लिए उन्होंने लोक में व्यवहृत प्राकृत भाषा को ही माध्यम के रूप में स्वीकारना उचित समझा और उसी में उन्होंने अपने उपदेश भी दिए। अपने धर्म के फैलावे के लिए जनता की भाषा ही सर्वश्रेष्ठ साधन सिद्ध हो सकती है, अतः महावीर ने अर्धमागधी प्राकृत में ही बोधगम्य व रोचक शैली में उपदेश दिए। समाज की चेतना को उद्बुद्ध करने के लिए संस्कृत का मोह त्यागकर लोकभाषा को स्वीकारने में महावीर की व्यवहारिकता का दर्शन होता है। उन्होंने लोकभाषा में उपदेश देकर भाषा के उन्माद पर तीव्र प्रहार किया।[1] इसे धार्मिक व साहित्यिक क्षेत्र में भाषाकीय क्रांति का एक नूतन रूप ही समझा जायेगा। लोकभाषा में लोक-शिक्षण का प्रारंभ कर महावीर ने जैन धर्म की ओर श्रद्धान्वित जनता को जैन धर्म में दीक्षित करने का भगीरथ कार्य आसानी से किया। जन-भाषा में ही महावीर ने धर्म-सूत्रों की व्याख्या की तथा उनके मोक्ष के उपरान्त प्राकृत में ही जैन आगम-ग्रथों की रचना की गई थी। महावीर और उनके प्रमुख विद्वान शिष्यों ने परख लिया था कि जन-भाषा में ही चेतना एवं शक्ति के साथ तादात्म्य भाव स्थापित करने की विशिष्टता निहित होती है। इस प्रकार भगवान महावीर अपने युग में लोकभाषा के उद्धारक व अध्येता के रूप में प्रसिद्ध हुए।

जैन-धर्म के प्रमुख तत्व :

यहां हमारा प्रयोजन न कोई दार्शनिक तत्वों का विश्लेषण करना है, न ही जैन धर्म की आध्यात्मिक विचारधारा की गहराई में जाने का ही है। जैन धर्म के प्रमुख धार्मिक सिद्धान्तों को देखने की आवश्यकता महसूस होती है, क्योंकि प्राचीन या अर्वाचीन पूरा जैन-साहित्य इन्हीं आधारभूत तत्वों की भूमि पर ही रचा गया है। जैन धर्म के तीर्थंकरों, मनीषियों, तत्वचिंतकों और शास्त्रकारों ने दार्शनिक विचारधारा स्वीकृत की है, तथा चिन्तन-मनन द्वारा इसके मूल तत्वों का प्रतिपादन किया है, उन्हीं के आलोक में हमें आधुनिक जैन-साहित्य का आकलन करना है। इसी उद्देश्य से हम यहां संक्षेप में उन तत्वों पर विचार करना समीचीन समझते हैं। जैन धर्म के मनीषियों द्वारा विवेचित व निर्धारित तत्वों को जैन समाज श्रद्धा व आदर की दृष्टि से देखता है तथा उन्हें अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करता है। इन प्रमुख तत्वों को आधार या प्रेरणा बनाकर रचे गये साहित्य में समाज को उपदेश के साथ आनंद प्रदान

1. द्रष्टव्य-उत्तरांग सूत्र-6/10.

करने का हेतु भी दृष्टिगत होता है। आधुनिक हिन्दी जैन-साहित्य में इन प्रमुख तत्वों का विनियोजन कहां तक हो पाया है, इसका निरीक्षण करना युक्ति युक्त प्रतीत होता है। अत: इन तत्वों पर संक्षेप में विचार करना अनुपयुक्त नहीं होगा। जैन धर्म के प्रमुख तत्वों की विवेचना करने से पूर्व जैन शब्द की उत्पत्ति पर थोड़ा विचार कर लेना अप्रासंगिक नहीं होगा।

'जैन' शब्द की व्युत्पत्ति :

'जैन' शब्द मूलत: 'जिन' पर से आया है, अर्थात् जिन्होंने इन्द्रियों को जीत लिया है, वह 'जिन' और उनके अनुयायी 'जैन' या 'जैनी' कहलाते हैं। संस्कृत ग्रंथ 'शब्दकल्पदुम' में 'जिन' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार दी गई है-'जिन: (पु) (जयतीति, जि+हेंण विण जोतिउणाम्।3/2 इति नल) अहेत्। बृद्ध: विष्णु:। इति हेमचन्द्र 2/30।[1] इस प्राचीन बृहद् संस्कृत ग्रंथ में 'जैन' शब्द के विषय में विविध परिभाषाएं दी गई है। 'जैन', 'जिन' और 'जितेन्द्रिय' शब्द के विषय में लिखा हुआ मिलता है कि 'जैन: (पु) जिन एव यद्धा जिन उपास्य देवतास्येति। जिन+अण्। जिनोपासक:। बौद्ध (इति इलगयुघ:)' 'जिन' के लिए 'त्रि' (जनानी वशीकृतानी इन्द्रियाणी श्रोता विनियोना) वशीकृते इन्द्रिया तत् पर्याय: शान्त: शान्त: 3, इति हेम-चन्द्र:।। यथा शब्द चिन्तामणी घृतवचनम्। न हृष्यत्वि ग्लायति वा स विज्ञैयो जितेन्द्रिय:। 'जिन: धर्मक्षेत्र अस्मिन् भारत वर्षे प्रचलितेषु विविघेषु धर्मेषु जिन धर्म एव श्रेष्ठतम इति जैन: प्रवदन्ति। एक एषामुपास्य देवता जिन:। तेनु श्वेताम्बर दिगम्बर भेदेन द्विविधा:। श्वेताम्बरास्तु प्रायश: आश्रमिण: अधुना नाना शाखासु विभक्ता: संभवत्। दिगम्बरास्तु प्रायशो: निर्ग्रन्था:। ऐतेषा' यन्मत् तत् सर्वदर्शन संग्रहात् प्रदर्श्यत।।"[2]

डा० चतुर्धर शर्मा 'जिन' और 'जैन' शब्द को **परिभाषित करते** हुए लिखते हैं-The word 'Jainism' is derived from 'Jaina' **which** means 'Conquerer' one who has conquered his passions **and desires.** It is applied to the libereted souls who have conquered passions and desires and `karams' and obtained emencipation[3].

ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र्य के त्रि-रत्न द्वारा अपने मन व इंद्रियों को जिसने जीत लिया हो, ऐसे जितेन्द्रिय तीर्थंकर के उपदेशों का श्रद्धापूर्वक अनुसरण करनेवाले अनुयायियों को 'जैन' कहा जाता है। इन्हीं अनुयायियों द्वारा अपनाये गये धर्म को 'जैन' धर्म कहा जाता है।

1. द्रष्टव्य-शब्दकल्पद्रुम-पृ० 535.
2. द्रष्टव्य-शब्दकल्पद्रुम-पृ० 543.
3. Dr. C.D. Sharma, 'A Critical Survey of Indian Philosophy', Page-48.

'हिन्दी विश्व कोश' में 'जैन' शब्द की इस प्रकार व्याख्या मिलती है- 'जैन' अर्थात् कर्मों का नाश करनेवाले 'जिन' भगवान के अनुयायी। जैन मान्यता के अनुसार जैन धर्म अनादिकाल से चला आया है और अनन्तकाल तक चलता रहेगा। इस धर्म का प्रचार करने के लिए समय-समय पर अनेक तीर्थंकरों का आविर्भाव होता रहता है।[1]

'जैन' व 'जिन' शब्द की व्युत्पत्ति एवं परिभाषा के संक्षिप्त विवेचन के उपरान्त यदि 'तीर्थंकर' शब्द पर भी विचार कर लिया जाय तो और भी अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि जैन धर्म में तीर्थंकरों ने अपने गूढ़ चिन्तन-मनन से जैन को गतिशील किया है तथा उसके तत्वों की स्थापना की है।

मुनि रत्न प्रभाश्री जी ने तीर्थंकर के 'केवल ज्ञान' पर जोर देते हुए लिखा है कि-"तीर्थंकर मन:पयार्यत्व: प्राप्त करने के बाद कर्मों के बंधनों से मुक्त होने से पहले 'केवल ज्ञान' प्राप्त करते हैं, अर्थात् समय, स्थल और पदार्थ को मर्यादा के बाहर देख-परख और सोच सकते हैं। तब से वे प्रत्यक्ष और परोक्ष ज्ञान को प्राप्त कर सकते हैं, जान सकते हैं।"[2]

तीर्थंकर को 'वीतराग' भी कहा जाता है कि जिन्होंने 'रागद्वेष, लोभ, मोहमाया आदि सांसारिक कषायों से मुक्ति प्राप्त कर उन पर विजय प्राप्त किया है।[3] जैन धर्म में तीर्थंकर की महानता के विषय में प्रकाश डालते हुए डा॰ हरीश शुक्ल लिखते हैं-"जैन मान्यतानुसार सिद्ध और तीर्थंकर इस मानवता के प्रस्थापक और विकासचक्र को गति देनेवाले हैं। स्वयं की मानवता का विकास करते हुए सिद्धि लाभ करने वाले सिद्ध है। और मानवता के साथ दूसरों में मानवता जगाकर उनका सच्चा मार्गदर्शन करानेवाले तीर्थन्कर है। तीर्थंकर तीर्थों की प्रस्थापना कर प्राणीमात्र के प्रति अपने सद्‌भाव तथा सहानुभूतिमय प्रेम की वर्षा करते हुए मानवता के सार्वजनिक विकास का मार्ग प्रशस्त करते हैं।[4]

प्रसिद्ध तत्त्वचिंतक डा॰ राधाकृष्णन् जी जितेन्द्रिय वीतराग तीर्थंकर के विषय में लिखते हैं कि- "It is also applicable to all those men and

---

1. द्रष्टव्य-हिन्दी विश्वकोश-बाल 5, पृ॰ 46.
2. Heart of Jainism, P. 32 'Forward of fifteen previous 'Bhavs' Vol. I by Tatna prabhavi.
3. द्रष्टव्य-आ. श्री भद्रंकर विजयजी-श्रीधर्मासंग्रह-पृ॰ 4.
4. द्रष्टव्य-हरीश शुक्ल-जैन गुर्जर कवियों की हिन्दी कविता-पृ॰ 33 (प्रथम खण्ड-विषय प्रवेश)।

women who have conquared their lower nature and who have by means all through victory over all attachments and antipathies realised the highest."[1]

भगवान महावीर की तरह सभी तीर्थंकरों ने इंद्रियों को जीतकर मनोनिग्रह के द्वारा सम्यक् ज्ञान (Real Knowledge) सम्यक् दर्शन (Real observation) और सम्यक चरित्र्य (Real Conduct) के द्वारा 'केवल ज्ञान' प्राप्त कर संसार के सामने एक अनुपम आदर्श प्रस्तुत किया था। सबके प्रति समभाव तथा समता भाव धारण कर 'वीतराग' का सर्वोच्च बिरुद यथार्थत: पाया था।[2] राग-द्वेष से रहित होकर समभाव से मनुष्य अनन्त शक्ति प्राप्त कर सकता है। जैन धर्म के तीर्थंकरों ने अपनी सहृदयता, पवित्रता और सदुपदेश से जैन समाज को ही नहीं, पूरे भारतवर्ष को उपकृत करते हुए जैन-शासन की कीर्ति पताका फहराई।

प्रमुख तत्व :

यहां उन्हीं तत्वों की चर्चा अभिप्रेत हैं, जिन्हें साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में समाविष्ट किया है। 'जियो और जीने दो' के मूल मन्त्र पर ही जैन धर्म का महान अहिंसा-तत्व आधारित है। इसके साथ-साथ आत्म बल, आत्मनिग्रह, तपस्या, अपरिग्रह, अचौर्यत्व, अनेकान्तवाद, ब्रह्मचर्य तथा समानता के तत्वों पर जैन धर्म में विशेष महत्त्व दिया गया है। जैन दर्शन ने आत्मवाद, कर्मवाद, लोकवाद और क्रियावाद पर अधिक बल दिया है। इसलिए जैन दर्शन को 'अस्तित्ववादी' कहा जा सकता है। स्वयं भगवान महावीर ने कहा है कि-'लोक-अलोक, जीव-अजीव, धर्म-अधर्म, बन्ध-मोक्ष, पुण्य-पाप, क्रियाँ-अक्रिया नहीं है, ऐसी संज्ञा मत रखो, किन्तु ये सब हैं, ऐसी संज्ञा रखो।' ऐसी मान्यतानुसार अनेकान्तवाद को जैन धर्म में काफी महत्व मिला है। जैन विचारधारा का सौम्यदर्शन भारतीय विचार परम्परा और संस्कृति के साथ पूर्णत: तादात्म्य स्थापित कर सकता है। डा० बन्दोपाध्याय के मतानुसार "Jain philosophy is no exception to the pro-dominently spiritual out-look of traditional climate of Indian thinking. It accepts 'Mokṣa' as a goal of human life and is convienced that it is possible to attain it, but it curves out of distircitive place for it self by its strong learning to experiementism and realism".[3]

1. डा० राधाकृष्णन्-इंडियन फिलासफी-पृ० 286.
2. देखिए-आचार्य द. वा. जोग-भारतीय दर्शन संग्रह-पृ० 231 (चित्रशाला प्रकाशन-पूणे)।
3. Dr. S.P. Bandopadhyay-Jain Journal 'July-76.

भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित शाश्वत सत्यों का ह्रास आज भी नहीं हुआ है, बल्कि आधुनिक युग की परिस्थितियों के संदर्भ में इन तत्वों की उपयोगिता और महत्व और भी बढ़ गया है। विश्व आज शान्ति और अहिंसा का महत्व महसूस करने लगा है और अणु बम के डर से आक्रान्त है, तब भगवान महावीर ने तो आज से 2500 वर्ष पूर्व ही हिंसा का घोर विरोध कर अहिंसा व शांति की अनिवार्यता और महत्ता स्वीकारने का हार्दिक अनुरोध अपने समाज को किया था। आचार्य मुनि नथमल जी योग्य ही लिखते हैं कि-"भगवान महावीर के सापेक्षता, सहअस्तित्व, अहिंसा, मानवीय एकता, निःशस्त्रीकरण, स्वतंत्रता एवं अपरिग्रह के सिद्धान्त विश्वमानस में निरंतर विकसित होते जा रहे हैं।''[1] जैन विचारधारा की बहुमूल्य देन संयम है। 'एक ही साधै, सब साधै' संयम की साधना हो तो सब सध जाते हैं, नहीं तो नहीं। 'जैन विचारधारा इस तथ्य को पूर्णता का मध्यबिंदु मानकर चलती है। अहिंसा इसी की उपज है, जो 'जैन-विचारणा' की सर्वोपरि देन मानी जाती है।[2] (सव्वे पाण। सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता न हन्तवा, न अज्जा वैयव्वा न परिचेतव्वा न परियावेयव्वा न उद्देवेयव्वा। एस धम्मे सुद्धे नितिए सासए। आचारांग सूत्र-2)।

अहिंसा, सत्य और अस्तेय (अचौर्य) :

ब्राह्मण धर्म के यज्ञ-याग में होती हिंसा के विरुद्ध जैन धर्म का विकास हुआ था। जैन दर्शन का मूलभूत तत्व अहिंसा है, जिससे स्वीकार किया जाता है कि प्राणीमात्र की रक्षा करना और किसी को भी मनसा, वाचा और कर्मणा क्लेश न पहुंचाया जाय। वैसे अहिंसा के सम्बन्ध में जैन धर्म ग्रन्थों में सूक्ष्मता से चर्चा की गई है। गृहस्थों के लिए एवं विरक्त साधुओं के लिए अहिंसा के सूक्ष्म भेदोपभेद किये गये है। भगवान महावीर प्रेम, करुणा और क्षमा की साक्षात मूर्ति होने से परीक्षणकाल में उनको हिंसक पशुओं एवं अज्ञानियों के द्वारा अनेक कष्ट सहन करने पड़े, फिर भी सागर की तरह उदारमना रहकर उन्होंने क्षमादान दिया तथा समाज में अहिंसा तत्व का उपदेश दिया। अहिंसात्मक व्यवहार के कारण ही साधना की हार्दिक अनुभूति की अभिव्यक्ति को पूर्ण स्वरूप में केवल महावीर ही उपलब्ध कर सके थे, जबकि अनुभूति की पूर्णता को अनेक धार्मिक व्यक्ति प्राप्त कर सकी हैं। 'अहिंसा और मुक्ति श्रमण

1. मुनि नथमलजी-जैन दर्शन : मनन मीमांसा, पृ॰ 190.
2. मुनि नथमलजी-जैन धर्म और दर्शन, पृ॰ 126.

संस्कृति की ये दो ऐसी आलोक-रेखाएं है, जिनसे जीवन के वास्तविक मूल्यों को देखने का अवसर मिलता है।'[1]

प्राचीन ग्रंथ 'तत्वार्थवार्तिक' में भी सबके प्रति प्रेमपूर्ण अहिंसात्मक आचरण की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है, जैसे कि-'हिंसा नृतस्तेयाब्रह्म परिग्रहे भ्यो विरतिः व्रतम्। अर्थात् हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील और परिग्रहों से विरक्त होना ही व्रत है।[2] इन्हीं व्रतों का आचरण अपने दैनिक जीवन में करने का आदेश जैन धर्म देता है। प्राणीमात्र के प्रति मन, वचन और कर्म से निरुपद्रवी होना ही अहिंसा की सूक्ष्मता एवं महानता हैं। अहिंसा का विकास इन्द्रिय और मन के संयम के आधार पर ही हो सकता है। इसीलिए अहिंसा के साथ संयम को जैन धर्म काफी महत्व देता है। करुणापूर्ण व्यवहार ही अहिंसा का मार्ग प्रशस्त करता है। भगवान महावीर ने अहिंसा के साथ ही प्राणीमात्र के प्रति करुणाभाव को निरन्तर व्यक्त किया है। अहिंसात्मक करुणापूर्ण व्यवहार का संदेश देनेवाले श्रमण संस्कृति के उस युग को यदि तत्कालीन इतिहास में स्वर्णकाल कहा जाये तो भी अनुचित नहीं होगा।

कभी-कभी जैन धर्म की इस विशद् अहिंसा पद्धति एवं अहिंसापूर्ण जीवन पर लांछन लगाया जाता है कि इसी के कारण जैन धर्म ने अपने समाज को कायर और भीरु बना दिया है और पलायनवादिता का ही दूसरा नाम अहिंसा है। यह भी कहा जाता है कि जैन धर्म अहिंसा की सूक्ष्मता के कारण जगत में टिक नहीं पायेगा या तो वह राष्ट्र को गुलामी, अकर्मण्यता और दारिद्र के प्रति खींच जायेगा। यह केवल एक भ्रम मात्र है। इस प्रकार की गैर समझ के लिए जैन तत्वों की हार्दिकता एवं उच्चता का पूरा ख्याल नहीं है। 'लेकिन जैन धर्म की अहिंसा कायरों की अहिंसा नहीं हैं, वह तो वीरात्मा का आत्मबल है, जो जगत के सभी अनिष्ट बलों से उच्च होता है।'[3] वास्तव में जैन धर्म की अहिंसा, समताभाव, सहानुभूति एवं करुणायुकत व्यवहार के लिए सबको अपील करता है। अहिंसा के फलस्वरूप विश्व-बन्धुत्व की उदात्त भावना जैन धर्म ने आत्मसात् करके विश्व को उसकी पहचान दी। अहिंसा तत्व के बल पर जैन धर्म ने अपना अस्तित्व एवं महत्व बनाये रखा। अहिंसा के आदर्श ने जैन धर्म में उदारभावना के साथ शुद्ध अंतःकरण से किये गये प्रायश्चित के महत्वपूर्ण तत्व को भी स्थान दिया है। जैनों की अहिंसा में कहीं भी कायरता

---

1. द्रष्टव्य-भट्टअकलंक कृत तत्वार्थवार्तिक-पृ॰ 725.
2. आ. नथमलमुनि-जैन धर्म और दर्शन-पृ॰ 126.
3. Shri-C.J. Shah- 'Jainism in North India'- page-47.

का नाम नहीं है। यदि अहिंसा कायरता को जन्म देती तो वह भगवान महावीर को कभी ग्राह्य न होती।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और तपस्या ये प्रमुख तत्व जैन धर्म के व्यवहारिक एवं दार्शनिक पक्ष को अपने भीतर समेटते हुए हैं। अहिंसा और सत्य साधना को जीवन व्यापी बनाने का श्रेय 23वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ को है। इसकी जानकारी हमें उनके लिए प्रयुक्त 'पुरुषदायीणम्' (पुरुषदानी) विशेषण से प्राप्त होती है। जैन धर्म की यह महानता या विशेषता कहिए कि भगवान पार्श्वनाथ के समय से ही तीनों प्रकार की मानसिक, वाचिक और कायिक अहिंसा को इतना महत्व दिया गया था कि पार्श्वनाथ को ही इसको सुसम्बंधित सामाजिक स्वरूप देने का प्रयास करना पड़ा था। उन्होंने अहिंसा के लिए जड़ मान्यता को स्वीकृति नहीं दी। पार्श्वनाथ ने अहिंसा के साथ-साथ सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह के सिद्धान्त को भी जोड़ दिया, जिसके फलस्वरूप अहिंसा अब तक साधु मुनियों तक सीमित थी, वह अन्य तीन तत्वों की वजह से समाज में भी लोकाचरण के लिए स्वीकार्य हो गई। अतः सामाजिक और व्यावहारिक अहिंसा का फैलावा बढ़ गया। भगवान महावीर ने स्वयं अहिंसा के लिए कहा है कि-'तुँग न मंदराओ, आकाअसो विशालय नत्थि जंर तरें जयति नाणसु, धम्महिं सासमं नत्थि।।' अर्थात् जैसे जगत में मेरु पर्वत से ऊँचा और आकाश से विशाल और कुछ नहीं है, वैसे ही अहिंसा के समान कोई धर्म नहीं है।[1] जैन धर्म-दर्शन अपने अहिंसात्मक दृष्टिकोण के कारण तर्क के तीखे बाणों का कभी प्रयोग नहीं करता, और न ही अनेकान्त दृष्टिकोण का कवच पहनने से दूसरों के व्यंग्य या तर्क के तीखेपन से आहत होना चाहता है। जैन दर्शन में तर्क-सत्य की अपेक्षा अनुभव-सत्य को विशेष महत्व दिया जाता है। तर्क-व्यवहार की भूमिका उपकरण है, सत्य और अहिंसा वास्तविकता की गहराई में जाकर साध्य बन जाता है। इसीलिए जैन दर्शन कोरा दर्शन मात्र न होकर दर्शनों का समुच्चय है। एक बात अवश्य सिद्ध हो चुकी है कि अहिंसा कायरता को पैदा नहीं करती, बल्कि तेजस्विता को आविर्भूत करती है। इस संबध में मुनि नथमल जी का कहना उचित ही है कि 'जैन धर्म के अहिंसा सिद्धान्त ने भारत को कायर बनाया, यह सत्य से बहुत दूर है। अहिंसक कभी कायर नहीं होता। (राष्ट्रपिता पू० गांधी जी के दृष्टान्त से हम भलीभांति परिचित हैं) यह कायरता और उसके परिणाम स्वरूप परतंत्रता हिंसा के उत्कर्ष से,

1. द्रष्टव्य : डा० भागचन्दस्वरूप-'जैन साहित्य का स्वरूप' शीर्षकस्थ लेख-'वीरपरिनिर्वाण' पत्रिका, पृ० 11, जून 77 अंक 1, 2.

आपसी वैमनस्य से आई और तब आई जब जैन धर्म के प्रभाव से भारतीय मानस दूर रहा।'[1] इतिहास इसकी साक्षी भी देता है कि महावीर, बुद्ध और गांधी सच्चे अहिंसक थे, लेकिन उनकी भीतरी शक्ति, उच्चतम विचारधारा एवं महान कार्य को देखकर उनकी अहिंसा को कायरता कहने की कल्पना तक न की जाय। जैन दर्शन की जीवंत और व्यवहारिक अहिंसा के संदर्भ में 'हिन्दी विश्वकोष' में बताया गया है कि-'जैन धर्म में अहिंसा को परम धर्म माना गया है। सब जीव जीना चाहते है, मरना कोई नहीं चाहता। अतएव इस धर्म में प्राणी वध के त्याग का सर्वप्रथम उपदेश है। केवल प्राणों का ही वध नहीं, बल्कि दूसरों को पीड़ा पहुंचाने वाले असत्य भाषण को भी हिंसा का एक अंग बतलाया है। महावीर ने अपने भिक्षुओं को उपदेश देते हुए कहा है कि-'उन्हें बोलते-चलते, उठते-बैठते, सोते और खाते-पीते सदा यत्नशील रहना चाहिए। अयत्नाचार कामभोगों में आसक्ति ही हिंसा है। इसलिए विकारों पर विजय पाना, इंद्रियों का दमन करना और अपनी समस्त वृत्तियों को संकुचित करने को जैन धर्म में सच्ची अहिंसा बताया है।[2]

अहिंसा के समान ही सत्य और अपरिग्रह के व्रत को जैन दर्शन में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। सत्य तो सर्व स्वीकृत सिद्धान्त है सभी धर्मों की दर्शन प्रणालियों में। इसी एक तत्व को अपनाने से हम अनेक अनर्थों से बच सकते हैं, यह जानते हुए भी मनुष्य इसे पूर्ण रूप से अपना नहीं पाता है, तब कर्मों की 'निर्जरा' (पूर्वोपार्जित कर्मों का क्षय) के लिए प्रायश्चित करना पड़ता है। अपरिग्रह के व्रत से इंसान को बाह्य एवं आत्मिक शान्ति तो प्राप्त होती ही है लेकिन अनावश्यक परिग्रह से बचने से संतोष रूप महान धन प्राप्त होता है। आज की परिस्थितियों के संदर्भ में तो परिग्रह से नितान्त बचना आवश्यक प्रतीत होता है। आत्मिक शांति प्राप्त होने से ही मनुष्य आध्यात्मिक विकास कर सकता है। महात्मा गांधी जी जैन धर्म के अहिंसा, सत्य और अपरिग्रह के सिद्धान्त से काफी प्रभावित थे और उनको अपने जीवन में अपनाकर इन तत्वों की महिमा चरितार्थ की।

अनेकान्तवाद :

अहिंसा की तरह अनेकान्तवाद जैन दर्शन की विशेषता व्यंजित करता है। जैन धर्म सबके साथ समान दृष्टिकोण रखते हुए भी अपना स्वतंत्र अस्तित्व लिये हुए है। व्यष्टि और समष्टि को देखने-परखने का उसका निजी दृष्टिकोण

1. मुनिनथमल जी-जैन दर्शन : मनन मीमांसा, पृ॰ 107.
2. हिन्दी विश्वकोष-भाग 5, पृ॰ 46

है। विश्व को सही अर्थ में तोलने की उसकी दृष्टि वेदान्त, सांख्य, बौद्ध और अन्य दार्शनिक धाराओं से भिन्न होते हुए भी किसी का भी अनादर या तिरस्कार नहीं करता। अन्य विचारधारा के अच्छे तत्वों को ग्रहण कर उन्हें समझने की तथा अपने अच्छे तत्वों को समझाने की जैन धर्म में सदैव चेष्टा की जाती है और यही स्याद्वाद की भूमिका है। जैन दर्शन यही स्वीकार करता है कि विश्व की अनेकता में एकता का मूल दर्शन छिपा है। इसलिए उसका दृष्टिकोण न पूर्णतः अद्वैतवादी है, न द्वैतवादी। जैन मुनि नथमल जी स्याद्वाद की परिभाषा करते हुए लिखते हैं कि-'भेद में अभेद और अभेद में भेद का स्वीकार स्याद्वाद का एक अंग है।+++ भगवान महावीर की अनेकान्त दृष्टि और स्याद्वादी निरूपण शैली का मुख्य प्रयोजन है, सत्य के प्रति अन्याय करने की मनोवृत्ति का विसर्जन करना। स्याद्वाद एक अनुरोध है उन सबसे, जो सत्य को एकांगी दृष्टि से देखते हैं और आग्रह की भाषा में उसकी व्याख्या करते हैं।+++ एकांगिता सत्य को मान्य नहीं होती तो फिर किसी संप्रदाय को क्यों होना चाहिए?[1] स्याद्वाद के सम्बन्ध में बहुत से विद्वानों ने अपने-अपने ग्रन्थों में विस्तार से लिखा है, लेकिन यहां उनके लिए न आवश्यकता है न औचित्य। केवल एक या दो प्रमुख विचारधारा जान लेने से भी स्याद्वाद की विशेषता स्पष्ट हो जाती है। 'हिन्दी विश्वकोष' में लिखा गया है कि-'अनेकान्तवाद जैन धर्म का मूल्य सिद्धान्त है। इसे अहिंसा का ही व्यापक रूप समझना चाहिए। राग द्वेष जन्य संस्कारों के वशीभूत न होकर दूसरे के दृष्टि-बिन्दु को ठीक-ठीक समझने का नाम अनेकान्तवाद है। इससे मनुष्य सत्य के निकट पहुँच सकता है। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी भी मत या सिद्धान्त को पूर्ण रूप से सत्य नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक मत अपनी अपनी परिस्थितियों और समस्याओं को लेकर उद्भूत हुआ है। अतएव प्रत्येक मत को अपनी-अपनी विशेषताएं है। अनेकान्तवादी इन सबका समन्वय करके आगे बढ़ता है। आगे चलकर जब इस सिद्धान्त को तार्किक रूप दिया गया तो वह 'स्याद्वाद' के नाम से कहा जाने लगा।'[2]

जैन दर्शन में अनेकता के बीच एकता और एकता के भीतर बहुलता का समन्वय स्वीकृत है, चाहे वह धर्म, समाज या व्यक्ति किसी से भी संबधित क्यों न हो। प्रसिद्ध विद्वान डा० हीरालाल जैन का यह कथन इस संदर्भ में सर्वथा उपयुक्त है कि 'भिन्न-भिन्न धर्मों के विरोधी मतों और सिद्धान्तों के बीच यह

1. आ. मुनि नथमल जी : बीज और बरगद-पृ० 10, 19.
2. हिन्दी विश्वकोष-भाग-5, पृ० 47.

धर्म अपने स्याद्वाद नय (अनेकान्तवाद) के द्वारा सामंजस्य उपस्थित कर देता है। यह भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति में सब जीवों के लिए समान अधिकार का पक्षपाती है तथा सांसारिक लाभों के लिए होने वाले कलह और विद्वेष को उसने पारलौकिक सुख की श्रेष्ठता द्वारा मिटाने का प्रयत्न किया है। जैन धर्म की यह विशेषता केवल सिद्धान्तों में ही सीमित नहीं रहीं। जैनाचार्यों ने ऊँच-नीच, जाति-पांति का भेद न करके अपना उदार उपदेश सब मनुष्यों को सुनाया तथा 'अहिंसा परमोधर्म' के महामंत्र द्वारा उन्हें इतर प्राणियों की रक्षा के लिए तत्पर बना दिया।[1]

जैन धर्म किसी भी विषय में पूर्वाग्रह नहीं रखता। सबके साथ सहयोग एवं सहानुभूति रखता हुआ अपने तत्वों का स्पष्टीकरण करता है। महावीर के लिए जैन ग्रन्थों में 'निर्ग्रन्थी' विशेषण उनकी ग्रन्थिहीनता का सूचन करता है। प्रसिद्ध जर्मन विद्धान एवं जैन तत्वों के व्याख्याता डा॰ हर्मन जेकोबी का यही मानना है कि-'निर्ग्रन्थी' विशेषण से स्वयं महावीर एवं जैन धर्म की निर्ग्रन्थता स्पष्ट होती है। और 'निर्ग्रन्थिता'[2] बिना अनेकान्तवाद संभव नहीं होता। जैन दर्शन अपनी इसी विशेष विचारधारा से सबके साथ समन्वय करता हुआ भी अपना सत्व, अस्तित्व टिका पाया है। 'वीर शासन की (जैन शासन की) यह एक विशेष देन है, जो संसार के दर्शन शास्त्रों में और विचारधाराओं में अपना अद्वितीय स्थान रखती है, वह है स्याद्वाद या अनेकान्तवाद।'[3]

जैन धर्म की दार्शनिक पृष्ठभूमि जितनी प्रवृत्तियों पर स्थित है, उतनी ही संयम और तपश्चर्या के द्वारा आत्मिक भी है। आत्मा की गहराई में जाने का प्रयत्न ही अध्यात्म है। जैन दर्शन अनेकान्तवादी होने के कारण अपने साथी धर्मों के अच्छे तत्वों को बेझिझक स्वीकार करता है और इसमें उसकी सत्यहीनता या अल्पता प्रकट न होकर समन्वयवृत्ति और उदात्त दृष्टिकोण ही प्रतीत होता है। 'संक्षेप में स्याद्वाद जैन तत्वज्ञान का अद्वितीय लक्षण है। जैन बुद्धिमत्ता का इससे अधिक सुंदर, शुद्ध और विस्तीर्ण दृष्टांत दिया नहीं जा सकता। जैन सिद्धान्त की इस शोध का श्रेय भगवान महावीर को ही दिया जाता है।[4] 'जैन परम्परा में साम्य दृष्टि-आचार और विचार दोनों में व्यक्त हुई है। आचार-साम्य दृष्टि ने ही सूक्ष्म अहिंसा मंत्र को जन्म दिया और विचार साम्य-

---

1. डा॰ हीरालाल जैन-ऐतिहासिक काव्य-संग्रह की भूमिका, पृ॰ 13.
2. निग्रन्र्थता-ग्रन्थिहीनता।
3. साहू शांतिप्रसाद जैन : 'अनेकान्त'-द्विमासिक, फरवरी।
4. डा॰ बेलवेलकर-Op.Cit., Page 114.

दृष्टि की भावना ने ही अनेकान्तवाद को जन्म दिया।'[1] इस प्रकार अनेकान्तवाद जैन धर्म में अपनी समन्वयकारिता के कारण महत्वपूर्ण सिद्धांत माना गया है।

ब्रह्मचर्य और तप :

जीवन-साधना के लिए तप और ब्रह्मचर्य का साधन अपनाकर व्यक्ति अध्यात्म की उच्च श्रेणी तक पहुंच सकता है, ऐसा जैन दर्शन का विश्वास है। ब्रह्मचर्य के द्वारा ही जीवन में पवित्रता एवं अहिंसा की अवैर साधना साधी जा सकती है। ब्रह्मचर्य के तेज एवं तप:पूतता के बिना जीवन-विकास संभव नहीं हो पाता है। स्वयं भगवान महावीर ने इन दोनों तत्व पर जोर देकर स्वीकारा था। जैन दर्शन में तप को अहिंसा, समन्वयकारिता, मैत्री और क्षमा के स्वरूप में मान्यता मिली है। इसमें ज्ञानपूर्ण समताभाव के लिए तप को सर्वग्राही स्वीकारा गया है। लेकिन अज्ञानपूर्ण तप का समर्थन कभी नहीं किया गया। तपस्या के कारण ही मनुष्य शारीरिक एवं मानसिक संयम प्राप्त कर सकता है। तप के द्वारा इंद्रियों के संयम एवं विहारों के शमन के बाद मनुष्य आत्म पहचान प्राप्त कर सकता है। जैन धर्म में बाह्य तपस्या के साथ-साथ आंतरिक तपश्चर्या—मनोनिग्रह और मनशुद्धि पर भी अत्यंत जोर दिया गया है क्योंकि केवल बाह्य तप जड़ क्रियावाद भी हो सकता है। जबकि आन्तरिक शुद्धता व जागृति से किया गया तप प्रकाश का मार्गदर्शक बनता है।

जैन संस्कृति व्रात्यों की संस्कृति है। तप को महत्व देने के लिए जैन व्रतों की आराधना उत्साहपूर्वक की जाती है। 'व्रत' शब्द का मूल अर्थ ही यही है-संयम और संवर, इंद्रियों का संयम तथा पाप कर्मों की संवारणा यही तो तपश्चर्या की उपलब्धि कही जायेगी। आत्मा की संनिद्धता एवं बाह्य जगत् के प्रति अनासक्ति के द्वारा तप की वृद्धि होती है। जैन दर्शन में प्रयुक्त 'निर्ग्रन्थ' और 'जैन' शब्द ही क्रमश: 'अपरिग्रह' और 'कषाय विजय' का अर्थसूचक है, जो तप की निष्ठापूर्वक आराधना के बिना संभव नहीं होता। जैनों की उग्र तपश्चर्या पर अन्य धर्म के अनुयायियों को आश्चर्य, वितृष्णा, उदासीनता और दया तक आ जाती है, लेकिन जैनियों तो इंद्रियों के निग्रह के लिए उत्साहपूर्वक कष्टप्रद तपों का आचरण करते हैं, क्योंकि कष्ट से साध्य सिद्धि में जो सार्थकता एवं आनंद प्राप्त होता है, वह सरलता से सुलभ प्राप्ति में कहां? इसीलिए तो तपस्या में किसी प्रकार की छूटछाट जैन धर्म को कहां मान्य है? ज्ञान रूपी नेत्र और तप-आचार रूपी चरण से इष्ट तक पहुंचने के लिए तप-संयम ही पथ-प्रदर्शक बनता है। इस सम्बंध में आचार्य नथमल मुनि का कथन

1. डा॰ हरीश शुक्ल-जैन गुर्जर कवियों की हिन्दी कविता-प्रथम खंड, पृ॰ 39.

सुंदर है कि 'ज्ञान नेत्र है और आचार चरण है। पथ को देखा तो सही, पर उस ओर चरण बढ़ते ही नहीं तो देखने से क्या बनेगा? अभीसिप्त लक्ष्य तो दूर का दूर रहेगा, दृष्टा उसे आत्मसात् नहीं कर पायेगा। यथार्थ को जाना, आचरण में लिया तभी साध्य साधेगा।[1] शुद्ध चित्त एवं शुद्ध भावना से किये गये तप के द्वारा आत्मा के चरम विकास की स्थिति पर साधक पहुंच सकता है क्योंकि बाह्य तप भी आंतरिक शुद्धि के लिए उपकारी बनता है।

ब्रह्मचर्य भी तप का ही आनुषंगिक सिद्धान्त है। इसी तत्व के द्वारा मनुष्य आत्मिक एवं शारीरिक शक्ति प्राप्त कर सकता है। इसीलिए तो कहा गया है कि भोग के समय एक क्षण भी योग याद आ जाये तो व्यक्ति आत्मिक विकास को प्राप्त कर सकता है। ब्रह्मचर्य के पालन से व्यक्ति, धर्म और मानवता के प्रति उन्मुख होकर आस्थावान बनता है और संयम सहाय करता है। ब्रह्मचर्य की सहाय के बिना किया गया तप भी अपूर्ण होता है, ऐसा जैन दर्शन का मानना है।

समानता का सिद्धान्त :

जैन धर्म जातिबद्ध या संस्थाबद्ध न होकर एक सामुदायिक चेतना है। जैन दर्शन ने किसी भी जाति, संप्रदाय, वर्ग या वर्ण के व्यक्ति को मुक्ति का अधिकारी घोषित किया हैं। बशर्ते कि व्यक्ति जैन सिद्धान्तों में श्रद्धा रख तीर्थंकर द्वारा बताये गये पथ पर चलने को उत्सुक हो। कर्मों की 'निर्जरा' कर आत्म-संयम के द्वारा क्रमशः व्यक्ति तीर्थंकर पद तक प्राप्त कर सकता है, ऐसा जैन दर्शन का विश्वास है। जैन दर्शन में धर्म-चेतना को संप्रदाय-चेतना से मुक्त माना गया है। सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन एवं सम्यक् चरित्र की साधना से सामान्य मनुष्य भी पशुत्व से ऊंचा उठकर देवत्व प्राप्त कर सकता है। केवल जैन धर्म ने ही मनुष्य को तीर्थंकरत्व प्राप्त कर सकने की क्षमता वाला घोषित किया है। अन्य धर्मों में तप-भक्ति से प्रसन्न होकर देवता भौतिक सुख-संपत्ति और बहुत हुआ तो संतोष और शांति देता है, स्वयं का समकक्ष देवत्व नहीं, जबकि जैन धर्म में तो सच्ची निष्ठा और लगन से यह कहा जाता है कि मानव भी तीर्थंकर पद प्राप्त कर सकता है और मोक्षमार्ग का वरण वह भी कर सकता है।

जैन धर्म में पुरुष के साथ नारी को भी समानाधिकार देने की नीति सर्वप्रथम पाई जाती है। जबकि उस समय के अन्य धर्मों में नारी को गुलाम-सी

---

1. आचार्य-नथमलमुनि-जैन दर्शन में आचारमीमांसा-प्राक्कथन, पृ० 1.

समझ कर अधिकार और आदर से वंचित रखा गया था। पुरुषों की तरह नारी को भी प्रवज्या (दीक्षा) देने की प्रथा भगवान महावीर के काल से लेकर निरन्तर आज तक चलती रही है। महावीर के समय अन्य धर्मों के आचार्य स्त्री को दीक्षित करने में भयस्थान देखकर हिचकते थे, लेकिन उसी समय महावीर के पंथ में हजारों स्त्रियाँ प्रवज्या को प्राप्त कर चुकी थी। इसी से जैन धर्म की व्यावहारिक सुसंगतता का अंदाजा लगाया जा सकता है। आचार्य विनोबा भावे जैन धर्म की नारी सम्बन्धी विचारधारा से काफी प्रभावित हुए है, जो उन्होंने 'श्रमण' पत्रिका में प्रकाशित करते हुए लिखा है, 'महावीर के सप्रंदाय में पुरुषों को जितने अधिकार दिये गये हैं, वे सब अधिकार बहनों को दिये गये थे। मैं इन मामूली अधिकारों की बात नहीं करता हूँ जो इन दिनों चलता है और जिनकी चर्चा आजकल बहुत चलती है। उस समय ऐसे अधिकार प्राप्त करने की आवश्यकता भी महसूस नहीं हुई होगी। परन्तु मैं तों आध्यात्मिक अधिकारों की बात कर रहा हूँ। पुरुषों को जितने आध्यात्मिक अधिकार मिलते थे, उतने ही अधिकार स्त्रियों को भी हो सकते हैं। इन आध्यात्मिक अधिकारों में महावीर ने कोई भेद-बुद्धि नहीं रखी, जिसके परिणामस्वरुप उनके शिष्यों में जितने श्रमण थे, उनसे ज्यादा श्रमणियां थी। वह प्रथा आज तक जैन धर्म में चली आई है।'

महावीर ने समानता का दृष्टिकोण केवल स्त्री-पुरुष तक ही सीमित न रखकर सभी जातियों के बीच भी समानता का व्यवहार किया। शूद्रों को भी उनके धर्म में निःशंक प्रवेश दिया जाता था। महावीर ने सभी मनुष्य को समान समझकर सबको एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में स्वीकारा। उनके लिए कोई ऊंच-नीच, अमीर-गरीब नहीं थे। समानता के व्यवहार के लिए मनुष्य में समभाव एवं समता भाव भी आवश्यक हो जाता है।

इस प्रकार जैन धर्म की दर्शन-पद्धति में अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, तपस्या, अपरिग्रह एवं समानता के तत्वों पर विशेष बल दिया गया है। वैसे तो काम, क्रोध, लोभ, रागद्वेषादि विकारों को जीतने के लिए संयम को भी अपनाना आवश्यक है। माया के मिथ्यात्व को समझने के लिए सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चरित्र को यथार्थ रूप में दैनिक व्यवहार में अपनाने पर जैन धर्म महत्व देता है।

जैन-दर्शन की विशेषता :

जैन दर्शन जहां एक ओर व्यक्तिनिष्ठ और तपश्चर्या मूलक है, वहां दूसरी ओर समाजनिष्ठ भी सदैव रहा है। अतः जैन धर्म और जैन साहित्य

सांप्रदायिकता के संकुचित घेरे में बहुत कम बंधा है। उस पर आरोप इससे विपरीत किया जा रहा है, यह भिन्न बात है। जैन दर्शन का आचार-शास्त्र भी जनतंत्र की भावनाओं से अनुप्राणित है, अर्थात् जन्म से ही सभी व्यक्ति समान है, धर्म द्वारा उस पर कोई बन्धन नहीं लादे जाने चाहिए। जैन धर्म की लोकतंत्रवादी भावना पर प्रकाश डालते हुए प्रसिद्ध विद्वान् आदित्यनाथ झा ने लिखा है कि 'भारतीय जीवन में प्रज्ञा और चारित्र्य का समन्वय जैन और बौद्धों की विशेष देन है। जैन दर्शन के अनुसार सत्यमार्ग परम्परा का अंधानुसरण नहीं है, प्रत्युत् तर्क और उपपत्तियों से संपन्न एवं बौद्धिक रूप से संतुलित दृष्टिकोण ही सत्यमार्ग है। इस दृष्टिकोण की प्राप्ति तभी संभव है, जब मिथ्या विश्वास पूर्णतः दूर हो जाय। इस बौद्धिक आधार शिला पर ही पंच तत्वों के बल से सम्यक चारित्र्य को प्रतिष्ठित किया जा सकता है।[1] जैन दर्शन के सभी तत्व सदैव महत्वपूर्ण हो सकते हैं। प्राचीन और मध्यकाल में तो इन तत्वों का काफी प्रचार हुआ था और आधुनिक युग में संकुचित लोक मानस, पाश्चात्य प्रभाव एवं भोग-विलास की अतिशयता के कारण इन तत्वों का महत्व क्षीण हो गया है, यह भिन्न बात है। मध्यकाल में सम्राट अकबर ने भी आचार्य हिरविजयसूरी से प्रभावित होकर अपने 'दीनेइलाही' में जैन धर्म को भी स्थान दिया था। अमरिकी दार्शनिक वीलडयुरेन्ट लिखते हैं-अकबर ने जैनों के कहने पर शिकार करना छोड़ दिया था और कुछ नियत तिथियों पर पशु हत्याएं रोक दी थी। जैन धर्म के प्रभाव में आकर ही अकबर ने अपने द्वारा प्रचलित 'दीनेइलाही' सम्प्रदाय में मांस-भक्षण के निषेध का नियम किया था।[2]

जैन धर्म संपूर्णतः सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वकाल में संपन्न ही रहा हो ऐसी बात भी नहीं हैं। जैन धर्म जब तक समाज और राजनीति से संपृक्त रहा तब तक उसका चतुर्दिक् विकास होता रहा। किन्तु जब वह उस सम्बल से रिक्त हुआ, लोक से कट गया तब उसमें कट्टरता एवं साम्प्रदायिकता का आवरण चढ़ गया और उसका प्रभाव कुछ संकुचित हो गया। सौभाग्य से जैन धर्म में ऐसा बहुत कम ही हो सका है और यह धर्म आज भी अपनी आभा बिखेर रहा है। लोकोन्मुख रहकर ही सामाजिक दायित्व का वहन कर रहा है। समग्र जैन दर्शन को यदि हम समग्रतया देखेंगे तो उसमें पर्याप्त मात्रा में आदर्शवाद पाते हैं। यह कोरा आदर्शवाद न होकर भौतिकवाद के तत्वों से भी सुसम्बन्ध है। उसके तर्क अत्यन्त ही शक्तिपूर्ण है, तो उसका उपागम विश्लेषणात्मक है, साथ ही

---

1. जैन भारतवर्ष-अंक-42, पृ॰ 69.
2. द्रष्टव्य : Dr. Wil Durent-'Our oriental Herritage' page. 467.

द्वन्द्ववाद के कितने ही तत्व उसमे मौजूद है। मध्यकाल में इस दर्शन की तर्क-प्रणाली और द्वन्द्ववाद उच्चस्तर पर पहुंचे और आदर्शवादी पहलू भी दृढ़तर हुआ था, फिर भी यथार्थ को नज़रअन्दाज नहीं किया गया। भगवान महावीर के मोक्ष के उपरान्त इस धर्म की प्रमुख दो शाखाएं हुई और क्रियावाद को भी महत्व दिया जाने लगा। यह बात प्रत्येक सम्प्रदाय में संभव हुआ करती है। जैन धर्म की यह विचित्रता या विशिष्टता कही जायेगी कि 'जिसका उदय स्वयं ब्राह्मणवाद तथा वर्णाश्रम व्यवस्था व सम्प्रदायों के विरोध-स्वरूप हुआ था, किंतु वह खुद विभिन्न संप्रदायों में बंट गया है।[1]

जैन धर्म के तत्वों की एक विशिष्टता यह भी स्पष्ट प्रतीत होती है कि इसके बहुत से तत्व समाजाभिमुख है और बहुत से व्यक्ति-अभिमुख है। सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, कठोर तपस्या, राग-द्वेष-मोहादिका त्याग आदि व्यक्तिपरक हैं और विशेषतः साधु-समाज से इनके पालन की अपेक्षा की जाती है, गृहस्थों को इनके पालन में छूट-छाँटे दी गई है। लेकिन पर्वो की आराधना, पूजन, समताभाव, समता का व्यवहार, अनेकान्तवाद, विनम्रता, सहिष्णुता समाजलक्षी है। जैन धर्म के तत्वों की गहराई एवं विशालता सागर के समान हैं, जिसकी थाह पाना अत्यन्त कठिन कार्य है। हम तो संक्षेप में यही कह सकते हैं कि उपर्युक्त प्रमुख पांच तत्वों पर आधारित जैन धर्म मानवता का संदेश देता हुआ अहिंसात्मक व्यवहार पर विशेष जोर देता है। उसी प्रकार क्षमादान, अवैरवृत्ति तथा मैत्री भावना का उच्चतम स्वरूप जैन धर्म में दृष्टिगत होता है-

'खामेमि सत्व जीवे, सव्वे जीवा खमन्तु मे।
मित्तिम से सव्वभूयेषु, वैर मज्ज न केणइं॥'

अर्थात् 'मैं सब जीवों को क्षमा देता हूं और सब जीवों से क्षमा चाहता हूं। मैं सब जीवों का-प्राणीमात्र का-मित्र हूँ और मुझे किसी से वैर नहीं है।'

आधुनिक काल में जैन धर्म के तत्वों की उपयोगिता :

जैन धर्म प्राचीनतम धर्म होने पर भी आधुनिक युग में भी उसका महत्व स्वीकृत है। उसकी चिन्तन प्रणाली प्रायः समाजाभिमुख रही है। समाज के साथ व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं प्राणीमात्र के कल्याण की भावना भी जैन दर्शन में अभिव्यक्त होती रही है। अहिंसा, सत्य, मैत्री, अवैर, क्षमा, समानता और परिमित परिग्रह की भावना का महत्व आज संपूर्ण विश्व के लिए आवश्यक

---

1. पं० दलसुख मालवणिया-'जैन धर्म चिन्तन'-पृ० 54.
आचार्य नथमल मुनि : जैन दर्शन : मनन और मीमांसा-जैनधर्म और दर्शन, पृ० 54.

है। आज के संघर्षशील विश्व में बन्धुत्व की भावना का प्रसार आवश्यक ही नहीं, अपितु अनिवार्य बन चुका है। जिस अहिंसा को हम गांधीवादी दर्शन का मूल मानते हैं, वह जैन धर्म की बहुत बड़ी थाती है। भगवान महावीर ने अपने युग की परिस्थितियों को देखते हुए प्राणीमात्र के प्रति मनसा, वाचा व कर्मणा अहिंसा के व्यवहार का संदेश समाज को दिया था। वैसे सभी धर्म अहिंसा को मानव कल्याण के लिए उपकारी समझते हैं, किन्तु भगवान महावीर ने उसे जीवन्त और व्यावहारिक रूप प्रदान किया था। आज के युग में जहां कदम-कदम पर हिंसा का नग्न रूप देखा जाता है, वहां अहिंसा का उत्कृष्ट साधन ही मानव को शांति व सुरक्षा प्रदान कर सकता है। अहिंसा के बिना भातृत्व का प्रसार कैसे संभव हो सकता है? आधुनिक वातावरण में जैन दर्शन के तत्वों की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए विद्वान् जैन मुनि आचार्य यशोविजय जी लिखते हैं-"क्षमा मूर्ति भगवान महावीर के उपदेश का संक्षिप्त सार यह है कि यदि तुम्हें सर्वांगीण विकास साधना हो तो आचार में सर्व हितकारिणी अहिंसा, विचार में संघर्ष शामक अनेकान्त के सिद्धान्त और व्यवहार में संक्लेशनाशक अपरिग्रहवाद को मनसा, वाचा और कर्मणा से अपनाओ। इससे व्यक्ति के जीवन में विश्व-बन्धुत्व, मैत्री की भावना, समन्वयवादी दृष्टि और त्याग-वैराग्य के आदर्श सजीव बनेंगे और इन सिद्धान्तों को यदि सभी लोग न्यूनाधिक रूप से व्यवहार में लायेंगे तो समष्टि समुदाय में अध्यात्मवाद का प्रकाश प्रकट होने पर भय, चिन्ता, अस्थिरता, अशांति, असंतोष, वर्ग-विग्रह, अन्याय, दुर्भावना, धिक्कार, तिरस्कार, कडुवाहट, अविवेक-अविनय, अहंकार जैसे अनेक दोषों-दूषणों का घेरा बना हुआ अन्धकार तिरोहित होगा। परिणामतः सर्वत्र मैत्री, प्रेम, स्नेह, आदर, एकता, सहिष्णुता और शक्ति का बल दृढ़ होगा। +++ यदि विश्व की मनुष्य जाति को हिंसा और त्रासवाद से उबारना होगा तो महावीर के अहिंसा के सिद्धान्त को अपनाये बिना कोई रास्ता नहीं है। व्यष्टि या समष्टि के लिए अहिंसा के अतिरिक्त कोई अन्यतरणोपाय नहीं है, यह एक त्रैकालिक सत्य है।"[1]

अहिंसा की तरह ही आज के भौतिक युग में अपरिग्रह या परिमित परिग्रह का सिद्धान्त अपनाने से असंतोष तथा भौतिक भोग-विलास की अन्धी दौड़ का अन्त होगा और अनावश्यक वस्तुओं में परिग्रह करने की वृति बन्द होने से स्वतः राष्ट्र की उन्नति संभव हो पायेगी। निरन्तर परिग्रह करते रहने की लालसा से देश के सामने अनेक समस्याएँ खड़ी हो जाती है।

---

1. आ. यशोविजय जी-'तीर्थंकर श्री भगवान महावीर' संपादकीय निवेदन, पृ० 6 (35 रंगीन चित्रों का संपुट)।

विज्ञान की प्रगति एंव सुख-सुविधा की उपलब्धि से आज का मनुष्य संयम के महत्व से परिचित नहीं है। शारीरिक एंव आत्मिक संयम प्राप्त करने से व्यक्ति समाज व राष्ट्र को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सहायक होना है। अचौर्य (अस्तेय) की वृत्ति आज प्राय: सर्वत्र पाई जाती है। जैन धर्म में अचौर्य-अदत्तादान का तत्व अपने सूक्ष्म स्वरूप में स्वीकृत है। अन्य की चीज को हथिया लेने की मानसिक वृत्ति भी इसके अन्तर्गत ही शामिल है तथा ऐसी भावना आत्मघातक सिद्ध हो सकती है, इंसान को पतित बनादेती है। सत्य का सिद्धान्त चिन्तामणि-रत्न सा है, जिसे स्वीकारने से लोहे-सी जिन्दगी में अध्यात्म का उज्जवल प्रकाश सर्वत्र फैल जाता है तथा व्यक्ति उच्चतम साधना का अधिकारी बन जाता है। लेकिन आज इसका अधिकाधिक अनादर और उपेक्षा की जा रही है। समानता की भावना भगवान महावीर ने अपने युग में सिद्धान्त रूप से स्वीकार्य किया था। आधुनिक मानव-समाज में प्राणीमात्र के प्रति करुणा भाव व समानता का स्वीकार न होने से असमानता, जाति-वर्ग, सम्प्रदाय तथा ऊंच-नीच का वातावरण मौजूद है, जिन्हें आज सांविधानिक स्वरूप देकर दूर करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

अनेकान्तवाद के सिद्धान्त से मनुष्य सबके प्रति सहिष्णु बनकर अपना जीवन-सफल कर पाता है। सबको समझने की वृत्ति, सारतत्व ग्रहण करने की अभिलाषा से शांति एंव प्यार की वृद्धि होती है। अनेकान्तवाद के कारण दुराग्रह, अशांति एंव वैमनस्य वृत्ति दूर हो सकती है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि जैन धर्म के उच्च तत्वों को आधुनिक युग की धार्मिक, राजकीय एंव सामाजिक परिस्थितियों के संदर्भ में स्वीकार करने से मनुष्य आत्म-विकास के साथ राष्ट्र की प्रगति में योगदान दे सकता है। जैन दर्शन के सभी तत्त्व वैज्ञानिक है, जो विज्ञान की कसौटी पर कसने से शुद्ध उतरेंगे। विज्ञान तो आधुनिक युग की उपज है, जबकि जैन धर्म तो प्राचीन काल से सुसंगत, शुद्ध, सात्विक-तात्विक एवं व्यवहारोपयोगी विचारधारा से सुसज्ज रहा है। जैन-दर्शन-प्रणाली में धर्म और विज्ञान का विशिष्ट समन्वय दृष्टिगत होता है। हां, उनका ठीक-ठीक प्रचार-प्रसार नहीं हो पाने से उपेक्षा या अपरिचितता की भावना रखी जाती है। आज आत्मसंयम तपस्या, मनोनिग्रह, निष्ठा, ब्रहाचर्य व विकारों के विजय की अपेक्षा हमारी वृत्ति इस काल में भोग-उपभोग, आनंद-प्रमोद, ऐशोआराम, संघर्ष, संग्रह की और अधिक आकृष्ट रहती है।

मानव-महिमा का जोरदार समर्थन जैन दर्शन में प्राप्त है, जो आज की परिस्थितियों में अप्रतिम और प्रगतिशील प्रतीत होगा। आज के प्रजातंत्रात्मक

युग में मानव-स्वातंत्र्य को जो महत्व दिया जाता है, वह महावीर ने कितने वर्षों पूर्व प्रतिपादित किया था। मानव-स्वातंत्र्य के साथ ही आत्मा की स्वतंत्रता की उद्घोषणा करके महावीर ने पूरे विश्व को बताया कि प्रत्येक आत्मा अपने बल पर परमात्मा बन सकती है और जीव अपने ही कारणों से मुक्ति या बंधन को पाता है। राग-द्वेष और हिंसात्मक कर्मों से मानव दु:ख की जंजीरों से बंधता है और अहिंसापूर्ण (व्यक्तिगत या सामाजिक) कर्मों से वह दु:ख-चक्र से मुक्त होता है। आधुनिक यंत्रवादी युग में जैन दर्शन के पंच महाव्रतों का पालन सर्वथा हितकारी हो सकता है, यह निर्विवाद है। 'जियो और जीने दो' का जैन दर्शन का मंत्र युग की गतिशीलता से त्रस्त मनुष्य के लिए वरदान रूप सिद्ध हो सकता है-

सर्व मंगल मांगल्यं, सर्व कल्याण कारणं।
प्रधानं सर्व धर्माणां, जैनं जयति शासनम्॥

यह सूत्र जो प्रत्येक जैन घोषित करता है, वह केवल जैन समाज को ही नहीं, प्रत्युत् विश्व-कल्याण को नजर में रख कर ही करता है। विश्व के सभी राष्ट्र सांस्कृतिक तथा राजकीय नैकट्य स्थापित करने पर भी भौतिक-भागदौड़ की वृत्ति तथा हिंसा के सोये डर के कारण मनुष्य चैन की सांस नहीं ले पाता। तब धर्म ही शांति व प्रकाश देता हैं। मानव की मानवता को जगाकर व्यक्ति को स्वतंत्र व सुखी बनाने का उपक्रम करता है। इस संदर्भ में जैन विद्वान श्री कन्हैयालाल सरावजी के विचार उल्लेखनीय हैं कि- 'आज संसार में जो आपाधापी, शस्त्रों की होड़, अधिकारों की छिनाझपटी, सभी क्षेत्रों में उथल-पुथल मची हुई है, अंधा-घूंधी विधेयक बन रही है, अधिकारों का सीमांकन और जाने क्या क्या हो रहा है, उन सबके बदले यदि संसार भगवान महावीर के दिशाबोध को अपना ले तो सारी रस्साकसी का अन्त होकर स्वस्थ, स्वावलंबी और सर्वोदयी समाज का उदय हो सकता है'[1]

---

1. श्री कन्हैयालाल सरावजी-'श्रमण' पत्रिका, फरवरी 1976, पृ॰ 34.

अध्याय द्वितीय

आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य : पूर्व-पीठिका

आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य की परम्परा अति प्राचीन एवं सुसमृद्ध रही है। जैनाचार्यों और जैन साहित्यकारों ने सुंदर आत्म-पियूष-रस से आपूर्ण जिस साहित्य की रचना हिंदी भाषा में की थी, वह यद्यपि हिन्दी की अमूल्य धरोहर है। प्राचीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक युग के प्रारंभ तक हिन्दी जैन साहित्य का कैसा रूप रहा और कितनी महत्वपूर्ण कृतियाँ है, उस पर एक विहंगम दृष्टि डाल लेना समीचीन प्रतीत होता है। जिससे आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य की मूलधारा स्पष्ट हो सके और अतीत के जैन साहित्य की समृद्ध परम्परा हमारे समक्ष आ सके।

साहित्य मानव-जीवन का निर्माता एवं संस्कृति का परिचायक होता है। साहित्य में राष्ट्र की साहित्यिक संस्कृति की झलक प्रतिबिंबित होती है। कामता प्रसाद जैन यथार्थ लिखते हैं कि-दुनिया की शांतिपूर्व घड़ियों में ही सत्यं, शिवम्, सुंदरम् कला का सृजन होता आया है। साहित्य के अनूठे रत्न-प्रसून शान्त मस्तिष्क और शीतल हृदय से ही प्रसूत होते हैं। उद्धिग्न मस्तिष्क और अस्थिर चित्त जगत को लोकोपकारी स्थायी साहित्य नहीं दे सकता। अत: जैनियों ने शान्त रस को प्रधानता देकर मानव-प्रकृति के अनुरूप और उसके लिए उपयोगी कार्य किया है।[1] जैन साहित्य ने मुक्त शृंगार रस की अति रोकने के लिए ही जैन कवियों ने शान्तरस की शीतल धारा बहाई। वैसे मर्यादा में चित्रित शृंगार रस बुरा या त्याज्य न होकर रसमाधुर्य ध्वनित करता है और व्यक्ति के विकास को पुष्ट भी करता है, केवल उसकी अति विनाशकारी होती है। प्राचीन जैन साहित्य की विशेषता पर प्रकाश डालते हुए डा॰ वासुदेव सिंह लिखते हैं कि-जैन साहित्य मूलत: धार्मिक साहित्य है। जैन कवियों ने छिछरे शृंगार अथवा लौकिक आख्यानों की अपेक्षा धार्मिक और आध्यात्मिक साहित्य की रचना में ही अधिक रुचि ली है, यद्यपि धर्मेतर साहित्य की भी उनके द्वारा कम मात्रा में रचना नहीं हुई है। अपभ्रंश और हिन्दी में इनके द्वारा अनेक चरित काव्य और रासो ग्रन्थ भी लिखे गये हैं, जो अब धीरे-धीरे प्रकाश में आ रहे हैं। किन्तु इन कवियों की आवश्यकता से अधिक साम्प्रदायिक

1. आ. कामताप्रसाद जैन: हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ॰ 13.

मनोवृत्ति के कारण इनके साथ न्याय नहीं हो सका है।[1] प्राचीन जैन साहित्य के संदर्भ में आचार्य हजारीप्रसाद जी की विचारधारा प्रायः यही है। वे लिखते हैं कि 'जैन साहित्य में कई रचनाएं ऐसी भी हैं कि जो धार्मिक तो हैं किन्तु उनमें साहित्यिक सरसता बनाये रखने का पूरा प्रयास है। धर्म वहां कवि को केवल प्रेरणा दे रहा है। जिस साहित्य में केवल धार्मिक उपदेश हो, उससे वह साहित्य निश्चित रूप से भिन्न है। जिनमें धर्म भावना प्रेरक शक्ति के रूप में काम कर रही हो और साथ ही हमारी सामान्य मनुष्यता को आन्दोलित, मथित और प्रभावित कर रही हो। इस दृष्टि से अप्रमंश की कई रचनाएं जैन-धर्म भावना से प्रेरित होकर लिखी गई हैं, निःसंदेह उत्तम काव्य हैं। धार्मिक प्रेरणा या आध्यात्मिक उपदेश होना काव्यत्व का बाधक नहीं समझा जाना चाहिए। धार्मिक साहित्य होने मात्र से कोई रचना साहित्यिक दृष्टि से अलग नहीं की जा सकती। यदि ऐसा समझा जाने लगा तो तुलसीदास का 'रामचरित मानस' भी साहित्य-क्षेत्र में आलोच्य हो जायेगा। इस प्रकार मेरे विचार से सभी धार्मिक पुस्तकों को साहित्य के इतिहास में त्याज्य नहीं मानना चाहिए।[2]

हिन्दी जैन-साहित्य का प्रारंभ :

हिन्दी जैन साहित्य का प्रारंभ 10वीं शताब्दी से माना जाता है। 10वीं से 19वीं शताब्दी तक के प्राचीन जैन साहित्य का निरीक्षण करने से पता चलेगा कि इस लम्बी अवधि में उत्कृष्ट और रोचक साहित्यिक ग्रन्थों की रचना प्रचुर मात्रा में की गई है। विशेषकर तीर्थंकरों, आचार्यो और धार्मिक पुरुष-रत्नों के चरित्रों की गुण-स्तुति पर आधारित रचनाएं प्राप्त होती है। संस्कृत, अर्धमागधी और अपभ्रंश के प्राचीन ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद 17वीं, 18वीं और 19वीं शताब्दी में काफी मात्रा में हुआ है, जो कहीं-कहीं अपने मूल सौंदर्य को पाने में थोड़ा-बहुत पीछे रह गया है। 14वीं से 19वीं शती तक ललित साहित्य के साथ-साथ सैद्धांतिक ग्रन्थों की रचना भी विपुल मात्रा में उपलब्ध होती है। 14-15 और 16 वीं शताब्दियों में धुरन्धर जैनाचार्यों एवं विद्वानों ने स्वयं जैन-सिद्धांतों का आद्योपान्त अध्ययन करके आत्मसात किया, तदनन्तर अपने साहित्य के द्वारा समाज को लाभान्वित करके दायित्व पूर्ण किया। अतः जैन साहित्य में धार्मिक चर्चा या उमदेश आ जायें तो आश्चर्य नहीं मानना चाहिए। जैन धर्म के प्रसार-प्रचार एवं जैन समाज को धर्म के प्रति श्रद्धावान बनाने के उद्देश्य से जैन साहित्यकारों ने विशाल राशि में उच्च कोटिय जैन साहित्य का प्रणयन कर हिन्दी साहित्य के भण्डार की अभिवृद्धि ही की है। इस काल में

1. डा० वासुदेव सिंह-अपभ्रंश और हिंदी में जैन रहस्यवाद-पृ० 22.
2. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी-हिन्दी साहित्य का आदिकाल-पृ० 11, 12.

आनन्दघन-बनारसीदास, रूपचन्द, जीवराम, भागचन्द, द्यानतराय जैसे उच्च कोटि के कवि थे, तो दूसरी ओर हेमचन्द्राचार्य, यशोविजय जी और आत्मानन्द जी जैसे दार्शनिक, आध्यात्मिक कवि-विद्वान भी हुए, अर्थात् महाकवि, तत्वचिंतक और विद्वान आचार्यो का मानों त्रिवेणी-संगम सा हो गया। 'जैन-साहित्य सृष्टाओं ने अखण्ड आत्मस्वरूप आत्मा का ही अपने अन्तस में साक्षात्कार किया और साहित्य में उसी की अनुभूति को मूर्तिरूप प्रदान कर सौंदर्य के शाश्वत प्रकाश की रेखाओं द्वारा वाणी का चित्र अंकित किया।[1] प्राचीन जैन साहित्य में प्रबन्ध काव्य, चरित काव्य, एवं रासा-ग्रन्थों के साथ कवियों ने मुक्तक काव्यों की रचना भी की है। उन्होंने अपने पदों एवं भजनों में गुरु वंदना एवं उसकी महत्ता पर जोर दिया है। फिर भी गुरू को तीर्थंकरों से न श्रेष्ठ माना है, न समान ही। गुरु की महत्ता पथ-प्रदर्शक के रूप में अवश्य स्वीकृत है। गुरू धर्म तथा तीर्थंकर का सम्यक् ज्ञान देकर सच्चा मानव बनाने में सहायभूत होते हैं। अतएव तीर्थंकर, सिद्धों, आचार्यों, उपाध्याय एवं समस्त साधुवर्ग के प्रति नमस्कार (नमोऽर्हन्त सिद्धाचार्योपाध्याय: सर्व साधुभ्य: नम:।) सूचक स्तुति के पद-भजन उपलब्ध होते हैं। आराध्यदेव के प्रति श्रद्धा पैदा करने के लिए नाम-स्मरण, स्तुति-वंदना और ध्यानादि का प्रयोग आवश्यक है। अत: ऐसी धार्मिक मुक्तक रचनाओं में कवि अपनी दीनता-हीनता व लघुता तथा तीर्थंकरों को सर्व शक्तिमान, दीन-दयालू, भवसागर-तारक के रूप में वर्णित करते है। ऐसी रचनाओं में शान्त रस व दास्यभाव की प्रधानता रहना स्वाभाविक है। ऐसे मुक्तकों के अतिरिक्त शतकों, बारहखड़ी, चौबीसी, बत्तीसी, छत्तीसी आदि की संख्या भी काफी है। डा० प्रेमसागर जैन लिखते हैं-"भक्तिकालीन जैन भक्त कवियों ने बावनी, शतक, बत्तीसी और छत्तीसी आदि रूप में अपने भाव अभिव्यक्त किये है। जैनों के संस्कृत-प्राकृत साहित्य में ऐसी रचनाएं उपलब्ध नहीं हैं। अजैन हिन्दी कवियों में इनका प्रणयन कम ही हुआ है। बारहखड़ी के अक्षरों को लेकर सीमित पदों में काव्य-रचना करना जैन-कवियों की अपनी विशिष्टता है।[2]

यहां हम 10वीं शती से 19वीं शती तक के हिन्दी जैन साहित्य की एक संक्षिप्त पीठिका प्रस्तुत करना चाहेंगे, क्योंकि इसी पीठ पर आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य की निर्मिति हुई है। इस अवधि को आदि काल, मध्यकाल और परिवर्तन काल के स्वरूप में विद्वानों ने विभाजित किया है-जैसे :-

---

1. द्रष्टव्य-आ. नेमिचन्द्र शास्त्री, हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन-भाग-1, पृ० 20.
2. डा० प्रेमसागर जैन : हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि, पृ० 28.

1. आदिकाल-11वीं शताब्दी से 14वीं शताब्दी तक।
2. मध्यकाल-15वीं शताब्दी से 17वीं शताब्दी तक।
3. परिवर्तन काल-18वीं से 19वीं शताब्दी के प्रारंभ तक।

श्री कामता प्रसाद जैन के विचारानुसार 'उन्नीसवीं' शताब्दी के पूर्व मध्यकाल से नवयुग काल प्रारंभ हो जाता है और वह अब भी वर्तमान है।[1] वैसे 8वीं शतीं से 10वीं शती तक अपभ्रंश भाषा में जैन प्रबन्ध काव्यों की बहुत रचना हुई है एवं चरित काव्य भी रचे गये हैं। अपभ्रंश व प्राकृत लोकभाषा में जैन साहित्यकारों ने उच्चतम साहित्य का निर्माण किया। कालान्तर में प्राकृत, अपभ्रंश से निःसृत हिन्दी भाषा जब लोक-मानस में स्थापित हुई तो जैन रचनाकारों ने इसी भाषा में अपनी प्रतिभा का उन्मेष किया।

आदि काल :

(10वीं शती से 14वीं शती तक) वीरगाथाकाल के समान्तर ही हिन्दी जैन साहित्य का प्रादुर्भाव माना जाता है। वातावरण का प्रभाव साहित्य पर पड़ना सहज है। वीरगाथाकाल में शृंगार और वीर रस प्रधान रासा ग्रन्थों के समान जैन-साहित्य में भी प्रमुखतः रासा ग्रन्थों की रचना हुई। दोनों के रासा ग्रन्थों में प्रमुख अन्तर यह है कि जैन कवियों ने किसी राजा या आश्रयदाता की प्रशंसा व स्तुति में नहीं लिखे वरन् तीर्थंकर एवं प्रमुख धार्मिक, ऐतिहासिक व्यक्ति के विषय में लिखें। धर्म-वार्ता को लेकर भी रासाग्रन्थ लिखे गये हैं। इससे जनता की धार्मिक श्रद्धा दृढ़ होने में सहायता मिली और ऐतिहासिक वार्ता-कथा को गाथाबद्ध करने से ऐतिहासिक तथ्यों की सुरक्षा भी हुई। इस प्रकार आदिकाल में प्रमुखतः धर्म और इतिहास की गाथाओं को लेकर रासा-साहित्य का प्रणयन हुआ। 10वीं और 11वीं शती के अपभ्रंश महाकाव्यों में उत्कृष्ट कोटि का भावपक्ष व कलापक्ष दृष्टिगत होता है, जिनका प्रभाव परवर्ती महाकाव्यों पर भी पड़ना स्वाभाविक है। हिन्दी के वर्तमान रूप का मूल आविर्भाव भी इसी अपभ्रंश भाषा से ही हुआ है, जिसमें रासो-साहित्य का सृजन हुआ। पुष्पदत्त इसी भाषा के प्रथम और श्रेष्ठ महाकवि स्वीकारे जाते हैं, जो 10वीं शताब्दी में हुए।[2] उनका सबसे महान काव्य 'महापुराण' है, जो उन्होंने सं॰ 965 में पूरा किया था। इस ग्रन्थ को सम्पूर्ण समझते हुए स्वयं घोषित करते हैं कि 'इस रचना में प्राकृत के लक्षण, समस्त नीति, छन्द, अलंकार, रस, तत्वार्थ निर्णय

1. द्रष्टव्य-आ. कामता प्रसाद जैन-हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ॰ 143.
2. डा॰ राजनारायण पांडे-महाकवि पुष्पदत्त-पृ॰ 1.

सब कुछ आ गया है, यहां तक कि जो यहां है, वह अन्यत्र नहीं है। पंडितवर्य राहुल देव सांस्कृत्यायन तो महाकवि पुष्पदत्त से अत्यंत प्रभावित हुए हैं[1] और उनके साहित्य का गहन अध्ययन किया है। 'नागकुमार चरित' और 'यशोधर चरित' भी उनकी प्रसिद्ध रचनाएं हैं। महाकवि को मानो सरस्वती माता का वरदान प्राप्त था। उन्होंने काव्य के सभी अंगों का प्रतिपादन करते हुए कथा-प्रवाह में बाधा पैदा किये बिना बीच-बीच में धर्म की चर्चा भी की है। धर्म का स्वरूप स्पष्ट करते हुए मार्मिक उक्ति देखिए–

'पुच्छिय चम्मु जईवज्जरह जो सयलहं जीवाह दय करइ।
जो अलिय पयं पशु परिहरइ, जो सच्च सउच्चे रह करइ॥

अर्थात् 'धर्म क्या है?' प्रश्न के उत्तर में यति महाराज ने कहा कि–धर्म वही है, जिसमें सब जीवों पर दया की जाय और अलीक वचन का परिहार करके जहां सुन्दर सत्य सम्भाषण में आंनद मनाया जाय।[2] इसी शती में मुनि रामसिंह का 'दोहापाहुड' ग्रन्थ उपलब्ध होता है, जिसकी भाषा शुद्ध अपभ्रंश है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

मूड़ा देह म रज्जियड देहण अप्पा होई।
देहहिं मिण्णउ णाणमउ सो तुहुं अप्पा जोई॥

महाकवि धवल भी 10वीं शताब्दी के विद्वान कवि हैं और 'हरिवंश पुराण' ग्रन्थ में तीर्थंकर अरिष्टनेमि, महावीर और महाभारत की कथा वार्णित है। इसी युग के कवि पद्मदेव अपने 'पासहचरिऊ' में तीर्थंकर पार्श्वनाथ का चरित्र गुंफित करते हैं।

11 वीं शती के प्रमुख कवियों में कवि धनपाल तथा मुनि श्रीचन्द जी तेजस्वी कवि रत्न हैं। मुनि श्रीचन्द ने छोटी-छोटी रोचक कथाओं से पूर्ण एक 'कथाकोष' बोधगम्य शैली में लिखा है। अपभ्रंश का ग्रन्थ होते हुए भी इसकी भाषा प्राचीन हिन्दी के बहुत निकट जान पड़ती है–यथा–

''षण्ण वेप्पिणु बिण सुवि सुद्धमई, चिंतई मणि मुणि सिरि चन्दकई संसार असार सवु अथिरा, पिय, पुत्त, मित्त माया तिमिए चन्द का। तत्कालीन कथा-साहित्य एवम् भाषाकीय दृष्टिकोण से इस ग्रन्थ का काफी महत्व है। विरहिणी के वर्णन में कवि श्रीचन्द जी लिखते हैं–

एक ही अविर्खहिंसावणुं अन्न हि मदव ऊ।
माहन महिअल सस्थरि गण्उथले सरऊ॥

---

1. द्रष्टव्य-नथमलमुनि-जैन धर्म और दर्शन-पृ॰ 107.
2. द्रष्टव्य-कामताप्रसाद जैन–हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ॰ 50.

12 वीं शताब्दी के मुनि योगचन्द्र जी के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'दोहासार' (यह 'योगसार' नाम से भी प्रसिद्ध है)[1] की भाषा पुरानी हिन्दी के अत्यन्त निकट है। यह उद्धरण देखिए–

'अजर अमर गुण-गण निलय अ अहि अप्प थिर थाई।
सो कम्म हि ण च अंथयऊ संच्चिय पूव्य पिलाई।।

इन्हीं का 'दोहापाहुड' भी पुरानी हिन्दी मिश्रित अपभ्रंश की सुन्दर रचना है। योगचन्द्र जी इस काल के बहुत बड़े विद्वान् और अध्यात्म रस के रसिक मुनि थे। 'परमात्म प्रकाश', 'निजात्माष्टक' और 'अमृता नीति' नाम अन्य ग्रन्थों *का भी उन्होंनें सृजन किया है।*[2] *11* और 12वीं शती के कवियों की रचनाओं में प्रायः अपभ्रंश भाषा में प्राचीन हिन्दी के शब्द बहुतायत से मिल जाते है।

13वीं शताब्दी की रचनाओं में कवि लक्खण कृत 'अणुनय रयण-पईव' और मुनि यशः कीर्ति रचित 'जगतसुन्दरी प्रयोगमाला' ग्रन्थ उल्लेखनीय है। प्रथम में जैन श्रावक के व्रतों का निरूपण है तथा दूसरे में वैद्यक के विषय की उपयोगी जानकारी है। श्री विनयचन्द्र कृत 'उवस्समाला-कहाणय छप्पई' भी इसी शती की उल्लेखनीय रचना है, जो छप्पय छन्द में लिखी गई है। 14वीं शताब्दी की रचनाएं प्रायः शुद्ध अपभ्रंश भाषा की है। कविवर श्रीधर के रचे हुए बहुत से ग्रन्थ इसी काल के हैं जिनमें प्रमुख है–'वद्धमाण चरिउ', 'भविष्यदत्त कथा', चन्द्रप्रभचरिउ' 'शान्तिजिनचिरउ' और 'श्रुतावतार' है। कवि श्री अम्बदेव ने 'संघपति समरासरा' की रचना इसी शती में की, जिस पर राजस्थानी भाषा के शब्दों का प्रभाव दिखाई पड़ता है। इसी शती के मेरुतुंगाचार्य के संस्कृत ग्रन्थ 'प्रबन्धचिन्तामणि' में प्राचीन हिन्दी के दोहे यत्र-तत्र दिये गये है। नाथूराम 'प्रेमी' ने अपने इतिहास में इन दोहे को उद्धृत करके पुरानी हिन्दी के बताये हैं।

प्राचीन जैन साहित्य ने अपने कलेवर में प्राकृत, अपभ्रंश की विपुल रचनाओं को संजोते हुए प्राचीन हिन्दी की रचनाओं को भी स्वीकार कर पुरानी हिन्दी का रूप भी स्पष्ट किया है। इस पर से हम अपभ्रंश के परिवर्तित रूप को सरलता से जान सकते हैं। इसीलिए तो आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आदिकाल के साहित्य का महत्व केवल भाषाकीय दृष्टिकोण से जितना महसूस किया, उतना साहित्यिक दृष्टिकोण से नहीं। इस काल में अपभ्रंश की रचनाएं प्राचीन

1. द्रष्टव्य–कामताप्रसाद जैन–हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ॰ 54.
2. वही, पृ॰ 55.

हिन्दी की अपेक्षा विशेष प्राप्त होने से ही कामताप्रसाद जैन ने इस युग को 'आदिकाल या अपभ्रंश-प्राकृत 'काल' कहना अधिक उचित समझा है। अपभ्रंश भाषा की प्रधानता होने पर भी युग के अंतिम भाग में भाषा ने अपना रूप परिवर्तित करना शुरू किया था। बोलचाल की पुरानी हिन्दी शनैः शनैः साहित्य की भाषा का स्थान लेने लगी थी। भाषा के इस परिवर्तन में उस समय की ऐतिहासिक परिस्थितियों ने विशेष प्रभाव डाला, क्योंकि मुसलमानों का आक्रमण शुरू हो गया था और राजपूत राष्ट्र की एकता की अपेक्षा अपनी आन-बान पर-मिटते थे तथा पारस्परिक प्रतिद्वंद्विता में उनकी शक्ति क्षीण होती जा रही थी। संगठित होकर मुस्लिम आक्रमण कारियों को पीछे नहीं हटाया गया। वैसे इतिहास की चर्चा हमें यहां कतिपई अभिप्रेत नहीं। हम तो उस समय की राजकीय परिस्थितियों से भाषा और साहित्य पर कैसा प्रभाव पड़ा, उसका संक्षेप में निर्देश करना चाहते हैं।

मुसलमानों ने यहां की अस्थिर राजकीय परिस्थितियों, हिन्दू राजाओं की निर्बलता, कुसंप व अपूर्ण वैभव देखकर यहीं स्थिर होना चाहा। अतः उन्होंने आक्रमण की लूट के वापिस जाने की अपेक्षा भारत में अपनी सत्ता जमाकर शासन स्थिर करना चाहा। इस कार्य में यहां के वातावरण ने भी उनकी सहायता की। तदनन्तर उनकी बोल-चाल की भाषा का प्रभाव यहां की भाषा पर पड़ना स्वाभाविक है। भाषा की तरह विषय पर भी प्रभाव स्पष्टतः पड़ता है। राजाओं की वीरता-कीर्ति व वैभव आदि के यशोगान में वीर शृंगार रस प्रधान रचनाएं इस युग में लिखी जाने लगीं। लेकिन जैन-साहित्यकारों ने जनहित को नज़र में रखकर तथा आध्यात्मिक रचनाओं का सृजन किया, जिनसे सामान्य पाठक को आनंद के साथ ज्ञान भी प्राप्त हो।

गद्य :

पद्य की तरह गद्य का विकास अदिकाल में नहीं हुआ था, क्योंकि उस समय गद्य को साहित्यिक रूप ही प्राप्त नहीं हुआ था। गद्य तो आधुनिक काल की देन है। प्रारंभिक काल में मुद्रण के अभाव तथा कंठस्थ करने की सुविधा के कारण पद्य में ही प्रायः सृजन होता था। छन्द बद्ध होने से वह (पद्य) गेय भी होता था। इस काल में यदि गद्य के दो-चार उदाहरण मिलते हैं तो वे भी पद्य मिश्रित रूप में। साहित्य का आधार-माध्यम आधुनिक युग तक पद्य ही रहा। फुटकर गद्य बीच-बीच में थोड़ा बहुत मिल जाता हो तो भी वह साहित्यिक नहीं समझा गया। हां, जैन साहित्य में वैद्यक, ज्योतिष के ग्रन्थों में अपभ्रंश गद्य का रूप धोड़ा-बहुत देखने को मिलता है। 'जगतसुन्दरी प्रयोगमाला'

नामक वैदक के ग्रन्थ में पद्य के बीच-बीच में गद्य का प्रयोग अवश्य उपलब्ध होता है।[1] 'आराधना' नामक ताड़पत्रीय रचना में भी अपभ्रंश गद्य का प्रयोग उपलब्ध होता है। इसी प्रकार 'अतिचार' नामक कृति में भी अपभ्रंश गद्य का रूप निहित है।

'काल बेला पठयं विनयहिणु, बहुमान हीणु, उपधान हिणु, गुरु निष्ण्व अनेरा कण्हई पइयं।' 13वीं शती के अंत में गद्य का रूप इस प्रकार भी मिलता है–'परिलउ त्रिकालु अतीत अनागत वर्तमान बहतरी तीर्थंकर सर्व पाप क्षयंकर हऊ नमस्काराऊ।[2] ऐसे गद्य में हिन्दी का प्रचीन रूप दृष्टिगत होता है। गद्य के विकास क्रम के लिए भी हिन्दी जैन साहित्य महत्व रखता है। आधुनिक गद्य का पूर्वकालिक रूप जैन-साहित्य में अक्षुण्ण रूप से देखा जाता है। इसीलिए हिन्दी के साथ गुजराती भाषा की उत्पत्ति के लिए भी जैन-साहित्य का अध्ययन महत्वपूर्ण है।

आदिकाल में रचे गये ग्रन्थों में चरित काव्यों का परिमाण अधिक है, जबकि सैद्धांतिक ग्रन्थ, पूजा-भजन तथा स्तुति के पद अल्प प्रमाण में मिलते है। पद्य-भजन मध्यकाल में अधिक रचे गये। आदिकालीन प्रबन्ध-काव्यों में चरित्र-चित्रण, वर्णन रूप कथा-प्रवाह प्रमुख रहता था। इनके बीच-बीच में तात्विक चर्चा भी आ जाने से स्वतंत्र तात्विक ग्रन्थों की आवश्यकता कम रही। सुभाषित ग्रन्थ थोड़े-बहुत अवश्य लिखे गये। चरित-ग्रन्थों में साधारण जनता की रस वृत्ति तृप्त होने के साथ आध्यात्मिक आनंद भी प्राप्त होने से दोनों हेतु सिद्ध होते थे। आधुनिक युग में जब सामान्य जनता में ज्ञान-पिपासा जागृत हुई तो ऐसे तात्विक ग्रन्थों की आवश्यकता महसूस होने से आधुनिक जैन साहित्यकारों ने संस्कृत-प्राकृत के ऐसे ग्रन्थों का हिन्दी में सुन्दर भावानुवाद कर इसकी क्षतिपूर्ति कर दी। इस प्रकार आदिकाल के रासाग्रन्थ, भाषा के परिवर्तित रूप तथा अन्य सामान्य विवरण प्रस्तुत करने का हेतु होने से अपभ्रंश तथा प्राचीन हिन्दी के प्रबन्ध काव्यों एवं कवियों का विस्तृत परिचय यहां नहीं दिया गया है।

हिन्दी-जैन-साहित्य का मध्यकाल (15वीं शती से 17वीं शती तक) :

मध्यकाल में मुस्लिम शासन के स्थिर हो जाने से राजकीय अशांति की स्थिति समाप्त हुई। यह शांति हार्दिक रूप से व्यक्त न होकर, बल्कि सत्ता की दृढ़ता से प्रसून हुई थी। मुस्लिम सत्ता की स्थिरता ने राजकीय, धार्मिक एवं

1. द्रष्टव्य-कामताप्रसाद जैन–हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० 58.
2. द्रष्टव्य-मोहनलाल देसाई–प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह, पृ० 26.

साहित्यिक वातावरण पर भी अपना प्रभाव छोड़ा, जो सहज स्वाभाविक है। हिन्दु और मुसलमान ने क्रमशः आदान-प्रदान के द्वारा एकता को अपनाने के प्रयास किये। तब स्वाभाविक है कि शासक पक्ष की भाषा का प्रभाव भी हमारी भाषा पर पड़ता हो। मुस्लिम शासकों ने व्यवस्था-कार्य के लिए अरबी-फारसी के साथ प्राचीन हिन्दी को भी स्थान दिया। राजकीय परिस्थिति से अब शान्त व हताश बनी हुई जनता में धर्म का प्रसार विशेष होने लगा, तब धार्मिक लहर से साहित्य कैसे अछूता-अलिप्त रह सकता है? हिन्दी साहित्य के इतिहास में जैसे यह 'भक्तिकाल' कहलाया, उसी प्रकार युगीन परिस्थितियों से प्रभावित जैन साहित्य में भी भक्ति, वैराग्य, ज्ञान, नाम-स्मरण का वातावरण फैल गया। परिणाम स्वरूप पद-भजन, स्तुति के छन्द लयबद्ध मुक्तकों की रचना होने लगी। भक्तिकाल के साहित्यिक तथा ऐतिहासिक वातावरण का प्रभाव जैन-साहित्य पर काफी गहरा प्रतीत होता है। नाम-स्मरण, गुरु महिमा और स्व-लघुता का प्रभाव भी जैन कवियों पर पड़ा। इसके साथ ही छोटे-छोटे कथानक वाले खण्ड-काव्य लिखने की प्रथा भी जैन साहित्यकारों ने पूर्ववत् रखी। जैन जगत भारत की सर्वांगीण परिवर्तित परिस्थितियों से प्रभावित रहा लेकिन यहां साहित्यिक संक्रमण की ओर विशेष लक्ष्य रहा है। जैन साहित्य प्रारंभ से ही धर्म प्रधान होने से उसके लिए यह परिवर्तन अनूठा नहीं था। धार्मिक वातावरण के साथ तो यह विशेषतः तादात्म्य स्थापित कर सका। यद्यपि चरित-ग्रन्थ लिखने की प्रणाली इस समय भी विद्यमान रही, लेकिन पद और भजनों का सृजन बढ़ जाने से तात्विक साहित्य भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होने लगा। धर्म के पावन आसन पर बैठकर पद-भजनों का कर्ण-प्रिय आस्वादन करके-करवाके तत्कालीन राजकीय व व्यवाहारिक अन्याय तथा मतभेद दूर करने की कोशिश जनता और साहित्यकार दोनों करते रहें।

भाषा के दृष्टिकोण से इस काल की प्रारंभिक साहित्यिक भाषा अपभ्रंश की ओर झुकी हुई थी, लेकिन ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों अपभ्रंश का स्थान बोलचाल की प्राचीन हिन्दी लेने लगी और क्रमशः साहित्यिक भाषा के स्थान पर वह प्रस्थापित हुई। ब्रज और अवधि लोक बोली से मिश्रित हिन्दी का प्रचलन भी होने लगा।

प्राचीन व मध्यकालीन साहित्य की ओर अंगुलि-निर्देश कर आधुनिक युग की ओर आना अभीष्ट होने से मध्यकाल के प्रबन्ध काव्यों का संक्षिप्त परिचय ही देना चाहेंगे।

पं० नाथूराम प्रेमी ने 15वीं शताब्दी की तीन प्रबन्ध कृतियों का-गौतम

रासा, ज्ञान पंचमी चउपई, धर्मदत्त चरित्र-उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त अन्य किसी ग्रन्थ का पता नहीं चलता। वि॰ सं॰ 1412 में विजयभद्र नामक श्वेताम्बर मुनि ने 'गौतम रासा' की रचना की थी, जिसमें गौतम स्वामी के रूप सौन्दर्य का सुन्दर वर्णन किया है। और भगवान महावीर के समय की सामाजिक स्थिति का भी सुन्दर निरूपण प्राप्त होने से इसे सफल ऐतिहासिक काव्य कह सकते हैं। 'ज्ञान पंचमी चउपई' की रचना इसी शती में (सं॰ 1413 में) जिन उदयगुरु के शिष्य विद्धूणू ने की थी, जिसमें श्रुतिपंतमी के व्रत का माहात्म्य अंकित किया गया है। यह एक ऐसी धार्मिक रचना है, जो सामान्य जनता को लक्ष्य में रखकर की गई है। कवि ने श्रावक कुल में जन्म लेने की सार्थकता एवं प्रभु भक्ति की महत्ता व्यक्त की है। धर्मदत्त-चरित्र' का उल्लेख प्रेमी जी ने मिश्र बन्धुओं के इतिहास के आधार से किया है, जो वि॰ सं॰ 1486 में दयासागर सूरि ने रचा था।

16वीं शताब्दी में हिन्दी भाषा साहित्य की काफी प्रगति हुई और सन्तों भक्तों की रसपूर्ण मधुर कविता से हिन्दी का भण्डार भरा गया है। हिन्दी जैन साहित्य में इस शताब्दी की अनेक रचनाएं प्राप्त होती हैं–जिनमें प्रमुख हैं–'ललितांगचरित्र, सार-सिखामन रास, यशोधर चरित्र, कृपण-चरित और राम-सीता चरित्र। 'ललितांग चरित' सं॰ 1561 में शान्तिनाथ सूरि के शिष्य ईश्वर सूरि ने बनाया था। प्रेमी जी के मतानुसार 'इसकी रचना बड़ी सुन्दर है। यद्यपि प्राकृत और अपभ्रंश का मिश्रण बहुत है।' 'सार सिखामन रास' सं॰ 1548 में और 'यशोधर चरित' सं॰ 1581 में गौरवदास नामक जैन विद्वान ने रचा था। 'कृपण चरित' सं॰ 1548 में कवि ठकरसी द्वारा रचा गया था, जिसकी कथावस्तु अत्यन्त रोचक और शिक्षाप्रद होने से लोकप्रिय रचना बन पाई है। प्रेमी जी ने इस रचना के विषय में लिखा है कि–'यह छोटा-सा पर बहुत ही सुन्दर और प्रसाद गुण संपन्न काव्य बम्बई के दिगम्बर जैन मंदिर के सरस्वती भण्डार के एक गुटकें में लिखा हुआ मौजूद है। इसमें कवि ने एक कंजूस धनी का अपनी आंखों देखा चरित्र 35 छप्पयों में किया है।'

उपर्युक्त प्रमुख रचनाओं के अतिरिक्त भी आचार्य कामताप्रसाद ने अपने इतिहास में प्रकीर्ण रचनाओं का उल्लेख किया है, जिनमें प्रमुख है विनयचन्द्र मुनि कृत 'कल्याणकाराय' और 'चुनडी', जयकीर्ति कृत 'पार्श्वभवान्तर के छन्द', 'चन्द्रगुप्त के सोलह स्वप्न', 'विमल नाथ स्तवन', श्रीजयलाभ मुनि कृत–'मेघकुमार कथानक, श्री पद्मतिलक कृत-गर्भविचार स्तोत्र, श्री अभयदेव कृत–'संभव पार्श्वनाथ स्तोत्र, श्री गुण सागर कृत 'पार्श्व-स्तवन' इत्यादि रचनाएं हैं। 'विमलनाथ स्तवन' की भाषा पर्याप्त रूप से हिन्दी है–

तुम दासनि मन हरषा, चंदा जम चकोराजी।
राज-रिधि मांजऊ नांहि, भवि भवि दरसन तोराजी।।

देवकलश कृत 'कृषदत्ता चरित्र' इस शताब्दी की एक सुन्दर रचना है। 17वीं शताब्दी में बहुत से जैन कवियों की रचनाएं प्राप्त होती है। इनमें ब्रह्मरायमल्ल जी का 'हनूमन्तचरित्र' सं० 1616 का प्रमुख है। इस शताब्दी का महत्व पूरे हिन्दी साहित्य के इतिहास में रेखांकित है। 17वीं शताब्दी तक ऐसे कवि मौजूद थे, जो अपभ्रंश मिश्रित हिन्दी में रचना करते थे। वैसे इस समय ब्रज, अवधी लोक बोली ही साहित्यिक भाषा का रूप ले चुकी थी। 'भक्तामर' कथा और 'सीताचरत्रि' भी इन्हीं ब्रह्मरायमल्ल की रचना है। इसी शती में कविवर बनारसीदास जैसे शुद्ध हिन्दी में उत्तमोत्तम रचनाएं करने वाले पैदा हुए थे। रायमल्ल जी की रचनाएं साधारण एवं मिश्र भाषा की है। कवि ब्रह्मगुलाल ने 'कृपण बगामन कथा' नामक रोचक कथानक युक्त ग्रन्थ लिखा है। इसकी भाषा साफ-सुथरी हिन्दी है–'कुमति विभंजन सुमति करन, दुरित दलन गुणमाल। सुमतिनाथ जिन चरण को सेवहु ब्रह्मगुलाल।।' यह ग्रन्थ ब्रह्म गुलाल जी ने जितेन्द्र की मूर्ति पूजा और मुनियों को आहार-दान देने की पुष्टि में रचा था। इसकी प्रशस्ति निम्न प्रकार है–

'सुनहु कथा तुम भव्य महान, जाहि सुने मन बाई ज्ञान।
कृपन अगावन याको नाऊ, पडे गुणे ताकि बलि जाऊ।।

ब्रह्मगुलाल जी के रचे हुए अन्य ग्रन्थों का उल्लेख कामताप्रसाद ने नहीं किया है, लेकिन डा० प्रेमसागर जैन ने उनकी अन्य प्रमुख रचनाओं में 'त्रेपन-क्रिया', 'धर्मस्वरूप' 'समवशरण स्तोत्र', 'बल गायन क्रिया', और 'विवेक-चउपई' का उल्लेख किया है।[1] इसी शताब्दी में (सं० 1642) पाण्डे बिनदास के रचे हुए दो ग्रन्थ 'अम्बू चरित्र' और 'ज्ञान पूर्वोदय' के अतिरिक्त फुटकर पद भी उपलब्ध हैं। मुनि कणयंवर विरचित 'एकादश प्रतिभा' नामक रचना इसी काल में उपलब्ध होती है, जिसकी भाषा में अपभ्रंश का प्रभाव विशेष लक्षित होता है। भाव देव सूरि के शिष्य मालदेव ने सं० 1652 में 'पुरन्दर कुमार चउपई' और 'भोजप्रबन्ध' लिखा था, जो दोनों ग्रन्थ मुनि जिनविजय जी के (जैन प्रशस्ति संग्रह, सिन्धी जैन माल के संपादक) पास सुरक्षित थे। मुनि जी ने इसे हिन्दी की अच्छी और ललित रचना बताई है। इनकी रचना में प्रसाद गुण प्रमुखतः है। बसंत-ऋतु का सुन्दर वर्णन उन्होंने किया है–

1. डा० प्रेमसागर जैन–हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि, पृ० 149.

मंजरि मुख सुधकारसु, लेउ आयउ जनुपुत्र।
जहि सिसिर विधिना दियऊ अब वसन्त सिरिछत्र।।
वा श्री वन फूले सकल, कुसुमावास सहकार।
ऋतु वसन्त आगम भयउ, पिक बोले जयकार।।

पं० नाथूराम जी ने 'भोजप्रबंध' के सम्बंध में लिखा है, 'इसकी भाषा प्रौढ़ है, परन्तु उसमें गुजराती की झलक है और अपभ्रंश शब्दों की अधिकता है। वह ऐसी साफ नहीं है, जैसी उस समय के बनारसीदास जी आदि कवियों ही है। कारण कवि गुजरात और राजपूताने की बोलियों से अधिक परिचित था। वह प्रतिभाशाली जान पड़ता है।'

श्री भगवतीदास जी की रचनाएं–सं० 1680 में लिखे हुए गुटके में जो दिगम्बर जैन बड़ा मंदिर, मैनपुरी के शास्त्र भण्डार से प्राप्त होती है। यह भगवती दास प्रसिद्ध दार्शनकि भैया भगवतीदास से पृथक है और इन्होंने करीब 20, 21 ग्रन्थ लिखे हैं, जिनमें प्रमुख ये हैं–बनजारा, कंडाणा-रास, आदित्य व्रत-रासा, पखवाड़े का रास, दसलक्षणी रासा, खीचड़ी रासा, आदिनाथ-शांतिनाथ बिनति सुगन्ध-दसमी कथा, समाधि-रास, आदित्य वार-कथा, योगीरासा, रोहिणी व्रतरास, राजमती नेमिसुर और सज्ञानी इमाल नाम रचनाएँ मुख्यत: है। इनकी भाषा अपभ्रंश युक्त हिन्दी है। 'कवि भगवतीदास की कविता में आकर्षण है, वह जन-साधारण के मन को मोहनेवाली है और उन्हें अध्यात्म-रस का पान कराती है। काम-शत्रु को जीतने के लिए वह खूब कहते हैं–

जगमहिं जीवनु सपना, मन मनमथ, परहरिये।
लोह-कोह-मय-माया, तजि भवसागर तरिये।।[1]

इनकी सभी रचनाएं जनहित को दृष्टि में रखकर लिखी गई है। जगभूषण गुरु के शिष्य कवि सालिवाहन ने सं० 1695 में आगरे में 'हरिवंश पुराण' की रचना की थी, जो संस्कृत के श्री विनयेनाचार्य कृत 'हरिवंश पुराण' का पद्यानुवाद है, ऐसा कवि ने स्वयं स्वीकारा है। कविता साधारण है, लेकिन कवि ने इसमें एक जगह हिन्दी को 'देवगिरा' कहकर सम्बोधित किया है, जिससे प्रतीत होता है कि उस समय आगरे में हिन्दी पूज्य भाव से देखी जाती होगी।

पाण्डे हरिकृष्ण जी मुनि विनयसागर के शिष्य थे और उन्होंने 'चतुर्दशी-व्रत कथा' सं० 1699 में रची थी। इनकी और भी रचनाएं उपलब्ध होती है। सं० 1666 में पं० बनवारीलाल जी ने 'भविष्यदत्त चरित्र' की रचना की थी, जो

1. आ. कामताप्रसाद जैन–हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० 102.

घनपाल कवि द्वारा अपभ्रंश-प्राकृत में रचे गये। 'भविष्यदत्त चरिउ' का पद्यानुवाद है। वीर रस से परिपूर्ण इस रचना में वणिक पुत्र भविष्यदत्त की कथा है–

रण संग्राम पीठ नहीं देऊ, हांको सुभट जगत यश लेऊं।
परचक्री आन लगाऊं पाय, तो मुंह दिखाऊं तुझको आय।।

शत्रु को पराजीत कर अपने राजा हस्तिनापुर भूपाल के चरणों में बंदी बनाकर डाला–'जहां बैठा जू नरिंद भोपाल, चरणे ले मेल्हा ततकाल, राय भोपाल आनंद मन मया, बहु सनमान भविस का किया।

श्वेताम्बर साधु जिनचन्द सूरि के शिष्य कल्याण देव ने सं॰ 1643 में 'देवराज वच्छूराज चौपाई' की रचना की थी, जिसमें गुजराती भाषा का प्रभाव लक्षित होता है।

'अंजनासुन्दरीरास' श्री हिरविजयसूरि की शिष्य-परंपरा के शिष्य गणि महानंद ने सं॰ 1661 में रचा था। इसमें भी गुजराती भाषा के प्रभाव से अनुमान किया जाता है कि गणिमहानंद जी गुजरात के अधिवासी या उससे सम्बन्धित होंगे। जैसे–

खेलई खेल खण्डों मोकली सहियर साथ,
अंजनासुन्दरी सुन्दरी मंजरि ग्रही करी हाथ।

प्रशस्ति में कवि ने हिरविजयसूरि और अकबर की मुलाकात का वर्णन किया है और हिरविजयसूरि के प्रतिबोध से बादशाह ने प्रसन्न होकर गुरु को सम्मान देने की बात बताई है।

कवि हेमविजय जी अन्धे लेकिन विद्वान् एवं सहृदयी कवि थे। इनके गुरु के गुरु भी हिरविजयसूरि ही थे। उन्होंने संस्कृत में 'कथा रत्नाकर' ग्रन्थ की ओर हिन्दी में छोटे-छोटे पदों की रचनाएं की हैं। अपने गुरु विजयसेन सूरि की प्रशंसा में 'विजय प्रशस्ति' नामक संस्कृत रचना है। 'मिश्र बन्धु-विनोद' में भी उनका उल्लेख मिलता है। तीर्थंकर की स्तवना के पद भी काफी मिलते हैं।

कवि रूपचन्द जी या पाण्डे रूपचन्द जी मध्यकाल के प्रमुख भावुक, सहृदयी एवं उच्च कोटि के कवियों में से एक प्रसिद्ध कवि हैं। वे कविवर बनारसीदास जी के समकालीन ही थे। स्वयं बनारसी दास जी ने इन्हें बहुत बड़ा विद्वान एवं जैन धर्म के मर्मज्ञ बताया है। उनके 'परमार्थी-दोहा-शतक' के अध्ययन से उनका आध्यात्मिक ज्ञान झलकता है। प्रेमी जी ने उनकी रचनाओं को 'जनहितैषी' में प्रस्तुत कर उनको उच्च कोटि के कवि घोषित किया है। कवि आध्यात्मिक ढंग से कहते हैं–

चेतन चित्त परिचय बिना, जप तप सवे निरत्थ।
कन बिन तुस बिमि फटकतें, आवे कछु न हाय।।

कवि चेतन-जगत की सहाय के बिना किये गये जप-तप को वृथा समझते हैं। कवि की वाणी में संत की सच्चाई एवं लोक-व्यवहार का ज्ञान भी भरा पड़ा है, अब कवि कहते हैं–

भ्रम तें मूल्यो अपनपो,खोजत किन घट मांहि।
बिसरी वस्तु न कर चढ़े, जो देखें घर चाहि।।

'गीत परमार्थी' भी उन्हीं की रचना बतलाई गई है। प्रेमी जी को उनके बहुत से फुटकल पद मिलते हैं। इनकी कविता में भावपूर्ण प्रवाह निरन्तर बहता रहता है। कवि सदगुरु की स्तुति करते हुए कहते हैं–

चेतन! अचरज भारी, यह मेरे जिय आवे,
अमृत वचन हितकारी, सदगुरु तुहिं पठावें।
सदगुरु तुमहि पठावे चित दे, अरू तुमहू हो ज्ञानी,
तब हू तुमहिं न कबों हू अबो, चेतन तत्व कहानी।।

इनका लिखा हुआ 'मंगलगीत प्रबन्ध' जैन समाज में 'पंचमंगल' के नाम से अत्यन्त लोकप्रिय है, जो आज भी नित्य-प्रति जैन मंदिरों में गाया जाता है। इसमें तीर्थंकरों के पंच-कल्याण महोत्सव सम्बंधी स्तुति-वंदना की गई है। पं॰ नाथूराम जी का अनुमान है कि वे किसी भट्टारक के शिष्य थे। उनकी पाण्डे संज्ञा भी इसी अनुमान का समर्थन करती है, क्योंकि उस समय भट्टारकों के शिष्य पाण्डे कहलाते थे।[1] प्रेमसागर जैन ने इनकी अन्य रचनाओं में 'परमार्थी दोहाशतक', 'नेमिनाथ रासा' और 'सटोलागीत' का उल्लेख किया है।[2] वैसे रूपचन्द नाम के चार कवि मिलते हैं लेकिन पं॰ बनारसीदास के अभिन्न मित्र और उनके साथ बैठकर अध्यात्म की चर्चा करने वाले ही प्रधान पाण्डे रूपचन्द जी उपर्युक्त ग्रन्थों के रचयिता हैं। संवत् 1670 में कवि नंदलाल नाम के बड़े कवि हुए, जिनके गुरु भट्टारक त्रिभुवन कीर्ति बहुत प्रख्यात थे। नंदलाल जी ने तीन ग्रन्थ लिखे थे–यशोधर चरित, सुदर्शन चरित और गूढ़विनोद। 'यशोधर चरित' की कथावस्तु बहुत प्राचीन है, क्योंकि अपभ्रंश काल से नंदलाल तक कितनों ने इसी कथावस्तु पर ग्रन्थ निर्माण किया है। इस ग्रन्थ की विशेषता भाषा की प्रासादिकता एवं गतिशीलता में है। काव्यत्व की दृष्टि से इसमें

1. पं॰ नाथूराम प्रेमी–हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ॰ 78.
2. डा॰ प्रेमसागर जैन–हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि, पृ॰ 169.

नयापन है। आगरे की सुन्दरता एवं जिनालयों की भव्यता का भी इसमें सुन्दर वर्णन किया गया है। 'सुदर्शन चरित' पर अपभ्रंश के 'सुसंणचरिउ' का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। 'गूढ़विनोद' में अध्यात्म सम्बन्धी पद और गीत संग्रहीत हैं।

सं॰ 1678 के कवि सुन्दरदास जी हिन्दी के प्रसिद्ध सुन्दरदास जी से पृथक् जैन कवि हैं ऐसा अनुसन्धान के पश्चात् निश्चित माना जाता है। उनके चार ग्रन्थों का पता चलता है—सुन्दर सतसई, सुन्दर विलास, सुन्दर शृंगार और पाखण्ड पंचासिका। कामताप्रसाद जी के इतिहास में इनका उल्लेख विस्तार से किया गया है। उनके सभी ग्रन्थों में जिन भक्ति झलकती है। कवि मनुष्य को जागृत होने की चेतावनी देकर प्रभु-भक्ति करने की सीख देते हैं—मनुष्य की अज्ञानता पर कवि दु:खी होकर कह उठते हैं—

पाथर की करि नाव पार दधि उतर्‌यों चाहें,
काग उड़ावनि काज मूढ़ चिन्तामनि बाहें।
बसें छांट बादल तणी रचे घूम के घाम,
करि कृपाण सेज्या रमे ते क्यों पावे विसराम।।

पंडित बनारसीदास जी केवल इसी शताब्दि या जैन साहित्य के ही नहीं, अपितु हिन्दी साहित्य के भी जगमगाते हुए अमूल्य रत्न हैं। उनकी कवित्व शक्ति सचमुच ही अद्‌भुत एवं सारगर्भित थी। हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्रथम आत्म कथाकार और नाटककार के रूप में उनका स्थान निश्चित है। समाज की गतिविधि समझकर परिवर्तन करने की अपार शक्ति उनमें भरी पड़ी थी। हिन्दू-मुस्लिम एकता की नींव सबसे पहले उन्होंने ही डाली थी—'एक हिन्दू पुरुष, दूजी दशा न कोई। दोऊ भूले भरम में, भये एक सो दोऊ' कहकर उन्होंने आध्यात्मिक रूपक में एकता की भूमिका ही प्रस्तुत की है। कवि ने अपनी आत्मकथा 'अर्द्ध-कथानक' में सच्चाई से सभी प्रसंगों को हार्दिक रूप से प्रस्तुत कर उसे जीवंत एवं हृदयंगम बनाया है। इस कृति को पूरे हिन्दी साहित्य के लिए गौरव की चीज समझी जानी चाहिए। इसके सम्बन्ध में पं॰ बनारसीदास चतुर्वेदी का अभिमत है कि—'अर्द्ध-कथानक' का महत्व केवल जैन-साहित्य के दृष्टिकोण से ही नहीं, अपितु समग्र हिन्दी साहित्य के लिए काफी महत्वपूर्ण है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में इस ग्रन्थ का एक विशेष स्थान तो होगा ही, साथ में ही इसमें वह संजीवनी शक्ति विद्यमान है, जो इसे अभी कई सो वर्ष और जीवित रखने में सर्वथा समर्थ होगी। हिन्दी का तो यह सर्वप्रथम आत्म चरित है ही, पर अन्य भाषाओं में इस प्रकार और इतनी पुरानी

पुस्तक मिलना आसान नहीं है।" अर्द्ध-कथानक की नाथूराम प्रेमी की बम्बई-वाली आवृत्ति अन्य आवृत्तियों की अपेक्षा विशेष प्रामाणिक है। प्रेमी जी इस कृति के विषय में अपने इतिहास में लिखते हैं–यह ग्रन्थ उन्हें (कविवरजी को) जैन साहित्य के ही नहीं, सारे हिन्दी साहित्य के बहुत ही ऊँचे स्थान पर आरुढ़ कर देता है। इस दृष्टि से तो वे हिन्दी के बेजोड़ कवि सिद्ध होते हैं। + + + +हिन्दी में ही क्यों, हमारी समझ में शायद सारे भारतीय साहित्य में (मुसलमान बादशाहों के आत्म चरितों को छोड़कर) यही एक आत्म चरित है, जो आधुनिक समय के आत्म चरितों की पद्धति पर लिखा गया है।[1]

कवि ने सर्वप्रथम शृंगार रस से ओत-प्रोत 'नवरस पदावली' की रचना की थी, लेकिन शान्त रस को महत्व देने वाले इस सुरुचिपूर्ण स्वभाव वाले कवि को ऐसी रचना लोकहित के लिए मान्य कहाँ ? उन्होंने इसे गोमती के जल-प्रवाह में डूबो दिया, क्योंकि लोक-कल्याण ही उनका परम उद्दिष्ट था। इसीलिए तो वे कहते है–'मेरे नेनन देखिए घट-घट अन्तर राम' कवि चाहते हैं कि अज्ञान की पट्टी को खोलकर, लोक-पराधीनता की शृंखला तोड़कर आत्म-स्वतंत्रता प्राप्त करने के उपरान्त ही परम सुख प्राप्त हो सकता है–

जब चेतन मालिम बजे, लखें पिपाक नजूम।
डारे समता शृंखला, थके भंवर की घूम।।

इस प्रकार चेतना की जागृति को ही महत्व देने वाले कवि सचमुच ही क्रांतिकारी भी थे। इसीलिए कामताप्रसाद जी लिखते हैं–बनारसीदास जी एक महान क्रान्तिकारी सुधारक विश्व कवि थे। वह सारे विश्व की हितकामना के रंग में रंगे हुए थे।[2] कविंवर आतमराम को जागृत करने के लिए माया के बंधनों को कम करने के लिए कहते हैं–माया की संगति से सुख-प्राप्ति संभव कैसे? जैसे–

'माया छाया एक है, घटे बढ़े छिन मांहि
इनकी संगति जें लगें, तिनहिं कही सुखवाहिं।।

ज्यों काहू विषधर डसै, रुचि सों नीम चवाय।
त्यों तुम माया सों मड़े, मगन विषय सुख्र पाय।।

पं० नाथूराम जी कविवर का परिचय देते हुए उचित ही लिखते हैं कि 'इस शताब्दि के जैन कवियों और लेखकों में हम कविवर बनारसीदास जी को

---

1. पं० नाथूराम प्रेमी–हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० 40.
2. आ. कामताप्रसाद जैन–हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० 112.

सर्वश्रेष्ठ समझते हैं। यही क्यों, हमारा तो ख्याल है कि जैनों में इनसे अच्छा कोई कवि हुआ ही नहीं। ये आगरे के रहने वाले श्रीमाल वेश्य थे। इनका जन्मा माघसुदी 11 सं॰ 1643 को जोनपुर नगर में हुआ था। इनके पिता का नाम अगरसैन था। वे बड़े ही प्रतिभाशाली कवि थे। अपने समय के ये सुधारक थे। पहले श्वेताम्बर सम्प्रदाय के अनुयायी थे, पीछे दिगम्बर संप्रदाय में सम्मिलित हो गये थे, परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि इनके विचारों से साधारण लोगों के विचारों का मेल नहीं खाता था। वे अध्यात्मी और वेदान्ती थे। क्रियाकाण्ड को ये बहुत महत्व नहीं देते थे। इसी कारण बहुत से लोग उनके विरुद्ध हो गये थे।[1]

बनारसीदास आगरे में अपने साथियों के साथ अध्यात्म की चर्चा निरन्तर करते रहते थे क्योंकि इस समय आगरा अध्यात्म रसिक विद्वानों का केन्द्र था। पाण्डे रूपचन्द जी भी वहीं रहते थे और कवि के अभिन्न मित्र थे। बनारसीदास की सभी फुटकर रचनाओं का संग्रह 'बनारसी विलास' नाम से सं॰ 1701 में किया गया था। कवि बहुमुखी प्रतिभा के स्वामी थे। बचपन से ही प्रतिभा संपन्न होने से 14 वर्ष की छोटी आयु में ही 'नवरस-ग्रन्थ' बना डाला था। इसके अतिरिक्त वे अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत, प्राकृत एवं अरबी-फारसी भी जानते थे। उनकी प्रतिभा के विषय में अनेक किवदंतियाँ प्रचलित हैं। जिनमें एक सम्राट जहांगीर एवं गोस्वामी तुलसीदास से उनकी भेंट की भी है। वैसे समकालीन होने से भेंट की संभावना भी बनी रहती है, लेकिन जब तक प्रमाण न मिले तब तक किवदंती ही समझना उचित है। उसी प्रकार सन्त कवि सुन्दर दास जी से भी उनकी मुलाकात की कथा मिलती है। जो हो, इतना अवश्य है कि बनारसीदास जी उच्च कवित्व शक्तिवाले बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न एवं सुधारक विचार के सहृदयी कवि थे। उनके विषय में सब कुछ लिखा जाय तो एक अलग प्रकरण ही हो जायें। अतः स्थल-संकोच के कारण उनकी प्रमुख कृतियों का उल्लेख कर देना उपयुक्त होगा।

जन्मजात प्रतिभा शक्ति वाले इस कवि ने 14 वर्ष की अल्पायु में प्रथम रचना 'नवरसपदावली' का सर्जन किया, जिसमें शृंगार रस की अधिकता देखकर गोमती के प्रवाह में बहा दी। इसमें एक हजार दोहा-चोपाई लिखे गये थे। इसके पश्चात् उन्होंने जो प्रौढ़ रचनाएं लिखीं, वे साहित्य और धर्म के लिए बड़ी महत्व की है। ये कृतियां निम्नलिखित हैं–

1. नाममाला :

175 दोहों का छोटा-सा शब्द कोष है, जो उन्होंने सं॰ 1670 में जौनपुर

1. पं॰ नाथूराम प्रेमी–हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ॰ 38.

में लिखा था और वीर सेवा मंदिर, सरसोवा द्वारा प्रकाशित किया जा चुका है।

2. नाटक-समय सार :

कविवर जी की यह अत्यन्त प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण कृति है। इसमें इन्होंने वृतियां, इन्द्रियों तथा कर्मों को पात्र के रूप में रखा है। आध्यात्मिक प्रतीकात्मक नाटक में कवि ने अलौकिक आनंद की सृष्टि पैदा कर दी है। वैसे इस ग्रन्थ पर पूर्वाचार्यों के ग्रन्थों का प्रभाव जरूर है, फिर भी यह मौलिक ग्रन्थ ही कहा जायेगा। हिन्दी-नाटक साहित्य में प्रथम नाटक का गौरव इसी ग्रन्थ को मिलता है। कवि ने इसमें लौकिक व्यवहारिक ज्ञान के साथ आध्यात्मिक गरिमा को भी शामिल कर दिया है। इसमें कवि समताभाव गुण के विषय में कहते हैं–

जा के घट समता नहीं, ममता मगन सदीव।
रमता राम न जानहीं, सो अपराधी जीव।

जीव और शरीर की भिन्नता का विशिष्ट वर्णन करते हुए कवि कहते हैं–

देह अचेतन प्रेत वही रज, रेत भरी मल खेत की क्यारी।
व्याधि की पोट आधिकी ओट, उपाधि की जोट समाधि सों न्यारी।
रे जिय! देह करे सुख हानि, इते परि तो हितु लागत प्यारी।
देह तु तो हि तजेगी निदान वि, तूं हित जे क्यूं न देहकि यारी।।[1]

3. बनारसी विकास :

सं॰ 1701 में पं॰ जगजीवन कवि ने कविवर के फुटकर 57 पदों का संग्रह किया था। प्राय: उनकी जीवितावस्था में ही उनके पदों का संग्रह किया गया था, क्योंकि उनकी अंतिम रचना 'कर्म-प्रकृतिविधान' के 25 दिन बाद ही ये संग्रहीत किये गये थे। यदि इस 25 दिन के क्षणिक अन्तराल में यदि कवि का निधन न हो गया होता तो अश्वय पं॰ जगजीवनराम जी इसका उल्लेख करते।

4. अर्द्ध-कथानक :

यह कविवर जी की अपूर्व रचना है। हिन्दी साहित्य की सर्वप्रथम मौलिक जीवनी का श्रेय इस रचना को दिया जाता है। सं॰ 1698 तक ही छोटी-बड़ी सभी घटनाओं का कवि ने इसमें वर्णन किया है। जीवन की प्रमुख आवश्यकता वास्तविकता एवं रोचकता दोनों का कवि ने बखूबी निर्वाह किया है। ग्रन्थ के अन्त में उन्होंने लिखा है कि आजकल की उत्कृष्ट आयु के

---

1. आ. कामताप्रसाद जैन–हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ॰ 119.

अनुपात से 55 वर्ष की आयु आधी कहलायेगी, इसलिए 'अर्द्ध-कथानक' नाम उचित प्रतीत होता है। इस कृति के विषय में पहले थोड़ा बहुत लिखा जा चुका है। पं॰ बनारसीदास चतुर्वेदी ने इस ग्रन्थ की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए लिखा है कि–'कविवर बनारसीदास का दृष्टिकोण आधुनिक आत्मचरित लेखकों के दृष्टिकोण से मिलता जुलता है। अपने चारित्रिक दोषों पर उन्होंने पर्दा नहीं डाला है, बल्कि उनका विवरण इस खूबी के साथ दिया है, मानों कोई वैज्ञानिक तटस्थ वृत्ति से कोई विश्लेषण कर रहा हो। कविवर बनारसीदास जी आत्मचरित लिखने में सफल हुए इसके कई कारण हैं, उनमें एक तो यह है कि उनके जीवन की घटनाएं इतनी वैचित्र्यपूर्ण है कि उनका यथाविधि वर्णन ही उनकी मनोरंजकता की गारंटी बन सकता है। और दूसरा कारण यह है कि कविवर में हास्य रस की प्रवृत्ति अच्छी मात्रा में पाई जाती है। अपना मजाक उड़ाने का कोई मौका वे नहीं छोड़ना चाहते। सबसे बड़ी खूबी इस आत्म चरित की यह है कि वह तीन सौ वर्ष पहले का साधारण भारतीय जीवन ज्यों का त्यों उपस्थित कर देता है।[1] प्रेमी जी लिखते हैं–'इसमें कवि ने अपने गुणों के साथ-साथ दोषों का भी उद्घाटन किया है और सर्वत्र सच्चाई से काम लिया है।[2] इस ग्रन्थ की भाषा के विषय में स्वयं कवि ने कहा है कि 'वह मध्यदेश की बोली में लिखा जायेगा, 'मध्यदेश की बोली बोधि, गर्भित बात कही हिय सोलि।' 675 दोहा, चौपाई में यह आत्मकथा लिखी गई है। अर्द्ध-कथानक से स्पष्ट है कि कवि के जीवन में सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे अच्छाई और बुराई का विश्लेषण करते हुए जीवन को अच्छाई की ओर बढ़ाते ही गये। वे किसी एक रीति, की रिवाज या परम्परा से चिपके न रहे थे। पं॰ चतुर्वेदी जी ने उचित ही लिखा है कि–"अपने को तटस्थ रखकर अपने सत्कर्मों तथा दुष्कर्मों पर दृष्टि डालना, उनको विवेक की तराजू पर बावन तोले पाव रत्ती तोलना सचमुच एक महान कलापूर्ण कार्य है।[3] डा॰ माताप्रसाद गुप्त का कथन है–'कभी-कभी यह देखा जाता है कि आत्मकथा लिखनेवाले अपने चरित्र के कालिमापूर्ण अंशों पर एक आवरण सा डाल देते हैं, यदि उन्हें सर्वथा बहिष्कृत नहीं करते, किन्तु यह दोष प्रस्तुत लेखक में बिल्कुल नहीं है।[4]

5. मोह-विवेक-बुद्धि :

इसमें 110 पद्य हैं और दोहा-चौपाई छन्द का प्रयोग लिखा गया है।

1. पं॰ बनारसीदास चतुर्वेदी–अर्द्धकथानक की भूमिका, पृ॰ 2, 3.
2. पं॰ नाथूराम प्रेमी–हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ॰ 22.
3. पं॰ बनारसीदास चतुर्वेदी–हिन्दी का प्रथम आत्मचरित, अनेकान्त, वर्ष 5, पृ॰ 21.
4. माताप्रसाद गुप्त–अर्द्धकथानक, आवृत्ति प्रयाग, भूमिका, पृ॰ 14.

इसकी अनेकानेक हस्तलिखित प्रतियां प्राचीन भण्डारों से प्राप्त होती हैं। इसमें आध्यात्मिक चर्चा एवं भक्ति सम्बंधी पद मिलते हैं। जिन भक्ति की प्रसंशा करते हुए कवि कहते हैं–

श्री जिन भक्ति सुदृढ़ जहां, सदैव मुनिवर संग।
कहै क्रोध तहां में नहीं, लखो सुआतम रंग।।
अविभा चारिणी जिन भगति, आतम अंग सहाय।
कहें काम ऐसी जहां, मेरी तहां न बसाव।।

यह उनकी प्रारंभिक रचना हो ऐसा प्रतीत होता है। वैसे इस कृति के अंतिम तीन पदों में बनारसी का नाम दिया हुआ है लेकिन प्रेमी जी इसे अन्य बनारसीदास नामक कवि की रचना मानते हैं। इस कृति के विषय में ठोस निर्णय नहीं हुआ है कि यह उनकी ही प्रारंभिक कृति होगी।

6. मांझा :

यह रचना जयपुर के बुधीचन्द जी के मंदिर गुटका नं॰ 28 में निबद्ध है। इसमें 13 पद्य हैं।[1] इनकी समग्र कृतियों के काव्यत्व में यही कहा जायेगा कि–'उनकी रचनाओं में रस-प्रवाह है और गतिशीलता भी। जीवन्त भाषा और स्वाभाविक भावोन्मेष उनका मुख्य गुण है।[2]

मनरामजी 17वीं शती के उत्तरार्द्ध में हो गये थे और बनारसीदास जी के समकालीन कवि थे। उन्होंने बनारसीदास का नाम श्रद्धापूर्वक लिया है। बनारसीदास की भांति आध्यात्मिक रस से ओत-प्रोत उनकी कविता है। इनकी कविता में खड़ी बोली के शब्दों का प्रयोग बहुतायत से मिलता हैं, उस पर से लगता है कि वे मेरठ के आसपास के होंगे। उनकी रचनाओं में संस्कृत भाषा के शब्दों का प्रभाव भी लक्षित होता है। 'मनराम विलास' उनकी प्रमुख रचना है। दोहा, सवैया और कवित्त छन्दों में यह सुभाषित काव्य संग्रह लिखा गया है। प्रारंभ में पंचपरमेष्ठि को भक्तिभावपूर्वक नमस्कार करते हुए कवि लिखते हैं–

करमादिक अरिन को हरे अरहंतनाम,
सिद्ध करे काज सब सिद्ध हो भजत है।
सुगुन गुन आचरण बाकी संग,
आचारण भगति बसत जाके मन है।।

---

1. डा॰ प्रेमसागर जैन–हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि, पृ॰ 193.
2. वही, पृ॰ 182.

उपाध्याय ध्यान ते उपाधि सम होत,
साघ परिपून को सुमिरन रहे।
पंचपरमेष्ठि को नमस्कार मंत्रराज धावै,
मन राम कोई पावे निज धन है॥

रोगापहार स्तोत्र, बत्तीसी, बड़ाकक्का, अक्षरमाला, धर्मसहेली, गुणाक्षरमाला, और अनेक फुटकर पद उनके प्राप्त होते हैं।

कुंवरपाल जी वि॰ सं॰ 1684 में हुए और बनारसीदास जी के अभिन्न पांच कवि मित्रों में से एक थे। उनकी 'धर्म-शैली' के उत्तराधिकारी वे ही थे। उन्होंने कोई विशेष ग्रन्थ नहीं रचा है, लेकिन फुटकर पदों की संख्या मिलती हैं। बनारसीदास जी की मण्डली में उनका काफी सम्मान था। पाण्डे हेमराज ने भी उनको 'कोरपाल ग्याना अधिकारी' कहा है। 'समवित बत्तीसी' उनकी 33 पद्यों की रचना है, जिसमें अध्यात्म रूप रस की चर्चा की है।

विशाल कीर्ति जी ने 'रोहिणीव्रतरास' नामक ग्रन्थ धर्मपरी नामक स्थान में रचा था। वे बागड़ देश के सागवाडिया संध के साधु भट्टारक थे। यह एक साधारण रचना है। विजयदेव सूरिका रचा हुआ एक 'सीलरासा' भी इसी शती में प्राप्त होता है, जिसकी भाषा गुजराती मिश्रित है और नेमि-राजुल जी की प्रसिद्ध कथा-वस्तु को लिया गया है।

यशोविजय की उपाध्याय इस शताब्दी के प्रमुख कवि, आचार्य एवं विद्वान पंडित हैं। वे केवल आचार्य ही नहीं थे, बल्कि रसपूर्ण साहित्य के ज्ञाता एवं सर्जक भी थे। वे बहुत की उच्च कोटि के शास्त्रकार भी थे। 300 से अधिक उनके ग्रन्थों की सूची है। भक्ति और अध्यात्म की रचनाएं भी उन्होंने काफी लिखी हैं। वे जन्मजात प्रतिभा संपन्न एवं शीघ्र कवित्व शक्ति के साथ असाधारण तीव्र याद शक्ति वाले थे। गुजरात के होने पर भी बनारस तथा आगरा न्याय, वेदान्त एवं अन्य शास्त्रों का गहरा अध्ययन उन्होंने थोड़े ही वर्षों में किया और उनमें पारंगत भी हुए। विद्याभ्यास के बाद गुजरात में आने के बाद उनका भव्य सम्मान किया गया और उन्हें 'उपाध्याय' की पदवी से विभूषित किया गया। गुजराती के अलावा संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और हिन्दी पर उनका समान अधिकार था। चारों भाषाओं में उन्होंने जमकर काफी लिखा। 'श्रीमद् हेमचन्द्राचार्य के उपरान्त भारतीय धरा एक बार फिर प्रकाण्ड विद्वता के तेज से गौरवान्तिव हो उठी थी।[1] उनकी 300 कृतियों में प्रमुखतः छन्द, अलंकार, रस, व्याकरण और न्याय की रचनाओं के साथ काव्यकृतियां भी हैं, उनमें 'खण्डन-खण्डस्वाद्य' जैसे ग्रन्थ उनकी ऐसी विद्वता के कीर्ति स्तंभ है। सज्जाय, पद और स्तवनों के

1. डा॰ प्रेमसागर जैन—हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि, पृ॰ 201.

संग्रह 'जसविलास' में 75 मुक्त पद्यों संग्रहीत हैं। सभी पद जिनेन्द्र की भक्ति से सम्बन्धित है। आराध्य देव की निष्ठापूर्वक भक्ति में लीन होकर कवि गाते हैं–

हम मगन भये प्रभु ध्यान में।
बिसर गई दुविधा तन-मन की, अचिरा सुत गुन गान में।
हरिहर पुरदंर की रिषि आवत नहि कोउ मान में।
चिदानंद की मौज मची है, समता-रस के पान में।
इतने दिन तूं नाहि पिछाव्यो, जनम गंवायो अजान में।
अब तो अधिकारी हुये बैठे, प्रभु गुन अखय खजान में।
गई दीनता सभी हमारी, प्रभु तुझ समकित दान में।
प्रभु गुन अनुभव के रस आगे, आवत नहिं कोउ ध्यान में।।

कविनन्द ने सं॰ 1670 में 'यशोधर-चरित भाषा चोपाई' नामकग्रन्थ रचा। उनका 'सुदर्शन चरित्र' भी पंचायती मंदिर दिल्ली से प्राप्त होता है।

कर्मचन्द्र कृत 'मृगावती चोपाई' भी इसी शती की रचना मानी गई है। वागड़ देश के निवासी सुन्दरदास जी ने 'सुन्दर सतसई' और 'सुन्दर-विलास' नामक दो ग्रन्थों की रचना की थी। इसमें कवि ने बड़ी सुन्दरता से लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग किया है। अध्यात्मिक ज्ञान की चर्चा कवि ने प्रमुख रूप से की है।

जिया मेरे छांड़ि विषय रस ज्यों सुख पावें।
सब ही विकार जति जिन गुण गावें।
घरी घरी पल पल जिन गुण गावें।
तामें चतुर गति बहुरि न आवें।
जो नर निज समग्र चित्त लावे।
सुन्दर कहत अचल पद पावें।।

मुनि सुमतिकीर्ति ने सं॰ 1625 में 'धर्मपरीक्षा रास' नामक ग्रन्थ लिखा था। कवि छीतर ने 'होली की कथा' नामक साधारण कोटि का ग्रन्थ लिखा था। उसी प्रकार उज्जैन निवासी कवि विष्णु ने सं॰ 1666 में 'पंचमी व्रत कथा' की रचना की, जिसमें भविष्यदत्त की कथा वस्तु ली गई है। भानुकीर्ति मुनि ने सं॰ 1608 में 'रविव्रतकथा' और त्रिभुवन कीर्ति ने 'जीवनधर रास' नामक कृति की रचना की थी। कवि गुणसागर कृत 'द्वालसागर' भी प्राचीन भण्डार से प्राप्त होता है।

पाण्डे हेमराज जी 17वीं शती के अंतिम चरण एवं 18वीं शती के प्रथम पाद के महत्वपूर्ण कवि, आचार्य हुए, जिनकी तीन कृतियां उपलब्ध होती

हैं-'प्रवचन सार टीका', 'पंचास्तीकाय टीका', और 'भाषा भक्ताभर'। प्रथम दोनों गद्य की रचना है और 'भाषा-भक्तामर' मानतुंगाचार्य के स्तोत्रों का हिन्दी पद्यानुवाद है। उन्होंने 'गोम्मटसार' और 'नयचक्र' की वचनिका भी लिखी थी। उनकी एक अन्य 'सीतपट चौरासी बोल' नामक कृति है। जिसके विरोध में यशोविजयजी ने 'दिक्पट चौरासी बोल' को रचा था।

'मिश्रबन्धु विनोद' के आधार पर से प्रेमी जी ने सत्रहवीं शती के निम्नलिखित कवियों का उल्लेख किया है-

उदयराज जती ने कुछ राजनीति सम्बंधी दोहे लिखे थे।

विद्याकमल जी ने सं० 1669 ने सं० 1669 में 'भगवतीगीता' नामक स्तवनों का संग्रह रचा था। मुनि लावण्य ने 'रावण मंदोदरी संवाद' सं० 1669 में बनाया था। गुणसूरि ने सं० 1696 में 'ढोलासागर' बनाया। लूणसागर ने सं० 1689 में 'अंजनासुन्दरी संवाद' नामक ग्रन्थ रचा था।[1] इसी शती में कृषिराय कृत 'सुदर्शन चरित्र' अज्ञात कवि कृत 'त्रोयनक्रिया रास' और सोमकीर्ति जी की 'यशोधर रास' की हस्तलिखित प्रति उपलब्ध होती है। तदुपरान्त पं० पृथ्वीपाल जी अग्रवाल की 'श्रुतपंचमीरास' और पं० वीरदास जी की 'सीख पचीसी' की प्रति भी प्राप्त होती है।

इस काल का गद्य :

इस काल में गद्य का भी थोड़ा-बहुत सृजन होने लगा था, यद्यपि साहित्य सृजन मुख्य रूप से पद्य में ही होता था। इस काल के गद्य पर ब्रज-अवधी का काफी प्रभाव था। यह गद्य कहीं-कहीं पद्यमिश्रित भी था। वैसे खड़ी बोली पद्य का श्रीगणेश इस काल में हो चुका था। इस समय पद्य की काफी समृद्ध रचनाएं प्राप्त होती है, लेकिन गद्य का एक ही ग्रन्थ मिलता है। कामताप्रसाद जी लिखते हैं-'इस काल की गद्य में लिखी हुई केवल एक ही बड़ी कृति हमारे ज्ञान में आई है वह है 72 पत्रों में लिखा हुए श्री शाहमहाराज-पुत्र रायरघुकृत 'प्रद्युम्न चरित' नामक ग्रन्थ। इसकी एक प्राचीन प्रति सं० 1698 की लिखी हुई श्री जैन मंदिर, शेठ का कूंचा दिल्ली के शास्त्र भण्डार में मौजूद है।[2] तदुपरान्त पं० बनारसीदास जी ने भी गद्य के कुछ अंश लिखे थे। इसका नमूना दृष्टव्य है-

'अथ परमार्थ वचनिका लिख्यते। एक जीवदृव्य ताके अनन्त गुण अनन्त पयार्य। एक-एक गुण के असंख्यात प्रदेश, एक एक प्रदेशनि विषे अनन्त

1. पं० नाथूराम प्रेमी-हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास, पृ० 53.
2. श्री कामताप्रसाद जैन-हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० 135.

कर्मवर्गणा, एक-एक कर्मवर्गणा विषे अनन्त-अनन्त पुद्‌गल परमाणु, एक-एक पुदगल परमाणु अनन्त गुण अनन्त पर्याय सहित विराजमान। यह एक संसारावस्थित जीव पिण्ड की अवस्था।

इसी प्रकार श्री बड़ा जैन मंदिर मैनपुरी के शास्त्र भण्डार में एक विदुषीरत्न तल्हो की 'सम्यकत्व के दस भेद' नामक गद्य की पुस्तक भी मिलती है। इस पर संस्कृत भाषा का प्रभाव दिखाई पड़ता है। "जैसे-वीतराग की आज्ञा मात्र रुचि होई नान्यथावादिनो जिन। एवं आज्ञा सम्यकत्वं ज्ञातव्यं"।। 1 ।।

इस प्रकार इस काल में हिन्दी-जैन-साहित्य की काफी प्रगति हुई थी। कविताएं अध्यात्म-रस से छलकती व निष्ठापूर्ण लिखी गई। कवि भी काफी बड़े-बड़े हुए। गद्य का विकास भी आदिकाल की अपेक्षा अच्छा हुआ। खड़ी बोली का स्वरूप गद्य-पद्य दोनों में दिखाई पड़ने लगा। आध्यात्मिकता के साथ जनहित की भावना स्पष्ट प्रतीत होने से जैन साहित्य को साम्प्रदायिक साहित्य समझकर अछूता नहीं रखना चाहिए। कामताप्रसाद जैन इस काल के साहित्य के विषय में लिखते हैं-'निःसंदेह इस काल को हिन्दी जैन साहित्य के पूर्व युग में 'स्वर्णकाल' कहना चाहिए। इसमें न केवल उत्कृष्ट गद्य के प्रारंभिक दर्शन होते हैं, प्रस्तुत जैन साहित्य के सर्वोत्कृष्ट हिन्दी कवि गण इसी काल में हुए। इस काल के जैन कवियों की रचनाएँ मुख्यतः आध्यात्मिक वेदान्त को लक्ष्य करके लिखी गई हैं। उस समय आध्यात्मिक शैली की साहित्य रचना सामायिक साहित्य प्रगति के सर्वथा अनुकूल थी।[1] बनारसीदास, पाण्डे हेमराज, आनंदधन, यशोविजय जी, आत्माराम जी जैसे उच्च कोटि के कवि व आचार्य इस काल की महत्वपूर्ण देन है। कवि बनारसीदास की आत्मकथा 'अर्द्धकथानक' में खड़ी बोली भाषा का बीज देखा जा सकता है तथा हिन्दी साहित्य की प्रथम आत्मकथा का सम्मान भी इसे प्राप्त है। इस युग में आध्यात्मिक रचनाओं के साथ चरित्रात्मक रचनाओं के सृजन से जनता का मनोरंजन और उपकार हुआ।

परिवर्तन काल :

(18वीं और 19वीं शताब्दी) उपर्युक्त परिच्छेदों में हम देख चुके हैं कि सत्रहवीं शताब्दी की समाप्ति तक हिन्दी जैन साहित्य की पर्याप्त प्रगति हुई। अपभ्रंश-प्राकृत और पुरानी हिन्दी की रचनाएं विशाल परिमाण में उपलब्ध हो गई। मध्यकाल के उत्तरार्द्ध तक प्रादेशिक बोलियों के प्रभाव से मिश्रित प्राचीन हिन्दी साहित्यिक माध्यम बन चुकी थी। भाषा के साथ-साथ पद्य की विषय वस्तु तथा रूप में भी परिवर्तन हो गया। चरित्रात्मक रचनाओं की अपेक्षा

1. श्री कामताप्रसाद जैन-हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ॰ 137.

मुक्तक-काव्य का रूप विशेष प्रचलित हुआ था। इसके लिए कवि-भावना का परिवर्तन प्रमुख कारण है। अतएव, कामताप्रसाद जैन ने इस काल को 'परिवर्तन-काल' की संज्ञा से अभिहित करते हुए लिखा है कि--'सत्रहवीं शताब्दी के उपरान्त हम हिन्दी-जैन साहित्य में न केवल भाषा-शैली का परिवर्तन होता पाते हैं, प्रत्युत् साहित्य की प्रगति को अनुरंजित करने में मुख्य कारण कवि-भावना को भी बदलता हुआ पाते हैं। इसीलिए ही हमने इस काव्य का नामकरण 'परिवर्तन काल' दिया है।"[1]

हिन्दी साहित्य में इस समय रीतिकाल प्रारंभ हो चुका था। इसमें स्वच्छंद प्रेम की रचनाओं के साथ घोर श्रृंगार-साहित्य की रचना हो रही थी। कहीं-कहीं प्रवाहित सात्विक धर्म की ओट में वासनापूर्ण श्रृंगारिक साहित्य का आधार ढूंढा गया। जैन कवियों ने नेम-राजुल की कथा लेकर श्रृंगार रस का वर्णन किया लेकिन उसमें पवित्र मर्यादा, गौरव, शालीनता तथा उच्च स्तरीय श्रृंगार वर्णन है। अत: आध्यात्मिकता के राग-रस में सांसारिक श्रृंगार-दर्शन टिक नहीं पाता। जैन कवियों ने आध्यात्मिकता के साथ आदर्शवाद का भी प्रसार किया, जिससे वासनामयी प्रवृत्ति पर रोकथाम हो सके। भक्तिकालीन साहित्य का प्रभाव हिन्दी जैन साहित्य पर भी लक्षित होता है। हिन्दी जैन रचनाओं में भक्ति का पुष्ट रूप दिखाई पड़ता है। इस काल में कवियों की भक्ति-वर्द्धक रचनाओं की निर्मलता तथा मर्यादा का आलोक जनहित के लिए स्वास्थ्यकर एवं शान्तिप्रद सिद्ध होता है। भावों की गहराई तथा उदात्तता के साथ इस काल के कवियों ने शास्त्रीय निपुणता का भी परिचय दिया है। संस्कृत के नाटकों का पद्यमय अनुवाद भी इस काल में प्रारंभ हो गया। पद्य में विविध छंद, कवित्त, सवैया, दोहा आदि अपनाये गये। पद्य की भांति गद्य का रूप भी शैली एवं कृतियों की दृष्टि से निखर उठा। भक्ति और वैराग्य की अधिकता के कारण हिन्दी जैन कवि का कभी-कभी मानव जीवन के अन्य आवश्यक पहलू की ओर ध्यान ही नहीं रहा। जबकि अपभ्रंश प्राकृत जैन साहित्य में लोकजीवन तथा लोकहित के लिए आवश्यक इतर विषयों में ग्रन्थ रचना हुई थी। वैसे इस काल के जैन कवियों ने संयम और मानव जीवन के चरम उद्देश्य परमात्मत्व पाने के उच्च आशय से साहित्य की रचना की है।

इस काल के प्रारंभ में हिन्दी जैन साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि भैया भगवतीदास का नाम विशेषत: उभरता है। वे उस समय अवतरे, जब हिन्दी-रीतिकालीन कविजन श्रृंगार रस की धारा में आकण्ठ बहते थे तथा जनता को भी श्रृंगार

1. श्री कामताप्रसाद जैन-हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० 139.

रस आपूर्ण साहित्य की भेंट कर रहे थे। तत्कालीन और शृंगारिक रचनाओं के प्रचार से भगवती दास को अत्यन्त ग्लानि व घृणा होती थी। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप वे लिखते हैं–

बड़ी नीति लघुनीति करत है, वास सरत वदषोथ भरी।
फोड़ा आदि फुतगुनी मंडित, सफल देह मनु रोग धरी।।

भगवतीदास नामक चार कवि प्राप्त होते हैं, लेकिन प्रसिद्ध भक्त शिरोमनी भैया भगवतीदास 'ब्रह्मविलास' के रचयिता इस काल में हुए ऐसा प्रेमी जी का मत है और डा॰ प्रेमसागर ने भी इस तर्क की पुष्टि की है।[1] वे आगरे के रहनेवाले ओसवाल जैनी कटारिया गोत्र के थे। उन्होंने कभी भी भोग-वैभव की प्राप्ति हेतु आश्रयदाता को प्रसन्न करने के लिए या स्वान्त:सुखाय कविता न करके लोकोपकार के लिए ही की थी। जनता को धर्म का संदेश सुनाने के लिए ही भक्तिपूर्ण कविता का प्रवाह बहाया। 'ब्रह्म विलास' में उनकी तमाम रचनाओं का संग्रह हुआ है, जिसकी संख्या 67 के लगभग है। प्राय: उन्होंने अपने लिए 'भैया', 'भविक' या 'दासकिशोर' उपनामों का प्रयोग किया है। बनारसीदास की तरह वे भी जन्मजात प्रतिभाशाली आध्यात्मिक कवि थे। वे बहुमुखी प्रतिभा के स्वामी होने से केवल एक ही भाषा में नहीं, वरन् बंगला, मारवाड़ी, गुजराती, संस्कृत व फारसी आदि अन्य भाषाओं में भी साधिकार कलम चलाई। काव्य की सभी रीतियों से वे काफी परिचित थे। 'भैया एक विद्वान व्यक्ति थे। प्राकृत और संस्कृत पर तो उनका अटूट अधिकार था। हिन्दी, गुजराती और बंगला में भी विशेष गति थी। इसके साथ-साथ उन्हें उर्दू और फारसी का ज्ञान था। उनकी कविताएं इस तथ्य का निदर्शन है।"[2] जैन विद्वान् मूलचन्द जी 'वत्सल' ने भी भगवतीदास की रचना, भाषा, शैली ज्ञान एवं उत्कृष्ट आध्यत्मिक की भूरि-भूरि प्रसंशा की है।[3] उनकी रचना की मार्मिकता एवं भावुकता के लिए एक-दो उदाहरण यहां प्रस्तुत हैं–

"सुनि सयाने नर कहा करे 'घर-घर'
तेरो जो शरीर घर घरी ज्यो तुरतु है।
छिन छिन छिजे आय बाल वैसे घटी जाय,
ताहू को इलाज कछू उरहूं घटतु है।"

कवि दुनियाँ राग-रंग में मस्त जीवों की दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं–

---

1. डा॰ प्रेमसागर जैन–हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि, पृ॰ 267.
2. डा॰ प्रेमसागर जैन–हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि, पृ॰ 269.
3. द्रष्टव्य–मूलचंद 'वत्सल'–प्राचीन हिन्दी जैन कवि–पृ॰ 137.

"कोउ तो करें किलोल भामिनी सों रीझिरीझि,
या ही यों सनेह करै खाय अंग में।
कोउ तो लहै अनंद लक्ष कोटि बोरि बोरि,
लक्ष लक्ष मान करे लच्छि की तरंग में।
कोउ महाशूरवीर कोटिक गुमान करै,
मो समान दूसरो न देखो कोऊ जग में।
कहें कहा 'भैया' कछु कहिवे की बात नाहिं,
सब जग देखियतु राग-रस-रंग में।"

भगवतीदास ने 'चेतन-कर्म चरित्र' काव्य में वीर रस की सुन्दर धारा बहाई है। इसमें अपभ्रंश के शब्द भी आ गये हैं। यह एक प्रतीकात्मक काव्य है। कवि गाते हैं–

"वज्जहिं रणतूटे, दलबल छूटे, चेतन गुण गावंत।
सूरा तन जग्गो, कोऊ न भग्गो, अरि दल पे धावंत॥"

"उनका 'ब्रह्मविलास' ओज से भरा हुआ सिन्दूर घट है। बनारसी का शान्त रस शांति की गोद में पनपा, जबकि भैया का वीरता के प्रभंजन में जनमा, पला और पुष्ट हुआ। अध्यात्म और भक्ति के क्षेत्र में वीर रस का प्रयोग भैया की अपनी विशेषता है।"[1] सत्य ही भैया के एक-एक पद में ओज के साथ मधुरता का रसपूर्ण घोल संमिश्रित रहा है। 'परदेशी' के पद का माधुर्य ऐसा ही है, आध्यात्मिकता के अन्तर्गत माधुर्य पूर्ण उपदेश-यीयूष पिलाना उनके ही बश की बात है।

'कहां परदेशी को पतियारो।
मनमाने तब चले पन्थ को, सांझ गिनें न सकारो।
सबे कुटुम्ब छांड़ इतन की पुनि, त्याग चले तन प्यारो।
दूर देशावर चलत आपहि, कोऊ न रोकन हारो।
कोऊ प्रीति करो किन कोटिक अंत होइगो न्यारौ॥"

इसी प्रकर कवि प्रभु-चरण-सेवन का महत्व बताते हुए गाते हैं–

तेरो नाम कल्प वृक्ष इच्छा को न राखे उर,
तेरो नाम कामधेनु कामना हरत है।
तेरो नाम चिन्तामणी चिन्ता को न रखे पास,
तेरो नाम पारस सो दारिद हरत है।

1. डा॰ प्रेमसागर जैन–हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि, पृ॰ 270.

'नवकार-मंत्र'[1] की महिमा का कवि ने भावपूर्ण वर्णन किया है–

जहां जपहिं नवकार तहां भय कैसे होय।
जहां जपहिं नवकार तहां बंक्षर भज जांव।
जहां जपहिं नवकार, तहां सुख, सुंमति होय।
जहां जपहिं नवकार, तीर्थ तहां दु:ख रहे न कोई।
नवकार जपत नवनिधि मिलें, सुख समूह आवें सरल।
सो महामंत्र शुभ ध्यान सों, 'भैया' नित अपनो करन।।

भगवतीदास के पदों में विभिन्न राग-रागनियों का समन्वय देखने को *मिलता है।*

आनंदधन जी श्वेताम्बर संप्रदाय के प्रसिद्ध महात्मा थे। वे कबीरदास की तरह मस्तमोला निजानंदी सन्त कवि थे। यशोविजय जी के प्राय: समकालीन थे। कबीरदास की भावानुभूतियों और कृतित्व का स्पष्ट प्रभाव इनकी कविता में लक्षित होता है। इन्होंने हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओं में रचना की है।

हिन्दी में उनकी 'आनंदघन बहोत्तरी' उपलब्ध होती है। गुजराती और हिन्दी दोनों भाषाएं उनको अपना महाकवि स्वीकृत पर उनके पदों का आदर करती हैं। यह सम्मान उनके पदों में छिपे हुए अध्यात्म के साथ आत्मनिष्ठा, संगीतात्मकता तथा गहरी वैयक्तिकता के कारण ही मिलता है। उनके पदों में निर्भीकता एवं आत्मा की उदात्तता स्पष्ट घोषित होती है। 'आनंदघन-बहोत्तरी' के अध्ययन से पता चलता है कि ये एक पहुंचे हुए सन्त थे और जगत की मोह-माया से निर्द्वन्द रहकर आध्यात्मिक जगत में ही विचरण करते थे। हार्दिक भाव के बिना कोरा नाम-स्मरण या यंत्रवत् माला फेरना उन्होंने भी सन्त कवियों की तरह व्यर्थ समझा है। सच्चे हृदय एवं तन्मयता से किया गया प्रभु स्मरण अनासक्ति एवं भक्तिभावना पैदा करने के लिए आवश्यक होता है। उनके पदों में 'समता-रस' की निर्मल धारा प्रवाहित हुई है।

'जग आशा जंजीर की, गति उलटी कछु और
जकरयौ धावत जगत में, रहे छूटों एक ठौर।
आतम अनुभव फूल की, कोऊ नवेली रीत,
नाक न पकरै वासना, कान गहै न प्रतीत।

प्रसिद्ध पद 'अब हम अमर भये ना हम मरेंगे' को आनंदधन का माना जाता था, लेकिन अब आखिरी खोजों से उपलब्ध हुआ है कि यह पद धानतराय जी का है। 'थोड़ा ही परिश्रम करने से हमें मालूम हुआ कि इनका

1. नमस्कार-सूचक पद।

42वां पद 'अब हम अमर भये, ना मरेंगे' और अन्त का पद 'तुम ज्ञान मिलो फूली बसन्त' ये दोनों धानतराय जी के हैं।"[1] अध्यात्म एवं साधना पक्ष के वह सिद्ध कवि थे। उन्होंने सांसारिक समृद्धि के बदले प्रभु-भक्ति की ही चाह सदैव की है, क्योंकि–

ऐसे जिन चरण चित्त, पद लाऊं रे मना,
ऐसे एहि अरिहंत के गुण गाऊं रे मना।
उदर-भरण के कारण गऊंवा वन में जाय,
चारों चरे चहुं दिशि फिरे, बाकी सुरत बछवां मांय।

जिस प्रकार गाय जंगल में घूमती-फिरती है, लेकिन दिल तो अपने बछड़े में रहता है, उसी प्रकार सांसारिक कार्य करते रहने पर भी मन तो भगवान के ध्यान में लगा रहना चाहिए। प्रभु तो कवि का 'अनमोल लाल' है, उस अनमोल का मोल जौहरी कैसे कर सकता है?

जौहरी मोल करे लाल का, मेरा लाल अमोला,
ज्याके परन्तरका नहीं, उसका क्या मोला?

'आनंदधन' का भाव उदार था। वे अखण्ड सत्य के पुजारी थे। उसको कोई राम, रहीम, महादेव और पारसनाथ कुछ भी कहे, आनंदधन को इसमें कोई आपत्ति नहीं थी। उनका कथन था कि जिस प्रकार मिट्टी एक होकर भी पात्र भेद से अनेक नामों द्वारा पहचानी जाती थी, उसी प्रकार एक अखण्ड रूप आत्मा में विभिन्न कल्पनाओं के कारण अनेक नामों की कल्पना की गई है–

राम कहो, रहमान कहो, कोऊ काम कहो महादेवरी।
पारसनाथ कहो, कोऊ ब्रह्मा, सकल ब्रह्म रचयंमेवरी।
भासन-भेद कहावत नाना, एक मृत्तिका रूप री।
तैसे खण्ड-कल्पना रोपित, आप अखण्ड सरूप री राम।।[2]

यशोविजय जी भी आनंदधन जी के समकालीन थे। सत्रहवीं शती के अन्त में (सं॰ 1680 से 1745) ही उन्होंने लिखना प्रारंभ कर दिया था। उनके ग्रन्थों की रचना करीब 300 से ऊपर की बताई जाती हैं, जो संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी तथा गुजराती भाषा में लिखी गई हैं। गुजराती होने पर भी विद्योपार्जन के सिलसिले में काशी और आगरा में रह चुकने से शुद्ध हिन्दी पर पूर्ण अधिकार रखते थे। आचार्यत्व के साथ-साथ उनमें कवित्व की मौलिक सूझ-बूझ भी भरी पड़ी थी। उनके 75 पदों का संग्रह 'जसविलास' नामक ग्रन्थ

1. द्रष्टव्य-पं॰ नाथूराम प्रेमी–हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास, पृ॰ 61.
2. द्रष्टव्य-डा॰ प्रेमसागर जैन–हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि, पृ॰ 210.

में उपलब्ध है। उनके प्रत्येक पद में आध्यात्मिकता का भाव भरा पड़ा है। जैसे–

हम मगन भये प्रभु ध्यान में।
बिसर गई दुविधा तन-मन की, अचिरा सुत गुनगान में।।
हरिहर ब्रह्म पुरन्दर की रिथि, आवत नहीं कोउ मान में।
निदानन्द की मांघ मची है, समता रस के पान में।।

उपर्युक्त पद में भाव तथा भाषा की सरलता के साथ भाषा की शुद्धता आकर्षित किये बिना नहीं रहती।

यशोविजय जी के समय में विनय विजय जी नामक श्वेताम्बर संप्रदाय के विद्वान आचार्य हुए थे। उनके 'विनय-विलास' नामक ग्रन्थ में 37 पदों को संग्रहीत किया गया है। वे भी यशोविजय जी के साथ अध्ययन हेतु काशी रहे थे। अत: हिन्दी में अच्छी योग्यता प्राप्त की थी।

'त्रिलोक-दर्पण' के रचयिता खरगसेन भी 18वीं शताब्दी के कवि थे। जिनेन्द्र भक्ति से प्रेरित होकर 'त्रिलोक दर्पण' की रचना की थी, जिसमें तीन लोक का वर्णन करते जिन चेत्यों का वर्णन किया है। रचना साधारण है, लेकिन पंजाब की भूमि पर लिखी जाने पर भी पंजाबी भाषा का प्रभाव न होकर शुद्ध हिन्दी भाषा की है।

'धर्म सरोवर' के रचयिता बोधराज गोदी का ने धर्म तत्व का निरूपण विविध प्रकार के सुभाषितों तथा स्तूति परक छन्दों में किया है। रचना सामान्यत: अच्छी है।

सीतलनाथ भजो परमेश्वर अमृत मूरति जोति वही।
भोग संजोग सुत्याग सर्वे सुषदायक संजम लाभ करी।।
क्रोध नहीं जहां लोभ नहीं कछु मान नहीं, नहीं है कुटिलाई।
हरि ध्यान सम्हारि भजो तुम केवल, 'जोध' कहे बात खरी।।

इसके अतिरिक्त उन्होंने 'सम्यक्त' या 'कौमुदी-भाषा-प्रीतंकर चरित्र', कथाकोष, प्रवचनसार, भावदीपिका, वचनिका(गद्य) और ज्ञान समूह की रचना की है। इन कृतियों का बाबू ज्ञानचन्द्र जी ने उल्लेख किया है।[1]

आचार्य लक्ष्मीचन्द्र जी खतरगच्छ के एक अच्छे विद्वान और कवि थे और उन्होंने दिगम्बर जैनाचार्य श्री शुभचन्द्र जी कृत 'ज्ञानार्णव' का पद्यानुवाद किया था।

---

1. द्रष्टव्य–बाबू ज्ञानचन्द्र जी जैन: दिगम्बर जैन भारतग्रन्थ: पृ॰ 4,5.

मूल राजस्थान के लेकिन बहुत वर्षों से गुजरात के पाटण-नगर के निवासी जिनहर्ष कवि ने 'श्रेणिक चरित्र' और 'कृषिदत्त चौपाई' की छन्दबद्ध रचना की थी। पाटण में अनेक वर्ष रहने से उनकी कृतियों में गुजराती भाषा का प्रभाव लक्षित होना स्वाभाविक है। उनके एक पद का आदि-अंत भाग देखने से यह स्पष्ट होगा–

आदि-**'अष्टापद श्री आदि जिनंद,**
चंपा वासुपूज्य, पावामुगति गया महावीर।
अधरनेमि गिरनार सधीर।'
अंत-**'उत्तम नमतां लहिए पार, गुण गुहनां लहिए निस्तार।**
जाई ने दूर कर्मनी काढ़े, कहें जिनहर्ष नमूं करजोरि॥'

जिनहर्ष जी ने 50 साल से भी अधिक समय साहित्य सेवा में व्यतीत किया। उनके पदों, स्तवनों, सज्जायों का संग्रह 'जिनहर्ष ग्रन्थावली' नाम से श्रीयुत अगरचन्द नाहटा ने किया है। पाटण के ग्रन्थागारों से उपलब्ध करके उनकी छोटी-बड़ी 500 पद्य रचनाओं का संग्रह नाहटा जी ने तैयार किया है। 'कवि की बड़ी-बड़ी रचनाओं में कुछ रास ही अभी तक प्रकाशित हो सके हैं, बहुत से रास अभी अप्रकाशित हैं, जिनके प्रकाशित होने पर ही कवि के साहित्यिक कर्तृत्व के सम्बन्ध में प्रकाश डाला जा सकता है।'[1] इनकी भाषा के सम्बन्ध में मनोहर शर्मा लिखते हैं–"कवि जिनहर्ष की भाषा सुललित प्रसादगुण संपन्न एवं परिमार्जित है। सरस्वती का कवि को यह वरदान है। कवि ने जन्म भर सरस्वती की उपासना की है। और प्राय: उनकी सभी रचनाएं वंदान-पूर्वक प्रारम्भ हुई हैं।[2]" नाहटाजी ने कवि जिन हर्ष की रचनाओं में बावनी, उपदेश छत्तीसी, उपदेश चौबीसी, नेमिराजमती बारहमासा, सवैया, नेमिबारहमासा, सिद्धचक्र स्तवन, पार्श्वनाथ निवाणी, श्रेणिक चरित्र, कृषिदत्ता चौपाई, और मंगल गीत का उल्लेख किया है। जिनहर्ष की कृतियों का 'जैन गुर्जर कवियों' और 'राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज-भाग-4' में भी उल्लेख किया गया है। नाहटा जी ने भी 'ऐतिहासिक हिन्दी जैन काव्य' में उनकी रचनाओं का संग्रह किया है।

संवत् 1761 में श्री खेमचन्द जी ने 'गुणमाला चोपाई' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। गुजरात की ओर रहने से भाषा पर गुजराती शब्दों का प्रभाव आ गया है। जैसे–

1. श्री अमृत अगरचन्द नाहटा–जिनहर्ष ग्रंथावली–प्राक्लन, पृ॰ 3 प्रथम संस्करण।
2. श्री मनोहर शर्मा–जिनहर्ष ग्रन्थावली-भूमिका, पृ॰ 7.

नगर मांहि ते देहरा धना, कई जेन कई सिवतणा।
मांहि विराजे जिनवर देव, भवियण सारे नित प्रति सेव॥

इसमें कवि ने राजा गजसिंह एवं श्रेष्ठि पुत्री गुणमाला की सुन्दर कथा प्रस्तु वर्णित करके अच्छा चरित्र-चित्रण किया है।

जोधपुर के महाराजा जसवंत जी के दीवान नेणसीमूता के मारवाड़ी भाषा मिश्रित हिन्दी में राजस्थान विशद इतिहास 'नेणसी मूतारीख्यान' नाम से लिखा है, जिसको लिखने में 6 साल अर्थात् सं॰ 1716 से 1722 तक लगे थे। मूतानेणसी इस ग्रन्थ को लिखकर जैन समाज के विद्वानों का एक कलंक धो गये हैं कि ये देश के सार्वजनिक कार्यों से अपेक्षा रखते है।" प्रेमी जी का यह कथन सर्वतोचित है।

देवब्रह्मचारी कृत 'श्री सम्मेद शिखर विलास' की रचना इसी काल में उपलब्ध होती है। उसी प्रकार उन्होंने सं॰ 1734 में देवकृत 'परमात्मप्रकाश' की भाषा टीका भी लिखी थी।

भट्टारक विश्वभूषण की सं॰ 1738 के समय की दो प्रमुख रचनाएं उपलब्ध होती हैं–'अष्टान्हिका कथा' और जिनदत्त चरित्र। इनके अलावा फुटकल पदों की रचना भी की थी। एक उदाहरण देखिए–

कैसे देहुं कर्मनि षोटि।
आपही में कर्म्म बांधो, क्यों करि ठारो तोरि॥1॥
देव गुरु श्रुत करी निन्दा, गहि मिथ्या डोरि,
कर णिसुदिन विषचरचा, रह्यो संजयु बोरि॥2॥

'ढाई द्विपका पाठ' और 'बिनमत खीचरी' नामक कृति भी उनकी रची हुई है। प्राय: सं॰ 1703 से 1730 तक में इस शती के प्रारंभ में–पाण्डे हेमराज जी नामक विद्वान एवं उत्तमकोटि के कवि हुए। उन्होंने प्रवचनसार, परमात्म प्रकाश, गोम्मट सार, पंचास्तिकाय, एवं नयचक्र की टीका लिखीं। उन सभी में उनके स्वस्थ गद्य का 'नयचक्र' में दर्शन होता है। संस्कृत और प्राकृत के विद्वान होने पर भी उन्होंने हिन्दी में ही लिखा। गद्य लेखक और कवि दोनों रूपों में वे प्रतिष्ठित एवं सफल रहे हैं। कुंवरपाल के आग्रह के उन्होंने 'सितपट चौरासी बोल' को रचा। मानतुंगाचार्य के 'भक्तामर' का सुन्दर पद्यानुवाद किया। अनुवाद होते हुए भी उसमें मौलिक काव्य की सरसता है। उनकी पुत्री 'बेती' या बेतुल दे पिता की तरह की विद्वान थी, जिन्होंने कवि बुलाकीदास को जन्म दिया, जो मां एवं नाना की तरह कवि हुए थे। उनकी स्वतंत्र रचनाओं में 'उपदेश दोहा शतक', 'हितोपदेश बावनी', नेमिराजमती जखड़ा और 'रोहिणीव्रतकथा' प्रसिद्ध

है। उपदेश दोहा शतक' की रचना वि० सं० 1725 में की गई है। इसमें कवि बाह्य संसार में ईश्वर को ढूंढने की अपेक्षा अपने घट में ही ढूंढने को कहते हैं–

गैर ठोर सौघत फिरा, काहे अंघ अबेव।
तेरे ही घट में बसो, सदा निरंजन देव॥
कोटि जनम लौ तप तपै, मन वचन काय समेत।
सुद्धातम अनुभो बिना क्यों पावे सिवषेत॥

डा० प्रेमसागर जी का कथन है कि–वे अपने समय में विद्वान और कवि दोनों ही रूपों में प्रसिद्ध थे। उनकी कविताओं पर स्पष्ट रूप से 'वाणारसिया-सम्प्रदाय' का प्रभाव था।[1]

आचार्य ललित कीर्ति ने सं० 1783 में 'बिनगुणसंपति व्रतकथा' और 'अष्टकंधमारि' नामक रचे थे। जिनमें प्रभु पूजा का वर्णन किया गया है। यथा–

रतन जटित कंचन की जारि, गंगा जमुना भरी नीर।
धार देऊं जिनवर के आगे, अधमल रहई न बीर।
जिनपर चरण जुग पूजिये हो,
अहो अविज्ञानी पूजित सिवपुर जोई॥

आचार्य सुखभूषण जी ने 'श्रुतपंचमी कथा' सं० 1757 में तथा भगतराम जी ने 'आदित्यवार कथा' सं० 1765 में रची थी। सं० 1732 में शिरोमणीदास जी ने 'धर्मसार' नामक ग्रन्थ की रचना की थी, जिसकी कविताएं साधारण होने पर भी स्वतंत्र रचना होने से इसका महत्व है। प्रेमी जी ने इसमें 763 चौपाई बाताई है। इसके अतिरिक्त 'सिद्धान्त-शिरोमणी' नामक एक और छोटा सा ग्रन्थ भी रचा है। कवि मंगल कृत 'कर्म विपाक' नामक रचना और कवि संतलाल का रचा हुआ 'सिद्धचक्र पाठ' भी इसी शती में मिलता है।

सं० 1745 में कवि रतन कृत 'सामुद्रिक-शास्त्र' हिन्दी में लिखा हुआ ग्रन्थ है। भाषा बहुत अशुद्ध होने पर भी अपने विषय की यह अच्छी रचना है।

जगतराम तथा जगतराय इस शताब्दि के महत्वपूर्ण कवि और विद्वान है। उनकी अनेक रचनाएं बताई जाती हैं। वे औरंगजेब के दरबार में उच्च स्थान पर स्थित थे और उनको राजा की पदवी मिली थी। इसीलिए शायद लोग उन्हें जगतराम के बदले 'जगतराय' कहते थे। 'वे स्वयं राजा थे किन्तु अहंकार नाम मात्र को भी नहीं था, उन्होंने अनेक कवियों को उदारतापूर्वक आश्रय दिया, उनमें एक काशीदास भी थे। डा० ज्योतिप्रसाद जैन के कथनानुसार यह संभव

1. डा० प्रेमसागर जैन–हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि, पृ० 295.

है कि वे जगतराय के पुत्र टेकचन्द के शिक्षक भी हो।[1] श्री अगरचन्द नाहटा जी ने लिखा है–जगतराम एक प्रभावशाली धर्म प्रेमी और कवि आश्रयदाता तथा दानवीर सिद्ध होते हैं।[2] इनकी रचनाओं के विषय के विवाद खड़ा है। कामताप्रसाद जी ने केवल एक ही कृति 'पद्मानंदीपच्चीसी' का ही उल्लेख किया है, जबकि प्रेमी जी ने तीन छन्दोबद्ध रचनाएं बताई हैं–आगमविलास, सम्यकत्व कौमुदी, और 'पद्मानंदीपच्चीसी' जबकि सेठ के कूंचे मंदिर दिल्ली के शास्त्र-भंडार की ग्रन्थ सूची में इनके अतिरिक्त 'छन्द रत्नावली' और 'ज्ञानानंद श्रावकाचार' की रचना भी उपलब्ध होती है। 'श्रावकाचार' गद्य की रचना है। जैन पदावली' में जगतराय के रचे हुए 233 पद हैं। उनके ग्रन्थों की आलोचनात्मक टिप्पणी लिखते हुए संपादकों ने कहा है कि–"इन्होंने अष्टछाप के कवियों की शैली पर पदों की रचनाएं की हैं, जिनका एक संग्रह खोज में प्रथम बार उपलब्ध हुआ है। इसमें तीर्थंकरों की स्तुतियाँ सुन्दर पदों में वर्णित की गई हैं।[3] उनकी छोटी-छोटी रस की पञ्चिकारियों से मालूम होता है कि उनके पदों में कवि का उद्दाम आवेग कैसे फुट पड़ता है।[4] कवि ने एक जगह प्रभु को विनति, क्षमा-याचना करते हुए सुन्दर भावों को व्यक्त किया है–

प्रभु विन कौन हमारी सहाई।
और सबे स्वारथ के साथी, तुम परमारथ भाई,
भूल हमारी ही हमको इह भयो महादुःख,
विषय कषाय सस्य संग सेवो, तुम्हारी सुध बिसराई।

उनके अनेक पदों में आध्यात्मिक फागुओं की अनोखी छटा विद्यमान है। ये फागु छोटे-छोटे रूपकों में रचे गये हैं। इसका एक उदाहरण देखिए–

सुध बुधि होरि केस संय लेयकर, सुरुचि गुलाल लगा रे तेरे।
समता जल पिचकारी, करुणा केसर गुण छिरकाय रे तेरे।
अनुभव पाति सुपारि चरचानि, सरम रंग लगा रे तेरे।
राम कहे जे इह विधि षेल, मोक्ष महल में आय रे तेरे।।

सं॰ 1753 में देवदत्त दीक्षित ने 'चन्द्रप्रभ पुराण' छन्द बद्ध रचा था। जिसकी प्रति जसवन्तनगर के मंदिर में मौजूद है। कवि बुलाकीदास जी का जन्म 'जैमी' जैसी प्रसिद्ध विद्वान बुद्धिमती स्त्री से हुआ था, जो स्वयं कविता करती थी। जैमी के पिता जी ने–कवि हेमराज पाण्डे ने–उसको प्रारंभ में ही

1. प्रेमसागर–हिन्दी जैन साहित्य और कवि, पृ॰ 253.
2. द्रष्टव्य–अगरचन्द नाहटा–भारतीय साहित्य, वर्ष-2, अंक-2, पृ॰ 181.
3. काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका का पन्द्रहवां (15) त्रैवार्षिक विवरण सं॰ 94.
4. डा॰ प्रेमसागर जैन–हिन्दी जैन आधुनिक काव्य और कवि, पृ॰ 256.

शिक्षा देकर व्यवहारिक एवं प्रत्युत् व्युत्पन्नमति की बनाई थी। बुलाकीदास जी ने अपनी माता जैमी की प्रशंसा में स्वयं लिखा है–

हेमराज पंडित बसें, तियां आगरे में छाई,
परम गोत्र आगरी, सब पूजें जिस पाई,
उपगीता के दोहरा, जैमी नाम विख्याति,
सील रूप गुन आगरी, प्रीति नीति की पांति।
दीनी विद्या जनकने, कीनी अति व्युत्पन्न
पंडित जामें सीख लें, धरनीतल में धन्न॥

कविवर भूधरदास जी भी इस काल के प्रसिद्ध भक्त, प्रबन्धकार एवं मुक्तक कार हैं। उनके बनाये हुए तीन ग्रन्थ मिलते हैं–(1) पार्श्वपुराण (2) जैन शतक (3) पद-संग्रह। 'पार्श्व-पुराण'- में 23 में तीर्थंकर पार्श्वनाथ जी के जीवन का सुन्दर वर्णन किया गया है। यह एक स्वतंत्र और उत्कृष्ट कोटि का प्रबन्ध काव्य समझा जाता है। हिन्दी जैन साहित्य में यही एक सुन्दर, स्वतंत्र काव्य है।[1] प्रेमी जी इस रचना के विषय में लिखते हैं कि–हिन्दी के जैन साहित्य में 'पार्श्व पुराण' ही एक ऐसा चरित्र ग्रन्थ है। जिसकी रचना उच्च श्रेणी की है, जो वास्तव में पढ़ने योग्य है और जो किसी संस्कृत-प्राकृत ग्रन्थ का अनुवाद करके नहीं, किन्तु स्वतंत्र रूप से लिखा गया है। इसकी रचना में सौन्दर्य तथा प्रासादिकता दोनों गुण भरे हुए हैं। सज्जन एवं दुर्जन के विषय में कवि का कथन देखिए–

उपजें एक ही गर्भ सो, सज्जन-दुर्जन येह,
लोह कवच रक्षा करें, खाण्डो खण्ड देह।
दुर्जन ओर सलेखया, ये समान जगमांहि,
ज्यों-ज्यों मधुरो दीजिए, त्यों-त्यों कोप कराहिं॥

जैन समाज में यह इतना प्रसिद्ध है कि वह दो बार छप चुका है। कविकीर्तिका यह एक सुदृढ़ कायमी स्तंभ हैं। इसी एक ग्रन्थ की रचना से भूधरदास जी एक भावुक एवं उत्कृष्ट कोटि के कवि प्रमाणित होते हैं। दूसरा ग्रन्थ 'जैन-शतक' नीति की सुन्दर रचना है, जिसमें 107 कवित्त, सवैये, दोहे और छप्पय है। प्रत्येक पद का स्वतंत्र अस्तित्व है, मौलिक भाव है। इसका प्रचार जैन समाज में अत्यन्त है। तीसरे ग्रन्थ 'पद संग्रह' में कवि के 80 पद-विनति, पूजा-अर्चना, सज्जायसम्बंधी-संग्रहीत है। एक पद की थोड़ी-सी पंक्ति में जीवन-जगत की नश्वरता का भाव देखिए–

---

1. कामताप्रसाद जैन : हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० 172.

चरखा चलता नांहि, चरखा हुआ पुराना॥ टेक ॥
पग खूटे दूय हालन लूणे, उर मदरा खखराना।
\+ + + +
मोटा नहीं काल कर भाई कर अपना सुरझेरा
अंत आग में ईंधन होगा, भूधर समझ सवेरा।

धानतराय जी भी भूधरदास जी की तरह प्रसिद्ध जैन भक्त एवं मुक्तककार हैं। उनका स्थान भी हिन्दी जैन साहित्य में काफी ऊंचा है। उनके पद साहित्य का महत्व न केवल इसी शती में बल्कि पूरे जैन साहित्य में है। उन्होंने भक्ति, पूजा सम्बंधी पदों की काफी रचना की है। उनके रचे हुए स्तवन, सज्जाय, पद, आरती-पूजा, आज भी जैन जगत में प्यार और आदर से पढ़े जाते हैं। उनके समय में आगरे में 'मानसिंह जी की शैली' का काफी प्रचार था। कवि ने इससे खूब लाभ उठाया। पं० बिहारीदास जी और पं० मानसिंह जी के (प्रभाव) आग्रह से वे जैन धर्म के प्रति श्रद्धालु हुए थे। जैन दर्शन का भी कवि ने बाद में गहरा अभ्यास किया। बहुत सारे वर्ष जैन धर्म को समझने के पीछे लगा दिये। उनके समस्त पदों का संग्रह 'धर्म विलास' नामक ग्रन्थ में है जो सं० 1780 में समाप्त किया गया था। इस ग्रन्थ में उनके पदों की संख्या 323 है। कवि की यह विशेष प्रतिभा शक्ति ही समझी जानी चाहिए कि कठिन विषयों को भी वे सरलता एवं सहृदयता से समझा सकते थे। "शायद यही सबसे पहले कवि हैं, जिन्होंने हिन्दी में अनेक पूजाएं रचीं और भक्तिनाद-दासोऽहम्' भावना का बीज सोऽहम् भावना रूपी अध्यात्म फल की प्राप्ति हेतु जैन साहित्य में डाला था।"[1] एक उदाहरण प्रस्तुत है-

जिन्दगी सहल में नाहक धरम खोवें,
जाहिर जहान दीखें, ख्वाब का तमासा है
कबीले के खातिर तूं काम बद करता है,
अपना मुलक छोड़ हाथ लिये कांसा है।

'धर्मविलास' जैसे सुपाठ्य और काव्य-कला से पूर्ण ग्रन्थ रचकर भी कवि अपनी निरीहता या लघुता का किन सुन्दर शब्दों में वर्णन करते हैं-

अच्छर खेती तुक भई, तुक सो हुए छन्द
छन्दन सो आगम भयो, आगम अरथ सुछन्द।
आगम अरथ सुछंद हमनें नहि किना,
गंगा का जल लेय अरध गंगा को दिन्हा।

1. कामताप्रसाद जैन : हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० 176.

डा॰ प्रेमसागर जी ने उपरोक्त रचना के अलावा स्तोत्र साहित्य में 'स्वयंभूस्तोत्र', 'पार्श्वनाथ स्तोत्र' और 'एकीभाव स्तोत्र' को गिनाया है, जिनमें प्रथम दो मौलिक है और तीसरा वादिराजसूरि के संस्कृत ग्रन्थ 'एकीभाव स्तोत्र' का हिन्दी भावानुवाद है। इसके अलावा 'जीनवाणी संग्रह' में पांच आरतियां भी संग्रहीत की गई हैं।[1] कवि ने बहुत से पदों में उस समय के आगरे की सामाजिक एवं धार्मिक स्थिति का भी उल्लेख किया है। 'समाधि मरण, धर्मपचीसी, अध्यात्म पंचासिका, पद संग्रहों का विवरण भी प्रेमसागर जी ने दिया है, जबकि कामताप्रसाद जी ने संक्षेप में तीन कृतियों के विषय में ही बताया है।

संवत् 1762 में गोवर्द्धनदास जी ने 'शकुन-विचार' नामक शास्त्र की रचना अपने गुरु लक्ष्मीचन्द्र जी की प्रेरणा से किया था। यह सगुन सम्बंधी छोटा-सा लेकिन उपयोगी ग्रन्थ है।

सांगानेर निवासी किशनसिंह ने सं॰ 1784 में 'क्रियाकोष' नामक छन्दोबद्ध ग्रन्थ बनाया, जो साधारण कवियों से युक्त स्वतंत्र रचना है। 'भद्रबाहुचरित्र' और रात्रि-भोजन-कथा' भी आपकी ही रचनाएं हैं।

पाण्डे रूपचन्द जी से भिन्न रूपचन्द जी ने सं॰ 1798 में बनारसीदास कृत 'नाटक-समय-सार' की टीका लिखी थी, जो बहुत ही सुन्दर और विशद है। दौलमराम जी ने सं॰ 1796 में 'हरिवंश पुराण' और 'क्रिया कोष' नामक ग्रन्थ रचा था। रायमल्ल जी नामक धर्मात्मा की प्रेरणा से दौलतराम जी ने 'आदि पुराण', 'पद्मपुराण' और 'हरिवंश पुराण' की गद्य में वचनिकाएं लिखी थी। प्रेमी जी लिखते हैं–इन ग्रन्थों का भाषानुवाद हो जाने से सचमुच ही जैन समाज को बहुत ही लाभ हुआ है। जैन-धर्म की रक्षा होने में इन ग्रन्थों से बहुत सहायता मिली है। ये ग्रन्थ बहुत बड़े-बड़े हैं। वचनिका बहुत सरल है। केवल हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों में ही नहीं, गुजरात और दक्षिण में भी ये ग्रन्थ पढ़े और समझे जाते हैं। इनकी भाषा में ढूंढ़ारीपन है, तो भी वह समझ ली जाती है।" उनके द्वारा की गई श्री योईन्दु के 'परमात्म प्रकाश' की टीका के विषय में डा॰ ए. एन. उपाध्ये ने लिखा है कि–"इस बात को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि इस हिन्दी-अनुवाद के ही कारण जोईन्दु और उसके 'परमात्म-प्रकाश' को इतनी ख्याति मिली है।" उन्होंने 'अध्यात्म-बारहखडी' नामक सुन्दर मौलिक कृति का भी सर्जन किया है, जिसमें उनकी काव्य-प्रतिभा का दर्शन होता है। उनका गद्य हिन्दी-साहित्य की अमूल निधि है। भिन्न-भिन्न

1. द्रष्टव्य–प्रेमसागर जी–हिन्दी जैन साहित्यकार और कवि, पृ॰ 284.

शास्त्र-भण्डारों में उनकी अनेक हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त होती है। सबसे पहले उन्होंने ही संस्कृत के छन्दों का हिन्दी में कुशलता से सफल प्रयोग किया और नये छन्दों का भी प्रयोग किया था। सं॰ 1777 में रची हुई **'पुण्याश्रववचनिका'** भी संभवतः आपकी कृति है। **'अध्यात्म बारखडी'** में भक्ति रस छलाछल भरा पड़ा है। कवि भक्ति रस की चरम-सीमा पर पहुंच कर भाव विभोरता एवं तल्लीनता का आनंद महसूस करते हैं। सबके भीतर रहे **'राम'** की वंदना करते हुए कवि गाते हैं—

बंदो केवलराम को, रमी जू रह्यो सब मांहि,
ऐसी ठोर न देखिए, जहां देव वह नाहिं।

'आतमदेव' की सेवा के लिए कवि कहते हैं—

पूजों आतम देव को, करे जु आतम सेव,
श्रेयातन जगदेव जो, देव देव जिन देव।

हिन्दी के सन्त कवियों की तरह दौलतराम जी भी मानते हैं कि केवल मुंड मुंडाने से ही कुछ नहीं होता, आतमराम की सेवा करने से ज्ञान उत्पन्न होता है। आतमराम की सेवा केवल भगवान की कृपा से ही प्राप्त हो सकती है। क्योंकि—

मूंड मुंडाये कहा, तत्व नहीं पाये जो लो,
मूढ़ यति को उपदेश सुने, मुक्ति की जु नहीं तोली
मल-मूत्रादि भर्‌यो जू देह कबहिं नहिं सुद्धा
सुद्धो आतमराम ज्ञान को मूल प्रबुद्धा।

इसी शती में बनारसीदास नामक अन्य कवि की रचनाएं भी प्राप्त होती हैं, जो प्रसिद्ध कवि धानतराय के गुरु थे। बिहारीदास जी की गिनती विद्वान पंडितों में की जाती थी और आगरे में उनकी 'शैली' चलती थी। उन्होंने ही धानतराय को जैन धर्म के प्रति श्रद्धावान बनाया था। उनकी रचनाओं में 'सम्बोन्ध पंचासिका', 'जखड़ी', और 'आरती' प्रमुख है। धानतराय जी की कविता पर उनका विशेष प्रभाव देखा जाता है। कवि मनुष्य जन्म की महत्ता बताते हुए कहते हैं—

आतम कठिन उपाय पाय नरभव क्यों तजे,
राई उपधि के समानी फिर ढूंढ नहीं पायें
ई विधि नरभव को पाय विषे सुष-सोरभ,
सो सठ अमृत बोय हलाहल विष आचरे।'

कवि खुशालचन्द काला भी इसी काल के है और अपने विद्वान दयावान

और ज्ञानवान पिता जी के पास रहकर शिक्षा ग्रहण की थी और बाद में गोकुलचन्द नामक ज्ञानी पुरुष की प्रेरणा से उन्होंने 'हरिवंशपुराण' का पद्यानुवाद किया था। खुशालचन्द जी ने हरिवंश पुराण, उत्तर-पुराण, धन्यकुमार चरित, यशोधर चरित, अम्बू चरित सद्भावनावली, व्रतकथा कोष और पद्मपुराण का निर्माण किया था। इनमें पद्मपुराण और अम्बू चरित अनूदित है। उपरोक्त दोनों कवियों का विस्तृत वर्णन प्रेमसागर जी की पुस्तक में उपलब्ध होता है।

कविवर निहालचन्द (18वीं शती का अंतिम पद) ने पांच रचनाएं लिखीं, जिनमें तीन अपनी मातृभाषा गुजराती में की ओर अन्य दो हिन्दी में। 'ब्रह्मबावनी' और 'बंगाल देश की पुकार' उनकी बहुत ही लोकप्रिय रचनाएं हैं। प्रेमी जी ने विनोदीलाल सहजादिपुर का उल्लेख किया है, जिन्होंने दिल्ली में आकर 'भक्तामर' और 'सम्यकत्व कथाकोष' की छन्दोबद्ध रचनाएं हैं। उनकी ओर भी फुटकर रचनाएं प्राप्त होती हैं।

पं॰ बखतराम ने सं॰ 1800 में 'धर्मबुद्धिकथा' एवं 'मिथ्यात्वखण्डन वचनिका' की रचना की थी।

पं॰ भैंरोदास जी ने इसी समय 'सोलह कारण व्रत कथा' रची थी। कवि मकरंद पद्मावती पुरवाल की रची हुई एक ओर 'सुगन्ध दसमी कथा' है। पन्नालाल जी ने सेठ फूलचन्द जी के कहने पर 'रत्न करण्ड श्रावकाचार' का पद्यानुवाद किया था। इन सबके अतिरिक्त अनेक छोटे-मोटे कवियों का उल्लेख कामताप्रसाद जी ने अपने इतिहास में अत्यन्त संक्षेप में किया है, जिनमें से प्रमुख नाम हैं—रत्नसागर कृत 'रत्न-परीक्षा', पं॰ नेमिचन्द्र कृत नेमिचन्द्रिका, देवेन्द्र कीर्ति की जकड़ी, पं॰ बिशनसिंह की 'बिशियोजनकथा', पं॰ देवराज कृत 'होलीकथा', का नाम प्रमुख है। मिश्रबन्धु विनोद में निम्नलिखित कवियों का उल्लेख पाया जाता है—सौभाग्यचन्द की 'कपटलीला', हरखचन्द साधु का श्रीपाल चरित, धर्ममंदिरगणिकृत प्रबन्ध चिन्तामणि, गोपीमुनि चरित, हंसविजय जति का 'कल्पसूत्रटीका, ज्ञान-विजय जती का 'मलयचरित' और कवि लाभबर्द्धन का 'उपपदी' नामक ग्रन्थ देखने को मिलता है। 18वीं शताब्दी के बाद 19वीं शताब्दी में हम आते हैं तो जैन-साहित्य में भी भक्ति का स्वरूप मंद अवश्य हो गया था, लेकिन फिर भी भक्ति की रचनाएं अवश्य होती थीं। पद-मुक्तक की रचनाएं 17वीं-18वीं शताब्दी की तरह प्रबन्ध की अपेक्षा अधिक होती है। इस शती में पं॰ टोडरमल और कवि वृंदावन जेसे समर्थ तत्त्ववेत्ता, विद्वान एवं भावुक कवि हुए, जिन्होंने साहित्य और समाज की भारी सेवा की। "जैन समाज स्थितिस्थापक बनकर विवेक को खो बैठा था।

भट्टारकों के अखण्ड राज्य को वह चूपचाप आंखे मूंद कर मान रहा था। उसका विचार-स्वातंत्र्य अपहृत हो चुका था। उसकी आत्मा 'गुरुड़म' के बोझ से दबी हुई तिलमिला रही थी। ऐसे समय में पूज्यवर पं० टोडरमल जी ने क्रान्ति की आग सुलगाई, जिसमें 'गुरुड़म' का खोखला पिंजर नष्ट हो गया। + + +इस सामाजिक स्थिति का प्रभाव साहित्य पर भी हुआ और ऐसी रचनाएं प्रकार में आई जो नये सुधार की पोषक थीं, यद्यपि भक्तिवाद की लहर से वे अछूती न रह सकीं।"[1] पं० नाथूराम जी ने अभिमत दिया है कि–पं० टोडरमल जी इस शताब्दी के सबसे बड़े सुधारक, तत्त्ववेत्ता और प्रसिद्ध लेखक थे।[2] उन्होंने अपनी रचनाओं से तत्वज्ञान के बन्द प्रवाह को असामान्य रूप से प्रवाहित किया। 15-16 साल की छोटी-सी उम्र में ही ग्रन्थ रचने लगे थे। आपका सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ 'गोम्मटसार वचनिका' है, जो नेमिचन्द्र स्वामी कृत प्राकृत ग्रन्थ 'गोम्मटसार' की वचनिका-भाषा टीका है। श्रीयुत् पं० परमेष्ठिदास जी व्यासतीर्थ ने लिखा है कि 'श्रीमान् पंडित प्रवर टोडरमल जी 19वीं शताब्दी के उन प्रतिभाशाली विद्वानों में से थे, जिन पर जैन-समाज ही नहीं, सारा भारतीय समाज गौरव का अनुभव कर सकता है।[3] उनकी आध्यात्मिक वाणी देखिए–

मंगलमय मंगलकरण, वितराग, विज्ञान।
ममहुं ताहि जाते भये अरहंतादि महान्।।
में आतम अर पुदगल स्कंध, मिलिकें भयो परस्पर वंध।
सो असमान जाति पर्याय, उपजो मानुष नाम कहाय।।

जयचन्द जी को प्रेमी जी इस शताब्दी के लेखकों में दूसरे नम्बर पर बिठाते हैं। उन्होंने भी बहुत-से महत्वपूर्ण संस्कृत-प्राकृत के ग्रन्थों का पद्यानुवाद किया और स्वतंत्र रचनाएं भी की हैं। न्याय विषयक कठिन ग्रन्थों का भी उन्होंने अनुवाद किया, जिसमें प्रमुख हैं–सर्वार्थसिद्धि, परीक्षा-मुख, द्रव्य-संग्रह, ज्ञानार्णव, भक्तामर-चरित्र, आदि अनेक हैं। सबका उल्लेख यहां संभव नहीं है। इनके अलावा उनके रचे हुए पद और विनतियाँ भी हैं। जयचन्द जी की गद्य शैली भी बहुत अच्छी थी। उनके कई ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

कवि वृन्दावन जी को भी प्रेमी जी ने इस काल के सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में महत्व दिया है। कविवर ने 'छन्दशतक' की रचना अपने पुत्र के लिए

---

1. आचार्य कामताप्रसाद जैन : हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० 184, 185.
2. पं० नाथूराम प्रेमी–हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० 72.
3. पं० परमेष्ठिदास व्यासतीर्थ : 'रहस्यपूर्ण चिट्ठी' की भूमिका, पृ० 9, 10.

की थी। तुलसी रामायण की तरह जैन रामायण की रचना करने की कवि जी को अत्यन्त चाह थी, लेकिन अपनी इच्छा पूर्ण होने की संभावना न रहने से अंतिम सांस लेते वक्त पुत्र को सौंपने से सुयोग्य पुत्र ने प्रारंभ किया, लेकिन 71 सर्ग तक आते-आते वे भी कालकलित हो जाने से यह ग्रन्थ अपूर्ण एवं अप्रकाशित रहा। उनकी 'संकटमोचन' कविता जैन समाज में अत्यन्त प्रसिद्ध है, जिसमें भक्तिवाद का पूरा चित्रण है। प्रेमी जी लिखते हैं–"वृंदावन जी स्वाभाविक कवि थे। उन्हें जो कवित्व शक्ति प्राप्त हुई थी, उसमें जो कवि-प्रतिभा थी, उसका उपार्जन पुस्तकों अथवा किसी के उपदेश द्वारा नहीं हुआ था, किन्तु वह पूर्वजन्म के संस्कार से प्राप्त हुई थी। उनकी कविता में स्वाभाविकता और सरलता बहुत है। शृंगार रस की कविता करने की ओर उनकी कभी प्रवृत्ति नहीं हुई। जिस रस के पान करने से जरामरण रूप दुःख अधिक नहीं सताते हैं और जिससे संसार प्रायः विमुख हो रहा है, उस अध्यात्म तथा भक्ति रस के मंथन करने में ही कविवर की लेखनी डूबी रही।" उन्होंने प्राकृत ग्रन्थ का 'प्रवचन-सारटीका' नाम से पद्यानुवाद किया है, जो उनका प्रमुख ग्रन्थ है। इसके अलावा 'चौबीस-जिन पूजा पाठ' भी उनकी प्रमुख रचना है, जो कई बार प्रकाशित हो चुकी है। इसमें अनेक विध अलंकारों की भरमार है। इसमें कला पक्ष-भावपक्ष की अपेक्षा विशेष अलंकृत है। 'छन्द शतक' विविध छन्दों का ज्ञान देनेवाला सरल ग्रन्थ है। वृंदावन-विलास' कविवर की तमाम फुटकर रचनाओं का संग्रह है। आध्यात्मिक रस में डूबा हुआ एक उदाहरण देखिए–

जो अपने हित चाहत है जिय, तो यह सिख हिये अवधारो।
कर्मज भाव तजो सवहिं निज, आतम को अनुभव रस गारो।
श्री जिनचंद सों नेह करों मित, आनंद कंद दशा बिसतारो।
मूढ़ लखे नहिं गूढ़ कथा यह, गोकुल गांव को पेडों ही न्यारो॥

चेतन कवि ने सं॰ 1853 में 'अध्यात्म बारहखड़ी' नामक रचना रची थी। उनकी कविता अच्छी और उपदेशपूर्ण है। कवि ने मानव को गर्वरहित होकर प्रभु भक्ति में अटल विश्वास रखने का उपदेश दिया है, क्योंकि जो होनेवाली है, वह तो होके ही रहेगी। भाषा पर राजस्थानी शब्दों का प्रभाव अवश्य है, वे कहते हैं–

गरव न किजे प्राणियों, तन धन जोवन पांय,
आखिर ए थिरना रहे, थित पूरे सब जाय।
गाढ़ रहिये धरम में, करम न आवे कोय,
अनहोनी होनी नहीं, होनी होय सो होय॥

\+ + + +

गेह छोड़ वन में गये, सरे न एको काम,
आसातिसना ना मिटी, कैसे मिलिहें राम।
गोरे-गोरे गात पर, काहे करत गुमान,
ए तो कल उडि जायेंगे, धूंआ धनलर जात।

कवि की कविता में व्यावाहारिक उपदेश भी सुनने को मिलता है। यथा–

घात वचन नहिं बोलिकै, लागे दोष अपार,
कोमलता में गुण बहु-सबको लागे प्यार।

राजस्थान का इतिहास लिखने में कर्नल टोड् को बहुत सहायता करने वाले यति ज्ञानचन्द्र जी स्वयं भी राजस्थान के इतिहास के ज्ञाता एवं संग्रहकर्ता थे। उनकी रची हुई फुटकर कविताएं प्राप्त होती हैं। मिश्रबन्धुओं ने इनका पद्य-रचनाकाल सं॰ 1840 में माना है।

कवि बुधजन जी भी इसी शताब्दी के एक महत्वपूर्ण कवि हैं। उन्होंने चार पद्य-ग्रन्थों की रचना की थीं–तत्वार्थ-बोध, बुधजन सतसई, पंचास्तिकाय और बुधजनविलास। इनमें से बुधजन सतसई का विशेष प्रचार रहा है। उनकी भाषा पर मारवाड़ीपन का प्रभाव दिखता है। कवि ने बुधजन-नीति में अनेक सुभाषितों की रचना की है, जिनमें हार्दिकता एवं सरलता प्रकट हुए बिना नहीं रहती। कवि कहते हैं–

पर उपदेश करन निपुन ते तो लखे अनेक।
करे समिक बोले समिक जे हजार में एक।।
दुष्ट मिलत ही साधुजन, नहीं दुष्ट हेवें जाय।
चन्दन तरु को सर्प लगि, विष नहीं देता बनाय।।

श्री माणिकचन्द्र जी के मतानुसार इनकी तुलना वृंद, रहीम, तुलसीदास और कबीर के दोहों से पूर्णतया की जा सकती है।

साधुचन्द्रविजय के कुछ पदों का संग्रह प्राप्त होता है। कवि जिनदास का रचा हुआ 'सुगुरु-शतक' है जिसमें कवि कहते हैं–

नमूं साधु निर्ग्रन्थ गुरु, परम धरम हित देन।
सुगति करन भवि जनन कूं, आनंद रूप सुवेन।।

कवि हरिचन्द जी की सं॰ 1836 में लिखी हुई 'पंचकल्याण महोत्सव' नामक रचना प्राप्त होती है–एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

जिन धर्म प्रभावन, भव-भव पावन, जण हरिचंद चाहत,
तीन-तीन वसु चन्द्र ये संवत्सर के अंक,
श्रेष्ठ सूकल सप्तमि सुभग, पूरत पड़ो निसंक।

कवि झुनकलाल जी की 'नेमिनाथ जी के कवित्त' नामक रचना इस समय प्राप्त होती है, जिसकी भाषा एवं भाव पक्ष काफी अच्छा है। इसी प्रकार दूसरी रचना उन्होंने अतिसुखराय जी नामक धर्मात्मा के कहने से सं० 1844 में 'पार्श्वनाथजी के कवित्त' नाम से रची। कवि भक्तिपूर्वक कहते हैं–

मित्र सुमति सुषने कही, सुनिये झुनकलाल,
श्री जिन पारसनाथ की, वरन करो गुणमाल,
मोक्ष हेतु के कारे न कियो पाठ सुविचार
वे भविजन सरधा करे, ते सिवपुर के बार।

इस प्रकार 'नेमिनाथ जी के कवित्त' में भी कवि का भक्तिपूर्ण दृष्टिबिन्दु स्पष्टतः झलकता है-कवि ने सांसारिक सम्बंधों की मधुरता का कैसा सुन्दर चित्रण नैमिनाथ जी एवं उनकी भोजाइयों के वर्णन में किया है–

नेमिनाथ को हाथ पकरिके खड़ी भई भावज सारी,
ओढ़े चीर तीरसरवर कें तहां खड़ी है जदुनारी,
बहुत विनय धरि हाथ जोरि करि मधुर स्वर गावें नारि॥

कहीं-कहीं तो कवि की रचना में अत्यन्त ही माधुर्य एवं सरसता देखने को मिल जाती है–

'रूप के रंग मानो गंग की तरंग सम
इन्दु दुति अंग ऐसे जल सुहात है।
ससि की किरणी कियों मेह तट झरनि कियो
चन्द की भर्ति कियों मेघ बरसात हैं॥
हीरा सम सेत रवि-छवि हरि लेते किधों
मुक्ता दुति दोष मन सरसात है।
सिव तिय अपने पति को सिंगार देषि
रकतु कटाछ ऐसे चमर फहरात है॥

सं० 1817 में लिखी गई कवि केसोदास जी की 'हिंडोला' नामक रचना भी इसी समय मिलती है–

सहज हिंडोलना झूलत चेतनराज।
जहां धर्म कर्म संजोग उपजत, रस सुभाउ विभाउ॥
जहां सुमन रूप अनूप मंदिर, सुरुचि भूमि सुरंग।
तहां गान वरसन बंध अविचल छरन आड़ अमंग॥

कवि इन्द्रजीत का रचा हुआ 'श्री मुनि सुमत पुरान' दिल्ली के नया मंदिर के ग्रंथागार में मिलता है, जिसको कवि ने मैनपुरी में सं० 1845 में लिखा था।

कवि निर्मल की रची हुई 'पंचाख्यान' नामक संस्कृत रचना का हिन्दी पद्यानुवाद है। नीति का यह सर्व-साधारण के लिए उपयोगी सुन्दर ग्रन्थ है–

प्रथम जयूं अरिहंत, अंग द्वादश जु भाव घर,
गणधर गुरु संत, नमो प्रति गणधर निरन्तर।

कवि धर्मपाल ने सं॰ 1817 में 'श्रुतपंचमीरास' और 'आदिनाथ सावन' को रचा था। पाण्डे लाल जी ने सं॰ 1817 में 'वरांग-चरित्र' की रचना की थी। स्त्रियों के चित्रण में कवि लिखते हैं–

'रूप की निधान गुनि पानी वर नाहिं जहां,
चंचल कुरंग सम लोना करति है।
उन्नत चमेर कूज जुग में उमंग भरी,
सुन्दर हवा हरों हार पहराति है।
लाज के समाज बचीं विघने सदारि रचीं,
शील मार लिये ऐसे सोमा सरसाती है।
तारा ग्रह नषत माला वेस धरे मानो,
मेरु गिरि शिखिर की हांसी ने करती है।'

नारी के सौन्दर्य का चित्रण है, फिर भी कहीं अश्लीलता नहीं है। कवि ने नारी सौन्दर्य का सौम्य सुन्दर वर्णन किया है। उसी प्रकार मुनिजन की पवित्रता को भी कवि यहां चित्रित करते हैं–

'श्री मुनिवर बिहिं देस विषे अति शोभा धारत।
तप कर छीन शरीर शुद्ध निज रूप विचारत॥
भव-भव में अब मार किये जे संचा जग में।
देखत ही ते दूरि करत भविजन के छन में॥

प्रतिभा शक्ति के द्वारा कवि देश और व्यक्ति का सुन्दर चरित्र-चित्रण कर सकते हैं। प्रेमी जी ने इनके रचे हुए ग्रन्थों में 'षट्कर्मोपदेश रत्नमाला', वरांगचरित, विमलनाथ-पुराण, शिखर विलास, सम्यक्त्व कौमुदी, आगमशतक और अनेक छन्दोबद्ध पूजाग्रन्थ बताये हैं।

विजयकीर्ति भट्टारक ने सं॰ 1827 में 'श्रेणिकचरित' और सं॰ 1821 में 'महादण्डक' नामक सिद्धान्त ग्रन्थ रचे थे।

बखतराम शाह जयपुरवासी ने स्वयं दो ग्रन्थ–'मिथ्यात्वखण्डन' और 'बुद्धिविलास' रचे और उनके पुत्र जीवनराम ने प्रभु-भक्ति के कुछ पद रचे और दूसरे पुत्र सेवाराम जी ने सं॰ 1858 और 1862 के बीच में 'शांतिनाथ चरित्र' नामक ग्रन्थ रचा था।

कवि दीपचन्द जी ने गद्य और पद्य दोनों में अनेक ग्रन्थों की रचना की है। 'ज्ञानदर्पण' और 'अनुभव-प्रकाश' छप चुके हैं।

मयूर मिश्र ने सं० 1871 में 'पुरुषार्थ सिद्धोपाय' की भाषा टीका रची थी और 'चर्चा समाधान' भी उनकी रचना है।

दीवान चम्पाराम जी ने 'जैन चैत्यस्तवग्रन्थ' की रचना की थी, जिसमें उन्होंने मूर्ति-पूजा के पोषण का तात्त्विक ढंग से निरूपण किया है। इस ग्रन्थ से उस समय की धार्मिक परिस्थिति का ख्याल आता है। कवि ने जिन प्रतिभा में किस प्रकार दृढ़ विश्वास रखना चाहिए एवं जिनकी अपेक्षा जिन मूर्ति क्यों अधिक महत्वपूर्ण है यह बताते हुए लिखा है–

श्री जिन करे विहार नीति, भव-जल तारण हेत,
पीछे भविक जनन कूं, विरह महादु:ख देत।
श्री जिन बिम्ब प्रभावजुत, बसें जिनालय नित्त,
विरह रहित सेवक सदा, सेवा करें सुचित॥

कवि मनरंगलाल जी ने गोपालदास नामक धर्मात्मा के कहने से 'चौबीस तीर्थंकर का पाठ' सं० 1857 में रचा था। इनकी कविता रोचक एवं भावपूर्ण है। इनकी अन्य रचनाएं 'नेमिचन्द्रिका', 'सप्तव्यसनचरित्र' और 'सप्तर्षिपूजा' है। उन्होंने ही सं० 1889 में 'शिखरसम्मेदाचल माहात्म्य' नामक एक अन्य ग्रन्थ भी रचा है।

वृन्दावन की 'चौबीसी पाठ' कृति की तरह 'मनरंग चौबीसी पाठ' की भी काफी ख्याति हुई थी। 'दोनों ही कई बार छप चुकी हैं। भाव-सौष्ठव जो मनरंग के पाठ में है, वह शब्दालंकार की छटा में वृन्द के पाठ में छिप गया है।'[1] कवि की भावपूर्ण विनती देखिए–

युवा वय भई काम की चाह बाड़ी, वियोगी भये सोग की रीति काही।
न देखें तुम्हें ही भले चित्त मेरी, प्रभु मेटिये दीनता मेरी॥
जरा-रोग में घेर के मोहि किन्हों, महाराज रोगी भलो दाव लिन्हो।
झड्या जो पको पान कालनि लेरी, प्रभु मेटिये दीनता मेरी॥

कवि अत्यन्त श्रद्धा भक्ति से प्रभु-प्रसाद तथा भक्ति का रूप बतलाते हुए कहते हैं–

भलो या बुरो जो कुछ हो तिहारो, जगन्नाथ ये साथ मो पे तिहारो।
बिना साथ तेरे न एको बनेवा, नमो जब हमें दीजिए पाद-सेवा॥

कवि कमलनयन जी ने सम्मतशिखरजी की यात्रा स्वयं करके इसका

1. आ. कामताप्रसाद जैन : हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० 212.

इतना सजीव वर्णन किया है कि कवि की वर्णन-शक्ति का इससे पता चलता है। वे अध्यात्म-रस के रसिक थे, यह बात उनकी कविता से स्पष्ट रूप से झलकती है। यथा–

जहां रीति-प्रीति संग सुमतिनारि, शिव रमणी को कियो विचार।
जिन चरण कमल चित्त बसो मोर, कहें 'कमलनय' रति-साधु भोर॥

इसके अतिरिक्त कवि ने 'जिनदत्त चरित्र' का पद्यानुवाद एवं 'सहस्त्रनामपाठ', पंचकल्याणपाठ' और 'वरांग चरित्र' आदि ग्रन्थ लिखे हैं। उनकी कविता मधुर, सरल एव लोकोपकारी होने से सफल कवि माने जाते हैं।

अमृतविजय गुरु के योग्य शिष्य रंग विजय जी ने बहुत से आध्यात्मिक और विनति के पद रचे हैं। उनकी रचना सरल और रसपूर्ण है। वैष्णव कवियों ने जैसे राधा और कृष्ण को लक्ष्य करके भक्ति और शृंगार की रचना की है, वैसे ही उन्होंने भी राजीमती और नेमिनाथ के विषय में बहुत से शृंगार भाव के पद लिखे हैं।[1]

नथमल विलाला ने सं० 1824 से 1835 के बीच में 'सिद्धान्तसारदीपक' जिनगुणविलास, नागकुमार चरित्र, जीवंधर चरित्र और जम्बुस्वामी चरित्र ग्रन्थ पद्य में रचे थे। इनकी कविता साधारण है।

सेवाराम राजपूत के रचे हुए 'हनुमन्चरित्र' शांतिनाथपुराण, और भविष्य दत्त चरित्र है। मारामल्ल जी ने 'चारुदत्त चरित्र, सप्तव्यसनचरित्र, दानकथा, शीलकथा, दर्शन कथा, रात्रिभोजन कथा आदि ग्रन्थ लिखे हैं। इन ग्रन्थों का पद्य साधारण है लेकिन कथा काव्य होने से अत्यन्त लोकप्रिय हुए हैं।

कवि नयनसुखदास जी एक प्रसिद्ध कवि थे। उनकी रची हुई कविता बड़ी रोचक और भावपूर्ण है। उनकी वाणी में अध्यात्म की भक्ति-सरिता बहती रहती है। कवि प्रभु-मूरति के विषय में कहते हैं–

ए जिन मूरति प्यारी रागद्वेष बिन, षाणि लषि शान्त रस की।
त्रिभुवन मुनि पाय सुरपतिहूं, राषत चाह दरस की॥
कौन कथा जगवासी जन की मुनिवर, निरषि हरषि चषि मुख की।
अन्तरभाव विचार धारि उर, उगमन सरित सुरस की॥
महिमा अद्‌भुत आन गुनन की, दरसत ते सम्यक निज बसकी।
नयन विलोकत रहेत निरन्तर, बानि बिगारि असल की॥

कवि मनुष्य को बताते हुए निरन्तर प्रभु ध्यान में चित्त लगाने को कहते रहते हैं।

1. पं० नाथूराम प्रेमी जी–हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृ० 78-79.

उपर्युक्त प्रमुख-प्रमुख कवियों के अतिरिक्त इसी शताब्दी में अनेक छोटे-मोटे कवियों की सूची पं॰ नाथूराम जी ने अपने इतिहास में दी है तथा उनकी कृतियों के सम्बंध में भी उल्लेख किया है, लेकिन विस्तारभय के कारण हमारे लिए सबका उल्लेख करना संभव नहीं है।

अब इस काल में गद्य की स्थिति के विषय में संक्षेप में देखने की कोशिश करेंगे।

गद्य-साहित्य :

इस काल में गद्य-साहित्य का विकास उत्साह वर्द्धक रहा। गद्य की भाषा भी दिन-प्रतिदिन निखरती जा रही थी। काफी मात्रा में गद्य की काव्यपरक वचनिका एवं न्याय, वैद्यक, ज्योतिष के ग्रन्थ गद्य में रचे गये। भाषा अपेक्षा कृत मुहावरेदार एवं परिष्कृत होती दिखाई देती है। मध्यकाल में भी वैसे नमूने देखे जाते हैं लेकिन इस युग जैसा शुद्ध व विकसित स्वरूप नहीं था, जो बहुत स्वाभाविक भी है। क्योंकि गद्य का विकास बहुत मंदगति से हुआ है। आधुनिक काल में आकर ही गद्य ने अपना महत्व सिद्ध किया और उत्कृष्ट रूप धारण किया। इस काल के गद्य के कुछ उदाहरण देखे जायें तो अनुचित नहीं होगा–

1. 'सम्यक् दृष्टि कहासो सुनो-संशय विमोह विभ्रम ए तीन भाव जामे ना हो सो सम्यग् दृष्टि। संशय विमोह विभ्रम कहा ताको स्वरूप दृष्टान्त करि दिखायतु है सो सुनो।' कविवर बनारसीदास।

2. 'सूर्य के प्रकाश के बिना अंध पुरुष संकीर्ण मार्ग विषें षडे में परे। अरू सूर्य के उदय करि प्रकट भया मार्ग विस्तीर्ण ता विषें दिव्य नेत्रानि का धारक काहे को खाडे में परे।'–जगदीश कृत हितोपदेश भाषा वचनिका।

3. परमात्मा राजा कूं प्यारी–'सुख देनी परम राणी इन्द्रिय विलासकरणीं। अपनी जानि आप राजा हूं या सो दुरावन करेउ। परमात्मा पुराण-दीपचन्द कृत–

उपर्युक्त उद्धरणों से देखा जाता है कि भाषा का प्रवाह खड़ी बोली की और कितना अधिक बहता है तथा गद्य को सुसंस्कृत रूप के ढालने का प्रयत्न भी किया गया है। इस काल में भाषा-वचनिका एवं टीका ग्रन्थों की रचना प्राय: गद्य में होने से गद्य-साहित्य का प्रमाण अच्छा कहा जायेगा।

उपसंहार :

इस प्रकार हम देखते हैं कि चालु आधुनिक काल तक पहुंचते-पहुंचते हिन्दी जैन साहित्य को अनेक मोड़ लेने पड़े हैं। इन मोड़ों में आदिकाल, मध्यकाल एवं परिवर्तन काल में प्रमुख कवियों की कृतियों एवं प्रवृत्तियों का

यत्किंचित् परिचय मैंने पृथक् पुस्तिका में दिया है। आदिकाल में अभी भाषा पर प्राकृत एवं अपभ्रंश का प्रभाव विशेष लक्षित होता है तथा चरित्र-ग्रन्थ एवं रासो-ग्रन्थों का प्रणयन भी विशेष हुआ। मुक्तकों की रचना विशेष नहीं हुई। युग-प्रवृत्ति के प्रभाव को ग्रहण का रासो ग्रन्थों में शृंगार व वीर रस को अपनाने की चेष्टा पाई जाती है, फिर भी धार्मिक साहित्य होने से शान्त रस की प्रधानता रही। मध्यकाल में जैन साहित्य की भाषा पर अपभ्रंश का प्रभाव क्रमशः कम होकर देशी भाषा की ओर विशेष झुकी हुई और बाद में तो देशी भाषा में भी खड़ी बोली के शब्दों का कहीं-कहीं अत्यन्त प्रभाव पाया जाता है। प्रबन्ध काव्यों की अपेक्षा मुक्तक स्वरूप का अधिक विस्तार रहा। कवियों पर भक्ति एवं अध्यात्म का प्रभाव विशेष होने से आध्यात्मिक एवं भक्तिपरक पद, विनति की रचनाएं विशेष प्राप्त होती हैं। गद्य का प्रारंभिक रूप भी इस काल में प्राप्त होता है। बड़े-बड़े भक्त एवं आचार्य इस काल में पाये गये तथा भक्ति रस के उत्कृष्ट संगीतात्मक, हृदयाकर्षक, भावपरक पद इस काल की अमूल्य निधि कहीं जायेगी, जो समस्त जैन भक्ति साहित्य के लिए गौरव की चीज है। संस्कृत-प्राकृत के ग्रन्थों के भावानुवाद की ओर ध्यान देने की अपेक्षा अपनी ही भक्ति भावना एवं मस्ती में डूबकर कवि-भक्तजन रचना करने में प्रवृत्त थे, लेकिन साथ-साथ जन-कल्याण की ओर से इनका चित्त हटा नहीं है। सामान्य जनता विशेषतः जैन समाज को नज़र बिन्दु में रखकर वे प्रायः काव्य रचना करते थे ताकि जनता को आनंद एवं ज्ञान दोनों साथ-साथ प्राप्त हो सके। इस काल में भी शृंगार या अन्य रसों की अपेक्षा शान्त रस को ही महत्व दिया गया। विनति, करुणा के पदों में करुण रस न होकर भक्ति या वैराग्य के भाव अवश्य लक्षित होते हैं। चरित्र-ग्रन्थों की ओर इस काल के कवियों का ध्यान विशेष आकृष्ट नहीं हुआ। हां, यशोविजय जी जैसे प्रसिद्ध आचार्य ने दार्शनिक ग्रन्थों की रचना अवश्य की है। परिवर्तन काल में आते-आते भाषा ने अपना रूप काफी परिवर्तित कर दिया। अब खड़ी बोली का रूप स्पष्ट लक्षित होता है, भाषा में से देशीपन भी गायब होने लगा। विषयों में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। वही धार्मिक कथा ग्रन्थ, व्यसन त्याग, दानशील का और तीर्थंकरों के स्वरूप का वर्णन इन्हीं रचनाओं में प्राप्त होता है। एक बात विशेष रूप से ध्यान खींचती है कि इस काल में जनता की वृत्ति अध्यात्म की ओर प्रवृत्त होने से दार्शनिक ग्रन्थों की आवश्यकता पूर्ति हेतु संस्कृत व प्राकृत के ग्रन्थों का भावानुवाद विशेष होना था। वे प्रायः पद्य में ही अनुवादित हुए। थोड़े बहुतों की वचनिका या टीका गद्य में अवश्य हुई है। गद्य का विकास इस दृष्टिकोण से इस काल में विशेष हुआ। अतः भाषा के रूप ने और गद्य के विकास ने

आधुनिक युग का द्वार खोल दिया, जिसके साथ राजकीय, धार्मिक एवं सामाजिक परिस्थितियों के परिवर्तन ने सहयोग दिया। इस काल में मुक्तक एवं प्रबंध दोनों रूपों को अपनाया गया। क्योंकि भक्ति का जो गतिशील प्रवाह मध्यकाल में बहता था, वह इस काल में मंद अवश्य हुआ लेकिन पूर्णतः बन्द नहीं होने से भक्ति परक रचनाएं मुक्तक शैली में ही लिखी गई। इस प्रकार प्राचीन काल में भक्तों, कवियों एवं आचार्यों की उत्कृष्ट रचनाओं का त्रिवेणी-संगम हुआ था।

प्राचीन जैन साहित्य पर हम देख सकते हैं कि पूर्व और उत्तर मध्यकाल की धार्मिक व राजकीय परिस्थिति ने अपना प्रभाव काफी डाला है। जैन साहित्यकारों का प्रमुख उद्देश्य या दृष्टिकोण धार्मिक ही था। प्रसिद्ध जैन इतिहासकार डॉ॰ गुलाबचन्द चौधरी के मतानुसार–'जैन धर्म के आचारों एवं विचारों को रमणीय पद्धति और रोचक शैली में प्रस्तुत कर धार्मिक चेतना और भक्ति भाव को जागृत करना उनका मुख्य उद्देश्य था। जैन कवियों ने जैन काव्यों की रचना एक ओर स्वान्तः सुखाय की है तो दूसरी ओर कोमल मति जनसमूह तक जैन धर्म के उपदेशों को पहुँचाने के लिए की है। इनके लिए उन्होंने धर्मकथानुयोग या प्रथमानुयोग का सहारा लिया है।[1] इस हेतु की पूर्ति के लिए कथाप्रधान और चरित्र प्रधान साहित्य से बढ़कर अन्य कोई प्रभावोत्पादक साधन जनसमूह तक पहुंचने के लिए नहीं है। इसी कारण जैन सहित्य की भाषा अधिक सरल व लोकप्रिय भाषा के निकट की देखी जा सकती है, क्योंकि इनकी रचनाएं प्रायः विद्वत् वर्ग के लिए न होकर सामान्य जनता के हेतु होती थी। इसीलिए धार्मिक भावना का प्रदर्शन जगह-जगह पर इस प्रकार के कथा-साहित्य द्वारा सूचक रूप से होता ही रहता है। इन प्राचीन व मध्यकालीन साहित्यकारों ने धार्मिक भावना को फैलाने के लिए जिस साहित्य की रचना की, इसमें उन्होंने जैन सिद्धान्तों या साधु-मुनियों के नियम-उपनियम या सूक्ष्म तत्वों की चर्चा न करके सामान्य जन-समाज के लिए सरल और मुख्य तत्वों को ही कथा और चरित्रों के द्वारा रोचक शैली में व्यक्त किया है। उन्होंने ज्ञान, दर्शन और चरित्र के सामान्य विवेचन के साथ अहिंसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह जैसे सार्वजनिक व्रतों, दान, शील, तप, भाव-पूजा, स्वाध्यायादि आचरणीय धर्मों को ही सरल भाषा में प्रतिपादित किया है। अपने शोध-विषय के साथ भी यही बात देखने की युक्तिसंगत प्रतीत होगी कि आधुनिक हिन्दी साहित्य में गूढ़ धार्मिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन नहीं, परन्तु सार्वजनिक, सरल

1. डा॰ गुलाबचन्द चौधरी : जैन साहित्य का बृहत इतिहास-छठा भाग, पृ॰ 15.

और आचरणीय तत्वों का प्रतिपादन साहित्यकारों द्वारा हुआ है या नहीं। देखने की कोशिश की जायेगी कि आधुनिक जैन साहित्य की प्रेरणास्वरूप इस लोक-धर्म की मूल भावना और सरल तत्वों की सामान्य सूझ-बूझ की ओर निर्देश हो पाया है या नहीं। सभी में पौराणिकता एवं कथानक की रसात्मकता विशेष है और काव्यत्व कम। लेकिन प्रमुखतः नीति और विश्वोपकार की भावना इन सबके भीतर अन्तर्निहित है। इन सबका ध्येय यही है कि मनुष्यों को मन और इंद्रियों की गुलामी से मुक्त कर अतीन्द्रिय आनंद की आध्यात्मिक भूमि की ओर अग्रसर करें। जैन रासोग्रन्थों के रचयिताओं को जीवन के राग द्वेष संचालित क्रिया-व्यापारों की सूक्ष्म परख होने से वे अपने घटना विधान में काफी सफल हुए थे। अतः उनकी रचना लोकप्रिय एवं धार्मिक शिक्षा के लिए उपकारक बन पाई।

"नेमिचन्द्र जी के इस वक्तव्य-कथन के साथ इस अध्याय को पूर्ण करेंगे कि 'सातवीं शती से आज तक हिन्दी जैन साहित्य की धारा मानव जीवन की विभिन्न समस्याओं का समाधान करती हुई अपनी सरसता और सरलता के कारण गृहस्थ जीवन के अति निकट आई है। इस धारा का सन्त कवियों पर गहरा प्रभाव पड़ा, जिस प्रकार जैन कवियों ने घरेलु जीवन के दृश्य लेकर अपने उपदेश और सिद्धान्तों का जन-साधारण में प्रचार किया, उसी प्रकार सन्त कवियों ने भी। अहिंसा सिद्धान्त की अभिव्यक्ति करने वाले लोक जीवन के स्वाभाविक चित्र जैन साहित्य में उपलब्ध है। इस साहित्य में सुन्दर आत्मपियूष रस छलछलाता है। धर्म विशेष का साहित्य होते हुए भी उदारता की कमी नहीं है। आत्म स्वातंत्र्य सभी व्यक्ति के लिए अभीष्ट है। प्रत्येक मानव स्वावलम्बी बनना चाहता है और चाहता है उद्घाटित करना आत्मानुभूति द्वारा अपने भीतर के तिरोहित देवांश को।"[1] इतनी विकसित परम्परा की विरासत प्राप्त आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य अपना पथ प्रशस्त कर सकता हो तो आश्चर्य नहीं।

---

1. डा० नेमिचन्द्र शास्त्री : हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन, भाग 1, पृ० 22.

तृतीय अध्याय

आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य : सामान्य परिचय

पिछले अध्याय में जैन साहित्य की परम्परा का संक्षेप में उल्लेख किया गया है। आधुनिक काल में जैन साहित्य का कोई नूतन अभिगम, वैचारिक क्रान्ति या नूतन स्वरूप लक्षित न होकर परम्परा का विकास ही व्यक्त होता है। हां, युगानुकूल भाषा का प्रभाव इस काल की नवीन उपलब्धि अवश्य है। प्रारंभिक काल में हिन्दी जैन साहित्य के स्वरूप पर प्राकृत अपभ्रंश का प्रभाव लक्षित होता है, तदनन्तर भाषा क्रमशः खड़ी बोली की ओर अग्रसर होती गई। आधुनिक काल में जब हिन्दी साहित्य की भाषा के रूप में खड़ी बोली को पूर्णतः स्वीकृत किया जा चुका है, तब स्वाभाविक है कि हिन्दी जैन साहित्य की भाषा का माध्यम भी युगानुरूप खड़ी बोली ही है। आधुनिक काल में जैन साहित्य में विचार वस्तु, भावानुभूति एवं शैली के स्वरूप में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है, लेकिन गद्य का विकास एवं उसकी नूतन विविध विधाएं इस काल की महत्वपूर्ण भेंट है। मानव-हृदय की उमंग व अनुभूति गतिशील पद्य में स्वाभाविकता व सरलता से अभिव्यक्त होती है, जबकि मानव मस्तिष्क का तर्क शील बौद्धिक अंश गद्य की गंभीर गति में प्रदर्शित होता है। आधुनिक काल विचार-स्वातंत्र्य, भौतिक विकास तथा वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण नये-नये आयामों और दृष्टि बिन्दुओं का युग सहज ही कहा जायेगा। अतः गद्य की आवश्यकता इसी काल में होना स्वाभाविक है। हिन्दी जैन साहित्य आधुनिक काल में कैसा रूप ग्रहण करता है या गद्य के नये रूपों का स्वरूप कैसा है, यह सब देखने से पूर्व यदि 'आधुनिकता' एवं 'आधुनिक-काल' के सन्दर्भ में थोड़ा बहुत विचार किया जाये तो उपयुक्त रहेगा।

आधुनिकता का संदर्भ :

'आधुनिक' शब्द काल सापेक्ष हैं। वैसे इतिहास के युगों का हर चरण आधुनिक ही होता है, क्योंकि जो युग चलता है, वह अपने अतीत से सदैव भिन्न या नूतन विचार व दृष्टि बिन्दु रखता ही है। लेकिन यहां हम आधुनिक या 'साम्प्रतिक' शब्द 'समकालीन' के बोधक रूप में स्वीकारते हैं।[1] आधुनिकता को हम तीन दृष्टि बिन्दुओं से ग्रहण कर सकते हैं-(1) काल के दृष्टि बिन्दु

1. डा० भगीरथ मिश्र-आधुनिक हिन्दी काव्य, पृ० 2.

से (2) ऐतिहासिक दृष्टिकोण से (3) वैचारिक दृष्टि बिन्दु से। पहला अर्थ समय सापेक्ष माना जायेगा, जिसके अनुसार 'आधुनिक' एक काल से सम्बंधित हैं, जैसा कि शब्दार्थ स्पष्ट सूचित है। आधुनिकता का सम्बन्ध वर्तमान से है और चूँकि वर्तमान की धारणा समय-सापेक्ष होती है, अत: आधुनिकता का यह रूप प्रत्येक युग में परिवर्तित होता रहता है। यहां 'आधुनिक' अतीत से भिन्न या 'नये' के अर्थ का वाचक होता है। इतिहास के दृष्टिकोण से 19 वीं शताब्दी का प्रारंभ केवल हिन्दी साहित्य में ही नहीं, वरन् भारतीय इतिहास एवं जन-जीवन के लिए आधुनिक बोधक माना जाता है। ईस्वी सन् 1857 की असफल क्रांति के पश्चात् भारत में आधुनिक विचार धारा एवं नूतन चेतना का प्रवाह सर्वत्र व्याप्त दिखाई पड़ता है। इसके लिए हम पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृति, रीति-नीति तथा शासन पद्धति को भी महद् अंश में श्रेय दे सकते हैं। (3) विचार परक दृष्टि बिन्दु से आधुनिकता एक ऐसा विशिष्ट युग है, जो मध्ययुगीन विचार-पद्धति से सर्वथा भिन्न एक नये जीवन दर्शन का वाचक है। वस्तुत: आधुनिकता की धारणा का मूलाधार ऐतिहासिक चेतना ही है। इसके साथ ही विवेक युक्त वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी सहायक तत्व है। समाज जब अपने देशकाल, युग सभ्यता-संस्कृति एवं इतिहास के प्रति प्रबुद्ध होता है, तब सामाजिक, धार्मिक तथा राष्ट्रीय चेतना के उद्भव व विकास के साथ साहित्य में भी उसकी अभिव्यक्ति होना सहज संभाव्य हैं। प्रसिद्ध हिन्दी आलोचक और निबंधकार डा० नगेन्द्र 'आधुनिकता' पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि–'आधुनिकता' में परम्परा का विरोध नहीं होता, लेकिन उसको स्थिर मानकर आधुनिकता नहीं चलती। आधुनिक दृष्टि परम्परा को प्रवाह के रूप में स्वीकार करती है, जो निरन्तर अग्रसर रहता है और जिसमें परिवर्तन अनिवार्य है, जीर्ण पुरातन का त्याग, संशोधन तथा पुनर्मूल्यांकन की पद्धति से नव-नव-रूपों के विकास की आकांक्षा, वैचित्र्य और नवीनता के प्रति आकर्षण आधुनिकता के सहज अंग है। अत: रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह और नवजीवन के विकास के लिए प्रयोग के प्रति आग्रह यहां अनिवार्य है। किन्तु आज के सीमित सन्दर्भ में 'आधुनिक' का एक संकुचित अर्थ 'सम-सामयकि' भी उभर कर सामने आया है। इस सन्दर्भ में आधुनिकता का अर्थ है वर्तमान का युग बोध, जहां दृष्टि वर्तमान पर ही केन्द्रित रहती है। आज की स्थिति का यथार्थ परिज्ञान आधुनिकता का आधार है। ++++ आधुनिकता विधि मात्र है। विधि रूप में उसका प्रभाव अक्षुण्ण है, पर विधि से अधिक उसका महत्व नहीं है।[1] ऐसे ही

1. डा० नगेन्द्र जी : नयी समीक्षा, नये संदर्भ, पृ० 62.

आधुनिकता का काल सापेक्ष स्वीकारते हुए दिनकर जी अपनी विचारधारा व्यक्त करते हुए लिखते हैं–'आधुनिकता कोई शाश्वत मूल्य नहीं है। वह तो समय सापेक्ष धर्म है। स्वतंत्रता के बाद आधुनिकता के सन्दर्भ में यह प्रश्न अत्यन्त प्रखर हो उठा है कि आधुनिकता क्या चीज है, कहां से और कैसे प्राप्त हुई है और कैसी +++ आधुनिकता का लक्ष्य है कि सत्य की खोज में वह एक मात्र प्रमाण बुद्धि को मानती है, और अन्धविश्वास अथवा कच्चे विश्वास के साथ वह कभी समझौता नहीं करती। श्रद्धा का प्रभुत्व और उसका हस्तक्षेप, आधुनिकता को दोनों अग्राह्य है।[1]

उपर्युक्त विचारधारा से यह स्पष्टतः फलित होता है कि आधुनिकता रूढ़िबद्धता तथा प्राचीनता को अस्वीकार कर नये विचार, नये आयाम, अभिगम एवं नयी दिशाओं को ग्रहण कर मनुष्य को गतिशील बनाने के लिए प्रेरित करती है। नये युग के प्रारंभ में साथ ही नये विचार व प्रवृत्तियों का सूत्रपात प्रारंभ होता है, नये-नये वातायन की खोज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हम उत्साह के साथ करने लगते है। समूचे राष्ट्र के जीवन में चेतना पैदा कर रूढ़ विचारधारा व संकीर्ण जीवन-पद्धति को मुक्त करने में आधुनिकता का प्रभाव स्पष्ट फलित होता है। फलतः मनुष्य के जीवन परक दृष्टिकोण में भी आमूल परिवर्तन आ जाना सहज है और वह साहित्य में भी प्रतिबिंबित हुए बिना नहीं रहता। हमने देखा कि वैसे प्रत्येक युग अपने अतीत से आधुनिक रहता है लेकिन जिस अर्थ में हम उसे स्वीकारते हैं वह 'आधुनिक' शब्द प्रयोग विशेषकर इसी युग की देन है। अतः यह आधुनिकता राष्ट्र व साहित्य में कब से और किस रूप में व्यक्त होती है इस पर संक्षिप्त विचार करना असमीचीन नहीं रहेगा।

भारतीय इतिहास में औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मुगल सल्तनत जब अपने विनाश की ओर जा रही थी, तब अंग्रेजों के भारत में व्यापारी बनकर आने के साथ आधुनिकता का उन्मेष दिखाई देने लगता है, क्योंकि टेनिसन के शब्दों में 'पुरानी व्यवस्था बदल कर अपना स्थान नई व्यवस्था को दे देती है, यही आधुनिकता का सूत्रपात है।' और परम्परा के मुताबिक प्राचीन परिपाटी का पट-परिवर्तन होकर नई शासन व्यवस्था भारत के राजकीय रंगमच पर अपना स्थान ग्रहण करती है। औरंगजेब के शासन तक एक केन्द्रीय सूत्र में बंधा भारत उसकी मृत्यु के पश्चात् केन्द्रीय सूत्र से शिथिल ही नहीं, वरन् विच्छिन्न भी हो गया और देश में अराजकता की स्थिति फैल गई। 'इस परिवर्तन के साथ

1. दिनकर जी : साहित्यमुखी-शीर्षकयुक्त चिन्तन-अध्याय, पृ॰ 32.

विदेशी व्यापारियों के राजनीतिक रंग मंच पर धीरे-धीरे प्रवेश को आधुनिक युग की नेपथ्य सूचना कहना चाहिए।'[1] अंग्रेजों ने संपूर्ण भारत पर उसके ही धन-बल-दल से कूटनीति के द्वारा एकाधिकार प्राप्त कर लिया। शासन पद्धति को सरल-सुगम बनाने के लिए अंग्रेजी पढ़ा-लिखा मध्यम वर्ग तैयार किया, जो अंग्रेजी सभ्यता से प्रभावित बना रहा। सम्पर्क की सुविधा के लिए रेल, तार, छापाखाना आदि वैज्ञानिक आविष्कारों का प्रारंभ कर दिया। अपनी सुविधा व व्यवस्था के हेतु डाले गये ये साधन ही भारत में क्रान्ति की ज्वाला चारों और फैलाने में विशेष सहायक हुए। 'अंग्रेजी राज्य की स्थापना के फलस्वरूप भारतीय जीवन को भारी क्षति उठानी पड़ी, इसमें तो कोई सन्देह प्रकट नहीं किया जा सकता, किन्तु घुणाक्षर न्याय के अन्तर्गत ही सही, उसके लाभ भी हुए, यह निर्विवाद है। आधुनिक नवीन शिक्षा और प्रेस, रेल, तार तथा अन्य वैज्ञानिक आविष्कारों के फलस्वरूप भारतीय जीवन का चौमुखी संस्कार किया जाने लगा। मध्ययुगीन परंपराओं ने हमारे जीवन में जो निष्प्राणता, निष्क्रियता, अवरुद्धता और रूढ़ि चुस्तता पैदा कर दी थी, उन्हें समूल नष्ट कर देने का देश ने कठिन व्रत धारण किया। पौराणिक धर्मांधता, कर्मकाण्ड तथा बाह्याडम्बरों की जड़ें हिल उठी। जीवन के प्रति दृष्टिकोण में एक नवीनता एवं ताजगी दिखाई देने लगी। अब भारत में पौराणिकता के स्थान पर वैज्ञानिकता का, कट्टरता और धार्मिकता के स्थान पर मानवोचित उदारता, जीवन गत सत्य का अन्वेषण और नवीन मूल्यों एवं मानदण्डों की स्थापना का जैसा पुनीत प्रयास उन्नीसवीं सदी में दृष्टिगोचर होता है, वैसा पिछली कई शताब्दियों तक दृष्टिगोचर नहीं होता। इस प्रयास को देश के प्राचीन गौरव की स्मृति से बल प्राप्त हुआ था। इस समय बौद्धिक एवं मानसिक जागरूकता को ही 'भारतीय पुनरुत्थान' की संज्ञा प्रदान की जाती है। यूरोपीय औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप पाश्चात्य देशों के विचार क्षेत्र में जो क्रान्ति हुई थी, उसका प्रभाव ऐतिहासिक घटना-चक्र के कारण भारतीय जीवन पर पड़ना भी स्वाभाविक है।[2] मध्यमवर्गीय जनता में शिक्षा का प्रचार-प्रसार होने के कारण ये भी नये-नये विचारों से तथा अपनी दीन-हीन स्थिति से प्रभावित होकर उत्साह से नयी प्रवृत्तियों को अपनाने लगी। इसमें धार्मिक-सामाजिक संस्थाओं के साथ

---

1. डा॰ विनयामोहन शर्मा संपादित 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास' (अष्टम भाग) प्रथम अध्याय-भारतेन्दु युग की सामान्य पृष्ठभूमि, पृ॰ 7.
2. द्रष्टव्य-हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास-द्वितीय खण्ड-सं॰ डा॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय-पृ॰ 232 (भारतेन्दु युग उपभाग)।

पत्र-पत्रिकाओं का भी कम योगदान न था। अवनति के गर्त में डूबे हुए देश का उद्धार करने का कार्य इन सभी ने मिलकर सुसंपन्न किया। रामकृष्ण आश्रम, थियोसोफिकल सोसायटी, ब्राह्मोसमाज, बंग समाज तथा आर्य समाज आदि विभिन्न सामाजिक सुधार के उद्देश्य से प्रेरित ये संस्थाएं नूतन विचारधाराओं का प्रसार कर भारतीय जन-जीवन में जागृति-चेतना का संचार करने लगीं। ई० सन् 1857 की प्रथम स्वतंत्रता क्रान्ति के बाद आधुनिक काल स्वीकार किया जाता है। "वस्तुत: भारतेन्दु युग की पृष्ठभूमि में भारतीयों ने सर्वप्रथम परम्परागत संकीर्णता एवं आस्थापूर्ण धर्म-प्रवण मनोनिवेश से मुक्ति पाकर छिन्न एवं जीवनगत कटुता का बोध किया था। इसके प्रेरक कई कारण थे, जिनमें धार्मिक आन्दोलनों का अपना विशिष्ट रूप था। भारतीय आधुनिकता के प्रचार का सबसे महत्वपूर्ण श्रेय 'ब्रह्मसमाज' को दिया जाता है।[1] साम्प्रतिक नवीन चेतना एवं जागृति के कारण नूतन शिक्षा प्रणाली का प्रवेश तथा ईसाई धर्म का प्रचार सम्यक् रूपेण हो चुका था। आधुनिक वातावरण के इस जागृति काल में आर्य समाज (सन् 1857) और इंडियन नेशनल कांग्रेस (सन्) 1885) ने नये युग की भावना को और प्रोत्साहित कर चेतना की लहर के साथ बौद्धिकता एवं सहयोग का वातावरण फैलाया। इस राष्ट्रीय-सामाजिक सुधार की प्रवृत्ति में श्रीमती एनीबेसन्ट ने थियोसोफिकल सोसाइटी (सन् 1893) के माध्यम से पाश्चात्य दर्शन का परिचय देते हुए भारतीय दर्शनों की ज्ञान-गरिमा से देश को परिचित करवाया। साहित्यिक दृष्टि से 'नागरी प्रचारिणी सभा' और 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के प्रकाशन ने भी नवीन युग की अवतारणा में काफी सहयोग प्रदान किया। लेकिन नूतन साहित्यिक गतिविधि का प्रारंभ तो इसके पूर्व भारतेन्दु जी के साहित्य प्रवेश (सन् 1850 से 1885) से हो चुका था।

गद्य के प्रारंभ ने भी आधुनिक काल के प्रवर्तन में अपना महत्वपूर्ण विशिष्ट योगदान देकर वैज्ञानिक क्रान्ति का वाहक बनने का पूर्ण श्रेय प्राप्त कर लिया। इसीलिए तो आधुनिक काल का पर्याय-सा गद्य हो चुका है। वैसे गद्य का प्रारंभिक रूप आधुनिक काल से पूर्व थोड़ा-बहुत प्राप्त होता है, जो अव्यवस्थित तथा अल्प मात्रा में है। अंग्रेजी शासन काल में गद्य को भारतेन्दु जी एवं उनके सहयोगियों द्वारा फैलने व व्यवस्थित होने का विस्तृत क्षेत्र प्राप्त हुआ। 'अंग्रेजों के संरक्षण में आधुनिक खड़ी बोली गद्य का जन्म तो नहीं हुआ, उसका स्वतंत्र अस्तित्व पहले ही से था और उन्नीसवीं शताब्दी में वह स्वतंत्र

1. द्रष्टव्य-हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास-द्वितीय खण्ड-सं० डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय-पृ० 232 (प्रथम अध्याय)।

रूप से बढ़ भी रहा था, किन्तु अंग्रेजों के माध्यम द्वारा स्थापित विभिन्न संस्थाओं, शिक्षा-केन्द्रों, उनके शासन की आवश्यकताओं और नवीन साहित्य, ईसाई धर्म, प्रेस, समाचार-पत्र आदि पाश्चात्य शक्तियों के फलस्वरूप प्रचलित नवीन भावों, विचारों आदि के द्वारा खड़ी बोली गद्य को प्रोत्साहन पाकर विकसित होने का अवसर प्राप्त हुआ।[1]

हिन्दी साहित्य में आधुनिक युग का प्रारंभ :

राष्ट्रीय व सांस्कृतिक जागृति के परिणाम स्वरूप हिन्दी साहित्य के इतिहास में भी आधुनिक युग का सूत्रपात इसी समय से होता है। क्योंकि हिन्दी प्रदेश का संसार के अनेक देशों की संस्कृतियों से ज्यों-ज्यों परिचय बढ़ता गया, त्यों-त्यों साहित्य में शैली, विचार एवं भाषा की दृष्टि से भी परिवर्तन परिलक्षित होने लगा। यह नवीनता व विशदता उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में संभव हुई। अंग्रेजी सभ्यता की गतिशीलता तथा विचार शक्ति का प्रभाव भारत की शिथिल हुई संस्कृति-सभ्यता पर होना स्वाभाविक है। परिणामस्वरूप हिन्दी साहित्य भी रूढ़िग्रस्तता एवं प्राचीन विचारों को छोड़कर गतिशील हुआ। उसमें नूतनता व आधुनिकता के बीज पनपने लगे। आधुनिक काल के प्रारंभ के सन्दर्भ में हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों में कोई मतभेद या विचार-वैषम्य नहीं है, हां, दो-चार साल आगे पीछे स्वीकारने से कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता।

बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का आविर्भाव काल हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'नवोत्थान काल' के रूप में स्वीकृत किया जाता है।[2] अपना अलसाया जीवन छोड़कर भारतीय प्रजा ने फिर से जो गतिशीलता तथा विचार-प्रवाह का नया रूप अपनाया, उसका प्रभाव-प्रतिबिम्ब हिन्दी साहित्य ने पूरे उत्साह एवं चेतना के साथ अपनाया और अभिव्यक्त भी किया। आधुनिकता का विविध रूप हिन्दी साहित्य में व्यक्त होने लगा। "भारतेन्दु युग की आधुनिकता का अपना विशिष्ट संदर्भ है। यह आधुनिकता सम-सामयिक आधुनिकता से भिन्न एक विशिष्ट प्रकार के संक्रमणकालीन पुनरुत्थान से सम्बंधित है, जिसके साथ परम्परा-बद्धता, नवीनता के प्रति आग्रह, सांस्कृतिक बोध एवं आत्मनिष्ठा, नवीन जीवन-पद्धति आदि के मूल्य अवतरित हुए। भारतीयों ने एक साथ मिलकर एक शासन तंत्र से पहली बार एक प्रकार की पीड़ा का अनुभव किया।"[3] आलोचकों और इतिहासकारों के मतानुसार हिन्दी साहित्य के आधुनिक युग के प्रारंभिक काल को 'भारतेन्दु काल' कहना सर्वथा उचित है, क्योंकि-"इस

1. द्रष्टव्य-डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय-'आधुनिक हिन्दी साहित्य' पृ० 207.
2. द्रष्टव्य-डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय-'आधुनिक हिन्दी साहित्य' पृ० 30.
3. द्रष्टव्य-हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास-द्वितीय खण्ड-भारतेन्दु युग, पृ० 82.

समय की साहित्यिक गतिविधि भारतेन्दु बाबू की परिष्कृत साहित्यिक सुरुचि एवं जागरूकता के फलस्वरूप केन्द्रित होकर नवीन वातावरण नियोजित करने में प्रतिफलित हुई थी।"[1] भारतेन्दु जी के अथक प्रयास से ही खड़ी बोली गद्य का प्रारंभ हुआ एवं उपन्यास, नाटक, निबंध, आलोचना, प्रहसनादि का प्रारंभ कर उन्हें सुविकसित करने का श्रेय भी उन्हें प्रदान किया जाता है। तथैव अपने समकालीन लेखकों की मण्डली बनाकर उनकों भी निरन्तर साहित्य-सृजन की प्रेरणा देते रहे। तन मन व धन से हिन्दी साहित्य के गद्य क्षेत्र को सुसंपन्न कर 'हिन्दी साहित्य' के 'आधुनिक युग के पिता' का विरुध पूर्णतः सार्थक सिद्ध किया है। विविध-पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन कर सभी दिशाओं में आधुनिक वैचारिक क्रान्ति का सफल प्रयास भी भारतेन्दु जी ने किया। जब हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में गद्य की विविध दिशाओं के द्वार खुले तब हिन्दी जैन साहित्य भी कैसे अछूता रह सकता है। वैसे हमारे प्राचीन संस्कृत-अपभ्रंश साहित्य में गद्य का प्राचीन रूप उपलब्ध होता है, लेकिन आधुनिक साहित्य में जिस रूप में उसका विकास हुआ है, इसका श्रेय पाश्चात्य साहित्य को ही दिया जाता है। क्योंकि आधुनिक गद्य की रूप-रेखा व नैकट्य हमारे प्राचीन साहित्य से न होकर पाश्चात्य साहित्य की विचारधारा से विशेष है।

आधुनिक काल में हिन्दी साहित्य में जैसी गतिशीलता तथा नूतन-प्रवाह व्यक्त होता है, वैसा हिन्दी जैन साहित्य में लक्षित न होता हो तो वह स्वाभाविक है। क्योंकि जैन साहित्य एक अल्पसंख्यक धर्म विशेष से आबद्ध साहित्य है, जिसमें उस धर्म विशेष की दर्शन प्रणाली से प्रभावित विचारधारा, तीर्थंकरों एवं अन्य महत्वपूर्ण चरित्रों के लक्ष में रखकर साहित्य सृजन होता है। तथापि अल्पसंख्यक वर्ग का धर्म होने से दर्शन प्रणाली तथा सिद्धान्तों के प्रति चुस्तता एवं प्रतिबद्धता विशेष रहती है। अतः इसी दर्शन एवं धर्म के मूलभूत तत्वों को दृष्टिगत कर साहित्य सृजन करते समय साहित्यकारों को विशिष्ट सीमा में आबद्ध रहना पड़ता है। वैराग्य व त्यागप्रधान धर्म होने से शृंगार तथा प्रेम का मुक्त गगन उपलब्ध नहीं होता है। लेकिन फिर भी आधुनिक हिन्दी जैन सहित्य ने मानव-मानव के बीज सेतु रूप सोख्य, सोहार्द की मानवीय भावनाओं, अहिंसा प्रधान विचारधारा, त्याग, क्षमा, समताभाव, सहिष्णुता, अपरिग्रह तथा अनेकान्तवादादि का सुन्दर संदेश दिया है, जिसका प्रभाव समाज पर भी पड़े बिना नहीं रह सकता। हिन्दी जैन साहित्य में उपलब्ध रचनाएं भले ही मील का पत्थर न बन पाई हों किन्तु उनके महत्व को नकारा नहीं जा सकता है।

1. द्रष्टव्य-हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास-द्वितीय खण्ड-भारतेन्दु युग, पृ॰ 79.

आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य में भी युगानुरूप परिवर्तन हुआ है। चाहे यह परिवर्तन वैचारिक क्रान्ति या नये आदर्शों की स्थापना के रूप में स्पष्ट लक्षित न हुआ हो तथापि आदर्शात्मक विचारधारा को स्थापित करने में उसका योगदान निर्विवाद है। डा॰ नेमिचन्द्र शास्त्री आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य की विशेषता के सन्दर्भ में लिखते हैं कि–'हिन्दी जैन साहित्य की पीयूषधारा कल-कल निनाद करती हुई अपनी शीतलता से जन-मन के संताप को आज भी दूर कर रही हैं। इस बीसवीं शताब्दी में भी जैन-साहित्य निर्माता पुराने कथानकों को लेकर ही आधुनिक शैली और भाषा में ही सृजन कर रहे है। भक्ति, त्याग, वीर-नीति, श्रृंगार आदि विषयों पर अनेक लेखकों की लेखनी अविराम रूप से चल रही है। देशकाल और वातावरण का प्रभाव इस साहित्य पर भी पड़ा है। अत: पुरातन उपादानों में थोड़ा परिवर्तन कर नवीन काव्य-भवनों का निर्माण किया जा रहा है"[1] आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य के शैली-रूप के सन्दर्भ में यह कथन प्राय: यथार्थ है, क्योंकि विषय वस्तु रूपी कलेवर वही रहा, रूप केवल बदल गया। इस विषय में प्रसिद्ध जैन-विद्वान पं॰ सुखलाल जी ने लिखा है कि–"जैन परंपरा ने विरासत में प्राप्त तत्वज्ञान और आचार को बनाये रखने में जितनी रुचि ली है, उतनी नूतन सर्जन में नहीं ली।' पं॰ सुखलाल जी का यह कथन आधुनिक युगीन हिन्दी जैन साहित्य के सन्दर्भ में वैसे ठीक प्रतीत होता है कि इस युग में प्राचीन ग्रन्थों को अनुवादिक, पुन: मुद्रित संपादित करने के जितने प्रशंसनीय प्रयत्न किये गये हैं, उतने नूतन साहित्य-सृजन के लिए नहीं किये गये हैं। फिर भी गद्य-साहित्य की विविध विधाओं की रचनाएं विपुल संख्या में उपलब्ध इस युग में हुई है, यह महत्वपूर्ण विषय है।

आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य :

पिछले अध्याय में हमने हिन्दी जैन साहित्य की समृद्ध परम्परा का अवलोकन करते हुए आधुनिक युग के (परिवर्तन काल-संवत् 1900 के बाद) साहित्य का स्पर्श किया था। यहां हम इस युग की हिन्दी जैन रचनाओं का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर लेना उपयुक्त समझेंगे। इससे एक समग्र दृष्टि का निर्माण हो सकेगा। इन रचनाओं का विशिष्ट अध्ययन पृथक् अध्याय में किया जायेगा। सर्वप्रथम हम पद्य रूप में लिखित रचनाओं की चर्चा करेंगे।

पद्य :

हार्दिक अनुभूतियों से प्रसून पद्य सदैव रस-सृष्टि निष्पन्न करने में समर्थ रहता है। मुद्रण यंत्र की सुविधा प्राप्त न होने से आदिकाल से पद्य में ही समस्त

1. डॉ॰ नेमिचन्द्र शास्त्री-हिन्दी जैन साहित्य-परिशीलन-भाग 2, अध्याय-8 पृ॰ 19.

शास्त्र और साहित्य को रचा जाता था। छन्द, लय एवं संगीत के कारण पद्य-साहित्य कंठस्थ करने में सरल तथा आकर्षक रहता है। हमारा प्राचीन स्मृत व श्रुत साहित्य पद्य में ही लिखित रहा है। आधुनिक युग में भी यही पद्य की परम्परा आज भी उपलब्ध होती है। पद्य की रागात्मकता एवं भाव-विभोरता का महत्व प्रत्येक युग में अक्षुण्ण रहता है। आज के युग में गद्य का प्रसार-प्रचार अत्यधिक हो पाया है, उसकी महत्ता भी सर्व स्वीकृत है। आधुनिक युग को 'गद्य-युग' का पर्याय भी हम कह सकते हैं। फिर भी पद्य के प्रवाह में जीवन की गहराई एवं अनुभूति का उद्रेक जिस स्वाभाविकता व रोचकता से हो पाता है, वह गद्य में कहां संभव? पद्य की लोकप्रियता कभी कम होने वाली चीज नहीं है।

आधुनिक युग में निर्मित हिन्दी जैन साहित्य के अन्तर्गत जो पद्यात्मक रचनाएं हैं, वह तीन श्रेणियों में विभाजित की जा सकती हैं–

(1) महाकाव्य कृतियाँ।
(2) खण्डकाव्य कृतियाँ।
(3) मुक्तक काव्य कृतियाँ।

महाकाव्यों के रूप में आलोच्य काल में दो उपलब्ध कृतियां हैं–एक श्री अनूप शर्मा कृत 'वर्धमान' महाकाव्य तथा दूसरी है श्री मूलदास नीमावत कृत भगवान महावीर को ही आलम्बन बनाकर रची गई कृति 'वीरायण'। प्रथम हम इन्हीं की चर्चा करेंगे, तदुपरान्त खण्ड काव्यों एवं मुक्तक रचनाओं पर विचार करेंगे।

वर्द्धमान :[1]

महाकवि अनूप शर्मा ने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य 'सिद्धार्थ' की सफल रचना के उपरांत भगवान महावीर को नायक बनाकर 'वर्धमान' महाकाव्य की रचना सन् 1951 में की थी। इन दोनों महाकाव्यों के चरित-नायक श्रमण परम्परा ही दो महान विभूतियां हैं तथा इन दोनों कृतियों में बौद्ध एवं जैन दर्शन की काव्यात्मक अवतारणा हुई है। आधुनिक युग में जैन तीर्थंकर भगवान महावीर को लक्ष्य में रखकर रचा गया यह सर्वप्रथम सफल महाकाव्य कहा जायेगा। इस कृति के प्रणयन से अनूप जी की सर्व-धर्म-समन्वय भावना का द्योतन होता है। कविवर अनूप स्वयं ब्राह्मण धर्म के अनुयायी होते हुए भी तीर्थंकर महावीर के प्रति जो अपनी काव्यांजलि अर्पित की है, उससे न केवल

---

1. प्रकाशक–भारतीय ज्ञानपीठ-दिल्ली-जुलाई 1951.

कवि की व्यक्तिगत धार्मिक सहिष्णुता का ही बोध होता है, वरन् भारत की उस महान संस्कृति का पृष्ठ हमारे सामने पुनः भास्वरित हो जाता है, जिसके मूल में सभी धर्मों के प्रति श्रद्धा, आदर और सम्मान की महती भावना निहित है। वे हिन्दी साहित्य के तो यशस्वी कवि है ही। इस रचना के द्वारा वे हिन्दी के जैन साहित्य के भी अग्रिम पंक्ति के कवि सिद्ध हुए हैं। इस काव्य में जैन धर्म की मर्यादाओं के रहने के बावजूद भी अनूप जी ने जैन धर्म के त्यागी-विरागी तीर्थंकर के चरित्र को उभारा है तथा दार्शनिक विचारधारा को भगवान महावीर की जीवनी के द्वारा सुन्दर काव्यात्मक स्वरूप प्रदान किया है। इसकी विस्तृत चर्चा हम अगले अध्याय में करेंगे।

महाकाव्य में सम्पूर्ण जीवन को प्रतिबिंबित किया जा सकता है, अतः वह विस्तृत फलक्रम जीवन की विशद् व्याख्या करती है। महाकाव्य जीवन और जगत के विविध पहलुओं को स्पर्श कर मानव हृदय की अनुभूतियों को स्पंदित करने में सफल रह सकता है। महाकवि अनूप शर्मा ने भी 'वर्धमान' की रचना में भगवान महावीर की जीवनी को प्रारंभ से लेकर अन्त तक वर्णित कर अन्य अधिकाधिक कथाओं को भी इसमें समाविष्ट किया है।

17 सर्गों में विभक्त इस महाकाव्य को कथा-वस्तु, वर्णन, रस व नेता सभी दृष्टियों से सफल कहा जा सकता है। कवि ने पांच सर्ग में भगवान महावीर के माता-पिता रानी त्रिशला एवं राजा सिद्धार्थ के सोहार्दमय दाम्पत्य जीवन का सुन्दर वर्णन किया है, साथ ही क्षत्रिय-कुण्ड नगरी की शोभा, सिद्धार्थ की महानता, पौरुष एवं महारानी त्रिशला के सौन्दर्य का भी बहुत ही सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है। यथा–

सरोज-सा वक्त्र, सुनेत्र-मीन से
सिवार-से केश, सुकंठ कम्बु-सा।
उरोज ज्यों कोक, सुनाभि भोर-सी
तरंगिता थी त्रिशला तरंगिणी।। (55।81)

उसी प्रकार राज दम्पति का दाम्पत्य व प्रेम कितना ऊंचा उठा है–

प्रभो! मुझे हो किस भांति चाहते?
यदेव निश्रेयस चाहते सुधी
प्रिये। मुझे हो किस भांति चाहती।
यदेव साध्वी पद पार्श्वनाथ के।। (158-76).

इन्हीं सर्गों में रानी त्रिशला के 14 शुभसूचक स्वप्नों एवं उनके फलों की चर्चा विस्तार से की गई है। महावीर के जन्म पूर्व गर्भ-परीक्षा, त्रिशला की दिनचर्या, अन्तःपुर के नृत्य-वाद्य एवं संगीत का कार्यक्रम, उपवन-सौंदर्य तथा

त्रिशला की कठोर गर्भता का विशद् वर्णन कवि ने किया है। प्रभु महावीर का जन्म 8वें सर्ग में वर्णित है जिसमें उस समय का वातावरण आनंदोत्सव तथा ऋषिकुल द्वारा व्यक्त आशीर्वाद को चिचित्र किया गया है। 9वें सर्ग से लेकर 14वें सर्ग तक वर्धमान का बाल्य जीवन उनकी 'महावीरता' सूचक घटनाओं, ऐकान्तिक चिन्तन, कुमार का विवाह व विवाहोत्सव, स्वप्न दर्शन, आत्म-निरीक्षण, महावीर का निरन्तर ध्यान-चिन्तन तथा 12 आध्यात्मिक भावनाओं पर परिचिंतन कवि ने गुम्फित किया है। चौदहवें सर्ग के अन्त में ही महावीर का गृह-त्याग एवं दीक्षा समारोह का वर्णन है। 15वें सर्ग में प्रभु आंतर्-बाह्य तपश्चर्या, कठोर कष्टों को समभाव एवं शांति से सहते हुए 'केवल ज्ञान' प्राप्ति की कथा है। तीर्थंकर लक्षण भी इसी सर्ग में वर्णित है। चन्दना चरित्र की आधिकारिक कथा भी इसी सर्ग में है। अंतिम तीन सर्गों में कवि अनूप जी ने भगवान महावीर के 'केवल ज्ञान' प्राप्त करने के उपरान्त की घटनाओं को वर्णित किया है। भगवान महावीर का 11 प्रमुख विद्वान् ब्राह्मणों को सर्वप्रथम दीक्षित करने की कथा एवं गांव-गांव घूमकर जैन धर्म के प्रसार-प्रचार के साथ धर्म-निर्देशना तथा साधु व गृहस्थ के लक्षणों का वर्णन प्रमुख रूप से है। अपने प्रमुख शिष्यों (गणधरों) को उपदेश देने का तथा प्रभु महावीर के निर्वाण (मोक्षपद) का प्रसंग भी इन्हीं सर्गों में अनूप जी ने समाविष्ट किया है।

कवि ने मुख्य कथा के साथ-साथ चण्डकौशिक, चन्दनबाला, गौतम मुनि, गोशालक-कथा, प्रभु के 27 पूर्व भवों में से प्रमुख भवों की कथा, 11 प्रमुख ब्राह्मण आचार्यों की जैन दीक्षा अंगीकार करने की घटना आदि अवान्तर कथाओं के रूप में वर्णित की है, जो मुख्य कथा-प्रवाह को आगे बढ़ाने में तथा जीवन की संपूर्णता व्यक्त करने में सहायक होती है। कवि ने स्वेच्छानुसार प्राचीन कथा वस्तु में दो-चार स्थानों पर परिवर्तन-परिवर्द्धन किया है, जिसके फलस्वरूप एक-दो जगह कालक्रम में अन्तर आ गया है। लेकिन इससे महाकाव्य में कथा-प्रभाव को कोई क्षति नहीं पहुचती। क्योंकि यह केवल साम्प्रदायिक जीवन नहीं है वरन् एक स्वतंत्र संपूर्ण महाकाव्य है।

कथा वस्तु की दृष्टि से सफल यह महाकाव्य संस्कृत छंद तथा तत्सम शब्दावली के बाहुल्य के कारण सामान्य पाठक को कहीं-कहीं क्लिष्ट प्रतीत होता है। लेकिन रोचक शैली, भव्य वर्णन, उदात्त चरित्र-चित्रण एवं शृंगार व शान्त रस के मार्मिक निरूपण से यह महाकाव्य निश्चय ही महत्त्वपूर्ण है। साथ ही सुंदर भावात्मक वर्णनों की दृश्यावलियों तथा जैन दर्शन की गहन विचारधारा को छंद-लय-बद्ध स्वरूप में प्रस्तुत करने से इसे गरिमा प्राप्त हुई है। कवि ने

अपनी कारयित्री प्रतिभा से माता त्रिशला के सौन्दर्य-प्रेम का सुन्दर वर्णन किया है। उसी प्रकार राजा सिद्धार्थ एवं रानी त्रिशला के अनुराग-पूर्ण दाम्पत्य जीवन का मार्मिक चित्रांकन कर महाकाव्य में उदात्तता निरूपित की है। कितने ही स्थानों पर सुन्दर समन्वय कर नवीन कल्पना जगत की सृष्टि खड़ी की है। 'वर्धमान' महाकाव्य में जैन-सम्प्रदायों के सिद्धान्त-समन्वय का स्तुत्य प्रयास किया गया है, जो कवि अनूप जी की शुभ-निष्ठा का सूचक है। चरित्र-चित्रण के दृष्टिकोण से भी प्रमुख पात्रों-राजा सिद्धार्थ, रानी त्रिशला, महावीर (कुमार वर्धमान, त्यागी महावीर एवं तीर्थंकर महावीर) का सुन्दर चित्रण हुआ है। भाव, भाषा, शैली, वर्णन, काव्य चमत्कार आदि दृष्टियों से 'वर्धमान' महाकाव्य को न केवल सफल ही कहा जायेगा, बल्कि विशिष्ट धर्म सम्प्रदाय एवं सन्दर्भों को उद्घाटित करने वाला नूतन दृष्टिवाला महाकाव्य कहना चाहिए। इसी कारण अहिंसा, सत्य, अन्तर्बाह्य तपस्या, एकाग्र निष्ठा तथा मानव-कल्याण का सन्देश देनेवाला 'वर्धमान' महाकाव्य न केवल हिन्दी जैन साहित्य में बल्कि आधुनिक हिन्दी साहित्य में भी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने् का अधिकारी है।

वीरायण[1]

इस महाकाव्य की रचना संवत् 2006 में सौराष्ट्र में जामनगर के समीप 'फलां' नामक छोटे से गांव के निवासी कवि श्री मूलदास नीमावत ने की है। जैन सम्प्रदाय एवं हिन्दी भाषी न होने पर भी उन्होंने ब्रज-अवधी से प्रभावित हिन्दी में महाकाव्य लिखने का प्रसंशनीय प्रयास किया। वैसे मूलदास जी 'फलां' में स्कूल शिक्षक थे। फिर भी निरन्तर अध्ययन-अध्यापन के साथ-साथ भ्रमण-यात्रा करके ज्ञानवर्द्धन करते रहते थे। उनकी मुक्तक रचनाओं से (जो अप्रकाशित हैं) सदानंदी सम्प्रदाय के मुनि छोटेलाल जी महाराज एवं लक्ष्मीचन्द्र जी महाराज प्रभावित हुए थे और उन्होंने ही 'वीरायण' महाकाव्य में प्रभु महावीर का जीवन संदेश गुम्फित करने की प्रेरणा दी थी। जिसके फलस्वरूप मूलदास जी ने परिश्रम करके जैन धर्म-ग्रन्थों एवं कथा-ग्रन्थों का गहरा अध्ययन किया। महाकवि भक्त तुलसीदास के प्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरित मानस' की भव्यता, महानता एवं रामचरित्र-यशोगान से प्रभावित होकर उसी भाषा शैली व छन्द में भगवान महावीर की सम्पूर्ण जीवनी एवं उनके सन्देश को गुम्फित करने की प्रेरणा उपर्युक्त दो साधुओं ने दी और फलस्वरूप सात वर्ष के परिश्रम के बाद इस महाकाव्य 'वीरायण' का सृजन संभव हो पाया।[2]

1. प्रकाशक-पूज्य श्री लाघा जी स्वामी पुस्तकालय, अहमदाबाद, सन् 1952.
2. द्रष्टव्य-मूलदास कृत 'वीरायण' की प्रस्तावना, पृ॰ 2.

हिन्दी जैन साहित्य को दोहा-चौपाई, छंद में रचित एक महाकाव्य प्राप्त हुआ। कवि ने इसे सात काण्डों में विभक्त किया है।

'वीरायण' महाकाव्य में कवि मूलदास जी ने भगवान महावीर के जीवन की प्रमुख घटनाओं के साथ-साथ प्रासंगिक घटनाओं को भी आकलित कर लिया है। आधिकारिक कथा के अन्तर्गत प्रभु महावीर के गर्भ स्थापन से जन्म तक की घटना, बाल्यकाल एवं विवाह-प्रसंग, गृहस्थ जीवन तक है, तो गृह-त्याग के अनन्तर साढ़े बारह वर्ष तक भिन्न-भिन्न स्थल पर विचरण करना, तपस्या तथा चिन्तन-मनन के पश्चात् 'केवल ज्ञान' प्राप्त करने की घटना प्रमुख है। तत्पश्चात् धर्म प्रचारक एवं तीर्थंकर का रूप विशेष उभरता है। अवान्तर कथाओं में चण्ड कौशिक, चन्दन-बाला, गोशालक कथा विशेष महत्त्वपूर्ण है, जो साथ चलकर मुख्य कथा के प्रवाह को पुष्ट करती है। कथा वस्तु को गतिशील बनाये रखने के साथ विविध वस्तु-वर्णन, प्रकृति चित्रण, पात्रों के मार्मिक चरित्र-निरूपण, मनोवैज्ञानिक सूझबूझ-पूर्ण घटनाओं के विश्लेषण, शान्त व श्रृंगार रस के नियोजन द्वारा काव्य को रोचक तथा सफल बनाया गया है।

'वीरायण' में कवि ने मुख्य कथा के प्रत्येक प्रसंग को बड़ी ही मार्मिकता से उभारा है। इसीलिए उसका कलेवर भी वृहत हो गया है। भगवान महावीर के पूर्व भवों में से त्रिपुष्ट वासुदेव, पुष्पमित्र चक्रवर्ती एवं नन्दन राजकुमार के जीवन-भवों का विस्तृत व फड़कता वर्णन किया है, साथ ही गर्भस्थ बालक की हिलने की क्रिया के बन्द होने पर माता त्रिशला का करुण क्रन्दन का कवि ने भावपूर्ण वर्णन किया है। ऐसे बहुत से मार्मिक प्रसंगों का रसास्वादन 'वीरायण' महाकाव्य में कराया गया है, जिनकी विस्तृत चर्चा अगले अध्याय में की जायेगी।

इस महाकाव्य में कवि ने स्पष्टतः श्वेताम्बर मान्यतानुसार प्रभु के ब्याह का वर्णन बड़ी ही अद्‌भुत और आलंकारिक शैली में किया है। विवाह महोत्सव एवं नववधू की दिनचर्या का भी सजीव चित्रण किया गया है। कवि मूलदास जी ने सुन्दर वर्णनों शान्त, श्रृंगार को वात्सल्य व अद्‌भुत रसों की भावभूमि में जीवन व धर्म की दार्शनिकता की भावप्रवण अभिव्यक्ति इस महाकाव्य में की है। उनकी भाषा-शैली महाकवि तुलसीदास जी की भाषा के माधुर्य, उदात्तता, गहराई व परिपक्वता को छू सकने में असमर्थ होने पर भी ब्रज-अवधी मिश्रित खड़ी बोली के इस महाकाव्य में भाषा की मधुरता एवं स्निग्धता अवश्य पाठक को सराबोर कर सकती है। वैसे कवि का उद्देश्य तुलसीदास जी जैसे महाकवि

के महाकाव्य की भाषा शैली से स्पर्धा करने का किंचित् मात्र नहीं रहा है। उन्होंने केवल प्रेरणा ही ग्रहण की है। इस प्रकार 'वीरायण' जैसे महाकाव्य की रचना करके मूलदास जी ने हिन्दी जैन साहित्य को उपकृत ही किया है। आधुनिक हिन्दी जैन काव्य को एक अहिन्दीभाषी कवि की यह भेंट श्लाघ्य ही नहीं अपितु अनुकरणीय भी है।

चन्द्रप्रभ पुराण :

आलोच्य काल के अन्तर्गत एक और महाकाव्य सूचना 'प्रेमी अभिनंदन ग्रन्थ' के अन्तर्गत श्री परमानन्द जैन के 'जैन सिद्धान्त भवन के कुछ हस्तलिखित ग्रन्थ' शीर्षक निबंध से उपलब्ध हुई है।[1] यह केवल हस्तलिखित ग्रन्थ है, प्रकाशित नहीं हुआ है। संवत् 1912 (ई॰ 1856) में हीरासिंह नामक कवि ने भादो कृष्ण त्रयोदशी को सोलह अधिकार एवं 3000 श्लोको में इस ग्रन्थ की रचना की थी। कविवर ने यह कृति गुणभद्राचार्य विरचित 'उचर पुराण' के आधार पर हिन्दी के विविध छन्दों में रची है। कवि की रचना से एक-दो दृष्टान्त उद्धृत किये जाते हैं। भाषा-शैली पर प्राचीनता का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। यथा-पुत्र-शोक से उद्विग्न-संतप्त राजा की दशा का वर्णन देखिए-

मूर्छा पाय धरनि पर पर्यों, मानो चेतन ही निसरौ।
अब किनो शीतल उपचार, भयो चैत नृप करे पुकारा॥
हां! हां! कुंवर तूं गयो काय, तो बिन मोको कछू न सुहाय।
सिर छाती कूटे अकुलाय, सुनत सभा सब रुदन कराय॥

पुत्र-रहित मनुष्य की दशा पर कवि कहते हैं-

(कवित्त) **कमल बिना जल, जल बिना सरवर,**
सरवर बिना पूर, पूर बिन राय।
राम सचिवबिन, सचिव बिना बुद्धि,
बुद्धि विवेक जिनको सोभा न जाइ॥
विवेक बिना क्रिया, क्रिया दयाबिन,
दयादान बिन, धन बिन दान।
धन बिन पुरुष तथा बिन रामा,
रामा बिन सुत त्यों जग मांहि॥

आधुनिक युग के प्रारंभ की रचना होने से भाषा पर ब्रज का स्पष्ट प्रभाव वर्णन शैली में भी प्राचीन प्रभाव विशेष दिखाई पड़ता है। 'चन्द्रप्रभ पुराण'

1. द्रव्टव्य-प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ', पृ॰ 503.

शीर्षक से फलित होता है कि इसमें आठवें तीर्थंकर 'चन्द्रप्रभु' की जीवनी व उपदेश को कवि ने ग्रन्थ-बद्ध किया होगा।

खण्ड काव्य :

महाकाव्य में जीवन की विविध घटनाओं एवं सम्पूर्ण इतिवृत्तात्मकता की अवतारणा प्रमुख रसों व अनेकविध वर्णनों के कारण सहज संभव हो सकती है। तदुपरान्त मुख्य कथा भाग के साथ-साथ छोटी-बड़ी अवान्तर कथाओं की भी गुंजाइश महाकाव्य में उपलब्ध रहती है। जबकि खण्ड काव्य में जीवन के सभी पक्षों को न ग्रहण कर एक-दो मार्मिक पक्ष या महत्त्वपूर्ण प्रसंग को लेकर तीव्र भावानुभूति तथा आकर्षक भाषा-शैली में काव्य की अवतारणा की जाती है। अनेक छोटे-बड़े पात्रों एवं वैविध्यपूर्ण घटनाओं की योजना इसमें मूर्तिमन्त नहीं हो सकती, बल्कि सीमित पहलू व मर्यादित चरित्रों की झांकी, उत्कृष्ट भावपक्ष एवं कलात्मक शैली पक्ष के साथ अंकित करके खण्ड काव्य को सफल बनाया जाता है। आधुनिक युग में महाकाव्य की अपेक्षा खण्डकाव्यों की रचना विशेष की जाती है।

''वर्तमान युग में जैन कवियों ने खण्ड काव्यों द्वारा जगत् और जीवन के विविध आदर्श और यथार्थ का समन्वित रूप प्रस्तुत किया है। 'खण्डकाव्यं मे भवेत् काव्यस्येकदेशानुसारि च।' अर्थात् खण्डकाव्य में जीवन के किसी एक पहलू की झांकी रहती है। कवियों ने पुरातन मर्मस्पर्शी कथानकों का चयन कर रचना-कौशल, प्रबन्ध-पटुता, और सहृदयता आदि गुणों का समन्वय किया है, जिससे ये काव्य पाठकों की सुषुप्त भावनाओं को सजग करने का कार्य सहज में सम्पन्न करते हैं।[1] आधुनिक युग के हिन्दी जैन खण्ड काव्यों के सन्दर्भ में डा० नेमिचन्द का यह कथन उपलब्ध खण्ड काव्यों के अनुशीलन से सही प्रतीत होता है।

आलोच्य काल में-'राजुल', विराग, वीरता की कसौटी, प्रतिफलन, बाहुबलि, सत्य-अहिंसा का खून तथा अंजना-पवनंजय खण्डकाव्य लिखे गये हैं, किन्तु इनमें से विराग, राजुल, सत्य-अहिंसा का खून तथा अंजना-पवनंजय ही उपलब्ध खण्डकाव्य हैं। अन्यों का केवल नामोल्लेख ही नेमिचन्द्र जी के 'हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन' में प्राप्त होता है। 'अंजना-पवनंजय' खण्डकाव्य भी प्रकाशित पुस्तक के रूप में प्राप्त न होकर 'अनेकान्त' जैन मासिक की पुरानी फाइल से प्राप्त हो पाया था। तीन अनुपलब्ध खण्डकाव्यों के शीर्षकों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये धार्मिक-पौराणिक कथावस्तु पर आधारित है।

1. डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री-हिन्दी जैन साहित्य-परिशीलन-भाग 2, पृ० 24.

प्राचीन कथावस्तु के साथ महान चरित्रों की किसी महत्त्वपूर्ण जीवन-घटना का भावमयी शैली में अंकन किया गया होगा। यहां हम उपलब्ध खण्डकाव्यों का संक्षिप्त परिचय दे रहे हैं।

राजुल[1] :

नवयुवक कवि बालचन्द्र जैन ने इस खण्डकाव्य की रचना जैन धर्म के 22वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ की वाग्दत्ता राजुल के अभूतपूर्व त्याग, प्रेम एवं महान आदर्श की भावना से प्रेरित होकर की है। इसमें प्रसिद्ध प्राचीन आख्यान को लेकर जैन दर्शन के उत्कृष्ट आदर्श पात्र भगवान नेमिनाथ को मानव-मात्र का आदर्श बनाने का कवि ने उपक्रम किया है। भगवान नेमिनाथ जी की भावी आदर्श पत्नी राजुल की उत्कृष्ट प्रेम-भावना, विरह तथा आत्मसाधना की झांकी कवि बालचन्द्र ने मार्मिक रूप से अंकित की है। राजकुमारी राजुल ने संकल्प मात्र से ही जिसका पतिरूप में वरण किया था, उस नेमिकुमार के वैराग्य ग्रहण के पश्चात् सर्वस्व समर्पण कर स्वयं भी उनके त्याग-मार्ग की अनुयायी बन गई और अपने अनन्य संयम व एकनिष्ठ साधना से जैन धर्म व समाज को प्रेरित किया। राजुल ने सांसारिक वैभव, अपार सुख-समृद्धि एवं सुकुमार रूप सौन्दर्य व पारिवारिक मोह का क्षण मात्र में त्याग कर अतीव कष्टदायक साध्वी पद स्वेच्छा से स्वीकार कर मानव-कल्याण के लिए त्याग मार्ग का अनुसरण किया था।

'राजुल' के प्रारंभ में नेमिकुमार के विवाह-मण्डप से लौट जाने पर नवयौवना कोमलांगी राजुल को आघात, मोह तथा मूर्च्छा आ जाती है। अतः नेमिकुमार के प्रति हार्दिक अनुराग होने से माता-पिता के अन्य राजकुमार से विवाह कर लेने का प्रस्ताव ठुकरा देती है तथा नेमिकुमार के साथ ही त्याग-मार्ग स्वीकार कर आत्म-साधना में लीन हो जाने के लिए उद्धत होकर राजुलमती आत्म-संयम का परिचय देती है। इस काव्य में दर्शन, स्मरण, मिलन, विरह और उत्सर्ग नामक पांच सर्ग हैं। भाव और भाषा की दृष्टि से यह काव्य मध्यम कोटि का होने पर भी उसकी सरलता व स्निग्धता आकर्षक है। 'राजुल' खण्ड-काव्य आधुनिक हिन्दी जैन खण्डकाव्यों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

विराग[2] :

श्री धन्यकुमार जैन 'सुधेश' का यह खण्ड काव्य एक भावात्मक रचना है, जिसमें कवि ने कुमार वर्धमान के जीवन-संदेश द्वारा मानव-जीवन को प्रकाशित करने का आदर्श प्रस्तुत किया है। 'सुधेश' जी का हाल ही (1975)

1. सन् 1948, प्रकाशक—साहित्य साधना समिति, काशी।
2. प्रकाशक—भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ-मथुरा।

में 'भगवान महावीर' नामक महाकाव्य भी प्रकाशित हुआ है। उसमें उन्होंने भगवान महावीर की सम्पूर्ण जीवनी को अंकित किया है, जब कि इस खण्ड काव्य में कुमार वर्द्धमान के विराग का प्रसंग लिया है।

इस काव्य में कवि ने भगवान महावीर के अटल विराग-भाव को काव्यात्मक ढंग से व्यक्त किया है। अहिंसा, करुणा, सहानुभूति, निःस्वार्थ त्याग एवं मूक प्राणी के प्रति अनन्य कोमल-व्यवहार का अमर संदेश इसमें गूंजता है। यौवन और समृद्धि से संपन्न होने पर भी कुमार ने विवाह प्रस्ताव छोड़कर प्राणियों के कल्याण का दायित्त्व संभाला। वस्तुतः इसमें काव्यानंद के साथ आत्मानंद का भी कवि ने सुन्दर समन्वय किया है। दुःखी, विवश प्राणी के प्रति अनुराग व करुणा की भावना से प्रेरित होकर सांसारिक सुख-वैभव का त्याग कर जगत-कल्याण के प्रयत्नों के प्रति अग्रसर होने वाले कुमार वर्धमान का 'विराग' यहां मूर्तिमन्त हो उठता है। धीरोदात्त नायक की वैराग्य-भावना का कवि ने खण्डकाव्य में सफल चित्रण किया है। एकाध जगह पर राजा सिद्धार्थ का चरित्र-चित्रण अवश्य अस्वाभाविक प्रतीत होता है, जब वे पुत्र के सामने यौवन, सौन्दर्य, दाम्पत्यजीवन तथा वैभव विलास का वर्णन कर पुत्र को विवाह के लिए उत्साहित होने की विनती करते हैं। लेकिन अटल-प्रतिज्ञ महावीर का मन किसी भी प्रलोभन की ओर आकृष्ट नहीं होता है, अतः विवश होकर पिता को वापस आना पड़ता है और रानी त्रिशला को सारी बात बताते हैं। माता त्रिशला अगाध विश्वास लिए पुत्र को मनाने-राजी करने के लिए कुमार के पास आती है। मां अपनी चिर आकांक्षा, मातृहृदय के अगाध प्यार-वात्सल्य और अंतिम अस्त्र आंसू का उपयोग (प्रयोग नहीं) भी कुमार के सामने करती है, लेकिन कुमार तो हिमालय की भांति अडिग है अपने निर्धार में। उनका एक ही सरल उत्तर है कि 'मां! इच्छाएं तो अनन्त है—वह कभी भी तृप्त होने वाली नहीं हैं। नारी के समान ही विश्व के ये मूक प्राणियों का भी मेरे ऊपर अधिकार है, जिनकी गर्दन पर दुधारी तलवार चल रही है।[1] निरर्थक बलि बनते प्राणियों की करुण पुकार सुनकर भगवान कैसे राजमहल में चुपचाप वैभव भोग सकते हैं? उन्हें तो समाज की दिशाओं में क्रान्ति लानी थी, धार्मिक आडम्बर तथा यज्ञ-योग में निर्दोष पशु-बलि के क्रूर विधान को रोकने के लिए अहिंसक आंदोलन जगाना था। मनुष्य के तप्त हृदय में शांति, करुणा व प्रेम की अखण्ड धारा बहानी थी। इस उद्देश्य प्राप्ति में अवरोधक राजमहल, रत्नाभूषण सुख-वैभव और परिवार के तीव्र-स्नेह को त्याग कर तपस्या, चिन्तन और क्षमापूर्ण व्यवहार

1. द्रष्टव्य-विराग-पृ० 30.

के उस पथ पर महावीर चल पड़े, जिस पर चलने से वे मनुष्य से तीर्थंकर बन पाये।

इस खण्ड काव्य में कवि ने मातृ हृदय के स्नेह और वात्सल्य के भावों का सुन्दर निरूपण किया है। साथ ही कुमार के अटल निश्चय तथा उत्कृष्ट विराग भावना को भी कवि ने उसी सहजता से मूर्तिमन्त किया है। इस कोटि का यह प्रथम खण्डकाव्य होने से कहीं-कहीं त्रुटि का रह जाना स्वाभाविक है। आधुनिक विचारधारा से प्रभावित लोकतंत्र, नारी की विवश स्थिति, सामाजिक असमानता का कवि ने मार्मिक वर्णन किया है। कुमार की धीर-गंभीर वाणी में इन समस्याओं का सुझाव भी प्रस्तुत किया है कि न्याय, समानता, अहिंसा और करुणा के प्रेममय शस्त्र से ये विषमताएं दूर की जा सकती है। वर्तमान राजकीय विचारधारा से कवि काफी प्रभावित प्रतीत होता है। क्योंकि सत्ता से उत्पन्न दोषों का विस्तृत वर्णन इसमें किया है। समानता, स्नेह और सहानुभूति के सुखद, शीतल छींटों से यह काव्य पूर्णतः ओत-प्रोत है। अतः भावों की विशालता व गहराई जगह-जगह पर प्रकट होती है। भाषा की स्वाभाविकता एवं लाक्षणिकता पर भी कवि ने यथेष्ट ध्यान दिया है। भाषा शुद्ध एवं साहित्यिक है। खण्ड काव्य छोटा होने पर भी विचार, भावानुभूति, चरित्र-चित्रण, शैली व भाषा सभी दृष्टियों से यह सफल काव्य कहा जायेगा। इसकी शैली रोचक, तर्कपूर्ण व ओजप्रधान है। छन्दों का बन्धन नहीं स्वीकारा है, फिर भी भावों के प्रवाह में छन्द बनते गये हैं। अतः खण्ड काव्य में गत्यावरोध नहीं है।

अंजना-पवनंजय :

'अनेकान्त' द्वि-मासिक शोध पत्रिका के सन् 1973 के अप्रैल के अंक में छपा हुआ यह खण्ड काव्य श्री भंवरलाल शेठी ने लिखा है। यह रचना किस सन् में लिखी गई है, इसका उल्लेख उक्त पत्रिका में नहीं है। किंतु संभावना यही प्रतीत होती है कि इसकी रचना 1970 ई० के आस-पास हुई होगी। प्रकाशन के क्रम में आते-आते 1973 ई० आ गई होगी इसी से यह ग्रन्थ यहां उल्लिखित है। 123 पदों में रचित इस खण्ड काव्य में कवि ने जैन धर्म के एवं समाज में प्रसिद्ध अंजना-पवनंजय की कथा को आबद्ध किया है। यह काव्य वर्णनात्मक है, इसमें मार्मिक अनुभूतियों की विशद्-गहन अभिव्यक्ति कम है।

राजा महेन्द्र अपनी सुयोग्य राजकुमारी अंजना का ब्याह राजा प्रह्लाद एवं रानी केतुमती के सुयोग्य वीर पुत्र पवनंजय के साथ बड़े उल्लास से करते हैं। लेकिन पवनंजय अपने अहं, वहम के कारण निर्दोष अंजना का शादी के बाद तुरन्त परित्याग कर देता है। अंजना अपने दृढ़-विश्वास एवं पति प्रेम के कारण

सब कुछ शान्त भाव से सहती है। अन्ततः पवनंजय को अपनी गलती और अभिमान का अहसास होता है और अंजना को स्वीकार करने के लिए उद्यत होता है। अंजना को अनेक शारीरिक व मानसिक कष्ट झेलने पड़े। लेकिन अन्त में परिवार वाले उसे इज्जत व स्नेह से स्वीकार करते हैं। अंजना-पवनंजय की कथा लेकर हिन्दी जैन साहित्य में काफी रचनाएं हुई हैं।

लेखक की भाषा-शैली अत्यन्त सरल है। मार्मिक घटनाओं की पहचान कवि को कम रही है, फलतः खण्डकाव्य साधारण कोटि का रह गया है। कवि ने यदि अंजना की सम्पूर्ण जीवनी की अपेक्षा एकाध-दो मार्मिक प्रसंगों को ही काव्यबद्ध किया होता तो भावों की अभिव्यक्ति में विशेष तीव्रता आ गई होती।

सत्य-अहिंसा का खून :

स्व० भगवत् स्वरूप जैन ने सन् 1940 के आसपास इस छोटे से खण्ड काव्य की रचना की। भगवत् जी की अनेक हिन्दी जैन रचनाएं (कथा, काव्य, नाटकादि) उनके निधन के बाद सन् 1945 में उनके लघु भ्राता वसंतकुमार जैन ने प्रकाशित करवायी थीं। उनकी कुछ रचनाएं तथापि अनुपलब्ध हैं।

'सत्य अहिंसा का खून' सरल शैली के खण्ड काव्य में 'अहिंसा परमोधर्मः' महामंत्र का महत्त्व सिद्ध किया गया है। राजावसु, ब्राह्मणपुत्र नारद तथा गुरु पुत्र पर्वत का इसमें पौराणिक आख्यान का आधार कवि ने लिया है। 'अज' (1-बकरा 2-त्रिवर्षीय शाली जौ) के द्विअर्थ के कारण अर्थ का अनर्थ हो जाने से दो मित्र नारद एवं पर्वत के बीच उग्र विवाद खड़ा होता है, जिसका निपटारा करने के लिए बचपन के सखा लेकिन अब राजा वसु के पास दोनों जाते हैं। पर्वत की माता ने राजा वसु से अमानत वचन की मांग करके अपने पुत्र के पक्ष में न्याय दिलवाया। राजा वसु को सरासर गलत महसूस होने पर भी पूर्व वचन से बद्ध होने के लिए न्याय पर्वत के पक्ष में देने के लिए बाधित होना पड़ा। परिणामतः असत्य के समर्थन से राजा वसु सिंहासनसहित पाताल में चला गया और मूढ़ मति पर्वत के मस्तिष्क पर कितने युगों तक 'बलि' की परिपाटी-हिंसात्मक विधि-का कलंक रहा। इसकी कथावस्तु अवश्य रोचक है, लेकिन खण्डकाव्योक्ति सुन्दर चरित्र-चित्रण, प्रसंगों की मार्मिकता, वर्णन की विशदता या कलात्मक शैली का प्रायः अभाव है, फिर भी भगवत् जी की यह प्रारंभिक कृति होने पर भी भाव एवं कथा की रोचकता के कारण काव्य ग्राह्य बन गया है।

मुक्तक काव्य कृतियां :

महाकाव्य तथा खण्ड काव्य के भावविधान व रूपविधान से सर्वथा पृथक् मुक्तक काव्य स्वरूप में भावोर्मि तथा अनुभूति की गहराई रहती है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मुक्तक के अन्तर्गत रस की छींटों को ही महत्त्व दिया है, जिससे पाठक की हृदय-कलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है और रमणीय दृश्य या भाव चित्र की उपस्थिति से पाठक कुछ क्षणों के लिए मंत्र-मुग्ध-सा हो जाता है।[1] भावात्मक मुक्तक के विषय में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए डा० नेमिचन्द्र शास्त्री लिखते हैं–"नैराश्य, भक्ति, प्रणय और सौन्दर्य की अभिव्यंजना ही जिसका चरम लक्ष्य रहे और जिसकी आरंभिक पंक्ति के श्रवण से ही पाठक के हृदय में सिहरन, प्रकंपन और आलोड़न-विलोड़न होने लगे, वह श्रेष्ठ भावात्मक मुक्तक रचना कही जा सकती है।"[2] वैसे मुक्तक के विषय में विभिन्न विद्वानों ने परिभाषाएं प्रस्तुत की हैं, लेकिन यहां हमारा उद्देश्य उन परिभाषाओं को उद्धृत करने का न होकर केवल मुक्तक की आंतर्बाह्य विशेषता को ही संक्षेप में देखने का है। भाव विह्वलता, सांकेतिकता एवं विदग्धता का मुक्तक काव्य में रहना आवश्यक-सा हो जाता है। मुक्तक में जीवन की विविध सम्पूर्ण घटनाओं या प्रमुख प्रसंगों को उद्घाटित न कर केवल हृदय की स्वानुभूति का उन्मुक्त अंकन रहता है। एक पल या विचार-बीज मात्र का रहना मुक्तक के लिए अहम् है, जो पाठक के चित्त को झकझोर दे। उसको स्वानुभूति की तीव्रता से प्रभावित कर देने की क्षमता ऐसे काव्यों में आवश्यक रहती है। छन्द के बन्धन, विशद्, वर्णन, विविध पात्र, सम्पूर्ण कथा और भावों की पूर्ण विवृति मुक्तक को स्वीकार्य नहीं है। केवल भाव-जगत में उत्पन्न एक स्पंदन, सिहरन को लयताल में प्रस्तुत कर पाठक को भाव-विभोर बना देने की शक्ति मुक्तक काव्य में अपेक्षित है।

आधुनिक हिन्दी जैन मुक्तक काव्य जगत में दो प्रकार की प्रवृत्तियां दृष्टिगत होती है। एक तो प्राचीन परिपाटी पर लिखी गई कविताएं; जिनके अन्तर्गत किसी आचार-विचार या सिद्धान्त का प्राचीन ढंग पर वर्णन किया गया हो। भाषा-शैली भी पुराने ढंग की होती है। हृदय की भावना का विश्लेषण तो अवश्य होता है, लेकिन उसके रूप को संवारा नहीं गया होता है। इस प्रकार के कारणों में दार्शनिक पृष्ठभूमि के कारण आधारात्मक नियमों का विधि-निषेधात्मक निरूपण विशेष किया जाता है। अतः स्वाभाविक है कि हृदय की मुक्त भाव-चेतना अपने सहज स्वाभाविक रूप-रंग में निखरी न होने से पाठक की भावना को रस से आप्लावित करने वाली प्रायः नहीं होती है। बल्कि दार्शनिक पृष्ठभूमि के कारण कहीं-कहीं नीरसता या कठिनता की भावना भी पाठक के

1. द्रष्टव्य–आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास-पृ० 247.
2. द्रष्टव्य–डा० नेमिचन्द्र शास्त्री-हिन्दी जैन साहित्य-परिशीलन-भाग 2, पृ० 36.

हृदय में जन्म लेती है। इस प्रकार की परिपाटी पर काव्य लिखनेवालों में प्रथम कवि आरा निवासी बाबू जगमोहन दास हैं, जिनका 'धर्म रत्नोद्योत' काव्य-संकलन प्रकाशित हुआ था, जो आज अनुपलब्ध है। डा० नेमिचन्द्र शास्त्री के 'हिन्दी जैन साहित्य-परिशीलन' में इसका उल्लेख प्राप्त होता है। बाबू जैनेन्द्रकिशोर (आरा निवासी) भजन-नवरत्न, श्रावकाचार दोहा, वचन बत्तीसी आदि कविताएं लिखी है। इनके उपरान्त आपने समस्यापूर्ति भी की है, जिस पर रीति-युग की स्पष्ट छाप है। आपके नख-शिख वर्णन के भी कुछ रोचक एवं श्रुति मधुर पद उपलब्ध है। झालरा पाटन निवासी श्री लक्ष्मीबाई तथा मास्टर नन्दूराम की इस प्रवृत्ति की कविताओं में माधुर्य गुण अधिक दिखाई पड़ता है। वैसे इनकी कविताओं में आचारात्मकता और नैतिक कर्त्तव्य का विश्लेषण सुन्दर ढंग से किया गया है। सप्तव्यसन की बुराइयों का अच्छा निरूपण इनकी कविताओं में हुआ है तथा दर्शन व आचार की गूढ़ बातों को कवि ने सरल तथा रोचक शैली में व्यक्त किया है। दार्शनिक पश्चाद भू से सम्बन्धित विषयों पर लिखी गई कविताएं रोचक शैली व माधुर्य के कारण निर्जीव या बोझिल नहीं लगती है।[1]

दूसरी प्रवृत्ति के अन्तर्गत नूतन प्रवृत्तियों को लेकर मुक्तक काव्यों की रचना करनेवाले आधुनिक युग में अनेक छोटे-बड़े कवि हमारे सामने आते हैं। उन सभी का स्वतंत्र परिचय न यहां संभव है ओर न समीचीन है। केवल उन कवियों का परिचय यहां दिया जा रहा है, जिन्होंने किसी एक प्रवृत्ति को लेकर काव्य रचना की है। वृत्तात्मक, वर्णनात्मक, आचारात्मक, भावात्मक तथा गेयात्मक इन पांच वर्गों में आधुनिक हिन्दी जैन काव्य को समाविष्ट किया जा सकता है। (1) ऐतिहासिक वृत्त या घटनाओं को लेकर जिन कविताओं में भावों की अभिव्यक्ति हुई हो वह वृत्तात्मक, (2) प्राकृतिक दृश्य, किसी विशेष स्थल, त्यौहार या घटना का वर्णन करनेवाले धार्मिक या लौकिक दृश्य का विवरण प्रस्तुत करनेवाली कविता वर्णनात्मक, (3) नीति, आचार, व्यवहार, सिद्धान्त या उपदेश का निरूपण करनेवाली कविता आचारात्मक, (4) शृंगार, प्रणय, उत्साह, करुणा, सहानुभूति, रोषादि हृदय की किसी भी मूल भावना को भावात्मक शैली में निरूपित करनेवाली कविताएं भावात्मक (5) रस प्रधान, लययुक्त मधुर रचना गेयात्मक कविताएं कही जाती हैं।[2] यहां हम इन्हीं वर्गों में विभाजित रचनाओं की चर्चा करेंगे।

1. द्रष्टव्य-डा० नेमिचन्द्र शास्त्री-हिन्दी जैन साहित्य-परिशीलन-भाग 2 पृ० 34-35.
2. द्रष्टव्य-डा० नेमिचन्द्र शास्त्री-हिन्दी जैन साहित्य-परिशीलन-भाग 2, पृ० 36.

(1) वृत्तात्मक रचनाओं के अन्तर्गत कवि गुणभद्र 'अगास' की 'प्रद्युम्न चरित', 'राम-वनवास' तथा 'कुमारी अनन्तमती' रचनाएं प्राप्त होती हैं। उनमें काव्यत्व की कमी और पौराणिकता, वृत्तात्मकता अधिक होने से साधारण कोटि की बनी है। कवि मूलचन्द 'वत्सल' के 'वीरपंच रत्न' में पांच वीर बालकों का चरित-वृत्त अंकित है। इनके उपरान्त कवि कल्याण कुमार 'शशि' का 'देवगढ़ काव्य' भी वृत्तात्मक काव्य की कोटि में ही गिना जायेगा।

(2) वर्णनात्मक मुक्तक रचनाओं में श्री जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर' की 'अजसम्बोधन', श्री नाथूराम 'प्रेमी' की 'पिता की परलोक यात्रा पर', गणपति गोयलीय की 'सिद्धार कूट', गुणभद्र 'अगास' की 'भिखारी का स्वप्न', सूर्यभानु डोंगी की 'संसार', अयोध्या प्रसाद गोयलीय की 'जवानों का जोश', कामता प्रसाद जैन की 'जीवन झांकी', लक्ष्मीचन्द्र जैन की 'मैं पतझड़ की सूखी डाली', शान्तिप्रसाद स्वरूप 'कुसुम' की 'कलिका के प्रति', लक्ष्मण प्रसाद की 'फूल', खूबचन्द 'वत्सल' की 'भग्नमंदिर', वीरेन्द्र कुमार की 'वीरवंदना', घासीरामचन्द्र की 'फूल से', राजकुमार की 'आह्वान' प्रमुख मुक्तक रचनाएं उपलब्ध हैं। उसी प्रकार स्त्री कवयित्रियों में चन्द्रप्रभा देवी की 'रणभेरी', कमला देवी की 'रोटी' कमला देवी 'राष्ट्रभाषा कोविद' की 'हम हैं हरी भरी फूलवारी' इत्यादि रचनाओं को सुन्दर मुक्तक रचनाएं कही जा सकती हैं।

(3) आधुनिक हिन्दी जैन कवियों में श्रेष्ठ भावात्मक काव्य धार्मिक सिद्धान्तों के प्रति प्रतिबद्धता के कारण विशेष मात्रा में व उत्कृष्ट कोटि के उपलब्ध नहीं होते हैं। कुछ कवि अवश्य ऐसे हैं जिनकी रचनाओं में गूढ़ भावनाओं की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। शोक, आनंद, वैराग्य, शांति व करुणा के भावों की अभिव्यक्ति विशेष रूप से हुई है। हिन्दी काव्य साहित्य के श्रेष्ठ छायावादी कवियों की रचनाओं में जो भावानुभूतियों से अतिरंजित सूक्ष्म भावों की गहन प्रतीकात्मक एवं लयबद्ध मार्मिक अभिव्यंजना हुई है ऐसी और उतनी उत्कृष्ट भावपूर्ण मुक्तक धारा हिन्दी जैन काव्य धारा में स्वाभाविक रूप से उपलब्ध नहीं होती है। इसके लिए विशेष धार्मिक पृष्ठभूमि भी कारणभूत हो सकती है। जो भावप्रधान रचनाएं प्राप्त होती हैं उनमें मुख्तार साहब की 'मेरी भावना' अवश्य सुन्दर रचना कही जायेगी। कवि की हार्दिक इच्छा एवं भावना को मूर्तिमन्त रूप प्रदान किया गया है। इसके अतिरिक्त गणपति गोयलीय की 'नीच और अछूत' कवि चैनसुखदास की 'जीवनपट', कवि सत्यभक्त की 'झरना', कवि कल्याण कुमार 'शशि' की 'विश्रुत जीवन', श्री भगवत्स्वरूप जैन की 'सुख शांति चाहता है मानव', कवि लक्ष्मीचन्द्र की 'सजनी आंसू लोगी

या हास', कवि बुखारिया की 'मैं एकाकी पथभ्रष्ट हुआ', अमृतलाल चंचल की 'अमर पिपासा', पुष्कल की 'जीवन दीपक', अक्षयकुमार गंगवाल की 'हलचल', मुनि श्री अमृतचन्द्र 'सुधा' की 'अन्तर' और 'बड़ेआ', सुमेरचन्द्र कौशल की 'जीवन-पहेली' तथा 'आत्म-निवेदन', बालचन्द्र 'विशारद' की 'चित्रकार से', एवं 'आंसू से', श्रीचन्द्र की 'आत्म निवेदन' तथा कवि दीपक की 'झनकार' प्रमुख मुक्तक रचनाएं हैं। वैसे संख्या के दृष्टिकोण से भावात्मक कविताएं लिखने वाले काफी हैं, किन्तु उत्कृष्ट भावप्रधान मुक्तक-काव्य लिखनेवाले कम हैं। भगवत् स्वरूप जैन, मूलचन्द 'वत्सल', कवि बुखारिया और कवि पुष्कल की भावात्मक रचनाएं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

(4) आचारात्मक कविताएं जैन धर्म की विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। इनमें आचारों-सिद्धान्तों का महत्त्व और वर्णन विशेष रूप से होता है। इनमें उच्च काव्यत्व की मात्रा कम, प्राय: अभाव-सा ही रहता है।

(5) गेयात्मक रचनाओं के अन्तर्गत कल्पना द्वारा भावों को उत्तेजित करने की शक्ति निहित होती है। उसी प्रकार मानव-मन की रागात्मक वृत्ति को अधिकाधिक जागृत करके नाद युक्त संगीतात्मकता के द्वारा मधुर रसपूर्ण सृष्टि रची जाती है। गेय काव्यों में लय, ताल और नाद का रहना नितान्त आवश्यक माना जाता है। जिस गेय रचना में संगीत नहीं, वह उच्च भावपूर्ण रहने पर भी गेय काव्य नहीं हो सकती। वस्तुत: अन्तर्जगत के स्वाभाविक स्फुरण को स्वर और लय के नियमित आरोह-अवरोह से बांध देने से उनकी अभिव्यक्ति पर पाठक को एक अनिर्वचनीय आनंद व माधुर्य की अनुभूति होती है। इस प्रकार की कविता लिखने में कवयित्री कुन्थुकुमारी, प्रेमलता कौमुदी, पुष्पलता देवी, कवि अनुज, पुष्पेन्दु, रतन, कवि गंगवाल, कवि बुखारिया आदि को अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। श्रीमती प्रेमलता की 'मूकयाचना', लज्जावती देवी की 'आकुल अन्तर', श्री फूलचन्द 'पुष्पेन्दु' की 'अभिलाषा' तथा 'देवद्वार' कविताओं में गेयात्मकता का गुण विद्यमान है। इसी प्रकार कवि रामनाथ पाठक 'प्रणयी' के 'तीर्थंकर' शीर्षक काव्य संकलन में गेय गीतों को प्रकाशित किया गया है। इनमें भावों की सुन्दर लयबद्ध अभिव्यक्ति हुई है।

नूतन विचारधारा के उपर्युक्त परिचित-अपरिचित सभी कवि-कवयित्रियों की रचनाओं को श्रीमती रमारानी जैन ने 'आधुनिक हिन्दी जैन काव्य' के अन्तर्गत संग्रहीत किया है। उन्होंने 'युग-प्रवर्तक', युगानुगामी, प्रगति प्रेरक, प्रगति-प्रवाह, उर्मि तथा 'सीकर' शीर्षकस्थ छ: भागों में प्रवृत्तिओं को विभाजित किया है। रमा रानी जी ने काल क्रमानुसार यह विभाजन किया है। इन्हीं कवियों

की कविताओं का विश्लेषण डा० नेमिचन्द्र शास्त्री ने आधुनिक युगीन स्फुट रचनाओं में 'नूतन-प्रवाह' के अन्तर्गत विषयानुसार किया है। उन्होंने इन्हीं कवियों को तीन काल खण्डों में समाविष्ट कर लिया है। अन्य किसी मुक्तक-काव्य संग्रह का परिचय यहां उपलब्ध नहीं है।

मधुरस :

स्व० भगवत् जैन के शिक्षाप्रद काव्यों का यह संकलन ईस्वी सन् 1944 में प्रकाशित हुआ था। यह संकलन प्राचीन धार्मिक कथा-साहित्य पर आधारित है। कवि ने प्रारम्भ में चौबीस तीर्थंकरों की वंदना-स्तुति करके निज-लघुता का इकरार किया है। सभी कविताएं साधारण कोटि की हैं, लेकिन कवि की धार्मिक अनुराग रंजित भावानुभूति तथा रोचक घटना-प्रसंग के कारण कविताएं ग्राह्य तथा रोचक बन पड़ी है। कवि का उद्देश्य भगवान महावीर के अहिंसा सिद्धान्त का सम्यक् प्रसार ही रहा है; क्योंकि अहिंसा के प्रसार की नूतन प्रणाली को कवि भगवान महावीर की सामाजिक चेतना व क्रान्ति समझते हैं। अलंकार-योजना, भाषा का चमत्कार या शैली की नूतनता के अभाव में भी अहिंसात्मक विचारधारा का गहन उद्रेक इन काव्यों का जीवंत अंश है। आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य में स्व. श्री भगवत् जैन का स्थान काफी महत्त्वपूर्ण है।

श्री विद्या-विनोद :

सन् 1936 ईस्वी में मुनि श्री विद्या विजय जी महाराज ने धार्मिक स्तुतिपरक गीतों-स्तवनों की रचना की थी, जिनमें तीर्थंकरों की भक्ति से प्राप्त दुर्लभ शान्ति के महत्त्व पर जोर दिया गया है। भगवान के गुण एवं सर्वोच्चता स्वीकार कर निज लघुता का प्रदर्शन कर प्रभु से उबारने के लिए प्रार्थना की गई है। संगीतात्मकता के कारण 'विद्या-विनोद' के स्तवन गेय हैं।

'वीर पुष्पांजलि' :

इसके अन्तर्गत श्री चन्द्राबाई पण्डिता के स्तवनों का संग्रह है।[1] वंदना-प्रार्थना के इन गीतों में मधुरता काफी है तथा लेखिका के हृदय की पुकार व तन्मयता का अच्छा अंकन हुआ है। श्रीमती कमला देवी कृत 'श्री शासन देव से श्राविका संघ की प्रार्थना' भी छोटे-छोटे धार्मिक स्तवनों का संग्रह है, जिस पर राजस्थानी भाषा का प्रभाव विशेष लक्षित होता है। राजस्थान में जैन धर्म का अत्यन्त प्रसार-प्रचार होने से धार्मिक पूजा-महोत्सव, स्तुति-वंदन के सन्दर्भ में

---

1. द्रष्टव्य-'शोध पत्रिका'-जुलाई 1970, पृ० 30.

उपयोग में लाने के लिए ढूंढारी भाषा से प्रभावित हिन्दी में छोटी-बड़ी बहुत सी पुस्तकें प्रकाशित की जाती है। प्रभु की मूर्ति के सामने ऐसी स्तुति परक रचना गा-गाकर भक्त का चित्त आनन्द से विभोर हो उठता है तथा शान्ति प्राप्त करने की कोशिश रहती है।

श्रीपाल चरित[1] :

कवि परिमल ने सं. 1956 में इसकी रचना की थी, लेकिन प्रकाशित नहीं की थी। उनकी हस्तप्रत को शुद्ध करके बाबू ज्ञानचन्द जैनी ने ईस्वी सन् 1904 में प्रकट किया। प्रारंभ में कवि ने तीर्थंकारों और गुरु की वंदना की है। जैन धर्म, समाज व साहित्य में श्रीपाल राजा तथा मैनासुंदरी की कथा अत्यन्त प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय है। स्वकर्मों के कारण अनेकानेक कष्ट-रोगादि को समताभाव से सहन कर एकनिष्ठा से धर्म-चक्र की आराधना कर तपस्या के द्वारा कर्मों के क्षय (निर्ज़रा) के उपरान्त दंपत्ति को सुख प्राप्ति होती है। लेकिन तभी ज्ञान-नेत्र खुल जाने से संसार की असारता देख दोनों वैराग्य ग्रहण करते हैं। श्रीपाल-मैना की प्रसिद्ध कथावस्तु लेकर कवि ने पद्य-शैली में इस काव्य ग्रन्थ की रचना की है।

श्रीपाल राजा का रास[2] :

श्रीपाल-मैना की विषय वस्तु से सम्बन्धित एक अन्य रचना मुनि श्री शिवविजय ने दोहा-चौपाई शैली में की है। कथा वस्तु वही प्राचीन है तथा भाषा-शैली पर गुजराती भाषा का काफी प्रभाव है।

विचार-चन्द्रोदय :

ईस्वी सन् 1909 में कवि पिताम्बर जी ने इसकी रचना की है, जिसकी भाषा गद्य-पद्य मिश्रित है। छोटी-छोटी कथाओं के माध्यम से साहित्यिक ढंग से धार्मिक चर्चा के बीच-बीच में मनहर, रोला आदि छन्दों में कविताएं कवि ने रची हैं, जिनका प्रमुख विषय गुरुंवन्दना एवं महत्त्व से सम्बन्धित है।

सुबोध कुसुमावली :

कविवर मुनि नानचन्द्र जी के सुन्दर भावात्मक स्तवनों की यह रचना है। इसके प्रारंभ में गद्य में छोटी-छोटी कथाओं में धार्मिक उपदेश हैं। स्तवनों में विविध राग-रागिनियों का प्रयोग किया गया है। आशावरी, बिलावल, बिहाग, कानड़ आदि रागों का कवि ने कुशलता पूर्वक प्रयोग किया है।

---

1. आत्मानंद जैन ज्ञान मंदिर-बड़ौदा।
2. जैन आत्मानंद सभा-भावनगर।

मयूर-दूत :

प्राचीन जैन काव्य 'इन्द्रदूत-काव्य'[1] की शैली पर सं. 1993 में 'मयूर-दूत' काव्य का प्रणयन मुनि धुरन्धर विजय ने किया। इसमें 180 पद्य हैं, तथा शिखरिणी छन्द का विशेष प्रयोग किया गया है। मुनि धुरन्धर जी ने कपड़वंज में चातुर्मास के समय जामनगर स्थित अपने गुरु के पास मयूर के द्वारा संदेश भेजा है। इस संदेश में उन्होंने अपनी गूढ़ भक्ति व वंदना के भाव अभिव्यक्त किये हैं। कपड़वंज (गुजरात) से जामनगर (सौराष्ट्र) के बीच के प्राकृतिक स्थलों का कवि ने सुन्दर वर्णन किया है, जिससे कवि की कवित्व-शक्ति का परिचय प्राप्त होता है। आदिकाल तथा मध्यकाल में दूत-काव्य की परम्परा विशेष दिखाई पड़ती थी, लेकिन आधुनिक काल में दूत-काव्य का प्रवाह स्थगित हो गया है।[2]

नेमवाणी :

मुनि नेमिचन्द्र जी के भाववाही सुन्दर धार्मिक भजनों का संग्रह 'नेमवाणी' भी इसी काल की रचना है। इसमें तीर्थंकरों की वंदना-स्तुति आलंकारिक शैली तथा भावपूर्ण रूप से की गई है।

अन्धा चांद[3] :

मुनि रूपचन्द जी की यह प्रथम रचना होने पर भी प्रतीकात्मक शैली एवं आधुनिक परिवेश में लिखी गई सुन्दर कृति है। इस काव्य-संकलन की यह विशेषता है कि इसमें धार्मिक संदर्भ या पौराणिक कथावस्तु किसी का आधार नहीं ग्रहण किया गया है। मुक्तक रचनाओं में कवि की भावोर्मि छलक पड़ती है। कवि की गंभीर भावानुभूति से युक्त छोटे-छोटे मुक्तक आकर्षक लगते हैं।

इसी युग में प्रसिद्ध जैन तत्व चिन्तक कवि श्रीमद् राजचन्द्र की 5-6 हिन्दी कविताएं भी उपलब्ध होती हैं। इनमें गुरु-महात्म्य तथा आत्म ज्ञान प्राप्त करने की महत्ता का वर्णन किया गया है। उनकी कविताओं पर चिन्तन का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। भाषा शैली सरल होने पर भी आकर्षक है।

पं॰ गोपाल दास जी बरैया की 'भजनावली' में छोटे-छोटे भजन भावपूर्ण

---

1. द्रष्टव्य—जैन साहित्य बृहत् इतिहास—सं॰ डा॰ गुलाब चौधरी, पृ॰ 553, (षष्ठम् भाग)।
2. द्रष्टव्य—जैन साहित्य का बृहत् इतिहास—सं॰ डा॰ गुलाब चौधरी, पृ॰ 553, (षष्ठम् भाग)।
३. प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ-दिल्ली।

व साहित्यिक शैली में मिलते हैं। लेकिन आज यह 'भजनावली' अनुपलब्ध है। केवल वर्णी जी की आत्मकथा 'मेरी जीवन गाथा' में सविस्तृत उल्लेख प्राप्त हुआ है।[1]

आधुनिक काल में जैन काव्य साहित्य सम्बन्धी एक विशेष प्रवृत्ति यह भी दृष्टिगत होती है कि मध्यकालीन भक्त-कवियों की रचनाओं को पुनः संपादित किया जाता है। इससे श्रेष्ठ कवियों की उत्तम रचनाओं को जनता के सामने प्रस्तुत कर उनका रसास्वादन कराया जाता है, तथैव अपरिचित कवि की रचनाओं को प्रकाश में लाया जाता है। इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत मोहनलाल शास्त्री ने 'जैन-भजन-संग्रह-भाग-1-2' संपादित किये हैं। तथा श्रीयुत भागचन्द जी जैन ने 'भागचन्द पद-संग्रह'- में मध्ययुग के जैन कवियों की भक्तिपरक रचनाओं को संकलित किया है। श्रीयुत अगरचन्द नाहटा और भंवरलाल नाहटा ने 'ऐतिहासिक-जैन-काव्य संग्रह' में मध्यकालीन कवियों की ऐतिहासिक कृतियों को संकलित किया है। ऐसी रचनाओं में काव्यत्व के साथ-साथ इतिहास की कोई न कोई घटना, प्रसंग या व्यक्ति जुड़े होने से तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक या राजकीय इतिहास पर भी यत्किंचित् प्रकाश उपलब्ध हो जाता है। ऐसे ऐतिहासिक काव्यों को संपादित व प्रकाशित करते समय संपादकों को सतर्कता व कुशलता रखनी पड़ती है। राजकुमार जैन ने भी 'अध्यात्मपदावली' में प्रसिद्ध प्राचीन कवियों की कृतियों को प्रकाशित किया है। इसमें उन्होंने इस काल की ऐतिहासिक, धार्मिक परिस्थितियों का भी विवेचन कर दिया है, ताकि इसी सन्दर्भ में कवियों की रचना का मूल्यांकन या समीक्षा की जाय।

कभी-कभी एक ही प्राचीन कवियों की रचनाओं को संकलित किया जाता है। मध्यकालीन भक्त कवि धानतराय ने 'धानतविलास' से अच्छे चुने हुए पदों का संग्रह 'जैन-पद-संग्रह' के अंतर्गत किया गया है। इसी प्रकार पं० ज्ञानचन्द्र जैन ने 'जैन-शतक' में कवि भूधरदास जी के 'जैन-शतक' की सुन्दर रचनाओं को संपादित किया है। भूधरदास जी का यह शतक हिन्दी जैन साहित्य में अत्यन्त प्रसिद्ध है और जैन समाज में समादृत व लोकप्रिय है। यहां ऐसी रचनाओं का विवरण देने का उद्देश्य न होकर केवल एक प्रवृत्ति की ओर इंगित मात्र करने का है। आधुनिक काल में न केवल मध्यकालीन बल्कि अपभ्रंश-प्राकृत की रचनाओं को भी हिन्दी में अनुवादित, पुनः संपादित करने की प्रवृत्ति स्पष्ट दीखती है।

प्राचीन एवं मध्यकालीन हिन्दी जैन साहित्य में जिस प्रकार आचार्यों तथा

1. श्री गणेशप्रसाद वर्णी—मेरी जीवन गाथा, पृ० 62.

मुनियों का उल्लेखनीय योगदान रहता था, उसी प्रकार आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य सृजन में भी मुनियों का कम योगदान नहीं है। इसका प्रमुख कारण यह हो सकता है कि निरन्तर अध्ययन करने की उनको सुविधा प्राप्त होती है। दूसरी बात वर्षा ऋतु में स्थलान्तर न किये जाने पर एक ही स्थल पर ठहर कर लेखन कार्य करते रहते हैं। तीसरी बात किसी एक सम्प्रदाय या गच्छ के किसी मुनि ने कुछ रचा है—प्रकाशित करवाया है, तो अन्य संप्रदाय वाले भी कुछ न कुछ अवश्य लिखेंगे और प्रकाशित करवाएंगे। ऐसी स्पर्धात्मक भावना के कारण भी लिखने की प्रवृत्ति बनी रहती है। उपर्युक्त विवेचन से आधुनिक हिन्दी जैन काव्य का पर्याप्त परिचय प्राप्त हो जाता है। अब यहां आधुनिक हिन्दी जैन गद्य साहित्य की भी चर्चा कर लेना समीचीन होगा।

आधुनिक हिन्दी जैन गद्य :

गद्य आधुनिक युग की सामाजिक, धार्मिक व राजनैतिक क्रांति के परिणामस्वरूप मानव जगत को मिली हुई अनमोल भेंट है। इस युग में गद्य को विचारवाहक के रूप में सर्वाधिक उपयुक्त समझा गया है, क्योंकि प्रास-अनुप्रास, छंद-ताल-लय किसी का बंधन न होने के साथ सोचने-विचारने की प्रक्रिया को यथार्थ ढंग से सुगमतापूर्वक प्रस्तुत करने की सुविधा इसमें उपलब्ध रहती है। इसीलिए पद्य के साथ-साथ गद्य का महत्व व प्रभुत्व बढ़ने लगा। गद्य में विचारों की अभिव्यक्ति सरलता से की जाती है। आधुनिक काल में हिन्दी जैन साहित्यकारों ने पद्यात्मक साहित्य की तुलना में गद्यात्मक साहित्य-सृजन विशाल मात्रा में किया है।

हिन्दी-जैन-साहित्य का निर्माण केन्द्र विशेषत: दिल्ली, आगरा, राजस्थान, एवं मध्यप्रदेश रहा है। अत: वहाँ की बोलियों का प्रभाव वहां वर्णित साहित्य पर पड़ना बहुत संभव है। प्राचीन गद्य के नमूने इसी कारण ढूंढारी प्रभावित हिन्दी भाषा में उपलब्ध होते हैं। लेकिन आधुनिक युग की साहित्यिक भाषा खड़ी बोली को ही माध्यम के रूप में स्वीकार किये जाने से प्रादेशिक भाषाओं का प्रभाव अत्यन्त कम रहा है। आधुनिक काल में जैन-गद्य साहित्य अपनी बहुविध विधाओं में उपलब्ध होता है। गद्य साहित्य नाटक, उपन्यास, निबन्ध, कथा-साहित्य, जीवनी एवं आत्मकथा आदि विविध स्वरूपों में प्राप्त होता है। 'जैन लेखकों ने उपन्यास या नाटक के रूप में प्राचीन काल में गद्य नहीं लिखा। कुछ कथाएँ गद्यात्मक रूप में अवश्य लिखी गई। प्राचीन संस्कृत और प्राकृत के कथा-ग्रन्थों के अनुवाद भी ढूंढ़ारी भाषा में लिखे गये, जिससे सर्व साधारण इन कथाओं को पढ़कर धर्म-अधर्म के फल को समझ सके। लेकिन आधुनिक

युग में अनुवाद के साथ नूतन गद्य-साहित्य निर्माण का कार्य भी चलता रहा है।'[1]

जैन लेखकों ने मानव-कल्याण की भावना से प्रेरित हो उपयोगिता पूर्ण साहित्य की रचना मुख्य रूप से की है। इस शताब्दी में मानव-भावों एवं विचारों की जितनी अभिव्यक्ति गद्य में संभव हुई, उतनी पद्य में नहीं। क्योंकि आज का मनुष्य भावना एवं तर्क के सामंजस्य द्वारा भौतिक विकास के लिए गद्य को उचित माध्यम स्वीकार करता है। आधुनिक हिन्दी-जैन-गद्य की प्रारंभिक स्थिति पर प्रकाश डालते हुए डा० नेमिचन्द्र लिखते हैं कि–"जीवन की विवेचना तथा मानव की विभिन्न समस्याओं का सर्वांगीण और सूक्ष्म ऊहापोह गद्य के माध्यम द्वारा ही संभव है। इस बीसवीं शताब्दी में विषय के अनुरूप गद्य और पद्य के प्रयोग का क्षेत्र निर्धारित हो चुका है। कथा-वर्णन, यात्रा-वर्णन, भावों के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, समालोचना, प्राचीन-गौरव-विवेचन, तथ्य-निरूपण आदि में गद्य-शैली अधिक सफल हुई है। इस शताब्दी में निर्मित जैन गद्य साहित्य का समस्त साहित्य-कोष किसी भी रत्न-राशि से कम मूल्यवान और चमकीला नहीं है। यद्यपि इस शताब्दी के आरम्भ में जैन गद्य साहित्य का श्रीगणेश वचनिकाओं, निबंध और समालोचनाओं से होता है, तो भी कथा-साहित्य और भावात्मक गद्य साहित्य की कमी नहीं है। आरम्भ के सभी निबन्ध धार्मिक, सांस्कृतिक और खण्डन-मण्डनात्मक ही हुआ करते थे। कुछ लेखकों ने प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों का हिन्दी गद्य में मौलिक स्वतंत्र अनुवाद भी किया है, पर इस अनुवाद की भाषा और शैली भी 18वीं और 19वीं शती की भाषा और शैली से प्राय: मिलती-जुलती है।"[2] आधुनिक काल में गद्य साहित्य का प्रारम्भ धार्मिक रचनाओं के अतिरिक्त कथा-साहित्य के रूप में भी हुआ था, जिसका क्रमश: परिष्कृत भाषा-शैली में विकास हुआ। आधुनिक हिन्दी जैन गद्य ने युगानुरूप भाषा-शैली में अपना रूप सजाया-संवारा है।

उपन्यास :

आधुनिक हिन्दी साहित्य में कथा-साहित्य के अन्तर्गत ही उपन्यास तथा कहानी का समायोजन किया जाता है। अत: कथा साहित्य को पृथक् विधा नहीं माना जाता, जबकि जैन साहित्य में कथा साहित्य और उपन्यास दोनों को भिन्न-भिन्न स्वीकारा जाता है। क्योंकि उपन्यास की कथावस्तु पौराणिक,

1. डा० नेमिचन्द्र शास्त्री–आधुनिक हिन्दी साहित्य का परिशीलन-पृ० 40.
2. डा० नेमिचन्द्र शास्त्री–हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन-पृ० 51.

ऐतिहासिक के साथ-साथ काल्पनिक भी हो सकती है, जबकि कथा-साहित्य में मानव की आध्यात्मिक उन्नति तथा जीवन-कल्याण के हेतु शुद्ध रूप से प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों की कथावस्तु को आधार बनाकर कथा एवं चरित ग्रन्थों की रचना की जाती है। तीर्थंकरों, धार्मिक प्रमुख स्त्री-पुरुष, ऐतिहासिक जैन व्यक्ति या किसी दार्शनिक तत्व को महत्व देकर कथा और चरित्र ग्रन्थों की रचना शुद्ध पौराणिक या ऐतिहासिकता के आधार पर की जाती है। कल्पना को इसमें प्रश्रय नहीं दिया जाता, हाँ, कहीं-कहीं वर्णनों में अवश्य काल्पनिकता का रंग भर सकते हैं। कथा वस्तु में भी अंशतः कल्पना का सहारा लिया जा सकता है। कहानी-कला के तत्व कथा साहित्य में रखते हैं, लेकिन धार्मिक उपदेश, वृत-नीति-महिमा का प्रभाव विशेष रहता है। वैसे तो जैन उपन्यास साहित्य में भी धार्मिक उपदेश अंकित रहते हैं, लेकिन वहां प्रत्यक्ष न होकर चरित्र-चित्रण, वर्णन और कथोपकथन के माध्यम से अप्रत्यक्ष रहते हैं। इससे उपन्यास के कथा-प्रवाह में बाधा या अन्तराल उत्पन्न नहीं होता। 'जैन आख्यानों में मानव-जीवन के प्रत्येक पहलू का स्पर्श किया गया है, जीवन के प्रत्येक रूप का सरस और विशुद्ध तथा संपूर्ण जीवन का चित्र परिस्थितियों से अनुरंजित होकर अंकित है। कहीं इन कथाओं में ऐहिक समस्याओं का समाधान किया गया है, तो कहीं पारलौकिक का।++++ ये कथाएं जीवन को गतिशील, हृदय को उदार और विशुद्ध एवं बुद्धि को कल्याण के लिए उत्प्रेरित करती है। मानव को मनोरंजन के साथ जीवनोत्थान की प्रेरणा इन कथाओं से सहज रूप में प्राप्त हो जाती है।[1]

नये हिन्दी जैन लेखकों ने प्राचीन धार्मिक कथा वस्तु को ग्रहण कर रमणीय उपन्यास की रचना की है। वैसे निबन्ध और कथा-साहित्य की तुलना में उपन्यासों की संख्या अत्यन्त अल्प कही जायेगी। धार्मिक चरित्रों पर ग्रन्थों के प्रणयन अवश्य हुये हैं, लेकिन उन्हें उपन्यास के अन्तर्गत न समाविष्ट कर कथा-साहित्य के भीतर समाविष्ट करना अधिक युक्ति-संगत प्रतीत होता है क्योंकि इस प्रकार के कथाग्रन्थों में रोचक कथावस्तु एवं सुन्दर रसात्मक वर्णनों के बावजूद भी उपन्यास के लिए आवश्यक वातावरण, भाषा शैली, कथोपकथन एवं घटना-चक्र का प्रायः अभाव-सा होता है तथा मानव-कल्याण की वृत्ति से प्रेरित धार्मिक-नैतिक उपदेश की संभावना विशेष लक्षित रहती है। जबकि उपलब्ध उपन्यासों में मानव के आध्यात्मिक धरातल को ऊंचा उठाने के साथ-साथ भाव-जगत की आवश्यकता-पूर्ति का प्रयास नूतन भाषा-शैली में

1. डा॰ नेमिचन्द्र शास्त्री-हिन्दी जैन साहित्यक परिशीलन-भाग 2, पृ॰ 70.

विद्यमान है। हां, हिन्दी उपन्यासों की भांति शैलीगत टीप-टाप की मात्रा कम अभिव्यक्त होती है। हिन्दी उपन्यासों की तरह इनमें पाश्चात्य विचारधारा तथा नूतन जीवन-दर्शन का अभिगम उपलब्ध न होना स्वाभाविक है। फिर भी वे उपन्यास रोचक तथा प्रभावपूर्ण अवश्य रहे हैं। क्योंकि जीवन के साथ नाना जगत के व्यापक सम्बन्धों की समीक्षा जैन उपन्यासों में मार्मिक रूप से की गई है। कथानक इतना रोचक है कि पाठक वास्तविक संसार के असंतोष और हाहाकार को भूलकर कल्पित संसार में ही विचरण नहीं करता, बल्कि अपने जीवन के साथ नाना प्रकार की क्रीड़ाएं करने लगता है। ये क्रीड़ाएं अनुभूतियों के भेद से कई प्रकार की होती है। आशा, आकांक्षा, प्रेम, घृणा, करुणा, नैराश्य आदि का जितना चित्रण जैन उपन्यासों ने किया है, उतना अन्यत्र शायद ही मिल सकेगा''।[1]

आलोच्य काल में उपलब्ध उपन्यासों में मनोवती, रत्नेन्दु, सुशीला, मुक्तिदूत और चतुराबाई प्रमुख रूप से हैं। इनमें औपन्यासिक दृष्टिकोणों से श्री वीरेन्द्र जैन का 'मुक्ति दूत' उपन्यास सर्वाधिक सफल एवं उत्कृष्ट कहा जायेगा। यहाँ इन सभी पर केवल परिचयात्मक दृष्टि से विचार किया जायेगा तथा आगे के अध्याय में इनकी वस्तु विवेचना और अन्य पहलुओं पर विस्तृत चर्चा की जायेगी।

मनोवती :

यह उपन्यास न केवल हिन्दी जैन उपन्यास साहित्य की प्रारंभिक कृति है, बल्कि हिन्दी साहित्य में प्रारंभिक उपन्यासों का जब सृजन हुआ, उस समय की रचना है। अत: औपन्यासिक कला का प्राय: अभाव रहना बहुत स्वाभाविक है। इस उपन्यास के लेखक हैं प्रसिद्ध जैन साहित्यकार आरा निवासी जैनेन्द्र किशोर।"[2] आज आधुनिक वातावरण के अनुरूप नयी-नयी शैलियों और स्वरूपों में उपन्यासों की रचना की आती है। अत: औपन्यासिक कला का स्तर प्रारंभिक उपन्यासों की अपेक्षा अधिक उन्नत और सुविकसित होगा ही। 'मनोवती' उपन्यास प्रारंभिक काल की रचना होने से सुविकसित औपन्यासिक कला से रहित है।

मनोवती नायिका प्रधान उपन्यास है, जिसमें श्रेष्ठि कन्या मनोवती के उदात्त चरित्र का यहां पूर्ण विकास हुआ है। मनोवती अपने धैर्य, पति-भक्ति और धार्मिक दृढ़ता के कारण अनेक कष्टों को सहने के उपरान्त कैसे पति व

1. डा० नेमिचन्द्र शास्त्री–हिन्दी जैन साहित्यक परिशीलन-भाग 2, पृ० 55.
2. आधुनिक हिन्दी जैन नाटक का प्रारंभ भी इन्होंने किया था। अभी थोड़े वर्ष पूर्व आपका निधन हुआ।

परिवार को ऊँचा उठाती है, इसकी प्रमुख कथा है। यद्यपि यह उपन्यास औपन्यासिक तत्वों की कसौटी पर पूर्णतः खरा नहीं उतरता, लेकिन प्रारंभिक कालीन रचना होने के कारण इसका महत्व स्वीकृत है। "हिन्दी उपन्यासों की गतिविधि को अवगत करने के लिए इसका महत्व 'चन्द्रकान्ता-संतति' से कम नहीं है।[1] श्री जैनेन्द्र किशोर ने और भी बहुत-से उपन्यास लिखे हैं यथा-कमलिनी, सत्यवती, मनोरमा और शरतकुमार, लेकिन ये सभी अनुपलब्ध हैं। इन उपन्यासों में धर्म और सदाचार की महत्ता वर्णित की गई है। इनके सभी उपन्यास नायिका प्रधान है।

रत्नेन्दु :

मुनि श्री तिलकविजय जी ने इस उपन्यास की रचना की है। आध्यात्मिक क्षेत्र में मुनि जी का अपूर्व स्थान है। आचार्य होने के कारण आपके हृदय में धर्मानुराग का प्रवाह निरन्तर बहता रहता है और इसी कारण धार्मिक उपदेश को उन्होंने रोचक शैली में उपन्यास रूप में प्रस्तुत किया है। औपन्यासिक तत्वों की प्रचुरता के कारण ही धार्मिक उपदेश का प्रभाव विशेष तीव्रता से निष्पन्न हो सका है। आदर्श की नींव पर यथार्थ का भवन निर्माण करने की प्रेरणा पाठक इस रचना से प्राप्त कर सकता है। रत्नेन्दु के अपार बल, तेज तथा कौशल को लेखक ने पद्मिनी की सुंदरता, शालीनता और एकनिष्ठा के साथ समन्वित कर दोनों के चरित्र-निरूपण में कुशलता का पूर्ण परिचय दिया है। घटनाओं से पूर्ण इस उपन्यास में सभी पात्रों का चरित्र चित्रण अत्यन्त स्पष्ट एवं प्रभावशाली हो गया है। 'रत्नेन्दु' उपन्यास को आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य का सफल व आकर्षक उपन्यास कहा जा सकता है। उपन्यास के प्रारंभ में ही रत्नेन्दु के चरित्र पर प्रकाश डालते हुए उनके मित्रों के संवाद में भाषा की आलंकारिकता और प्रवाह पाठक का ध्यान आकर्षित कर लेता है। 'रत्नेन्दु' उपन्यास की रचना के उपरान्त ऐसी अन्य कृतियों का मुनि जी ने सृजन किया होता तो जैन धर्म के साथ जैन साहित्य भी लाभान्वित होता।

सुशीला[2] :

आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य के इतिहास में युग-प्रवर्तक के रूप में

1. द्रष्टव्य–डा० नेमिचन्द्र शास्त्री-हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन-पृ० 61.
2. प्रकाशक–दिगम्बर जैन पुस्तकालय-सूरत-'सुशीला' उपन्यास बहुत वर्ष पूर्व प्रकाशित होने से आज अनुपलब्ध है। केवल इसकी एक प्रति 'दिगम्बर जैन पुस्तकालय' के स्थापक श्री मूलचन्द किशनदास कापडिया जी से अनुसंधायिका को प्राप्त हुई थी, जिसके लिए वह उनकी आभारी है।

प्रतिष्ठित व सम्मानित स्व॰ गोपालदास बरैया जी ने इस उपन्यास की रचना संवत् 2005 में की थी। यह उपन्यास पूर्णत: धार्मिक उपन्यास होने से नीति-रीति, आचार-विचार, विवेक-सदाचार शील, संयम, पतिव्रता धर्म, पुत्र-पिता धर्म आदि विविध विषयों की चर्चा लेखक ने रोचक ढ़ंग से की है। रोचक कथावस्तु एवं मार्मिक चरित्र-चित्रणों के कारण उपन्यास का धार्मिक पहलू विशेष खलता नहीं है। इस उपन्यास की एक विशेषता यह भी है कि प्रत्येक अध्याय का आदि व अन्त प्रकृति-चित्रण से ही हुआ है। किसी अध्याय में पात्रों की संख्या विशेष आ जाने से पाठक को कथा-क्रम का सातत्य स्मरण रखने में असुविधा हो सकती है। लेकिन कथा-प्रवाह इतना सशक्त एवं रोचक है कि पाठक को पात्रों की गतिविधि और घटना-चक्र की गति के कारण दिक्कत नहीं होती है और रसास्वादन में क्षति नहीं पहुंचती। घटनाएं शृंखला बद्ध होने पर भी अपने प्रारंभ व अन्त की कलात्मकता के कारण पाठक की उत्सुकता निरन्तर बनाए रहती हैं। "कुशल कलाकार ने इस उपन्यास में धार्मिक सिद्धांतों की व्यंजना के लिए काल्पनिक चित्रों को इतनी मधुरता एवं मनोमुग्धता से खींचा है, जिससे पाठक गुण स्थान जैसे कठिन विषयों को कथा के माध्यम द्वारा सहज में अवगत कर लेता है।"[1]

विजयपुर के महाराजा श्रीचन्द्र के सुपुत्र जयदेव एवं महाराजा विक्रम की रूपगुण युक्ता पुत्री सुशीला को प्रधान पात्र बनाकर मुख्य नायिका के नाम पर उपन्यास का नामकरण किया गया है। इसके लिए सुशीला का चरित्र पूर्णरूपेण उपयुक्त समझा जा सकता है। सुशीला किसी भी संकट में धर्म व शील को नहीं छोड़ती तथा कुव्यक्तियों की लम्पटता का अडिगता से सामना कर सतीत्व का रक्षण करती है।

मुक्तिदूत[2] :

श्री वीरेन्द्र जैन का यह उपन्यास आलोच्य कालीन उपन्यासों में सर्वोत्कृष्ट कहा जा सकता है। अद्भुत रोमांचक क्रमबद्ध घटनाओं से युक्त कथावस्तु, श्लिष्ट मार्मिक चरित्र-चित्रण, आह्लादक उत्सुकता, प्रेरक वर्णनों की हारावलि, मार्मिक कथोपकथन सभी दृष्टियों से यह एक सफल उपन्यास है। 'मुक्ति दूत' के अनन्तर, आत्म कथात्मक-शैली मे श्री वीरेन्द्र जी ने एक उपन्यास तीन भागों में लिखा है। प्रथम भाग 'अनुत्तरयोगी' द्वितीय भाग-'वैशाली का विद्रोही राजकुमार' तथा तृतीय भाग 'असिधारा पथ का यात्री' जो अत्यन्त सुन्दर कहे

1. डा॰ नेमिचन्द्र शास्त्री–हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन–भाग 2, पृ॰ 64.
2. प्रकाशक–भारतीय ज्ञानपीठ–दिल्ली।

जायेंगे। लेकिन ये आलोच्य काल के अन्तर्गत समाविष्ट नहीं होते हैं। अतः उनकी चर्चा अनुपयुक्त होगी।

'मुक्ति दूत' में अंजना-पवनंजय की प्रसिद्ध पौराणिक कथावस्तु के आधार पर घटना चमत्कार एवं भावानुभूति का अद्‌भूत समन्वय किया गया है। इसी कारण पाठक की कौतूहल वृत्ति दोनों की परितृप्ति सहज में ही हो सकती हैं। वर्णनों की छटा प्रेक्षणीय है। कहीं-कहीं अत्यधिक लम्बे वर्णन कठिन व भारी हो जाते हैं। वैसे प्रत्येक वर्णन को पढ़कर पाठक के चित्त में आनंद की लहर तथा स्फूर्ति का अनुभव होने लगता है। ऐसे छटायुक्त तथा विस्तृत प्रकृति-दृश्यों, मानव-प्रकृति और प्रवृत्ति के विविध अंगों के वर्णनों को पढ़ते समय बरबस आचार्य हजारीप्रसाद जी के उपन्यास 'बाण भट्ट की आत्मकथा' के उत्कृष्ट वर्णनों की रम्यता स्मरण हो आती हैं। पवनंजय के क्रमशः आत्मविकास की कथा, अंजना के चारित्र्य-बल एवं सर्वोत्कृष्ट सतीधर्म के कारण निश्चित रूप धारण करती है। पुरुष के अहं-अभिमान रूपी अंधकार को नारी अपनी सहिष्णुता, प्रेम, औदार्य, वात्सल्य एवं आत्म समर्पण के द्वारा प्रकाश देकर मुक्ति की राह पर ले चलती है। 'कामायनी' की श्रद्धा भी क्या करती है? मनु की अहंजन्य विकार वृत्ति एवं विनाशक-प्रवृत्ति को अपने स्नेहसम्बल, औदार्य एवं आत्म समर्पण के पावन जल से परिष्कृत करती है तथा अहं को विसर्जित कराकर परम आनंदपद के धाम में ले जाकर शिवत्व, शान्ति, प्रेम व आनंद की अनुभूति करवाती है। अंजना भी पवनंजय के अहंकार, घोर धिक्कार-वृत्ति को संयम से चुपचाप सहती हुई, प्रेम और त्याग से क्षमादान देती हुई धर्म ध्यान में प्रवृत्त रहती है। और पति को सही राह पर ले आती है। परिणामस्वरूप अन्त में सम्मान, सौभाग्य और अनन्त सुख को पुनः प्राप्त करने में समर्थ हो सकती है। 'मुक्तिदूत' उपन्यास सत्य ही हिन्दी जैन उपन्यास साहित्य का एक बहुमूल्य रत्न कहा जा सकता है।

सुकुमाल[1] :

बाबू जैनेन्द्र किशोर ने इस छोटे से उपन्यास की रचना सन् 1905 में की थी। इसके उपोद्‌धात में स्वयं लेखक ने लिखा है कि-"*इस उपन्यास में न तो प्रेमी तथा प्रेयसी की रसभरी कहानी हैं और न इसमें तिलिस्म तथा ऐयारी के लटके हैं।* यह उपन्यास केवल पापों का निराकरण कर शिवरमणी (मुक्ति) से संयोग कराने मे समर्थ हैं।" प्रारंभिक रचना होने से औपन्यासिक तत्वों की कमी

1. इसकी एक प्रति 'मोहनलाल जी जैन लायब्रेरी' भूलेश्वर, बम्बई से प्राप्त की गई थी।

होने पर भी चुस्त-घटना-प्रवाह के कारण रोचकता बनी रहती है। कर्मों की मीमांसा के कारण पूर्व जन्मों को महत्व दिया गया है। फलस्वरूप कथा के अन्तर्गत कथा का प्रवाह चलता है। धार्मिक तत्वों की चर्चा का आधिक्य उपन्यास के कथा प्रवाह व रसास्वादन में कहीं-कहीं बाधाकारक बनता है; क्योंकि दार्शनिक ग्रन्थ एवं उपन्यास दोनों एक नहीं हो सकते हैं। जैन धर्म के पांच महाव्रतों की महत्ता अभिव्यक्त करने के लिए मुख्य-मुख्य पात्र नागश्री, नागशर्मा और आचार्य सूर्यमित्र के द्वारा भिन्न-भिन्न कथा वर्णित की गई हैं। साधारण भाषाशैली का यह उपन्यास अपने युग के संदर्भ में काफी महत्व रखता है।

चतुर बहू[1] :

पं॰ दीपचन्द जी परवार ने ईस्वी सन् 1926 में इस छोटे से सामाजिक उपन्यास की रचना की है, जिसमें पारिवारिक कथावस्तु के साथ शिक्षाप्रद घटनाओं का निर्वाह किया गया है। कथा के प्रवाह में बीच-बीच में जैन धर्म की शिक्षा और नीति की चर्चा का समायोजन लेखक ने कुशलता पूर्वक किया है। इसी कारण छोटी-सी पुस्तिका होने पर भी साहित्य में अपना विशिष्ट महत्व रखती है। भाषा प्रारंभिक खड़ी बोली के समय की होने से संयुक्ताक्षर बहुल है, जो भारतेन्दु कालीन उपन्यासों में सर्वत्र देखा जाता है। राजस्थान की बोली का प्रभाव भी भाषा-शैली पर यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होता है। शैली में चमत्कार, आलंकारिकता या वाक् विदग्धता न होकर सर्वत्र सरलता ही विद्यमान है।

मुनि श्री विद्याविजय ने 'रानीसुलसा'[2] नामक एक धार्मिक उपन्यास लिखा है, जिसमें रानी सुलसा के उदात्त चरित्र का विश्लेषण कर लेखक ने पाठकों के समक्ष एक नवीन आदर्श उपस्थित किया है। भाषा और कला की दृष्टि से इसमें पूर्ण सफलता लेखक को नहीं मिल सकी है। इस उपन्यास का केवल उल्लेख ही प्राप्त हो सका है। प्रकाशित रूप में अनुपलब्ध है।

कथा साहित्य :

हिन्दी में कथा साहित्य के अन्तर्गत कहानी तथा उपन्यास दोनों का समावेश होता है, किन्तु जैन साहित्य के अन्तर्गत केवल कहानी को कथा-साहित्य के अन्तर्गत लिया जाता है। यह एक परम्परा सी बन गई है। इसका उल्लेख हमने पिछले अध्याय में किया भी है।

---

1. इसकी एक प्रति 'मोहनलाल जी जैन लायब्रेरी' भूलेश्वर, बम्बई से प्राप्त की गई थी।
2. डा॰ नेमिचन्द्र शास्त्रि–*हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन–द्वितीय भाग*, पृ॰ 76.

कथा और कहानी के संदर्भ में अपने विचार व्यक्त करते हुए श्री कपूरचन्द जैन 'इन्दु' लिखते हैं कि-"कहानी और कथा में इतना ही अन्तर होता है कि कहानी काल्पनिक होती है। कथा की आधार शिला सत्य घटना होती है। कहानी का उद्देश्य, मनोरंजन या कोई शिक्षा का प्रतिपादन होता है। जबकि कथा शिक्षा के साथ-साथ किसी सैद्धांतिक तथ्य की स्पष्टता या पुष्टि करती है।[1]

आधुनिक हिन्दी जैन कथा-साहित्य की जितनी भी रचनाएं है, उनका मूलाधार प्राचीन जैन साहित्य के आचारांग, उत्तराध्ययनांग, पद्मचरित्र, सुपार्श्व चरित्र, पुण्याश्रव कथाकोश, आराधना-कथा कोश, ज्ञातृ धर्म कथांग, अन्तकृद्दशांग आदि ग्रन्थों की प्रसिद्ध कथाएं है। बहुत से जैन लेखकों ने आधुनिक भाषा एवं शैली में प्राचीन कथा-ग्रन्थों का सुंदर भावपूर्ण मौलिक अनुवाद भी किया है, जैसे आराधना कथाकोश, बृहद् कथाकोश, सप्तव्यसन चरित्र और पुण्याश्रव कथा के अनुवाद उल्लेखनीय हैं। प्राय: समस्त प्राचीन जैन कथाओं का हिन्दी में अनुवाद हो चुका है। इन ग्रन्थों में एक साथ अनेक कथाओं का संकलन किया गया है और कथा की रोचकता तथा जिज्ञासा वृत्ति की उत्तेजना के कारण ये कथाएं अत्यन्त रस युक्त तथा सफल रही है। यद्यपि ये अनुवादित कथा साहित्य के ग्रन्थों में हिन्दी साहित्य की कहानियों का-सा टीप-टाप का रंग, मनोवैज्ञानिकता या सूक्ष्मता नहीं है, फिर भी भावों को झंकृत कर अन्तरात्मा को आध्यात्मिक उन्नति की ओर अग्रसर कराने की क्षमता अवश्य इन कहानियों में है। इनमें समाज-विकास तथा लोक प्रवृत्ति का गहरा प्रभाव प्रतिबिंबित होता है। जैन कथाओं में धार्मिक उपदेश का प्रभाव अधिक रहता है, वह निर्विवाद तथ्य है; लेकिन प्रथम रोचक, जिज्ञासा प्रेरक कथावस्तु के द्वारा रस प्राप्ति कराने के उपरान्त धार्मिक या नैतिक संदेश रहता है या कथावस्तु के मध्य में अप्रत्यक्ष रूप से संदेश रहता है, जिससे कथा नीरस या बोझिल बनने से बच जाती है। अपने धार्मिक उपदेश को प्रतिपादित करने के लिए जैन कथाकार साधारणत: कहानी की समाप्ति पर किसी केवली या मुनि आचार्य को उपस्थित कराके कथा में आये सुख-दु:ख की व्याख्या पात्र के किसी जन्म के कर्मों के आधार पर करवा देते हैं। इसी कारण बहुत-सी कथाओं में कहानी के अन्तर्गत कहानी के कारण कथावस्तु जटिल हो जाती है और पाठक पर उस प्रतिक्रिया का

1. द्रष्टव्य-श्री कपूरचन्द जैन-श्रीभगवत् जैन के 'दुर्गद्वार' कहानी संग्रह की प्रस्तावना 'मेरी समझ में' से पृ० 2.

प्रभाव भी पड़ता है। अब क्रमशः कथा-साहित्य की कृतियों का परिचय संक्षेप में दिया जायेगा। उनके विषय में विस्तार से आगे देखा जायेगा।

आराधना कथा कोश[1] :

'आराधना-कथा-कोश' की कथाओं का सुन्दर मौलिक अनुवाद उदयलाल काशलीवाल ने किया है। इसके प्रथम भाग में 24 कथाएं, द्वितीय भाग में 38 कथाएं, तृतीय भाग में 32 कथाएं तथा चतुर्थ भाग में 27 कथाएं संग्रहीत की गई हैं। इन कथाओं का अनुवाद स्वतंत्र रूप से किया गया होने से मौलिक रचनाओं का आनंद प्राप्त होता है। इन कथाओं की भाषा सरल व शैली आकर्षक होने के कारण सामान्य जैन समाज का मनोरंजन करने में लेखक को सफलता मिली है। जैन दर्शन के अहिंसा, अपरिग्रह, सत्य, ब्रह्मचर्य के प्रमुख सिद्धांतो को प्रतिपादित करने वाली ये कथाएं जैन संस्कृति का भी परिचय करवाती हैं।

बृहत्कथा कोश[2] :

इस का अनुवाद प्रो० राजकुमार साहित्याचार्य ने सुन्दर शैली में किया है। इसके दो भाग प्रकाशित हो चुके हैं। अनुवादक ने ऐसी सहज सरल शैली में अनुवाद किया है कि मूल कथाओं के भावों को अक्षुण्ण रखा गया है। साथ ही रोचकता एवं उत्सुकता का निर्वाह भी समान ढंग से हो सका है। 'दो हजार वर्ष पुरानी कहानियां' में डा० जगदीशचन्द्र जैन ने प्राचीन आगम ग्रन्थों की कथाओं को हिन्दी भाषा में सरल और रोचक शैली में मौलिकता के साथ लिखा है। इस संग्रह में कुल 64 कहानियां है जो तीन भागों में विभक्त की गई है-(1) लौकिक (2) ऐतिहासिक (3) धार्मिक। पहले में 34, दूसरे में 17 एवं तीसरे में 13 कहानियां संग्रहीत है। सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति और घटना चमत्कार इन कथाओं को कलात्मक भी बनाता है। कला तत्व की दृष्टि से भी इन कथाओं का काफी महत्व रहता है। प्राचीन आधार पर से कथावस्तु ग्रहण किया होने से कथा वस्तु में कल्पना या अस्वाभाविकता का अंश प्रायः नहीं होता है।

पुरातन कथानकों को लेकर श्री बाबू कृष्णलाल वर्मा ने स्वतंत्र रूप से कुछ कथा-ग्रन्थ लिखे हैं। "इन कथाओं में कहानी-कला विद्यमान है। इनमें वस्तु, पात्र और दृश्य (Back ground or atmosphere) ये तीनों मुख्य अंग

1. प्रकाशक-जैन मित्र कार्यालय, हीराबाग, बम्बई।
2. प्रकाशक-भारतीय दिगम्बर जैन संघ-चौरासी-मथुरा।

संतुलित रूप में है।"[1] खनककुमार, महासती सीता, सुरसुंदरी एवं सती दमयंती उनकी प्रमुख रचना है।

खनककुमार[2] :

खनक कुमार की कथा बड़ी ही रोचक एवं मर्मस्पर्शी है। खनक कुमार राजा कनककेतु एवं रानी मैनासुंदरी का वीर पुत्र था, जिसने दीक्षा अंगीकार के अनन्तर अद्भुत सहनशीलता और उग्र तपस्या के कारण केवल गति को प्राप्त किया था। करुण रस का परिपाक इस कथा में कथाकार ने बड़ी कुशलता से किया है।

महासती सीता :

पौराणिक आख्यान को कल्पना द्वारा थोड़ा-बहुत परिवर्तित कर वर्मा जी ने नवीन भावों की योजना की है। महासती सीता के उज्ज्वल चरित्र का चित्रण इसमें खूबी के साथ किया गया है। रावण के चरित्र को भी यहां ऊंचा उठाया गया है।

सुरसुन्दरी :

वर्मा जी ने इस कृति में भी पौराणिक आख्यान में कल्पना का यथेष्ट संमिश्रण किया है। रचना में उत्सुकता का गुण पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। राजकुमारी सुरसुंदरी एवं श्रेष्ठि पुत्र अमरकुमार की प्राचीन कथावस्तु में आधुनिक भाषाशैली से सजीवता पैदा कर दी है। राजकुमारी सुरसुंदरी अपनी सहिष्णुता, प्रतिभा, बुद्धि-कौशल एवं दृढ़ निश्चय के द्वारा अमरकुमार के अभिमान को पराजित कर अपनी शक्ति एवं महत्ता का यथेष्ट परिचय ठीक समय पर करवाती है।

सती दमयन्ती :

इस कथा में लेखक वर्मा जी ने दमयन्ती का आदर्श चरित्र अंकित किया है। सती दमयन्ती के शील, पतिव्रत्य, प्रेम और सहनशीलता की महत्ता व्यक्त की गई है। दमयन्ती के चरित्र को पूर्णतः आदर्शवादी बनाने के कारण कथा में अलौकिक घटनाओं का घटना अस्वाभाविक लगता है। लेखक ने इस रचना में पौराणिकता का पूर्ण रूप से अनुसरण किया है।

रूपसुंदरी :

इस पौराणिक कथा के लेखक भागमल शर्मा है। मनुष्य परिस्थिति वश

---

1. डा० नेमिचन्द्र शास्त्री-हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन-पृ० 81, द्वितीय भाग।
2. प्रकाशक-आत्मानंद जैन ट्रस्ट सोसायटी-अम्बाला शहर।

किस प्रकार अच्छा-बुरा व्यवहार करता है, तथा कर्मों के फलस्वरूप पाप-पुण्य का कैसा फल प्राप्त करता है, वह इस कथा में बतलाया गया है। वातावरण एवं प्रवृत्ति का कैसा घनिष्ट प्रभाव मनुष्य के जीवन पर पड़ता है, इसका उद्घाटन रोचक कथावस्तु के द्वारा किया गया है। इस पौराणिक कथा में लेखक ने मनोवैज्ञानिक ढंग से देवव्रत, रूपसुंदरी आदि का चरित्र-चित्रण किया है क्योंकि कोई भी व्यक्ति संपूर्ण नहीं होता है, कभी-कभी कमजोरी के क्षण में अच्छा व्यक्ति भी अपना संयम खो बैठता है, तो कभी सात्विक वातावरण पाकर बुरा आदमी भी अच्छाई की राह को आत्मसात कर लेता है।

नवरत्न :

श्री कामताप्रसाद जैन द्वारा लिखित इस कहानी संग्रह में जैन जगत की प्रमुख नव ऐतिहासिक व्यक्तियों का चरित्र-चित्रण किया गया है उनकी वीरता, उदारता एवं धार्मिकता का महत्व अंकित करने के हेतु ही इसकी रचना की गई है। ऐतिहासिक आधार पर से इसकी कथावस्तु ग्रहण की है, पर अनुकूल कल्पनाओं का भी अद्‌भुत संमिश्रण किया है। इस संग्रह में तीर्थंकर अरिष्टनेमि, सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य, सम्राट एल खारवेल, वीर चामुण्डराय, चारित्र्यवीर मारसिंह, जिनधर्म रत्न गंगराज, सम्यकत्व चूड़ामणि हूल्ल, वीरागंना सावित्री और सती सुंदरी की कथा का संनियोजन किया गया है।

पंचरत्न :

यह भी बाबू कामताप्रसाद जैन की रचना है। इसमें भी उन्होंने 'नवरत्न' की भांति जैन जगत के पराक्रमी, धार्मिक महान स्त्री-पुरुषों के ऐतिहासिक आधार पर कथानक लिया है; जिसमें आंशिक कल्पना के मिश्रण से कथाओं को रोचक बनाया गया है। जैन जगत के ये पांच रत्न है-सम्राट श्रेणिक, महानन्द, कुरुम्बाधीश्वर, नृप बिज्जलदेव तथा सेनापति वैचप्प। "जैन कथाओं ने एक समय सारे संसार का कल्याण किया था। आज हिन्दी वालों को उनका पता नहीं है। बहुत सी बातें तो स्वयं जैनी भी नहीं जानते हैं। बस, इसलिए कि लोग जैन कथाओं और जैन महापुरुषों को जान-पहचाने, मैंने यह उद्योग किया है। कहानी का आधार कल्पना मात्र है लेकिन कोरी कल्पना नहीं है। वे सत्य घटनाओं पर निर्भर हैं-ऐतिहासिक हैं। ++++ प्रस्तुत कहानियां ऐतिहासिक घटनाओं का पल्लवित रूप हैं। उनसे जैन संघ की उदार समाज व्यवस्था और जैनों के राष्ट्रीय हित कार्य का भी परिचय होता है।[1]

---

1. कामताप्रसाद जैन–पंचरत्न, 'दो शब्द', भूमिका, पृ॰ 8.

भगवान पार्श्वनाथ :

कामता प्रसाद जी की प्राय: पुस्तकें 'दिगम्बर जैन' मासिक पत्रिका के ग्राहकों को उपहार स्वरूप देने के लिए लिखी गई हैं। अत: कथानक की रोचकता के साथ जैन धर्म के प्रचार-प्रसार की भावना भी मुख्यत: जुड़ी हुई हो तो आश्चर्य नहीं। इसमें जैन धर्म के 23वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ की कथा तथा उनके पूर्वभवों की कथा आकर्षक शैली में अंकित की गई है। कथा के साथ-साथ निबंध की तरह लेखक अपने विचार, उपदेश या तुलनात्मक अध्ययन बीच-बीच में प्रस्तुत करते रहते हैं। पार्श्वनाथ भगवान के पूर्वभव की कथा के प्रसंग में जिन मूर्ति पूजा के व्याख्या-संदर्भ में अंग्रेजों की मनोवृत्ति तथा उन लोगों की विशिष्टता की चर्चा निबंधकार की तरह करते हैं। अत: कथा के प्रवाह में बाधा पैदा होने से रस-क्षति होती है।

आधुनिक युग में कथा-साहित्य के विकास के सम्बंध में कामताप्रसाद जैन ने 'नवरत्न' की भूमिका में लिखा है कि-"कथा-ग्रन्थों के अतिरिक्त और भी कई एक चारित्र्य-ग्रन्थों और कथा-कोशों का पता चलता है, परन्तु वे सब ही पद्यमय हैं। इसलिए हिन्दी जैन साहित्य में इन्हीं से कहानी का खास विकास हुआ नहीं कहा जा सकता। इस विषय का हमें सबसे पहले सं० 1777 में रचा हुआ 'पुण्याश्रव कथा कोश' मिलता है। इसे संस्कृत के आधार से पं० दौलतराम जी ने रचा था। इसके बाद 'आराधना-कथा-कोश' आदि ग्रन्थों के स्वतंत्र अनुवाद भी प्रकट हुए हैं, परन्तु इनसे हिन्दी जैन साहित्य में मौलिक कहानी का श्री गणेश हुआ, नहीं कहा जा सकता और सच पूछिए तो आज से बीस-पच्चीस वर्ष पहले तक हिन्दी जैन साहित्य को यह सौभाग्य प्राप्त ही नहीं हुआ। इस ओर सबसे पहले हमें बाबू जैनेन्द्र किशोर की 'मनोरमा' दृष्टिगत पड़ती है। परन्तु वह एक उपन्यास है और इसी तरह स्व० गोपालदास जी बरैया का 'सुशीला' उपन्यास भी इसी कोटि में आता है। यह मौलिक रचनाएं अवश्य हैं, परन्तु इन्हें कहानी-साहित्य में नहीं लिया जा सकता। यदि हां, बरैया जी ने स्व-संपादित 'जैन मित्र' में छोटी-छोटी कहानियां लिखी हों तो हमें उन्हें ही सर्वप्रथम मौलिक कहानी लेखक होने का श्रेय देना होगा। किन्तु स्पष्ट रूप से हमें लाला मुन्शीलाल जी एम०ए० का नाम इस दिशा में दृष्टिगत पड़ता है। आपकी 'कहानियों की पुस्तक' इस विषय की पहली पुस्तक कही जा सकती है। यद्यपि इसी समय के लगभग हमें पं० बुद्धिलाल जी कृत 'मोक्षमार्ग की सच्ची कहानियां' भी नजर आती है। अत: हिन्दी जैन साहित्य में मौलिक कहानियों का प्रारंभ इन्हीं पुस्तकों से हुआ कहा जा सकता है। परन्तु कला की

दृष्टि से कहानियां रचने का श्रीगणेश तो जैनियों में अभी ताजा ही ताजा है और इस सम्बंध में हमें श्रीयुत् जैनेन्द्रकुमार जी, भाई वृषभचरण जी, पं॰ दरबारीलाल जी, पं॰ मूलचन्द जी 'वत्सल', बाबू ताराचंद जी कापड़िया और मि॰ रूपकिशोर जी के नाम याद पड़ते हैं। इन विद्वानों ने हिन्दी साहित्य में अनेक मौलिक कहानियां रच दी है, और साथ ही जैन धर्म तथा जैन समाज को लक्ष्य करके भी उन्होंने कितनी ही कहानियाँ लिखी हैं। इन साहित्य सेवियों के अध्यवसाय से हमें विश्वास है कि हिन्दी का जैन साहित्य भी उच्चकोटि के कहानी साहित्य से रिक्त नहीं रहेगा।[1]

आधुनिक काल में प्रमुख सफल कथाकार के रूप में सर्वश्री जैनेन्द्रकुमार जैन, अक्षयकुमार जैन, बालचन्द्र जैन, भगवतस्वरूप, बलभद्र ठाकुर, यशपाल जैन, चन्द्रमुखी देवी, चन्द्र प्रभा देवी की मौलिक कहानियां उल्लेखनीय हैं। श्री जैनेन्द्रकुमार जी तो हिन्दी साहित्य के भी प्रतिष्ठित बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न कलाकार हैं और हिन्दी जैन साहित्य में भी अनेक सुंदर कथाएं लिखी है। इनकी कहानियों में कहानी कला के तत्वों के अतिरिक्त विचारगांभीर्य एवं दार्शनिकता भी प्रतिबिंबित होती है। भावों और चित्रों का सुन्दर समन्वय उनकी कहानी में प्राप्त होता है। 'विद्युतचर' और 'बाहुबलि' ये दो कथाएं इनकी अत्यन्त प्रसिद्ध है। दोनों में प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिकता एवं भावुकता से किया गया है। उनकी कहानी का उद्देश्य पात्रों की भाव-भंगिमा एवं कथोपकथन के द्वारा स्पष्ट व्यक्त किया गया है। आधुनिक युग के अनुरूप कथा में जनतंत्र के तत्वों का भी यथेष्ट समावेश किया गया है। उनकी हिन्दी साहित्य की प्रसिद्ध रचनाओं के भीतर भी जैन दर्शन से प्रभावित विचारधारा की झांकी स्पष्ट होती है। जैनेन्द्र जी का जैन दर्शन से प्रभावित विचारधारा का अभिगम इसी कारण आदर्शात्मक रहा है।

मोक्षमार्ग की सच्ची कहानियां :

स्व॰ पं॰ बुद्धिलाल जी जैन रचित छोटी-छोटी धार्मिक कहानियों का संग्रह है, जिसमें सत्य, प्रेम, अहिंसा, दानधर्म का महात्म्य वर्णित किया गया है। इसमें उपदेश के साथ मनोरंजन भी प्राप्त होता है। कथा की रोचकता के कारण उपदेशात्मक वृत्ति नीरसता नहीं पैदा होने देती। पुरानी शैली की इन कहानियों की भाषा शुद्ध खड़ी बोली है। प्रारंभिक कहानीकार के रूप में उनका महत्वपूर्ण स्थान है।

आत्म समर्पण :

बालचन्द्र जैन का यह कहानी संग्रह है। इसमें कई कहानियां संकलित

---

1. आ. कामताप्रसाद जैन-'नवरत्न' की भूमिका-पृ॰ 10-22.

की गई हैं-आत्मसमर्पण, साम्राज्य का मूल्य, दंभ का अन्त, रक्षा बन्धन, गुरू दक्षिणा, निर्दोष, बलिदान, सत्य की ओर, मोह-निवारण, अंजन निरंजन हो गया, सौंदर्य की परख इत्यादि। बालचन्द्र जी इस युग के प्रमुख जैन कहानीकार के रूप में प्रसिद्ध है। पौराणिक आख्यानों में लेखक ने नयी जान डाल दी है। प्लॉट, चरित्र एवं दृश्यों के वर्णन में लेखक को काफ़ी सफलता प्राप्त हुई है। लेकिन उत्सुकता गुण के लिए प्रोत्साहक घटना-स्थिति के वर्णन में उनको पर्याप्त सफलता नहीं मिली है।

पं० मूलचन्द 'वत्सल' ने भी पौराणिक कथानकों को लेकर सफल कहानियों की अवतारणा की है। विशेषकर नारी पात्रों का आदर्शात्मक चरित्र प्रस्तुत करने में उनका नाम महत्वपूर्ण है। उनकी शैली परिमार्जित है, फिर भी पौराणिक कथा वस्तु एवं आदर्शात्मक चरित्र-चित्रण के कारण उनकी किसी भी रचना में आधुनिक टैकनीक का निर्वाह नहीं हो पाया है।

सतीरत्न में ब्राह्मी और सुंदरी, चन्दनाकुमारी और ब्रह्मचारिणी अनन्तमती ये तीन नारी-प्रधान कथाएं संग्रहीत की गई हैं।

भगवत् स्वरूप जैन भी आधुनिक काल के प्रसिद्ध कथाकार है। उन्होंने काफी परिमाण में साहित्य-सृजन किया है। विशेषकर कहानीकार के रूप में वे अधिक प्रसिद्ध हुए हैं। 'मानवी', 'दुर्गद्वार', 'विश्वासघात', 'रसभरी', 'उस दिन', 'पारस और पत्थर', तथा 'मिलन' उनके प्रमुख कहानी-संग्रह हैं। सभी संग्रहों की कहानियां पौराणिक कथावस्तु पर आधारित है। वे अपने उद्देश्य में काफी अंश तक सफल हुए हैं कि रसात्मकता, जिज्ञासा-पूर्ति, रोचकता के साथ आचार-विचार संबधी आदर्शात्मक सन्देश भी रखा जाये। उन्होंने धार्मिक कथा वस्तु के अतिरिक्त सामाजिक कहानी, काव्य एवं नाटक आदि का भी सर्जन किया है। अब क्रमशः उनके उपर्युक्त कथा-संग्रहों का अत्यन्त संक्षेप में परिचय प्राप्त किया जायेगा।

उस दिन :

भगवत् जी की लिखी हुई अतीत की कहानियों का यह संग्रह है। स्वयं लेखक के शब्दों में-'ये जो कहानियां मैं आपके सामने पेश कर रहा हूं, सब जैन-साहित्य की विभूतियां हैं, पौराणिक कथानक है। जो कुछ है, पुराणों की संपत्ति है। सिर्फ भाषा शैली का पहिरावन मेरा है। जहां तक मुझसे बन पड़ा है, नयी शैली, नयी भाषा और कहने के नये तरीके से काफी कायाकल्प कर दिया है। पात्रों के नाम और प्लॉट दो चीजें ही मैंने ली हैं जो कि उनकी आत्माएं कही जा सकती है। और यों नया शरीर है, आत्मा पुरानी है।[1] इसमे

1. द्रष्टव्य-स्व. भगवत् जैन-'उस दिन' कहानी संग्रह-प्रस्तावना-पृ० 3.

सात कहानियों को संग्रहीत किया गया है, उस दिन, पत्थर का टुकड़ा, उपरम्मा, शिकारी, आत्मसमर्पण, राजपुत्र और पूर्णिमा।

पारस और पत्थर :

इसमें नव कहानियों को संग्रहीत किया गया है-पारस पत्थर, अभागा, अनुद्धार, कलाकार, आत्म बोध, परख, प्रतिज्ञा-पालन, नीति की राह पर, जल्लाद तथा चरवाहा। लेखक ने इन पुरानी कथाओं को आधुनिक विचारधारा एवं भाषा-शैली से सुसज्जित कर प्रस्तुत किया है। उन्हीं के शब्दों में-"आज का युग जैसी भाषाशैली में पढ़ना चाहता है, मैने कहानियों को वैसे ही रूप में पाठकों को देने की कोशिश की है। यह कहना अहमन्यता होगी कि अब वे निखरे रूप के कारण संजीवन पा गई है। नहीं, वे पहले से ही सुंदर और स्वस्थ थीं। मेरा उतना ही उनके साथ सबंध है, जितना एक रूपवान व्यक्ति के शरीर से कीमती, लुभावक और सामयिक वस्त्रों का।" (पारस पत्थर, अपनी कलम से पृ० 1)

मिलन :

'मिलन' भगवत् जैन की पौराणिक प्रेरणात्मक कहानियों का संग्रह है। बहुत पहले लिखे गये इस कहानी संग्रह का प्रकाशन उनके अनुज व जैन लेखक वसन्तकुमार जैन ने अभी सन् 1975 में करवाया। वैसे सन् 1944 के पहले यह लिखा गया था। क्योंकि इस काल में भगवत् जी का देह-विलय हुआ था। परिणामस्वरूप हिन्दी-जैन साहित्य ने एक भावुक, आत्मनिष्ठ युवा कुशल साहित्यकार को खो दिया। 'मिलन' में ऐसी कहानियों का संकलन है, जिनके द्वारा मानव सहज रूप से बोध प्राप्त कर सके क्योंकि लेखक का उद्देश्य यही है कि जैनादर्शो, जैन-संस्कृति एवं धार्मिक कथानकों का सर्व-साधारण में अधिकाधिक प्रचार हो, जन समाज उत्साह एवं रसपूर्वक पठन-पाठन के द्वारा कुछ लाभ प्राप्त कर सकें। इसलिए आधुनिक भाषा शैली में पौराणिक कथावस्तु में उन्होंने अच्छी कहानियों का आयोजन किया है। 'मिलन, पूंजीपति, लुटेरा, प्रतिशोध, खून की प्यास और चरवाहा' इन छः कहानियों में से 'चरवाहा' और लुटेरा' अन्य संग्रह 'पारस और पत्थर' में भी संग्रहीत हैं।

विश्वासघात :

इस संकलन में आठ कहानियां संग्रहीत की गई हैं-विश्वासघात, पाप का प्रायश्चित, रात की बात, क्षमा के पथ पर, करनी का फल, आत्मशोध, आत्मद्वन्द, और 'शांति की खोज' में। सभी में पौराणिक कथा वस्तु ग्रहण की

गई है। फिर भी कहानियां अवश्य रोचक बन पड़ी है। सुंदर वर्णन एवं चरित्र-चित्रण की कला में भगवत् जी अत्यन्त माहिर है। छोटी-सी कहानियों का विषय वस्तु आकर्षक और संदेशप्रद है।

दुर्ग द्वार :

जैन धर्म की सैद्धान्तिक सत्य घटनाओं पर आधारित कथा वस्तु को अपना कर लेखक ने इस संकलन की कहानियों को नवीन रूप-शैली में प्रस्तुत किया है। इस संग्रह में इन कहानियों को समायोजित किया गया है-दुर्गद्वार, शैशव, परिवर्तन, अपराधी, जल्लाद और नर्तकी। सभी में हिंसा का त्याग कर अहिंसा की महिमा का गौरव गान किया है।

मानवी :

इस संकलन में प्रमुख कहानियां है-नारीत्व, अतीत के पृष्ठ, मातृत्व, चिरंजीवी और अनुगामिनी। इन कहानियों की कथा-वस्तु पौराणिक ग्रन्थ सम्यक्त्व कौमुदी, पद्मपुराण, निशि-भोजन-कथा, श्रेणिक चरित एवं 'पुण्याश्रव कथा' से ग्रहण किया गया है। नारी जीवन में उत्साह, प्रेम, करुणा, सतीत्व एवं सात्विक भावों की अभिव्यजंना करने में ये कहानियां पूर्णत: सक्षम हैं।

इस प्रकार भगवत् जी की सभी कहानियों में पुराने कथानकों को सजाने और संवारने में उनकी कला निखर आई है। सभी कहानियों में उत्सुकता जागृत करने की तीव्र आकांक्षा एवं कथा-प्रवाह का वेग प्रशंसनीय बना रहा है।

श्रद्धा और त्याग :

रतनलाल गंगवाल रचित यह दो पद्यात्मक लघु कथाएं हैं। प्राचीन जैन कथा साहित्य पर आधारित महाचोर अंजन की कथा है जो अन्त में साधुव्रत ग्रहण करता है। 'श्रद्धा' में अंजन चोर की कथा है, तो 'त्याग' में दृढ़ प्रतिज्ञ भील की कथा है। वह एक बार मुनि से काग मांस न खाने की प्रतिज्ञा प्राणान्त तक निभाता है।

ज्ञानोदय :

इसमें प्रो॰ महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य की चार-पांच कहानियाँ प्रकाशित हुई है। 'श्रमण' 'प्रभाचन्द्र', 'जटिल मुनि', और 'बहुरूपिया'। कई कहानियां तो बहुत सुन्दर हैं तो कई में संस्कृत के श्लोकों को उद्धरित करके प्रवाह में अन्तराल पैदा कर दिया है। कथा वस्तु में प्रवाह-शैथिल्य के कारण घटनाओं के इतिवृत्त रूप के सिवा और कुछ नहीं प्राप्त होता है। इसके साथ उत्साह का गुण भी सर्वत्र विधमान नहीं है।

गहरे पानी पैठ :

अयोध्याप्रसाद गोयलीय का यह एक विशिष्ट प्रकार का कथा ग्रन्थ है। इसमें उन्होंने छोटी-छोटी 118 कहानियां, किवदंतिया, चुटकुले, स्मरण एवं आख्यान लिखे हैं और तीन भागों में विभक्त किया है- "बड़े जनों के आशीर्वाद से (55 कथाएं) इतिहास और जो पढ़ा (47) हिये की आँखों से जो देखा (16)। इन कथाओं में लेखक की कहानी-कला का परिचय अनेक स्थलों पर मिलता है। इसमें प्राचीन कथा वस्तु पर से आधारित सभी कहानियां नहीं हैं, लेकिन जीवन के अनुभवों, ज्ञान को लेकर मार्मिक मनोरंजन प्रदान करनेवाली कथाएं भी है। इसलिए ये कथाएं जीवन के उच्च-व्यापारों से सम्बंध रखती है। इन कथाओं की भाषा भी शुद्ध, टकशाली एवं मुहावरेदार है। लेखक को इसकी रचना में अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है।

इन सबके अतिरिक्त श्री बलभद्र जी न्यायतीर्थ, 'ठाकुर' के उपनाम से 'जैन-संदेश' में अच्छी कहानियां लिखते थे। 'इन कथाओं में कथा-साहित्य के तत्वों के साथ जीवन की उदात्त भावनाओं का सुन्दर चित्रण हुआ है। शैली प्रवाहपूर्ण है, भाषा परिमार्जित और सुसंस्कृत है। किन्तु आरंभिक प्रयास होने के कारण कथानक, संवाद, चरित्र-चित्रण में कला के विकास की कुछ कमी है।'[1]

आधुनिक हिन्दी जैन कथा साहित्य में चरित्रों की जीवनी परक कथा लिखने की परम्परा पूर्ववत् दिखाई पड़ती है। तीर्थन्कर ऋषभदेव, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर की जीवनी को कथाबद्ध करने का पूरा उत्साह जैन साहित्य में दृष्टिगत होता है। सभी में सामान्य विशेषताएं एक-सी रहती है। तीर्थंकरों के जन्म पूर्व माता को स्वप्न, गर्भ की स्थिति, जन्म-महोत्सव तीर्थंकर के जन्म के कारण समृद्धि वैभव बढ़ना, यौवन, त्याग-वैराग्य के अनन्तर प्रवज्या। गृह त्याग के बाद कठिन तपश्चर्या एवं कष्टों को सहन करते हुए 'केवल ज्ञान' की प्राप्ति और बाद में धर्मोपदेश का वर्णन सभी चरित्र कथाओं में पाया जाता है। इन सबके उपरान्त तीर्थंकरों के पूर्व भवों की कथाएं भी साथ-साथ चलती है। इस प्रकार के चरित्र-ग्रन्थों में ऐतिहासिकता तथा कल्पना का संमिश्रण किया गया होता है। ऐसे कथा-साहित्य को चरित्रात्मक-कथा साहित्य भी कह सकते हैं। तीर्थन्करों के साथ धार्मिक पुरुषों, सतियों की कथा भी बहुत उपलब्ध होती है, जिनमें विशेषरूप से इतिवृतात्मकता अधिक होती है। जैन धर्म की सतियों में मृगावती, चंदना, राजुल, धारिणी देवी, अंजना देवी

---

1. डा॰ नेमिचन्द्र शास्त्री-हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन, द्वितीय भाग, पृ॰ 106.

का चरित्र कथा-रूप में बहुत से लेखकों ने अंकित किया है। सभी का आधार-स्थल प्राचीन ग्रन्थ होने से कथा वस्तु में समानता के साथ वास्तविकता प्रतीत होती है, थोड़ा-बहुत परिवर्तन अवश्य किया गया होता है। शैली भी प्राय: समान रहती है। श्री वसंत कुमार जैन ने भगवान शांतिनाथ, पार्श्वनाथ, ऋषभदेव तथा महावीर के चरित्र-ग्रन्थ लिखे हैं। उसी प्रकार नेमिनाथ एवं राजुल को लेकर भी कितने ही लेखकों ने चरित्र-ग्रन्थों की रचना की है। जिनका नामोल्लेख यहां किया जाता है–

1. वर्द्धमान महावीर–	श्री कामताप्रसाद जैन व दिगम्बर दास जैन
2. भगवान पार्श्वनाथ–	श्री कामताप्रसाद जैन
3. भगवान महावीर–	श्री कैलाशचन्द्र शास्त्री
4. वर्द्धमान महावीर–	श्री जगदीशचन्द्र जैन
5. चौबीस तीर्थंकर–	डा॰ देवेन्द्रकुमार
6. तीर्थंकर महावीर–	श्री मधुकर मुनि, नूतन मुनि
7. संभवनाथ चरित्र–	श्री ईश्वरलाल जी जैन
8. श्री आदिनाथ चरित्र–	श्री प्रताप मुनि
9. महावीर जीवन-प्रभा–	श्री आनंद सागर जी महाराज
10. सती चन्दनबाला–	जवाहलाल जी महाराज के व्याख्यानों को हुकुमचंद जी ने संपादित कर प्रकाशित करवाया।
11. भगवान महावीर– एक अनुशीलन	देवेन्द्र मुनि
12. भगवान महावीर की आदर्श जीवनी-	पं॰ सुखलाल जी
13. भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध-	कामताप्रसाद जैन
14. चतुर महावीर-	स्वामी सत्य भक्त
15. भग अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण-	देवेन्द्र मुनि
16. महावीर मेरी दृष्टि में-	आचार्य रजनीश
17. श्रमण भगवान महावीर-	श्री कल्याण विजय गणी

इन सभी चरित्र-ग्रन्थों के विषय में विस्तार से लिखना अनावश्यक-सा

प्रतीत होता है। धार्मिक चरित्र-ग्रन्थ होने के कारण जैन दर्शन के आचार-विचार तथा तत्वों का विश्लेषण यथायोग्य स्थल पर रहने के साथ तीर्थंकरों की जीवनी का रोचक कथा वार्ता के द्वारा प्रसार-प्रचार भी प्रमुख उद्देश्य बना रहता है। प्राय: लेखकों के कथा आधार समान होने पर भी शैली एवं भाषा की प्रौढ़ता, सुसंपन्नता, शैली तथा भावों की अभिव्यक्ति की भिन्नता के कारण चरित्र-ग्रन्थों में विविधता दीखती है। दूसरी विशेषता महावीर की जीवनी के सम्बन्ध में यह भी दृष्टिगत होती है कि दिगम्बर-श्वेताम्बर दो भिन्न मान्यताओं के कारण विषय वस्तु में थोड़ा-सा अंतर पड़ जाता है, क्योंकि श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार प्रभु का ब्याह हो चुका था और प्रियदर्शिनी नामक उनकी एक पुत्री भी थी, जिसकी शादी जामालि कुमार से हुई थी। दिगम्बर मान्यता वाले कभी-कभी कल्पना द्वारा 'मुक्ति' नामक युवती से विवाह संपन्न कराके दोनों मान्यताओं का सुभग समन्वय करने की कोशिश करते हैं।

नाट्य-साहित्य :

अतीत की किसी असाधारण, रोमांचक, मार्मिक घटनाओं का अनुकरण करने की प्रवृत्ति मनुष्य में सदैव पायी जाती है। अनुकरण की इसी वृत्ति ने अभिनय को जन्म दिया और अभिनय के द्वारा नाटक की प्रवृत्ति का प्रारम्भ हुआ। नाटकों के सृजन द्वारा जनता को मनोरंजन प्रदान करने के मुख्य उद्देश्य के साथ लोकशिक्षा का प्रयोजन भी जुड़ा रहता है। आधुनिक काल में जैन लेखक भी प्राचीन नाटकों का अनुवाद और समयानुसार प्राचीन कथानकों पर से मौलिक नाटकों का सर्जन भी करते रहे हैं। आलोच्य काल में पौराणिक एवं सामाजिक विषयों को लेकर हिन्दी-जैन लेखकों ने नाटकों की रचना की है।

जैनेन्द्र किशोर आरावाला का नाम प्रारंभिक नाटककार के रूप में आदर से लिया जाता है। आपने एक दर्जन से भी ज्यादा नाटकों की रचना की हैं। वैसे इन नाटकों की शैली प्राचीन है (फिर भी इनके द्वारा हिन्दी जैन) साहित्य की काफी श्री वृद्धि हुई है। आरा में आपके प्रयत्न से एक नाटक मण्डली भी स्थापित की गई थी और आपके नाटकों का अभिनय करती थी। इनमें विदूषक का पात्र आप स्वयं अभिनीत करते थे। इनकी मृत्यु के बाद यह मण्डली बन्द हो गई। 'सोमासती' और 'कृपणदास' ये दो आपके प्रत्यन है।

जैनेन्द्र किशोर के नाटक प्राय: पद्यबद्ध है। इन पद्यों पर उर्दू का प्रभाव अधिक रहता है। 'कलि कौतुक' ऐसा ही नाटक है। इसके अतिरिक्त 'मनोरमा सुंदरी' 'अंजना सुंदरी', 'चीर द्रोपदी', 'प्रद्युम्न चरित' और 'श्रीपाल चरित'

नाटक साधारणतया अच्छे हैं। "पौराणिक उपाख्यानों को लेखक ने अपनी कल्पना द्वारा पर्याप्त सरस और हृदय ग्राह्य बनाने का प्रयास किया है। टेकनीक की दृष्टि से यद्यपि इन नाटकों में लेखक को पूरी सफलता नहीं मिल सकी है, तो भी इनका सम्बन्ध रगंमंच से है। कथा-विकास में नाटकोचित उतार-चढ़ाव विद्यमान है। वह लेखक की कला-विज्ञता का परिचायक हैं। इनके सभी नाटकों का आधार सांस्कृतिक चेतना है। जैन संस्कृति के प्रति लेखक की गहरी आस्था है। इसलिए उसने उन्हीं मार्मिक आख्यानों को अपनाया है, जो जैन संस्कृति की महत्ता प्रकट कर सकते हैं।"[1] उनके प्रहसनों में जीवन की विविध-दशाओं का अच्छा चित्रण रहता है। 'रामरस' प्रहसन में जीवन में उत्थान-पतन की चर्चा की गई है। कुसंगति के विनाशक प्रभाव का भी इसमें मार्मिक निरूपण किया गया है।

मध्यकाल में जिस प्रकार रूपक काव्य लिखने का प्रचलन था, उसी परम्परा पर आधुनिक काल में भी रूपकात्मक नाटक लिखने की प्रथा का अनुसरण दिखाई पड़ता है। आध्यात्मिक विकास के लिए मानसिक चित्तवृत्तियों को प्रधान पात्र बनाकर रूपकात्मक पद्यमय नाटक इस परम्परा में लिखे गए हैं। संस्कृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं में भी इस प्रकार के अनेक नाटक मिलते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह के कारण त्रस्त मानव जीवन में अहिंसा, शान्ति, संतोष, दया, क्षमा व प्रेम की परम आवश्यकता ऐसे नाटकों में सिद्ध कर दी गई है। हिन्दी जैन साहित्य में ऐसे नाटकों का अनुवाद संस्कृत साहित्य से काफी मात्रा में हुआ है, लेकिन इन सबमें दो ऐसे नाटक कलात्मकता की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं। एक पं० नाथूराम प्रेमी जी कृत 'ज्ञान सूर्योदय' जिसमें ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली दोनों भाषाओं का प्रयोग हुआ है। कथा तो इसमें नहीं होती है, लेकिन भिन्न-भिन्न प्रसंगों की चर्चा संक्षेप में अवश्य होती है। प्राचीन शैली में नाटक लिखे जाने के कारण नांदीपाठ, सूत्रधार आदि इसमें है। भावात्मक-पात्रों का चरित्र-चित्रण एवं कथोपकथन दोनों अत्यंत सुन्दर एवं मार्मिक है। भाव, भाषा, एवं विचारों की दृष्टि से भी यह रचना सुन्दर कही जायेगी। इसमें दार्शनिक तत्वों का व्याख्यात्मक विवेचन भी प्राय: सर्वत्र विद्यमान है। दूसरा नाटक 'अकलंक' नाटक है। इसमें अकलंक-निकलंक दो भाइयों के प्रेम व समर्पण की प्राचीन कथावस्तु है। धर्मरक्षा हेतु प्राण त्याग करते हुए छोटे भाई निकलंक ने बड़े भाई अकलंक को बचाया तथा अकलंक ने जैन दीक्षा ग्रहण कर धर्म व शासन देवी की निरन्तर आराधना करके बौद्ध धर्म के सामने जैन

1. डा० नेमिचन्द्र शास्त्री–हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन, द्वितीय भाग, पृ० 108.

धर्म की महत्ता चारों ओर फैलाई। इस नाटक में मूल कथानक को छोड़कर व्यर्थ प्रसंग नहीं लिये गये है। इसमें केवल तीन अंक हैं और दृश्य-परिवर्तन भी यथायोग्य लिया गया है।

इसी अकलंक देव के प्रसिद्ध आख्यान को लेकर पं० मक्खनलाल दिल्लीवाले ने भी 'अकलंक' नामक एक नाटक लिखा है, जो भाव और भाषा की दृष्टि से साधारण है। लेकिन अभिनयात्मकता इस नाटक में विद्यमान है।

महेन्द्रकुमार :

अर्जुनलाल सेठी ने सामाजिक, धार्मिक तथा राष्ट्रीय तत्वों से पुष्ट काल्पनिक कथा वस्तु को लेकर इस नाटक की रचना की है। इसमें परिवार व समाज में व्याप्त बुराइयों का दिग्दर्शन कराया गया है। जुआ, सट्टा, शराब, दहेज आदि कुरीतियों में फंस कर मनुष्य अपना विनाश आप करता है। लेखक का लक्ष्य इन सामाजिक व पारिवारिक बुराइयों को उद्घाटित कर लोक शिक्षा देने का है। अत: घटनाएँ प्रवाह पूर्ण न होकर उखड़ी-उखड़ी-सी लगती है। जुआरी सुमेरचंद सेठ और उसके निर्धन लेकिन तेजस्वी अनुज महेन्द्रकुमार की कथा अनेक घटनाओं और प्रवाहों में मोड़ लेती हुई आगे चलती रहती हैं। कथा में कहीं-कहीं अस्वाभाविकता का पुट भी लगता है। पात्रों की काफी भरमार की गई है। विभिन्न प्रान्त के पात्रों से उनकी बोलियों में कथोपकथन नाटक में होने से कहीं-कहीं विचित्रता व्यक्त होती है। विशृंखलित कथा होने पर भी इस नाटक का अभिनय किया जा सकता है।

अंजना :

अंजना सुन्दरी का आख्यान जैन पुराणों में इतना प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय है कि इसको मूलाधार बनाकर नाटक, काव्य, कथा, उपन्यास आदि बहुत कुछ लिखा गया है। आलोच्य काल में हिन्दी जैन नाट्य साहित्य में भी सर्वश्री सुदर्शन एवं कन्हैयालाल जी ने भी अंजना के चरित्र को महत्व देकर नाटक लिखे हैं। दोनों की कथावस्तु में अत्यन्त साम्य है और दोनों का लक्ष्य भी भारतीय आदर्शात्मक चरित्र को प्रकाशित करता है। करुण रस का परिपाक दोनों नाटकों में पाया जाता हैं। सुदर्शन जी का 'अंजना नाटक' साहित्यिक दृष्टिकोण से ऊँचा है, जबकि कन्हैयालाल जी का 'अंजना सुन्दरी' नाटक चरित्र चित्रण की मनोवैज्ञानिकता की दृष्टि से विश्वसनीय है। 'श्रीपाल' नाटक इनका अच्छा अभिनयात्मक नाटक है। इसमें श्रीपाल और मैना सुन्दरी का प्रसिद्ध आख्यान लिया गया है। कथोपकथन काफी रोचक एवं जीवंत बने हैं। भाषा गद्य-पद्य मिश्रित हैं। अभिनय की दृष्टि से यह बहुत ही सफल नाटक कहा जा सकता है।

आलोच्य काल में सर्व श्री न्यामत सिंह ने प्रसिद्ध जैन सतियों का पौराणिक कथानक लेकर काफी नाटकों की रचना की है। इनमें विजयासुन्दरी नाटक, कमलश्री नाटक, शिवसुन्दरी नाटक और मैनासुन्दरी नाटक प्रमुख है।[1] सभी नाटक प्राचीन शैली में लिखे गये हैं, लेकिन सभी अभिनय योग्य है। नाटकों का प्राय: भाग पद्यमय होने से शेर-शायरी और गज़ल में ही प्राय: कथोपकथन होते हैं। वातावरण की सृष्टि गम्भीर शैली में करने से अतीत हमारे सामने आकर खड़ा हो जाता है। नाटकों की भाषा उर्दू प्रधान विशेष रही है। हिन्दी जैन नाटककारों में न्यामत सिंह जी का महत्वपूर्ण स्थान है।

राजकुमार जैन ने भी नारी के आदर्शत्मक चरित्रों की पौराणिक कथा-वस्तु पर 'सती सुरसुन्दरी नाटक' एवं 'सती चन्दनबाला नाटक' का सृजन किया है।[2] इसमें सती चन्दनबाला की धर्मप्रियता, सहिष्णुता, कोमलता, त्याग-विराग को व्यक्त करने वाली घटनाओं को लेकर कथानक को रोचक बनाने का प्रयास नाटककार ने किया है। 'सती सुरसुन्दरी' का कथानक भी जैन साहित्य में बहुत प्रसिद्ध है। कथा-साहित्य में भी इसको स्थान मिला है।

पद्मराज जैन ने 'सती अंजना नाटक'[3] में पवनंजय-अंजना का लोकप्रिय कथानक पौराणिक ग्रन्थों के आधार पर से ग्रहण किया है। अंजना की कथावस्तु जैन-साहित्य में अत्यन्त प्रसिद्ध है।

ब्रजकिशोर नारायण ने 'वर्द्धमान-महावीर' नामक नाटक में चौबीस वे तीर्थंकर भगवान महावीर की जीवनी को नाट्यबद्ध किया है। विश्व की अन्यतम विभूति भगवान महावीर के आदर्श त्यागमय जीवन को सजीव, सार्थक कथोपकथन एवं वातावरण के साथ जनता के समक्ष उपस्थित किया है। इस नाटक की प्रमुख विशेषता उसके साहित्यिक और भावपूर्ण कथोपकथन में लक्षित होती है। सुखान्त-दुखान्त मिश्रित इस रचना में धार्मिक उपदेश भी रोचक शैली में दिया है, जिससे पाठक उक्ताता नहीं है। कार्यावस्थाएं एवं अर्थ प्रकृतियों को निरूपित करने में नाटककार ने थोड़ी-बहुत खींचातानी की हो ऐसा लगता है।

भगवत्स्वरूप जैन का 'गरीब'[4] नाटक सामाजिक होने से गरीबों की करुण स्थिति का चित्रण कर उनके प्रति सहानुभूति, समानता एवं प्रेम का

1. न्यामत सिंह जैन पुस्तकालय-ट्रेक्ट-हिसार-पंजाब।
2. प्रकाशक–न्यामतसिंह जैन पुस्तकालय-ट्रेक्ट-हिसार-पंजाब।
3. नेमिचन्द्र वाकलीवाल-किशनगढ़ (राजस्थान)।
4. प्रकाशक-वसंत कुमार जैन–आगरा।

व्यवहार करने का संदेश दिया गया है। 'गरीब' करुण रस प्रधान नाटक है। सामाजिक विषमता एवं उसके प्रति विद्रोह की भावना इसमें मुख्यत: है। लक्ष्मी की चंचलता बताकर लेखक ने मानव हृदय की मानवता को जगाने का-उभारने का प्रयास किया है। रंगमंच के दृष्टिकोण से भी यह नाटक काफ़ी सरल एवं अभिनेयात्मक है। सीधी सरल खड़ी बोली में लिखे गये इस नाटक का कथानक हमारे समाज का ही है, अत: काफी रोचक भी रहा है। पौराणिक कथानक पर आधारित उनके दो अन्य नाटक हैं-'भाग्य' और एकांकी संग्रह 'बलि जो चढ़ी नहीं'। 'भाग्य' में श्रीपाल-मैना की प्राचीन कथावस्तु ग्रहण की गई है। इसकी भाषा पद्यमय है। पुरानी कथावस्तु को प्रस्तुत करने का भगवत् जी का ढंग अवश्य आधुनिक है। लेखक ने रंगमंचीय संकेतों का पूरा निर्वाह किया है। 'बलि जो चढ़ी नहीं' एकांकी संग्रह में भी पौराणिक, राष्ट्रीय, सामाजिक आदि 7 एकांकियों का संग्रह है। सभी के पीछे निश्चित उद्देश्य रहा है। 'बलि जो चढ़ी नहीं', 'राजपूत', 'आत्मतेज', 'गरीब का दिल', 'स्वदेश-प्रेम', 'राजा का कर्त्तव्य' तथा 'देह की मांग' आदि एकांकियों में न्याय, देशभक्ति, वीरता अहिंसा, उपकार, सहानुभूति आदि उच्चादर्शों की अभिव्यक्ति प्रमुख पात्रों के माध्यम से की है।

इस प्रकार नाट्य कृतियों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करने से पता चलता है कि नाटक प्राय: पौराणिक कथावस्तु पर आधारित है और प्राचीन शैली के नाटकों में खड़ी बोली गद्य की अपेक्षा पद्य का प्रयोग अधिक देखने को मिलता है। सामाजिक विषयवस्तु एवं वातावरण को लेकर नाटकों की रचना बहुत ही कम हुई है। बीसवीं शताब्दी में जो नाटक लिखे गये, उनमें आधुनिक साज-सज्जा, भाषा तथा अभिनयात्मकता का पूरा ख्याल रखा गया है। प्रारम्भिक पौराणिक नाटकों के शेरो-शायरी ढंग के पद्यमय संवादों पर पारसी नाटकों का प्रभाव अधिक दिखाई पड़ता है।

निबन्ध :

आधुनिक काल को गद्य-युग भी कहा जा सकता है। क्योंकि इस काल में वैचारिक प्रचार-प्रसार का इतना सशक्त माध्यम सिद्ध हो चुका है कि गद्य की आज अनेक विधाओं का काफी विकास हुआ है। गद्य के नये-नये रूपों में उपन्यास, नाटक, जीवनी की तरह निबन्धों का भी सम्पूर्ण महत्त्व आज के युग में स्वीकृत है। निबन्ध में ही हमारे मस्तिष्क के शृंखलाबद्ध तार्किक गम्भीर विचारों एवं हृदय की अनुभूतियों का ठीक से (क्रमबद्ध) निर्वहन हो पाता है। हिन्दी साहित्य में भी निबन्धों का प्रारम्भ भारतेन्दु जी से ही हुआ और हिन्दी

जैन साहित्य में निबंधों का आरम्भ इसी काल से माना जाता है। आधुनिक युग में हिन्दी जैन साहित्य का भण्डार निबंधों से अधिकाधिक भरा गया है। अन्य विधाओं की अपेक्षा अनेक विषयों में विविध प्रकार के अधिकाधिक निबन्ध लिखे गये हैं। यद्यपि उत्कृष्ट निबंधकारों की संख्या अल्प है, जो भारतेन्दु बाबू, बालकृष्ण भट्ट, आचार्य द्विवेदी जी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी, गुलेरी जी, नन्ददुलारे बाजपेयी, हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा डॉ॰ नगेन्द्र जी की याद दिला सके (समकक्ष खड़े रह सके)। फिर भी पं॰ सुखलाल जी, पं॰ दलसुख मालवणीया, पं॰ नाथूराम प्रेमी, पं॰ कैलाशचन्द्र शास्त्री प्रभृत्ति विद्वान निबंधकारों ने हिन्दी जैन साहित्य को समृद्ध करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। बहुत से निबंधकारों ने इतिवृत्त विषयों का निरूपण कर सुन्दर निबन्ध लिखे हैं। हिन्दी भाषा में लिखित जैन निबंधों को ऐतिहासिक, पुरातत्वात्मक, आचारात्मक, दार्शनिक, साहित्यक, सामाजिक और वैज्ञानिक विभागों में बांटा जा सकता है। ऐतिहासिक निबंधों की संख्या सर्वाधिक है। इस प्रकार के निबंध लिखने वालों में पं॰ नाथूरामजी प्रेमी, पं॰ जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर', मुनि कल्याण विजयजी, पं॰ सुखलाल संघवी, मुनि जिनविजयजी, पं॰ कैलाशचन्द्र शास्त्री, पं॰ भुजबली शास्त्री आदि प्रमुख हैं। उनमें पं॰ नाथूराम प्रेमी ने शुद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ न लिखकर जैनाचार्यों, जैन कवियों एवं अन्य साहित्य निर्माताओं के विषय में अनगिनत शोधात्मक, परिचयात्मक लेख एवं निबंध लिखे हैं। निबंधों का भण्डार अपनी मौलिक सूझ-बूझ तथा गहरे ज्ञान से प्रेमीजी ने भरकर गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। साथ ही उन्होंने सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी तीर्थक्षेत्र, वंश-गोत्र आदि के व्युत्पत्ति एवं विकास, आचार-शास्त्र के नियमों का भाष्य तथा विविध संस्कारों का विश्लेषण गवेषणात्मक शैली में लिखा है। अनेक जैन धर्मी राजाओं की वंशावली, गोत्र, वंश-परम्परा आदि का निरूपण भी उन्होंने एक जागृत शोधकर्ता के समान किया है। अनेक जैन पत्र-पत्रिकाओं में प्रेमीजी के संशोधनात्मक निबंध प्रकट हुए हैं। पं॰ जुगलकिशोर मुख्तार का नाम भी ऐतिहासिक निबंधकारों में आदर से लिया जाता है। उनके ऐतिहासिक, दार्शनिक, वैचारिक निबंधों का संग्रह 'युगवीर निबंधावली-भाग-1-2 में संग्रहीत किये गये हैं। जैन साहित्य के अन्वेषणकर्ताओं में आपकी गणना होती है। आपने करीब 150 ऐतिहासिक निबंध लिखे हैं। कवि और आचार्य की परंपरा, निवास स्थान और समय निर्णय आदि की शोध करने में आपके निबन्धों का काफी योगदान है। उनकी लेखन-शैली अपनी विशेष है, वे एक ही विषय को समझाने के लिए बार-बार बताते चलते हैं, ताकि सामान्य पाठक भी पढ़कर समझ सकें। इससे कहीं पुनरावृत्ति का आभास लगता है, लेकिन सजगता के साथ ही

एक बात को बार-बार दोहराते हैं। ऐतिहासिक निबंधकार के साथ-साथ ये एक सफल आलोचक भी हैं। 'ग्रन्थ परीक्षा' आपका एक बृहत् आलोचनात्मक ग्रन्थ है जिसके कई भाग प्रकाशित हो चुके हैं।

बाबू कामताप्रसाद जैन का भी विशुद्ध इतिहास-लेखकों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। आपने 'हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' काफी परिश्रम लेकर परिचयात्मक तथा शोधात्मक ढंग से लिखा है। इसके अतिरिक्त भी अनेक निबंधों की रचना की है, जिनमें जैन राजाओं के वंशों और स्थानों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण गवेषणाएं की हैं। गद्य साहित्य के विकास में प्रेमीजी की तरह आपके निबंधों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। दिगम्बर सम्प्रदाय के निबन्धों की परिमाण-बहुलता की दृष्टि से आपका स्थान महत्त्वपूर्ण है। भिन्न-भिन्न जैन पत्र-पत्रिकाओं में आपके प्रकाशित निबंध पुस्तकाकार में प्रकाशित हो चुके हैं। आपके कतिपय ऐतिहासिक निबंधों में इतिहास सम्बन्धी त्रुटियों को कतिपय अन्वेषक-आलोचक पाते हैं, फिर भी सामग्री का संकलन एवं अनुसंधान की दृष्टि से इन निबंधों का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

के० भुजबली शास्त्रीजी का भी ऐतिहासिक निबंधकारों में काफी अच्छा स्थान है। आपने अतिरिक्त विशाल मात्रा में अनुसंधनात्मक निबंध लिखे हैं, जिनमें महत्त्वपूणं हैं—'बारकूट' वेणूर, क्या वादिम सिंह अकलंक देव के समकालीन है? वीर मार्तण्ड चामुण्डराय, वादिमसिंह, जैन वीर वंकेय, तुमुच, तोलव के जैन पालेयगार, सातर राजा जिनदत्त राय, कारकल का जैन भेररस राजवंश, दान-चिन्तामणि आदि। दक्षिण के जैन राजवंश, दानी श्रावकों, न्यायाचार्यों, कवियों आदि पर आपके नये अन्वेषणात्मक निबंध प्रकाशित हो चुके हैं। यद्यपि इनमें ऐतिहासिक प्रमाणों की कमी है, फिर भी हिन्दी जैन गद्य के विकास में इन निबंधों का योगदान उल्लेखनीय है। आपकी शैली समास-शैली है, जो थोड़े में बहुत कुछ कह देने वाली है। गंभीर विचारों की अभिव्यक्ति आप सार्थक शब्दों में संक्षेप में कर सकते हैं।

बाबू अयोध्या प्रसाद गोयलीय बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न साहित्यकार है। कथा, संस्मरण, निबंध सभी पर साधिकार आपने कलम चलाई है और उनसे जो निःमृत हुआ, उससे अवश्य जैन समाज को कल्याणप्रद व रागात्मक चीज प्राप्त हुई है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आपके अनेक निबंध प्रकाशित हो चुके हैं। 'राजपूताने के जैनवीर', मौर्य साम्राज्य के जैन वीर' और 'आर्यकालीन भारत' आदि पुस्तकाकार संकलन महत्त्वपूर्ण रचनाएं हैं।

इतिहास और पुरातत्त्व वेत्ता श्री डा० हीरालाल जैन भी दार्शनिक और

अन्वेषणात्मक निबंध लिखते हैं। कई ग्रन्थों की भूमिकाएं आपने लिखी हैं, जो इतिहास के निर्माण में विशिष्ट स्थान रखती है। 'जैन-इतिहास की पूर्वपीठिका' तो शोधात्मक अपूर्व वस्तु है। इस छोटी-सी रचना में गागर में सागर भर देने वाली कहावत चरितार्थ हुई है। आपकी रचना शैली प्रौढ़ है। उसमें धारावाहिकता पाई जाती है। भाषा सुव्यवस्थित और परिमार्जित है। थोड़े शब्दों में अधिक कहने की कला में आप प्रवीण हैं। महाधवल, क्वाल सम्बन्धी आपके परिचयात्मक निबंध भी महत्त्वपूर्ण हैं।[1] श्रवण बेलगोल के जैन शिलालेखों की प्रस्तावना में आपने अनेक राजाओं, छतिजों और श्रावकों पर संशोधनात्मक परिचय लिखे हैं।

डा० नेमिचन्द्र शास्त्री का भी आधुनिक युग के ऐतिहासिक निबंधकारों में काफी महत्त्वपूर्ण स्थान है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आपके ऐतिहासिक तथा दार्शनिक निबंध प्रकाशित हुए हैं। हिन्दी जैन साहित्य परिशीलनात्मक इतिहास आपने दो भागों में लिखा है, जो मध्यकालीन एवं आधुनिक विविध प्रवृत्तियों की जानकारी से समृद्ध है। निबंध के अलावा संस्मरण लिखने में भी आप कुशल हैं।

मुनि श्री कान्तिसागर जी ने भी गवेषणात्मक निबंध अच्छे लिखे हैं। विशेष कर जैन चित्रकला, वास्तुकला तथा मूर्तिकला के विषय में काफ़ी गहराई में जाकर निबंध लिखे हैं। इन निबंधों में कला के साथ अनेक स्थानों के विषय में संशोधनात्मक प्रकाश डाला है। 'खण्डहरों का वैभव' और 'खोज की पगडंडियां'[2] इतिहास-पुरातत्त्व की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण निबंधों के संकलन हैं। 'विशाल भारत' में भी आपके संग्रहालय तथा स्थापत्य सम्बन्धी लेख प्रकट हो चुके हैं-'प्रयाग संग्रहालय में जैन पुरातत्त्व' और 'विन्ध्यभूमि का जैनाश्रित शिल्प स्थापत्य' निबंध इस विषय में बड़े महत्वपूर्ण है।

प्रो० खुशालचन्द्र गारावाला का नाम भी ऐतिहासिक निबंध रचयिताओं में आदर से लिया जाता है। 'कलिंगाधिपति खारवेल और 'गोम्मट प्रतिष्ठा चक्र' आपके महत्त्वपूर्ण निबंध हैं।

आचारात्मक और दार्शनिक निबंध :

हिन्दी जैन निबंध साहित्य में दार्शनिक निबंधकारों की संख्या सर्वाधिक है। इस प्रकार के निबंध विचार प्रधान होने के साथ वर्णन प्रधान भी होते हैं। सभी निबंधकारों का परिचय यहां मुश्किल है। अतः प्रमुख निबंधकारों का संक्षिप्त परिचय ही पर्याप्त होगा। आचार-प्रधान निबंधों से जैन समाज अच्छी

---

1. डा० नेमिचन्द्र शास्त्री-हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन, द्वितीय भाग-पृ० 127.
2. प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली।

तरह परिचित होता है, क्योंकि अपने धर्म के विषय में जानकारी प्राप्त करने के हेतु प्रत्येक परिवार स्वभाषा में दार्शनिक ग्रन्थ एवं निबंध-संग्रहों को स्थान देता है। दार्शनिक विचार प्रधान निबंध लिखनेवालों में प्रज्ञचक्षु पं० सुखलालजी संघवी का स्थान आदरणीय एवं सम्माननीय है। 'योगदर्शन' एवं 'योगविशंतिका' में दर्शन और इतिहास का तुलनात्मक शैली में परिचय मिलता है। 'जैन-साहित्य की प्रगति', 'भगवान महावीर का आदर्श जीवन' में ऐतिहासिक तथ्यों व घटना-क्रमों का पूर्ण ख्याल रखा है। दार्शनिक निबंधों के अतिरिक्त आपने सांस्कृतिक निबंध भी लिखे हैं, जिनकी भाषा परिमार्जित और शैली प्रवाहपूर्ण है। थोड़े में बहुत कुछ प्रतिपादित कर देने की आपकी संश्लिष्ट शैली है। जैन दर्शन के साथ बौद्ध-दर्शन के भी मर्मज्ञ ज्ञाता हैं। अभी थोड़े दिन पहले ही उनका स्वर्गवास होने से न केवल जैन-साहित्य बल्कि समग्र हिन्दी साहित्य वाणी के ऐसे विद्वान वरंद् साहित्यकार से वंचित हो गया।

पं० शीतलप्रसाद जी इस काल के पथ प्रदर्शक निबंधकार के रूप में सम्मान के अधिकारी हैं। आपने इतना अधिक लिखा है कि इन सबके संकलन से जैन पुस्तकालय खड़ा हो सकता है। पण्डित राहुल सांस्कृत्यायन की नियमित रूप से कुछ न कुछ लिखते रहने की वृत्ति पंडित जी में विद्यमान थी। दर्शन और इतिहास दोनों पर ही असंख्य मात्रा में निबंध लिखे हैं। ऐसा कोई विषय नहीं, जो आपकी नजर से बच गया हो। निबंधों की तरह आप यदि उपन्यास क्षेत्र में भी कलम चलाते तो अवश्य ही जैन साहित्य का भण्डार भर जाता।

पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री दार्शनिक आचारात्मक एवं ऐतिहासिक निबंध लिखने वालों में हैं। 'न्याय कौमुद चन्द्रावली' की प्रस्तावना-जो कि दार्शनिक विकास क्रम का ज्ञान भण्डार है—जैन साहित्य की अमूल्य निधि कही जाती है। स्याद्वाद, सप्तभंगी, अनेकान्तवाद की व्यापकता और चरित्र, शब्द नय, महावीर और उनकी विचारधारा आदि निबंध अपना विशेष स्थान रखते हैं। 'जैन धर्म' और 'जैन साहित्य का इतिहास' (तीन भागों में) अत्यन्त शिष्ट-संयम भाषा शैली में दार्शनिक सिद्धान्तों एवं जैन साहित्य के क्रमिक विकास का विवेचन करते हुए मौलिक ग्रन्थ हैं। इसी प्रकार 'तत्पार्थ सूत्र' पर लिखा दार्शनिक विवेचन भी प्रशंसनीय तथा ज्ञानवर्द्धक है। इनकी शैली और विद्वता की तुलना हम आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी से कर सकते हैं। दोनों की शैली में विचारों की गंभीरता, अन्वेषणात्मक चिन्तन, परिपक्वता एवं अभिव्यंजना की स्पष्टता समान रूप से पाते हैं।

पं० दलसुखभाई मालवणिया जी ने दार्शनिक निबंधों का सर्जन कर हिन्दी

जैन साहित्य को समृद्ध बनाया। जैनागम, जैन युग का प्रारम्भ, जैन दार्शनिक साहित्य का सिंहावलोकन आदि आपके महत्त्वपूर्ण निबंध हैं और आप निरन्तर जैन साहित्य की श्रीवृद्धि तथा सेवा में लगे रहे हैं। 'भगवान महावीर' में उनकी दार्शनिकता, ऐतिहासिकता एवं संशोधनात्मक दृष्टिकोण विद्यमान रहा है। प्राचीन ग्रन्थों का उनका ज्ञान अद्‌भुत है तो साथ ही साथ आधुनिक विचारधारा से ओत प्रोत साहित्य से भी निरन्तर सम्पर्क में रहते होने से तटस्थ, सफल आलोचक भी हैं। प्राच्य विद्या एवं मूर्तिकला की भी उनकी जानकारी गहरी है।

पं० दरबारीलाल न्यायाचार्य दार्शनिक निबंध लिखने वाले हैं। 'न्याय दीपिका' की प्रस्तावना और 'आत्म परीक्षा' की प्रस्तावना के अतिरिक्त अनेकान्तवाद पर आपके कई निबंध प्रकाशित हो चुके हैं।

पं० फूलचन्द जी 'सिद्धान्तशास्त्री' का भी दार्शनिक निबंधकारों में अच्छा स्थान है। तत्वार्थ सूत्र जैसे सुन्दर दार्शनिक विषय पर भी सुन्दर निबंध लिखे हैं। इसी तरह जैन दर्शन के कर्मवाद सिद्धान्त के आप मर्मज्ञ हैं। सामाजिक निबंध भी पंडित जी ने काफी लिखे हैं।

प्रो० महेन्द्रकुमार आचार्य के दार्शनिक निबंध जैन साहित्य के लिए गौरव रूप है। अकलंक ग्रन्थ की प्रस्तावना एवं श्रुतसागरी वृत्ति की प्रस्तावना के सिवा भी आपके अनेक फुटकर निबंध प्रकाशित हुए हैं। इनके निबंधों में मौलिकता एवं सिद्धान्तों का सुन्दर मार्मिक विवेचन दिखाई पड़ता है।

पं० चैनसुखदास न्यायतीर्थ भी प्रमुख दार्शनिक निबंधकार हैं। उनके आचार-विचार विषयक अनेक निबंध प्रकाशित हो चुके हैं। पं० वंशीधर व्याकरणाचार्य ने दार्शनिक सिद्धान्तों—जैसे कि स्याद्वाद, नय, प्रमाण, कर्म आदि के साथ सामाजिक समस्याओं पर भी सुन्दर निबंध लिखे हैं। आपके निबंधों में भाषा की शुद्धि एवं शैली की गंभीरता पर विशेष ध्यान दिया गया है। भाषा की सरलता, गंभीर विचारों को व्यक्त करने में सहायक बनती है। उच्च विचार व सुधारक होने के कारण सामाजिक निबंधों में प्राचीन रूढ़ियों के प्रति अनास्था एवं विरोध की भावना अभिव्यक्त होती है।

पं० हीरालाल सिद्धान्त शास्त्री ने 'द्रव्य संग्रह' की विशेष वृत्ति में अनेक दार्शनिक पहलुओं पर विचार किया है। दार्शनिक निबंधों के अतिरिक्त अन्वेषणात्मक एवं भौगोलिक निबंध भी आपने काफी लिखे हैं। आपके निबंधों की शैली तर्कपूर्ण तथा कहीं-कहीं पंडिताऊपन है।

पं० जगमोहनलाल जी 'सिद्धान्तशास्त्री' ने भी दार्शनिक और आचार-सम्बन्धी

निबंध लिखे हैं। विषय को समझाने की आपकी शैली सरल व तर्कयुक्त है। भाषा परिमार्जित और संयत होने के साथ नीरस विषय को भी रोचक ढंग से समझाने की आपकी विशेषता है।

साहित्यिक और सामाजिक निबंध :

साहित्यिक निबंध लिखनेवालों में प्रेमीजी, कामताप्रसाद जैन, मूलचन्द 'वत्सल', प्रो॰ राजकुमार 'साहित्याचार्य', पन्नालाल बसंत, श्री अगरचन्द नाहटा, श्री कृष्णदास रांका, श्री जमनालाल जी प्रमुख हैं। श्री प्रेमी जी ने अपने 'हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास' में अनेक कवियों की जीवनी के बारे में अन्वेषणात्मक शैली में लिखा है। यह वास्तव में शुद्ध इतिहास न होकर संशोधनात्मक साहित्यिक लेखों का संग्रह है, जो आज तक हिन्दी जैन साहित्य के लिए पथ-प्रदर्शक माना जाता है। प्रेमी जी की तरह बाबू कामताप्रसाद जी ने भी 'हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' थोड़े-बहुत नवीन उद्धरणों के साथ लिखा, जिसमें थोड़ी बहुत त्रुटियों के रह जाने पर भी इसका स्थान काफी महत्त्वपूर्ण है। हिन्दी जैन साहित्य के लिए मार्गदर्शक भी है। आपने अन्य भी कई साहित्यिक निबंध लिखे हैं।

महात्मा भगवानदीन ओर सूरजभानु वकील सफल निबंधकार हैं। भगवानदीन के 'स्वाध्याय' निबंध-संग्रह में मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक निबंध है। इनकी शैली तर्कपूर्ण व रोचक है। 'वीरवाणी'में भी आप दोनों के साहित्यिक निबंध प्रकाशित हो चुके हैं। पं॰ चैनसुखदास न्यायतीर्थ और उनकी मण्डली जयपुर के अनेक कवियों पर संशोधनात्मक कार्य कर रही है, जो अवश्य हिन्दी जैन साहित्य की अमूल्य निधि रहेगी।

श्री अगरचन्द जी नाहटा प्रतिभासंपन्न तथा ज्ञान-वृद्ध निबंधकार एवं संशोधनकर्त्ता हैं। आपने कवियों के जीवन, उनके राज्याश्रय एवं जैन ग्रन्थों पर परिचयात्मक एवं संशोधनात्मक असंख्य लेख लिख कर जैन साहित्य पर महती उपकार किया है। आपने केवल जैन साहित्य के विषय में ही न लिखकर हिन्दी साहित्य को भी गौरवान्वित किया है। हिन्दी साहित्य में भी आपको काफी सम्मान प्राप्त हुआ है। जैन एवं जैनेत्तर कोई पत्र या पत्रिका ऐसी न होगी, जिसमें आपका कोई निबंध प्रकाशित न हुआ हो। हिन्दी साहित्य के विवादात्मक प्रश्नों को सुलझाने में आपके निबंधों का श्रेयस्कर योगदान है। 'पृथ्वीराज-रासो' के विवाद का अन्त आपके महत्त्वपूर्ण निबंध द्वारा ही हुआ है। अनेक तेजस्वी अज्ञात कवियों को आपने अन्धकार से प्रकाश में लाने का भगीरथ श्रम किया है।

श्रीमती पण्डिता चन्द्राबाई जी ने स्त्री उपयोगी साहित्य का सर्जन किया

है। आपके कई साहित्यिक एवं दार्शनिक आचार-विचार सम्बन्धी कई निबंध-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। आपकी लेखन कला शुद्ध, सरल व भाषा स्वच्छ है।

श्रीयुत् लक्ष्मीचन्द्र जैन एक कुशल संपादक के साथ-साथ विद्वान निबन्धकार के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। भारतीय ज्ञानपीठ के संपादकीय वक्तव्य में अनेक ग्रन्थों महाकाव्य की प्रस्तावना उन्होंने लिखी है। महाकाव्य 'वर्द्धमान' (अनूप शर्मा कृत) और '(मुक्ति दूत)' (श्री वीरेन्द्र जैन कृत) के संपादकीय वक्तव्य तो महत्त्वपूर्ण हैं ही, साथ में 'वैदिक साहित्य' की प्रस्तावना एक नया प्रकाश विकीर्ण करती है। आपने सफल निबंधकार के साथ-साथ सहृदयी आलोचक का कर्त्तव्य अच्छी तरह निभाया है। आपकी शैली श्लिष्ट, साहित्यिक तथा प्रभावोत्पादक है। आपके निबंधों में धारावाहिकता सर्वत्र पायी जाती है।

पं० मूलचन्द 'वत्सल' पुराने साहित्यकारों में से हैं। वे कवि और कथाकार के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। प्राचीन कवियों पर संशोधनात्मक साहित्यिक निबंध आपने अच्छे लिखे हैं। आपकी शैली सरल व भाषा सीधी-सादी है।

पं० परमानन्द जी शास्त्री ने अपभ्रंश के कितने ही कवियों पर शोधात्मक निबंध लिखे हैं। महाकवि रयघू के आप विशेष मर्मज्ञ हैं। शब्द-बाहुल्य शैली में कहीं-कहीं शिथिलता दिखाई पड़ती है।

प्रो० राजकुमार 'साहित्याचार्य' ने मध्यकालीन जैन भक्त कवि दौलतराम और भूधरदास के पदों का विश्लेषण आधुनिक और सुन्दर ढंग से किया है। आपकी शैली पुष्ट व संयत है। कवि होने के कारण गद्य में काव्यत्व की भावानुभूति वर्तमान है।

पं० पन्नालाल 'बसन्त' के अनेक साहित्यिक निबंध प्रकाशित हो चुके हैं। 'आदि पुराण' की आपकी लिखी प्रस्तावना काफी महत्त्वपूर्ण है। इसमें संस्कृत जैन साहित्य के विकास-क्रम का बड़ा ही क्रमबद्ध वर्णन है। आपकी शैली भी परिमार्जित है। श्री जमनालालजी के कई साहित्यिक लेख 'जैन जगत' में प्रकाशित हो चुके हैं।

डा० ज्योतिप्रसाद जैन के ऐतिहासिक और साहित्यिक निबंध प्रकाशित हो चुके हैं। शोधात्मक शैली में लिखे गये निबंधों में 'पूज्यपाद' सम्बन्धी निबन्ध महत्त्वपूर्ण हैं।

पं० बलभद्र न्यायतीर्थ के सामाजिक एवं साहित्यिक निबंध 'जैन-संदेश' नामक जैन-पत्रिका में प्रकाशित हो चुके हैं। निबंधों की भाषा प्रवाह-युक्त एवं शैली में विस्तार का आधिक्य है।

श्री कृष्णदास रांका आलोच्यकाल के प्रौढ़ निबंधकार हैं। इनका देहावसान

अभी-अभी हुआ। जैन समाज ने धर्म प्रेमी विद्वान साहित्यकार की कमी महसूस की है। प्रवाहपूर्ण शैली व वर्णनों की विशेषता आपके निबंधों में पायी जाती है।

कस्तूरचन्द काशीवाल ने भी शोधात्मक निबंध लिखे हैं, जिनमें विषय की स्पष्टता प्रमुख रूप से पायी जाती है।

प्रो॰ देवेन्द्रकुमार, विद्यार्थी नरेन्द्र, श्री पृथ्वीराज आदि भी अच्छे निबंधकार हैं। पं॰ अजीतकुमार शास्त्री ने खण्डन-मण्डनात्मक शैली में अनेक निबंध लिखे हैं, जिनकी भाषा विषयानुकूल और तर्कपूर्ण है। मूलचन्द जी कापड़िया भी संपादक के साथ साहित्यिक निबंधकार हैं। श्री दरबारीलाल 'सत्यभक्त' चिन्तनशील दार्शनिक और साहित्यकार हैं। सत्यभक्त जी की रचनाओं से केवल जैन-साहित्य ही नहीं, अपितु हिन्दी साहित्य का भण्डार भी बढ़ा है।

इन सबके अतिरिक्त एक उल्लेखनीय प्रतिभा सम्पन्न प्रसिद्ध साहित्यकार के रूप में श्री जैनेन्द्र कुमार जैन का नाम उल्लेखनीय है, जिनकी प्रायः सभी रचनाओं में दार्शनिकता का पुट रहता है। हिन्दी साहित्य में श्रेष्ठ कथाकार के साथ विद्वान निबंधकार के रूप में भी आपका यश प्रकाशित है। एक प्रखर चिन्तक और दार्शनिक के रूप में आप अपने निबंधों में उपस्थित रहते हैं। जैन-दर्शन से आप काफी प्रभावित होने से आपके साहित्य-विशेषतः निबंधों की पार्श्वभूमि में जैन दर्शन से प्रभावित विचारधारा का रहना स्वाभाविक है। आपने हिन्दी साहित्य को एक नया मोड़ व शैली प्रदान की है, जिसे 'जैनेन्द्र शैली' कही जाती है। आपकी रचनाओं में आध्यात्मिकता का जो सुर प्रस्फुटित होता है, वह जैन दर्शन से प्रभावित है।

आचार्य नथमल मुनि आधुनिक काल के प्रखर जैन दार्शनिक हैं। उनके जैन दर्शन पर चिन्तनात्मक और मीमांसात्मक अनेक फुटकर निबंधों की संख्या पर्याप्त मात्रा में है। छोटे-छोटे प्रभावशाली विचार-प्रधान निबंध संग्रह 'बीज और बरगद', 'समस्या का पत्थर अध्यात्म की छेनी', 'तुम अनंत शक्ति के स्रोत हो' आदि में[1] हमें उनकी तर्क प्रधान विशिष्ट शैली के दर्शन होते हैं।

इसी प्रकार तेरापंथ सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य तुलसी की जैन दर्शन शास्त्रों के विषय में विद्वता प्रसिद्ध है। मननीयता एवं विचारात्मकता उनके लेख, व्याख्यान आदि से व्यक्त होती है। 'क्या धर्म बुद्धि गम्य है?'[2] उनके सुन्दर निबंधों का संग्रह है।

1. प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली।
2. प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, इसकी प्रति 'जैन साहित्य विकासमंडल'-इर्ला ब्रिज, विलेपार्ला से प्राप्त हुई थी।

मुनि श्री विद्यानन्द जी ने 'ज्ञानदीप जले'[1] में आध्यात्मिक विचार युक्त निबंध लिखे हैं, जिसका संपादन जयप्रकाश वर्मा ने किया है। वर्मा जी विद्यानन्द जी के प्रति काफी श्रद्धावान हैं। इसमें मानव-मात्र के कल्याण स्वरूप अध्यात्म की चर्चा की गई है। 'श्रमणों की महत्ता', 'दिगम्बर मुनि और श्रमण' में श्रमण-संस्कृति की महत्ता-विशेषता पर प्रकाश डाला है। इनकी भाषा शैली विचार-प्रधान और रोचक है। मुनि श्री लामचंद जी ने मानवता के पथ पर में मानवता के उन्नायक प्रवचनों का संग्रह किया है। प्रत्येक प्रवचन अपने आपमें विचारपूर्ण कल्याणप्रद एवं प्रकाश स्वरूप है। इनमें जीवन की अनेक समस्याओं पर गंभीरता से विशद् विवेचन किया गया है।

महात्मा भगवानदीन का आधुनिक हिन्दी जैन निबंधकार के रूप में महत्त्वपूर्ण स्थान है। आपने 'स्वाध्याय'[2] निबंध संग्रह में मनोवैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण-विवेचन किया है। आपकी भाषा-शैली भी शुद्ध व तर्कपूर्ण है।

देवेन्द्र मुनि के निबंध संग्रह 'चन्दन की सौरभ' साहित्यिक-निबंधों का संकलन है, जिसमें मानव-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर भावानुभूतिपूर्ण वैचारिक ढंग से लेखक ने निबंध लिखे हैं। 'भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण' में उन्होंने जैन दार्शनिक तथ्यों का सुन्दर आलेखन किया है, साथ में संस्कृत जैन कृष्ण-साहित्य का भी विशद् परिचय साहित्यिक शैली में दिया है। इसमें उन्होंने बौद्ध-दर्शन और वैशेषिक दर्शन के साथ जैन दर्शन की भी तुलना कर तीनों की विशेषताएं व्यक्त की है। देवेन्द्र मुनि दार्शनिक के साथ-साथ कथाकार-निबंधकार के रूप में प्रकाश में आ रहे हैं।

जीवनी, आत्मकथा व संस्मरण साहित्य :

आत्मकथा व संस्मरण-साहित्य को हम आधुनिक युग की विशेष देन कह सकते हैं। जब कि जीवनी इसके पहले भी लिखी जाती थी-भाषा का माध्यम चाहे कुछ भी हो। हिन्दी जैन साहित्य में जीवनी लिखने की परम्परा आधुनिक काल में सविशेष देखी जाती है। अपने गुरु के प्रति श्रद्धावश होकर लिखी गई जीवनी अपभ्रंश भाषा में पायी जाती है। पं० बनारसीदास जी की आत्मकथा अर्द्ध-कथानक प्राप्त होती है। आधुनिक काल में खड़ी बोली में लिखित जीवनियां उपलब्ध होती हैं। इनमें विशेषत: किसी आचार्य या मुनि की उनके शिष्य या श्रद्धालु श्रावक के द्वारा लिखी गई है। निम्नलिखित जीवनियां आलोच्य काल में प्राप्त होती हैं।

1. प्रभात पाकेट बुक्स–मेरठ।
2. प्रकाशक–जैन संस्कृति संशोधन मण्डल–वाराणसी।

(1) जगद्गुरु हीरविजय सूरी की जीवनी :

(आत्मानंद जैन ट्रस्ट सोसायटी-अम्बाला) मुगल सम्राट अकबर के समय में जैन धर्म व शासन की प्रतिष्ठा बढ़ानेवाले विद्वान लोकप्रिय जैनाचार्य की शशिभूषण शास्त्री ने भिन्न-भिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों के आधार पर से लिखी है। आत्मसाधना एवं श्रेय में तल्लीन आचार्य लोक-कल्याण एवं लोकोदय की उपेक्षा करते हैं, ऐसी सामान्य मान्यता को हीरविजय जी ने निर्भ्रान्त साबित कर दिखाया था।

(2) सच्चे साधु[1] :

जगत् पूज्य विजय धर्म सूरि महाराज की जीवनी अभयचन्द भगवानदास गांधी द्वारा प्रकाशित की गई है। इसमें विजय धर्म सूरि के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का, उनकी विद्वता, महानता आदि का सुन्दर साहित्यिक शैली में वर्णन किया गया है।

(3) श्री भूपेन्द्र सूरि :

जैन सम्प्रदाय के युवा कवि लेखक मुनि श्री विद्याविजय जी ने इसमें जैन धर्म व शासन के विद्वान मुनि श्री भूपेन्द्र सूरि की जीवनी गीतिका छन्द में अंकित की है। इसकी विशेषता यह है कि वाद्यों के साथ इसको गाया जा सकता है। जीवनी की भाषा सुन्दर और रोचक है। मानव मात्र के प्रति कल्याण की भावना व्यक्त होती है।

(4) मुनि श्री विद्यानन्द जी[2] :

लेखक संपादक जयप्रकाश वर्मा जी ने इसमें मुनि जी के जीवन के पावक प्रसंगों को निबंध-स्वरूप में वर्णित किया है। प्रारम्भ में परिचय देने के बाद जीवनीकार की महत्ता, विशेषता, धीर गंभीरता एवं लोक-कल्याण की भावना को उजागर किया है। भाषा अलंकार रहित होने पर भी रोचकता का पूरा निर्वाह किया गया है।

(5) आदर्श रत्न :

मुनि श्री रत्नविजय जी महाराज की जीवनी उनके शिष्य आचार्य देवगुप्त सूरि ने लिखी है। गुरु-शिष्य दोनों प्रारम्भ में श्वेताम्बर सम्प्रदाय की स्थानकवासी शाखा के साधु थे, बाद में दोनों ने मूर्तिपूजक शाखा में पुनः दीक्षा ग्रहण की थी। शिष्य लेखक को अपने गुरु के प्रति अत्यन्त श्रद्धा व प्रेम है, जो अनेक

1. प्रकाशक–अभयचन्द भगवानदास गांधी।
2. प्रभात पाकेट बुक्स–मेरठ।

जगह व्यक्त होता है। प्रारम्भ में कच्छ प्रदेश की विशेषता वर्णित करने के पश्चात् जीवनीकार के जीवन के छाटे-बड़े सभी प्रसंगों का, चमत्कार, सिद्धि, तपस्या आदि का वर्णन रोचक शैली में किया है।

(6) आचार्य श्री राजेन्द्र सूरि की जीवनी उनके विद्वान अनुयायी एवं हिन्दी जैन लेखक विद्यानन्द जी ने सुन्दर शैली में लिखी है। इसमें जीवनी को कलात्मक ढंग एवं प्रवाहपूर्ण शैली में प्रस्तुत किया गया है।

(7) जैनाचार्य विजयेन्द्र सूरि जी की जीवनी काशीनाथ सराक ने लिखी है, जिसमें जीवनीकार के जीवन की सभी महत्त्वपूर्ण घटनाओं का अच्छा उद्घाटन किया है।

इन सबके अतिरिक्त मुनियों की छोटी-मोटी जीवनियां अनेक लिखी गई हैं। किसी धार्मिक, सामाजिक महान जैन पुरुष-स्त्री की जीवनी कहीं प्राप्त होती नहीं है, यह एक आश्चर्य कहा जायेगा। संस्मरण और अभिनन्दन ग्रन्थ लिखे गये हैं; लेकिन जीवनी नहीं। जैनाचार्यों और मुनियों की जीवनी, जो उनके शिष्य या भक्त के द्वारा लिखी गई हैं, इस सम्बन्ध में एक सवाल यह पैदा होता है कि क्या इन सब जीवनियों को साहित्य के अन्तर्गत समाविष्ट कर सकते हैं? क्या जीवनी साहित्य के सभी तत्त्वों का निर्वाह इनमें हो पाया है? या ऐसी जीवनियों से हिन्दी जैन साहित्य को और जैन-समाज को कुछ उपलब्ध होता है? इनके प्रत्युत्तर में यही कहा जा सकता है कि चाहे शिष्य या भक्त के द्वारा लिखी गई जीवनी में श्रद्धा विशेष के कारण अहोभाव या प्रशंसा का स्वर कहीं-कहीं अधिक प्रस्फुटित होता हो, फिर भी इसकी सत्यता में पाठक को आशंका नहीं होती। दूसरा, चाहे सुन्दर साहित्यिक शैली में सभी जीवनियां न लिखित हों, तो भी हिन्दी जैन साहित्य के भण्डार की श्रीवृद्धि तो अवश्य होती है और समाज को—विशेषतः जैन समाज को—अपने धर्म की महान् व्यक्तियों का परिचय प्राप्त होता है। साथ ही उनके जीवन की महत्ता, उदात्तता से कुछ प्रेरणा भी मिलती है। अपने जीवन को भी ऐसी महत्त्वपूर्ण जीवनियों के पठन-पाठन से उदात्त एवं कर्त्तव्यशील बनाने की महत्त्वाकांक्षाएं भीतर ही भीतर जाने-अनजाने पनप उठती है। क्योंकि जीवनी और आत्मकथा भी ललित साहित्य की ही एक विधा होने से उनमें भी कलात्मकता एवं उपादेयता के अंश विद्यमान हो सकते हैं। जीवनी, संस्मरण और आत्मकथा के द्वारा मनुष्य की जिज्ञासा वृत्ति जाग्रत होकर तृप्त होने की ओर प्रवृत्त होती है। मनुष्य कुछ सीखना-जानना, प्राप्त करके अपने जीवन को भी उर्ध्वगामी बनाने की चाह रखता है। वैसे आत्मकथा की अपेक्षा जीवनी लिखना सरल है, क्योंकि

जीवनी में अन्य व्यक्तियों की विशेषता पर निकट रहकर प्रकाश डालना होता है, त्रुटियों को थोड़ा-बहुत नजर-अन्दाज भी किया जा सकता है। जबकि आत्मकथा में आप बीती को सम्पूर्ण सत्य एवं हार्दिकता के साथ जग-समक्ष रखना कुछ मुश्किल व निर्भयता की सहाय लेने की आवश्यकता रहती है। आत्मकथा के अभाव पर प्रकाश डालते हुए श्री नेमिचन्द्र जी लिखते हैं कि-"यही कारण है कि किसी भी साहित्य में आत्मकथाओं की संख्या और साहित्य की अपेक्षा कम होती है। प्रत्येक व्यक्ति में यह नैसर्गिक संकोच पाया जाता है कि वह अपने जीवन के पृष्ठ सर्वसाधारण के समक्ष खोलने में हिचकिचाता है, क्योंकि उन पृष्ठों के खुलने पर उसके समस्त जीवन के अच्छे या बुरे कार्य नग्न रूप धारण कर समस्त जनता के समक्ष उपस्थित हो जाते हैं और फिर होती है उनकी कटु आलोचना। यही कारण है कि संसार में बहुत कम विद्वान ऐसे हैं, जो उस आलोचना की परवाह न कर अपने जीवन की डायरी यथार्थ रूप में निर्भय और निधड़क हो प्रस्तुत कर सकें।[1]

हिन्दी जैन आत्मकथा साहित्य में श्री क्षुल्लक गणेश प्रसाद वर्णी की 'मेरी जीवन गाथा'[2] एवं श्रीअजित प्रसाद जैन की 'अज्ञात जीवन'[3] उपलब्ध है, जबकि जिन विजय मुनि की 'मेरी जीवन-प्रपंच कथा' का उल्लेख मिलता है। प्रथम उपलब्ध रचना है जबकि अन्य दो out of print होने से अनुपलब्ध है। वर्णी जी ने अपनी जीवन गाथा में निभर्यता से अपनी कमजोरियां, हठग्रह या जिनसे भेंट-मुलाकात हुई उनके सभी विषय में निर्भर विचार-प्रतीति रख दी है। जीवन की दार्शनिकता, जैन-धर्म की दार्शनिकता, एवं जैन समाज की सामाजिक, धार्मिक परिस्थिति का भी अच्छा चित्रण इसमें हुआ है। वर्णी जी ने यह आत्मकथा लिखकर जैन समाज की ही नहीं, अपितु हिन्दी साहित्य का भी उपकार किया है। यह इतनी रोचक शैली में पारावाहिकता के साथ लिखी गई है कि पाठक इसको पढ़ते समय नीरसता या ऊब न महसूस कर एक सुन्दर उपन्यास पढ़ने-का-सा आनंद ग्रहण अनुभव कर सकता है।

बाबू अजीतप्रसाद की आत्म कथा में उन्होंने अपने जीवन को समाज से अज्ञात नहीं रखा है। समाज में काफी मान-सम्मान प्राप्त होने पर भी अपने को अज्ञात रखना ही उन्होंने पसंद किया है। इसमें उनकी महानता का, नम्रता का ही दर्शन होता है। लेखक ही आत्म कथा में जैन धर्म एवं समाज के प्रति आदर की भावना लक्षित होती है।

1. डा॰ नेमिचन्द्र शास्त्री-हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन, पृ॰ 139.
2. प्रकाशक-वर्णी ग्रन्थमाला-पदेनी-काशी।
3. प्रकाशक-रायसाहब रामदयाल अग्रवाल-प्रयाग।

आत्मकथा के अतिरिक्त हिन्दी-जैन-साहित्य में संस्मरण का एक ग्रन्थ 'जैन जागरण के अग्रदूत' शीर्षक से[1] उपलब्ध होता है, जिसका संपादन किया है बाबू अयोध्या प्रसाद गोयलीय ने। इसमें जैन समाज के महान दार्शनिक, तत्वचिंतक, समाज सुधारक, दानवीर, बड़े-बड़े औद्योगिक-राष्ट्रीय पुरुष एवं साहित्यकार के विषय में संस्मरणात्मक परिचय दिया गया है। इसके फलस्वरूप कितनी ही अज्ञात प्रतिभाएँ एवं महान चरित्र हमारे सामने प्रकाश में आते हैं और उनके महान आदर्श चरित्रों के परिचय से पाठक प्रभावित हो प्रेरणा ग्रहण करता है। यह संस्मरणात्मक ग्रन्थ भिन्न-भिन्न लेखकों के द्वारा लिखा गया है, जिनमें प्रमुख हैं बाबू गोयलीय, कन्हैयालाल मिश्र, नाथूराम 'प्रेमी जी', कामताप्रसाद जैन, जैनेन्द्रकुमार, अजितप्रसाद जैन, गुलाबराय, कैलाशचन्द्र शास्त्री, और इन्दु कुमारी आदि। सभी लेखकों की भाषा-शैली में माधुर्य एवं धारावाहिता का गुण सर्वत्र विद्यमान है। सभी संस्मरणों में जैन समाज के इन महानुभावों की महानता के ख्याल से पाठक अभिभूत हो उठता है। चार विभागों में विभक्त इस ग्रन्थ में रोचकता का पूरा निर्वाह किया गया है।

जीवनी, आत्मकथा तथा संस्मरण के अतिरिक्त जैन साहित्य में अभिनंदन ग्रन्थ भी प्रकट हुए हैं, जिनसे अभिनंदित कर्ताओं के विषय में भिन्न-भिन्न लेखकों के संस्मरण, भेंट-मुलाकात प्रकाश डालते हैं तथा उनकी विशेषताएं, महानता एवं समाज व साहित्य की सेवा का परिचय पाठक को प्राप्त होता है। हिन्दी जैन साहित्य में विभिन्न निबंधों के संकलन अभिनंदन ग्रन्थों के नाम से प्रकाशित हुए हैं, वे हैं-(1) प्रेमी अभिनंदन ग्रन्थ (2) श्री वर्णी अभिनंदन ग्रन्थ (3) श्री पंडित चन्दाबाई अभिनंदन ग्रन्थ (4) हुकमचन्द अभिनंदन ग्रन्थ (5) आचार्य श्री शान्ति सागर ग्रन्थ एवं (6) श्री अगरचन्द नाहटा अभिनन्दन ग्रन्थ। इन ग्रन्थों से हिन्दी जैन साहित्य के साथ हिन्दी साहित्य का भी महती उपकार हुआ है। अभिनंदन ग्रन्थों के द्वारा उन कर्ताओं को सम्मान देते हुए उनकी साहित्यिक, सामाजिक और धार्मिक सेवाओं की महत्ता अभिव्यक्त होती है।

इस प्रकार हिन्दी जैन गद्य साहित्य का नाटक, निबंध, कथा-साहित्य, जीवन व आत्म कथा की विभिन्न विधाओं द्वारा दिन-प्रतिदिन काफी विकास हो रहा है। आज के वैज्ञानिक युग में मुद्रणयंत्र की सर्वोत्तम सुविधा के कारण अनेक पुस्तकें प्रकाशित होती रहती हैं, जिनका नामोल्लेख करना भी संभव नहीं हो पाता। दार्शनिक ग्रन्थ सम्प्रदाय के आचार्यों के द्वारा विशेषतः प्रकाशित होते

1. प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली।

हैं एवं उनके भाषण, व्याख्यानों को भी लिपिबद्ध कर श्रद्धाशील श्रावक-भक्त के द्वारा प्रकाशित किया जाता है। उसी प्रकार अनेक जीवनियां भी प्रकाश में आती हैं, पर सभी साहित्यिक एवं विचारात्मक ही हों ऐसा नहीं है। फिर भी प्रायः जीवनियों में जीवनीकार के आदर्श, गुण-महत्ता का वर्णन सच्चाई के साथ किया जाता है। निबन्धों की संख्या इतनी अत्यधिक है कि सभी रचनाओं का नामोल्लेख यहाँ संभव नहीं है। कथा साहित्य में पौराणिक, ऐतिहासिक आधार पर लिखी गई कथाओं की संख्या अधिक है, जबकि काल्पनिक कथाओं की प्रायः कमी है। उपन्यास की संख्या भी अन्य गद्य-विधाओं की अपेक्षा कम रही है, जिसकी कमी खलती है। जो हैं वे भी पौराणिक कथा वस्तु पर आधारित है। नूतन सामाजिक विषय वस्तु, अभिनव कल्पना एवं वर्तमान युग के पात्रों के द्वारा उपन्यास की रचना करके परोक्ष रूप से जैन दर्शन के किसी सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला गया होता तो अधिक श्रेयस्कर एवं आवकार्य होता। नवीन लेखकों को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। दूसरी बात यह भी उल्लेखनीय लगती है कि हिन्दी जैन साहित्यकारों में प्रायः जैन जाति के ही लेखकों की अभिरुचि विशेष रही है। इसके लिए शायद अपने धर्म एवं साहित्य के प्रति जैन लेखकों का विशेष आकर्षण एवं अन्य साहित्यकारों का हिन्दी जैन साहित्य के लिए अपेक्षित जैन दर्शन एवं प्राचीन साहित्य की अनभिज्ञता भी कारण रूप हो सकती है। हिन्दी साहित्य के अन्य लेखकों का ध्यान जैन पौराणिक कथा-साहित्य के लेखकों का या महान चरित्रों की ओर बहुत ही कम आकर्षित हुआ है, यह तथ्य है। (हिन्दी गद्य साहित्य की एक विशेषता यह भी स्पष्ट दीखती है कि ऐसा साहित्य-सृजन करने वाले मुनियों में दिगम्बर सम्प्रदाय के साधुओं का विशेष योगदान है, जिसके पीछे यह कारण भी हो सकता है कि प्रायः राजस्थान, उत्तर प्रदेश, एवं मध्य प्रदेश में इस सम्प्रदाय के साधुओं का वर्ग विशेष रूप से देखने में आता है और उनकी विहार भूमि या जन्म भूमि भी ये ही प्रान्त होने के कारण हिन्दी भाषा बोलचाल की और लेखन कार्य की रहती है। जबकि गुजरात या महाराष्ट्र में श्वेताम्बर संप्रदाय के साधुओं की संख्या विशेष है और उन्होंने अपना धार्मिक साहित्य गुजराती या अंग्रेजी भाषा में विशेष लिखा है।

इस प्रकार आलोच्य कालीन हिन्दी जैन साहित्य की विभिन्न विधाओं की कृतियों के संक्षिप्त परिचय पर से स्पष्ट प्रतीत होता है कि आज के युग में जैन-गद्य-साहित्य अपनी विविध विधाओं में विशाल परिमाण में उपलब्ध होता है और उसकी निरन्तर प्रगति होती रहती है। अस्तु।

चतुर्थ अध्याय

आधुनिक हिन्दी जैन काव्य : विवेचन

गत अध्याय में हमने आधुनिक युगीन हिन्दी-जैन साहित्य की उपलब्ध गद्य-पद्य रचनाओं की संक्षेप में चर्चा की थी। यहां हम केवल काव्य कृतियों का विवेचन करेंगे।

काव्य का महत्व :

आधुनिक युग, वैचारिकता व बौद्धिकता के प्रतीक गद्य से अभिहित है, यह सर्वथा मान्य है। क्योंकि आज के वैज्ञानिक युग में मस्तिष्क की चिंतनात्मक विचारधारा का व्यापक प्रचार-प्रसार जन-मानस में सरलता से गद्य के सफल माध्यम से ही सिद्ध हो सकता है, फिर भी पद्य का अपना नैसर्गिक महत्व उसकी लय-ताल बद्धता, मार्मिकता, रसात्मकता व संवेदनशीलता के कारण सदैव अक्षुण्ण रहेगा। आज के वैज्ञानिक युग में बौद्धिकता के विकास के साथ-साथ रागात्मक तत्वों का ह्रास होता जा रहा है और बौद्धिक जटिलता तर्कबद्धता एवं हार्दिक भावों की न्यूनता के कारण काव्य के रसात्मक सौन्दर्य का महत्व दिन-प्रतिदिन न्यून होता जा रहा है, ऐसा विद्वानों का विचार है। यदि यह आशंका सच हो तो भी अर्थशास्त्रीय दृष्टिकोण से यदि हम देखेंगे कि जिस वस्तु का जितना अभाव व अनुपलब्धि रहेगी, उतनी ही उसके मूल्य व महत्व में अभिवृद्धि होगी। इस नियमानुसार बौद्धिक युग की शुष्कता से पीड़ित मानवता को काव्य-उपवन की शीतल हरियाली अवश्य उल्लासित और आनंदित करेगी ही। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में यदि कहा जाये तो 'ज्यों-ज्यों सभ्यता बढ़ती जायेगी, त्यों-त्यों कवियों के लिए काम बढ़ता जायेगा। मनुष्य के हृदय की वृत्तियों से सीधा सम्बन्ध रखने वाले रूपों और व्यापारों को प्रत्यक्ष करने के लिए उसे बहुत-से पदों को हटाना पड़ेगा। इससे यह स्पष्ट है कि ज्यों-ज्यों हमारी वृत्तियों पर सभ्यता के नये-नये आवरण चढ़ते जायेंगे, त्यों-त्यों एक ओर कविता की आवश्यकता बढ़ती जायेगी, दूसरी ओर कवि-कर्म कठिन होता जायेगा।[1] अतः कविता का महत्व मानव-जीवन को आर्द्र व रसमय बनाये रखने के लिए भविष्य में भी अक्षुण्ण रहेगा।

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-चिंतामणि, भाग-1, 'कविता क्या है?', पृ० 144.

संस्कृत काव्य शास्त्र के अन्तर्गत 'काव्य' का अर्थ व्यापक अर्थ में प्रयुक्त होता है। 'काव्य' के अन्तर्गत ही दृश्य काव्य और उसके भेद तथा श्रव्य काव्य व उसके भेदोपभेद उपलब्ध होते हैं। दृश्य काव्य के भीतर रूपक व उपरूपक के भेद तथा श्रव्यकाव्य में पद्य तथा गद्य के विविध- रूप वर्गीकृत किये गये हैं। लेकिन आधुनिक युग में विशेषत: पाश्चात्य काव्य शास्त्र के प्रभाव से 'काव्य' के अन्तर्गत केवल पद्य (Poetry) का ही समायोजन किया गया है, क्योंकि नाटक की दृश्य-विधा को गद्य के साथ संनिहित किया गया है। पद्य और गद्य के अतिरिक्त दोनों के मिश्रित रूप में चम्पू काव्य को भी गिनाया जाता है। गद्य में उपन्यास, नाटक, कहानी, निबंध, रेखाचित्र, जीवनी व आत्मकथा ऐसे विविध उपभेद आधुनिक युग में प्राप्त होते हैं, जबकि काव्य के प्रमुख तीन भेद स्वीकृत हुए हैं—प्रबन्ध काव्य, मुक्तक काव्य और गीति काव्य'[1] अथवा प्रबन्ध व मुक्तक। प्रबंध के भीतर महाकाव्य और खण्ड काव्य ऐसे दो स्वरूप दृष्टिगत होते हैं, जबकि मुक्तक में पाठ्य और गेय ऐसे दो रूप मिलते हैं। यहां पौर्वात्य व पाश्चात्य काव्य शास्त्रकारों, विद्वान् समालोचकों, साहित्यकारों की काव्य सम्बंधी विचारधारा और परिभाषाएं उद्धृत करने की समीचीनता नहीं है। उसी प्रकार संस्कृत काव्य शास्त्र के विविध-सम्प्रदायों के आचार्य और पाश्चात्य काव्य शास्त्र के विवेचकों के द्वारा निर्धारित काव्य के तत्व, हेतु (प्रयोजन) गुण-दोष आदि की चर्चा भी यहां अनपेक्षित है। फिर भी यह बात सर्वकाल सम्मत रहेगी कि काव्य में चाहे किसी भी भाषा का या किसी भी युग वा देश का हो—भाव तत्त्व, विचार तत्त्व, कल्पना तत्त्व व शैली तत्त्व सप्रमाण रूप से संनिहित होने चाहिए, फिर प्राधान्य किस तत्त्व को प्रदान किया जाता है, वह कवि की भावभूमि, बौद्धिकता, चिन्तनशीलता व कल्पना की ऊर्वरता पर नि:शंक निर्भर किया जाता है।

काव्य के भेद :

काव्य के प्रबन्ध व मुक्तक के प्रमुख दो भेदों में (मूलत:) तत्त्वत: आंतरिक व बाह्य-भाव जगत और रूप जगत में अंतर परिलक्षित होता है। इस सम्बन्ध में भी हमारे प्राचीन आचार्यों ने महाकाव्य के लिए विविध आवश्यक तत्त्वों को निर्देशित करके खण्ड काव्य पर भी विचार किया है। एक ही साहित्य ने दो विभिन्न रूपों में आकार-प्रकार, शैली, पात्र, वस्तु, वर्णन, उद्देश्य आदि बहुत से दृष्टिकोणों से भिन्नता प्रेक्षणीय है। "प्रबन्ध काव्य में प्रारंभ से लेकर अंत तक दीर्घ कथा चलती रहती है। मुक्तक काव्य के छन्द एक दूसरे से वि

1. डा॰ गणपतिचन्द्र गुप्त-'साहित्यिक निबंध'-'कविता क्या है? निबंध', पृ॰ 62.

शृंखलित रहते हैं। गीतिकाव्य में संगीतात्मकता का समावेश होता है। अस्तु, रूप-आकार आदि की दृष्टि से प्रबन्ध, मुक्तक एवं गीति में परस्पर अन्तर है, किन्तु ये सभी पद्यबद्ध होते हैं–अत: रस यदि कविता की आत्मा है, तो पद्यबद्धता या छन्दोबद्धता उसका शरीर है, ध्वनि उसका रूप रंग है, अलंकार उसके आभूषण हैं, वक्रोक्ति उसकी वाणी का माधुर्य है और रीति उसके व्यवहार की कमनीयता है।"[1]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल मुक्तक व प्रबन्ध का अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखते हैं–"मुक्तक में प्रबन्ध के समान रस की धारा नहीं रहती, जिसमें कथा-प्रसंग की परिस्थिति में अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और हृदय में एक स्थायी भाव ग्रहण करता है। इसमें (मुक्तक) तो रस के ऐसे छींटे पड़ते हैं, जिनसे हृदयकलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है। यदि प्रबन्ध काव्य एक विस्तृत वनस्थली है, तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है। इसी से यह सभा-समाजों के लिए अधिक उपयुक्त होता है। उसमें उत्तरोत्तर अनेक दृश्यों द्वारा संगठित पूर्ण जीवन या उसके किसी पूर्ण अंग का प्रदर्शन नहीं होता, बल्कि कोई रमणीय खण्ड दृश्य इस प्रकार सामने ला दिया जाता है कि पाठक या श्रोता कुछ क्षणों के लिए मंत्र-मुग्ध सा हो जाता है।"[2] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इस कथन से स्पष्ट फलित होता है कि पूर्वावर सम्बन्ध रहित भाव या ऊर्मि के प्रवल प्रभाव के कारण मुक्तक का महत्व अल्पकालीन होते हुए भी रसात्मक होता है और विविध पात्र, प्रसंग व कथा या कथांश के कारण प्रबन्ध काव्य का प्रभाव तत्कालीन न होते हुए भी दीर्घकालीन होता है। क्योंकि 'तटिनी की भांति नाटक और प्रबन्ध काव्य अपने आदि और अन्त के बीच में कथानक की धारा लेकर बहते हैं।[3] जबकि मुक्तक में कथानक की पूर्वापरता या जीवन की किसी प्रमुख घटना या दृश्य का सदन्तर अभाव सा रहता है। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी जी ने भी 'साकेत' पर विचार करते हुए वस्तु, नेता और रस इन तीनों को ही प्रकारान्तर से प्रबन्ध काव्य के आधार तत्त्व माने हैं। जब मुक्तक की रसात्मकता के लिए इन तत्त्वों का महत्व नहीं है।

इस प्रकार प्रबंध और मुक्तक के प्रमुख-बाह्य और आंतरिक-अन्तर को देखने के अनन्तर संक्षेप में महाकाव्य, खण्ड काव्य और मुक्तक के सम्बन्ध में विचार करना अनुपयुक्त नहीं होगा।

1. डा० गणपतिचन्द्र गुप्त-'साहित्यिक निबंध'-कविता क्या है? निबंध, पृ० 62.
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 284-286.
3. डा० सरनाम सिंह शर्मा 'अरुण'-साहित्य, सिद्धान्त और समीक्षा, पृ० 43.

महाकाव्य :

महाकाव्य के विषय में सर्वप्रथम आचार्य भामह ने स्वरूप-निर्धारण किया था। संस्कृताचार्यों ने महाकाव्य के सम्बन्ध में गहराई से कृति, कृतिकार व समाज तीनों को सुसम्बंधित, सुगठित करके विचार किया है। आचार्य भामह के मतानुसार लम्बे कथानक वाला, महान चरित्रों पर आश्रित, नाटकीय पाँच सन्धियों से युक्त, उत्कृष्ट और अलंकृत शैली में लिखित तथा जीवन के विविध रूपों और कार्यों का वर्णन करने वाला, सर्गबद्ध, सुखान्त काव्य ही महाकाव्य है–

सर्गबद्ध महाकाव्यं, महत्तां च महच्चयत्।
अग्राम्य शब्दार्थ च सालंकार सदाश्रयम्॥
मन्त्र दूत प्रयाणजि नायकाम्युदेवं च यत्।
पंचभिः सन्धिमिः युक्त नातिवाच्येय वृद्धियत्॥

–काव्यालंकार-1, 10, 20.

प्राचीन काव्य शास्त्रकार दण्डी, विश्वनाथ, वामन, रुद्रट, मम्मट, हेमचन्द्राचार्य आदि ने महाकाव्य के विषय में विशद् विचार व नियम-उपनियम निर्धारित किये हैं, लेकिन यहां इन सबके विचारों को उद्धृत करने का उद्देश्य नहीं है। पौर्वात्य विद्वानों की भांति पाश्चात्य विद्वानों ने-विचारकों ने भी उत्कृष्ट सफल महाकाव्य के लिए आवश्यक लक्षणों को निश्चित किये हैं। 'हिन्दी साहित्य कोश' में महाकाव्य के विषय में लिखा गया है कि–"महाकाव्य छन्दों बद्ध कथानक साहित्य का वह रूप है, जिसमें क्षिप्र कथा-प्रवाह या अलंकृत वर्णन अथवा मनोवैज्ञानिक चित्रण से युक्त ऐसा सुनियोजित, सांगोपांग और जीवन्त लम्बा कथानक हो, जो रसात्मकता या प्रभावान्विति उत्पन्न करने में पूर्ण समर्थ हो सके, जिसमें यथार्थ, कल्पना या संभावना पर आधारित ऐसे चरित्र या चरित्रों के महत्वपूर्ण जीवनवृत्त का पूर्ण या आंशिक रूप में वर्णन हो, जो किसी युग के सामाजिक जीवन का किसी न किसी रूप में प्रतिनिधित्व कर सके, जिसमें किसी महत् प्रेरणा से अनुप्राणित होकर किसी महदुद्देश्य की सिद्धि के लिए किसी महत्वपूर्ण गंभीर अथवा रहस्यमयी और आश्चर्योत्पादक घटना या घटनाओं का आश्रय लेकर संश्लिष्ट और समन्वित रूप से जाति-विशेष या युग-विशेष के समग्र जीवन के विविध रूपों, पक्षों और मानसिक अवस्थाओं और कार्यों का वर्णन और उद्घाटन किया गया हो और जिसकी शैली इतनी गरिमामयी और उदात्त हो कि युग-युगान्तर तक महाकाव्य को जीवित रहने की शक्ति प्रदान कर सके।"[1] इसके अनन्तर मोटे तौर पर पौर्वात्य और पाश्चात्य

1. हिन्दी साहित्य कोश, पृ॰ 79.

साहित्यशास्त्रियों की महाकाव्य विषयक विशेषताओं को संमिश्रित रूप से निम्नलिखित रूप से शब्दांकित किया जा सकता है–सफल महाकाव्य के लिए–

1. महान उद्देश्य, महान प्रेरणा और महान काव्य-प्रतिभा।
2. गुरुत्व, गांभीर्य और महत्व।
3. महान कार्यों और युग जीवन का सम्पूर्ण चित्रण।
4. अन्विति युक्त, सुसंबद्ध, सुसंगठित जीवन्त कथानक।
5. महान चरितवाला नायक तथा अन्य महत् पात्र।
6. उदात्त शैली, अलंकृत भाषा और गरिमामयी अभिव्यक्ति।
7. तीव्र प्रभावान्वित और गंभीर रस-व्यंजना।
8. अनवरुद्ध जीवनी-शक्ति और सशक्त प्राणवान।[1]

आधुनिक युग में महाकाव्य को इस प्रकार परिभाषित किया जाता है–महाकाव्य मर्मस्पर्शी घटनाओं पर आधारित एक महान कवि की ऐसी छन्दोबद्ध कृति है, जिसमें मानव जीवन की किसी ज्वलन्त समस्याओं का व्यापक प्रतिपादन, किसी महान उद्देश्य की पूर्ति या जातीय संस्कृति के महाप्रवाह उद्भावन, उदात्त वर्णन शैली, व्यंजक भाषा, पूर्ण रसात्मकता और उच्च कोटि के शिल्पविधान के द्वारा किया जाता है और जिसका नायक किसी भी लिंग, जाति या वंश का होकर भी अपने गुणों से कवि के आदर्शों को मूर्तिमान करनेवाला होता है[2]–

इस प्रकार महाकाव्य के प्राचीन मानदण्ड के आधार पर उसके प्रमुख तत्त्वों को देखते हुए सहज ही प्रतिपाद्य हो सकता है कि आधुनिक काल में इन्हीं नियमों के आधार पर महाकाव्य प्रायः नहीं लिखे जाते। आज युग-परिवर्तन के साथ आधुनिक विचारधारा में भी काफी परिवर्तन आ गये हैं। महान जीवन्त कथावस्तु या महान नायक के सन्दर्भ में नवीन युग का प्रभाव दृष्टिगत होता है क्योंकि नूतन परिस्थितियों के सन्दर्भ में कथावस्तु, नायक, रस, वर्णन, भाषाशैली व छन्द-सर्गबद्धता आदि में नये आयाम व आकार सोच और स्वीकृत किये जाते हैं। फिर भी मूलतः महाकाव्य अवश्य ही जीवन का महाकाव्य होने से उसमें उदात्तता व गरिमा का संनियोजन होना चाहिए। "निश्चित रूप से महाकाव्य को महान काव्य भी होना चाहिए। तात्पर्य यह कि महाकाव्य के परंपरागत लक्षणों से युक्त होकर भी यदि किसी कृति में महान काव्य के गुण

1. राजेन्द्र शर्मा-समीक्षा के मानदण्ड, पृ॰ 58.
2. डा॰ श्यामनंदन किशोर-हिन्दी महाकाव्य का शिल्प विधान, पृ॰ 60.

न आये तो वह महाकाव्य नहीं कहा जा सकता। ऐसे तथाकथित महाकाव्य आये दिन कितने ही रचे जा रहे हैं।"[1] पौर्वात्य व पाश्चात्य प्राचीन विद्वानों के समान हिन्दी साहित्य के सुधी विवेचकों और विद्वानों ने भी महाकाव्य के सम्बंध में मौलिक सूझ-बूझ के साथ विशद् विचार किये हैं।

खण्ड काव्य :

खण्ड काव्य वैसे प्रबन्ध का ही भेद होने से महाकाव्य का लघु प्रतिरूप होता है। फिर भी महाकाव्य के लिए विस्तृत कथावस्तु, अनेक रस, विविध पात्र आदि की मूलतः आवश्यकता रहती है, वह खण्ड काव्य के लिए अपेक्षित ही होनी चाहिए, ऐसा नहीं। खण्ड काव्य में जीवन के विविध रूप, घटनाएं, प्रसंगों की तुलना में एकाध मार्मिक हृदयस्पर्शी घटना का, एक-दो चरित्रों के साथ रसपूर्ण चित्रण होना अत्यन्त आवश्यक है। खण्ड काव्य में जीवन के किसी एक पहलू की झांकी रहती है। मर्मस्पर्शी घटना या कथांश का चयन कर रचना कौशल, प्रबद्ध-पटुता, सहृदयता का समन्वय पाठकों की सुषुप्त भावनाओं को सजग कर रस प्राप्ति करने में सफल हो सकता है। खण्ड काव्य महाकाव्य से आकार-प्रकार में लघु होने के साथ ही भावभूमि भी उतनी व्यापक-वैविध्य मूलक और संश्लेषणात्मक नहीं होती। आचार्य विश्वनाथ के मतानुसार, "खण्डकाव्य भवेत् काव्यस्येक देशानुसारिय।' अर्थात् महाकाव्य में राष्ट्र की सांस्कृतिक चेतना के अनेक पक्षों और समसामायिक जीवन की विविध आकांक्षाओं में व्यापक समन्वय का प्रयत्न रहता है। महा काव्य की तरह यह जीवन का विशाल चित्रपट प्रस्तुत करने की चेष्टा नहीं रखता है। यह कार्य केवल एक प्रधान घटना को प्रस्तुत करके ही संपन्न किया जाता है। इसमें न सन्धियों का संनिवेश होता है, न अनेक छन्दों का प्रयोग। इसका वृत्त ऐतिहासिक भी हो सकता है या काल्पनिक भी। उसी प्रकार इसका नायक ख्यात व्यक्ति भी हो सकता है या सामान्य जन भी।"[2]

मुक्तक :

मुक्तक काव्य की वह छोटी पद्यबद्ध रचना है जिसमें कथा प्रसंग, नायक, रस, वर्णन आदि में से किसी की आवश्यकता न होकर हृदय की एक भावोर्मि का ही लयताल-बद्ध रसात्मक वर्णन हीता है, जिसको सुनकर या पढ़कर पाठक तुरन्त ही प्रभावित हो जाता है। "मुक्तक वह छोटी रचना है जिसमें किसी एक ही मनःस्थिति, भाव या एक ही दृश्य की योग्यता हो। इसमें अनेक

1. डा॰ श्यामनंदन किशोर-आधुनिक महाकाव्यों का शिल्प विधान, पृ॰ 60.
2. डा॰ विश्वनाथ प्रसाद-कला एवं साहित्य, प्रवृत्ति और परंपरा, पृ॰ 74.

घटनाओं, परिस्थितियों या दृश्यों की योजना नहीं होती। इसमें कवि स्वयं पात्र के पद पर आसीन रहता है। और उसकी मनः स्थिति ही काव्य का प्रधान विवेच्य बन जाती है। प्रत्येक मुक्तक अपनी स्वतंत्र सत्ता रखता है, यह पूर्वापर क्रम से मुक्त रहता है, यही इसके नाम की साथर्कता है।[1] मुक्तक नामानुसार अपने आप में मुक्त रचना होती है, किसी भी प्रसंग-कथा या दृश्य के पूर्वापर सम्बन्ध से इसका कोई सरोकार नहीं होता। हां, इसमें भावों की तीव्रता व अभिव्यक्ति की मार्मिकता अवश्य प्रेक्षणीय होनी चाहिए, अन्यथा कवि के भावजगत के साथ पाठक का मानसिक तादात्म्य स्थापित सरलता से न होने पर रसानुभाव में क्षति पहुंचाती है। "यद्यपि मुक्तक के दो वर्ग पाठ्य या विषय-प्रधान मुक्तक और गेय या विषयी प्रधान मुक्तक माने जाते हैं, किन्तु अब पाठ्य मुक्तकों को ही मुक्तक और विषयी प्रधान या भावात्मक मुक्तकों को 'प्रगीत' या 'गीति' कहा जाता है।"[2] अतः स्पष्ट फलित होता है कि मुक्तक के लिए भावविह्वलता, सांकेतिकता और विदग्घता के साथ हृदय की स्वानुभूतिका उन्मुक्त वर्णन अपेक्षित रहता है। मुक्तक में एक विचार, भाव, पल, बीज मात्र का रहना यथेष्ट है, जो पाठक के चित्त को झकझोर कर रसमय आनंद की लहर का स्पर्श करा दे। प्रबन्धकार भाव जगत के साथ समाज का दिग्दर्शन करता-कराता है जबकि मुक्तक कार सामान्य सांसारिकता के ऊपर या असंपृक्त रहकर भाव-गगन में विहार करता हुआ अन्र्तवृत्तियों को रोचकता व लयबद्धता से अभिव्यक्त करता है।

काव्य के विविध रूपों की चर्चा के उपरान्त अब हम यहां आधुनिक-हिन्दी-जैन-साहित्य में काव्य विधा का अनुशीलन करेंगे और देखेंगे कि उपर्युक्त रूपों का जैन काव्यों में किस प्रकार विनियोजन हुआ है। सर्वप्रथम जैन महाकाव्यों की चर्चा अभीप्सित रहेगी। आधुनिक-हिन्दी-जैन-साहित्य अपनी विविध विधाओं में प्रगति कर रहा है। इस युग में प्राचीन और मध्यकाल की भांति पद्य की ही रचनाएं उपलब्ध न होकर गद्य की भी अनेकानेक कृतियां प्राप्त होती हैं, बल्कि यह कहना समुचित-युक्ति संगत-होगा कि इस गद्य युग में पद्य की रचनाएं अपेक्षाकृत कम प्राप्त होती है और गद्य भिन्न-भिन्न धाराओं में प्रवाहित होकर अपने को पुष्ट कर रहा है। पद्य में प्रबन्ध की रचनाएं प्राप्त तो होती हैं लेकिन इतने विशाल साहित्य के सन्दर्भ में उनकी संख्या संतोषप्रद न कही जायेगी, वैसे

1. डा॰ विश्वनाथ प्रसाद-कला एवं साहित्य, प्रवृत्ति और परंपरा, पृ॰ 74.
2. आ॰ विश्वनाथ प्रसाद-कला एवं साहित्य प्रवृत्ति और परंपरा, पृ॰ 88, कविता क्या है? अध्याय-3.

तथाकथित प्रबंधकाव्य इस युग में काफी लिखे गये हैं, लेकिन सफल और उत्कृष्ट प्रबन्ध काव्य की संख्या मर्यादित है। आधुनिक युग की व्यस्तता एवं यांत्रिक, गतिशीलता के कारण संपूर्ण जीवन क्रम की कलात्मक अभिव्यक्ति की संभावना कम ही है। आधुनिक युग में केवल तीन महाकाव्य ही उपलब्ध होते हैं, जिनमें एक 'सुधेश' रचित 'परम ज्योति महावीर' का तो केवल उल्लेख ही प्राप्त होता है। अन्य दो में एक यशस्वी महाकवि अनूप शर्मा का 'वर्द्धमान' है तथा दूसरा कविवर मूलदास नीमावत का 'वीरायण' महाकाव्य है।

वर्द्धमान : ('मूर्त्ति देवी पुरस्कार' से पुरस्कृत महाकाव्य)

इस महाकाव्य की रचना अनूप जी ने सन् 1951 ईस्वी में की थी। जो अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है तथा जिसका गौरवपूर्ण स्थान न केवल हिन्दी-जैन-साहित्य में ही है, बल्कि समस्त हिन्दी-महाकाव्य संसार में भी है।

कथा वस्तु :

महाकवि हरिऔध जी के 'प्रिय-प्रवास' महाकाव्य की शैली पर रचित इस महाकाव्य की कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, रस-वर्णन दर्शनादि को देखने की चेष्टा करेंगे। सर्वप्रथम कथा वस्तु और उसकी न्यूनता-विशेषता देखी जायेगी—क्योंकि इसी की नींव पर महाकाव्य का प्रसाद अवलंबित और सुशोभित होता है। सत्रह सर्गों में विभक्त इस काव्य में भगवान महावीर के पूर्वजन्मों, जन्म से लेकर केवल ज्ञान की प्राप्ति के बाद सम्प्रदाय के निर्माण तक पूरे जीवन को कवि ने गूम्फित किया है। हां, यह बात इसमें अवश्य है कि कथा वस्तु का सूत्र-तंतु इतना सूक्ष्म है कि वह वर्णनों की जाल में फंस जाता है या उलझा रहता है और पाठक उस डोर को आसानी से पकड़कर महाकाव्य के चरम लक्ष्य रूप रस प्राप्ति कठिनता से कर पाता है।

प्रथम सर्ग में कवि संस्कृत परिपाटी अनुसार कथावस्तु-सूचन, वंदना न कर देश-गौरव-गान करते हैं। भारत भूमि की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कवि ने अपनी उत्कट देश-भक्ति का परिचय दिया है। कुण्डनपुर की धरती जो महाकाव्य के उदात्त चरित नायक के जन्म के कारण पवित्र व धन्य बन गई है, उसकी महिमा वर्णित करते हुए, समग्र रूप से भारत वर्ष का गौरवगान कवि गा उठते हैं—

समुच्च आदर्श विधायिनी अहो।
प्रसिद्ध है भारत सर्व विश्व में।।
यहां महाभंग मयी प्रभा लिये।
सुधर्म साम्राज्य सदैव सोहता।।

जहां मही का दृढ़ मेरु दंड-सा।
समुच्च प्रालेय, गिरीन्द्र राजता॥
महीन्द्र कैलास विशाल मुण्ड-सा।
किरीट-सा मेरु विराजता जहां॥

बाद में क्षत्रिय कुंड की शोभा, महिमा, वहां के राजा सिद्धार्थ की महत्ता, उदारता, वैभव, दानशीलता, विद्वतादि का सुन्दर आलंकारिक वर्णन करते हुए वहां के निवासियों की उदारता एवं महानता का कवि ने अत्यन्त रोचक वर्णन किया है।

दूसरे सर्ग में त्रिकालदेव के रूप सौन्दर्य का वर्णन जो प्रथम अध्याय में भी आता है—राजा सिद्धार्थ द्वारा करवाते हैं। प्रथम सर्ग में कवि एक-एक अंग को लेकर नख-शिख वर्णन करते हैं, जबकि दूसरे में राजा सिद्धार्थ रात्रि के समय महल में आगमन में बाद त्रिशला के सौन्दर्य को देख मंत्र-मुग्ध होकर नख-शिख वर्णनकर कामदेव की महत्ता स्वीकारते हैं। यह वर्णन उत्कृष्ट एव रस युक्त भी है, कवि की वाणी एवं भाव खिल उठते हैं, अलंकार भी स्वत: उपस्थित हो जाते हैं इसमें आशंका नहीं, लेकिन दोनों सर्गों के नख-शिख वर्णन में नितान्त समानता रहने से अधिक विस्तार एवं पुनरावृत्ति की नीरसता आ जाती है। इससे भी महत्व की बात इस नख-शिख वर्णन में यह है कि त्रिशला देवी का यह सौन्दर्य वर्णन युक्ति-संगत भी नहीं प्रतीत होता। क्योंकि एक तो वे भावि तीर्थंकर की जननी होने से उनकी भव्य, शान्त, पवित्र, वात्सल्यपूर्ण मातृ-स्वरूप मूर्ति की प्रत्येक जैनी के दिल में प्रतिष्ठा होने से उनके हृदय को थोड़ा चुभता है। दूसरी बात यह है कि त्रिशला दूसरे बच्चे की मां बननेवाली है। इस स्थिति में ऐसे उत्तेजक उन्मुक्त देह-सौन्दर्य का वर्णन कहां तक उचित व प्रासंगिक रहता है वह भी एक सवाल है। बहुत-से विद्वान आलोचकों ने इस श्रृंगार वर्णन का घोर विरोध किया है और उसको अप्रतीतिकर व भद्दा-सा बताकर कवि के श्रृंगार-रस-वर्णन की भर्त्सना की है। इसके बचाव में यह कहा जा सकता है कि नायिका के अभाव में कवि को रानी त्रिशला के देह सौन्दर्य का प्रेम, दाम्पत्य-जीवन और माधुर्य का वर्णन कर श्रृंगार-रस की पूर्ति करने को बाध्य होना पड़ा है और राजा सिद्धार्थ की यौवनसभर रानी के रूप में त्रिशला का वर्णन किया गया है, न कि भगवान महावीर की माता के दृष्टि बिन्दु से। यहां सर्गबद्ध कथा-सार देना प्रासंगिक या महत्वपूर्ण न समझते हुए केवल इतना ही उचित प्रतीत होता है कि 'वर्द्धमान' महाकाव्य में कवि अनूप शर्मा ने भगवान महावीर के ब्रह्मचर्यावस्था में ही दीक्षित होने के पश्चात्

तपस्या, परिषहों (कष्टों) केवल ज्ञान और 11 प्रमुख गणधरों के साथ दार्शनिक व व्यावहारिक उपदेश देने की पूरी कथा गूंफित कर दी है। कथा का सूत्र कहीं-कहीं वर्णनों के घटाटोप के कारण हाथ से छूटने की तैयारी में होने पर कवि कुशलता से संभाल लेते हैं। कथा की एक और विशेषता यह है कि कवि ने इसमें श्वेताम्बर व दिगम्बर आचार्यों की कितनी ही बातों में सामंजस्य स्थापित करने की कोशिश की है। वर्द्धमान का व्याह उन्होंने शुद्ध श्वेताम्बर मतवालों की अनुमोदना के मुताबिक न कर स्वप्न में करवाया है। फिर भी श्वेताम्बर मान्यता के मुताबिक यशोदा नामक राजा समरवीर की पुत्री के साथ करवाया है। इस प्रकार महावीर के सम्पूर्ण जीवन क्रम को लेकर लिखा गया 'वर्द्धमान' में कथा का सूत्र दृढ़ न होने पर भी कहीं छूटता नहीं है। इसीलिए इसे 'चरितात्मक महाकाव्यों की क्षेणी में इस कृति की गणना करने में अधिक संकोच की बात नहीं दिखाई पड़ती।[1] महावीर चरित की प्रसिद्ध कथा वस्तु ग्रहण की गई होने से केवल उसकी विशेषताएं व कमियों पर ही प्रकाश डालने की विचारणा करने की कोशिश करेंगे।

कथावस्तु का विवेचन :

'वर्द्धमान' के सम्बन्ध में एक मुख्य बात यह विचारणीय है कि यह ग्रन्थ न तो इतिहास है, न जीवनी। यदि आप भगवान महावीर की जीवन सम्बंधी समस्त घटनाओं का और तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक अथवा धार्मिक परिस्थितियों का क्रमवार इतिहास इस ग्रन्थ में खोजना चाहेंगे तो निराश होना पड़ेगा। यह तो एक महाकाव्य है, जिसमें कवि ने भगवान के जीवन और व्यक्तित्व को आधार फलक बना कर कल्पना की तुलिका चलाई है। यहाँ इतिहास तो केवल डोर की तरह है, जो कल्पना की पतंग को भावनाओं के आकाश में खुली छूट देने के लिए प्रयुक्त है। उड़ान का कौशल देखने के लिए दर्शक की दृष्टि पतंग पर रहती है, डोर पर नहीं। हां, पतंग के खिलाड़ी को उतनी डोर अवश्य संभालनी पड़ती है, जितनी उड़ाने के लिए आवश्यक है।[2]

महाकाव्य की कथा वस्तु ऐतिहासिक या प्रसिद्ध कथा या इतिहास प्रसिद्ध चरित्र से सम्बंधित होनी चाहिए, इस नियम का 'वर्द्धमान' पूर्णतः पालन करता है, क्योंकि इसकी कथा वस्तु विश्वबन्ध प्रसिद्ध चरित-नायक प्रभु महावीर के जीवन व दर्शन की यशोगाथा से रेखांकित है। कवि ने वर्द्धमान के जन्म एवं जन्म पूर्व की परिस्थिति, गर्भ स्थिति एवं पूर्व जन्मों, बाल्यकाल, यौवन काल

---

1. डा० वीणा शर्मा-आधुनिक हिन्दी महाकाव्य, पृ० 45.
2. लक्ष्मीचन्द्र जैन : 'वर्द्धमान', आमुख, पृ० 2.

एवं तीर्थंकरत्व आदि विविध जीवन-पहलुओं का विशाल गौरवपूर्ण चित्र हमारे सामने खींचा है। महाकाव्य की गरिमा के लिए सर्वथा उपयुक्त धीरोदात्त नायक के जीवन की घटनाओं का कवि ने सुरेख व स्पष्ट उद्‌घाटन किया है। कवि ने कथावस्तु में विविध वस्तु-वर्णन को भी यथेष्ट स्थान दिया है, बल्कि कहीं-कहीं तो वर्णन के प्राचुर्य में कथा का प्रवाह मंद-सा हो जाता है। इसमें नख-शिख वर्णन, प्रभात, उषा-वेला, सन्ध्या, प्रदोष, रात्रि, सूर्य एवं चन्द्र की विविध कलाओं, नदी, जंगल, पर्वत, नगर, विविध ऋतुओं, पक्षी एवं पुष्पों का, प्रकृति का विशद् वर्णन कर प्राचीन परिपाटी का भी कवि ने भलीभांति निर्वाह किया है।

'वर्द्धमान' की कथा-विषयक विशेषता के सम्बंध में डा॰ रामगोपाल सिंह के विचार हैं कि—'वर्द्धमान महावीर स्वामी के जीवन पर आधारित प्रबन्ध काव्य है, जिसमें अहिंसा के प्रतिपादन में आज के युग की समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।[1] महाकाव्य के लिए अपेक्षित आधिकारिक कथा वस्तु के साथ प्रासंगिक कथा वस्तु को महाकाव्य की सफलता का एक अंग माना जाता है, क्योंकि प्रासंगिक कथाएं मूल कथा में तीव्रता एवं गति पैदा करती हैं। 'वर्द्धमान' में महावीर की मूलकथा के साथ अवान्तर कथा के रूप में चन्दना-चरित, कामदेव-सुरेन्द्र-संवाद, कामदेव द्वारा वर्द्धमान की परीक्षा, गोशालक कथा, चण्डकौशिक-प्रसंग आदि मर्मस्पर्शी अवान्तर कथाएं वर्णित हैं, जिनसे सौन्दर्य की सृष्टि करने में कवि को सफलता प्राप्त हुई है। फिर भी एक बात अवश्य ध्यान खींचती है कि 17 सर्गों में विभक्त इस बृहत् महाकाव्य में कथा वस्तु के लिए आवश्यक दृश्य विधानों की कमी है, लेकिन घटना-विधान एवं परिस्थिति निर्माण की बहुलता है। घटनाओं का क्रम मंथर गति से चलता है, अतः पाठक से सामने एक निश्चित क्रमानुसार ही घटना चलती है। 'कवि ने इस प्रकार का कोई दृश्य आयोजित नहीं किया, जो मानव की रागात्मिका, हृत्तंत्री को सहज रूप में झंकृत कर सके।[2]

कवि अनूप जी ने मूल कथा वस्तु में विशेष परिवर्तन नहीं किया है, हां, एकाध जगह उन्होंने अपनी उदार कल्पना के द्वारा दो सम्प्रदायों की विचारधारा में सामंजस्य स्थापित करने का अवश्य प्रयास किया है। कवि ने चातुरी से स्वप्न में भगवान का 'मुक्ति देवी' के साथ व्याह सुसंपन्न करवाया है। जिसका हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं। दूसरी समन्वयात्मक घटना यह है कि दिगम्बरों में

1. डा॰ रामगोपाल सिंह चौहान-आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृ॰ 118.
2. डा॰ नेमिचन्द्र शास्त्री-हिंदी जैन साहित्य परिशीलन, भाग-2, पृ॰ 21.

मान्यता है कि दीक्षा के अनन्तर प्रभु ने दिगम्बरावस्था में ही विहार किया था और श्वेताम्बरों में यह विश्वास है कि प्रभु ने श्वेतास्त्र-वेशभूषा-धारण कर विचरण किया था। कवि ने चातुर्य से समन्वय करते हुए बताया कि प्रारम्भ में प्रभु ने देव दूष्य धारण किया था, लेकिन एक पल के लिए जनपद वासियों को आंखें बंद करने का आदेश देकर प्रभु त्वरित गति से आगे निकल पड़े और देव दूष्य वहीं पड़ा रहा–

अहो अलंकार विहाय रत्न के, अनूप-रत्नत्रय-भूषितांग हो।
तजे हुए अम्बर अंग-अंग से, दिगम्बराकार विकार शून्य हो॥
समीप ही जो पट देवदूष्य है, नितान्त श्वेताम्बर-सा बना रहा।
अग्रन्थ निर्द्वन्द्व महान संयमी, बने हुए हो निज धर्म के ध्यजी॥[1]

इसी प्रकार कवि ने इस महाकाव्य की कथा वस्तु में केवल वर्द्धमान के विवाह सम्बंधी दो विभिन्न मतों का सामंजस्य ही नहीं किया है, अपितु कथा वस्तु में ब्राह्मण धर्म एवं जैन धर्म की विचारधारा का भी मेल बिठाना चाहा है, क्योंकि कवि स्वयं ब्राह्मण है। वैसे कवि ने जैन दर्शन की तात्विक चर्चा यहां नहीं की है। इसमें भगवान के दिव्य जीवन की झांकी तो मिलती है, लेकिन महावीर प्रभु द्वारा प्रतिपादित दर्शन और तत्त्व विवेचन जो विश्व के दार्शनिक इतिहास में मौलिक और अद्वितीय है, वह यहां कवि के द्वारा अछूता रह गया है। इसके दो कारण हो सकते हैं, प्रथम तो कवि 'वर्द्धमान' को सर्व साधारण के लिए भी पाठ्य बनाना चाहते हैं और फलस्वरूप महावीर के जीवनोपयोगी उपदेश को ही कवि ने इसमें मुख्यतः स्थान दिया है। इस ओर इंगित करते हुए लिखा है–

"जिनेन्द्र बोले वह धर्म वाक्य जो कि सर्व साधारण बोधगम्य हो, गृहस्थ के, साधु-समाज के सभी, बता चले धर्म तथैव कर्म भी।"[2]

महावीर की उपदेश-शैली, वाणी माधुर्य एवं लोक भाषा की यही विशेषता है कि आचार-विचार, व्यवहार, अहिंसा, दया-प्रेम, मानवता, कर्म सम्बन्धी उनका उपदेश सर्व-साधारण-जनता के लिए बोध गम्य हो सकता है।

दूसरा कारण यह है कि महाकाव्य में अधिक दार्शनिक चर्चा के कारण नीरसता का आ जाना सहज संभाव्य है। एक तो महावीर के जीवन वृत्त में रसिलता, शृंगार या हार्दिक अनुभूति को रोमांचित करने वाली घटनाओं का प्रमाण अत्यन्त अल्प है, जिस पर ऐसी दार्शनिक चर्चा सविशेष आती तो सरसता का क्षेत्र और भी संकुचित हो जाता।

---

1. अनुप शर्मा-वर्द्धमान, पृ॰ 432, 119, 120.
2. अनुप शर्मा-वर्द्धमान, पृ॰ 562, 149.

कवि ने कथानक के प्रवाह में जहां वैदिक तत्त्वों की यथार्थ विवेचना की ओर संकेत किया है, वहाँ कुछ बातें ऐसी भी है, जो जैन दर्शन की मौलिक मान्यताओं से मेल नहीं खातीं–जैसे अवतारवाद, पराजयता, ईश्वर, मृत्यु आदि के विषय में कवि ने महावीर के मुख से जो कहलवाया है, इसके सम्बंध में कवि के मन में भी ठीक से सामंजस्य नहीं बैठता है ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है, जैसे–'लोकनाथ की बिना अनुज्ञा डसती न मृत्यु हैं।' (पृ० 330-61) 'चतुर्दिशा ईश्वर से विनिर्मिता-विरोध माना यह सृष्टि धन्य है।' (पृ० 365-83) जैन दर्शन में ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं किया जाता। स्वयं मनुष्य और उसके कर्म ही महत्वपूर्ण हैं। विश्व किसी सत्ता के द्वारा नहीं, अपितु वैज्ञानिक क्रमानुसार अनादिकाल से चलता आया है। इसी प्रकार अवतारवाद एवं पराश्रेयता के विचार भी जैन परम्परा से विरुद्ध है, यथा–

मनुष्य जो है पहचानते मुझे वही प्रशंसा करते सप्रेम हैं।
समस्त संसार हितार्थ में सदा, स्व जन्म लेता करता सुकर्म हैं।

(पृ० 296-46)

यहां गीता के भगवान श्रीकृष्ण का शत्रु-विनाश और सन्तों की रक्षा हेतु बार-बार जन्म लेने के उपदेश का कवि के मानस पर स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। उसी प्रकार महावीर की निम्नोक्त स्वप्रशस्ति भी सुसंगत नहीं है–

'स्व-मृत्यु संध्या तक यों चले चलो,
न दूर यात्रा-श्रम हो मुझे भजो।'

इसीलिए तो ग्रन्थ के 'आमुख' में विद्वान संपादक लक्ष्मीचन्द्र जैन को लिखना पड़ा, 'वर्द्धमान' के पाठक यदि ध्यान से ग्रन्थ का अध्ययन करेंगे तो पायेंगे कि कवि ने दिगम्बर और श्वेताम्बर आम्नाय में ही नहीं, जैन धर्म एवं ब्राह्मण धर्म में सामंजस्य बैठाने का प्रयत्न किया है। कवि स्वयं ब्राह्मण है, उसने अपनी ब्राह्मणत्व की मान्यताओं को भी इस काव्य में लाने का प्रयत्न किया है।[1]

इसी प्रकार बालक वर्द्धमान की परीक्षा लेने के लिए आये देव सर्प का रूप धारण करते हैं और बालक उसको पकड़ कर नाचते हैं। यहां कृष्ण के कालीय-दमन का चित्र कवि के मानस पर प्रभाव डालता रहता है। सर्प की भयंकरता व उसके फलस्वरूप विक्षुव्यता का भी कवि ने वैसा ही वर्णन किया है–

प्रचण्ड दावानल की शिखा यथा,
प्रलम्ब है धूम नगाधिराज-सा।

---

1. लक्ष्मीचन्द्र जैन, आमुख, पृ० 17.

अवश्य कोई बन-बीज दु:सहा
महान आपत्ति उपस्थिता हुई।[1]

कथावस्तु में एक दो जगह कवि के हाथ से इतिहास का सर्व सम्मत डोर छूट गया है, जैसे-रात्रि का चतुर्याम चल रहा है और रानी त्रिशला को स्वप्न देखने का क्षण जग रहा है, उस समय आधुनिक वातावरण से सुसंगत कल्पना की है कि तीन का घण्टा बजनेवाला है और नीलाभ में स्वप्नों की बोली छूटनेवाली है-'प्रभात घण्टा अब तीन का बजा, किन्हें करेगी क्रय भूप-योषिते। उसी प्रकार सागर में आलोड़ित होती हुई 'व्हेल मछली' को त्रिशला स्वप्न में देखती है। 'अलक्ष्येन्द्रमानव (सिकंदर) की उपमा-भी ऐतिहासिक क्रम-सत्य से दूर है-'सम्हाल ले जो पथ वर्तमान का, वही अलक्ष्येन्द्र-समान हो। (304-76) उसी प्रकार त्रिशला को 'नवार्जिका-सी' कहने पर जैन आर्यकाओं की वेशभूषा सम्बंध में भ्रम मालूम होता है। स्थानकवासी साधु की उपमा भी गलत-समय-क्रम-भंग करने वाली है। ये चारों उल्लेख भगवान महावीर के ऐतिहासिक काल से सुसंबद्धित नहीं है, क्योंकि उस समय ऐसी उपमाओं और कल्पनाओं का आधार अस्तित्व हीन था। लेकिन यदि इतिहास की बात छोड़ दी जाय तो ये चारों उपमाएं सुन्दर और यथार्थ है। इतिहास की सत्यता के भंग में यदि कहना चाहें तो कह सकते हैं कि ऐतिहासिक सत्य से भी एक ओर काव्यगत सत्य होता है, जो अधिक रोचक, भावप्रवण और पाठक के मन को मुग्ध करनेवाला होता है। अत: ऐसी गलतियों के सामने विशेष कटुता नहीं होनी चाहिए। कवि का भावगत सत्य काव्य हो यदि अत्यन्त रोचक व रसपूर्ण बनाता हो तो ऐतिहासिक सत्य की थोड़ी-बहुत उपेक्षा सह्य होनी चाहिए। क्योंकि काव्यगत सौन्दर्य का मूल्य रस-शोधक पाठक के लिए ऐतिहासिक सत्य से चढ़कर होता है। हां, समालोचक की दृष्टि तो ऐतिहासिक सत्य पर भी समान रूप से जायेगी, वह उस सत्य की उपेक्षा सह नहीं पायेगा, अत: यथावसर चूक जाने पर टोकेगा ही।

इस प्रकार हम पाते हैं कि 'वर्द्धमान' की कथा वस्तु में महाकाव्योचित घटना वैविध्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध न होने पर भी मुख्य कथा में नायक का चिन्तन एवं शान्त-शृंगार रस युक्त विस्तृत वर्णनों के कारण कथा प्रवाह को पुष्ट करने में कवि यथासंभव सफल रहे हैं। कथा वस्तु का प्रवाह क्षीण रखने का कारण यह भी है कि महावीर की कथा के लिए ऐतिहासिक कथा सूत्र जैसा और जितना चाहिए वह प्राय: नहीं के बराबर है, क्योंकि ब्रह्मचर्य के अखण्ड

1. अनूप शर्मा-वर्द्धमान, पृ० 261, 18.

तेज के फलस्वरूप संयमी महावीर के चरित्र में शृंगार और रस विलास की भूमिका उपलब्ध नहीं है। उसी प्रकार महाकाव्य में घटनाओं के संधान और प्रतिसंधान के लिए जिस प्रतिद्वन्दी या प्रतिनायक की आवयकता रहती है, वह भी महावीर के जीवन में उपलब्ध न होने से काल्पनिक 'मुक्ति देवी' नायिका और 'काम' या 'मारवृत्ति' को प्रतिद्वन्दी बनाकर शृंगार और वीर रस के कृत्रिम उपादान जुटाने पड़ते हैं। 'इससे रीति की रक्षा तो होती है, अर्थ और चमत्कार भी उत्पन्न होता है, लेकिन पाठक की अनुभूति को उकसाकर हृदय को भिगाने और गलानेवाला रस कदाचित ही उत्पन्न होता हो।[1] फिर जलक्रीड़ा, यात्रा, उद्यान-विहार, युद्ध और विजय के मानवीय चित्रणों के द्वारा रसों की आयोजना करना कठिन हो जाना कवि के लिए सहज स्वाभाविक है। फिर भी अनूप जी ने रोचक और आकर्षक वर्णनों के द्वारा इन अभावों की पूर्ति करनी चाही है। इसीलिए भगवान की जीवनी में शृंगार व वीर रस के उपादानों की कमी के कारण ही 'वर्द्धमान' जैसा सुन्दर चरित-काव्य हमें अत्यन्त कम और कितने सालों के बाद उपलब्ध होता है। राम, कृष्ण एवं बुद्ध के जीवन से सम्बंधित महाकाव्य काफी उपलब्ध होते हैं। इस सन्दर्भ में लक्ष्मीचन्द्र जैन का मंतव्य शत-प्रतिशत उचित है कि-"क्या भगवान महावीर के जीवन वृत्त के आधार पर शताब्दियों बाद तक भी कोई सांगोपांग महाकाव्य लिखा जा सका? हिन्दी साहित्य में भी जहां सूर और तुलसी के समय से लेकर आधुनिक युग तक रामचरित मानस, सूर-सागर, बुद्ध-चरित, प्रिय-प्रवास, साकेत, यशोधरा और सिद्धार्थ लिखे गये, वहां 'वर्द्धमान' के लिए हिन्दी साहित्य को इतनी लम्बी प्रतीक्षा करनी पड़ी। इसका मुख्य कारण यह है कि भगवान महावीर की जीवनी जिस रूप में जैनागमों में मिलती है, उसमें ऐतिहासिक कथा-भाग और मानवीय रागात्मक वृत्तियों का घात-प्रतिघात गौण है और भगवान की साधना-मोक्ष-प्राप्ति की प्रयत्न कथा ही मुख्य है। महाकाव्य के लिए जिस शृंगार अथवा वीर रस के परिपाक की आवश्यकता है, उनका ऐतिहासिक कथा सूत्र या तो मूल रूप से है ही नहीं या किन्हीं अंशों में यदि घटित भी हुआ हो तो उपलब्ध नहीं।[2]

इस प्रकार 'वर्द्धमान' की कथा वस्तु पर किसी संस्कृत रचना का प्रभाव नहीं है। प्राकृत और अपभ्रंश तथा हिन्दी में भगवान महावीर की गौरव-गाथा यत्र-तत्र सर्वत्र विकीर्ण मिलती है, क्योंकि उनका चरित्र संस्कृति के सरोवर का एक प्रमुख सोपान है।[3]

---

1. श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, 'वर्द्धमान', आमुख, पृ॰ 3.
2. श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, 'वर्द्धमान', महाकाव्य, आमुख, पृ॰ 2-3.
3. डा॰ वीणा शर्मा-आधुनिक हिन्दी महाकाव्य, पृ॰ 11.

इस प्रकार 'वर्द्धमान' नूतन विषय-वस्तु से युक्त सुन्दर महाकाव्य है, इसमें कोई शंका नहीं। फिर भी उसे उत्कृष्ट कोटि का महाकाव्य कहने में झिझक रहती है, क्योंकि महान-चरित नायक होने पर भी महान उद्देश्य, महान कार्य, जीवन के लिए परमावश्यक चेतना व प्रेरणा का प्राय: अभाव, पुष्ट कथा वस्तु व उपाख्यानों की कमी, विविध पात्रों की न्यूनता आदि से यह महाकाव्य वंचित रह गया है। फिर भी शास्त्रीय नियमों का इसमें काफी मात्रा में परिवहन किया गया है। प्राचीन संस्कृत महाकाव्यों की परिपाटी पर लिखे गये इस महाकाव्य में 'धीरादोत्त गुणों से युक्त नायक वर्द्धमान के अभ्युदय एवं उत्कर्ष से सम्बंधित कथानक, सर्गबद्धता, अष्टादिक सर्ग-संख्या, छन्द-प्रयोग, नाटकीय संधियों की योजना, प्रमुखत: शान्त एवं गौणत: अन्य रसों की योजना, महाकाव्योचित वर्णन-वैचित्र्य आदि लक्षण परम्परागत शास्त्रीय रूप में संनिविष्ट है। चारित्रिक गरिमा एवं उत्कर्ष, सम्बंधनिर्वाह, एवं कथा-प्रवाह, लोक मंगलकारी विभिन्न आदर्शों की प्रतिष्ठा, उत्कृष्ट कवित्व एवं व्यापक सौन्दर्य-सृष्टि, भाषा-शैलीगत औदात्य तथा महाकाव्योचित गुरुत्व एवं गांभीर्य की दृष्टि से भी रचनाकार को पर्याप्त सफल कहा जा सकता है।[1]

'वर्धमान' महाकाव्य का नायक :

'वर्धमान' महाकाव्य में जैन धर्म के 24वें तीर्थंकर भगवान महावीर नायक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। समाज और साहित्य में राम-कृष्ण और बुद्ध का चरित्र जितना लोकप्रिय है, उतना महावीर का नहीं हो सका, इसके क्या कारण हो सकते हैं इस पर हम विचार कर चुके हैं। राम-कृष्ण के चरित्र में मानवीय-संवेदनाएं विशेष उपलब्ध होती हैं, जबकि महावीर में एकान्त त्याग-वैराग्य की अनुभूति विशेष है। भगवान महावीर का निर्मल चरित्र हमारे वैयक्तिक जीवन की उदात्तता एवं उत्कृष्टता की आदर्श स्थिति का संकेत करता है और समाज के व्यावहारिक जीवन से थोड़ा दूर पड़ता-सा दृष्टिगोचर होता है। जबकि राम-कृष्ण का जीवन व्यावहारिक एवं आदर्शात्मक समन्वय की भूमि पर प्रतिष्ठित है।

जैन धर्म के प्रमुख दो सम्प्रदायों की भिन्न-भिन्न विचारधारा के कारण भी वर्धमान को नायक के रूप में स्थापित कर महाकाव्य की रचना करना कठिन रहा है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय महावीर को विवाहित मानता है जबकि दिगम्बर सम्प्रदाय अविवाहित ही स्वीकारता है। नायक के साथ नायिका का

---

1. डा० लालताप्रसाद सक्सेना-हिंदी महाकाव्यों में मनोवैज्ञानिक तत्व, प्रथम भाग, पृ० 38.

होना सहज है, जिसके द्वारा सौंदर्य, प्रेमादि के विविध रसमय प्रसंगों की अवतारणा कवि सरलता से कर पाता है। 'वर्धमान' महाकाव्य में अनूप जी को दोनों सम्प्रदायों की भिन्न विचारधारा में सामंजस्य स्थापित करने के लिए महावीर का व्याह स्वप्न में मुक्ति देवी के साथ योजित करना पड़ा, जो धार्मिक-आध्यात्मिक-संवेदना तो अवश्य जागृत कर सकती है, लेकिन यौवन-सभर नायिका के वर्णन से जिस मनोहर, रसपूर्ण शृंगार-रस की अनुभूति हो, वह स्वप्न में मुक्ति रानी के साथ व्याह में कैसे संभव हो? राम-कृष्ण की चारित्रिक विशेषताएं, हार्दिक संवेदनाएं और गुणों को उद्भूत करनेवाले प्रतिस्पर्धी पात्र रहते हैं, जबकि महावीर के सामने 'काम' या 'मार' को प्रति नायक बनाकर वीर रस के कृत्रिम उपादान जुटाने पड़ते हैं।

काव्य में महावीर को नायकत्व की भूमि पर प्रतिष्ठित करने की असुविधा पर अपने विचार व्यक्त करते हुए डा० विश्वंभर नाथ उपाध्याय लिखते हैं–"राम-कृष्ण बुद्ध की तुलना में 'महावीर' के सम्बंध में जनप्रिय काव्य कम दिखाई पड़ते हैं। कारण यह है कि महावीर के जीवन में मानवीय दुर्बलताओं अर्थात् 'राग' का वर्णन जैन कवियों ने उचित नहीं समझा। जनता में महावीर का चरित्र इतने उदात्त रूप में स्वीकृत है कि वह उनके साथ तादात्म्य नहीं कर पाती। आधुनिक युग में भी जैन कवियों ने धार्मिक भय से इस दिशा में कार्य नहीं किया। + + + अनूप शर्मा दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं में समन्वय स्थापित करना चाहते थे। फिर उन्हें यह भी भय रहा होगा कि महावीर को अधिक मानवीय रूप देने से जैन-समाज क्रुद्ध न हो जाय।'[1]

इस महाकाव्य में महावीर से सम्बंधित शृंगार रस की समुचित निष्पत्ति नहीं हो पाई है। राजा सिद्धार्थ एवं रानी त्रिशला के दाम्पत्य जीवन, रति क्रीड़ा, तथा रूप वर्णन के द्वारा शृंगार रस फलित होता है। प्रारम्भ के सात सर्ग तक राज-दम्पति को ही प्रमुख स्थान दिया गया है और चरित-नायक का जन्म तो आठवें सर्ग में होता है। 17 सर्ग में इस महाकाव्य में सात सर्ग सिद्धार्थ-त्रिशला के वर्णन से सम्बंधित हैं। इससे उन दोनों को तो महत्व प्राप्त होता है, लेकिन कुमार वर्धमान का चरित्र बहुत बाद में उभरता है। अतः नायक सिद्धार्थ को स्वीकारा जाये या वर्धमान को? यह प्रश्न भी उठता है। शृंगार रस की निष्पति के लिए कवि ने सिद्धार्थ की उपस्थिति को ही विशेष उपयुक्त समझा है। सिद्धार्थ व त्रिशला की चारित्रिक-विशेषता, रानी त्रिशला का सिद्धार्थ के द्वारा

1. डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय-'वर्धमान' और द्विवेदी युगीन परम्परा निबंध-अनूप शर्मा-कृतियों और काव्य संकलन के अन्तर्गत, पृ० 151-152.

किया सुन्दर नख-शिख वर्णन, प्रसन्न दाम्पत्य जीवन की विशिष्टता और अनुरागमय व्यवहार व संतृप्त स्नेह का कवि ने रसमय वर्णन करके सात-सात सर्गों तक सिद्धार्थ के चरित्र पर विशेष जोर दिया है। इन सबके बावजूद भी सिद्धार्थ को नायक पद पर प्रतिष्ठित करने का कवि का उद्देश्य किंचित्मात्र नहीं प्रतीत होता है। महावीर का चरित्र भले ही आठवें सर्ग से प्रारम्भ होता हो और तदनन्तर पुष्ट होता हो, कवि ने भगवान महावीर के त्यागी-जीवन एवं उनके तीर्थंकरत्व को ही प्रमुख रूप से प्रतिष्ठित किया है। अतः सिद्धार्थ को प्रमुख चरित्र का गौरव अवश्य प्राप्त होता है, नायक-पद पर तो महावीर भी विराजमान है।

महाकाव्य में शास्त्रीय लक्षणानुसार उदात्त, उच्चकुलीय, शान्त, धीर-गंभीर नायक के सभी गुण भगवान महावीर में पाये जाते हैं। उच्चकुलीय तो हैं ही, बचपन से ही धीर-गंभीर और चिन्तनशील हैं। तपस्वी, वीतरागी महावीर अपने भीतर मानवीय भावों की अपेक्षा उदात्त तत्त्वों का विशेषत निर्वाह करते हैं। 9वें सर्ग से कुमार की विचारधारा, चिंतनात्मकता तथा मनोमंथन का कवि ने प्रमुख रूप से चित्रण किया है। इससे नायक के प्रति श्रद्धा तो जागृत हो सकती है, लेकिन तादात्म्य मूलक अनुभूति नहीं होती। विराटता, भव्यता एवं दिव्यता नायक के चरित्र के अवश्य फलित होती है। मानवीय सहजता व स्वाभाविकता का दर्शन कम हो पाता है। नायक की दिव्य मूर्त्ति का कवि ने सुन्दर वर्णन किया है—यथा—

ललाट में एक अनूप ज्योति है,
प्रसन्नता आनन में विराजती।
मनोज्ञता शोभित अंग-अंग में,
पवित्रता है पद-पद्म चूमती।[1]

कवि ने महावीर के चरित्र को क्रमशः उदात्तता प्रदान की है। महावीर आत्मविकास के साथ जन-कल्याण की भावना से ओत-प्रोत थे। कविवर अनूप जी ने उन्हें इसी रूप में प्रतिष्ठित किया है—महावीर अपने उदात्त चरित्र की चरम सीमा तक पहुंचकर मानव से तीर्थंकर बन गये—इसे कवि ने बड़ी कुशलता से चित्रित किया है। बचपन से ही वे शान्त एवं चिन्तनप्रिय थे। खेलने-कूदने की उम्र में ही वे अन्य बालकों से भिन्न प्रकृति-प्रवृत्ति वाले थे। बचपन में साथियों के साथ नदी के तट पर खेलते समय निकटस्थ वन में आग देखकर उनका हृदय करुणा से भर जाता है और उस आग में फंसे पशु-पक्षियों को बचाने का अनुनय करते हैं—

1. अनूप शर्मा-वर्द्धमान, पृ० 415-8.

सखे! विलोको वह दूर सामने,
प्रचण्ड दावा जलता अरण्य में।
चलो, वहां के खग-जीव जन्तु को,
सहायता दें, यदि हो सके, अभी।।[1]

लेकिन वन में वह आग न होकर उनकी परीक्षा लेने के लिए भयंकर सर्प का रूप लेकर आया हुआ देव था। उस बृहत्-काय कृपीट सहस्र भोगी सर्प को महावीर निर्भयता से दूर फेंक देते हैं तथा भविष्य में कभी निर्दोष प्राणियों को कष्ट न पहुंचाने का आदेश देते हैं। उसी समय से वे वर्धमान से 'महावीर- के नाम से जगत में ख्यात हुए-

उसी घड़ी से जग में जिनेन्द्र की,
सुकीर्ति फैली जन-चित्त-मोहिनी।
न नाम से केवल वर्द्धमान के,
सभी महावीर पुकारने लगे।।[2]

यौवनावस्था में भी महावीर ने विकारों को जीत लिया था, अत: 'वीतरागी' हुए तथा प्राणीमात्र के प्रति करुणा पूर्ण व्यवहार रखते थे-

तुम्हीं विजेता मद-मोह-मान के,
अचूक नेता तुम आत्म ज्ञान के।
विमोक्ष-द्वारा-पति देव! सर्वथा,
प्रदान कल्याण करो त्रिलोक को।

स्वभाव से आप पवित्र-देह हैं,
स-देह हैं, किन्तु सदा विदेह हैं।
समस्त जीवों पर आपकी, प्रभो,
अहेतुकी है करुणा कृपा-निधे।[3]

कुमार वर्द्धमान युवावस्था में पत्नी के साथ रहकर भोग-विलास और वैभव का जीवन व्यतीत करने की अपेक्षा जीवन की असारता, जन्म-मृत्यु के चक्र आदि विषयों पर गहनता से विचार करते रहते थे। परिणाम स्वरूप पूर्ण यौवनावस्था में संपूर्ण संपत्ति का वर्ष भर दान करके प्रवज्या अंगीकार कर ली। महावीर की उस समय की कान्ति दर्शनीय है-

1. अनूप शर्मा-वर्द्धमान, पृ० 261-17.
2. अनूप शर्मा-वर्द्धमान, पृ० 267-40.
3. अनूप शर्मा-वर्द्धमान, पृ० 270-52-53.

अहो! अलंकार विहाय रत्न के,
अनूप-रत्न-त्रय-भूषितांग हो,
तजे हुये अंबर अंग-अंग से,
दिगंबराकार विकार-शून्य हो।

समीप ही जो पट देवदूष्य है,
नितान्त श्वेतांबर-सा बना रहा,
अ-ग्रन्थ, निद्वन्द्व महान संयमी,
बने हुए हो जिन-धर्म के ध्वजी।[1]

यहां चरित-नायक के तेज, अग्रंथित्व, संयम की यश-कीर्ति के साथ-साथ कवि ने श्वेताम्बर-दिगम्बर मान्यता का भी परोक्षतः समन्वय कर दिया है। नायक के वैराग्य एवं चिन्तन के वर्णन से जो भव्यता या अति मानवीयता उत्पन्न होती है, उसके संदर्भ में डा० विश्वंभरनाथ उपाध्याय लिखते हैं-"यदि अनूप शर्मा ने सिद्धार्थ और त्रिशला पर अधिक ध्यान दिया होता, राग और विराग के अन्तर्द्वन्द्व को अधिक गहराई से प्रस्तुत किया होता, जैसा कि 'बुद्ध चरित' में मिलता है, तो 'वर्द्धमान' अधिक मर्मस्पर्शी होता। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह असंभव लगता है कि महावीर जन्म से ही विरागी रूप में चित्रित किये जाएं। साधना की दृष्टि से अथवा सम्प्रदाय की दृष्टि से जो ठीक है, वह काव्य के लिए भी ठीक हो, आवश्यक नहीं। अतः 'वर्द्धमान' महाकाव्य में महावीर की अति मानवीयता काव्य के लिए उपयुक्त नहीं हो सकी। जब त्रिशला और सिद्धार्थ के मुक्त श्रृंगार के वर्णन से जैन-समाज क्रुद्ध नहीं हुआ तो महावीर के उदात्त जीवन के प्रारम्भ में यदि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, कोमल क्षणों और साधनापरकता का ठाठ और विकास दिखाया गया होता तो इससे महावीर इस युग के अधिक अनुकूल प्रतीत होते।[2]

'वर्धमान' काव्य के अन्तर्गत अनूप शर्मा ने महावीर का उदात्त चरित्र-चित्रण गंभीर विचारात्मक शैली में कर एक अछूते विषय को महाकाव्य का आधार बनाकर स्तुत्य कार्य किया है। नायक के यौवन से दीप्त स्वरूप-वर्णन कवि ने अत्यल्प किया। धार्मिक नेतृत्व एवं वैराग्यमूलक अंश को कवि ने दस से सत्रह सर्गों तक प्राधान्य दिया है। महावीर की दिव्य मूर्ति का कवि वर्णन करते हैं-

1. अनूप शर्मा-वर्द्धमान, पृ० 432-433-119-120.
2. डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय-अनूप शर्मा-कृतियां और कला के अन्तर्गत, 'वर्धमान' और द्विवेदीयुगीन परम्परा' शीर्षक निबंध, पृ० 151-152.

ललाट में एक अनूप-ज्योति है,
प्रसन्नता आनन में विराजती।
मनोज्ञता शोभित अंग-अंग में
पवित्रता है पद-पद्म चूमती।[1]

गृह-त्याग के बाद दीक्षार्जन के अनन्तर साढ़े बारह वर्ष तक कठिन तपस्या के पश्चात् महावीर 'केवलज्ञान' प्राप्त करते हैं। अपने विचारों का जैन-समाज में प्रचार-प्रसार हेतु इन्द्रभूति आचार्य (गौतम स्वामी) को पट्टशिष्य (प्रथम गणधर) बनाते हैं तथा प्रथम बार 'चतुर्विध संघ' की स्थापना करके आचार-विचार व व्यवहारादि सभी उपादेय विषयों पर संदेश देने के लिए स्थान-स्थान पर भ्रमण करने लगे। महावीर के इस आध्यात्मिक नेता-पक्ष का जितना उत्कृष्ट उभार महाकाव्य में हुआ है, उतना मानवीय पक्ष का नहीं। कवि ने महावीर के उपदेशक और साधु स्वरूप को महत्त्वपूर्ण रूप से अंकित किया है। महाकाव्य में नायक को आजान वाहु, दीर्घवक्षस्थः, सुरम्य और सुरुचिपूर्ण व्यक्ति के रूप में महत्त्व प्राप्त होता है। 'वर्द्धमान' में भी नायक के इस बाह्य शारीरिक रूप का वर्णन अवश्य प्राप्त है। वैराग्य-भावना से प्रेरित दीक्षा के समय नायक की दीप्तिमय छवि का कवि सुरम्य शब्द-चित्र अंकित करते हैं–

प्रसन्न था आनन ज्ञात-पुत्र का
सतोगुणाभास-समेत राजता;
सरोजिनी-के-पुष्प-दलानुकारि थे
मनोज्ञ दोनों श्रुति कान्ति-राशि से।

त्रिरेख-संयुक्त अनूप कंठ था,
महान-शोभा-मय कंजु-सा लसा;
अलग्न अद्यावधि नास्विक्ष से
सुपुष्ट था वक्ष-कपाट सोहता।

प्रलंब अजानु भुजा विराजती,
मनोरमा कल्प-लता-समान ही,
अलक्त दोनों कर की हथेलियां,
लसी हुई थीं युग-शोण-द्रोण-सी।[2]

महावीर के तीर्थंकरत्व को घोषित करते हुए कवि कहते हैं–

1. अनूप शर्मा-वर्द्धमान, पृ॰ 415-8.
2. अनूप शर्मा-वर्द्धमान, पृ॰ 430-109, 110-111.

प्रभो! तुम्हीं धर्म-प्रवृत्ति हेतु हो,
अपार-संसार-समुद्र-सेतु हो,
प्रसिद्ध तीर्थंकर नाम से सदा,
हुए समुत्पन्न विपन्न-त्राण हो।[1]

उपर्युक्त विवेचन से 'वर्द्धमान' महाकाव्य के नायक का रूप-गुण-शील चरित्र स्पष्ट हो जाता है तथा इस महाकाव्य के प्रमुख पात्र व नायक के रूप में भगवान महावीर ही कवि को पूर्णत: अभीष्ट है तथा कवि की यह मान्यता यथोचित् है।

'वर्द्धमान' महाकाव्य में रस :

'महाकाव्य में श्रृंगार शान्त या वीर रस में से किसी एक की प्रमुखता एवं गौण में अन्य रसों की चर्चा होनी चाहिए।[2] महाकाव्य 'वर्द्धमान' में जैन-धर्म के अन्तिम तीर्थंकर आध्यात्मिक नेता नायक-रूप में स्थित होने से शान्त रस की प्रमुखता स्वाभाविक रूप से है। शान्त रस की मुख्यता के साथ श्रृंगार-रस के छींटों से काव्य को मधुर व रोचक बनाने की अनूप शर्मा ने भरसक कोशिश की है। त्यागी-वैरागी नायक-रस-श्रृंगार, विलास व वैभव से कोसों दूर रहते हैं। अत: ऐसे नायक के साथ नायिका का सर्वथा अभाव काव्य को रसमय नहीं होने देता और कवि को श्रृंगार वर्णन का भी अवकाश नहीं मिलता। कवि 'मुक्ति देवी' को नायिका एवं 'काम' या 'मार' को प्रति नायक बनाकर रीति तो निभा सकते हैं, लेकिन मानवीय भावनाओं को उद्वेलित करने की क्षमता कृत्रिम उपादानों से संभवित नहीं हो पाती। अनूप जी के इस काव्य में नायक भगवान महावीर होने से महाकाव्य की आवश्यकता के अनुकूल शान्त रस मुख्य है। वैसे महारानी त्रिशला के नख-शिख तथा सिद्धार्थ-त्रिशला के स्वस्थ, सौहार्दमय दाम्पत्य जीवन के वर्णन में श्रृंगार रस की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।

शान्त-रस :

भक्ति प्रधान इस महाकाव्य में नायक वर्द्धमान शान्त रस के मुख्य आलंबन हैं। उनके चिन्तन, मनन के वर्णन से शान्त-रस की तीव्रता अनुभव की जाती है। बचपन से ही महावीर भावनाशील स्वभाव के हैं। ऋजु-बालिका नदी के सुरम्य तट पर वे महल के झरोखों से बाहर देखते घण्टों तक सोचते रहते हैं। प्राणी-मात्र के प्रति करुणा व प्रेम की धारा बहाते हुए उन्हें अत्यन्त आनंद एवं शान्ति प्राप्त होती है। सर्व जीवों के अभ्युदय के लिए, सर्वत्र हिंसा की जो

---

1. द्रष्टव्य-अनूप शर्मा कृत 'वर्द्धमान', पृ॰ 263-47.
2. द्रष्टव्य-दण्डी कृत काव्यादर्श, पृ॰ 1, 14, 49.

वृद्धि फैली है, उसे प्रेम व करुणा के जल से बुझाकर अहिंसा की शीतल लहर फैलाने के लिए वर्द्धमान सतत चिन्तनशील हैं। आठ वर्ष की आयु में ही वे अपने मित्रों से क्या कहते हैं।

सखे! विलोको वह दूर सामने,
प्रचण्ड दावा जलता अरण्य में,
चलो वहां के खग-जीव-जन्तु को,
सहायता दे, यदि हो सके अभी।

मनुष्य पक्षी-कृमि जीव जन्तु की,
सदैव रक्षा करना स्व-धर्म है;
अतः चलो, कानन में विलोक लें
कि कौन-सी व्याधि प्रवर्धमान है।[1]

सोलह वर्ष की अवस्था तक वे इसी नदी के किनारे घण्टों सोचते-विचारते बैठे रहते थे-

नितान्त एकान्त-निवास-संस्पृही,
कुमार को थी सरि मोद-दायिनी,
कभी-कभी आ उसके समीप वे
विचारते जीवन का रहस्य थे।[2]

सोलह वर्ष के होते-होते तो उनकी वैराग्य-भावना अतीव प्रबल हो उठती है। वे मानव-जीवन की निःसारता, यौवन की क्षणभंगुरता, जीवन-सार्थक्य के उपाय, वैराग्य-भावना आदि पर गंभीरता से सोचते हैं-

मनुष्य का जीवन है वसन्त-सा,
हिमऋतु प्रारंभ, निदाघअन्त में,
जहां सदा भाव-प्रसून फूलते,
विचार के भी फलते प्रतान है।

लिया जभी जन्म, तुरन्त रो उठे,
विलोक पृथ्वी हंसने लगे तथा,
मुहूर्त जागे, क्षण एक सो उठे,
सुदीर्घ सोये, तब जागना कहां?[3]

1. अनूप शर्मा-'वर्द्धमान', पृ० 261-17-19.
2. अनूप शर्मा-'वर्द्धमान', पृ० 291-24.
3. अनूप शर्मा-'वर्द्धमान', पृ० 308-93-94.

इसी प्रकार कुमार वर्द्धमान को बारहवें सर्ग में ब्याह का दिव्य स्वप्न दिखाई पड़ता है–

सुषुप्ति में राजकुमार को हुआ,
प्रमोद-कारी वह दिव्य स्वप्न जो
न सत्य था, किन्तु असत्य भी न था,
अदृष्ट था, किन्तु, तथापि दृष्ट था।
दिखा पड़ा स्वप्न कि एक भूप की
सुता 'यशोदा' अति ही गुणागरी,
पवित्र-चारित्र्य-मयी सुशोभना,
हुआ उसी से उनका विवाह है।
जिसे यशोदा कहते सभी, वही,
महीपना का उपनाम-मात्र है,
सभी जनों ने सब ज्ञाति-बन्धु ने
रखा महासिद्धि प्रसिद्ध नाम है।[1]

स्वप्न में 'मुक्ति देवी' से कवि ने त्यागी नायक का विवाह करवाया है-क्योंकि–

विवाह हो? दिव्य विवाह क्यों न हो,
बारात हो? देव-समाज क्यों न हो,
बने नहीं पाणि-गृहीत मुक्ति क्यों
न देव हों श्रीवर-मंडलेश क्यों?[2]

तेरहवें सर्ग में वैराग्य-सूचक जैन-धर्म की बारह भावनाओं का कवि ने विस्तृत वर्णन किया है तथा सोलहवें और सत्रहवें सर्ग में प्रभु का धार्मिक, लोक-व्यवहार बोधक उपदेश चर्चित है। ऋजु-बालिका के किनारे पर ही-दीर्घ तपस्या के बाद-'केवल-ज्ञान' की प्राप्ति नायक को होती है। इसके पश्चात् आचार-विचार की पवित्रता, गुणों के महात्म्य, दोषों के त्यागादि पर विस्तृत विचार प्राप्त होते हैं–

जिनेन्द्र बोले वह धर्म-वाक्य जो,
कि सर्व साधारण बोधगम्य थे।
गृहस्थ के, साधु-समाज के सभी,
बताचले धर्म तथैव कर्म भी।[3]

---

1. अनूप शर्मा-वर्द्धमान, पृ॰ 359-360, 57, 58, 61.
2. अनूप शर्मा-वर्द्धमान, पृ॰ 368, 93.
3. अनूप शर्मा-वर्द्धमान, पृ॰ 562, 149

महावीर की शान्त-चित्त-निःसृत स्नेहपूर्ण वाणी को सामान्य मनुष्य भी हृदयंगम कर सकने में समर्थ हो सकता है। 'वर्द्धमान' महाकाव्य का परम उद्देश्य लगता है कि भगवान महावीर की अहिंसा, प्रेम, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह (पांच महातत्त्व) की उच्चतम भावना से पूर्ण सामान्य लोक व्यवहार की शिक्षा सबको समान रूप से एवं सुगमता से ग्राह्य हो सके। इसी कारण 'वर्द्धमान' में महावीर के चिन्तन-मनन के संदर्भ में प्रकाश प्राप्त होता है, लेकिन उनके द्वारा प्रतिपादित गूढ़ तत्त्व दर्शन और सैद्धांतिक विवेचन उपलब्ध नहीं है। वैसे यह अच्छा ही हुआ है, क्योंकि महाकाव्य में रस-निष्पत्ति के दृष्टिकोण से ऐसा सूक्ष्म तात्त्विक विवेचन काव्य को नीरस व बोझिल बना देता है और पाठक को रसास्वादन में क्षति भी पहुंचाता।

इस प्रकार शान्त रस की प्रमुखता 'वर्द्धमान' काव्य के नायक व विषय-वस्तु के संदर्भ में पूर्णतः योग्य सिद्ध होती है। इसके साथ कवि ने शृंगार रस को भी यथोचित स्थान प्रदान किया है।

शृंगार-रस :

'वर्द्धमान' काव्य में कवि ने प्रारंभ के सात सर्गों तक राजा सिद्धार्थ एवं रानी त्रिशला के चरित्र को प्राधान्य देकर उनके सौन्दर्य, प्रेम व दाम्पत्य-जीवन के मधुर वर्णनों से शृंगार रस फलित होता है। "इसमें शान्त रस की प्रधानता है। शृंगार के लिए इस रचना में कोई स्थान न होते हुए भी महाराज सिद्धार्थ और रानी त्रिशला के दाम्पत्य प्रेम के सरस निरूपण के कारण यह महाकाव्य शृंगार से वंचित नहीं होने पाया है। इस काव्य में नायिका का अभाव है। इसकी पूर्ति कवि ने रानी त्रिशला के नख-शिख और रति-क्रीड़ा के परम्परागत वर्णनों से की है।"[1]

दूसरे सर्ग में आलेखित राजा-रानी का मोह, आकर्षण, प्रेमालाप, देह-सौन्दर्य और सांसारिक प्रेमासक्ति पांचवें सर्ग में आध्यात्मिक भावानुभूतिपूर्ण शुद्ध स्नेह और स्वस्थ दाम्पत्य जीवन में परिवर्तित हो जाता है, तथा प्रेम की गरिमा और महिमा को प्राप्त कर सात्विक स्नेह के तेज-से प्रकाशित होता है। दार्शनिक विचारधारा से पूर्ण काव्य में मानवीय भावों से अनुरंजित प्रेमधारा जहां उमड़ती हो, वहां वर्णन अधिक रोचक व सजीव बन पड़ते हो तो आश्चर्य क्या? दूसरे सर्ग में त्रिशला के सौन्दर्य से प्रभावित हो अपनी अनुभूति राजा सिद्धार्थ व्यक्त करते हुए कह उठते हैं–

1. डा॰ वीणा शर्मा-आधुनिक हिन्दी महाकाव्य, पृ॰ 45.

नतांगि! तेरे युग-चक्षु कंज से,
सदैव है तत्पर चौर कर्म में,
न रात्रि को ही मनचित लूटते,
विपत्ति भी है दिन को न छोड़ते।

सरोज क्यों तूं रखती स्वकर्ण में,
रहस्य क्या है कल-भाषिणी प्रिये।
न मैं हुआ किंचित स्पष्ट उत्तमे
न आज पर्याप्त अपांग-पात क्या?[1]

प्रेमी सिद्धार्थ त्रिशला के देह-लालित्य से अत्यन्त प्रभावित हो, उनकी एक-एक अंगभंगिमा चित्रित करते हुए अपनी रसात्मक भावोर्भि-व्यक्त करते हैं–

त्वदीय पाताल-समान नाभि है,
उरोज हैं उच्च नगाधिराज-से।
मनोज्ञ वेणी इस भांति है लसी।
कलिन्दजा का विनिपात हो यथा।

सरोज से संभव है सरोज का
सुना गया किन्तु न दृष्टि-गम्य है;
परन्तु तेरे मुख-पुंडरिक में
विलोकता हूं युग-पारिजात मैं।[2]

\+ + + +

प्रिये! सदा पूर्णतया मनोहरा
कलंक-हीना छवि देख आस्य की
स-लज्ज भागा विधु उच्च व्योम सेए
समुद्र में डूब मरा अधीर हो।

त्वदीय आलिंगन-हेतु, हे प्रिये।
हुआ न क्यों आज सहस्त्रबाहु मैं,
विलोकने को छवि अंग-अंग की,
बना न क्यों, देवि! सहस्त्र-चक्षु मैं?[3]

1. अनूप शर्मा-वर्द्धमान, पृ॰ 82, 35, 36.
2. अनूप शर्मा-वर्द्धमान, पृ॰ 83, 39, 40.
3. अनूप शर्मा-वर्द्धमान, पृ॰ 84-85, 44-67.

प्रथम सर्ग में कवि त्रिशला के देह-सौंदर्य का मनोहर वर्णन करते हैं-

मुखेन्दु था इन्दु कलंक-हीन ही,
अलकत-बिंबाधर-बिंबहीन ही,
अहर्निशा फुल्ल-सरोज नेत्र की
अनूप आभा अवलोकनीय थी।
सरोज-सा वस्त्र सु-नेत्र-मीन-से,
सिवार-से केश, सुकंठ कंबु-सा,
उरोज ज्यों कोक, सु-नाभि भोर-सी,
तरंगिता थी त्रिशला-तरंगिणी।[1]

पांचवें सर्ग में राजा सिद्धार्थ का प्रेम उदात्त स्वरूप धारण करता है। प्रथम व द्वितीय सर्ग में चर्चित मांसल प्रेम उच्च धरातल पर पहुंच जाता है। इस सर्ग में दोनों का स्नेह कितनी उच्चता को प्राप्त करता है-

प्रभो! मुझे हो किस भांति चाहते?
यथैव निः श्रेयस चाहते सुधी।
प्रिये! मुझे हो किस भांति चाहती?
यथैव साध्वी पद पार्श्व-नाथ के।
विभावना ईश प्रदत्त प्रेम की
कही अनैसर्गिक संपदा गयी,
विलोचनों के, प्रभु! एक बुन्द में
प्रतीत सारी वसुधा लखी गई।[2]

स्नेह का धरातल कितना ऊंचा उठाया गया है, जो सत्य ही आकर्षक के साथ भाव-प्रवण भी प्रतीत होता है। आखिरकार वीतरागी तीर्थंकर के माता-पिता के योग्य ही वार्तालाप का स्तर उदात्त बन गया। पांचवें सर्ग में तो सर्वत्र विशुद्ध प्रेम की धारा ही उमड़ती है। राजा-रानी की प्रेम ध्वनि-प्रतिध्वनि मांसल स्नेह का त्याग कर सात्विकता से गुंजित होती है। राज दम्पत्ति के वार्तालाप में भावोत्कर्षता अपनी चरम उत्कृष्टता को प्राप्त करता है। काव्य में यही रोचक व मानवीय भावानुभूतियां जीवन्तता भर देती है। राजा सिद्धार्थ सहधर्मचारिणी के महत्त्व को अंकित करते हुए त्रिशला से कहते हैं-

वहित्र-सा जीवन मध्य रात्रि के,
पड़ा रहा चन्द्र-विहीन सिन्धु में,

---

1. अनूप शर्मा-वर्द्धमान, पृ० 54-55-76-81.
2. अनूप शर्मा-वर्द्धमान, पृ० 158, 162, 76-93.

मिला न दिग्सूचक-यंत्र-साज भी,
प्रिये! तुम्हारा कर, मैं दु:खी रहा।

प्रत्युत्तर में त्रिशला की भी ऐसी ही स्नेहासिक्त भाव प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है-यथा-

प्रकाश से शून्य अपार व्योम में,
उड़ी, बनी आश्रित एक-पक्ष में।
मिला नहीं नाथ! द्वितीय पक्ष-सा,
अभी तुम्हारा कर मैं दु:खी रही।[1]

परस्पर के स्नेह-सानिध्य के बिना जीवन के सार तत्त्व आनंद और जीवन-साफल्य से सम्बन्धित राज-दम्पत्ति के वार्तालाप का कवि ने मधुर आह्लादक वर्णन किया है। यहां तो केवल उल्लेख ही किया गया है। श्रृंगार रस की प्रमुख आधार भूमि न होने पर भी कवि ने यथा-संभव महाकाव्य में संयोग-श्रृंगार के वर्णन द्वारा महाकाव्य को सुचारु बनाने का उपक्रम किया है। श्रृंगार के दूसरे पक्ष वियोग-श्रृंगार की यहां संभावना अंशत: भी नहीं है। क्योंकि संयोग-श्रृंगार के अन्तर्गत उसका पुष्ट रूप उभारने के लिए कवि को रानी त्रिशला-नायक की माता-का आधार ग्रहण करना पड़ा है तथा नायक अविवाहित होने से नायिका के अभाव में वियोग श्रृंगार का चित्रण उपलब्ध नहीं होता। "अनूप शर्मा ने 'वर्द्धमान' में महावीर के पिता सिद्धार्थ और माता त्रिशला के प्रेम और यौवन का तो विस्तृत चित्रण किया है, किन्तु स्वयं महावीर का विवाह केवल स्वप्न में करा दिया।"[2]

'वर्द्धमान' में चित्रित श्रृंगार के वर्णन पर आलोचना की दृष्टि जाती है कि त्रिशला के नख-शिख वर्णन में पुनरुक्ति आ गई है। प्रथम सर्ग में कवि द्वारा वर्णित है, तो दूसरे सर्ग में प्रेमी राजा सिद्धार्थ ने त्रिशला के देह-सौन्दर्य को उद्घाटित किया है। फलत: पुनरुक्ति के कारण बोझिलता और जांघ, नितम्ब, उरोजादि के पुन:-पुन: वर्णन से अमर्यादा की हल्की-सी गन्ध भी आ जाती है। वैसे कहीं-कहीं ऐसे वर्णनों में आकर्षण व काव्यात्मक सौन्दर्य भी दृष्टिगोचर होता है। संस्कृत काव्यों की परिपाटी पर स्थित नख-शिख वर्णन में सिद्धार्थ द्वारा प्रयुक्त वर्णन में मर्यादा का उल्लंघन-सा प्रतीत होता है। क्योंकि महाराज सिद्धार्थ एवं महारानी त्रिशला की आयु यौवन सुलभ चेष्टाएं तथा

1. अनूप शर्मा-'वर्द्धमान' महाकाव्य-पांचवां सर्ग, पृ० 160-84,85.
2. डा० विश्वंभरनाथ उपाध्याय का 'अनूप शर्मा-कृतियाँ और कला' के अन्तर्गत निर्बध-'वर्द्धमान और द्विवेदी युगीन परंपरा', पृ० 156.

उन्मादक प्रेमालाप के योग्य नहीं है, महावीर उनके दूसरे पुत्र हैं। नवविवाहित दाम्पत्य जीवन में उद्दीप्त, उल्लसित प्रेमानुभूतियां सहज हैं, लेकिन दूसरे-तीसरे बालक के जन्म ले चुकने के उपरान्त दम्पत्ति की भावनाओं में गांभीर्य एवं एक स्थैर्य आ जाता है। वह तीव्रता और आकुलता नहीं रहती जो वैवाहिक जीवन के प्रारम्भ में रहती है। प्रथम बालक के जन्म पूर्व प्रेम-चेष्टाएं सहज सुन्दर व स्वाभाविक प्रतीत हो सकती है, लेकिन विशेष उम्र व स्थान-प्राप्ति के अनन्तर संयोग श्रृंगार का वर्णन भद्दा-सा लग सकता है। पाठक त्रिशला को महारानी के रूप में नहीं वरन् तीर्थंकर की पूज्यपाद माता के स्वरूप में ही सोचते आये हैं। एक से अधिक बार देह-सौन्दर्य का उन्मुक्त विस्तृत वर्णन महाकाव्य को अधिक रमणीय बनाने की अपेक्षा पाठक के हृदय में विरक्ति का भाव भर देता हो तो भी आश्चर्य नहीं।

इसके समर्थन में यह भी कहा जा सकता है कि महाकाव्य की वर्णन परम्परा के अनुकूल वर्णन को त्यागने के लिए कवि बाध्य नहीं है इसके उपरान्त कवि को जो प्रसंग अधिक मार्मिक एवं रमणीय प्रतीत होंगे, उनको चित्रित किये बिना छोड़ दे तो महाकाव्य का प्रभाव नष्ट हो जायेगा। यदि कवि ऐसे रसपूर्ण प्रसंगों को केवल स्पर्श करके आगे चल दे तो काव्य में रसात्मकता संभव नहीं होती तथा आलोचक की विवेचना होती है कि कवि के पास सूक्ष्म पारखी दृष्टि और हृदय नहीं है। ऐसे स्थलों पर ही कवि की कुशलता का परिचय प्राप्त हो सकता है।

त्रिशला के नख-शिख वर्णन के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि कवि अनूप जी ने महाराज सिद्धार्थ की रूपवती, मनोकाम्य पत्नी के रूप में उनका वर्णन किया है, न कि तीर्थंकर की माता त्रिशला देवी के रूप में। कवि के पास सौन्दर्य व प्रेम के वर्णन के लिए फलक बहुत सीमित है, अतः गहरे रंगों से रंग कर उसे उभारने का प्रयास किया है। श्रृंगार रस की सहज उत्पत्ति और विकास के उत्पादन स्वरूप नायक-नायिका के युवकोचित विभ्रम-विलास का, रागपूर्ण व्यवहार का जो चित्रपट कवि को प्राप्त होना चाहिए, वह यहां नहीं है। इसका पहले उल्लेख हो चुका है। अतः श्रृंगार चित्रण का संतुलन सिद्धार्थ-त्रिशला के रसयुक्त प्रेमालाप द्वारा किया है। दूसरे सर्ग में श्रृंगार का वर्णन जहां मांसल स्नेह के धरातल पर किया गया है, वहां कवि ने केवल उन्हें राज-दम्पत्ति के रूप में ही स्वीकार किया है। कवि को सीमित क्षेत्र में काव्य-परम्परा निभाने के लिए ऐसे वर्णनों का सहारा लेना पड़ा। इससे महाकाव्य का पूर्वार्द्ध रमणीय बन गया है। पांचवें सर्ग में तो यही आसक्ति, प्रेम की गरिमा व गहनता में

परिवर्तित हो जाती है। राजा-रानी के उदात्त दाम्पत्य-प्रेम में दृढ़ स्नेह व स्वस्थ मनोवृत्ति प्रतिबिम्बित होती है। इस सन्दर्भ में लक्ष्मीचन्द्र जैन का कथन उपयुक्त प्रतीत होता है कि 'काव्य में जो वर्णन परम्परा से मान्य है और शृंगार के प्रसंग में अशोभन नहीं, उसे छोड़ने के लिए कवि बाध्य नहीं। दूसरी बात यह भी है कि त्रिशला के रूप नख-शिख वर्णन राजा की प्रेयसी के रूप में किया जा रहा है। सिद्धार्थ का मन-भृंग सौन्दर्य-वल्लरी के जिन सरस दलों और पिकवों के प्रति लुब्ध है, उनका रागात्मक वर्णन उन्हीं के दृष्टिकोण से किया गया है। तीसरे यह कि दूसरे सर्ग का पार्थिव शृंगार यदि पांचवें सर्ग में अपार्थिव और आध्यात्मिक हो गया है, तो यह कवि की सफल कल्पना का प्रतीक है।[1] डा॰ बनवारीलाल शर्मा का इस सम्बन्ध में विचार है कि–"काव्य में नायिका का अभाव है, किन्तु कवि ने वर्द्धमान की माता रानी त्रिशला के नख-शिख और रति-क्रीड़ा का वर्णन कर शृंगार रस की सुन्दर सृष्टि की है। कवि का यह वर्णन प्राचीन परम्परा के अनुकूल होने पर भी नैतिक दृष्टि से प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता।[2]

शान्त रस की प्रमुखता के साथ आनुसंगिक रूप से शृंगार के बाद रोद्र व अद्भुत रस का भी कवि ने यत्किंचित् प्रयोग किया है। बालक वर्धमान की परीक्षा हेतु भयंकर सर्प बनकर आये देव के रौद्र स्वरूप एवं व्यवहार में इसकी झांकी होती है–

अलक्त गुंजा-सम नेत्र क्रोध में,
कराल नासा-पुट घूम छोड़ते,
स्फुलिंग-माला मुख से निकालता
खड़ा हुआ काल-कराल सर्प था।[3]

इसी प्रकार चन्दना के कथा-प्रसंग में करुण रस की निष्पति करने का कवि ने कुशल प्रयास किया है, तथा महावीर की दीर्घ तपस्या के समय देव, मानव व पशुओं के द्वारा पहुंचाई गई यातना और कष्टों के मार्मिक वर्णनों में पाठक को करुण रस की अनुभूति हो सकती है। राजकन्या चन्दना कर्मवश दुःखद परिस्थितियों में पड़कर दासी से भी निम्न दशा प्राप्त करती है–

अघोत-वस्त्रा, अभिता अशंसिता,
अशोच-देहा, अभगा, अभागिता,

---

1. लक्ष्मीचन्द्र जैन–'वर्द्धमान' महाकाव्य की भूमिका, पृ॰ 10.
2. डा॰ बनवारीलाल शर्मा–स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी प्रबन्ध काव्य, पृ॰ 61.
3. अनूप शर्मा–'वर्द्धमान', पृ॰ 266-37.

अदर्शनीय, अनलंकृता, अ-भा,
अभागिनी भी अबला अमानुषी।
'परन्तु तो भी निज-मातृ-दीक्षिता,
अजस्र ही पंच-नमस्क्रिया-युता,
विजेन्द्र-पादावनता सदैव सो
निहारती थी पद देव-देव का।
कमी रही सुन्दर राज-कन्यका,
अरण्य-क्रीड़ा करती छली गयी,
जहां किसी कामुक यक्ष ने उसे
कुवासना से निज साथ ले लिया।[1]

इस प्रकार 'वर्धमान' महाकाव्य में मुख्यतः शान्त रस के साथ-साथ शृंगार, करुण एवं रौद्र-रस का भी यत्किंचित समायोजन किया गया है।

प्रकृति-चित्रण :

महाकाव्य में कथावस्तु, नेता एवं रस की उत्कृष्टता एवं उत्कटता पर जोर दिया जाता है। इसके साथ ही महाकाव्य में विविध वस्तु-वर्णन, संध्या, सूर्योदय चन्द्रोदयादि प्रकृति के नाना तत्वों का कलात्मक वर्णन जहां एक ओर से महाकाव्य में रसात्मकता व सौन्दर्य भर देता है, वहां दूसरी ओर उसके कलेवर को पुष्ट करने में सहायक रहता है। प्रकृति के सुरम्य ललित अंगों के मनोरम्य वर्णन बिना माधुर्य की अनुभूति व भावोत्कर्ष संभव नहीं। आदि काव्य से लेकर अधुनातम काव्यों में प्रकृति के विविध रूपों को शब्द बद्ध किया गया है। कहीं प्रकृति का स्वतंत्र वर्णन होता है, तो कहीं प्रकृति के उपमानों द्वारा मानव सौंदर्य की श्रीवृद्धि। कहीं उसका मानवीकरण, तो कभी-कभी मानव के लिए कौतूहल का विषय बनती है। कहीं पर अपने सरस स्निग्ध आंचल में मानव को आश्रय देती है, सुख और शांति प्रदान करती है, तो कहीं वह निवृत्ति-मूलक मानव की तपोभूमि बनती है। कहीं वह अभिसारिका है, तो कहीं दूतिका बन जाती है। कहीं वह मानव को आनन्द प्रदान करती है, तो कहीं वह मानव के सुख-दुःख से स्पन्दित होती है और मानव को सांत्वना प्रदान करती है। एवं कहीं कवि प्रकृति की ओट में अपने दार्शनिक सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति करता है।[2] परम्परानुसार प्रकृति वर्णन दो प्रकार का होता है–(1) आलम्बन गत (2) उद्दीपन गत।

---

1. अनूप शर्मा–'वर्द्धमान', पृ॰ 485, 486-184, 188, 187.
2. प्रो॰ दमयन्ती तालवार–'सिद्धार्थ में प्रकृति चित्रण' नामक निबंध, पृ॰ 92-93. अनूप शर्मा–'कृतियां और कलां' के अन्तर्गत।

'वर्द्धमान' में कवि अनूप जी ने स्थान-स्थान पर प्रकृति का कहीं उद्दीपन रूप में तो कहीं आलम्बन रूप में वर्णन किया है। उन्होंने परम्परागत प्रकृति-वर्णन को अनुभूति की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है, फिर यह अनुभूति प्रेम की हो, सौंदर्य की हो, वैराग्य की हो या चिन्तन-मनन-प्रेरणागत हो। परिणामस्वरूप कथा की कलात्मकता ही नहीं वरन् उसकी प्रभावोत्पादकता तथा मार्मिकता भी बढ़ जाती है।

आलम्बन रूप में प्रकृति :

'वर्धमान' में प्रकृति नाना रूपों में बिम्बित होती है। यत्र-तत्र सर्वत्र प्रकृति दृश्यमान होती है। प्रारंभ के प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय सर्ग में प्रकृति एवं विविध वस्तु वर्णनों के लिए कवि को काफी अवकाश मिलता है। चौथे सर्ग में नव-प्रभात एवं उषा के वर्णन में कवि की कुशलता द्रष्टव्य है। प्रकृति कहीं मुक्त रूप में विहरती मानव जीवन को उच्च आनंद अर्पित करती है, तो वहीं कुमार वर्धमान की वैराग्य भावना को उद्दीप्त करने में सहायता करती है। 'वर्धमान' महाकाव्य का प्रारंभ ही संकेत कर देता है कि कवि प्रकृति-प्रेमी है। क्योंकि कवि ने इसका प्रारम्भ नमस्कार-क्रिया और कथावस्तु-निर्देश से न कर भारत-भूमि की महत्ता अंकित करके किया है। कवि भारत की प्रकृति का गौरव-गान कर उठते हैं–

समुच्च-आदर्श-विधायिनी मही,
प्रसिद्ध है भारत सर्व विश्व में,
यहां महा-मंत्र-मयी प्रभा लिए
सुधर्म साम्राज्य सदैव सोहता।

जहां मही का दृढ़ मेरु-दंड-सा
समुच्च प्रालेय-गिरीन्द्र राजता,
महीध्र कैलाश विशाल मुंड-सा,
किरीट-सा मेरु विराजता जहां।

सु-केश-सी कानन-श्रेणियां जहां,
प्रलंब-माला-मयि-अर्क-जान्हुजा,
कटिस्थ विन्धयाद्रि नितम्ब देश-सा,
लमा पद-क्षालन-शील सिंघु है।[1]

आलंबन रूप में प्रकृति का मोहक रूप 'वर्धमान' के प्रारंभिक सर्गों में दृष्टिगत होता है। सूर्योदय व प्रभात का मनोहारी वर्णन देखिए–

1. अनूप शर्मा–'वर्द्धमान', पृ॰ 37-9, 10, 11.

प्रभात के कोमल कंप-युक्त-से,
पखे गुलाबी पद पूर्व-शीर्ष में,
कि अंशु के फाल चले महीध्र पे
दिनेश यों मोक्तिक-बीज वो रहा।[1]

उषा का स्वागत करते हुए कवि उल्लखित होकर गा उठते हैं–

निशा-मुषे! स्वागत है उषे! तुझे
सुदेवते! सुन्दरि! लेश-लज्जिते।
त्वदीय जो स्वर्णिम अंशुकावली,
लगी अंगों में दिन के स्फुलिंग-सी।
त्वदीय वो अंशुक अंशु से बना
उषे! समाच्छादित अर्ध-व्योम में,
हुआ, कि मोती उससे गिर पड़े,
झडे अंगों पे बन ओस-बुन्द ही।[2]

इसी प्रकार पांचवें सर्ग में भी शारदीय निशा का, सातवें सर्ग में वसन्तु ऋतु के सौंदर्य का तथा नवें सर्ग में ग्रीष्म की दारुण गर्मी तथा उसके परिणामस्वरूप वन-उपवन व पशु-पक्षियों पर पड़ने वाले उसके तीव्र प्रभाव का कवि ने सुन्दर वर्णन किया है। छठे सर्ग में प्रभाती दृश्यों का विविध रूप व्यक्त किया गया है। सातवां सर्ग तो पूर्णतः प्रकृति-चित्रण से ही चित्रित रहा है। इस सर्ग में वसन्त ऋतु के वर्णन से प्रारंभ कर उसके वैभव रूप फल-फूल, पुष्प-वाटिका एवं विविध पक्षियों की क्रीड़ा व आनंदोल्लास से सर्ग को मोहक बनाया गया है। त्रिशला देवी अपनी सहेलियों तथा उसकी परिचर्या के लिए नियुक्त की गई दासियों के साथ पुष्प वाटिका में गर्भावस्था के समय में नित्य-विहार करती है, तब प्रकृति भी अपने प्रफुल्ल रूप में मंत्र-मुग्ध होकर मानो राजरानी को गर्भभार की अलसित स्थिति में आनंद पहुंचाकर मनोरंजन करती है–

स्वकीय पुष्पांचल से वसन्त भी,
बिखेरता पुष्पित कुड्मलादि है,
प्रतान से पुष्प-प्ररोह ऊर्जना,
गिरा रही पुष्पव रम्य रेणु है।

---

1. अनूप शर्मा–'वर्द्धमान', पृ० 120-14-15.
2. वही, पृ० 123-24, 25.

मनोहरा देव-प्रिया वसन्त जा,
बना रही उत्तम पुष्प वाटिका,
प्रमोदिनी सुन्दर भद्र-वल्लरी
उपाधि पाती सित गन्धराज की।
मनोज्ञ-सौंदर्य-प्रसन्न वर्ण में
प्रसून के प्राण छुपे हुये शुभे!
नसों-नसों में जिनकी नवा-नवा
स-भेद भाषा मृदु प्रेम की लिखी।[1]

इसी सर्ग में विविध-पुष्पों की प्रकृतिदत्त शोभा व महत्व के वर्णन के साथ गुलाब के प्रति सम्बोधन, भ्रमर एवं तितली, हंस व कोकिल के प्रति सखियों का सम्बोधन, त्रिशला का प्रकृति सौंदर्य, आश्चर्य-आनंद व मन-वहेलावादि रम्य भावों का कवि ने मधुर भाषा में निरूपण किया है। नवम् सर्ग में कवि ने ग्रीष्म के तीव्र ताप का वर्णन किया है, जिसके अन्तर्गत ऋजुबालिका नदी के तट पर स्थित उपवन में बाल-साथियों के साथ क्रीड़ा के लिए आये वर्धमान के द्वारा ग्रीष्म के भयंकर निदाध से त्रस्त पशुओं की व प्रकृति की करुण स्थिति का वर्णन है। ग्रीष्म ऋतु ने चारों ओर अपना प्रभाव जमा दिया है। पृथ्वी भी कैसी हो गई थी–

कहीं दु:खी चित्त-प्रतप्त थी धरा,
कहीं मही थी खल-वाक्य-दाहिनी,
परन्तु धात्री-सह-पाद भूल को,
अपांसुला-सी तजती न छांह थी।
अरण्य गंभीर अशब्द से कहीं,
कहीं महाक्रोश-युता वनस्थली
कही महा धर्म-प्रतप्त मेदिनी,
कही धरा शीतल नीम-छांह में।[2]

ऐसे ग्रीष्म के दाहक ताप में कहीं वन में मयूर, कुरंग, हाथी आदि प्राणी तरु-छांव में बैठे अलसा रहे हैं, तो कहीं पानी में बैठकर शीतलता प्राप्त करने की कोशिश करते हैं–

कहीं घने भू-सह नीम के तले,
मयूर बैठे दिन काटते लसे,

अनूप शर्मा–वर्द्धमान, पृ॰ 206-11, 22, 23.
अनूप शर्मा–वर्द्धमान, पृ॰ 257-10, 11.

कहीं किसी शाद्वला में विराजते
कुरंग थे संग कुरंगिनी लिये।
करेणु खाता फल सल्लकी मुदा,
वरेणुका थी उसको खिला रही,
समीप ही वारण गर्जते हुए
बना रहे कानन शब्द-युक्त थे।
कहीं-कहीं हंस तडाग-तीर पे,
महान गंभीर जहां कमन्ध था,
वहां प्रसन्नता ध्वनि थे सुना रहे,
विलासिनी-नुपुर-तुल्य मंजुला।[1]

ऋजुबालिका नदी की सुंदरता, गंभीरता एवं महत्ता का वर्णन पूरे दसवें सर्ग में किया गया है। इसके सुरम्य तट पर कुमार वर्द्धमान जीवन-मृत्यु, संसार की क्षणिकता तथा मृत्यु की नित्यता आदि पर गंभीरता से सोचते-विचारते हैं। प्रारम्भ में कवि ने नदी की स्वच्छता-शीतलता एवं तट की रम्यता का शब्द-चित्र सा खींचा है–

समीप ही क्षत्रिय-कुण्ड ग्राम के,
प्रवाहिता थी ऋजुबालिका नदी,
कभी-कभी वीरकुमार जा वहां,
प्रसन्न नैसर्गिक दृश्य देखते
हिमाद्रि से उद्‌गमिता तरंगिणी
प्रवाहिता मंद-जवा मनोहरा
प्रभात संध्या ध्वनि नीर की जिसे

+ + + +

बही चली आ ऋजु बालिके! प्रिये!
बढ़ी चली आ सहसा पयोगिधे।
प्रवाह तेरा कमनीय कान्त है
समीप तेरा बहुधा प्रशान्त है।[2]

उद्दीपन रूप :

द्वितीय सर्ग में प्रकृति राजा सिद्धार्थ एवं रानी त्रिशला के प्रगाढ़ प्रेम को

1. देखिए–वर्द्धमान-महाकाव्य, पृ॰ 258-5-7-9.
2. देखिए–वर्द्धमान-महाकाव्य, पृ॰ 287-288, 1-2, 14.

अभिव्यक्त करने में उद्दीपक के रूप में चित्रित है। प्रेमी सिद्धार्थ अपनी सौन्दर्यवती रानी त्रिशला के देह-सौन्दर्य से प्रभावित होकर उनका नख-शिख वर्णन करते हैं, तब प्रकृति भी मानो उनकी सहायता के लिए वर्षा ऋतु का रूप धारण करती है। आषाढ़ के काले बादलों में दामिनी लुक-छिप अपना उज्ज्वल स्मित अंकित करती है। कवि वर्षा ऋतु का कमनीय चित्र अंकित करते हैं कि–

अनूप आषाढ़ घनावली घनी,
घिरी हुई थी अति मोद-दायिनी
निसर्ग-संपत्ति-विधायिनी मुदा
मनोज्ञ वर्षा-ऋतु वर्तमान थी।
मनोज्ञ-हस्ती-सम वारि वाह थे,
बलाक-श्रेणी सित दंत-पंक्ति थी,
विराजती अंकुश-सी क्षण-प्रभा
झड़ी बंधी मंजु मदाम्बु-धार की।
सु-कामिनी जो अब मानिनी रही,
मनोज्ञ की है अपराधिनी वही।
चतुर्दिशा-दामिनी व्याज व्योम में
समा गयी काम-नृपाल-घोषणा।[1]

शयन कक्ष में तन्द्रावस्था में सोई हुई त्रिशला वर्षा के उद्दीपक मोहक वातावरण में सिद्धार्थ की आसक्ति को तीव्र बना रही थी–

नरेन्द्र भी यौवन युक्त है तथा
बहु महा-प्रौढ़ पयोधरा लसी,
इसीलिए संगम लालसान्विता
तरंगिणी-सी त्रिशला लसी तभी।
पयोद गर्जे-जलधार भी गिरे,
तडिल्लता अम्बर में अशान्त हो,
महीप को क्या था, निकेत में
प्रिया महा औषधि सी विराजती।[2]
जिस प्रकार पयोधर अंक में
मचलती तड़िता अनुरक्त हो

1. अनूप शर्मा–वर्द्धमान, पृ॰ 77-15-16, 17.
2. अनूप शर्मा–'वर्द्धमान', पृ॰ 80-27-80.

उस प्रकार समीप नृपाल के
विलसती त्रिशला अति मुग्ध थी।[1]

प्रकृति का आलंकारिक वर्णन :

प्रकृति के अंगों का प्रयोग कवि ने त्रिशला की सौन्दर्य-श्री को अभिव्यक्त करने में भी किया है-यथा-

त्वदीय पाताल-समान नाभि है
उरोज हैं उच्च नगाधिराज-से।
मनोज्ञ वेणी इस भांति है लसी।
कालिन्दीनी का विनिपात हो यथा।
मृगांक से आनन पे पड़ी हुई
पयोद-माला-सम केश-राशि को।[2]

हेमन्त ऋतु के प्रभात का कवि वर्णन करते हैं-

दरिद्र-आशा-सम शीत-यामिनी
बड़ी कि तृष्णा अनुदार-चित्त की,
कि द्रोपदी के पट-सी प्रलंविनी
सुदीर्घ हेमन्तिक शर्वरी हुई।[3]

प्रकृति वर्णन निरन्तर कथा को पुष्ट करता है, बल्कि कभी-कभी तो यों प्रतीत होता है कि कवि प्रकृति को छोड़कर आगे नहीं बढ़ पाते। कहीं-कहीं प्रकृति वर्णन में स्थूलांकन की विधि दृष्टिगोचर होती है, जिससे विवरण की प्रधानता व्यक्त होती है-उदाहरण के लिए द्रष्टव्य है-

प्रभात सजाया, तम नष्ट हो गया,
त्विषा लगी पूर्व दिशा प्रकाशने।
समीर डोला, सुमनावली हिली,
प्रकाश फैला, दशदिग्विभाग में।

कहीं सादृश्यमूलक अलंकारों के प्रयोग द्वारा अलंकृत पद्धति का भी कवि ने प्रयोग किया है-

सरोज नेत्रा सितचन्द आनना।
महान रम्भा तरुवृन्द सौख्यदा

---

1. अनूप शर्मा-'वर्द्धमान', पृ० 81-31.
2. वही, पृ० 83-31.
3. वही, पृ० 175-10.

सुभांबरा, गुप्त वयोचर प्रभा।
लगी नवोढ़ा–सम शारदी निशा।

'अनूप शर्मा' को हरिय 'पद्धति इतनी अधिक प्रिय थी कि उन्होंने छायावाद के मानवीकरण का प्रयोग नहीं किया है। प्रकृति दर्शन का, मन पर पड़ने वाले प्रभावों का भी वर्णन बहुत कम है। प्रेम के प्रसंग में कहीं–कहीं मन की आसक्ति का वर्णन अवश्य मोहक बन पड़ा है–

लगा रहूँ यावक तुल्य पांव में,
रचा रहूँ आननमध्य पान–सा।

प्रेम और प्रकृति के विवरणों का इस काव्य के पूर्वार्द्ध में अमित विस्तार मिलता है, यहाँ तक कि कथासूत्र अत्यधिक मंथरता के साथ आगे बढ़ता है–अष्टम सर्ग में महावीर का जन्म हो पाता है।[1]

उपदेश के रूप में :

'वर्द्धमान' में प्रकृति कहीं-कहीं चिन्तन-प्रेरक के रूप में भी लक्षित होती है। प्रकृति की शान्ति व सुंदरता कुमार को अपनी ओर आकृष्ट करती है। कुमार प्रकृति की गोद में घण्टों बैठकर चिन्तन-मनन करते रहते हैं। उनकी तात्विक विचारधारा को पुष्ट करने में प्रकृति पूर्णतः सहायक होती है। सन्ध्या समय की प्रकृति व सान्ध्य तारा के धीर-गंभीर स्वरूप को विलोक कर वर्द्धमान के हृदयकाश में अनेकानेक दार्शनिक विचार-स्फुलिंग प्रकाशित होते हैं। नवें सर्ग में वर्द्धमान कुमारावस्था में ही ऋजुवालिका नदी के सुरम्य तट दीर्घ समय तक बैठकर प्रकृति के नाना तत्वों के साथ एकात्मभाव साधकर जीवन के गूढ़ रहस्यों पर सोचते रहते हैं। ग्यारवें सर्ग में दिनान्त-वर्णन के द्वारा महावीर की आध्यात्मिक विचारधारा अभिव्यक्त होती है। प्रकृति यहाँ रहस्यात्मक बनकर कुमार के चिंतन को पुष्ट करती है–यथा–

मनुष्य का जीवन एक पुष्प है,
प्रफुल होता यह है प्रभात में,
परन्तु छाया लख सान्ध्य काल की,
विकीर्ण हो के गिरता दिनान्त में।
अदीर्घ है जीवन दुःख से भरा,
प्रसून फूला, मुरझा गया यथा,
प्रभात में आकर ओस-बूँद-सा,
सरोज को कान्तकिया, चला गया। 327-49

1. डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय–'अनूप शर्मा–कृतियां और कला' के अन्तर्गत 'वर्द्धमान और द्विवेदीयुगीन परम्पराओं' शीर्षक निबंध, पृ० 156.

प्रकृति-क्रम के साथ मानव-जीवन की तुलना करते हुए कुमार सोचतें हैं–

मनुष्य वालाएण–सा उगा, जगी
फ्योज–नैत्रा–सरसी प्रसन्निता,
प्रगल्भता–प्राप्त हुआ कि आ गयी
समेण–सन्ध्या एण में षिष्णता।[1]

कवि की कल्पना का चमत्कार सोलहवें सर्ग में दिखाई पड़ता है, जहाँ 'केवल ज्ञान' प्राप्त करने के बाद कुबेर का रथ महावीर की आत्मा को लेने आता है। उड़ते हुए रथ से नीचे पृथ्वी की शोभा का वर्णन भी मिलता है और देवलोक का भी भव्य वर्णन चलता है–

प्रवृत्त नीराजन में भू–चक्र था,
स्फुलिंग–लीलायुत घुमकेतु था।
कला दिखाती बहु नृत्य की मुदा,
मया, विशाखा, कृतिका, सरोहिणी।

यत्र–तत्र कितने स्थलों पर महाकाव्य में प्रकृति का प्रेरणाप्रद और चिंतनात्मक वर्णन उपलब्ध होते हैं। डा॰ वीणा शर्मा इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करती है कि "महाकाव्य शैली के अनुकरण में इसमें अनेक वर्णनों का विनिवेश हुआ है। वर्णन जीवन से भी सम्बन्धित है और प्रकृति से भी। मनुष्य की अन्तः प्रकृति भी उपेक्षिंत नहीं हुए है। सिद्धार्थ के यज्ञ, त्रिशला के रूप और गुण तथा बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद् आदि ऋतुओं के वर्णनों से यह रचना सजीव हो उठी है"।[2]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि प्रकृति के सुरम्य, कोमल स्वरूप को जितना स्थान मिला है, उतना ही उसके चिन्तन-प्रद व रहस्यात्मक स्वरूप को भी कवि ने अपनी उद्देश्य पूर्ति के लक्ष्य में समाविष्ट किया है। पूरे महाकाव्य में प्रकृति के भिन्न-भिन्न अंगों व स्वरूपों का आलम्बन व उद्दीपन रूप में वर्णन कर महाकाव्य को आकर्षक बनाने के साथ प्रकृति वर्णन के द्वारा कथावस्तु की सूक्ष्म डोर को पुष्ट कर पाठक को उसकी कमी नहीं महसूस होने दी है।

'वर्द्धमान' काव्य में प्रतिबिम्बित दर्शन :

'वर्द्धमान' महाकाव्य में भगवान महावीर का संपूर्ण जीवन अंकित है,

1. अनूप शर्मा–'वर्द्धमान', पृ॰ 322–28.
2. डा॰ वीणा शर्मा-आधुनिक हिन्दी महाकाव्य, पृ॰ 45.

अतः स्वाभाविक है कि उनकी दार्शनिकता को भी कवि ने इसमें चर्चित किया है। हमारे जीवन-विकास की राह में दार्शनिक विचारधारा जाने–अनजाने प्रभाव डाले बिना नहीं रहती। किसी सम्प्रदाय विशेष से सम्बंधित साहित्य में तो दार्शनिक विश्लेषण स्फुट होगा ही। 'वर्द्धमान' में जहाँ एक ओर कवि ने गूढ़ आध्यात्मिक सिद्धान्तों की चर्चा करके त्रि–रत्न, आस्रव, संवर, बन्ध, मोक्ष, निर्जरा, कर्म, जीव–सजीव, पाप-पुण्य के सैद्धांतिक विषयों पर प्रकाश डाला है, वहाँ लौकिक धर्म की चर्चा भगवान महावीर से करवाकर धर्म के व्यावहारिक पक्ष का भी समर्थन किया है। ऐसे प्रसंग बोझिल न बनकर आत्म-विकास के साथ मानव-कल्याण के लिए सदैव प्रेरित करते हैं। जहाँ शास्त्रीय सिद्धान्तों की चर्चा अधिक हुई है, वहाँ यत्किंचित् निरसता भी आ गई है। क्योंकि सूक्ष्म सैद्धांतिक ज्ञान सबके सामर्थ्य की बात नहीं होती, न ही सभी के हृदय की रसात्मक वृत्ति के अनुकूल होता है। 'वर्द्धमान' जैसे महाकाव्य में जैन दर्शन का विस्तृत विवेचन हुआ है। वास्तव में इसके रचयिता का उद्देश्य जैन दर्शन के सिद्धान्तों को काव्य में निरूपित करना रहा हैं जीव, सजीव, आश्रय, संवरबन्ध, निर्जरा, मोक्ष आदि जिन सात तत्वों का वर्णन जैन दार्शनिकों ने किया है, उन सभी का विवेचन आलोच्य महाकाव्य में हुआ है।[1] यहाँ हम जैन दर्शन के सैद्धांतिक पक्ष की चर्चा के उपरान्त व्यावहारिक पक्ष को अनूप जी ने किस प्रकार आकर्षक शैली में गुम्फित किया है, इसका विवेचन करना चाहेंगे।

जैन दार्शनिक इन तत्वों को दो रूपों–में विभक्त करते हैं–अस्तिकाय द्रव्य तथा अनस्तिकाय द्रव्य। अस्तिकाय द्रव्य दो प्रकार के होते हैं जीव और सजीव तथा अनस्तिकाय द्रव्य केवल 'काल' है। जीव चेतन द्रव्य है और धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्‌गल ये चार सजीव के अन्तर्गत आते हैं। इस प्रकार पाँच अस्तिकाय के तत्व और एक-अनस्तिकाय (काल तत्व) को मिलाकर छः द्रव्य जैन-दर्शन में प्रसिद्ध हैं।

आस्रव और बन्धन :

जैन दर्शन की तरह अधिकांश दर्शन यह मानते हैं कि जीव अपने वास्तविक रूप में शुद्ध–बुद्ध चेतन है, परन्तु देह के बन्धन में पड़कर अनेक प्रकार के दुःख भोगता है। जैन दर्शन चैतन्य जीव के बंधन पर अपने ढ़ंग से विचार करता है। जैन–दर्शनानुसार शरीर का निर्माण जड़ तत्वों (पुद्‌गलों) से

1. डा० वीणा शर्मा-आधुनिक हिन्दी महाकाव्य के अन्तर्गत 'महाकाव्य में दर्शन की धारा', शीर्षक अध्याय, पृ० 267.

होता है ये पुद्गल इसलिए कहलाते हैं कि इनका संघटन और विघटन संभव है। (पूरयन्ति, गलनित-सर्वदर्शन संग्रह–आहृत दर्शन) विशिष्ट प्रकार के शरीर के लिए विशिष्ट प्रकार के पुद्गलों की आवश्यकता होती है। इन पुद्गलों का संचय मनुष्य के कर्मों के अनुसार होता है। "जीव की ओर कितने तथा किस प्रकार के पुद्गल कण आकृष्ट होंगे, यह कर्म या वासना पर निर्झर है। ऐसे पुद्गल कण को कर्म पुद्गल का नाम दिया जाता है इसी को कर्म भी कहते है। जीव की ओर जो कर्म पुद्गलों का प्रवाह होता है, उसे 'आस्रव' कहते हैं"[1] क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषाय ही कर्म पुद्गलों के प्रवाह या आस्रव के कारण है।[2] इस प्रकार जैन दर्शन के अनुसार कषायों के कारण जीव का कर्मानुसार पुद्गलबद्ध होना ही 'बन्धन' है। जैसा कि उमास्वाति जी कहते हैं 'सकषायत्थात जीवः कर्मणो योग्य पुद्गलान् आवानै स वन्यः।[3] महाकवि अनूप शर्मा भी आश्रम के सिद्धान्त का उल्लेख करते हुए 'वर्द्धमान' में लिखते हैं–

सा राग आत्मस्थित राग भाव से,
समागता पुद्गल राशि कर्म हो।
शरीर में आगत दुःख-दायिनी,
प्रसिद्ध है आस्रव नाम से सदा। 65.391

जब तक जीव की ओर कर्माश्रय होता रहता है, तब तक जीव का मुक्ति पाना असंभव है–

सलील साश्रय हो किस कूप में
विगत मीर जमता नहीं,
इस प्रकार स-कर्म मनुष्य को,
कब अवाप्त हुई गति निर्जरा ? (64-391)

संचर-निर्जरा :

जैन धर्म मोक्ष के लिए दो कारण मानते हैं–संवर और निर्जरा। गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्ष्या, परिवह, तप, चारित्र्य आदि के द्वारा आश्रव क्रिया संभव हो सकती है। आलोच्य महाकाव्य में संवरा मिचैया क्रिया का वर्णन इसी प्रकार मिलता है–

मुनिस योग–व्रत–गुप्ति आदि से
स–यत्न कर्माश्रव–द्वार रोकते,

---

1. भारतीय दर्शन : डा० दत्त एवं चटर्जी, पृ० 69.
2. उमास्वाति–तत्यार्थ सूत्र, पृ० 8, 90.
3. वही।

वही क्रिया संवर नाम-धारिणी
विमुकित संपादन में अमोध है।–13-78

संवर के उपरान्त 'निर्जरा' नामक स्थिति आती है। जीव में प्रविष्ट हुए कर्मों को तपस्या आदि से नष्ट कर देना ही 'निर्जरा' है। यह दो प्रकार की होती है।–अकाम निर्जरा और सकाम निर्जरा–है। यम धारण करने वाले योगियों की निर्जरा सकाम होती है तथा अन्य प्राणियों की निर्जरा अकाम अर्थात् स्वत: होने वाली होती है। महाकवि अनुप ने निर्जरा और भेदों का वर्णन वही विशिष्टता से किया है। 'निर्जरा' के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए उसे भक्ति-प्राप्ति में सहायक मानते हुए वे लिखते हैं–

यथा यथा योग तपादि यत्न से,
करे यती नित्य स्व-कर्म निर्जरा,
तथा-तथा ही उसके समीप में,
अदृश्य आती शुभ मोक्ष-इन्दिरा।
अतीत–से संचित कर्मराशि का,
विनाश होना अविपाक निर्जरा,
कही नई सिद्ध मुनीन्द्र से सदा,
अवश्य ही संग्रहणीय साधना।

तथा कर्मों की निर्जरा करने से मनुष्य मुक्ति पाने में सफल हो सकता है। यथा–

स्वभाव से ही वह, जो मनुष्य के,
स्वतंत्र कर्मोदय–काल में उठे,
सदा परित्याग करे स–यत्न सो,
विकार-युक्त सविपाक निर्जरा। 13-78

कर्माश्रवों के निरोध और मुक्ति की अवाप्ति के लिए साधनों का वर्णन जैन ग्रन्थों में हुआ है, उनका सांकेतिक उल्लेख इस महाकाव्य में मिल ही जाता हैं। जिन-धर्म में सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और चरित्र इन त्रि-रत्नों को मोक्ष का मार्ग बतलाया गया है। (सम्यग्दर्शन ज्ञानचरित्राणि मोक्ष मार्ग:। तत्वार्थ सूत्र, 1,1) 'वर्द्धमान' में त्रिरत्न के प्रकाश की छाया इस प्रकार दिखाई देती है–

अमोघ रत्न त्रय के प्रभाव से,
अवाप्त होती वह मुक्ति जीव को,
आनन्द आनन्द समुद्र-रूपिणी
प्रसिद्ध है जो जिन-धर्म-शास्त्र में। 13-30

जैन धार्मिकों ने दशांग धर्म, द्वादश अनुप्रेक्ष्या, पंचमहाव्रत, द्वाविशंति

परिषहजप को *कर्मात्रय-निरोध के लिए आवश्यक माना है। संवर क्रिया पर* विचार करते हुए इसमें इनका उल्लेख किया है। ये सम्यक् चरित्र के अत्यावश्यक अंग हैं। जैन धर्म में दस प्रकार के धर्मों को आचरणीय माना है, ये हैं क्षमा, मार्दव (मृदुता), आर्जन्य (सरलता), साध, सत्य, संयम, तप, त्याग, अकिंचनत्व और ब्रह्मचर्य (तत्वार्थ सूत्र 9.6) इस दशांग-शोभी धर्म का रूप 'वर्द्धमान' की इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है–

क्षमा, दया, संयम, सत्य, साध से,
तपाऽऽजैव-त्याग-विराग भाव से
कि युक्त जो मार्दव, ब्रह्मचर्य से
दशांग शोभी जिन धर्म रूप है। 28-95

अनित्य-अशरण-संसार, अन्वत्व, अशुचि, संवर, निर्ज़रा, लोक, बोधि और धर्म के चिंतनस्वरूप जो द्वादश अनुप्रेक्षाएं जैन धर्म में मान्य हैं, उन सभी का विस्तृत विवेचन 'वर्धमान' महाकाव्य के तेरहवें सर्ग में हुआ है। पूरा तेरहवाँ सर्ग दार्शनिक सिद्धान्तों के काव्य मय निरूपण से अंकित है और इन सिद्धान्तों को जैन दर्शन की विशिष्टताओं को समझे बिना थोड़ा-सा कठिन है। जबकि सामान्य व्यवहारिक गुण-धर्मों एवं सनातन सत्यों पर जहाँ प्रकाश डाला गया है, वहाँ सरलता से बोध-ग्रहण हो पाता है।

जैन दर्शन में लोभ, क्रोध, मान का त्याग करने के लिए कहा गया है। तदनन्तर मनुष्य कर्मों की निर्जरा कर पाता है। कवि ने भी क्रोध के बुरे परिणाम रूप पतन की चर्चा की है। महावीर की वाणी क्रोधरहित है, उसे सदा पदार्थ चाहिए। और जब मनुष्य ने क्रोध छोड़ दिया तो फिर शान्ति ही शान्ति–

न क्रोध हो तो फिर पाप भी नहीं,
न कोप हो तो अभिशाप भी नहीं
न मन्यु हो तो न अमान भी कहीं,
न रोष हो तो न अशान्ति भी कहीं। पृ॰ 53, 58

माया के प्रमुख अंग रूप 'लोभ' के विषय में कवि कहते हैं। प्रसूति है लोभ महान वैर की, प्रसिद्ध क्रोधादिक का पिता यही। जैन धर्म के मार्ग के सम्बन्ध में कवि के विचार कितने उच्चकोटि के हैं–

ऐसा मार्ग प्रशस्त है, न जिसमें है भ्रान्ति-शंका कहीं,
छायी अम्बर मध्य जैन मत की आनंद कादम्बिनी।
देती सौरम्य बसन्त के पवन-सी समायिकी साधना,
काम-क्रोध मदादि कंटक बिना सन्मार्ग धर्म का।

भगवान महावीर मानसिक विकारों को त्यागने के लिए सिशंदता से उपदेश देते हैं। तथैव करुणा की विशेषता बताते हुए उसकी महमिा का वर्णन 'वर्धमान' में पाया जाता है। दया, प्रेम, ममता, सौख्य, समताभाव और प्राणीमात्र के प्रति अहिंसापूर्ण व्यवहार के लिए प्रभु मानव से अनुरोध करते हैं–

दया नरों की परम हितैषिणी,
यही महासम शोध ज्ञान है,
अहो! दयाहीन मनुष्य विश्व में
पवित्र-चारित्र्य प्रभाव शून्य है।

महाकवि अनूप जी ने महावीर के द्वारा जैन दर्शन के प्रमुख तत्वों-सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, और ब्रह्मचर्य की प्रतिष्ठा करवाकर रात्रि-भोजन-त्याग, कर्मों की निर्जरा, रति-मैथुन-स्वभाव, प्रमाद आदि त्यागों पर जोर दिया है– क्योंकि–

शरीर है निर्बल, काल निर्दयी

प्रभु ने धर्म सभा में सामान्य मानवोचित् सद् व्यवहार, सद्भावना का ज्ञान मनुष्यों को दिया, जो उन्हें सहज, सरल रूप से ग्राह्य हो सके। प्रभु सच्चे ब्राह्मणत्व के विषय में भी उचित ही कथन करते हैं। श्रेष्ठ ब्राह्मण शास्त्र में व लोक में किसे स्वीकृत किया जाता है, इस पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं।–

न स्वप्न में भी कहता असत्य है,
तथैव पूजा-रत ब्रह्म ध्यान में,
न लोभ-क्रोधादिक के अधीन जो,
वही सुना ब्राह्मण शास्त्र में गया। 531-25

तपोधनी, इंद्रिय निग्रही तथा महाव्रती, पीड़ित लोक-ताप से, जिसे मिला संगम, आत्म शान्ति का, कहा गया ब्राह्मण श्रेष्ठ वही। (पृ० 530-23)

कवि अनूप जी 'केवल ज्ञान' प्राप्त, विकार, विजेता, वीतारागी प्रभु महावीर को अपनी श-शत श्रद्धांजलि युक्त नमन करते हैं। नमन क्रिया का पुनः-पुनः उच्चारण करके कवि प्रभु की 'महावीरता' के जयघोष करते हैं। पूरा विश्व प्रभु की स्तुति वंदना करता है–

नरेन्द्र हो केवल ज्ञान राज्य के,
महेन्द्र हो भू-अवतीर्ण-स्वर्ण के,
प्रचार कर्ता नव-घर्म-तत्व के
नमामि हे नाथ! समस्त विश्व के।

"प्रणाम श्री सागर-ज्ञान सिन्धु को, प्रणाम-भू-भूषण विश्व बन्धु को, नामामि सत्यार्थ-प्रकाश-भानु को, नमामि तत्वार्थ विकास ज्ञान को।" महावीर की शरण-अशरण-उद्धारक एवं भवसागर पार करने वाली है–

है जैनेन्द्र पदारविन्द-तरणि संसार-पयोधिकी।

इस प्रकार धर्म और वैराग्य की भावना को लेकर लिखे गये इस महाकाव्य में यत्र-तत्र अनेक जगह पर दार्शनिक विचारधारा प्रकाशित की गई है। संसार की क्षण-भंगुरता एवं मानव-जीवन की क्षणिकता, जीवन-मृत्यु आदि पर 'वर्द्धमान' में सुन्दर विचार व्यक्त किये गये हैं। सांसरिक बन्धन व्यर्थ समझकर वैराग्य-भावना से अपने को आत्म-पराये की भावना से मुक्त समझना चाहिए, क्योंकि–

सहस्त्र माता, शत कोटि पुत्र भी,
पिता, असंख्यात मित्र भी,
अनन्त उत्पन्न हुए, जिये-मरे
न मैं किसी का, वह भी न माम की। स० 13-18

मनुष्य का जीवन कितना क्षण-भंगुर, अल्पजीवी है कि उस पर अभिमान घमण्ड या आसक्त होना निरर्थक है।

'सरोज-पत्र स्थित नीर बूंद की, मनुष्य की आयु अतीव चंचला।'

इसी कारण मनुष्य को सदैव धर्म-साधना एवं प्रभु पद-सैवी बनना चाहिए, क्योंकि जैन धर्म–

सदैव मोक्षप्रद जैन धर्म है, तथैव रत्न-त्रय साध्य मोक्ष है,
वितान है मोक्ष अनन्त संख्या का, प्रतान है सांख्या अनादि शक्ति का।

ऐसे जीवन-उद्धारक धर्म की शरण मनुष्य जन्म को सार्थक करने वाली हो तो इसमें आश्चर्य क्या? महावीर विश्व को एक रंगभूमि ही समझते हैं–

मनुष्य का जीवन रंगभूमि है,
जहाँ दिखाते सब पात्र खेल हैं,
कभी हिलाया कर सूत्रधार ने,
हुआ पटाक्षेप तुरन्त मृत्यु का। पृ० 306-86

उसी प्रकार जीवन-मृत्यु की नित्यता कवि ने स्वीकृत कर विरूप न बताकर नवजीवन का संदेश देनेवाला चित्रित किया है। क्योंकि मनुष्य का जीवन तो एक पुष्प समान है, जो सवेरे खिलता है, शाम को मुरझा जाता है या तो बसन्त-सा प्रारम्भ और निदाघ-सा अन्त है।–

मनुष्य का जन्म प्रभात-काल है,
तथैव है जीवन एक बार का,

तुरन्त लाती हिचकी दिनान्त है,

स-वेग आती फिर मृत्यु यामिनी। पृ० 98-308-95

इस प्रकार का जीवन-दर्शन पूरे दसवें सर्ग में दृष्टिगत होता है। जीवन सत्य का भी कवि उत्तम मार्ग इसी सर्ग से निर्दिष्ट करते हुए जीवन-मृत्यु की विशद्ता का निरूपण करते हैं। अनूप जी ने अपने काव्य में अत्यन्त व्यापक भावभूमि पर अपने जीवन दर्शन की अभिव्यक्ति की है। जीवन के लोक और परलोक दोनों पक्षों पर उनका ध्यान रहा है और दोनों की विस्तृत परिधि में उनकी मर्मस्पर्शिनी दृष्टि पहुँची है। उनके जीवन दर्शन में सांसारिक जीवन की सफलता का रहस्य अत्यन्त सरल ढंग से समझाया गया है। वे जीव जगत की यथार्थता से मुख नहीं मोड़ना चाहते और न मानव-जीवन को पलायनोन्मुखी बनाना चाहते हैं।[1]

इस प्रकार आधुनिक हिन्दी जैन महाकाव्यों में रस, नेता, कथावस्तु, जीवन-दर्शन आदि दृष्टिकोणों से 'वर्द्धमान' का न केवल महत्वपूर्ण स्थान है, बल्कि जैन धर्म स्वयं गौरवान्वित हो सकता है, क्योंकि हिन्दी जैन साहित्य में कथा-ग्रन्थ, निबंध साहित्य अथवा दार्शनिक तत्वज्ञान के ग्रन्थ और चरित ग्रन्थ-विशेष कर महावीर के जीवन सम्बंधी-बड़ी संख्या में दृष्टिगत होते हैं, जबकि महाकाव्यों की संख्या अत्यन्त अल्प है। 'वर्द्धमान' की चर्चा अनन्तर दूसरे महाकाव्य 'वीरायण' का अनुशीलन भी अपेक्षित है–

वीरायण :

दोहा-चौपाई शैली में ब्रज-अवधी मिश्रित भाषा में रचित-'वीरायण' महाकाव्य कवि मूलदास की यश-पताका का मानदण्ड है। यह ग्रंथ अभी तक विद्वानों द्वारा समीक्षित नहीं हो सका है।[2]

प्रयोजन व प्रेरणा :

महाकवि तुलसीदास जी के जन प्रसिद्ध महाकाव्य रामचरित मानस की भव्यता और लोकप्रियता से प्रेरित हो यह महाकाव्य रचा गया। 'रामचरित मानस' की मधुर भाषा शैली व राम-गुण कीर्तन से प्रेरित होकर सदानंदी पंथ के जैन साधु छोटेलाल जी महाराज ने 'फला' निवासी चारण कवि मूलदास जी को यह काव्य लिखने की प्रेरणा दी। अहमदाबाद के जिस उपाश्रय में वे

---

1. डा० रामगोपाल शर्मा : अनूप शर्मा, कृतियां और कला– अन्तर्गत निबंध –महाकवि अनूप का जीवन दर्शन, पृ० 176.
2. द्रष्टव्य डा० नटवरलाल व्यास 'गुजरात के कवियों की हिन्दी साहित्य को देन' पृ० 122

चातुर्मास के लिए ठहरे थे, वहाँ निकट ही औदिच्य ब्राह्मणों की बाडी में रामानंदी संप्रदाय की और रामायण प्रचार समिति द्वारा प्रभात फेरी में तुलसी रामायण के दोहे-चोपाई का मधुर स्वर में पठन-पाठन-कीर्तन किया जाता था।[1] इससे अत्यन्त प्रभावित होकर मुनि श्री ने सोचा कि 'मानव' राम को 'दैव' राम बनाने में तुलसी की रामायण का कितना बड़ा हाथ है। यदि उसी ढंग से भगवान महावीर की वैराग्य जीवनी एवं उनके तीर्थंकरत्व को गेय छन्दों में आबद्ध किया जाय तो पठन-पाठन की सुविधा से घर-घर में उसका प्रचार-प्रसार किया जा सकता है। इससे जैनेत्तर समाज में कम प्रसिद्ध महावीर चरित्र को लोकप्रिय बनाया जा सकता है। राम को अनन्त शक्तिशाली विष्णु के अवतार-रूप में उत्तर भारत के प्रत्येक आवास में प्रस्थापित व पूजित करवाने का संपूर्ण श्रेय तुलसीदास जी को दिया जाता है, यदि तुलसी न होते तो शायद राम भी भगवान राम के रूप में जनता के हृदय-सिंहासन पर बिराजने का उज्जवल स्थान शायद प्राप्त न कर पाते। इस तथ्य पर से छोटेलाल जी महाराज को 'रामायण' की तरह 'वीरायण' की रचना के लिए प्रेरणा मिली, किन्तु स्वयं हिन्दी भाषा वह महाकाव्य की शैली से अनभिज्ञ होने से उनके अनुयायी मूलदास जी को प्रेरणा व प्रोत्साहन दिया। क्योंकि रामानंदी संप्रदाय के साधु मूलदास जी को ब्रज-अवधी का ज्ञान था तथा इसी भाषा शैली में छोटी-छोटी रचनाएँ उन्होंने छोटेलाल जी को पहले सुनाई थीं। मूलदास जी ने जैन मुनि के आदेश को ग्रहण कर काव्य का प्रारंभ करने से पूर्व जैन धर्म के दार्शनिक ग्रन्थों और परम्परागत विशेषताओं का गहरा अध्ययन किया। छोटेलाल जी से प्रेरणा ग्रहण कर महाकाव्य की रचना संभव हुई। अतः स्वाभाविक है कि तुलसीदास की मधुर प्रभावोत्पादक भाषा-शैली और भक्तिपरक विचारधारा का प्रभाव अन्य कवियों की तरह मूलदास जी पर भी होगा। किसी पूर्ववर्ती महाकवि से प्रेरणा या प्रभाव ग्रहण करना साहित्य जगत की एक परम्परा सी है। 'वीरायण' में कवि ने प्रभु महावीर के दिव्य जीवन 'केवल ज्ञान' 'मोक्ष' व 'उपदेश' को मार्मिक व रोचक भाषा-शैली में विवेचित किया है। कथावस्तु का विवेचन करने से पूर्व संक्षेप में 'वीरायण' का रचना-काल एवं कवि की स्व-लघुता के संदर्भ में भी उल्लेख आवश्यक बना रहता है।

'वीरायण' का रचना काल और कवि का स्व-लघुता वर्णनः

'वीरायण' महाकाव्य की रचना का समय कवि ने स्वयं सप्तम कांड के अन्त में निर्देशित किया है—यथा—

1. द्रष्टव्य—छोटे लाल जी महाराज लिखित 'श्री वीरायणनी रचना'—गुजराती, भूमिका, पृ० 7.

'द्वय सहस्त्र में शुभ पंच वर्षे, अनूप मास अषाढ़ की।
द्वितीया तिथि शुक्ला मनोहर, मांगलिक हालार की।।
शुभ वार शुक्रे श्री विनेश्चर, वीर का अवतार की
मंगल कथा मूलदास कहि, कुछ क्षमा भंडार की।।[1]

अर्थात् विक्रम संवत दो हजार पाँच में अषाढ़ शुक्ला द्वितीया शुक्रवार के दिन हालार प्रान्त के जामनगर की मंगलभूमि पर इस पवित्र ग्रन्थ की रचना कवि ने श्री महावीर जीवन वृतान्त को लोकप्रिय बनाने के लिए की थी।

'वीरायण' महाकाव्य उदात्त-चरित नायक भगवान महावीर की जीवनी को आबद्ध करके रचा गया है। उसको उत्कृष्ट कोटि का महाकाव्य न स्वीकृत किया जाय तो भी महाकाव्य के नियमों का पालन अवश्य किया गया है। जैन प्रबन्ध काव्य में यत्र-तत्र कमियां या शिथिलता रह गई हैं, फिर भी अहिन्दीभाषी कवि के द्वारा लिखी जाने से उसका महत्वपूर्ण स्थान आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य में रहेगा ही। कवि स्वयं महाकाव्य में रह गये दोषों को तथा अपनी लघुता को स्वीकार करते हैं—वैसे यह स्वीकृति उनकी विनम्रता ही कही जायेगी-कवि अपनी अल्पता के संदर्भ में कहते हैं—

महावीर महिमा अमित, मोसे कहा न जाय।
क्षुद्र द्वीप में ज्यों कभी, महोदधि न भवाय।। 1-6।।
प्रभा पंतगन की कहाँ, कहाँ ज्योति घर ज्योत।
शशी साम्य क्यूं कर लहे, उड्डगन उदित बहोत।। 1-19।।

अपनी गलतियों के लिए क्षमा प्रार्थना करते हुए गुरु कृपा से ही यथाशक्ति वर्द्धमान-कथाकाव्य लिखने के संदर्भ कवि कहते हैं—

जनम, जगन, संयम, ग्रहन वर्द्धमान इतिहास।
गुरुवर का हूँ तो कहें प्रेम सहित मूलदास।। 3-467।।

कवि स्वीकार करते हैं—

यह दया संत सुजान के प्रोत्साहन से खास।
वीर जीवन कुछ वर्णन, यथामति मूलदास।। 3-467।।

कवि को कविजन कहलाने की कोई महत्त्वाकांक्षा नहीं है—

छन्द-प्रबन्ध भाव रस भेदो-कवित्त रीत कुछ नहि को कहेता।
इनका है अफसोस न मन में, मल गिनहूं न मोहि कवि जन में ।। 7-339।।

---

1. द्रष्टव्य—कवि मूलदास कृत—'वीरायण' महाकाव्य, सप्तम काण्ड, 342 पृ० 704. सर्वत्र कवि के रचित दोहों के उद्धरण अक्षरशः लिखे गये हैं। कवि अहिन्दीभाषी एवं विशेष सुपाठित नहीं होने से छंद-भंग एवं मात्रा-दोषों की त्रुटि रह गई है।

कांता और कविता की मांहि, औगुन गुन के पता न कांही।
सो पंचात बात महि मेरे, लिखे भक्ति से प्रेरे।। 7-340।।

कथा-वस्तु :

'वीरायण' महाकाव्य में कवि मूलदास जी ने भगवान महावीर की विश्रुत जीवन कथा को विशद् रूप से अंकित किया है। महावीर की लोक-प्रसिद्ध कथा को पुनः विवेचित करने की आवश्यकता नहीं हैं। महावीर के पूर्व भवों की कथा, माता त्रिशला एवं पिता सिद्धार्थ का पुत्र-रत्न की प्राप्ति पर आनंदोल्लास, वर्द्धमान का बाल्यकाल, दीक्षा एवं दीर्घ तपस्या, केवलज्ञान प्राप्ति के अनन्तर लोक-कल्याण के लिए उपदेशक महावीर के विहार की प्रसिद्ध कथा को कवि ने काव्य-बद्ध किया है। मुख्य कथा के साथ अवान्तर कथाओं में कवि ने प्रमुख प्रसंगों की अवतारणा भी की है, जिनमें त्रिपृष्ट वासुदेव, देव-परीक्षा, चण्ड कौशिक-कथा, गोशालक-कथा, चन्दना-चरित्र, मृगावती-कथा तथा ग्यारह विद्वान ब्राह्मणों को अपने प्रमुख शिष्य बनाकर चतुर्विध संघ-स्थापन की कथा प्रमुख है। इन आनुषांगिक कथाओं से मुख्य कथा का प्रवाह कहीं-कहीं मंद हो जाता है, या स्थगित-सा भी हो जाता है, तथा कथा-सूख बीच में छूट-सा जाता है। इससे मूल कथा-स्वरूप से सातत्य बनाये रखने में तकलीफ रहती है। सहायक पात्रों के पूर्व जन्मों की कथा से मुख्य कथा को आत्मसात् करने में कठिनाई महसूस होती है, अतः रसास्वादन में भी विक्षेप पड़ता है। वैसे क़वि ने जैन-दर्शन-ग्रन्थों, उत्तराध्यायन सूत्र, सूत्रकृतांत्र, पुण्याश्रय कथाकोश, बृहत कथाकोश, ठाणांग सूत्रादि के आधार से महावीर की जीवनी से संबंधित सभी घटनाओं एवं पात्रों को कथा के अंतर्गत संनिष्ट किया है। भगवान महावीर की कथा वैयक्तिक न होकर सामूहिक होने से गौण कथाओं व प्रसंगों का उनकी जीवनी के अंतर्गत महत्व रखता है। अतएव कवि ने भी मर्यादित फलक वाली मुख्य कथा को सहायक घटनाओं, पात्रों एवं विविध वर्णनों की बहुलता से पुष्ट करने का प्रयत्न किया है। परिणाम स्वरूप महाकाव्य की कथा वस्तु में जो सुगठन, क्रमबद्धता तथा औचित्य अपेक्षित रहता है, इसका कवि से यथोचित निर्वाह नहीं हो पाया है। गौण पात्रों के पूर्व जन्मों की कथाओं के वर्णन की आवश्यकता महाकाव्य में किसी प्रकार महत्वपूर्ण नहीं प्रतीत होती। वरन् अनावश्यक पौराणिकतत्व का समावेश दीख पड़ता है। कथावस्तु में यत्र-तत्र ऐतिहासिक क्रम का उल्लंघन हुआ है। महावीर एवं गोशालक का प्रसंग इसका एक उदाहरण है। वैसे काव्य के भावगत सत्य में यदि यह उल्लंघन बाधक न होता हो तो इस औचित्य का विशेष महत्व नहीं

रहता। लेकिन कथावस्तु के सातत्य एवं ऐतिहासिकता के दृष्टिकोण से इनमें क्रमबद्धता अपेक्षित रह सकती है। भगवान महावीर का जीवन-वृ पौराणिक या काल्पनिक न होकर इतिहास-सिद्ध है। फलस्वरूप ऐतिहासिक क्रम-भंग को निवाहने में कवि को सतर्क रहना चाहिए।

'वीरायण' की कथावस्तु के संगठन में प्राय: शिथिलता मिलती है। दीक्षा के अनन्तर महावीर के विविध चातुमार्स के समय ज्ञातखण्ड उपवन, नगर, नदी, आश्रमादि स्थलों के साथ पूर्व जन्मों की कथा के अन्तर्गत प्रमुख कथाओं की विस्तृत वर्णऩ प्रणाली से भी मुख्य कथा प्रवाह में बाधा पैदा होती है। स्वतंत्र कथाओं के रूप में सोमप्रभ विप्र, गोभद्र ब्राह्मण, रत्नावली, मृगावती, योगिनियों-व्यंतरों, गोपाल तथा चण्डकौशिक की कथा अवश्य रोचक है। लेकिन महावीर से सम्बंधित महाकाव्य में इन सब का विस्तृत विवेचन न तो अपेक्षित है और न ही सहायक। केवल महावीर से सम्बंधित मुख्य-मुख्य प्रसंगों व पात्रों को कवि ने कथासूत्र में पिरोया होता तो कथा वस्तु के संगठन में सुष्ठुता आ जाती व अधिक प्रभावशाली प्रतीत होता। बृहत्काय काव्य 'वीरायण' में संपूर्ण कथा वस्तु का विस्तार पौराणिक ढंग से किए जाने के कारण कहीं-कहीं यह महाकाव्य की गरिमा से युक्त नहीं प्रतीत होता, बल्कि चरित-काव्य-सा हो जाता है। लेकिन सर्वत्र यह बात नहीं दिखाई देती। तृतीय काण्ड में महावीर की बाल्यावस्था, विवाह, दम्पत्ति की दिनचर्या, दीक्षा का निर्णय एवं महोत्सव, बारह वर्ष की दीर्घ तपस्या व कष्टों की कथा में प्रवाह बराबर बना रखा है। मूलदास जी का श्वेताम्बर सम्प्रदाय के सिद्धान्तों पर विश्‍वास रहा होगा, ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि दिगम्बर सम्प्रदाय के अनुसार भगवान महावीर को अविवाहित न मानकर उन्होंने महावीर के विवाहोत्सव का विस्तृत तथा सुन्दर वर्णन किया है। समरवीर राजा की पुत्री यशोदा से महावीर का ब्याह आनंद-उल्लास से संपन्न होता है। पुत्री प्रियदर्शना के जन्मोत्सव व रूप-लावण्य का भी कवि ने ललित वर्णन किया है। कवि ने कथा वस्तु के लिए पूर्णरूपेण श्वेताम्बर सम्प्रदाय के दर्शन-ग्रन्थों का आधार ग्रहण किया है।

जिस प्रकार कहीं-कहीं जैन दर्शन की परिपाटी का भी पूर्णत: अनुसरण कवि से नहीं हो पाया है, वहाँ कवि ने जैन दर्शन के सामान्य सिद्धान्तों का यथोचित सन्निवेश प्रस्तुत काव्य में किया है। कथावस्तु में विविध विशद् वर्णनों एवं पग-पग पर आनेवाली छोटी-मोटी कथाओं से कवि के तद्‌विषयक ज्ञान का अवश्य पता चलता है, किन्तु कथा के प्रवाह में इससे कभी-कभी बाधा पड़ती है। इन क्षतियों-शिथिलताओं के बावजूद भी 'वीरायण' महाकाव्य की

कथा वस्तु में रोचकता बराबर बनी रहती है। कवि मूलदास जी ने काव्य को सात काण्ड में विभक्त किया हैं कवि ने महाकाव्य के प्रारंभ 'श्री वीरायण महाकाव्य' के अंतर्गत सरस्वती वंदना, कवि मर्यादा, सज्जन-प्रशंसा तथा दुर्जन-निंदा के अनन्तर सात काण्डों का संक्षिप्त उल्लेख किया है–यथा–

प्रथम काण्ड नयसार बनाया, धर्म गृहस्थिन का समझाया।
चक्रवर्ती वासुदेव विक्रम, द्वितीय काण्ड में दिये अनुक्रमा।।11।।
तृतीय काण्ड नृप-नन्दन वासा, वीर जन्म विवाह ही भाखा।
वर्धमान वैराग्य बताया, देव विमान परस हित आया।। 12।।
चतुर्थ काण्ड शूलपाणि व्यंतर, चण्ड कौशिक अहि-कथा विस्तार।
विद्या सिद्धि योगिनी बाता, चारण मुनि उपदेश प्रतापा।। 13।।
पति-पत्नी व्रत पंचम बलानी, सूरसेन रत्नावली रानी।।
लट काण्डे सति चन्दन बाला, वीर अभिग्रह कथा रसाला।
गौतम अरु गुरुवर का ज्ञाना, काण्ड सप्तमे मृग कल्याना।। 14।।
सप्त काण्ड रूप रतन अनुपम, उनसे गूंथी माला उत्तम।
श्रद्धावन्त सुजन पहरेंगे, बडरी संमुख नहीं ठहरेंगे।। 15-1।।

उपरोक्त रूप से कवि ने सातों काण्डों का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया है। प्रथम व द्वितीय काण्ड के अन्तर्गत भगवान महावीर के पूर्व जन्मों में से प्रमुख जन्मों की कथाओं का कवि ने विस्तृत वर्णन किया है। तीसरे काण्ड में भी नन्दन राजा के रूप में महावीर की पूर्वजन्म कथा चलती है, बाद के अवतार में ये तीर्थंकर बने। यदि इतने विशाल सर्गों में ये कथाएं न रखकर केवल एक सर्ग में ही संक्षेप में प्रमुख पूर्व जन्मों का उल्लेख कर दिया होता तो भी काम चल जाता। उसके साथ ही मुख्य कथा पर विशेष ध्यान दिया जा सकता और प्रमुख कथावस्तु, कौमार्यावस्था, विवाह, संसार से वैराग्य, दीक्षा-निर्णय, दीक्षा-महोत्सव एवं प्रारंभिक परिभ्रमण की महत्वपूर्ण घटनाओं को कवि ने एक सर्ग में ही सम्मिलित कर दिया है। यहाँ 'वीरायण' के मुख्य काण्ड का क्रमानुसार उल्लेख समुचित प्रतीत होता है।

कवि मूलदास जी ने 'श्री वीरायण महात्म्य' के अनुसार प्रथम और द्वितीय काण्ड में भगवान महावीर के 27 पूर्व जन्मों में से मुख्य-मुख्य जन्मों की कथाओं का रसात्मक वर्णन किया है। इन कथाओं का अति विस्तृत रूप मुख्य कथा प्रवाह को स्थगित-सा कर देता है। तृतीय काण्ड में महावीर जन्म कथा प्रारंभ होती है। जन्म से पहले गर्भ परिवर्तन, इन्द्र व देवों द्वारा माता त्रिशला की स्तुति-वंदना, गर्भ-परीक्षण, चौदह स्वप्न एवं उनका फल-महात्म्य आदि के

वर्णन से कथा का प्रवाह वेगवन्त रहता है। तथा कथा-क्रम का सातत्य बना रहता है। वर्धमान का जन्म संस्कार मेरु पर्वत पर इन्द्रादि देवों द्वारा होता है, जिसका कवि ने भव्य वर्णन किया है। ऐसे प्रतापी बालक को जन्म देने के लिए त्रिशला की महानता स्वीकार कर इन्द्र उनका जयगान करते हैं।

जय जय मातु तुल्या, रत्नाकर त्रिशला अनुकूला।
धन्य धरातल जन्म तुम्हारा, तीर्थंकर जिन उदर पधारा॥
आप गोत्र शुभ गगन समाना, प्रगट शशि जिन भगवान।
मानव जन्म धन्य फल पायो, दिन बोहित भव-रास्थ तरायो॥[1]

इसी सर्ग में विधिवत् अध्ययन का प्रसंग भी रहता है। गुरु-महिमा एवं भक्ति पर कवि ने यहाँ काफी विस्तार से लिखा है, जिससे ग्रंथ का आकार बढ़ गया है। बड़े होने पर माता-पिता की आज्ञा से न इच्छा से यशोदा के साथ पाणिग्रहण करने की घटना का यहाँ कवि ने सुन्दर वर्णन किया है। इसके अनन्तर पिता की मृत्यु के उपरान्त संसार की असारता देख कर बड़े भाई नंदिवर्धन से दीक्षा की आज्ञा लेकर दान का प्रवाह एक वर्ष पर्यन्त प्रारंभ करते है तथा भागवती दीक्षा अंगीकार करते हैं। कवि ने महावीर के गृहत्याग, दीक्षा के कष्टों का, बड़े भाई व प्रजा के वियोग की कथा का तन्मयता से वर्णन कर करुणा रस का आस्वादन करवाया है। चतुर्थ काण्ड में भगवान महावीर की तपस्या तथा दीक्षा के अनन्तर साढ़े बारह वर्ष तक के परिभ्रमण का कवि ने वर्णन किया है, जिसका मुख्य कथा के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध न होकर परोक्ष रूप से है। इसी समय महावीर के चिन्तन-मनन की तीव्रता ऊर्ध्वगति पर पहुँचती है, अनेकानेक कठोर कष्टों को वे शान्ति एवं समत्व से सहते हैं, जिसके फलस्वरूप केवल ज्ञान की प्राप्ति होती है। विविध अवान्तर कथाएँ इसी कांड में स्थापन पाती हैं। उसी प्रकार विविध वस्तु वर्णन व प्रकृति वर्णन भी यहीं हुआ है। इस काण्ड के निरीक्षण-परीक्षण से कवि ने समावृत की है। मंखली पुत्र गोशाला के पूर्व जन्मों के वर्णन के साथ महावीर के साथ उसका व्यवहार, मूर्खता, अंहकार एवं भिन्न सम्प्रदाय के प्रारंभ को गुम्फित कर लिया है। मुख्य कथा के साथ गोशाला की कथा का सम्बन्ध अन्त तक बना रहने से इसका महत्व रहता है। छठे काण्ड में भी महावीर की समाधि-स्थिति तपश्चर्या एवं प्राणी मात्र के कल्याण हेतु चिन्तन-प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है। इस सर्ग में महत्वपूर्ण अवान्तर कथाओं में कौशाम्बी नगरी के शतानिक राजा और रानी मृगावती की, दधिवाहन राजा और धारिणी देवी की, चंदना के दुर्भाग्य की

1. द्रष्टव्य-कवि मूलदास कृत-'वीरायण' तृतीय खण्ड 125वां पद।

तथा महावीर के परापूर्व के शत्रु के रूप में ग्वाला की धृष्टता का वर्णन रहा है। इस काण्ड में करुण-कथाएं करुण रस की निष्पत्ति द्वारा भावान्दोलित करने में सहायक होती है। अंतिम सातवें काण्ड में सती चन्दना के दीक्षा महोत्सव का वर्णन कवि ने अत्यन्त उल्लास से किया है। महावीर की पुत्री प्रियदर्शना एवं जामातृ जातालि कुमार का माता से आज्ञा मांगना व दीक्षा अंगीकार करने की कथा मुख्य कथा से सम्बंधित है। तदनन्तर, चंदन तथा रानी मृगावती के 'केवल ज्ञान'–प्राप्ति की कथा सम्मिलित है, इसमें ही महावीर के द्वारा जैन धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए गौतमादि ग्यारह विद्वान् ब्राह्मणों को दीक्षित करने की घटना तथा महावीर के उपदेशों का वर्णन भी किया है। अनेक कथाओं के रोचक ढ़ंग से किये गये वर्णन से कवि का जैन धर्म के ज्ञान का परिचय प्राप्त होता है। गौतम और महावीर ज्ञान-कथा, कलीकाल के वर्णननादि में तत्विषयक ज्ञान तो अवश्य झलकता है–लेकिन कथानक को अनावश्क लम्बा करने के साथ शिथिल भी बनाता है।

कथावस्तु के उपर्युक्त उल्लेख से 'वीरायण' की कथावस्तु हमारी समझ में आ जाती है तथा कवि की कथा वस्तु के प्रभाव को बनाए रखने की क्षमता आदि का भी पता चल जाता है। कवि मूलदास ने 'वीरायण' की रचना रामचरित मानस के अनुकरण में की थी किन्तु न तो कवि के पास मानसकार जैसी काव्य क्षमता थी और न पारपंरिक काव्य ज्ञान ही, केवल निष्ठा, लगन तथा जैन साधु के आदेशानुसार 'वीरायण' की रचना की थी। अत: स्वाभाविक है कि काव्य में शिथिलता दृष्टिगत हो। 'वीरायण' कथा संगठन में शैथिल्य है; अनावश्यक विस्तृत वर्णन है पौराणिक शैली की झलक है, तथापि काव्य क्षेत्र में आलम्बन रूप में प्राय: अचर्चित भगवान महावीर को नायक रूप में प्रस्तुत करके उनका सविस्तार वर्णन तथा महावीर कथा को काव्यात्मक सौष्ठव प्रदान करने की दृष्टि से 'वीरायण' साहित्य इतिहास की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

रस-विवेचन :

कथावस्तु के विवेचन के उपरान्त 'वीरायण' महाकाव्य में प्रमुख रसों की चर्चा उपयुक्त रहेगी। मूलदास जी के इस महाकाव्य में शांति एवं श्रद्धा के प्रतीक भगवान महावीर प्रमुख नायक के रूप में होने से यह स्वाभाविक है कि शान्त रस की प्रचुरता अन्त तक पायी जाती है। कवि ने शान्त रस के साथ गौण रसों में शृंगार, वीर, रौद्र आदि का भी समायोजन किया है। जैन साहित्य में शृंगार की अपेक्षा शांत रस को प्रमुखता दी जाती है। शृंगार रस को परंपरा निर्वाह के रूप में ही अपनाया जाता है। उसका भी शिष्ट सौम्य व उदात्त रूप

में ही प्रयोग किया जाता है। किसी भी काव्य में किसी भी रस का सांगोपांग विकास नहीं होता है। किसी भी रस के विनियोजन के लिए उसके स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव व संचारी भावों का संयोग आवश्यक रहता है, जबकि 'वीरायण' में शान्त, श्रृंगार या वीर किसी के स्थायी भाव का क्रमिक विकास दृष्टिगोचर नहीं होता। केवल रस के छींटे ही प्राप्त होते हैं। काव्य का मूल स्वर शान्त रस अवश्य है क्योंकि भक्ति-भावना, स्तुति-प्रार्थना, अनुनयादि का वर्णन कवि ने स्वयं विशेष किया है। श्रृंगार के लिए भी उसके स्थायी भाव रति का स्वरूप प्राप्त नहीं है, लेकिन तीन-चार जगह केवल रूप-वर्णन तक ही कवि सीमित रहे हैं। कवि मूलदास ने शान्त रस की परिक्वता के लिए कुमार वर्द्धमान एवं युवा महावीर के निर्वेद, चिंतन, वैराग्य या उसी से सम्बंधित विचार-व्यवहार को 'वीरायण' में चित्रित नहीं किया है। उन्होंने बालक वर्द्धमान से तुरन्त विवाहित युवा महावीर को प्रस्तुत किया है। फिर नव युवा महावीर के दाम्पत्य जीवन का, प्रेमोल्लास का भी वर्णन न कर उनके दीक्षा-निर्णय व उत्सव का वर्णन विस्तृत रूप से कवि करते हैं। अतः पूरे काव्य का प्रमुख रस शान्त कहे जाने पर भी उसका क्रमिक विकास प्राप्त नहीं है। शान्त और वीर रस के लिए भी यही स्थिति है। जबकि 'वर्द्धमान' महाकाव्य में कवि अनूप ने वर्द्धमान का प्रगाढ़ चिन्तन, सांसारिक व्यवहारों से उदासीनता, निर्वेद स्थिति आदि का सुंदर वर्णन किया है। 'वीरायण' में महावीर के निर्वेद की अनुभूति को कहीं प्रकट नहीं किया गया है। माता-पिता की मृत्यु पर कवि कहते हैं-

इन्द्रजाल सब स्नेह समझना, स्वारथ लागि गिनत जन अपना।
क्षण भंगुर यह देह कि सपना, फोकट तो फिर काहि कलपना।। 3-352।।
योग-वियोग हि सन्ध्या रंगा, अटल नियम चिर काल अभंगा।
नश्वर यह जग दिखों तपासी, प्रभुनाम शाश्वत अविनाशी।।3-353।।

दोहा- **किसिकुं न छोड़े काल कब, शोधो सकल जहान।**
कर्तव्यों पालन करो, अटल नियम यही जान।। 3-354।।

महावीर के दीक्षा-प्रसंग पर कुल की वृद्धा स्त्री उनको दीक्षा के कष्टों, महत्वादि के विषयों में बताती हैं। महावीर भी उन कठिनाइयों को सहने की तैयारी बताते हुए अपने वस्त्राभूषणों का त्याग कर सर्व को नमस्कार करते हैं-

स्वयं जिनेश्वर वचन उचारा, वेदों में पदसिद्ध उदारा।
बोसिरायी सावध्य त्रिविध, चरणाम्बुज वेदों सहु सिद्धे।।

ग्रहन करो संयम शिर भारा, सब सिद्धों को नमन हमारा।
सम्यक् जीवन में हि बरतहूँ, अंगिकार चारित्र करत हूँ॥

—तृतीय सर्ग पृ॰ 250

सर्वप्रथम प्रमुख रस शान्त रस की चर्चा करेंगें। तदुपरान्त अन्य गौण रसों पर विचार होगा।

शान्त रस :

संपूर्ण 'वीरायण' महाकाव्य में शान्त रस की प्रधानता है क्योंकि नायक महावीर करुणा एवं क्षमा की साक्षात् मूर्ति हैं। अनेक कष्टों के बावजूद भी धीर-अडिग महावीर अपने ध्यान-तपस्या से चलायमान होने वाले नहीं हैं। कठिन कष्टों को शान्ति से सहते हुए चिन्तन-मनन के बाद 'उच्चगुणस्थान' पर पहुँच कर 'केवल ज्ञान' प्राप्त करने के प्रसंगों में शान्त रस का अच्छा चित्रण हुआ है। कवि ने भक्तिभाव से प्रेरित होकर ही इसकी रचना की है। अत: स्वाभाविक है कि शान्त रस के लिए आवश्यक भक्ति, स्तुति-वंदना, चिन्तन, दीक्षा-प्रसंग, उपदेश आदि का वर्णन तो रहेगा ही। करुणा-सागर महावीर से सम्बंधित कितनी ही घटनाओं में शान्त रस की प्राप्ति होती है। हां, अनूप शर्मा के 'वर्द्धमान' महाकाव्य की तरह यह चिन्तन प्रधान न होकर पूर्णत: चरित प्रधान है। अत: कुमार वर्द्धमान की गंभीर व गहन चिन्तन पद्धति और दार्शनिकता का सर्वथा अभाव है या कवि ने स्वयं महावीर के द्वारा उनकी चिन्तन-प्रणाली को अभिव्यक्ति नहीं दी हैं। फलस्वरूप शान्त रस की चरम व तीव्र परिणति यहाँ उपलब्ध नहीं होती, बल्कि शान्त रस का सामान्य प्रवाह बहता है। वर्द्धमान के जन्म-समय व देव-देवी आनन्द-उल्लास से दर्शन करने आते हैं–

तीर्थन्कर दर्शन हिते, उमटे अगण विमान।
वर्षा बादल करत जिमि, अम्बर आच्छादान॥ 3-118॥

प्रभु को जन्म देनेवाली माता को भी धन्य है, क्योंकि–

त्रिशला देवी चरन को, कर प्रदक्षिणा तीन।
बंदी स्तुति करने लगे, वासव परम प्रवीन॥ 3-123॥
जय जय मातु वसुधा तुल्या, रत्नाकर त्रिशला अनुकूला।
धन्य धरातल जनम तुम्हारा, तीर्थंकर जिन उदर पधारा॥ 3-128॥

वर्द्धमान ने जैन दीक्षा अंगीकार करने का निश्चय किया तो अपना सब कुछ न्यौछावर करने लगे–

पावत दान मान कोउ हस्त, न जावे सो रीति फली।
विचरत वर्द्धमान जहाँ जावे, परत दृष्टि घन दिसत सुहावे॥ 3-382॥

घन मूर्छित जन अपना धन, मोह कभी न तजत।
उनसे आतम हीलके, दुष्कर तप क्यूँ तपत।। 3-384।।
सर्व विरति इच्छा के धारी, तजहु मोह धन हृदय विचारी।
आत्मा तो उनको गिन लहिये, भव्यात्मा इनको किमि करिये।। 385।।

महावीर के दीक्षा-अंगीकार-प्रसंग पर देवतागण स्तुति वंदना करते हुए गाते हैं-

माया मोह अति कठिन बन्धन, तुम सिद्धारथ नंदन।
अंधकार अज्ञान नसावन, संत कमल मन को विकसावन।। 3-408।।
सहस्त्रांशु सम आप अनूपा, धन्य धन्य जय सिद्धि स्वरूपा।
गुन सागर नागर गुन आपन, कहन चहत को बोहि ठिठापन।। 3-409।।

इंद्रियों के विकास को जीत कर ही महावीर 'जितेन्द्रीय' के नाम से जग में विख्यात हुए। क्योंकि वृत्तियों को जीतना अत्यन्त दुष्कर कार्य है-

किन्नर सुर गन्धर्व अनेका, करत कंठ गदगदित विवेका।
मार हस्ति मदमस्त जितन अस, सुने न समरथ आप समे कस।। 3-407।।

इसी प्रकार प्रभु की महिमा का गान करते हुए इन्द्र महाराज स्तुति करते हैं-

अचल अनंत निरंजन पेखा, भव अब्धि तारन तुम रेखा,
बारंबार बंदन प्रभु मेरे, स्वीकार हूँ दीन किंकर केरे।। 3-51।।

सप्तम काण्ड के अन्तर्गत भगवान महावीर के उपदेश में भी शान्त रस की धारा प्रवाहित होती है। संसार की अनित्यता एवं वैभव-विलास के त्याग का महत्व प्रतिपादित कर शान्ति का मार्ग बतलाया है-

वृद्धावस्था व्याधि से, घेरित तन दुःख पात।
अति श्रम ते लक्ष्मी, सोविद्युत समुझात।। 7-55।।
सुत दारा संयोग वियोगा, उपजावत अति हर्ष सोगा।
क्षण भंगुर जल बिची समाना, होत जात निश्चय जन जाना।। 51।
तृष्णा विषय लुब्धता घेरे, करत अकाज अधर्म घनेरे।
धर्म रूप पाथेय लिये बिन, बनत अचिंते यम के आधीन।। 57।।

इस प्रकार वीरायण काव्य में शान्त रस का मुख्य स्वर प्रतिपादित होता है। इसके साथ शृंगार रस का निरूपण कवि ने यथावसर कर काव्य में रसात्कता व लालित्य पैदा किया है। वीरायण में कवि ने भगवान की पूज्या माता त्रिशला के रूप सौंदर्य, यौवन और दाम्पत्य-रस केलि का वर्णन न कर सर्वथा औचित्यता का निर्वाह किया है। इससे किसी की श्रद्धा को ठेस पहुँचने का या

आलोचना-विवेचना का प्रश्न ही पैदा नहीं हो सकता। कवि ने द्वितीय काण्ड में राजकुमारी मृत्रावती के उन्मुक्त रूप सौंदर्य के वर्णन में श्रृंगार का विनियोजन किया है। इसका एक दृष्टान्त देखिए—

भाल विशाल बिंदि लघु किन्ही, उडुगन चमकत लिन्हीं।
लोचन ललित रंग अंजन युक्त सुहावत कारे।। 2-16।।
उस पै उरोज विराजत कैसा, उलट अनंत नगारन जैसा।
तब उन्नतपन मानहु पाई, हार-भार तैं दबि लघुताई।। 17।।
विलग होई लट एक अलक की, आई कपोलन उपरि झलकी।।
शोधि साम्य कहते कवि कैसी, मदन मृदुल कर घर अखि जैसी।
नाजुक चिबुक उपरि तिल सोहे, शकहि आदि उपमा कवि को है।।18।।
(दोहा) **साज सिंगार सबे बेणी, चितवनि चारु चकोर।**
चंचल द्रगी कुरंगिशी, अनुपम अंग भरोर।।19।।[1]

यहाँ मृगावती रानी एवं भद्रा देवी की कथा में कवि से गंभीर क्रम-भंग हो गया है, जिसकी चर्चा यहाँ अनुपयुक्त है। भगवान महावीर के पूर्व जन्मों की कथा के अंतर्गत त्रिपृष्ट वासुदेव की कथा महत्वपूर्ण है। उनकी माता रानी मृगावती के देह-सौंदर्य का चित्र खींचकर कवि ने श्रृंगार के एक पक्ष का वर्णन किया है। मृगावती रानी के सौंदर्य वर्णन में अश्लीलता या कामुकता नहीं आने पाई है। कवि ने पूरा-पूरा नख-शिख वर्णन इस सर्ग में किया है, जो परम्परायुक्त होने पर भी आकर्षक है। उसी प्रकार त्रिपृष्ट के देह-सौष्ठव का भी कवि ने सुंदर चित्र उभारा है—यथा—

नील कंजसम सुहल शरीरा, नसवुति मानहु उज्जवल हीरा।
मरित कपोल गोल अरुणारे, कंठ सुललित कम्बु अनियारे।।
पूर्ण चन्द्र आनन छवि छाये, देखत काम कोटि लजवाये।
नंदन पद्म शुभ प्रकाशवंता, कुंचित केश कृष्ण सोहंता।।

कवि ने श्रृंगार रस का विनियोजन केवल रूप-वर्णन में ही किया है। उदात्त, उन्मुक्त प्रणय, रस पूर्ण दाम्पत्य जीवन या संयोग-वियोग श्रृंगार के अन्य पक्षों का उभार 'वीरायण' में प्राप्त नहीं होता है। राजकुमारी यशोदा के साथ विवाहोपरान्त भी दंपत्ति के प्रेमपूर्ण आलाप-संलाप, उत्तेजक चेष्टाएँ या व्यवहार, रानी के उन्मादक सौंदर्य आदि के वर्णन को धीर-गंभीर-वैरागी महावीर नायक होने के कारण त्याज्य समझकर छोड दिया है। लेकिन यहाँ महावीर को अविवाहित ही बताया होता तो यह प्रश्न ही नहीं खड़ा होता। कवि ने इसमें भी

1. द्रष्टव्य—कवि मूलदास कृत—'वीरायण', द्वितीय सर्ग, पृ० 63.

यशोदा के रूप-सौंदर्य का ही केवल वर्णन कर दिया है तथा उसे राजकुल की स्त्रियां कैसे सजाती हैं, इसकी चर्चा की गई है। यशोदा रत्नाभूषण से किस प्रकार सजाई जाती है इसका एक चित्र द्रष्टव्य है–

मिल अंतःकुल चतुरा नारी, कन्या यशोदा कुं सिंगारी।
कंचुकी पंच रत्न पहनाई, कंचन मेखला धराई।। 3-285।।
नवसर हार कंठ सोहे कस, बदन चन्द संमुख तारा जस।
अलतायुक्त रक्त चरनों की, अंगुलि नतयुति ज्यों रतनों की।। 286।।
कमलनाल सम दुहुं कर भासे, दशांगुली मुद्रिका प्रकाशे।
संग सहेलिन सोहत कैसी, नभ गुलाल बीच चपला जैसी। 3-887।।

इसी प्रकार व्याह के बाद नव-दंपत्ति विविध प्रकार के आनन्द मंगल में दिन व्यतीत करते हैं, इसका वर्णन उपलब्ध है। इसको भी उदात्त संयोग-शृंगार पक्ष का एक पहलू मात्र ही समझना चाहिए। वर्द्धमान कुंवर और रानी यशोदा आनंद से दिन गुजारते हैं, इसका एक उदाहरण देखिए–

वर्द्धमान कुंवर अरु रानी, बितावत दिन दंपति ज्ञानी।
कयहुंक नृत्यांरभ, सुने-रागिनी वाला।। 3-328।।
रुचिर बाग फल-फूल निहारत, क्षिति सौंदर्य देख दिल ठारत।
इस बिध दिल अपना बहेलाका, निशि-वासर जानत नहि बाता।। 337।।[1]

वर्द्धमान-यशोदा की शिशु-सुची, प्रियदर्शना के रूप-लावण्य, चारुता व कोमलता का कवि ने सुन्दर वर्णन किया है। इसको शृंगार रस-की निष्पत्ति स्वरूप न कहकर केवल रूप वर्णन मात्र कह सकते हैं। प्रियदर्शना की रूप-छवि देखिए–

इस्त चरण कोमल अंबुज सम, संन्दर अवयव ओपन अनुपम।
कोटि लक्ष्मी सम तेज निधाना, ठन समान कहि जात न जाना।।
शुक्ल शशि सम वृद्धि पावे, दिन दिन प्रति अति कान्ति सुहावे।
हंसी अरु गजगामिनी बाला, बिम्ब फल अधर रसाला।। 335।।
चीबुक गोल कपोल सुग्रीवा, बरनि न जात अनुप रूप सिवा।
बचन मधुरे प्रिय भाखे, प्रियदर्शना नाम इन राखे।। 3-336।।

इस प्रकार 'वीरायण' भगवान महावीर की जीवन कथा से सम्बंधित महाकाव्य होने से शृंगार रस का पूर्ण रूप उपलब्ध नहीं हो सकता। मूलदास जी ने महावीर को विवाहित स्वीकारा है, अतः उनकी दीक्षा के उपरान्त यशोदा के विरह-वर्णन का अवसर प्राप्त हो सकता है। लेकिन जैन धर्म के दर्शन ग्रन्थों

1. द्रष्टव्य–कवि मूलदास कृत–'वीरायण', तृतीय खण्ड, पृ० 224.

में इस सम्बंध में कोई चर्चा प्राप्त नहीं है और महावीर के विवाह सम्बंध में कोई निश्चित मत न होने से कवि वियोग श्रृंगार का विनियोजन नहीं कर पाये।

महाकाव्य के लिए आवश्यक प्रमुख शान्त और श्रृंगार रस का तो निर्वाह कवि ने किया है, लेकिन गौण रूप में वीर, करुण, अद्भुतादि अन्य रसों का भी प्रयोग हुआ है। कवि ने स्वयं कहा है–

हास्य, सिंगार, वीर, करुणा के शांत भैरव भाखे।
होये कुछ भी विभत्स लिखाये, अद्भुत रस कहीं दिये बताये।।[1]

शांत रस की चर्चा के साथ कवि ने वीर, भयानक, अद्‌भुत व करुण आदि अन्य रसों का भी संक्षेप में सुन्दर वर्णन किया है। इन रसों के निरूपण में-विशेषत: वीर के–कवि को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। तृतीय काण्ड में बालक वर्द्धमान अपने साथियों के साथ बालोचित क्रीड़ा करते हैं, परीक्षा लेने के लिए एक देव भयानक रूप धारण कर वहाँ जा पहुँचते हैं। सभी बालक तो इस भयंकर, विकराल सर्प देखकर घबड़ाकर दौड़ते हुए भागने का उपक्रम करते हैं, जबकि प्रभु तनिक भी न डरते हुए उसके सर पर सवार होकर हाथों से पीटने लगते हैं। तीर्थन्कर की कसौटी करने वालों की कैसी अवदशा होती है, इसका कवि ने सुन्दर वर्णन किया है। जब भयानक आदमी के रूप में भी बालक वर्द्धमान डरे नहीं, चलायमान न हुए तो उस मिथ्यात्वी दैव ने कैसे भयानक नाग का रूप धारण किया–

ऐसे मन विचार कर आया, बड़ा स्याल का रूप बनाया।
कानन महिष सींग काला, धरा रूप अतिशय विकराल।। 2-172।।
रक्तचूड़ सम अति अरुणा, आँखों में बहुत ही घरवाई।
जबरदस्त फन ठोप फुलाई, रसना इव बहुत हि लपकाई।। 173।।
फुत्कारत मुख बने न देखा, घोर भयंकर वक्र विशेषा।
त्वरित गती से संमुख आया, जीर्ण रज्जुवत जिन फगवाया।। 174।।

फिर उसने बालक का वेश लेकर अपने ऊपर दांव ले लिया, ताकि कुंवर उसकी पीठ पर सवार हो जाय और वह उसे जोर से पछाड़ दे। लेकिन कुंवर तो त्रिभुवन नायक है। जैसे ही कुंवर पीठ पर सवार हुए, उसने पिशाच रूप बना लिया–

तुरन्त पिशाच रूप बनवाके, भागन लगे पीठ चढ़के।
कर्कश केश मुंड सम भासे, मस्तक घट पर घटा विकासे।।177।।
मुकुटि भयंकर लोचन लाला स्त्रवत अनल की ज्वाला।
गिरिवर गुहा सीरखी नासा, अघर ऊष्ट्र सम लटकत लासा।। 178।।

1. द्रष्टव्य–कवि मूलदास कृत–'वीरायण', प्रथम खण्ड

भयानक रस की तरह कवि ने वीर रस का भी सुन्दर सादृश्य चित्रण किया है। कवि स्वयं प्रेरक (चारण) होने से स्वभावगत वीर रस का परिपाक उमंग के साथ हो सका है। महावीर के पूर्व-भव त्रिपृष्ट के अवतार में कवि को वीर रस का उत्साह-प्रेरक, फड़कता चित्रण करने का अच्छा मोका मिल गया है, क्योंकि त्रिपृष्ट-पद पर प्रतिष्ठित होने से सभी बड़े-बड़े राजाओं से युद्ध करके विजय प्राप्त किये। ऐसे युद्धों के वर्णन में, वीर रसोत्पादक प्रसंगों में कवि को अपेक्षाकृत विशेष सफलता प्राप्त हुई है। युद्ध-भूमि का सजीव वर्णन देखिए–

उमकंत ढोल त्रंबालु भेरी, घेरि गहवर गावहिं।
तडतड निनाद तुरीन के, ठैं ठैं नगारे बाजहीं॥ 1-194॥
घुनि शंख की सुनि जात ना, डर सात कायर भागहिं।
हाँ, हाँ-मरे, हाँ-हाँ मरे, बचहीं न कोउ इलाजहिं॥ 2-195॥

युद्धभूमि में शस्त्रों के वर्णन में भी झंकार की ध्वनि, नाद-सौंदर्य, कवि ने प्रकट किया है। कवि की बानी में किस प्रकार का युद्ध हो रहा है, उस चित्र को देखिए–

असि बान के कमान कर पर, घर समर में बिचरे।
पद चर लरत पदचरन से, हयस्वार हथदल से लरे।
रथि साथ महारथि आभिरे, गजदल सु गजदल आथरे।
रूद्र मुण्ड प्रचण्ड नाचत, गिरत शिर जिन धड़ लरे॥ 2-196॥
गजदन्त से गजदन्त लागत, अनल कण दरसात यों,
घर्षत बादल प्रगट झषकत, झके झलक विद्युत ज्यों।
मातंग गण्डस्थल फेरत, उछलंत रुधिर प्रवाह क्यों,
महि फार डार बाहर निकसन, अद्रिसे जलवार ज्यों। 197॥

वात्सल्य रस का वर्णन भी कवि ने सुन्दर भावपूर्ण किया है। गर्भ में बालक मातृ-प्रेम के कारण हलन-चलन की क्रिया बंद कर देता है, जिससे त्रिशला रानी बेचैन हो जाती हैं, विलाप करती हैं, अपने भाग्य को कोसती हैं। राजा सिद्धार्थ भी दुःखी होते हैं। पूरे राजभवन में सन्नाटा छा जाता है रानी के दुःख का कोई पार नहीं है। कवि ने इन हृदयद्रावक भावों का सुन्दर मर्मस्पर्शी वर्णन किया है–

माता मन विस्मय भयो, गयो गर्भ निज जान।
नष्ट भयो की अपहर्यों, बेबश कुमतीमान॥ 3, 81॥
म्लान भया मन चिंता व्यापी, पुन्यहीन नहीं पावकदायी।
रत्न रंक-घर रहें न कैसे, कृपन किरत झट नासत तैसे॥ 3-83॥

माता का हृदयद्रावक शोक-विलाप सुन कर ही गर्भस्थ तीर्थंकर को निश्चय करना पड़ा कि 'अभी मैं गर्भ स्थिति में हूँ, फिर भी इतनी अद्भुत स्नेह वर्षा। इतना असीम प्रेम-मोह है कि केवल मेरे हिलने-डुलने की क्रिया स्थगित कर देने से माता को इतना आघात लगता है, तो यदि मैं उनकी उपस्थिति मैं दीक्षा अंगीकार कर लूँ तो उनका क्या हाल हो जाय? शायद वे जीवित ही न रह पाए। अतः उनकी उपस्थिति में मैं दीक्षा-ग्रहण नहीं करूँगा और उनकी प्रसन्नता का ख्याल रखूँगा। इसी कारण कुमार वर्द्धमान ब्याह के लिए पूर्ण विरागी एवं अनिच्छुक होने पर भी 'हाँ' कर देते हैं और गर्भ समय की प्रतिनुसार दीक्षा भी माता-पिता की मृत्यु के अनन्तर लेते हैं। माता त्रिशला की व्याकुलता देख बालगर्भ ने फिर से यथावत क्रिया प्रारंभ कर दी तो माँ के मन में कितना हर्ष-आनन्द छा जाता है–

गर्भ चलन क्रिया को जाने, बड़े प्रमोद मात मन माने।
स्नान विलेपन किये उमंगे, अम्बर उत्तम पहिरे अंगे।। 3-90।।

अब माता के जी में जी आया और स्नान-विलेपन व वस्त्राभूषण सब में रुचि पैदा हुई। उसी प्रकार जामालिकुमार-प्रभु महावीर के जमाई-प्रभु की देशना सुनकर संसार असारता पैदा होने से दीक्षा लेने का निश्चय करते हैं और अपनी माता की संमति लेने जाते हैं, तब दीक्षा की बात सुनकर माता के हृदय पर क्या गुजरती है। माँ चकराकर मूर्च्छित हो धरती पर लुढ़क जाती है–

होंगे पुत्र-वियोग विचारी, माता मन दुःख भया अपारी।
मोह मह्मिा महाबलवाना, मातृ-प्रेम जाय बखाना।। 7-76।।
शिथिल भया तन मूर्च्छा आई, धरणी तल पे डल गई गभराई।
आये भयभीत दौड़ परिजन, निर्मल जल को लिन्हा सिंचन। 77।।

माँ का आर्द्र कोमल मन प्रारंभ में दीक्षा की इजाजत के लिए इन्कार करता है। राजमहल में रहकर कुछ धर्म-ध्यान करने के लिए प्रेरित करती है। सुख भोगने की उम्र में पैतृक संपति को भोगते हुए आनन्द चैन से रानियों के साथ आराम से जीने को कहती है और दीक्षा की इजाजत नहीं देती। लेकिन जामालिकुमार का दृढ़ निश्चय देखकर माँ अकुलाती है, अपने निर्णय से हटने की अनिच्छा होने पर भी बेटे का दृढ़ निर्णय देख पसीज जाती है और पुत्र को दीक्षा के बाईस परिषहों, कष्ट, ताप, तपस्या, श्रम सभी का निर्देश कर समझाती-बुझाती है, शायद कष्टों का वर्णन सुनकर बेटा दीक्षा का विचार छोड़ दे। तदनन्तर माँ उसे वडीलोपार्जित धन-वैभव, रानियों के अनुराग-माया-ममता, सुख-वैभव-विलास, मृदु राजतंत्र की कोमल मोह-डोर से ब्रांधना चाहती है लेकिन लाख कोशिश करने पर बेचारी माँ को निष्फलता प्राप्त होती है और

मजबूरन उसे संयम-ग्रहण के लिए इजाजत देनी पड़ती है। कवि ने वात्सल्य रस की भाँति यथावसर करुण रस की झांकी कराने का भी सुन्दर प्रयास किया है। चन्दनबाला की उपकथा में करुण रस की मार्मिक अभिव्यक्ति कवि ने की है। एक राजकुमारी को परिस्थिति वश किन-किन दशाओं से, कैसे-कैसे लोगों से गुजरना पड़ता है। अनेकानेक कष्टों क्रे बावजूद भी वह शान्त, क्षमाशील एवं करुणापूर्ण हृदय से सब कुछ सहन करती किसी को दोष न देकर अपने पूर्व जन्म के कर्मों का फल समझकर धैर्य से सब सहती है। माता धारिणी देवी की मृत्यु के बाद सिपाही उसे श्रेष्ठि को बेच देता है-

निज घर त्रेष्टि पर जाना, जननि जनक दंपति को माना।
अपने गुम शील विनय प्रभावा, श्रेष्ठि घर सम्मान बढ़ावा।।
मधुर वचन शीतल बिमि चन्दन, परिवजन मन को करती रंजन।
सौरभ चन्दन सम फैलाया, नाम चन्दना सब ठहराया।। 3-341।।

लेकिन ईर्ष्यावश मूला सेठानी उसकी क्या अवदशा कर देती है। सेठ के बाहर जाने पर बाल काटकर, मुंडन कर हाथों-पैरों में जंजीर डालकर एक वस्त्र पहनाकर तलघर में डाल देती है और खुद मैके चली जाती है। तीन दिन बाद वापस आने पर सेठ ने चन्दना के विषय में बार-बार पृच्छा करने पर वृद्धा दासी से उसका हाल मालूम हुआ-

द्वार खोल जा सेठ निहारे, शिर मुंडित पद जंजीर भारे।
क्षुधा पीड़ित तन कान्ति हीना, कंपति हरनी समहवे दीना।।
कुसुम माल करमाई दिखाती, पेखत फरत वज्र सम छाती।
अश्रु प्रवाह बहे दुहु नैना, सेठ देख कछु बोल सके ना।। 353-7।।

उसी प्रकार भगवान के दोनों कानों में काश की सलाका ग्वाले ने निर्दयता से भींच कर उसके दोनों छोर को मिलाकर लहू-लहान कर दिया था, फिर भी भगवान तो 'काउससत्र' की स्थिति में होने से कुछ बोले-चाले नहीं और कष्टनीय पीडा को सहते रहे। कुशल वैद्य के द्वारा जब तेल-मर्दन के द्वारा उस तीक्ष्ण सलाकाओं को बाहर निकालने का उपक्रम किया जाता है तो धैर्य धीरज एवं अडिगता के मूर्ति समान प्रभु से गगनेभेदी चित्कार निकल जाती है और आस-पास के सभी लोगों के हृदय करुणा से द्रवित हो गये।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि 'वीरायण' काव्य में रसों का विधि वत रूप उपलब्ध नहीं है, लेकिन रसों का प्रारंभिक स्वरूप ही कवि ने व्यक्त किंया है। शान्त रस के साथ शृंगार, वीर व करुणा रस के छींटे अवश्य प्राप्त होते हैं।

'वीरायण' का वस्तु-वर्णन :

'वीरायण' में प्रस्तुत रसों की चर्चा के उपरान्त इसमें उपलब्ध विविध वर्णनों के विषय में भी विचार कर लेना प्रासंगिक होगा। इसके विषय में कवि के संयमी, वीतरागी नायक के कारण विशिष्ट सीमा में आबद्ध रहना पड़ा, लेकिन काव्य के अन्तर्गत नगर, महल, नदी, वन-उपवन, जलाशय, सूर्योदय-संध्या, रत्नाभूषणों के आकर्षक वर्णनों के द्वारा कवि ने काव्य में रोचकता भरने का प्रयास किया है। 'वीरायण' में मूलदास जी ने विविध वर्णनों में भव्यता भर दी है, विशेषकर वन-उपवन के दृश्यों में तथा युद्ध के वर्णनों में तीव्रता व ओज है। कवि ने युद्धभूमि व सैन्य का वास्तविक वर्णन कर जीवन्तता मूर्तिमन्त कर दी है। उसी प्रकार प्रियमित्र चक्रवर्ती की विजय पताका का वर्णन भी आकर्षक है। वर्द्धमान-यशोदा के विवाह समय विविध रत्नाभूषणों एवं कीमती वस्त्रों के वर्णन में कवि की एतद्विषयक रुचि-परिचय मिलता है।

प्रथम काण्ड में जयन्तिपुरी नगरी का कवि ने सुन्दर वर्णन किया है महल, वन-उपवन, जलाशय, नदी अट्टालिकाएँ, छोटे-छोटे पर्वत आदि से आवेष्टित यह नगरी समृद्धि से भी पूर्ण थी। इसका एक चित्र देखिए-

सर सरिता कूप वापि घनेरे, वरणि न् जाय देख मन हेरे।
रुचिर गिरीवर सोहत कैसे, क्षिति रमणी कबरी कुच कैसे॥ 1-32॥
पावन सुरसरि वहाँ चलि जाई, दर्शहुते जन्नके जय आई।
नाना तरुवर सुंदर बागा, सोहत नगर समीप अधामा॥ 33॥
विविध भाँति पंकज सर खीले, श्याम सफेद अरुण अरु नीले।
गुंजत भृंग मधुर सुर कैसे, सुर गंधर्व गवैयन जैसे॥ 34॥
सुंदर महल अटारि हवेली, विश्वकर्मा ने स्वयं रचेली
बिचबिच नगर सुहावे फुवारा, रासे रवि कित प्रजा अपारा[1]॥ 37॥

भगवान महावीर की जन्मभूमि क्षत्रिय कुण्ड नगरी की संपति में वर्द्धमान के जन्म के बाद वृद्धि होती गई, इस बुद्धिमान श्री सौंदर्य का कवि ने अत्यन्त संक्षेप में वर्णन किया है। वर्द्धमान के ब्याह के समय समवीर महाराज ने बारातियों को पहरावनी में दिये रत्न-आभूषण, वस्त्र, हाथी-घोड़े, मेवा-मिठाई आदि का कवि ने विस्तृत वर्णन किया है-यथा-

इस बिच मंगल चारि सुचारु, भये पूर्ण जग जस व्यवहार।
मुगट सुकुंडल कंकन, बाजुबन्ध बलहार सुकंचन॥ 291॥

1. द्रष्टव्य-कवि मूलदास कृत-'वीरायण', प्रथम खण्ड, पृ० 7-8.

शाल दुशाला दुपट्टा सुंदर, विध-विध दुष्यक रंगित अम्बर।
सेनापति पहेरावनी किन्हीं, प्रेम समेत बरातीन लिन्हीं।। 3-292।।
हेमरवत थाली अरु थाला, दिये कटोरि सुन्दर प्याला।
मुगट प्रमुख आभरण अनेका, कटी सूत्र मनिजड़ित सुनेका।। 294।।

इसी प्रकार कवि ने वर्द्धमान के दीक्षा-उत्सव में नगर व राजमहल में की गई सजावट का, दान-प्रवाह, गगन में पुष्प वृष्टि तथा देवों के विविध विमान एवं साज-सज्जा का कवि ने यथोचित् वर्णन किया है। ऋजुवालिका नदी, संध्या, सूर्योदय, पर्वत, महल आदि का भी कवि ने यथा प्रसंग वर्णन कर परम्परा का निर्वाह किया है। इन वर्णनों में आश्रम व उपवन के वर्णनों में कहीं-कहीं पुनरावर्तन व नाम-परिगणन की प्रवृत्ति भी दृष्टिगत होती है, जिससे वर्णन में आकर्षकता या प्रसन्ता का अनुभव न होकर नीरसता पैदा होती है। इस नाम परिगणन की प्रवृत्ति से कवि बच पाये होते तो वर्णन में रोचकता भर जाती। वर्द्धमान दीक्षा के समय रत्नजड़ित पालकी में बैठकर **ज्ञातखण्ड** वन में आते हैं, तब सभी प्रकार के पेड-पौधें व पक्षियों का कवि ने सम्मिलित वर्णन किया है। महावीर के सत्कार के लिए प्रकृति में चारों ओर आनंद-उल्लास छा गया है, पक्षीगण भी अपने आनंद की अभिव्यक्ति भिन्न-भिन्न तरीके से करते हैं–

सब मिलि ज्ञातखण्ड उपवन में, आई सवारी गाढ़ वृक्षन में।
अर्जुन, केल, कदम्ब, तमाला, सीषम, साग, अशोक, रसाला।। 432।।
नारियल, वटवृक्ष विशाला, जमरूख़, सीताफल तरुवाला।।
नारंगी दाड़िम द्राक्षादि, पुंगी अंगी लविंग लतादि।। 3-433।।
चन्दन, एलची, केतकी, केरे, चम्पक, नीम्बू खजूरी घनेरे।
आमल, जाम्बू, किंशुक वृक्षा, निज शोभा से खींचत लता।।

इतने सारे पेड़-पौधे एक ही स्थल पर संभव हो या नहीं, यह भिन्न बात है। लेकिन कवि इसे 'नंदनवन' से भी उत्कृष्ट अवश्य बताते हैं–

नंदनवन इनको कह देना, कहत कविजन कीर्ति घनेरी।
यह तो सम है ही कहना, और साम्य इनको ही लगेना।।

इसी प्रकार प्रथम काण्ड में कवि पुष्पकरंडक बाग में विश्वभूति राजकुमार एवं उनकी रानियों के वसन्त ऋतु के विविध-आनंद-प्रमोद के वर्णन में भिन्न-भिन्न पुष्पों की सूची उपस्थित करते हैं–यथा–

सुकीरचंच वंकशा, दियंत किंशुका यथा।
सुजूह जाई मालती, लहेंकती सुराई में।।

करेण भाँति की, गुलाब चंपकी कली।
बहार ब्होत मोगरा की, क्या कहूँ बताइये।। 1-206।।
सरोज है कुमुद है, सुकेत की सुहावती।
मनावती यथा मनोज, नैन को नचाइये।।
पुकारते पुरुष जात, प्रान प्यारि आइये।
वृथा वसन्त की अनंत, मोज न गुमाइये[1]।। 1-207।।

वृक्षों को भी इसी उपवन में कवि ने एक साथ शोभित होते हुए बताये हैं।

'वीरायण' में प्रतिबिंबित दार्शनिकता :

'वीरायण' महाकाव्य की आधिकारिक कथावस्तु एवं नायक जैन धर्म से सम्बंधित होने से स्पष्टत: इसमें जैन धर्म के तत्वों व आचार-विचार सम्बंधी विचार-धारा का निदर्शन रहता है। भगवान महावीर के वैराग्य, दीक्षा, ज्ञान-प्राप्ति, अनुयायी वर्ग तथा उपदेश को इसमें काव्यात्मकता से गुंफित कर दिया है। अत: स्वाभाविक है कि इसमें महावीर के उपदेश का सैद्धांतिक व व्यावहारिक पक्ष उजागर किया गया है। अनूप शर्मा के 'वर्धमान' महाकाव्य में भगवान महावीर के चरित द्वारा जैन धर्म के सैद्धांतिक पक्ष की अधिक चर्चा की गई है। भगवान को जड़ता को दूर कर नये प्रकाश का प्रसार करना था। अत: दीक्षा अंगीकार के पश्चात साड़े बारह वर्ष तक तीव्र चिन्तन-मंथन के अनन्तर 'सोलहगुण स्थानक' की स्थिति पर पहुँच कर 'केवल ज्ञान' प्राप्त करते हैं। तत्पश्चात जनता के बीच में घूम-घूम कर उन्होंने अभयदान, क्षमा, अहिंसा, प्रेम, शान्ति आदि कल्याणकारी तत्वों की महत्ता पर जोर दिया। दार्शनिक पक्ष की मीमांसा 'वीरायण' में अत्यन्त की गई है, जिससे काव्य में सरलता रही है। महावीर की गूढ़ दार्शनिक चिन्तन प्रणाली, बारह शुभ-भावना, आस्रव, संवर, बन्ध, निर्जरा व मोक्षादि की चर्चा यहाँ हमें प्राप्त नहीं होती। जन्म, मृत्यु लोभ-मोह, संसार की असारता, जीवन की क्षणभंगुरता व आचार-विचार के सम्बंध में कवि ने महाकाव्य में प्रकाश डाला है। मृत्यु की अनिवार्यता के विषय में कवि लिखते हैं-

किसको न होरे काल कब, शोचो सकल जहान।
कर्तव्यपालन करो, अटल नियम यही जान।। 354।।

धन ही सर्व सांसारिक विकारों एवं माया-ममता का मूल है क्योंकि धन से ही-

1. द्रष्टव्य-कवि मूलदास कृत-'वीरायण' प्रथम खण्ड, पृ० 43

जड़ अरु अगुनि कुल हीन जन, अबुध छते गुनवान।
द्रव्यमान को जग कहे, सबमें द्रव्य प्रधान॥
समरांगण शूरवीर कहावें, कीर्ति, कीर्ति काव्य कवि जिन के गावे।
रूप मदते रतिनाथ लजावे, विद्या चउद सुजान सुहावे॥
कलावान गुनि-धनि के द्वारे, सब आकर धनि सेव स्वीकारे॥
किये अमित उपकार मित्रगण, त्याग देत मित्राह हितवन॥

कर्मों के फल के विषय में कवि के विचार है कि–

अच्छे बुरे स्वकर्म को, फल पावे जग जीव।
कर्म रूपे बिन काहु को, किमपि न होवे शिव॥

अपने कर्मों के अनुसार ही मनुष्य को सुख-दु:ख प्राप्त होते हैं व मनुष्य शान्ति, क्षमा, प्रेम, सहिष्णुता आदि उच्च गुणों के द्वारा आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है। मनुष्य के कर्मों की गति निराली होती है–

"अति विचित्र गति है कर्मन की,
आकृति कऐ सत्य गुन जन की।"

देह की क्षणभंगुरता के सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि–

अंजलि जल मंद ही बह जाता, निश दिन ऐसे आयु घटाता।
यह क्षणभंगुर देह न तेरा, जासी को क्षन सांझ सवेरा॥
क्षणंभगुर तन तोर हित, परकों दु:ख क्यों देत।
मूलदास कहता मनुज, चेत चेत अब चेत॥ 51 446॥[1]

अहिंसा-तत्व जैन धर्म का प्राण तत्व है। अहिंसा के विषय में 'वीरायण' कार के विचार द्रष्टव्य हैं–

धर्म मूल ही अहिंसा जानी, पालन समुझकर ज्ञानी।
मद्य-मांस रात्रिका भोजन, दु:ख रोग करते हैं उत्पन्न॥

स्वयं प्रभु ने अपार कष्ट सहकर हिंसा का प्रतिरोध अहिंसा रूपी शस्त्र से कर अहिंसा का महामंत्र संसार के समक्ष रखा–

महावीर स्वामी शिर अपने, सहे दु:ख कलेशन स्वप्ने।
क्षमा-मंत्र ही महा बतलायो, परम धर्म अहिंसा समुझायो॥

अहिंसा के कारण ही किसी भी जीव को दु:ख पहुँचाना महापाप माना गया है। स्वयं कष्ट सहन करके भी अन्य के कल्याण के लिए क्रियारत रहना श्रेष्ठ मानव धर्म है, जबकि पर-पीड़न जघन्य कृत्य होने से मानव की अधोगति करता है–

---

1. द्रष्टव्य–कवि मूलदास कृत–'वीरायण' पंचम खण्ड, पृ० 469.

परपीड़न सम पाप नहीं है, सकल धर्म परमान यही है।
पर-दु:ख-भंजन कवि निरंतर, सन्त प्रयत्न करंत सदन्तर।।

अतएव प्राणीमात्र को अपने समान समझना चाहिए, क्योंकि–

अपने जीवित सम सबको जानी, समान भाव समालत प्राणी
सो नर दीर्घायु तन सुंदर, पाते जाते मोक्ष समुद्र।। 4। 171।।

क्रोध, लोभ, मोहादि विकारों का त्याग सर्व धर्म में स्वीकार किया गया है, क्योंकि क्रोध सर्व विनाश का मूल है। अत: उसे त्याग कर क्षमा व शान्ति अपनानी चाहिए–

क्रोध अनल सम अनल न कोऊ, विनय बुद्धि जलादि देता।
कब हुक आतम घात करावे, अधरित वचन कबू उचरावे।।
दुरगति विकट पंथ लेजाते, फंसे फिर ही जन मुक्ति पावे।
ताते सज्जन क्रोध बण्डाला, कहकर निंदत है चिर काला।।

अत:–

क्षमा शान्ति सुख मूल में, क्रोध आगमन डार।
चेतन अबतो चेत के, बिगरी बाजि सुधार।।

सहिष्णुता उत्तम गुण है, इस पर विवेकयुक्त विचार करना चाहिए, क्योंकि–

दृढ़ पिंजर नग दुर्ग निवासा, करत किंतु न नाशा।
पूर्व पाप क्षीण करन उपाई, सहन शीलता सम नहि भाई।।

क्षमा जैसे उच्च गुण के लिए कवि क्या कहते हैं–

संत वीर का क्षमा ही भूषण, तरे न तामसी क्रोध ही दूषण।
पूर्व अशुभ कृत कर्म बसाये, जीव अवसि न जन-जाल फंसाये।।

जैन व दर्शन में अहिंसा के साथ-साथ सत्य, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह को अत्यन्त महत्व दिया गया है–

जीवदया व्रत सत्य समालो, अदन ग्रहन कूं सब विध टालो।
ब्रह्मचर्य व्रत निभवहु प्रीते, परिग्रह को तर्क सज रीते।।
हो आसक्त जीव वधकारी, अष्टकर्म बांघत अविचारी।
नरक जात दु:ख तीक्षण पावे, तीर्थचके अनम में आवे।।

धन-संपत्ति एवं सांसारिक सम्बंध नि:सार है, क्योंकि–

किसके कारन कौन फुलाया, किसने किसी को नांहि रुलाया
जान स्वरूप ऐसे संसारा, तब बुथ वन शिव मार्ग स्वीकारा।।
राज ताज धन संपत्ति, सुत दारा परिवार,
को न किसी का है ही कह, वृथा विश्व वहवार।।

इन्द्रजाल सब स्नेह समझना, स्वारथ लागि गिनत जन अपना।
क्षणभंगुर यह देह ही सपना, फोकट तो फिर काहि कलपना।।
योग-वियोग हि संध्या रंगा, अटल नियम चिर काल अभंगा।
नश्वर यह जग दिखो तपासी, प्रभु नाम शाश्वत अविनासी।।

यह देह नश्वर है। मनुष्य इसका गुमान व्यर्थ में करता है और देह के बाह्य सौंदर्य से मुग्ध होकर विविध रूप से सजाता है, लेकिन अन्ततः वह है केवल मांस-मज्जा युक्त विनाशी शरीर ही–

क्षणिक सुख हित यह संसारा, अशुभ निश्चित होत अपारा।
आवत योग्य न मूरख, शाश्वत अशाश्वत की पारस।।
स्त्री अधरोष्ठ समुझ परवाला, मांस लेख न दिखे मतवाला।।
अरु स्तन मांस पिण्ड को देखे, कंचन कलश मूर्ख लेते।
रुधिर मूत्र-मल चर्म मढ़े तन, समुझत नाहिं अशुचि भाजन।
धन मन यौवन धर्म विवारक, नींदनीय विषय ही दुःख दायक।

मूलदास जी ने साधु धर्म व उसकी कठिनाई का विस्तृत वर्णन महावीर-दीक्षा व जामालि-दीक्षा प्रसंज पर किया है। उसी प्रकार रानी यशोदा को राजकुल की वृद्ध-स्त्रियों के द्वारा सती धर्म का भी ज्ञान विशद् रूप से दिलवाया है, जिनका वर्णन यहाँ अपेक्षित नहीं है।

मनुष्य को सदैव शुभ कर्मों में प्रवृत्त रहना चाहिए, वरना पीछे से पछताने का समय आता है–

जैसे पक्षि पास पकराते, करत प्रयत्न मुक्ति नहि पाते।
तैसे जीव अहुम बन्धन कर, फलत अरु पछितात निरंतर।।

दार्शनिक सिद्धान्त के अंतर्गत जीव और लोक को शाश्वत और अशाश्वत दोनों रूप में स्वीकारा जा सकता है, ऐसा भगवान महावीर ने दृष्टान्त के साथ सिद्ध किया। क्योंकि–

भद्र प्रश्न यह कठिन महि है, अशाश्वत शाश्वत गत कहिहै।
वर्तमान भूत भविष्य लोका, रूप सामान्य रहते विलोका।।
ताते शाश्वत है समुझा, फिर अशाश्वत जान।
अवसर्पिणी पर्याय से, परिवर्तन ही प्रमाण।। 7-147
ऐसे बाल्यादि अवस्था से, जीव ही शाश्वत अबसि भासे।
नर माटक तिर्यञ्च संभव ते, अशाश्वता जानहु अनुभव ते।। 149।।[1]

जैन धर्म के महामंत्र का माहात्म्य कवि बताते हैं–

---

1. द्रष्टव्य–कवि मूलदास कृत–'वीरायण' सप्तम खण्ड, पृ० 665.

मंत्र महानवकार, नाव भवाब्धि तरन को।
साधन श्रेष्ठ त्रिकार, दिन किंकर मुलदास का॥ 5-3॥
नित नित श्री नवकार, प्रातः काल प्रथम जपत।
पिछे सकल व्यवहार, दिन किंकर मुलदास का॥ 5-4॥[1]

इस प्रकार 'वीरायण' महाकाव्य में जैन धर्म के तत्वों का सुंदर व स्वाभाविक विनियोजन हुआ है। कवि ने दार्शनिक गूढ़ तत्वों की अपेक्षा लोक-व्यवहार के सत्यों का विशेष रूप से निरूपण किया है।

खण्ड-काव्य :

महाकाव्य की तरह खण्ड काव्य भी प्रबन्ध का एक भेद है। महाकाव्य की भाँति इस काव्य-स्वरूप में नायक के जीवन का सर्वांगीण विकास, महानोदेश्य, व विशद् वर्णनों की न ही आवश्यकता रहती है और न गुंजाइश। नायक के जीवन की एकाध प्रमुख घटना या प्रेरक प्रसंग ही इसकी विषय वस्तु बन सकती है। खण्ड-काव्य की चर्चा करते समय इसके विषय में पीछे हम कह चुके हैं। रसों के लिए भी खण्डकाव्य में विविधता की अपेक्षा नहीं रखी जाती। अपने फलक के अनुसार उद्देश्य का साम्य दोनों में समान रहता है।

आधुनिक हिंदी जैन काव्य साहित्य में उपलब्ध खण्ड काव्य की चर्चा हम कर चुके हैं। यहाँ इनकी कथावस्तु, रस, वर्णनादि पर विचार कर लेना समचीन होगा। आधुनिक हिंदी जैन साहित्य में गद्य की तुलना में पद्य का प्रमाण सीमित है, इसमें भी महाकाव्य व खण्डकाव्यों की संख्या विशेष मर्यादित है। प्राप्त खण्ड काव्यों में श्री धन्यकुमार 'सुधेश' द्वारा विरचित 'विराम' खण्ड काव्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कवि ने स्वयं ही इसे 'भावनात्मक खण्डकाव्य' से अभिहित किया है। भावात्मक वर्णन तथा मधुर भाषा-शैली के कारण सुन्दर बन पड़ा है। छोटे से कथानक को अपने में समेटे हुए 'विराग' कुमार महावीर की व्यावहारिक दार्शनिकता के कारण विशिष्ट बन पड़ा है। इसकी यह विशेषता ध्यातव्य है कि भगवान महावीर के सम्बन्ध में तो साहित्य उपलब्ध होता है, लेकिन कुमार वर्धमान की भावनाओं का मार्मिक अंकन करने के बहुत अल्प प्रयास किये गये हैं। ऐसे अल्प प्रयासों में से एक सुन्दर प्रयास-'विराग' की रचना के द्वारा कवि सुधेश जी ने किया है। स्वयं कवि ने स्वीकार किया है कि-"मैं इस बात को अस्वीकार नहीं करता कि विश्व का कल्याण भगवान महावीर ने किया है, कुमार वर्धमान ने नहीं, फिर भी मैं उनकी कुछ विशेषताओं के कारण कुमार महावीर से ही प्रभावित हूँ।[2] इस काव्य में कवि सुधेश ने

1. द्रष्टव्य-कवि मूलदास कृत-'वीरायण' पंचम खण्ड, पृ० 384.
2. द्रष्टव्य-धन्यकुमार जैन रचित 'विराग' का प्राक्कथन, पृ० 1.

कुमार वर्धमान का करुणा व प्रेम से द्रवित हो सत्पथ की ओर अग्रसर होने का संदेश दिया है। कवि ने वर्धमान के दिव्य जीवन के उस आलोक को अभिव्यक्त किया है, जो हमारे वर्तमान जीवन को भी प्रकाशित करने में प्रेरक हो सकता है।

कथावस्तु :

इस काव्य की कथावस्तु अत्यन्त संक्षिप्त है। खण्डकाव्य होने से वर्धमान के जीवन की संपूर्ण घटनाओं की चर्चा इसमें अपेक्षित नहीं है। पाँच सर्गों में इसकी कथा विभक्त है, जिनमें कथा का विस्तार कम है, भावनाओं व विचारों का विश्लेषण अधिक है। प्रथम सर्ग से ही कुमार वर्धमान प्रातःकालीन प्रकृति सौंदर्य का रसपान करते हुए दिवा में चिंतित हैं, एक ओर से माता-पिता का विवाह के लिए प्रेमपूर्ण आग्रह व अनुनय तथा दूसरी ओर स्वयं इस विवाह से विमुख होने से जैन दीक्षा अंगीकार करने की दृढ़ता में बंटे हुए हैं, लेकिन अंतिम सर्ग में कुमार वर्धमान की जग-कल्याण की भावना विजयी होती है। द्वितीय सर्ग में पिता सिद्धार्थ कुमार को विवाह के लिए प्रोत्साहित करने के लिए विशद्ता से यौवन-प्रेम, नारी-सौंदर्य, धन-संपत्ति, विवाहित जीवन की मधुरता आदि का कुमार के सामने चित्र खींचते हैं, लेकिन कुमार अपने वैराग्यपूर्ण विचारों के कारण पिता के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करते। विवश, निराश होकर राजा सिद्धार्थ को वापस आना पड़ता है और माता त्रिशला विश्वास लेकर वर्धमान को विवाह के लिए सहमत कराने के लिए आती हैं। माता-पुत्र के वार्तालाप को कवि ने तृतीय सर्ग में भावपूर्ण शैली में अंकित किया है। एक ओर है माता का प्यार, मजबूरी, इच्छा-आकांक्षा एवं अश्रु तो दूसरी, ओर है पुत्र का संयम, जग-कल्याण के लिए महल में रहकर संसार के बन्धनों में न बंधने की प्रबल वृत्ति, दीक्षा अंगीकार कर चिन्तन-मनन के द्वारा प्राणीमात्र के कल्याण का मार्ग ढूंढ़ने की लगन। यहाँ भी माता को भिन्न-भिन्न तरीकों के समझाने-बुझाने के बावजूद खाली हाथ लौटना पड़ता है। त्रिशला जाती है तब हृदय में अदम्य विश्वास लेकर, लौटती है तो बिल्कुल थकी-हारी भग्न हृदय होकर। इस सर्ग के प्रारंभ में ही कवि ने वैराग्य में डूबे हुए कुमार की स्थिति का संकेत कर दिया है–

सन्मति वैराग्य-उदधि में,
जाते थे प्रति क्षण बहते।
जग-दशा देखते थे वे,
नृप-मंदिर में ही रहते।।[1]

---

1. द्रष्टव्य–धन्यकुमार जैन रचित 'विराग' तृतीय सर्ग, पृ० 35.

और सर्ग के अंत में भी यही विचारधारा उद्वेलित रहती है जिसका कवि ने वर्णन किया है–

कुछ दिन इस भाँति समस्या–
सुलझाने में ही बीते।
इस रण राजभवन के
बन्धन ही अब तक जीते॥
वे होना चाह रहे थे,
सत्वर स्वच्छंद विहंग से।
हो चुका विराग उन्हें था
इस सुख विलास के जग से॥[1]

चतुर्थ सर्ग में पुनः एक बार कुमार को जोर देकर समझाने के लिए आते हैं। इस बार ये अपनी वृद्धावस्था, अशक्ति एवं कुमार के कर्तव्य के विषय में अपने विचार व्यक्त करते है। महावीर को राज्य-कार्य संभालकर पिता को सांसारिक बंधनों एवं कार्यों से निवृत्ति देकर धर्म में प्रवृत्त होने के लिए भी शासनतंत्र को संभाल लेना चाहिए, ऐसा अभिमत साग्रह वे प्रकट करते हैं। इसके सामने अडिग कुमार सब कुछ करने के लिए उद्यत हैं, लेकिन वैवाहिक बंधन में बंधने के लिए एवं राज्य भार संभालने के लिए तनिक भी इच्छुक नहीं हैं। पांचवें सर्ग में सदन-त्याग करने का पक्का निर्णय लेकर दीक्षा का निर्धारण जाहिर कर देते हैं। अन्त में कुमार वर्धमान के विराग की सांसारिक राग-अनुराग व वैभव-विलास के सामने विजय होती है–कुमार दृढ़ता से सोचते हैं–

भवनों का वास तजूंगा,
तज दूँगा सारी माया।
मिट जाऊँगा, जल-श्रद्धा–
का रूप बदल दूँगा या।[2]

खण्ड काव्य के अन्त में कवि विरागी कुमार वर्धमान की विजय को स्वीकार करते हुए गाते हैं–

तब तक सब कीर्ति रहेगी,
जब तक रवि-चन्द्र जगत है।
वह जग का मत बल होगा,
जो आज तुम्हारा मत है।[3]

1. द्रष्टव्य–धन्यकुमार जैन रचित 'विराग' तृतीय सर्ग, पृ० 45.
2. द्रष्टव्य–धन्यकुमार जैन रचित 'विराग' पंचम सर्ग, पृ० 59.
3. द्रष्टव्य–धन्यकुमार जैन रचित 'विराग' पंचम सर्ग, पृ० 72.

इस प्रकार पाँच सर्ग में विभक्त "विराग" की प्रधान घटना कुमार के अविवाहित रहने की है, जिसको कवि ने विविध भावों, विचारों, द्वन्द्व, दार्शनिकता आदि से भावपूर्ण शैली में अंकित किया है। कथा का सूत्र तो बिल्कुल सूक्ष्म है, भावानुभूतियों का क्रम प्रगाढ़ है। राग-विराग का द्वन्द्व चित्रित करने का कवि का प्रमुख प्रयोजन है, जिसमें राग की पराजय होती है और 'विराग' विजयी होता है। 'विराग' काव्य के कुमार महावीर सभी रागों, वैभवों व वृत्तियों को त्याग कर उस राह की ओर चल पड़े, जहाँ मनुष्य त्याग, करुणा, प्रेम व अहिंसा के शस्त्र से विजयी बनने में समर्थ हो सकता है। कवि कुमार के निश्चय को व्यक्त करते हैं–

फिर गृह से बाहर निकले
वे मोक्ष मार्ग के नेता।
सेना-धन-शस्त्र बिना ही,
बनने को विश्व-विजेता।[1]

उपर्युक्त रूप से 'विराग' खण्डकाव्य में वर्धमान के दृढ़ निश्चय, त्याग-वैराग्य की अनुपम भावना तथा माता-पिता की हार्दिक अनुभूतियों का कवि ने सुन्दर भावपूर्ण शैली में चित्रण किया है।

समीक्षा :

कथावस्तु के अन्तर्गत कुमार वर्धमान की वैराग्य पूर्ण मनःस्थिति का कवि ने अच्छा उद्‌घाटन किया है। कुमार के अविवाहित रहने की घटना को कवि ने आधार बनाया है। भगवान महावीर के जीवन का एक अंश ऐसा लिखकर कवि ने स्वयं एक प्रेरक घटना का संकेत किया है। मानसिक द्वन्द्व, चाह, आशा-निराशा, समझौता, वाद-प्रतिवाद आदि भावों का अंकन कवि ने रोचक संवादों के माध्यम से किया है। इसमें तत्कालीन राजकीय, धार्मिक व साद्धमाजिक परिस्थितियों पर भी प्रकाश डाला गया है। इसके साथ-साथ कवि ने आधुनिक युग की सभ्यता-संस्कृति, राजकीय व धार्मिक नेताओं पर परोक्ष रूप से व्यंग्य कर लिए हैं। कवि केवल धार्मिक सीमाओं में ही आबद्ध नहीं रहे हैं। वे आधुनिक वातावरण से पराङ्मुख नहीं हुए हैं। कुमार महावीर के मुख से नारी की दयनीय स्थिति, सर्वत्र शस्त्रों की होड़, भोग-वैभव के लिए स्पर्धा आदि का अच्छा निरूपण 'विराग' खण्ड काव्य में हुआ है। कवि वर्तमान परिस्थितियों से काफी प्रभावित है, जो सर्वथा उचित भी है। प्रथम, द्वितीय और

1. द्रष्टव्य–धन्यकुमार जैन रचित 'विराग' पंचम सर्ग, पृ० 62.

तृतीय सर्ग तक कथावस्तु में वर्धमान की उदासीनता, माता-पिता की चर्चा, कुमार को ब्याह के लिए प्रसन्न करने के प्रयास स्वरूप माता से सम्बोधन, दोनों की स्पष्टता तक तो ठीक है, लेकिन चतुर्थ सर्ग में राजा पुन: कुमार को राजगद्दी संभालने के लिए प्रेरित-प्रोत्साहित करते हैं, अपनी मजबूरियाँ भी जाहिर करते हैं। पिता सिद्धार्थ की यह इच्छा स्वाभाविक है। वर्द्धमान से एक बड़े पुत्र नन्दिवर्धन (युद्धवीर) के होने पर भी छोटे पुत्र को गद्दी संभालने के लिए अनुनय-विनय करना अनुचित और अव्यावहारिक भी है। हाँ, यह बात स्वीकार्य हो सकती है कि वैराग्योन्मुख युवा पुत्र को शादी करके राज वैभव और सुख संपत्ति के लिए प्रेरित करना या आदेश देना पिता का कर्त्तव्य हो सकता है। लेकिन युवा पुत्र के सामने पिता का नारी सौंदर्य, यौवन-दाम्पत्य जीवन की रसमय स्थिति का वर्णन करके उसे विवाह के लिए विनती करना भद्दा-सा प्रतीत होता है। जो कार्य मित्र या समवयस्क या अन्य किसी का हो सकता है, वह राजा सिद्धार्थ के द्वारा करवाना अनुचित महसूस होता है।

'विराग' का अन्तर्द्वन्द्व :

'विराग' खण्ड काव्य में कवि सुधेश ने महावीर के जीवन का चाहे एक ही सुन्दर अंश कथावस्तु के रूप में लिया हो, लेकिन जगह-जगह पर 'विराग' में प्रमुख तीनों चरित्रों के—वर्धमान, त्रिशला व सिद्धार्थ—मानसिक संघर्ष का अच्छा अंकन किया है। वर्धमान तो प्रथम खण्ड से ही चिंतित, दीक्षा में डूबे हुए दिखाइ पड़ते हैं। राग-विराग की तीव्र स्पर्धा में उनका विराग जियी होता है। माता त्रिशला भी पुत्र को विवाहित देखने के लिए काफी उत्सुक होने पर भी पुत्र की उदासीनता देखकर चिंतित भी हैं। पिता सिद्धार्थ अन्य बहुत से राजाओं के प्रस्तावों को स्वीकृत न कर पाने से उदास हैं, क्योंकि कुमार वर्धमान व्याह के लिए साफ इन्कार ही करते हैं। कुमार को समझा-बुझाकर ब्याह के लिए सहमत कराने के लिए माता त्रिशला हृदय में विश्वास एवं श्रद्धा लेकर जाती हैं लेकिन सामने कुमार का वैराग्य, प्राणी-कल्याण के लिए गृह-त्याग की अडिग इच्छा हिमालय की भाँति स्थित है, तब दोनों के बीच जो संवाद चलते हैं, वहाँ दोनों का मानसिक अन्तर्द्वन्द्व शाब्दिक रूप धारण कर लेता है। माँ के हृदय की चाह, ममता, आक्रोश, बिनती, मातृ-अधिकार, भाग्य विडम्बना आदि विविध भावानुभूतियों की अभिव्यक्ति में कहीं-कहीं तो ऐसा अनुभव होता है कि कवि ने माँ के हृदय को ही निकाल कर रख दिया है। पुत्र के पास पहुँचते ही अपनी ममता एवं पुत्र के कर्त्तव्यपालन पर विश्वास कर धड़कते हृदय से ही त्रिशला रानी पूछ बैठती हैं—तुम बहते इस समय कौन-से

रस मैं? पुत्र के प्रति कुमार स्नेह के कारण अन्य जीवों के दुःखों से दुःखी, उदास, चिंतित पुत्र से माँ प्रश्न करती है–

इन पशुओं को तो जलना, पर तुम भी व्यर्थ जलोगे?
है मरण भाग्य में जिसके, क्या उसके लिए करोगे?[1]

पिता के अनुनय-विनय की अपेक्षा माता का व्यवहार और पुत्र वात्सल्य विशेष स्वाभाविक और गहरा प्रतीत होता है। वह कभी पुत्र से आँचल फैलाकर भीख मांगती है, तो कभी अपने ही खोटे भाग्य को कोसती हुई पुत्र को शर्मिंदा बनाती है, तो कभी सास बनने के अपने अधिकार को मांगती है, वह अपने भाग्य को कोसती हुई कहती है–

'यदि काश! कहीं विधि तुमको, अंतस्थल माँ का देता।
मेरा ममत्व तो पुत्र पर, विजय प्राप्त कर लेता।।

अब इतने पर भी कुमार पिघलते नहीं हैं तो वह विकलता एवं विवशता से आहत होकर नम्रता से बिनती करती है:–

मत दुःखी करो तुम मुझको, दो उत्तर ऐसा कोरा।
मानों न मोह को मेरे, तुम अति ही कच्चा डोरा।।
दिन गिन गिन दशा हुई जब,
परिणय के योग्य तुम्हारी।
तब कहते हो मम ममता।
पाने के योग्य न नारी।
निज सुत अविवाहित हो यह,
जननी के लिए असह ही,
मुख पुत्र बधू का देखे,
माँ बनने का फल यह ही।[2]

माँ अपने भाग्य को तो कोसती है, लेकिन पुत्र की इस वैरागी दशा से दुःखी, चिंतित होती है, वह साश्रु प्ररित करती हैं–

है लगी तुम्हारे परिणय–
की चिन्ता जगते सोते।
दृग जल से रिक्त हुए हैं,
भुख से थोते।।

---

1. द्रष्टव्य–धन्यकुमार जैन रचित 'विराग' द्वितीय सर्ग, पृ० 21.
2. द्रष्टव्य–धन्यकुमार जैन रचित 'विराग' द्वितीय सर्ग, पृ० 22.

जाने क्यों इतने निष्ठुर
तुम होकर इतने ज्ञानी।
तुम माँ न बने हो, इससे
जननी की व्यथा न जानी।।[1]

लेकिन सामने अडिग महावीर थे। उनका तो स्पष्ट उत्तर था कि कामनाओं की कभी पूर्ति नहीं हो पाती। अनन्त इच्छाएँ क्रियाएँ कभी तृप्त होने वाली नहीं। नारी के समान ही विश्व के मूक प्राणी मेरे प्रेम व करुणा के अधिकारी हैं। उनकी करुण पुकार मेरे कानों को छेदकर व्यथित करती है। क्या एक नारी के साथ वैभव-विलास एवं तुच्छ सांसारिक सुखों के लिए में हजारों निर्दोष प्राणियों की बलि देख लूँ? क्या उनको उबारने के लिए प्रयत्न ढूंढ़ने का मेरा कोई कर्त्तव्य नहीं? मेरे सामने स्वजनों का स्नेह, आनंदोल्लास कुछ भी महत्व नहीं रखता, क्योंकि नेत्रों के सामने तो पशुओं की बलि-समय की करुण पुकार व रुधिर त्रस्तदशा का भयावना, क्रूर दृश्य नाचता रहता है। इस स्थिति में राजभवन में रहकर मैं वैवाहिक जीवन के आनंद स्वरूप भोग-विलास में कैसे रत रह सकता हूँ? अत: इन सबको उद्देश्य पथ में बाधक समझकर, उनका त्याग कर वैराग्य की राह पर उन्मुक्त हुए। शान्ति एवं करुणा की साक्षात् मूर्ति महावीर के मुख से व्यक्त होती उक्तियाँ उनके मानसिक द्वन्द्व को व्यक्त करती हैं। उनकी वाणी में ओज, हृदय में व्यथा तथा नयनों में करुणा की निर्झरिणी बहती है। अपने विचारों व निश्चय को सत्य का चोगा पहनाकर वे कहते हैं–

ये एक ओर हैं इतने, और अन्य ओर है नारी,
अब तुम्हीं बताओ इनमें से कौन प्रेम अधिकारी।
आकृतियाँ इनकी सकरुण, दिखती हैं सोते जगते,
तब ही तो रमणी से भी रमणीय मुझे ये लगते।[2]

वर्द्धमान माता को निराश नहीं देख सकते, लेकिन स्वयं विवाह के लिए इच्छुक नहीं हैं। अपनी विवशता व्यक्त करते हुए माँ से विनती करते हैं–

जननी! मैं आज विवश हूँ।
देने को उत्तर होता।
तू सोच न अपने उर में,
बन गया पुत्र यह कैसा?
इस जगत को मुझे बताना,

---

1. द्रष्टव्य–धन्यकुमार जैन रचित 'विराग' द्वितीय सर्ग, पृ० 23.
2. द्रष्टव्य–धन्यकुमार जैन रचित 'विराग' द्वितीय सर्ग, पृ० 27.

खुद जियो और दो जीने।
मानव को क्या पशुओं को भी, दो इच्छित खाने-पीने।
सन्देश सुना यह जग को,
सब वातावरण बदलना।
इससे ही मेरे पथ में
बाधक ही रहेगी ललना।[1]

नारी को वे धिक्कारते थे ऐसा भी नहीं है। नारी का तो समाज में आदरपूर्ण स्थान होना चाहिए, इससे विपरीत नारी की समाज में करुण स्थिति देख वे द्रवित हो गए हैं। नारी तो यहाँ तक ही त्याज्य या बाधक है, जहाँ तक यह असंयमित जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरित करती है। लेकिन जब नारी सहयोगी बन जीवन को सत्कार्य की ओर प्रेरित करती है तब वह सच्ची सहधर्मचारिणी बन जाती है अतः मनुष्य की जीवन साधना में उसका महत्वपूर्ण योगदान रहता है। महावीर ने अपने समय में ही नारी की पहचान करवाई थी। उनकी इस विचार धारा से कवि भलीभाँति परिचित लगते हैं। अतः पूरे काव्य में वर्धमान पशुओं की निर्दोष बलि, सामाजिक बाह्याडम्बर, आचार-विचार, राजकीय व धार्मिक नेताओं का कलुषित व्यवहार आदि पर निरन्तर सोचते-विचारते ही रहते हैं—देखिए—

सन्मति वैराग्य उदधि में,
जाते थे प्रति क्षण बहते।
जग-दशा देखते थे वे,
नृप-मन्दिर में ही रहते।

ज्यों ज्यों ही उनके जग के—
अति नग्न दृश्य को देखा।
त्यों खिंचती गयी अमिट बन,
उर पर विराग की रेखा।। 3-25।।

नारी की दीन दशा के संदर्भ में उनके हृदय में तीव्र मन्थन रहता है—

बनती कठपुतली पति की,
जिस दिन कर होते पीले।
पति इच्छा पर ही निर्भर
हो जाते स्वप्न रंगीले।
केवल विलास सामग्री ही मानी जाती ललना,
गृहिणी को घर में लाकर वे समझा करते चेरी।

---
1. द्रष्टव्य—धन्यकुमार जैन रचित 'विराग' द्वितीय सर्ग, पृ० 29.

\+ + + + + + +

कब नारी अपने खोये सत्य को प्राप्त करेगी?
कब वह निज जीवन-पुस्तक का नव अध्याय रचेगी।

महावीर के अन्तर्द्वन्द्व को व्यक्त करते हुए कवि लिखते हैं–

जिस किसी भाँति थे रहते,
उर में यह आग छिपाये
प्राय: विचरते रहते–
थे नीचे नयन गड़ाये।।
इस चिर अशांति का जग से,
किस दिन विलोम यह होगा?
निर्दोष मूक इन पशुओं–
को अभय प्राप्त कब होगा?
किस दिन इन बधिरों की
यह शोणित की प्यास बुझेगी?
कब इनके क्रूर मुखों पर,
करुणा की कान्ति दिखेगी? 3-42

तत्कालीन सामाजिक स्थिति के साथ धार्मिक व राजकीय स्थिति की विषमता से भी वे चिन्तित हैं। कवि ने कुमार वर्धमान के मुख से उस समय की परिस्थिति का संक्षिप्त चित्रण करवाया है, जिससे प्रतीत होता है कि कवि स्थितियों से काफी प्रभावित है। वर्धमान सामाजिक असमानता को देख दुखी रहते हैं–

पूंजीपति इनके आश्रित, रह सुख की निद्रा सोते।
परश्रामिक कृषक गण जीवन, भर दु:ख की गठरी ढोते।
बिकता है न्याय यहाँ ही, एवं व्यभिचार पनपते।
अपराधी दण्ड न पाये, कारा में सन्त तड़पते।। 4-55

अत: वर्धमान अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहते हैं–

अहिंसा पर विजय करूँगा, मैं शस्त्र अहिंसा का ले।

पाप के प्रति घृणा लेकिन पापी के प्रति करुणा एवं उसके उद्धार की सद्भावना वर्धमान में पूर्णरूप से निहित है। वे सोचते हैं–

दुष्पाप अवश्य घृणित है, पर नहीं है पापी।
यदि सद् व्यवहार करे वह बन सकता पुन्य प्रतापी।।

धर्म गुरुओं के बाह्याडम्बर से वर्धमान भीतर ही भीतर सुलग उठते हैं–

देखा अब धर्म उदर के पोषण का एक बहाना,
हिंसा को पुण्य बताते थे, मांस जिन्हें ही खाना।
है एक ओर उस ईश्वर के मंदिर भरे विभव से।
जिसको कुछ नहीं प्रयोजन, अब स्वर्ण रजत के लव से।।
बन चुके धर्म-गुरु सब ही
अन्य विलास के मद से।
अतएव उठाते अनुचित-
ही लाभ प्रतिष्ठित पद से।। 3-36।।

वर्धमान के उस समय की सभ्यता-संस्कृति के विषय में चिन्तन द्वारा कवि आधुनिक मानव जीवन पर करारा व्यंग्य करते हैं-यथा-

बन गई सभ्यता अब तो मदिरा के प्याले पीना,
जीने के लिए न खाना पर खाने को ही जीना।
प्राणों से प्यारे नर को सोने के पाले डेले
वह आज विचारों की ग्रन्थि हुई है ढीली।
इसलिए पापियों की ही दुनिया है रंग-रंगीली।

अधिकार व सत्ता से पैदा होती दानवता का कुमार चित्र खींच देते हैं-

अब यही राज सिंहासन, अपना यह रूप बदलते।
तब महायुद्ध मचवा कर, लाखों के प्राण निगलते।।
रंग देते अरुण रुचिर से, वे युद्ध क्षेत्र की धरती।
जो मध्य लोक में नकों की वसुधा का भ्रम करती।।

उक्त रूप से पति-पत्नी, पिता-पुत्र एवं माता-पुत्र के बीच संवादों में भी सभी की मानसिक स्थिति का कवि ने ख्याल दे दिया है। तीनों प्रमुख चरित्रों के हृदय में उलझन, चिन्ता आदि का प्रभाव है। वर्धमान तो घण्टों अकेले बैठकर भी सोचते-विचारते रहते हैं। पूरा तृतीय सर्ग कुमार के मानसिक संघर्ष का ही है। द्वितीय व चतुर्थ में भी उनका द्वन्द्व वार्तालाप के द्वारा व्यक्त होता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि 'विराग' का कवि जैन दर्शन की दिगम्बर विचारधारा में विश्वास करता है क्योंकि उन्होंने वर्धमान को विवाहित न बनाकर ब्रह्मचर्यावस्था में ही दीक्षा प्राप्त करते हुए वर्णित किया है। जो भी हो, 'विराग' प्रेरणा का कारण बन सकती है। 'विराग' काव्य में कवि ने शान्त वात्सल्य रस के छीटों की अनुभूति करवाई है।

राजुल :

आधुनिक हिन्दी जैन काव्य के अंतर्गत प्रबन्धात्मक रचना में दूसरा महत्वपूर्ण खण्ड काव्य 'राजुल' उपलब्ध होता है। जैन साहित्य में राजुल और नेमिनाथ को लेकर विशाल साहित्य सृजन हुआ है। नेमिनाथ जैसे सुन्दर तेजस्वी राजपुत्र बलि के प्राणियों की आर्त पुकार सुनकर विवाह मण्डप से बिना शादी किए ही लौट जाते हैं, तथा वैराग्य ग्रहण कर तपश्चर्या करने के लिए गिरनार पर्वत जाते हैं। उनके मानव उद्धार के लिए उपाय खोज निकलने के प्रयत्न काव्य-प्रसंगों के लिए अत्यन्त मार्मिक बन जाते हैं। उसी प्रकार रूप-गुण संपन्न राजकुमारी-राजुल का वैभव-विलास सुख-समृद्धि छोड़ जिनको पति मान चुकी है और जिनके साथ शादी होने वाली थी, ऐसे पति के पद-चिह्नों का अनुसरण करने के लिए युवावस्था में संसार त्याग करना हृदयग्राही और आकर्षक विषय रहा है। तथैव राजुल की वियोगावस्था, पति को प्रेमपूर्वक ऋतुओं की विषमता और त्याग की कठिनता का ख्याल देना आदि काव्य के लिए रसात्मक विषयवस्तु बन सकती है। करुण, वियोग शृंगार एवं शांत रस की निष्पति की काफी संभावना इस कथा में रहती है। राजुल खण्ड काव्य के रचयिता नवयुग के नवयुवक कवि बालचन्द्र जैन हैं, जिन्होंने इस काव्य में जैन संस्कृति को मानव के लिए जीवनादर्श बनाने का आभास किया है। जैन धर्म के त्याग व प्राणी मात्र के कल्याण हेतु स्व के सीमित दायरे से, उठकर परमार्थ में संलग्न होने का आदर्श व्यक्त किया है। आत्म-समर्पण कर आत्म साधना में लीन ऐसी राजुल देवी के जीवन की झांकी करवाई है।

कथावस्तु :

प्रथम सर्ग 'दर्शन' में कल्पना की सहायता से कथा के मर्म स्थल को तीव्रता एवं रोचकता प्रदान की गई हैं। जूनागढ़ के राजा उग्रसेन की पुत्री राजुल और द्वारकाधिपति समुद्र विजय के पुत्र नेमिकुमार का प्रथम साक्षात्कार द्वारिका की वाटिका में कवि ने करवाया है, जहाँ नेमिकुमार मदोन्मत जगमर्दन हाथी से वनविहार के लिए उपवन में आई राजुल की रक्षा करते हैं। यह प्रथम मिलन ही प्रणय कलिका के रूप में परिणित हुआ है। और दोनों की आँखों में प्रेम का प्रगल्भरूप प्रकट होने लगा। जूनागड़ लौटने पर सभी मिलन की स्मृतियाँ राजुल को पीड़ा दे रही थीं, उधर द्वारिका में नेमिकुमार के हृदय में भी राजुल की स्मृति टीस उत्पन्न कर रही थी। दोनों ओर पूर्व-राग तीव्र हो उठा और मिलन के लिए आतुर हो गये। यदि भाग्य का विधान कुछ और होता तो यही अरुण राग विवाह मंडप की ओर जा रही थी, कि रास्ते में मूक पशुओं की

करुण चीत्कार सुनाई पड़ती है जो बारातियों के एवं मेहमानों के भोजनार्थ बाड़े में बंध कर रखे गये थे। इस हृदयद्रावक आक्रन्द से नेमिकुमार को भोग-वैभव से घृणा हो गई और संसार के सुखों से वैराग्य आ गया। इस अघटित घटना से नेमिकुमार उसी पल विवाह मंडप की ओर जाने के बदले काफी समझाने बुझाने पर भी अब वे संसार में वापस आने के लिए तैयार नहीं हैं। राजुल यह समाचार सुनकर मूर्च्छित हो जाती है और जहाँ थोड़ी देर पहले आनंदोत्सव-मंगलगान और खुशी का वातावरण फैला था, वहाँ अब उदासी और मातम-सा छा गया। माता-पिता अपनी लाड़ली प्राण-प्रिया पुत्री को अन्य स्वरूप सुन्दर राजकुमार से जीवन-सूत्र बांधकर सुखी होने के लिए समझाते हैं, लेकिन राजुल भारतीय आदर्श नारी होने के एक बार जिसे पति स्वीकार कर चुकी है, वह अब दूसरे से शादी करके व्रत भंग कैसे कर पाये। वह तो नेमिकुमार को ही आत्म-समर्पण कर चुकी है, सो वह कह उठती हैं–

रहे कहीं भी किन्तु सदा वे मेरे स्वामी,
मैं उनका अनुकरण करूँ, बन पथ अनुगमी।

और राजुल दृढ़ निश्चयी हो कामना पर संयम प्राप्त कर आत्म-साधना में लीन होने के लिए नेमिकुमार के मार्ग का अनुसरण करने के लिए गिरनार पर्वत पर चल पड़ती है। उसने अपने भीतर रहे नारीत्व की दीनता-हीनता का त्याग कर उदास दृष्टि-कोण से समग्र विश्व के सुख-कल्याण की कामना के लिए स्वस्थता व दृढ़ता का संचय किया। वह स्वयं को त्याग-तपस्या के लिए नेमिकुमार के प्रति उसके स्नेह-कामना या वासना की जगह पवित्रता, उदात्त और भक्ति-भाव की लहर फैल गई है। वह कहती हैं–

तुमने कब तुझको पहिचाना
देखा मुझको बाहिर से ही, मेरे अन्तर को कब जाना।

\+ \+ \+ \+

नारी ऐसी क्या हीन हुई।
तन की कोमलता ही लेकर नर के संमुख क्या दीन हुई।

राजुल के कथन में आक्रोश, स्वाभिमान व नारी के प्रति पुरुष की लघुता वृत्ति से उत्पन्न फरियाद वृत्ति भी लक्षित होती है। 'साकेत' की उर्मिला या यशोधरा की शिकायत में भी स्वगौरव-रक्षा का स्वर सुनाई पड़ता है।

समीक्षा :

कवि की प्रथम कृति होने पर भी राजुल व नेमिकुमार के हार्दिक भावों एवं क्रियाओं का तादृश्य मार्मिक चित्रण किया है। प्रथम मिलन की बेला में

हृदयोर्मि एवं भावुकता, रोमांच, मुग्धता, विनम्रता आदि का रसमय वेदना और उसके आत्म समर्पण का कवि ने अच्छा वर्णन किया है। स्थायी प्रेम-बंधन के निकट पहुँचते ही परिस्थिति की विषमता स्वरूप अघटित घटना के कारण राजुल का आराध्य जब उसे छोड़ चल देता है, तो वह इस आघात से उत्पन्न तीव्र भावों का कृत्रिम संकोच या दमन न कर प्राकृति न रूप से धड़ाम् से 'हाय' करके गिर पड़ती है। उस समय उसकी विविध भावानुभूतियों का हृदय द्रावक वर्णन किया गया है। नेमिकुमार के अचानक त्याग के समय तो राजुल को क्रोध, मूर्च्छा, अपमान, उदासीनता आदि की विविध अनुभूतियाँ होती हैं। वह अपने भाग्य को कोसती है, अपनी विवशता पर उपालंभ देती है, लेकिन बाद में त्वरित मति-गति से सोच-विचार कर संसार-त्याग का दृढ़ निश्चय करती है। वह निश्चय राजुल के उत्कट त्याग, अद्भुत प्रेम एवं अनोखी कल्याण-भावना के चमकीले रंग से दीपित हो उठता है। उसके माता-पिता व सखी-स्नेहीजन उसे निष्ठुर प्रेमी से बिमुख होने के लिए युक्तियों से समझाते-बुझाते हैं, लेकिन राजुल को उसके पवित्र दृढ़-संकल्प से हटाने में वे पूर्ण असफल रहते हैं। राजुल अपनी सखियों को कितना उदात्त उत्तर देती हैः–

वे मेरे फिर मिले मुझे, खोजूँगी कण-कण में

अब नेमिकुमार के प्रति उसका उदात्त अनुराग व्यक्ति तक सीमित न रहकर कण-कण में व्याप्त होकर ऊर्ध्वगामी हो चुका है। उसकी दशा उत्तरोत्तर बिगड़ती ही चलती है। कभी वह विक्षिप्त-सी चेष्टा करती है, कभी प्रलाप करती है, कभी कोसती है, तो कभी आत्म-विस्मृत हो जाती है, तो फिर कभी अपनी ग्लानि व असमर्थता से कह उठती हैं–

अब न रही सुखद वृत्तियां, शेष बची है मधुर स्मृतियाँ,
उन्हें छिपा हृदयस्थल में अपना जीवन जीना होगा।

अनन्तर उसकी विरह-वेदना त्याग व तपस्या के दृढ़ निश्चय में परिवर्तित हो जाती है। वह भी नेमिकुमार के पथ पर प्रयास कर आत्म-विकास के लिए संसार-त्यागने के लिए उद्यत हो जाती है। काव्य नायिका राजुल व नायक नेमिकुमार के चरित्र में आत्म-कल्याण के साथ कल्याण की भावना विद्यमान है, जो आज के भौतिक युग में सुख-वैभव के पीछे ऊँची दौड़ लगाने वाले युवक-युवतियों को अवश्य प्रेरणा देकर कर्त्तव्य बोध करा सकती है। कवि ने उदात्त पात्रों को लेकर उनके जीवन की सर्वोत्तम उदात्त घटनाओं से खण्ड काव्य में सुन्दर भावों की सृष्टि खड़ी कर भोग के संमुख त्याग, राग के सम्मुख विराग व आत्म कल्याण के साथ विश्व-कल्याण की महती विचारधारा का आदर्श प्रस्तुत किया है।

इस खण्ड काव्य के प्रारंभ में संयोग-मिलन के दृश्य में मिलन, रोमांच, हर्ष, एवं अनुराग के चित्र में संयोग-शृंगार का प्रारंभिक स्वरूप दिखाई पड़ता है, जबकि राजुल की विरह-वेदना एवं तज्जनित उसकी करुण दशा के सुन्दर वर्णन में वियोग-शृंगार रस की सूक्ष्म रसधारा बहती है। इस प्रकार 'राजुल' खण्ड काव्य अपने उदात्त भावों के चित्रीकरण एवं आदर्शात्मक नायिका के मार्मिक चित्रण के कारण आधुनिक जैन काव्यों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। कवि की प्रथम रचना होने के कारण थोड़ी-बहुत त्रुटियों का रह जाना संभाव्य है, फिर भी सुन्दर भाव कोमल भाषा शैली के कारण अच्छी रचना है। "प्रथम रचना होने के कारण सभी संभाव्य त्रुटियां इसमें विद्यमान हैं, फिर भी इसमें उदात्त भावनाओं की कमी नहीं है। भाव, भाषा आदि दृष्टियों से यह अच्छी रचना है।[1]

भाषा की दृष्टि से काव्य उत्कृष्ट कोटि का न सही, सुन्दर अवश्य कहा जा सकता है। भाषा शुद्ध खड़ी बोली होने के साथ संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग कवि ने नहीं किया है। शैली में प्रासादिक गुण का निर्वाह हुआ है तथा अलंकारों का भी यथायोग्य उपयोग कर कवि ने वर्णन में माधुर्य एवं भावों में तीव्रता पैदा करने का प्रयास किया है। जैसे भाषा में लाक्षणिकता व मूर्तिमत्ता का काफी अभाव है। लेकिन भावों की गहराई एवं तीव्रता के कारण यह कमी खलती नहीं है। काव्य में यत्र-तत्र अनुप्रासों की छटा रहने से भाषा में नाद-सौंदर्य एवं लयताल का माधुर्य द्रष्टव्य है-

कल-कल छल-छल सरिता के स्वर, संकेत शब्द बोल रहे।

\+ + + + +

आँखों में पहले तो छाये, धीरे से उर में लीन हुए।

शब्दानुप्रास एवं वर्णानुप्रास अलंकारों के द्वारा कवि ने काव्य को सुन्दर बनाने का अच्छा प्रयास किया है।

अंजना-पवनंजय :

भंवरलाल शेठी यह पौराणिक खण्ड काव्य साधारण कोटि का होने पर भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आज यह खण्ड काव्य अप्राप्य है, लेकिन 'अनेकान्त' की पुरानी फाइलों को देखते-देखते यह खण्ड काव्य प्राप्त हो सका है।[2] नेमिचन्द्र शास्त्री के इतिहास में इस खण्ड काव्य के उल्लेख के साथ अन्य

1. डा० नेमिचन्द्र शास्त्री : आ. हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, द्वितीय भाग, पृ० 28.
2. अनेकान्त द्वैमासिक शोध-पत्रिका-1978 अप्रैल।

खण्डकाव्यों का—वीरता की कसौटी, बाहुबलि, एवं प्रतिफलन—भी नामोल्लेख किया है। लेकिन वे अप्राप्त होने से उनकी विवेचना संभव नहीं हो पाती।[1]

126 पदों में रचित इस लघु खण्ड काव्य में कवि ने अंजना के विवाह से चिंतित राजा महेन्द्र की उद्विग्न स्थिति के वर्णन से कथा सूत्र का प्रारंभ किया है। राजा महेन्द्र सुयोग्य कन्या रत्न के लिए योग्य वर खोजने की चिंता करते हैं और अपने मंत्री-गण से इस सम्बंध में राय पूछते हैं। समी मंत्री इच्छा व योग्यतानुसार भिन्न-भिन्न राजकुमार के नाम बताते हैं, लेकिन प्रधान मंत्री कुछ-न-कुछ दोष निकाल कर इन्कार कर देते हैं और स्वयं राजा प्रह्लाद एवं रानी केतुमती के सुयोग्य वीरपुत्र पवनंजय के लिए विज्ञप्ति करते हैं। योगानुयोग राजा प्रह्लाद सपरिवार हिमालय-दर्शन करने वहीं आये हैं। दोनों राजाओं की मानसिक इच्छाएँ व्यवहार में परिणत हो जाती हैं—

बड़े ठाठ से शुभ बेला में, हुई सगाई सनंद
पाणिग्रहण मूहुरत ठहरा, तीसरे दिन का ही सुखंद।।

फिर राजकुमार का अंजना एवं सखियों के बीच वाटिका में चलते आनंद-विनोद एवं वार्तालाप को छिपकर देखना और 'मिश्रकेशी' नामक सखी का पवनंजय की अपेक्षा विद्युत्प्रभ राजकुमार की तारीफ करने पर अपने प्रियतम पवनंजय के रूप-सौंदर्य व वीरता के विचारों में खोई हुई अजंना का मिश्रकेशी की बात का प्रत्युत्तर या प्रतिकार न करने की चेष्टा का पवनंजय गलत अंदाज लगाकर अजंना के चारित्र्य पर वहम लाता है व अपने इस अपमान का बदला लेने का निश्चय कर बैठता है। कवि शादी का वर्णन जल्दी में कर देते हैं। पवनंजय का शादी से इन्कार, फिर प्रहस्त का मित्र को समझाना-बुझाना, ऐसे मार्मिक प्रसंगों को कवि ने छोड़ दिया है, यदि ऐसे मार्मिक प्रसंगों का कवि ने त्याग न किया होता तो खण्ड काव्य अवश्य रोचक एवं भावपूर्ण बन सकता था। दो पदों में ही इस भावप्रधान प्रसंग का वर्णन कर दिया है, जिसमें वे पवनंजय के हृदय की क्रियाप्रतिक्रियाएँ, भावनाएँ, परिवर्तित विचारों की तीव्र भावाभिव्यक्ति कर सकते थे—

चले वहाँ से गये पवनंजय, चढ़ विमान पर घर आये।
सारी रात जाने भ्रमवश हो, आर्तध्यान कर दुःख पाये।।
मान-सरोवर के तट ऊपर, रचा गया मण्डप सुविशाल।
उसमें पाणिग्रहण रति से हुआ जब शुद्ध सुकाल।। (49-50)

तदनन्तर वैर वृत्ति की दहकती आग से जलता हुआ पवनंजय निर्दोष,

1. डा॰ नेमिचन्द्र शास्त्री : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, द्वितीय भाग, पृ॰ 24.

भोली-भाली मुग्धा अंजना का त्याग कर देते हैं। थोड़े समय के बाद सारे राज-परिवार में यह बात फैल जाती है। उस वेचारी ने बिना अपराध के पति-दर्शन और पति प्रेम के अमूल्य सुख को खो दिया। दिन-रात तड़पती-रोती, कलपती, वियोगिनी अजंना सखी बसन्त माला के सहारे भविष्य की आशा में दिन काटती हैं, तो रात नहीं गुजरती और रात भर रोते-रोते गुजारती है-

बरसों भी बीत गये दु:खिया को, पाये नहि पीके दर्शन,
छलिया, कपटिन, पगली कहते, झुका पवनंजय का नहीं मन।
मन था या अनपढ़ पत्थर था, लोहा था या बंज्जर था,
प्रेम-भिखारिन परम सुन्दरी नारी को न जहाँ स्थल था।

इतने में लंका पति का युद्ध में सहायता का संदेश आने पर राजा प्रह्लाद को समझा-बुझाकर पवनंजय स्वयं सेना लेकर चल पडते हैं, तब मंगल द्रव्य लेकर पति को युद्धक्षेत्र में बिदा कराने हेतु अजंना द्वार पर आती है, तो पवनंजय उसका तिरस्कार कर बिना देखे ही चले जाते हैं। मानसरोवर के तट पर दिन भर की थकी सेना ने पडाव डाला तो रात के समय मानसरोवर के सुरम्य तट पर चकवे-चकवी का दृढ़-प्रणय-बंधन व चकवे की मौत पर चकवी का करुण आक्रन्द और तड़प देखकर पवनंजय को उसी क्षण अजंना की असहाय, दु:खी स्थिति का ख्याल आता है। और अभिमान भरी आँखों में अब पछतावे के आँसू बहने लगे और हृदय में अजंना से मिलने के लिए बेसब्र हो गया और अब तक किए गए अपमान और उपेक्षा का बदला चुकाने के लिए तत्काल विमान में बैठकर चल पडते हैं और महल में जाकर क्षमा-याचना कर प्रेम-रस से अजंना को भिगो देते हैं। अजंना भी अपने को धन्य भाग्य समझती पति के क्रूर व्यवहार को माफ कर देती है और सवेरे प्रयाण की बेला के वक्त उसकी मुद्रा मांगती है, ताकि परिवार वालों को भविष्य में कुछ होने पर विश्वास दिलाने के लिए सबूत रहे। फिर भी बेचारी गर्भवती होने पर कुमार की मुद्रा बतलाने पर भी अपमानित की गई और सखी बसन्तमाला के साथ तन-मन से टूटी अजंना एक शिला खण्ड के पास पुत्र-रत्न को जन्म देती है और वहीं दोनों सखियाँ रहने का निश्चय करती हैं। वहीं एक दिन विमान में राजा प्रति सूर्य और उसकी रानी स्वयं वहाँ आते हैं, अपनी भांजी और बच्चे को पाकर खुश होकर अपने साथ अपने राज्य में ले जाते हैं। बीच में हाथ से छूट जाने पर जिस शिला खण्ड पर बालक गिरा था वह चूर-चूर हो गई और बालक बाल-बाल बच गया और इसी पर से बालक का नाम 'हनूमन' रखा गया। उधर पवनंजय युद्ध में विजय श्री प्राप्त कर महल में आकर अंजना के सम्बंध में जानकारी पाकर माँ-पर अत्यन्त क्रुद्ध होता है और वह अजंना की खोज करने के लिए निकल

पड़ता है। वह वन-जंगल में चारों ओर अंजना का पता पूछता रहता है। राजा प्रह्लाद, रानी केतुमती, राजा महेन्द्र कि पास आकर अंजना व पुत्र का सुखद समाचार राजा सूर्यचित्र देते हैं और सभी पवनंजय को खोज निकालते हैं और फिर बाद में सभी का अंजना के साथ सुखद मिलन होता है और क्षमा-याचना का क्रम चलता है।

आनंद मंगल छाया सबमें, हुआ प्रशंसित शील सिंगार।
सती अंजना का अति सुन्दर, छाया जग में जय जयकार।। (126)

इस प्रकार सती अंजना के शील, व्रत, तप, त्याग और एकनिष्ठा के महत्व को अभिव्यक्त करती यह कथा जैन समाज एवं साहित्य में अत्यंत प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय है। इसी कथावस्तु को अपनाकर श्री वीरेन्द्र जैन ने 'मुक्तिदूत' उपन्यास की रचना की है। जो समग्र आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य में उत्कृष्ट रचना कही जाएगी। कहीं रसात्मकता, मृदुता, आंतरिक संघर्ष व वेदना आदि उद्वेलित करने वाली अनूभूतियों की मार्मिक अभिव्यक्ति नहीं होने पर भी सुन्दर वर्णनों के कारण वर्णन प्रधान खण्ड काव्य के अन्तर्गत इसकी गिनती की जा सकती हैं। भाषा शैलीभाव व कल्पना चित्रण की तरह सामान्य हैं। अंजना के लिए जगह-जगह 'बाई' का शब्द प्रयोग कुछ भद्दा-सा प्रतीत होता है फिर भी छोटे से 126 पद के खण्ड काव्य में प्रकृति वर्णन, मानसिक अन्तर्द्वन्द्व चारित्रिक विशेषताएँ चित्रित करने की गुंजाइश अत्यन्त कम ही रहेगी। पूरी कथा को समाविष्ट करने की अपेक्षा कवि ने इस लघु-काय स्वरूप के लिए किसी एक ही मार्मिक प्रसंग को चुन कर उत्कृष्ट शिल्प विधान एवं तीव्रतम भावाभिव्यक्ति के द्वारा खण्ड काव्य को सजाया होता तो निश्चय ही सुन्दर भावप्रधान खण्ड काव्य भकेट प्राप्त होती। फिर भी आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य में गद्य की विशालता के सामने पद्य की स्पष्ट कमी के कारण इस खण्ड काव्य का अपना महत्व बना रहता है।

सत्य-अहिंसा का खून :

आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य में स्व० भगवतस्वरूप जैन का काफी योगदान रहा है और उन्होंने महत्वपूर्ण स्थान भी प्राप्त किया है। प्राय: गद्य की सभी विधाओं में उन्होंने कलम चलाई है और पद्य में भी छोटे-छोटे कथानक वाले मुक्तक काव्यों एवं खण्ड काव्यों की रचना भी भेंट की है। इनमें 'सत्य, अहिंसा का खून' लघु खण्डकाव्य में पौराणिक कथा वर्णित की है। हिंसा एवं असत्य ऐसे तत्व है, जिनके कारण मनुष्य उच्चासन से पटक कर नीचे पहुँच जाता है।

कथावस्तु :

राजा वसु, ब्राह्मण पुत्र नारद एवं मंत्री पुत्र पर्वत बाल्य काल में तीनों एक ही आश्रम में पढ़ते थे तब 'अज' शब्द का अर्थ गुरु ने 'त्रिवर्षीय शला' (जौ) बताया था। बड़े होने पर वसु राजा बनता है एवं ब्राह्मण पुत्र नारद विद्या अर्जन हेतु देश का भ्रमण कर ज्ञानोपार्जन कर वापस आता है और पर्वत अब अपने पिता का स्थान ग्रहण कर चुका है, लेकिन वह सच्चा ज्ञानी न होकर ज्ञान का दंभ मात्र भरने वाला है। एक दिन 'अज' शब्द को लेकर नारद एवं पर्वत अड़ गए पर्वत 'यज्ञ में बलि का बकरा' बताकर उसी पर अड़ा रहा, जब कि सच्चा अर्थ नारद का था। बाद में दोनों में वाद-विवाद तीव्रता पर पहुँचने से राजा वसु के पास न्याय कराने के लिए जाते हैं। पर्वत की माता ने राजकुमार वसु को बचपन में एक बार गुरु के क्रोध से बचाने पर कुछ माँगने का वरदान भविष्य के लिए रखा था और उसे मालूम था कि मेरा पुत्र हारनेवाला है और नारद का अर्थ सत्य होने से वसु उसको ही सच ठहरायेंगे। अतः वह राजा के पास पहुँचकर पुत्र के पक्ष में न्याय देने का वचन माँग लेती है, जो सरासर गलत था। लेकिन वचनबद्ध वसु को असत्य बोलकर न्याय करना पड़ा। फलस्वरूप असत्य के समर्थन से वह सिंहासन समेत पाताल चला गया। मूढ़ पर्वत कलंक का दोषी रहा। वसु राजा को भी यज्ञ में बकरे की बलि को हिंसामय जानते हुए भी गुरु-पत्नी को दिए वरदान को निभाने के लिए झूठा न्याय देना पड़ा। पर्वत को भी नगरवासियों ने हिंसावादी समझकर नगर बाहर निकालने की सजा दी। इस प्रकार यह एक उपदेशात्मक लघु खण्डकाव्य है। भाषा इसकी सरल हैं। भाव अच्छे हैं। पात्रों के चरित्र-चित्रण एवं वर्णनों की गुंजाइश अत्यन्त कम रही है। कपूरचन्द्र जैन इस कृति के संदर्भ में लिखते हैं–"स्व० भगवतजी की यह रचना यद्यपि भाषा और साहित्य की दृष्टि से उनकी प्रारंभिक और शैशव अवस्था की अनुमान की जाती है, किन्तु भावों की दृष्टि से वह आज भी उतनी ही नई, उपयोगी और प्रेरणादायक है, जितनी कभी अतीत काल में रही होगी। 'सत्य' और 'अहिंसा' की अवहेलना के दुष्परिणाम को वह आज भी सूर्य की भाँति प्रकाशित कर रही हैं।"[1] पद्य की शैली साधारण है, लेकिन अहिंसा एवं सत्य के महत्व का संदेश छोटे-से कथानक के भीतर छिपा हुआ है, वह उल्लेखनीय है। सामान्य जैन समाज की समझ के लिए सरल शैली अपनाई गई हो ऐसा प्रतीत होता है। कहीं-कहीं सूक्ति के रूप में अच्छे कथन मिलते हैं–यथा–सच है विनाश के समय सुधि, विपरित बुद्धि हो जाती।' इस प्रकार यह लघु खण्ड काव्य साधारण होते हुए भी अपना महत्व रखता है।

1. सत्य अहिंसा का खून–प्राक्कथन, पृ० 7.

मधु रस :

स्व० भगवत जैन के आठ लघु कथात्मक काव्य इसमें संग्रहीत हैं। धार्मिक कथा साहित्य पर आधारित इन काव्यों में प्रथम खण्ड काव्य 'स्वाधीनता की दिव्य ज्योति' में बाहुबलि एवं चक्रवर्ती भरत का रोचक लोकप्रिय कथानक है, जो जैन साहित्यकारों का प्रिय विषय रहा है। इसमें त्याग, शक्ति एवं सांसारिक विषमता के संघर्ष का अनूठा वर्णन है। कवि ने प्रारंभ में चौबीस जिनों की वंदना की है, और अपने काव्य को 'तुकवंदी' कहकर स्वयं को 'कवि' नहीं समझा है। अपनी लघुता को स्वीकार कर निराभिमानता का परिचय दिया है। कविताएँ साधारणत: रोचक एवं मध्यम कोटि की हैं, लेकिन कवि की धार्मिक अनुरागमयता से रंजित भावानुभूति एवं रोचक कथा वस्तु के कारण अच्छी लगती हैं।

'स्वाधीनता की दिव्य ज्योति' में प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के पुत्र भरत एवं बाहुबलि के बीच हुए युद्ध का वर्णन है; जिसमें विजित बाहुबलि सांसारिक जय को ठुकरा कर आत्म-बोध प्राप्त होने से आध्यात्मिक विजेता-पद प्राप्त करने के लिए युद्ध क्षेत्र में ही बालों का पंचपुष्टि लोच कर विरागी बन जाते हैं।

भगवान ऋषभदेव अपने राज्य को दोनों में बांट देते हैं और अपनी गद्दी पुत्र भरत को सोंपते हैं। भरत को चक्रवर्ती बनने का सपना था, अत: एक के बाद एक सभी राजाओं को पराजित कर चक्र नगर के द्वार के पास ही रुक गया, जिससे सूचित होता था कि अभी भरत संपूर्ण चक्रवर्ती नहीं हैं, अभी कोई राजा उन्हें चक्रवर्ती के रूप में स्वीकारने को तैयार नहीं है। अत: क्रोध में आकर दल-बल के साथ बाहुबलि की नगरी पर धावा बोल दिया। पहले दूत भेजा गया और पराजय स्वीकार करने का संदेश भेजा गया लेकिन बाहुबलि सच्चे अर्थ में वीरता की मूर्ति समान थे। उनको स्वाभिमान था कि एक ही पिता के हम पुत्र हैं, तो फिर क्यों उनके चरणों में शीश झुकाऊँ। अत: दासत्व स्वीकारने से इन्कार कर दिया और युद्ध के लिए तैयार हो गये। फलस्वरूप दोनों पक्षों के मंत्रियों ने तय किया कि जब दोनों बलवान हैं, दोनों का आपसी मामला है, तो फिर क्यों हजारों के प्राण व्यर्थ में गंवायें, वे दोनों ही आपस में जलयुद्ध, वेग-युद्ध एवं द्वन्द्व युद्ध कर फैसला प्राप्त कर लें। जो विजयी होगा वह चक्रवर्ती बनेगा। प्रथम दो युद्धों में दृढ़ सशक्त बाहुबलि विजयी होते हैं। अंतिम द्वन्द्व युद्ध में भी विजय के पास आ गये, तब बड़े भाई पर जोर से हाथ उठाते ही वे लज्जित होकर सोच-विचार में डूब जाते हैं, और राजकीय सत्ता की गुलामी से छूटने के लिए संसार पर वैराग्य आ जाता हैं। उसी समय ऊँचे किए

दो हाथों से अपने ही बालों को नोंच लेते हैं और जंगल में जाकर दीक्षा ग्रहण करते हैं। यदि चाहते तो भरत को हरा कर स्वयं चक्रवर्ती बन सकते थे लेकिन जब एक बार मोह का अंधकार नष्ट हुआ फिर चक्रवर्ती पद की आवश्यकता क्या? आज इसीलिए तो जैन समाज भरत चक्रवर्ती की अपेक्षा आत्मजयी वीर संयमी बाहुबलि को विशेष सम्मान देता है। बाहुबलि को मार डालने के लिए भरत ने तो अंत में चक्र को भी छोड़ा था लेकिन चक्र को लगातार अपनी चारों ओर प्रदक्षिणा देते हुए देखकर बाहुबलि को दुनिया के व्यवहार एवं सांसारिक सम्बंधों की बनावट पर धिक्कार छुटा–

धिक्कार है दुनिया कि है दम भर का तमाशा,
भटकाता, भ्रमाता है पुण्यवान का पाशा,
कर सकते वफादारी की हम किस तरह आशा,
है भाई जहाँ भाई के खून का प्यासा।
चक्रीश! चक्र छोड़ते क्या यह था विचारा।
मर जायेगा, बे-मौत मेरा भाई दुलारा।
उस राज्य को धिक्कार कि जो मद में डूबा दे,
अन्याय और न्याय का सब भेद भूला दे।
भाई की मुहब्बत को भी मिट्टी में मिला दे,
या यों कहो अलिप्त दो हैया बना दे,
दरकार नहीं, ऐसे घृणित राज्य की मन को,
मैं छोड़ता हूँ आज से उस नारकी पन को।
यह कहके चले बाहुबलि मुक्ति के पथ पर,
सब देखते रहे कि हुए हो सभी पत्थर॥[1]

स्वयंवर :

लक्ष्मण का जितपद्मा नामक राजकुमारी के अभिमान को चूर-चूर कर स्वयंवर जितने की कथा है। जितपद्मा अभिमानी एवं युद्धप्रिय होने से पुरुष से द्वेष करती थी लेकिन लक्ष्मण जी के रूप सौंदर्य एवं बाहुबल से प्रभावित हो कोमल हो जाती है और अनुराग का अनुभव करती है। उसके पिता वैरीदमन लक्ष्मण पर शक्तियों का प्रहार करता है, जिससे अवश्य मृत्यु हो सकती थी लेकिन लक्ष्मण ने तो वीरता से उस शक्ति को हाथों में दबा लिया और अन्त में राजा बैरीदमन लक्ष्मण की अनुपम वीरता से पराजित होकर अपना सिर झुकाता है और अपनी पुत्री जितपद्मा के स्वयंवर में लक्ष्मण को वरमाला प्राप्त

1. द्रष्टव्य–भगवत जैन–'मधुरस', पृ० 21.

होती है। इस प्रकार जैन पुराणों के अनुसार यह जितपद्मा की कथावस्तु ग्रहण की गई है। कविता साधारणत: अच्छी है।

सिद्धार्थ नंद :

यह खण्ड काव्य काफी अच्छा है। महावीर के जन्म से पूर्व हिंसा का वातावरण कैसा फैला था और लोग शान्ति की चाह कर रहे थे, धार्मिक क्षेत्र में यज्ञयाग में निर्दोष पशुओं की बलि चढ़ाकर धर्म का 'पुण्य' उठाने थे। लेकिन महावीर ने अपने निरंतर प्रयासों से अहिंसा का महत्व प्रतिपादित किया। महावीर जब पैदा हुए तब–

छाया हुआ था विश्व में हिंसा का अंधेरा
डाला था आत्मा पर क्रूर कर्म ने घेरा।
लगने लगे मानव को, पाप धर्म है मेरा
हर शाम सनी खून से, हर दिन का सवेरा॥
आकाश बेगुनाहों की आहों से भर गया।
मानव का बुद्धिवाद था, जाने किधर गया।[1]

सिद्धार्थ-नंद वर्धमान की अहिंसा परक वाणी का कवि ने सुन्दर उल्लेख किया है। प्रभु अहिंसा-पूर्वक जीवन जीने के लिए सबको संदेश देते हैं। आचरण के यथायोग्य वे उपदेश देते थे। वे कहते हैं–

हिंसा है महापाप कि ये नीच कर्म है
यदि धर्म है कोई तो अहिंसा ही धर्म है।
हर एक को निहारो दया की निगाह से
जी अपना बहलाओ ना गरीबों की आह से।
खून भी पाप है डरो उस के गुनाह से
तुलना न करो उस के गुनाह से।
हिंसा है धर्म तो अधर्म क्या है बताओ,
पाखण्ड यहीं रोक दो, आगे न बढ़ाओ॥ (पृ० 41)

महावीर के इस संदेश के फलस्वरूप हिंसा के स्थान अहिंसा का प्रभुत्व बढ़ने से–

आनन्द में तब्दील हुआ विश्व का क्रन्दन।
यह गूंजा कि जयवन्त होवे वीर का शासन॥

इस छोटे से खण्ड काव्य में कथा वस्तु नहीं है, कहीं अलंकार योजना

1. द्रष्टव्य–भगवत जैन–'मधुरस', पृ० 36.

या भाषा का चमत्कार भी नहीं है लेकिन अहिंसात्मक विचारधारा का उचित उद्रेक ही काव्य का महत्वपूर्ण अंश बन गया है।

जनकनंदिनी :

छोटा-सा काव्य है। रामायण की कथा से इसमें काफी परिवर्तन कर दिये है, क्योंकि लव-कुश मिलाप के बाद सीता वाल्मीकि आश्रम में थी, राजा वज्रजंग के यहाँ नहीं, लेकिन जैन पुराण की राम कथा को आचारवस्तु बनाया गया होने से भगवत् को भी उसी का अनुसरण करना पड़ा है। राम का चरित्र जैन रामायण में काफी गिराया गया है। कवि ने भी इसमें राम के गौरव युक्त चरित्र के लिए अरुचिरकर भाषा का प्रयोग किया है। सीता के लिए 'निर्लज्ज' शब्द प्रयोग राम के गौरवपूर्ण चरित्र के लिए कहाँ तक उचित हैं?-

बोले राम खुश नहीं हूँ मैं देख तुम्हें मन में सीते
ताजा है अपराध आज भी, है यद्यपि वर्षों बीते।
मेरे तुम परित्याग लिए भी नहीं छोड़ती हो ममता।
इस वेशरमी की बतलाओ कौन कर सकेगा समता। (पृ॰ 45)

सीता अग्नि परिक्षा के लिए उद्यत होती हैं और पावक अग्नि अपनी शक्ति से पानी का कुण्ड भर देता है। उसमें कमल पर राज सिंहासनारूढ़ देवी सीता है। सभा जन एवं आप्त जन जय जय कार करते हैं। राम भी लज्जित होकर सीता को अपना पद संभालने के लिए कहते हैं, लेकिन सीता कहती हैं-

सीता उठकर खड़ी हुई बोली विरक्त होकर वाणी,
काफी देख चुकी हूँ रघुपति, किस्मत की खींचातानी
नहीं किसी का दोष, दोष तो है सिर्फ भाग्य का,
जिसके आगे बलशाली भी रहता है होकर खामोश।। (पृ॰ 54)

और सीता केश नोंच कर साध्वी बनने के लिए वैराग्य के मार्ग पर गमन करने के लिए तैयार हुई। राम काफी दु:खी शरमिन्दा होकर सीता से क्षमा-याचना करते हैं और वापस लौटने के लिए बार-बार विनती करते हैं लेकिन अब सीता उत्तम वैराग्य मार्ग पर अपने पांव दृढ़ता से रख चुकी हैं, अत: इन्कार करती हैं।

साधु-सेवी :

जैन धर्म उपासक किसी सेठ के गुरु को कोढ़ निकला है और राजसभा में उन्हीं गुरु की चर्चा निकलने पर राजा सेठ जी को पूछते हैं, लेकिन गुरु कोढ़ी है, ऐसा निंद्य शब्द कैसे जिह्वा पर आए? सेठ ने गुरु के तप और पवित्रता की प्रशंसा की लेकिन सचाई की परीक्षा-हेतु दूसरे दिन सभी जंगल में जाकर

देख लेंगे ऐसा राजा का निर्णय सभा में सुनकर घर पर आकर सेठ उद्विग्न हो गए। गुरु निंदा से बचने के लिए असत्य वचन कहने का पाप किया था। राजा गुरु का कोढ़ी शरीर देखकर सजा देंगे, इसका भी डर नहीं था, लेकिन गुरु का अपमान होगा यह सोच इसका उपाय ढूंढ़ने के लिए सांझ की बेला में गुरु के पास जाकर यहाँ से प्रस्थान कर देने को कहते हैं। गुरु के पूछने पर सच-सच बता देते हैं। सेठ की गुरु-भक्ति देख निश्चिंत रहने के लिए गुरु ने कहा। दूसरे राजा ने सभासदों एवं सेठ जी के साथ देखा तो गुरु जी संपूर्ण निरोगी थे। सेठ भी स्तंभित हो गये–

सोने-सा अतिदीप्त, रोग से
शून्य, तपोबल से जगमग
गुरु का देख शरीर, सेठ
रह गए खड़े कुछ दूर।।

धर्म के प्रभाव से कुछ भी असंभावित नहीं है ऐसा गुरु के कहने पर गुरु निंदक सभासदों ने क्षमा माँग कर जय जय पुकारी। सभी गुरू के चरणों में जा झुके। सेठ धन्य-धन्य हो गये। 'पुजारी' में आडम्बर युक्त एवं नामरटण तथा सच्ची पूजा का अंतर स्पष्ट किया गया है। सच्ची पूजा में श्रद्धा व प्यार युक्त भक्ति भावना होती है। कामना-वासना के स्थान पर संतोष एवं शान्ति होती है। जबकि बनावटी पूजा में लोभ एवं ममता होती है। सांसारिक ऐषणाएँ छिपी रहती हैं। दुन्यावी चाह पूरी न होने पर पूजा को कोसा जाता है। छोड़ भी दी जाती है। जबकि सच्ची भक्ति किसी भी प्रकार के आघात-कष्ट आने पर भी प्रभु इच्छा समझकर भक्ति का प्रवाह अखण्ड रहता है।

श्रद्धा और भक्तिमय पूजा है अतीव सुखकारी।

'गुलामी' में सीता वनवास की छोटी-सी कथा है। काव्य साधारण कोटि का है, जो जैन-पुराण पर आधारित है। गुलामी की दशा के कारण ही सीता को वन में छोड़ने की रामाज्ञा का पालन सेनापति को करना पड़ा, इसका हार्दिक खेद है। सीता जी को तीर्थ-दर्शन के बहाने–ले जाने के बाद गाढ़ जंगल में छोड़ देने की आज्ञा के मुताबिक सेनापति सीता जी को वहीं उतर जाने को कहने से पहले फूट-फूट कर रोता है और सीता के पूछने पर कहता है–

आज यदि स्वाधीन मैं होता अहो,
पाप यह न होता मेरे हाथ से,
नारकी पन का घृणित मिलता नहीं,
मर्म-बेधी हुकुम रघुनाथ से।

तब विवश होकर यही कहना पड़ा,
माँ तुम्हारा त्याग है प्रभु ने किया।
घोर वन में छोड़ आने के लिए
हे मुझे आदेश राघव ने दिया।

सीता की असहाय, दीन दशा देखकर सेनापति रोने लगा, हाय-हाय की चीत्कारें करके सीता से क्षमा-प्रार्थना करता है। सीता की वेदना और रोदन को देखकर–

गूँज तब कान्तार की सीमा गई, काँपने सी लग गई जैसे धरा।
रो उठा वह भीम वन भी दीन हो, पत्थरों का हृदय भी फटने लगा।

यहाँ सीता की धनीभूत पीड़ा एवं परिणाम स्वरूप भीषण मर्मदाहक दशा का कवि ने सुन्दर वर्णन किया है–

वृक्ष भी चित्कार-सा करने लगे,
रुक गई बहती हुई भी विपथगा।
बाघ, भालू, सर्प, हस्ती, भेड़िये,
सब चकित हो लगे उसको देखने।

अन्त में सीता को वन में अकेली छोड़, धर्म को पलभर भी न त्यागने का सीता का राम के लिए संदेश लेकर चमूपति राम के पास आते हैं और अब चाहते हैं–

कर चुका मैं कार्य अंतिम आपका, अब मुझे स्वातंत्र्य का सुख चाहिए।
है मुझे करना प्रयत्न अवश्य ही, इस दुःखद घातक गुलामी के लिए,
दासता की शृंखला को तोड़कर, चमुपति दौड़े तपोवन के लिए,
तनिक से सन्तुष्ट वह होते न थे, पूर्ण आजादी उन्हें थी चाहिए।

(पृ॰ 78-79)

'त्रिशलानंदन' सिद्धार्थ-नंदन-सा ही काव्य है। दोनों काव्य में समान विचारधारा है। वर्धमान के जन्मपूर्व की हिंसामय परिस्थिति का वर्णन एवं वर्द्धमान के जन्म बाद अहिंसा के साम्राज्य की चर्चा की गई है। किस प्रकार हिंसा से विमुख होकर अहिंसा का महत्व जनता को समझाया और प्रभु ने अहिंसा का महत्व प्रतिपादित किया, यही इस काव्य की मुख्य ध्वनि है।

इस प्रकार श्री भगवत् जैन द्वारा लिखित 'मधु-रस' छोटे-छोटे आठ काव्यों का संग्रह है, जिनकी आधारभूमि जैन दर्शन का कोई न कोई सिद्धान्त रहा है–अहिंसा, गुरुभक्ति, रात्रि भोजन त्याग, दया, क्षमा, प्रेम आदि का महत्व व्यक्त किया गया है। काव्य की भाषा सरल एवं शुद्ध खड़ी बोली है, जिसमें

उर्दू के शब्दों का क्वचित प्रयोग किया है। भगवत जी बहुमुखी प्रतिभा के स्वामी थे, अतः उन्होंने विपुल साहित्य-सृजन के द्वारा हिन्दी जैन साहित्य के साथ हिन्दी साहित्य की भी काफी सेवा की है। आधुनिक जैन साहित्यकारों में उनका महत्वपूर्ण स्थान कहा जायेगा।

मुक्तक :

मुक्तक काव्य की विशेषताओं की संक्षिप्त रूप से चर्चा हम कर चुके हैं। आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य में मुक्तक काव्यों की दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती हैं। एक प्राचीन परिपाटी पर लिखी गई कविताएँ, जिनमें किसी आचार, विचार या किसी सिद्धान्त का प्राचीन ढंग पर वर्णन किया गया है। ऐसे काव्यों की भाषा-शैली भी पुराने ढंग की होना स्वाभाविक है। हृदय की भावना की अभिव्यक्ति तो अवश्य होती है, लेकिन रूप को संवारा नहीं गया होता। इस प्रकार के मुक्तक काव्यों में दार्शनिक अभिव्यक्ति की विपुलता के कारण भावों का सहज उन्मेष अत्यन्त कम हो पाया है।

प्राचीन पद्धति पर काव्य-रचना करने वाले प्रथम कवि आरे निवासी बाबू जगमोहन हैं। जिनका 'धर्मरत्नोद्योत' नामक छोटी-छोटी कविताओं का एक ग्रंथ प्रकाशित है। इनकी कविता साधारण है, पर भक्ति-भावना पूर्ण है। अतः कविता बोझिल या नीरस नहीं प्रतीत होती।

पुराने ढंग के कवियों की रचनाएँ आज अनुपलब्ध हैं, लेकिन डॉ० नेमिचन्द्र ने अपने परिशीलन में इनकी रचनाओं पर संक्षिप्त प्रकाश डाला है। रचनाएँ तो उनको भी प्राप्त नहीं हुई हैं। मुक्तक काव्य रचना के अंतर्गत शास्त्री जी ने प्रवृत्ति गत परिचय ही दिया है। बाबू जैनेन्द्र किशोर ने भजन, नवरत्न, श्रावकाचार, वचन-बतीसी आदि कविताएँ लिखी हैं। इसके उपरान्त आपने समस्या पूर्ति भी की है, जिस पर रीति-युग की स्पष्ट छाप है। आपके नख-शिख वर्णन में भी कुछ रोचक और मधुर उपलब्ध है। इसी प्रकार झालण पाटन निवासी श्री लक्ष्मीबाई तथा मास्टर नन्दुराम ने प्राचीन परिपाटी पर कविताएँ लिखी हैं जो आज अनुपलब्ध हैं। वैसे उनकी कविताओं में आचारात्मक और नैतिक कर्त्तव्य का विश्लेषण सुन्दर ढंग से किया गया है। सप्त व्यसन की बुराइयों के वर्णन के साथ दर्शन और आचार की गूढ़ बातों का कवि ने सरस व सरल शैली में वर्णन किया है। दार्शनिक पृष्ठभूमि से सम्बंधित विषयों पर कविताएँ लिखने पर भी रोचक शैली के कारण ये कविताएँ ग्राह्य बन पड़ी हैं।[1]

श्रीमति रमारानी जैन ने आधुनिक युग के जैन कवियों की कविताओं का

1. डा० नेमिचन्द्र शास्त्री : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, द्वितीय भाग, पृ० 34.

सुचारु ढंग से संकलन किया है। जैन कवि होने के नाते प्राय: सभी कवियों की कविता का विषय जैन तत्वों पर अवलंबित कोई न कोई विचार धारा या सिद्धान्त का होना स्वाभाविक है। अहिंसा, सत्य, प्रेम, करुणा व मानवता के साथ-साथ इन कवियों ने राष्ट्रीय चेतना, मातृ-भूमि व देश-प्रेम, बन्धुत्व भावना के विषय में भी काफी लिखा है। प्राय: नवचेतना, जोश-उत्साह का स्वर काफी फूट पड़ा है। इन कवियों की शैली पर आधुनिक हिन्दी साहित्य के कवियों की भावधारा व शैली का प्रभाव विशेष दिखाई पड़ता है। पंत, निराला, मैथिलीशरण गुप्त, महादेवी जी, चतुर्वेदी व प्रसाद जी की भावधारा एवं काव्य-शैली का प्रभाव प्रतीत होता है। श्रीमति रमादेवी का यह प्रथम प्रयास है, फिर भी उन्होंने काफी सतर्कता व कुशलता से कार्यवहन किया है। केवल जैन कवियों की कविताओं को ही सम्पादित करके क्षेत्र को सीमित बनाने का उनका उद्देश्य नहीं है, लेकिन '' 'मैं' अपनी जाति और समाज के संपर्क द्वारा जिन कवियों को जान सकी हूँ और जिन तक पहुँचना दुर्लभ है, मानवता के उन प्रतिनिधियों को विशाल साहित्य संसार के सामने ला रही हूँ।''[1]

आधुनिक जैन कवियों के रमारानी जी ने भिन्न-भिन्न विभाग किये हैं, उनमें प्रथम 'युग-प्रवर्तक' कवियों को शामिल किया है। जिन्होंने प्रारंभ में थोड़ी-बहुत भावावेश स्थिति में कविताएँ लिखी हों—कवि बनने का उद्देश्य लेकर नहीं—लेकिन बाद में इतिहास, आध्यात्मिकता, अन्वेषण व आलोचना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य करते रहे हैं। जैन समाज व साहित्य के क्षेत्र में जो युग-प्रवर्तक या प्रकाश स्तंभ बनकर खड़े हैं, उनकी कविताएँ संग्रहीत हैं। युग प्रवर्तक कवियों में पं० नाथूराम प्रेमी, भगवन्त गणपति प्रसादगोयलीय जुगलकिशोर मुख्तार, मूलचन्द्र 'वत्सल' तथा 'अगास' प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रसिद्ध दार्शनिक एवं निबंधकार मुख्तारजी की 'मेरी भावना' कविता अत्यन्त प्रसिद्ध है। उसी प्रकार नाथूराम प्रेमी की 'पिता की परलोक यात्रा पर' तथा संदर्भ सन्देश' कविताओं का संकलन किया गया है। गणपति गोयलीय जी की 'सिद्धवरकूट' और 'नीच और अछूत', 'मेरा संसार' तथा 'प्यार' कविता को संपादिका ने इस संकलन में संग्रहीत किया है। पं० गुणभद्र 'अगास' की 'सीता की अग्नि-परीक्षा' तथा 'भिखारी का स्वप्न' कविता भी 'युग-प्रवर्तक' विभाग के अन्तर्गत संकलित हैं। ये कविताएँ काफी लोकप्रिय रही थी। इन 'युग-प्रवर्तक' कवियों के विषय में संपादिका का कहना है कि ''नये जागरण और सुधार के युग में जिस विचार-स्रोत को इन महान आत्माओं ने समाज की मरु भूमि की ओर

1. रमारानी जैन-'आधुनिक हिन्दी जैन कवि'-प्राक्कथन, पृ० 3.

उन्मुख किया, उसने समाज-मन को नया जीवन और साहित्य को नया स्वर दिया है।[1]

दूसरे विभाग में उन्होंने 'युगानुगामी' कवियों की कविताओं का समायोजन किया है, जिसमें पं॰ जैनसुखदास 'कविरत्न', पं॰ दरबारीलाल 'सत्य भक्त' पं॰ नाथूराम डोंगरीय, सूर्यभानु डोंगी, श्री ददूलाल, पं॰ शोभाचन्द्र न्यायतीर्थ की कविताएँ हैं। इनके विषय में श्रीमति रमादेवी लिखती हैं–'युगानुगामी' कवियों में हमारे समाज के अनेक मान्य विद्वान सम्पादक और विचारक हैं, जो हमारी प्राचीन संस्कृति के संरक्षण में लगे हुए हैं, और वे निःसन्देह युगारंभ की नई प्रेरणा को साहित्य और समाज सुधार के क्षेत्र में परीक्षण के द्वारा आगे ले जाने वाले हैं। इस समुदाय के कवियों की कविताओं में यह वैशिष्ट्य है कि वे प्रधानतः कर्ममूलक, दार्शनिक या सुधारवादी हैं।[2]

तीसरे विभाग में वे 'प्रगति प्रेरक' कवियों की कविताओं को समाविष्ट हुए हैं। उन पर अपने समय की राजकीय व साहित्यिक गतिविधियों का प्रभाव स्पष्टतः 'भगवत', श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, श्री शांतिस्वरूप 'कुसुम', श्री हुकुमचन्द्र बुखारिया, श्री कपूरचन्द्र 'इन्दु' श्री ईश्वरलाल, लक्ष्मणप्रसाद 'प्रशान्त', राजेन्द्र कुमार, अमृतलाल 'अंचल', श्री खूबचन्द्र 'पुष्कल', श्री पन्नालाल 'बसन्त', श्री चंपालाल 'पुरन्थ' आदि 42 हैं। वे सभी नयी पीढ़ी के कवि हैं। मातृभूमि की परतन्त्रता से व्याकुल होने से स्वतंत्रता के गीत गाते हैं, जनता को चेतावनी देते हैं, जगाते हैं। समय की पुकार व माँगों से वे प्रभावित होकर गा उठते हैं। चाहे विषय किसी भी प्रकार का क्यों न हो, युग-प्रवाह के कवि युग-प्रवर्तक की तरह आदर्श जीवन व व्यवहार के लिए प्रत्यक्ष उपदेश या सन्देश नहीं देते। 'युग-प्रवाह' के कवि केवल परिस्थिति का वर्णन करते हैं–धार्मिक, ऐतिहासिक व राष्ट्रीय परिस्थितियों के वर्णनों द्वारा वे जागना चाहते हैं। इस प्रकार के कवियों के विषय में संपादिका का मानना है कि–कविता की दृष्टि से तीसरा परिच्छेद 'प्रगति-प्रवर्तक' बढ़ गये हैं, जिन्होंने हिन्दी कविता प्रचलित शैलियों को अपनाकर कविता को भाव, भाषा और विषय की दृष्टि से प्रगति की श्रेणी में ला दिया है। इनमें से अनेक कवियों को हमारे साहित्य में प्रगति के महारथियों के रूप में स्मरण किया जायेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।[3]

---

1. देखिए–रमारानी जैन–'आधुनिक हिन्दी जैन कवि'–प्राक्कथन, पृ॰ 3.
2. देखिए–रमारानी जैन–'आधुनिक हिन्दी जैन कवि'–प्राक्कथन, पृ॰ 4.
3. देखिए–रमारानी जैन–'आधुनिक हिन्दी जैन कवि'–प्राक्कथन, पृ॰ 5.

अब जो प्रगति की धारा बह रही है, उस प्रवाह में नये-नये कवि अपनी अपनी प्रतिभा, रुचि और क्षमता के अनुसार अवगाहन कर रहे हैं। इस 'प्रगति-प्रवाह' में हमारे समाज की कवयित्रियों की सरस भाव ऊर्मियां तरंगित हो रही हैं, तरुण कवियों की 'गति हिलोर' नृत्य कर रही हैं और अनेक छोटे-बडे कवियों के 'प्रयत्न-सीकर' उल्लास से उछल रहे हैं। इस 'प्रगति प्रवाह' उर्मियाँ, 'गीति-हिलोर एवं 'सीकर' के कवियों में श्री लजादेवी, श्री कमलादेवी जैन, श्री कुमुदकुमारी, मैनावती जैन, सरोजिनी देवी जैन और पुष्पलता देवी आदि कवयित्रियों की 3 कविताओं को 'ऊर्मियों' के भीतर संग्रहीत किया है। सचमुच नई कवयित्रियों की लेखनी से उर्मिलप्रवाएं भावुकतापूर्ण काव्य-लहर उमड़ पड़ी है। कहीं-कहीं महादेवी वर्मा का प्रंभाव भी स्पष्ट लक्षित होता है। 'मूक-याचना' में श्री प्रेमलता जी गाती हैं–

किसी के आशापद की धूल,
बनूँ, पथ पर छितरा जाऊँ
मिलन-बेला पर प्रेयसी-सी की,
टूट जग में बिखरा जाऊँ।
विरह की उत्सुकता में डूब,
हंसू, झूंमू, पुलकित मधुगान
देव, मैं बन जाऊँ अज्ञान। (पृ॰ 183)

उसी प्रकार श्री लज्जावती देवी की 'आकुल अंतर' में सुन्दर भाव देखने को मिलता है–

मैं इस शून्य प्रणय वेदी पर,
किन चरणों का ध्यान करूँ,
मृत्युकूल पर बैठी कैसे,
अमर क्षितिज निर्माण करूं?
फूल सुगंधित तूँ चुन ले,
शूलों से भर मेरी झोली,
पर आशा-लतिका की भावुकता
स्मृतियाँ मत छीन सखी। (पृ॰ 177)

प्रेमलता 'कौमुदी' की कविता में बरबस हमें गुप्त जी की उर्मिला की याद आ जाती है–

मेरे नयनों की कुटियों में कितने दीप न जलाये री,
नीरस सुप्त प्राण मेरे सहसा किसने उकसाये री।

आज सरिता जल-सा निर्मल
मधुर मन्द सुरभित मलयालिन।
सजनि! आज कितने बिन मेरे जीवन-तार अकुलाये री।
रजनी के तारों के भी,
धन-विद्युत् के मनुहारों-सी,
उर नभ में किस तरल प्रतीक्षा के बादल घिर आये री।
मेरे नयनों की कुटियों में किसने दीप जलाये री।। (पृ॰ 192)

सरोजिनी देवी की कविता में भी हमें मधुर भाव दिखाई पड़ते हैं। विरह-वेदना के स्वरों से इनकी कविता झंकृत होती है। जैसे–

मैं दुःख-सागर की एक लहर,
यह लहर-लहर की दुःख-कम्पन,
कब मंद पड़ेगी दिल-धड़कन।
होगा समाप्त तेरा निष्ठुर मन,
कब लहर-लहर का मंजु-मिलन। (पृ॰ 202)

अनेक नये कवि अपरिचय के पर्दे में छिपे हैं, लेकिन अपनी मधुर, रसपूर्ण कविता के माध्यम से वे हमारे सामने उपस्थित होते हैं। श्री फूलचन्द 'पुष्पेन्दु' की 'चाह' हमारी भी मनोकामना बनी रहती है। 'अभिलाषा' काव्य में कवि की चाह देखिए–

मैं बना रहूँ, जग बना रहे।
तारक-मणि-मंडित नील गगन,
लख, तारों का झिलमिल बर्तन,
मन ही से कह उठता है मन,
मेरे ऊपर यह रत्न-जड़ित सुन्दर वितान-सा तना रहे। (पृ॰ 112)

यही कवि 'देवद्वार पर' प्रभु को उलाहना देते हुए कहते हैं–

एक निर्धन भी अरे! करता अतिथि-सत्कार कैसा?
विश्वपति यह फिर तुम्हारा है भला व्यवहार कैसा?
आज इस आश्चर्य में दुःख भी भुलाता जा रहा हूँ–
गुन गुनाता जा रहा हूँ। (पृ॰ 219)

'सीकर' में बिलकुल नये उभरते हुए कवियों की कविता का परिचय दिया गया हैं, जिनमें बाबूलाल सागर, लक्ष्मीचन्द्र जैन 'सरोज', कौशलाधीश जैन, कपूरचन्द जी, विद्याविजय जी, पं॰ चान्दमल जी, सागरमल, अनूपचन्द, केसरीमल आदि प्रमुख हैं। इनकी कविताओं में विषय वैविध्य है। 'तेजोनिधान

गाँधीमहान', भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र' शीर्षक कविता भी प्राप्य है। भक्तिभावना व प्रभु-वंदना, देश-प्रेम की कविताएँ भी उपलब्ध होती है। 'भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र' में कवि कहते हैं–

भाषा के भण्डार में, भूषण भरे अनेक,
बिन्दु भारती माल को, भारतेन्दु भी एक,
महि में यों महिमा रही, कवि मांहि हरिचन्द,
तारागन विच्च व गगन में, गून्थो जिमि चन्दा।

राजस्थानी भाषा शैली का स्पष्ट प्रभाव इस पद में दिखाई पड़ता है। 'तेजोनिधान गाँधी महान' में कवि भक्तिभावपूर्ण अहो भाव व्यक्त करते हुए लिखते हैं–

तेजोनिधान गांधी महान।
गौरव-गिरि के शेखर स्वरूप।
बल प्रकट आत्म के मूर्तिरूप,
हो क्षीणकाय, गिरा प्रधान,
चिरभासित त्याग विभूतिमान, तेजोनिधान गांधी महान। (पृ॰ 235)

'प्रगति प्रवाह' में मुनि अमरचन्द, श्री घासीराम, पं॰ राजकुमार, ताराचन्द 'मकरंद', सुमेरचन्द 'कौशल', बालचन्द्र, हरीन्द्रभूषण, सुमेरूचन्द्र शास्त्री, अमृतलाल, गुलाबचन्द ठाना, डॉ॰ शंकरलाल, बाबू श्रीचन्द, सुरेन्द्रसागर जैन, ज्ञानचन्द्र जैन और मगनलाल 'कमल' की कविताओं को स्थान दिया गया है। कवियों की संख्या के मुताबिक कविताएँ भी अनेक हैं, लेकिन स्थानाभाव के कारण केवल नामोल्लेख से ही संतोष प्राप्त करना पड़ता है।

श्री सुमेरूचन्द शास्त्री ने 'महाकवि तुलसी' को अर्घ्य देते हुए लिखा है–

राघव पुनीत पद-पद्म का पुजारी वह,
भक्ति मण्डली का एक धीर-वीर नेता था,
अटल प्रतिज्ञा में था, अचल हिमालय-सा,
ज्ञान कर्म भक्ति की पवित्र नाव खेता था,
'हुलसी' का लाल हिन्द-हिन्दी हिमालय वन,
राम-पद-प्रीति का मनोई ज्ञान देता था। (पृ॰ 153)

पं॰ परमेष्ठिलाल का 'महावीर संदेश' जैन दर्शन की विशेषता प्रदर्शित करता है–

प्रेमभाव जग में फैला दो, करो सत्य का नित्य व्यवहार,
दुराभिमान को त्याग अहिंसक बनो यही जीवन का सार।

नर-नारी पशु-पक्षी का हित जिसमें सोचा जाता हो,
दीन-हीन पतितों को भी जो हर्ष सहित अपनाता हो।

वैसे सभी धर्म-दर्शन यही तो संदेश देता है।

श्री गुणभद्र 'अगास' व पं० मूलचन्द जी की कविता इस संग्रह में महत्वपूर्ण हैं। भगवत स्वरूप मुख्यतः कहानीकार और नाटककार के रूप में प्रसिद्ध हैं लेकिन यहा इनकी दो कविताएँ भी ली गई हैं–'सुख-शान्ति चाहता है मानव' तथा 'मुझे न कविता लिखना आता' है।

सर्वप्रथम कविता 'मेरी भावना' में कवि जुगलकिशोर मुख्तार जी–जो प्रसिद्ध निंबंधकार भी हैं–मानवीय संवेदनाओं को महत्व देते हुए विश्व-कल्याण चाहते हैं। अपने राष्ट्र की उन्नति के साथ प्रत्येक मानव के प्रति कवि सद्भाव व मैत्रीपूर्ण व्यवहार के द्वारा जगत की सुख-शान्ति चाहते हैं–

रोग, मरी दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे,
परम अहिंसा धर्म जगत में फैल सर्व हित किया करे।
फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर पर रहा करे,
अप्रिय-कटुक कठोर शब्द नहीं कोई मुख से कहा करे। (पृ० 7)

संपादकीय में अयोध्याप्रसाद गोयलीय जी ने बिलकुल सुसंगत लिखा है, यद्यपि हिन्दी कविता आज जितनी विकसित और उन्नत आगे प्रस्तुत पुस्तक की कविताएँ कुछ विशेष महत्व नहीं पायेंगी। फिर भी यह एक प्रयत्न है। इससे जैन समाज की वर्तमान गति विधि का परिचय मिलेगा और भविष्य में उनमें उत्तम साहित्य, निर्माण करने का लेखकों और प्रकाशकों को उत्साह भी।'[1] (पृ० 6)

विषयानुसार :

आधुनिक जैन कवियों की कविताओं को सम्पादिका ने क्रमशः उत्थान के क्रमानुसार संग्रहीत किया है। प्रथम उत्थान 20वीं सदी प्रारंभ के युगप्रवर्तक और युगानुगामी तथा प्रगति-प्रवाह के कविगण, द्वितीय उत्थान सन् 1926 से 1940 तक के एवं प्रगति प्रेरक तथा अन्य कविगण की रचनाएं तदन्तर काल की मानी जायेगी।

इस संग्रह की कविताओं को विषयानुसार भी वर्गीकृत किया जा सकता है। वर्णनात्मक कविताओं में जुगलकिशोर मुख्तार की 'अजसंबोधन', 'कोमल', नाथूराम प्रेमी की 'पिता की परलोक यात्रा पर, 'भगवंत गोयलीय के' 'सिद्धवर कूट', कवि अगास की 'भिखारी का स्वप्न' लक्ष्मीचन्द्र की 'मैं पतझर की सूखी डाली', काशीराम की 'फूल से कोमल' 'राजकुमार की भग्नमंदिर',

1. देखिए–रमारानी जैन–'आधुनिक हिन्दी जैन कवि'–प्रस्तावना, पृ० 6.

वीरेन्द्रकुमार की 'वीरवंदना, चंद्रप्रभा देवी की 'रणभेरी' कमला देवी की 'रोटी' आदि कविताओं का समावेश किया जा सकता है; जिनमें वर्णन के साथ भावात्मकता का भी पूर्ण रूप से निर्वाह किया गया है। भावात्मक कविताएँ कवि के अंत:स्थल से उठनेवाली मार्मिक अनुभूति से अनुरंजित होती हैं, जिसमें कवि सांसारिकता से ऊपर उठकर भावजगत में विचरण करते हैं। आधुनिक जैन कवियों में पूर्णतया भावात्मिक कविताएँ लिखनेवाले बहुत कम कवि हैं। फिर भी कुछ कवि ऐसे हैं, जिनकी रचनाओं में विविध भावों की तीव्रतम अभिव्यक्ति दिखाई देती है। ऐसे कवियों में जुगलकिशोर की 'मेरी भावना', कवि चैन सुखदास की 'जीवनघट', कवि सत्यभक्त की 'झरना' कवि कल्याणकुमार की 'विद्युत् जीवन, लक्ष्मीचंद्र विशागत की 'आँसू से' और 'चित्रकार से', अक्षयकुमार गंगवाल की 'हलचल' आदि प्रमुख कविताएँ हैं। कवि बुखारिया और कवि पुष्कर भावात्मक काव्य क्षेत्र के महत्वपूर्ण कवि हैं।

मनुष्य की रागात्मक वृत्ति को विशेष रूप से झंकृत करके कल्पना शक्ति द्वारा भावो की अनुभूति कराने में उत्तम काव्य, जैन कविता की कोटि में आ सकते हैं और आधुनिक जैन कवियों में गद्यात्मक रसप्रद काव्य लिखनेवालों में कुंथुकुमारी, प्रेमलता कौमुदी, कमलादेवी, पुष्पलता देवी, कवि अनुज 'पुष्पेन्दु' रतन गंगवाल, बुखारीयाजी आदि को अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। उनके काव्यों में भावनाओं की लयबद्ध व मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। आचारात्मक कविताएँ जैन धर्म की विविध कविताओं में प्रकाशित होती रहती हैं। इनमें आचार-सिद्धान्तों का महत्व और वर्णन विशेष होता है, जबकि काव्यत्व बहुत ही कम रहता है। वृत्तात्मक रचनाओं में कवि गुणभद्र अगास की 'प्रद्युम्न चरित्र', 'राम वनवास', तथा 'कुमारी अनंतमती' कविताएँ साधारण कोटि की हैं। इनमें काव्यत्व की मात्रा कम और पौराणिकता, इतिवृत्तात्मकता अधिक है। कवि मूलचंद वत्सल के 'वीर पंचरत्न' में पाँच वीर बालकों का चरित्र वृत्त अंकित है। इनके उपरांत कवि कल्याण कुमार 'शशि' का 'देवगढ़ काव्य' भी इसी कोटि में गिना जायेगा।

रमारानी ने काल क्रमानुसार कवियों का विभाजन किया है और इन्हीं कवियों की कविताओं का विश्लेषण डॉ० नेमिचन्द्र जैन ने आधुनिक युगीन मुक्तक के कवियों को तीन काल खण्ड में समाविष्ट कर लिया है। अन्य किसी मुक्तक काव्य-संग्रह परिचय वहाँ उपलब्ध नहीं होता है।

पंडित परमेष्ठी दास का 'परमेष्ठी पद्यावली' नाम से काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ है। जो आजकल अनुपलब्ध है। उनकी ये रचनाएँ धार्मिक

भावनाओं से ओतप्रोत हैं, साथ में सामाजिक सुधार को प्रोत्साहित करने का लक्ष्य बना रहा है। इनकी कविताओं का साहित्यिक मूल्य चाहे कम हो, लेकिन धार्मिक तथा सामाजिक मूल्य अधिक हैं।

श्री विद्याविनोद :

1966 में विद्याविजय जी महाराज ने धार्मिक स्तुतिपरक गीतों की रचना की, जिनमें तीर्थंकरों की भक्ति से प्राप्त दुर्लभ शान्ति की प्रप्ति पर जोर दिया गया है। भगवान के गुणों और महानता को स्वीकार कर निज लघुता का प्रदर्शन करके भवसागर से उगारने के लिए विनती की गई है। जो संगीतात्मकता के कारण गेय भी है। इस स्तवन संग्रह के पदों पर राजस्थानी भाषा का प्रभाव जहाँ-तहाँ देखने को मिलता है। फिर भी सुन्दर भावपूर्ण प्रभु-भक्ति के कारण स्तवन आकर्षक है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

जिनवरजी के भवतारक नामतमाए,
सेना-नंदन अपने तारो
रामजी तारी कुलचंदा से नाम संभवनाथ कह न्यारे,
सुशोभित मुख अरविंदा रे अरविंदा रे।
सुरवर पुनीत सराएँ रे
कल्पवेली मिल गई पुन्य उदय मेरा आज तो
निहित ज्यों नाव में करके साथ भवसंभवि हरो खाजतो।

इसी प्रकार की 'वीरपुष्पांजलि' पंडिता के स्तवनों का संग्रह है। वंदना प्रार्थना के इनके गीतों में काफी मधुरता और लेखिका के हृदय की पुकार व तन्मयता का भाव अंकित हुआ है। श्रीमति कमला देवी कृत 'श्री शासन देव से श्राविकासंघ की प्रार्थना' भी छोटे-छोटे धार्मिक स्तवन का संग्रह है। जिस पर राज-स्थानी भाषा का प्रभाव विशेष रहा है। राजस्थान में जैन धर्म का अत्यन्त प्रचार-प्रसार होने के कारण दैनिक स्तुति वंदना, पूजा महोत्सव के समय गाये जाने के लिए ढूंढ़ारी भाषा से प्रभाविर्त हिन्दी में स्तवनों की छोटी बड़ी बहुत सी पुस्तकें लिखी जाती हैं। जिनमें सामान्यत: आकर्षक भाषा शैली में प्रभु की प्रशंसा, गुण-महात्मय, और आत्मा की दीनता-हीनता, नीच गति का वर्णन होता है। तथा प्रभु से संसार-साग पार उतारने की प्रार्थना होती है। यह समझते हुए भी तीर्थन्कर वीतरागी, निष्काम हैं। अपने कर्मों के बल पर ही सुख-दु:ख प्राप्त होने वाले हैं, फिर भी प्रभु मूर्ति के सामने ऐसी स्तुति गाकर भक्त आनंद-विभोर होकर शान्ति प्राप्त करने की चेष्टा करता है। मध्य युग में हिन्दी जैन साहित्य में ऐसे धार्मिक काव्य ग्रंथ काफी लिखे गए हैं। और उत्कृष्ट कोटि

के भक्त कवि भी हुए। जिनकी कृतियाँ आज भी जैन समाज में धार्मिक प्रसंगों पर गाई जाती हैं।

राजस्थान के प्रसिद्ध मुनि नेमिचन्द्र जी के भाववाही सुन्दर धार्मिक भजनों का संग्रह 'नेमवाणी' इसी काल की रचना है। आधुनिक जैन काव्य रचनाओं के सर्जन में मुनि आचार्यों का भी कम योगदान नहीं हैं। 'नेमवाणी' के स्तवनों के अंत में छोटी-छोटी शिक्षा प्रद कथा भी रखी गई हैं। कवि के पदों पर राजस्थानी भाषा का प्रभाव स्वाभाविक रूप से लक्षित होता है, गुजराती भाषा का प्रभाव भी दिखाया है—तीर्थंकरों के वर्ण के विषय में उनका पद देखिए—

पदप्रभु वासूपूज्य दोऊ राते सोमे सोय।। 1।। चन्द्र प्रभु ने सुविधिनाथ उज्जलवणें जिन विख्यात।। 2।। मल्लिनाथ ने पार्श्वनाथ नीले वर्णे जोड़ हाथ मुनि सुब्रत के नेमिनाथ अंजन वर्णों दो साख्यात।। 4।। सोले कंचन वर्णों जात चौबीस जिन प्रणभुं प्रभात।। 5।। नेम मने पुनम परगाद, उदयापुर जिन बिना याद।। 6।। (नेम्मवाणी पृ० 19)

श्रीपाल चरित्र :

कवि परिमलजी ने संवत् 1951 में इसकी रचना गद्य-पद्य में की थी। और प्रकाशित नहीं करवाया था। हस्तप्रत को शुद्ध करके बाबू ज्ञानचंद्रजी ने सं० 1908 में प्रकाशित किया था। लेकिन यह प्रति भी खो गई थी। अतः सुविधा के लिए दीपचंद जी के पास सरल हिन्दी में गद्यानुवाद करवाया गया था। प्रारंभ में कवि ने तीर्थंकर और गुरु की वंदना की है। जैन साहित्य में श्रीपाल राना और मैना सुन्दरी की कथा अत्यंत प्रसिद्ध है। स्वकर्मों के अनुसार ही सुख-दुःख पाने की नियति निश्चित है। इस कथा में राजा श्रीपाल व रानी मैना स्वकर्मों के कारण अनेक कष्ट, रोग आदि पाते हैं और कर्मों की धर्म, व्रत, तपस्या, आदि से द्वारा निर्जरा सुख साम्राज्य आते हैं, लेकिन तभी ज्ञान नेत्र खुल जाने से संसार की असारता व निरर्थकता देखकर संसार त्याग करते हैं। मुनि श्री विजय ने भी दोहा चौपाई' में श्रीपाल राजा का 'रास' नामक काव्य की रचना की है।[1] जिसमें उपर्युक्त प्रसिद्ध कथावस्तु को दोहा-चौपाई शैली में काव्यबद्ध किया है। काव्य में वर्णनात्कता विशेष है, साहित्यकता कम। भाषा शैली पर गुजारती भाषा का प्रभाव विशेष लक्षित होता है।

सुबोध कुसुमांजलि :[2]

मुनि ज्ञानचन्द्र जी के सुन्दर भाववादी स्तवनों का संकलन है। जिसमें

1. भावनगर के 'यज्ञोविजय ग्रन्थ भंडारे' के अन्तर्गत इस रचना का विवरण प्राप्त हुआ था।
2. वही।

प्रारंभ में गद्य में छोटी-छोटी कथाओं में धार्मिक उपदेश है और बाद में कवि के रचित स्तवनों के पद है। जिनमें विविध राग-रागिनियों का प्रयोग किया है। जैसे-आशावरी, बिलाबल, विहाग, कान्हड़ आदि। विचार चन्द्रोदय श्री पीतांबर ने ई० सन् 1909 में उसकी रचना की थी जो गद्य-पद्य मिश्रित है। छोटी-छोटी कथाओं के माध्यम से साहित्यिक ढ़ंग से धार्मिक चर्चा के बीच-बीच में मननाह रोला विविध छन्दों में कविताएँ लिखी गई हैं। इसमें कवि ने भक्तिभाव पूर्वक गुरु वंदना पद्य में की है।

मुनि रूपचन्द्र जी के आधुनिक काव्यों का संग्रह 'अन्धा चाँद' प्रकाशित हुआ है। मुनि रूपचन्द जी हिन्दी जैन साहित्कारों में उच्च स्थान के अधिकारी विद्वान लेखक हैं। 'अन्द्या चान्द' में उनकी नवीन प्रवृत्ति व सुन्दर मानवतावादी विचारधारा से युक्त 58 कविताएँ संग्रहीत की गई हैं। जिनमें पूनम की रात, खेत की मुंडेर से उठता हुआ, कभी गीतों से ही प्यार था, मैं सुनी-सी रात, चरती का लाडला, धूल में लिपटे, माँ कृपा करो। मंदिर के पुजारी ने जब, मैं जला, युगसन्त, मनुज के भोलेपन काश, मिलकी चिमनी, एक विचार, बूँद ने, खोखले बांस में आदि आधुनिक विचारधारा से ओतप्रोत कविताएँ हैं। कवि ने इन्हें 'स्वान्त:' के लिए रचा है। 'झरोखे में बैठा कबूतर' में कवि आधुनिक इंसानियत के विषय में व्यंग्य प्रहार करते हैं–

झरोखे में बैठ उदास कबूतर,
भीगी पलकों से कभी बाहर झांकता है, कभी भीतर झांकता है।
वह सोच रहा है, कि आदमियत वह चीज है,
जो उजड़े हुए को बसाना जानती है,
उन्हें सीधी-सी पगडण्डी बताना अपना फर्ज मानती है,
लेकिन आज जो आदमी है,
वह आदमियत नहीं चाहता,
खुद तो उजड़ा हुआ है ही,
औरों को बसता हुआ भी देखना नहीं चाहता।
धरती खिसकती जा रही है, आकाश भागा जा रहा है। (पृ० 8)
पता नहीं मानव की बुद्धि को क्या हो गया है,
कि उसके हर एक कार्य में,
सच्चाई कम है और नकलबाजी ज्यादा है,
\+ \+ \+ \+ \+
किन्तु जब तक इंसान के दिल में करुणा है,

एक दूसरे के लिए प्यार है,
तब तक इंसानियत का सम्मान नहीं घट सकता। (पृ॰ 30)

कवि की वाणी में कितना यथार्थ व्यंग्य टपकता है। कवि धूर्त पाखण्डी भक्तों की खिल्ली उड़ाते हुए कहते हैं।

मुझे अपनी आँखों पर विश्वास न हुआ,
जब मैंने देखा,
कि मंदिर के दालान में बैठे भक्त लोग,
बड़े ऊँचे स्वर में राम-धुन गा रहे हैं
जब कि उधर मंदिर के पिछले दरवाजे से
भगवान उल्टे पैरों भागे जा रहे हैं,
चरण छूकर, कांपते हुए पूछा मैंने
भगवन्! आपका यह क्या हाल?
तो उन्होंने हाफंते-हाफंते कहा—
रोको मत मुझे,
यहाँ अधिक नहीं ठहर सकता अब मैं,
इन लोगों ने बिछा रखा है मेरे लिए पग-पग पर जाल। (पृ॰ 43)

कवि को संसार व सांसारिक रिश्ते असार-असत्य महसूस होता है, क्योंकि—

जीवन सपना है,
सब कुछ पराया है, कौन अपना है
और फिर यह मन इस संसार से ऊब जाता है
जैसे कि दिन भर आग बरसाने वाला सूरज
सांझ को डूब जाता है। (पृ॰ 23)

किसी से कुछ उधार लेकर इठलाने की वृत्ति पर कवि व्यंग्य करते हैं—

बुझाई हुई रोशनी से रोशन
चाँद की सर्प-भरी चाल पर
देखों तो सही ये सितारे कितने हंस रहे हैं।

\+ \+ \+ \+

अब तो ऐसा लग रहा है
कि जो बाहर से जितना अधिक चमकता है,
वह भीतर उतना ही अधिक कालापन लिये है। (पृ॰ 3)

उपर्युक्त कविताओं के दो–चार उदाहरणों से भी देख पाते हैं कि कवि की भाषा-शैली कितनी सरल है। इस संदर्भ में कवि स्वयं स्पष्टता करते हैं कि–"कविताओं की भाषा मैंने सरल हिन्दी रखी है। कविता अपनी भाषा की दुरूहता से जन–मानस से अलग छिटक जाये, यह मुझे पंसद नहीं। आज की नयी कविता में जो सबसे अधिक अभाव प्रतीत होता है, वह यही कि वह भाव भाषा-शैली दोनों ही दृष्टियों से जन–साधारण से बहुत–दूर जा रही है। परिणामतः जनमानस कवि के पांडित्य से अवश्य अभिभूत है, लेकिन काव्य के साथ उनका बिलकुल तादात्म्य नहीं।" दूसरे में कविता नयी और पुरानी के इस द्वन्द्व से जनमानस में साहित्यकार पैदा होता है। जगत के प्रति एक अनास्था का भाव भी भावना के कविता–प्रतिष्ठा की कोई सशक्त विद्या जनता के समक्ष आये। लय–गीत, तुकान्त, अतुकान्त आदि को समान रूप से मैंने सम्मान दिया है।[1] 'अन्धा चांद' की कविताओं के विषय में राजस्थान के प्रसिद्ध कवि कन्हैयालाल शेठिया लिखते हैं कि–यह सही है कि अंधा चांद की कविताओं में परंपरागत काव्योक्ति शिल्प का विघटन हुआ है, पर अगर शिल्प अपने मूल अर्थ में सहज का ही पर्यायवाची है तो यह विघटन काव्य के लिए स्वस्थता का ही चिह्न है, अस्वस्थता का नहीं। चेतना की परिधि का यह इच्छित विस्तार इन नये मूल्यों को स्थापित कर सकेगा, जिनके साथ समस्त मानवता का भविष्य जुड़ा हुआ है। मेरी मान्यता है कि मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक आधारों पर स्थित नयी कविता को रस–बोध के उस चरम बिंदु तक पहुँचा देगी; जहाँ संवेदना स्वयं वेदना बन जायेगी।[2] मुनि रूपचन्द जी की लेखनी आज भी गद्य की विधा के समान काव्य पर भी समान रूप से प्रवृत्तिमय है। उनके काव्यों में स्पष्टतः प्रत्यक्ष रूप से–जैन दर्शन का कोई सिद्धान्त न रहने पर भी उनकी विचारधारा में मानवतावाद, करुणा, प्रेम का उच्च रूप झलकता है, चाहे उनकी प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति न की गई हो।

डॉ० हुकुमचन्द भारिल्ल ने सरल भाषा शैली में अरिहन्त, सिद्ध व सीमंधर के पूजन पदों की रचना 'अर्चना' में की है। शुद्ध खड़ी बोली में यह स्तुति वंदना लिखी हुई है। कवि प्रभु की विविध प्रकार से पूजा करते हुए कहते हैं–

आशा की प्यास बुझाने को, अब तक मृगतृष्णा में भटका।
जल समझा विषय-विष भोगों को, उनकी ममता में था अटका।।
लख सौम्य दृष्टि तेरी प्रभुवर, समता-रस पीने आया हूँ।
इस जल ने प्यास बुझाई ना, इसको लौटाने आया हूँ।।

---

1. मुनि रूपचन्द जी–'अन्धा चांद'–प्राक्कथन, पृ० 3.
2. द्रष्टव्य–मुनि रूपचन्द जी–'अन्धाचांद'–भूमिका, पृ० 1.

इसी प्रकार महाचन्द जी ने 'भजनावली' के अंतर्गत राजस्थानी भाषा से प्रभावित हिन्दी में स्तवनों की रचना की है। इसमें उन्होंने भक्तिभावना पूर्वक अवगुणों को स्वीकार कर प्रभु के वीतराग रूप की प्रशंसा-स्तुति की है। प्रारंभ में मध्यकालीन भक्त कवियों की भाव-भाषा शैली से प्रभावित होकर भगवान ऋषभदेव व भगवान वर्धमान के जन्मोत्सव पर अयोध्या में मनाये गए उत्सवों का सुन्दर वर्णन किया है—जैसे—

बधाई आली नाभिराय घर आज।। टेर।।
मरु देवी सुत उपजो है आज
जितेन्द्र कुमार इन्द्रपुरी से हूँ भली है आज अयोध्या द्वार।।
उसी प्रकार वर्द्धमान के जन्म अवसर पर—
सिद्धारथ राजा दरबारे बधाई रंग भेरी हो।। टेका।
त्रिशला देवी तें सुत जायो वर्द्धमान जिन राज बरी हो।
कुण्डल पुर में घर घर
द्वारें होय रही आनंद घरी हो।। 1।।

कवि प्रभु के वीतरागी गुणों की स्तुति करते हैं:—

राग द्वेष जाके नहिं मन में हम ऐसे चाकर हैं।। टेर।।
जो हम ऐसे के चाकर तो कर्म रिपू हम कहा करि हैं।। 1।।
नहिं अष्टादश दोष जितूमें छियालीस गुण आकर हैं।
सप्त तत्व उपदेश जग में सोहि हमारे ठाकुर हैं।। 2।।

मयूर दूत :

प्राचीन दूत काव्य 'इन्द्रदूत' की शैली पर सं॰ 1990 में मुनि धुरन्धर विजय ने कपड़वंज चातुर्मास के समय 'मयूर दूत' की रचना की, जिसमें जामनगर में चातुर्मास कर रहे अपने गुरु को मयूर के द्वारा भेजा है और भक्ति-वंदना की श्रद्धाजंली भेजी है। इसमें 180 पद हैं, जिसमें शिखरिणी छंद का प्रयोग अधिक किया गया है। कपड़वंज से जामनगर के बीच के प्राकृतिक भौगोलिक स्थलों का कवि ने सुन्दर रसात्मक शैली में वर्णन किया है। कवि की कवित्व शक्ति का परिचय इससे प्राप्त होता है। आदिकाल व मध्यकाल में दूत काव्यों की परम्परा विशेष दिखाई पड़ती थी, लेकिन आधुनिक काल में इसका प्रवाह स्थगित हो गया है। यह कृति आज अप्राप्त होने से उसकी विस्तृत विवेचना संभव नहीं है। इसका उल्लेख डॉ॰ गुलाबराय चौधरी संपादित 'जैन साहित्य का बृहद् इतिहास' (छठा भाग) के अंतर्गत पाया जाता है।

आधुनिक काल में काव्य क्षेत्र में एक प्रवृत्ति यह पाई जाती है कि मध्यकाल के श्रेष्ठ भक्त कवियों की रचनाओं को पुनः संपादित करके सामान्य जनता में उन्हें प्रचलित किया जाता है, कहीं-कहीं गद्य में उनके काव्यों का विवरण, भावार्थ आदि स्पष्ट किया जाता है। इसके द्वारा श्रेष्ठ भावुक कवियों की उत्तम रचनाओं को जनता के समक्ष रखकर उनके काव्यों का रसास्वादन कराया जाय व उत्तम कवि की अप्रकाशित रचना प्रकाश में भी लाई जाती है। मोहनलाल शास्त्री ने 'जैनभजन संग्रह भाग–1–2' तथा भागचन्द जी ने 'भागचन्द पद-संग्रह' निकाले हैं, जिनमें मध्यकाल के कवियों का परिचय आदि जैन जगत को प्राप्त होता है। 'जैन-पद संग्रह' में मध्यकालीन कवि धानतराय कवि के 'धानतविलास' संग्रह से चुने हुए पदों का संकलन कवि ने किया है। 'जैन शतक' पं॰ ज्ञानचन्द्र जैन ने इस युग में प्रकाशित करवाया, जिसमें कवि मूलदास रचित 'जैन' अत्यंत प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय है। उसी प्रकार 'अध्यात्म पदावली' में राजकुंवर जैन ने मध्यकाल के विभिन्न भक्त कवियों की उत्कृष्ट रचनाओं का संकलन कर प्रकाशित करवाया है। राजकुंवर जैन ने उस समय की धार्मिक सामाजिक व ऐतिहासिक परिस्थितियों का परिचयात्मक वर्णन किया है, ताकि इस संदर्भ में उसके कवियों की रचना का मूल्य और समीक्षा की जाय। पं॰ बेचरदास जी ने 'भजन-संग्रह-धर्मामृत' में भक्त कवियों की रचना को संपादित कर उनका विवेचन प्रस्तुत किया है। यहाँ हिन्दी जैन साहित्य में अनुदित कृति या संपादित कृतियों का उल्लेख करने का उद्देश्य नहीं है, क्योंकि इनकी संख्या विपुल मात्रा में है। यहाँ तो केवल मध्यकालीन भक्त कवियों की कविताओं को संकलित कर जैन समाज में प्रचार-प्रसार करने की प्रवृत्ति की ओर इंगित मात्र है। श्रीयुत् अगरचन्द नाहटा जी व भंवरलाल नाहटा जी ने 'ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह' में मध्यकालीन कवियों की ऐतिहासिक कृतियों का संकलन किया है। इस प्रकार की कृतियों में काव्यत्व के साथ-साथ इतिहास की कोई न कोई घटना, प्रसंग या व्यक्ति जुड़े हुए होने के कारण तत्कालीन धार्मिक और सामाजिक इतिहास पर भी थोड़ा-बहुत प्रकाश पड़ सकता है। ऐसे संग्रह को प्रकााशित करने में संपादक को सतर्कता एवं कुशलता बरतनी पड़ती है।

आधुनिक हिन्दी-जैन-मुक्तक-रचयिताओं में सौराष्ट्र के प्रसिद्ध, तत्त्वज्ञानी व शतावधानी के रूप में अत्यंत सम्मानित श्रीमद् राजचन्द्र का नाम लिया जा सकता है। वैसे उनका पूरा साहित्य गुजराती भाषा को गौरवान्वित करता है, फिर भी, अध्यात्म-रस से परिपूर्ण ज्ञान-गुरु की महत्ता सिद्ध करने वाली चार-पाँच

रचनाएँ हिन्दी भी प्राप्त हैं। पद्यसंख्या सीमित होने पर भी एक एक पंक्ति में अनेक भाव व अर्थ भरे पड़े हैं।[1] "छोटी में उन्होंने हिन्दी में से गुजराती में अनुवाद का कार्य किया था, लेकिन बाद में उन्होंने हिन्दी भाषा में ही पद्य-कृतियों की रचना की थी। ऐसी 'बिना नयन' 'यम नियम' आदि चार पद्य-कृतियां आज उपलब्ध है। इनमें से दो की हस्तनों में से प्राप्त हुई हैं।[2]

उपलब्ध चारों रचनाओं में गुरु महात्म्य, ज्ञान प्राप्ति के पूर्व जीव के किए हुए अनेक साधनों, मूलमार्ग आदि पर श्रीमद् राजचन्द्रः ने गंभीरता से विचार किया है। इनसे राजचन्द्र का हिन्दी भाषा पर का अधिकार भी व्यक्त होता है।

'बिनानयन'[3] उनकी सर्वप्रथम लोकोपयोगी अप्रकाशित रचना है। इसमें कवि ने छः दोहों में आत्म कल्याण के लिए आवश्यक तत्वों की चर्चा काव्यात्मक शैली में की है। मुक्तक की प्रथम पंक्ति 'बिना नयन पाये नहीं, बिना नयन की बात' में कबीरदास की उलट वासी की तरह बाह्य विरोध दिखाई पड़ता है, लेकिन गूढ़ार्थ में 'तत्वलोचन के बिना व अन्तर्मुख दृष्टि को खोले बिना आत्मा को नहीं जाना जा सकता' ऐसा अर्थ संनिहित है। आत्म ज्ञान देनेवाले गुरु की महत्ता, अनिवार्यता अभिव्यक्त करते हुए कवि कहते हैं-

बुझी चहत जो प्यास की, है बुझन की रीत,
पावे नहीं गुरु बिना, ए ही अनादि स्थिति
ए ही नहीं है कल्पना, ए ही नहीं बिभंग
कई नर पंचम काल में, देखी वस्तु अभंग।

अर्थात् आत्मा को जानने की प्यास यदि जीव को है तो उसे बुझाने का मार्ग भी है, वह है गुरु की कृपा। यह उपाय अनादिकाल से ज्ञानियों ने बताया है। गुरु की आज्ञा का पालन करने से आत्म-ज्ञान की प्राप्ति संभव होती है। इस मार्ग पर चलने से जीव को मुक्ति प्राप्त होती है। आत्म कलयाण का यह मार्ग कल्पित या भूल भरा-विभंग-भी नहीं है। इसके लिए मनुष्य को "नहीं देतु उपदेश का, प्रथम लेहिं उपदेश' वृत्ति का पालन करना चाहिए। सर्व समर्पण भाव सदगुरु की शरण में जाने का बोध अंतिम दोहे में कवि देते हैं :-

पाया की ए बात है, निज छंदन को छोड़
पीछे लाग सतपुरुष के, तो सब बंधन तोड़।

इस मुक्तक पर गुजराती भाषा का प्रभाव स्पष्ट लक्षित है। 'काव्य की भाषा हिन्दी होने पर भी शब्द व्यवस्था सरल व परस्पर अनुकूल है। शब्दों का

1. शतावधानी : एक साथ सौ क्रियाओं को कर सकने वाला सिद्ध विद्वान् पुरुष।
2. डा० सरयू मेहता-श्रीमदनी जीवन सिद्धि, पृ० 467.
3. श्रीमद् राजचन्द्र अगास आवृत्ति, अंक 258, पृ० 292.

परिवर्तन अर्थ-गौरव में हानिकारक है। इस प्रकार यहाँ श्रीमद् राजचन्द्र ने आत्म ज्ञान प्राप्त करने का सरल व प्रभावपूर्ण मार्ग इंगित किया है।[1]

यम-नियम :

बत्तीस पंक्ति के इस काव्य में भी सदगुरु की प्राप्ति व महत्ता पर ही जोर दिया गया है। तोटक छंद में रचित इस लंबे काव्य के दो भाग किए गए हैं। इसमें जीव, जीव का अज्ञान, अज्ञान को दूर करने के उपाय, गुरु की खोज के उपरांत गुरु-प्राप्ति, आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के जीव के उपायादि का वर्णन किया गया अत: स्वाभाविक है कि जैन दर्शन के पारिभाषिक शब्दों का भी कवि ने उपयोग किया है—यथा—

यम नियम संयम आप कियो, पुनि त्याग विराग अभाग लहयो
बनवास लियो मुख मोन रहयो, दृढ़ आसन पद्म लगाय कियो।
मन मौन निरोध रसबोध कियो, दृढ़ जोग प्रयोग सुतार भयो,
जप भेद जपे, तप त्यों ही तपे, उस से ही उदासी जही सब पे।
सब शास्त्रन के नय चारि हिये, मन मण्डन-खण्डन भेद लिए।
सब साधन बार अनंत कियो, तदपि कछु हाथ हजु न पर्यों।।

लेकिन गुरु कृपा प्राप्त होते ही सब कुछ साध्य हो सकता है—

पल में प्रगटे मुख आमल से, अब सद्गुरु सुप्रेम बसे,
तप से, मन से धन से, सबसे, गुरु देव की आन स्वआत्म बसे।
तब सत्यसुधा दरशादहिंगे, चतुरांगुल है हमसे मिलहे।
रस देन निरंजन को वियही, गाहि जोग जुगो जुग सो जबही,
पर प्रेम-प्रवाह बड़े प्रभु से, सब आगम भेद सु बसे।
वह केवल को बीज ज्ञानी कहें, निज को अनुभव बतलाई दिये।

गुरु की कृपा से जीव सृष्टि छूट आन्तर दृष्टि का विकास होता है। इस अनुभव-प्राप्ति के कवि 'चतुरांगुल है हमसे मिला है' कथन में स्पष्ट करते हैं। इस प्रकार काव्य में अभिव्यक्त मोक्ष-सुख के लिए सद्गुरु की प्राप्ति ही अनिवार्य है। 'बिना नयन' और 'यम नियम' दोनों में गुरु महात्म्य ही वर्णित है। प्रथम में संक्षिप्त रूप से और 'यम नियम' में विस्तृत रूप से यही भाव वर्णित है।

1. डा० सरयू मेहता—श्रीमदनी जीवन सिद्धि, पृ० 471.
'आम 12 पंक्तियां आ नाना काव्यमां श्रीमदे गुरु महात्म्य अने गुरुनी आज्ञाए चालवाथी मलतुं पुन्य बताव्यु छै। काव्य नी भाषा हिन्दी होवा छतां शब्दो नी गोठवणी सरल अने परस्पर अनुरूप छै। शब्दों नो फेरफार करतां अर्थनुं गौरव ओछु थतुं जणाय छे। आम अहीं श्रीमदे आत्मज्ञान पामवा माटे नो सरल तथा सचोट मार्ग बताव्यो छे।'

मारग साचा मिल गया :

सोलह पंक्ति के दोहरा छंद में रचे गये इस काव्य में सभी पंक्ति पूर्ण नहीं है। बहुत सी पंक्तियों के अर्थ चरण ही प्राप्त होते हैं। कवि राजचन्द्र को मोक्ष के लिए सच्चा मार्ग मिल चुका है, इस सिद्धि का आनंदोल्लास अभिव्यक्त किया है। मोक्ष मार्ग की प्राप्ति की निःशंकता स्पष्ट करते हुए कवि कहते हैं–

मारग साचा मिल गया, छूट गए संदेह,
होता सो तो जल गया, भिन्न किया निज देह।

अर्थात् आत्म स्वरूप के अनुभव रूप मोक्ष का सच्चा मार्ग प्राप्त होने से सर्व संदेह की निवृत्ति हुई–निःशंकता प्राप्त हुई। परिणामतः मिथ्यात्व से जो कर्मबन्ध हुआ करता था, वह जलकर भस्म हो गया। आत्म स्वरूप को किस प्रकार प्राप्त किया जा सकता है, इस विषय में कवि के विचार है कि–

खोज पिण्ड ब्रह्माण्ड का, पता तो लग जाय
ये हि ब्रह्माण्डी वासना, जब जावे सब----।

आत्म ज्ञान प्राप्त करने की लगन जगने से जीव का क्या कहना है–

आप आपकु भूल गया, इनसे क्या अंधेर,
समर समर अब हसत है, नहीं भूलेंगे फेर।

अर्थात् स्वयं आत्मा ही अपनी सत्ता स्थिति भूल गया था, इससे बड़ा अंधेर क्या हो सकता है। उस वस्तुस्थिति को याद करके भूल के स्मरण पर हंसी आती है।

कवि ने इस काव्य में आत्म-ज्ञान के सम्बंध में सरल शैली में अपने विचार अनुभव व्यक्त किए है। जिस पर से कवि का गहन अध्यात्म ज्ञान व तत्व ज्ञान स्वतः प्रकट होता है। यह काव्य कवि की 'हाथनोघ' में से प्राप्त होता है।

होत आसवा परिसवा :

दोहरा छंद में रचित इस काव्य में भी कवि ने ज्ञानी की दशा, जैन की महत्ता, उसके मुख्य तत्व आदि के विषय में विचार किया है। यह काव्य पूर्णतः आध्यात्मिक होने से जैन धर्म के पारिभाषिक शब्दों का बाहुल्य है। प्रथम दोहा में ही देखिए–

होत आसवा परिसवा, नहीं इनमें संदेह,
मात्र दृष्टि की भूल है, भूल गये गत ऐ ही।
जिन सोही है आत्मा, अन्य होई सो कर्म

कर्म करे सो जिन वचन, तत्व ज्ञानी को मर्म
जब जान्यो निजरूप को, तब जान्यो सब लोक
नहि जान्यो निज रूप को, सब जान्यो से फोक।
व्यवहार से देव जिन, निहजे से हैं आप,
ऐही वचन से समाज को, जिन प्रवचन की छाप।।

"इस प्रकार हमें श्रीमद् की चार रचनाएँ प्राप्त होती हैं। जिनमें से तीन तत्त्व विचार से सम्बंधित हैं व एक निजी उल्लास की है। चार में से तीन रचनाएँ दोहा छंद में है तथा 'यम-नियम' तोटक में है। ये रचनाएँ श्रीमद् का हिन्दी भाषा का प्रभुत्व व्यक्त करती हैं।"[1]

श्रद्धा एवं त्याग :

रतनलाल गंगवाल ने प्राचीन जैन कथा-साहित्य पर आधारित छोटी-सी दो कथाएँ लेकर दो पद्यमय रचनाएँ जैन समाज के लिए बाध के साथ गाई जानेवाली रची है। ये दोनों भावपूर्ण कथाएँ पढ़ने योग्य तो है ही, साथ ही धार्मिक सभाओं में भिन्न-भिन्न तर्जों में साज-बाज के साथ सुनाई भी जा सकती है। जयपुर में ऐसी रचाओं को इसी ढंग से गाकर सुनाया जाता है, जिसे 'वर्णन' कहते हैं।[2] प्रथम पद्य 'श्रद्धा' में प्रसिद्ध अंजन चोर की कथा ग्रहण की गई है, जिसे कवि ने सरल भाषा शैली में उपदेशात्मक ढंग से काव्यमय रूप प्रदान किया है। प्रसिद्ध अंजन चोर गणिका के फंदे में फंसकर अनेक व्यसनों में डूबा दिन रात चोरी करता है, लेकिन रत्न हार की चोरी पकड़े जाने के डर पर मौत नजदीक दिखाई पड़ती है, तब श्रद्धा से मंत्र-साधना कर जीवन बच जाने से धर्म के प्रति आसक्त होता है फिर श्रद्धा से धर्म ध्यान के पापों से मुक्त होने के लिए धर्म की शरण में आता है। सच्ची श्रद्धा एवं अटल निश्चय के कारण अंजन चोर में से अंजन मुनि बन गया–कवि प्रारंभ में कहते हैं–

बिन श्रद्धा के प्रभु भक्ति का, होता सच्चा गुण गान कहाँ।
श्रद्धा और साहस के द्वारा, इंसान बने भगवान यहाँ।।

और काव्य के अंत में अंजन चोर के हृदय परिवर्तन पर कहते हैं :–

हो गए वस्तु शीघ्र अंजन, पापों से अति भयभीत हुए।
बस प्रथम बार ही पुण्य भाव, मानस में उदित पुनीत हुए।।
(दोहा) दीक्षा लेकर बन गए, विजय केतु योगीश।
पाप भार से कर लिया, हलका अपना शीश।।

---

1. डा० सरयू मेहता–श्रीमदनी जीवन सिद्धि, पृ० 480.
2. द्रष्टव्य–प्रकाशकीय निवेदन, पृ० 1.

वे थे अंजन एक दिन हुए निरंजन रूपं
सर्व कर्म का नाश कर, शीघ्र बने शिव भूप।
हम भी अपने हृदय से, करे पाप-मल दूर।
दो भगवन् करके कृपा शक्ति हमें भरपूर॥

दूसरे काव्य 'त्याग' में काक-माँस के त्याग की मुनि से प्रतिज्ञा करने के बाद भील उसमें अटल रहकर प्राण लेवा बीमारी में भी वैद्य के कहने पर भी काक-माँस का इन्कार करता है, क्योंकि मृत्यु तो जब आनेवाली है, तब आयेगी ही, प्रतिज्ञा-भंग कैसे की जाय? स्वजनों के समझाने पर भी वह अडिग रहता है। और धर्म में मन लगाकर शान्ति से प्राण त्याग देता है एवं देवगति पाकर धन्य हो जाता है। अत: कवि उचित ही कहते हैं :-

त्याग करो मन से करो, तब आये तो आय।
पर न प्रतिज्ञा से कभी, मन विचलित हो पाय॥
अपने व्रत पर दृढ़ रहो, तजो न व्रत को भूल।
यही सार संसारी, सब धर्मों का मूल॥ (पृ० 13)

भीमा नामक भील ने काक-मांस त्याग के पश्चात् भयंकर उदरशूल के समय जीवन को तृण समझ अपने मित्र मंगल को धर्म वचन सुनाने को कहता है-

यों मंगल था कर आप धर्म उपदेश।
भीमा के सब कह रहे, मानो मन के क्लेश॥
अंत समय निज जान कर, भीमा ने कर जोड़
नमन किया गुरु देव को, दिये प्राण निज छोड़॥ (पृ० 23)
पाप तजो, भगवत भजो यही पुण्य की खान।
त्यागो हिंसा क्रूरता यही अहिंसा धर्म।
यथा शक्ति पालन करो पाओगे सुख शैली।

इस प्रकार सीधी-सादी शैली में लिखे गये ये दो लघु पद्य कथाएँ विशेष साहित्यिक महत्व न रखता हो तो भी इसका महत्व काफी है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि आधुनिक हिन्दी-जैन-काव्य-साहित्य की अपनी सीमाएँ होने पर भी उसका महत्व उल्लेखनीय रहेगा। गद्य की तुलना में इसका परिमाण सीमित हैं, फिर भी पद्य का प्रभाव अक्षुण्ण रहता है। धार्मिक बंधनों के कारण जैन काव्य-कृतियों का कम सृजन होता है, फिर भी जितनी उपलब्ध हैं, उनका अपनी दृष्टि से विशिष्ट योगदान स्वीकार्य होना चाहिए।

पञ्चम –अध्याय

आधुनिक हिन्दी-जैन-गद्य साहित्य : विधाएँ और विषय-वस्तु

आधुनिक युग वैज्ञानिक प्रगति का युग है। विज्ञान ने मानव के लोक एवं भावलोक को भी पर्याप्त प्रभावित किया है। उसकी अभिव्यक्ति में भी वैज्ञानिक पद्धतियों का समावेश हो गया है। मनुष्य केवल भावलोक का प्राणी न रहकर उन्हीं की ठोस जमीन पर भी चलता है। वह प्रत्येक वस्तु का शोधन तर्क और विचार की कसौटी पर करता है। कविता तर्क का क्षेत्र नहीं रही गद्य ही तर्कशील मानव का अस्त्र रहा है। इसी गद्य में आधुनिक युग के साहित्यकारों ने विविध विधाओं का सर्जन किया। कहानी, उपन्यास, निबंध, रेखाचित्र आदि सभी विधाएँ इसी युग की देन हैं।

हिन्दी साहित्य के संदर्भ में भारतेन्दु युग इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इस युग को गद्यकाल भी कहा गया है। हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत जैन-धर्म-दर्शन के तत्त्वों को लेकर साहित्य रचना करने वाले रचनाकारों ने भी गद्य की विभिन्न विधाओं में अपना योगदान दिया है। विशिष्ट प्रकार की साम्प्रदायिक मान्यताओं और नियमों की सीमा के कारण जैन साहित्य में उतनी उत्कृष्ट कोटि की गद्य रचनाएँ यदि नहीं प्राप्त होती हैं; तो आश्चर्य नहीं। तथापि जो साहित्य उपलब्ध है, वह निरा उपेक्षणीय भी नहीं है। उसका भी विशिष्ट संदर्भ में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

जैन गद्य साहित्य की यह एक विशेषता या महत्ता कही जायेगी कि जब हिन्दी में गद्य का प्रारंभ हो रहा था, तब भी जैन साहित्य कारों ने प्राचीन प्राकृत-अपभ्रंश के ग्रन्थों व काव्यों का धर्म प्रीत्यार्थ व समाज कल्याण हेतु अनुवाद ओर वचनिकाएँ सुन्दर भाषा में लिखी।[1] जिसकी भाषा काफी शुद्ध व सरल है दार्शनिक ग्रन्थों व काव्य ग्रंथों के भाषानुवाद द्वारा गद्य को पुष्ट करने के साथ जैन समाज पर भी इन साहित्यकारों ने उपकार किया है। प्रारंभिक गद्य

1. संवत् 1818 बरुवा निवासी पं० दौलतराम जी ने हरिवेणाचार्यकृत जैन 'पद्मपुराण' का गद्य में भाषानुवाद किया। आचार्य शुक्ल कृत 'हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 281.

प्रमुख स्थान राजस्थान, और ब्रजभूमि के आसपास का प्रान्त होने से उन प्रान्तों की बोलियों का प्रभाव तो रहेगा ही। लेकिन परिवर्तित परिपृष्ठों के साथ जैन गद्य साहित्य का भी शुद्ध हिन्दी भाषा में सृजन होने लगा। (आधुनिक काल में इसी भाषा में गद्य की अनेक विद्याओं का प्रारंभ करने की चेष्टा साहित्यकारों ने की है। युगानुरूप भाषा-शैली में जैन-गद्य ने अपना रूप सजाया-संवारा है।) 14वीं से 19वीं शती तक ब्रजभाषा गद्य में लिखी गई जैन ग्रंथों की वचनिकाएँ प्राप्त होती हैं। बीसवीं शती के प्रारंभ में भी धार्मिक निबंध तथा वचनिकाएँ लिखने के अनन्तर ललित वाङ्मय के विकास की ओर साहित्यकारों का ध्यान आकृष्ट हुआ। क्रमशः वे पौराणिक आधारों पर कथा वस्तु ग्रहण कर कथा साहित्य का सृजन करने लगे। इसके साथ-साथ जीवनी, नाटक व निबंधों की रचनाएँ भी प्रकाशित होने लगीं। निबंध व कथा साहित्य जैन साहित्य के लिए आधुनिक विधा न रहकर प्राचीन है, जबकि नाटक व उपन्यास आधुनिक युग की देन कही जायेगी। क्योंकि जैन लेखकों ने इस विधा में नूतन विचारधारा व भाषा शैली में गद्य-निर्माण नहीं किया था। कुछ कथाएँ उवश्य लिखी हुई। प्राचीन संस्कृत और प्राकृत के कथा ग्रंथों के अनुवाद भी ढूंढारी भाषा में लिखे गए जिससे सर्व साधारण इन कथाओं को पढ़कर धर्म-अधर्म के फल को समझ सकें। वस्तुतः जैन गद्यकारों ने अपने प्राचीन ग्रंथों का हिन्दी गद्य में अनुवाद कर गद्य-साहित्य को पल्लवित किया है।[1] हिन्दी साहित्य में गद्य की अनेक विधाओं का जो विद्युत् वेगी विकास होकर भण्डार भरा गया है, उसकी तुलना में जैन-गद्य साहित्य का विकास परिमित कहा जायेगा। क्योंकि विशिष्ट धर्म सम्बंधित होने से निश्चित उद्देश्य व सिद्धान्तों को दृष्टि सम्मुख रखकर ही साहित्य सृजन करना पड़ता है। फिर भी सुन्दर, शिष्ट कलात्मक कृतियाँ भी जैन गद्य साहित्य में उपलब्ध होती हैं। आधुनिक जैन गद्य साहित्य के विकास पर प्रकाश डालते हुए डॉ॰ नेमिचन्द्र जी लिखते हैं—जैन गद्य साहित्य का विकास उपन्यास, कथा, कहानी, नाटक, निबंध और भावात्मक गद्य के रूप में इस शताब्दी (20वीं शताब्दी) में निरन्तर होता जा रहा है। धार्मिक रचनाओं के सिवा कथात्मक साहित्य का प्रणयन भी अनेक लेखकों ने किया है। प्राचीन कथाओं का हिन्दी गद्य में अनुवाद तथा प्राचीन कथानकों से उपादान लेकर नवीन शैली में कथाओं का सृजन विपुल परिणाम में किया गया है।[2]

---

1. डॉ॰ नेमिचन्द्र शास्त्री : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ॰ 40.
2. डॉ॰ नेमिचन्द्र शास्त्री : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ॰ 53.

इस कथनानुसार जैन साहित्य प्राचीन गौरव गाथाओं को नूतन भाषा शैली में अभिव्यक्त करता हुआ बढ़ा जा रहा है। निबंध साहित्य की विपुलता अवश्य ध्यानाकर्षित करती है। उसी प्रकार जीवनी व चरित साहित्य का विकास उल्लेखनीय है। नाटकों की संख्या भी अच्छी कही जायेगी, जिसमें राजकुमार जैन, न्यामत सिंह व भगवत जैन के नाम उल्लेखनीय हैं। उपन्यासों की संख्या अत्यल्प है, जब कि कथा संग्रहों की संख्या विशेष है। यहाँ प्रत्येक विधा की प्रमुख रचनाओं की संक्षिप्त चर्चा कर लेना समीचीन होगा।

उपन्यास :

उपन्यास ही गद्य साहित्य की सर्वाधिक सशक्त व रोचक विधा है कि जिसमें लेखक जीवन के विविध पहलुओं का आकर्षक कथावस्तु, सुन्दर क्रियाकलापों, रमणीय वर्णनों, मार्मिक संवाद, वातावरण की सृष्टि व चित्ताकर्षक भाषा शैली के साथपरिचय करा सकने के समर्थ होता है। बाहरी वातावरण के साथ मानव हृदय के अन्तर्गत की विभिन्न परिस्थितियों व भावभंगिमाओं से उपन्यासकार सहृदय पाठक को अवगत करा सकता है। सामान्य जनता में मनोरंजन के साथ ज्ञानवर्द्धन तथा लोकोपयोगी शिक्षा के उद्देश्य के साथ कला के निरूपण का हेतु भी संपन्न हो सकता है। पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित होकर प्रारंभ हुए उपन्यास साहित्य को, वर्तमान युग की अति लोकप्रिय देन कही जायेगी। उपन्यास में मानव जीवन के विविध व्यवहार व पक्षों का सजीव, रसात्मक चित्रण होने से उसने महत्त्वपूर्ण साहित्य-विधा का स्थान हासिल कर लिया है। हिन्दी जगत् में बंगला साहित्य के द्वारा अंग्रेजी साहित्य से परिचित होकर उपन्यास का प्रारंभ स्वीकार किया जाता है। वैसे संस्कृत साहित्य में 'उपन्यास' शब्द मिलता है, जो आधुनिक उपन्यास (Novel) के संदर्भ में न होकर 'नाटक' के विषय में प्रयुक्त हुआ है। प्राचीन साहित्य में कथा साहित्य पद्य में मिलता है, लेकिन आधुनिक युग में यह शब्द जिस रूप व अर्थ में प्रयुक्त होता है, उस रूप में नहीं मिलता। उपन्यास-साहित्य के महत्व पर प्रकाश डालते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी लिखते हैं–'वर्तमान जगत् में उपन्यासों की बड़ी शक्ति है। समाज जो रूप पकड़ रहा है, उसके भिन्न-भिन्न वर्गों में जो प्रवृत्तियों उत्पन्न हो रही हैं, उपन्यास उनका विस्तृत प्रत्यक्षीकरण ही नहीं करते, प्रवृत्ति भी उत्पन्न कर सकते हैं।[1] इसी प्रकार उपन्यास सम्राट मुंशी

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 366.

प्रेमचन्द जी उपन्यास की विशेषता व उद्देश्य के सम्बंध में उचित ही लिखते हैं कि–"मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।" उन्होंने उपन्यास के उद्देश्य को प्रस्तुत कर दिया है, जो सभी को स्वीकार्य न भी हो। न्यू इंग्लिश डिक्शनरी में उपन्यास के विषय में लिखा गया है कि–बृहत-आकार का गद्य आख्यान या वृतान्त, जिसके अंतर्गत वास्तविक जीवन के प्रतिनिधित्व का दावा करने वाले पात्रों और कार्यों को कथानक में चित्रित किया जाता है।[1] संक्षेप में उपन्यास में मानव जीवन का प्रतिनिधित्व घटनाएँ शृंखलाबद्ध तथा कलात्मक ढंग से नियोजित की जाती हैं अतः वह वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा भी कही जा सकती है। यहाँ उपन्यास की विविध परिभाषाएँ, तत्त्व, प्रकार व कार्यक्षेत्र आदि की चर्चा से कोई प्रयोजन नहीं है। क्योंकि हमारा प्रमुख प्रयोजन आधुनिक युग में हिन्दी भाषा में जैन धर्म के सिद्धान्तों को प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से निरूपित करने वाले उपन्यासों के संदर्भ में रहा है। अतएव यहाँ केवल उन्हीं का उल्लेख प्रासंगिक रहेगा। हिन्दी साहित्य में कथा साहित्य के अंतर्गत ही उपन्यास को रखकर कथा साहित्य के अंतर्गत प्राचीन पौराणिक कथा ग्रन्थों से हिन्दी में अनुवादित या प्राचीन ग्रंथों के पौराणिक, ऐतिहासिक या लौकिक कथावस्तु का आधार ग्रहण कर नवीन शिल्प में स्वतंत्र रूप से लिखी गई कथाओं का संनिवेश किया जाता है। पौराणिक कथावस्तु के कारण वर्णन परंपरा, कथोपकथन, चरित्र-चित्रण व उपदेश में प्राचीनता सहज संभाव्य होने पर भी रोचक कथावस्तु, सुन्दर वर्णनों व उद्देश्य की स्पष्टता के कारण उपन्यास अच्छे रहे हैं। धार्मिक तत्त्वों को काव्यात्मक ढंग से पाठक तक पहुँचने का सर्व सुलभ व सुविधाजनक महत्त्वपूर्ण साधन स्वीकार कर आधुनिक उपन्यासों की रचना विशेष होनी चाहिए। निबंध और चरित्र कथा ग्रंथों की तरह यदि उपन्यास की ओर भी साहित्यकारों का ध्यान आकृष्ट होता तो जैन साहित्य निश्चय ही सम्पन्न होता। जैन शताब्दी में कई जैन लेखकों ने पुरातन जैन कथानकों को लेकर सरस और रमणीय उपन्यास लिखे हैं। इन उपन्यासों में जनता की आध्यात्मिक आवश्यकताओं का निरूपण कर उसके भाव जगत के धरातल को ऊँचा उठाने का पूरा प्रयास विद्यमान है। ''जैन उपन्यासों में कथा के माध्यम से इस आध्यात्मिक भूख को मिटाने का पूरा प्रयत्न किया गया है। जीवन की बिडम्बनाओं को दूर कर

1. हिन्दी साहित्य कोश में से उद्धृत, पृ० 140.

आध्यात्मिक क्षुधा को शान्त करना जैन उपन्यासों का प्रधान लक्ष्य है।"[1] प्राचीन और मध्यकाल में उपन्यास की विधा न रहने से अनुवादित उपन्यास का सवाल भी नहीं उठता। उसी प्रकार विशिष्ट धार्मिक साहित्य होने से अन्य भाषाओं से–संस्कृत, बँगला या अंग्रेजी से– अनुवाद कर उपन्यास का भण्डार भरने का प्रश्न नहीं उपस्थित होता और उद्देश्य-प्रधान उपयोगी साहित्य के कारण उपन्यास ही प्राप्त होते हैं। "यद्यपि जैन उपन्यास की ओर अभी भी जैन लेखकों ने ध्यान नहीं दिया है, तो भी जीवन के सत्य और आनन्द की अभिव्यंजना करने वाले कई उपन्यास हैं। जैन लेखकों को अभी अपार कथा सागर का मंथन कर रत्न निकालने का प्रयत्न करना शेष है।"[2]

जैन उपन्यासों की संक्षिप्त विशेषताएँ :

जैन उपन्यासों की सर्वप्रथम विशेषता कथानक सम्बंधी कही जायेगी। कथावस्तु में जिज्ञासा व कौतूहल-वृत्ति को उकसाकर शांत करने की क्षमता बराबर बनी रहती है। इसमें जीवन और जगत् के आध्यात्मिक व्यापक सम्बंधों की समीक्षा व्यक्त की गई है और मानवीय अन्तर्वृत्ति और अन्तर्भावों का भी सुन्दर निरूपण किया गया है। कथानक इतना रोचक होता है कि पाठक उसकी पौराणिकता भूल कर घटनाओं और वर्णनों के रसास्वादन द्वारा वास्तविक संज्ञाओं को थोडे क्षणों के लिए भूलकर कल्पना के संसार में विचरण करने लगता है। ये घटनाएँ भी एक-दूसरे से इस प्रकार से सम्बंधित होती हैं कि उपसंहार की ओर अग्रसर होने वाली इन घटनाओं को अलग नहीं किया जा सकता। एक व्यापक विधान या उद्देश्य के अनुसार कथावस्तु के भिन्न-भिन्न अवयव सुगठित होने से घटनाओं में सातत्य बना रहता है। कथावस्तु प्राचीन होने पर भी हमारे ही जीवन से सम्बंधित होने से कहीं कृत्रिमता न लगकर स्वाभाविक प्रतीत होती है। उसी प्रकार प्राय: उपन्यासों की कथावस्तु के बीच सुन्दर, भावप्रधान, प्राकृतिक वर्णनों या मानव-जीवन की सार्थकता-निरर्थकता, अच्छे-बुरे व्यवहार आदि से सम्बंधित वर्णनों के कारण कथावस्तु में सजीवता और सुन्दरता पाई है।

कथावस्तु के साथ दोनों प्रकार का चरित्र-चित्रण विश्लेषणात्मक और नाट्यात्मक जैन उपन्यासों में प्राप्त होता है। उपन्यासकार अपने विविध पात्रों को

---

1. डॉ॰ नेमिचन्द्र शास्त्री : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ॰ 55.
2. वही, पृ॰ 57.

जीवन की रंगस्थली पर खेलने के लिए स्वतंत्र छोड़ देते हैं और पात्र द्वारा जीवन के घात-प्रतिघात, उत्कर्ष-अपकर्ष, हर्ष, विषाद आदि की स्वाभाविक अभिव्यक्ति उपन्यास की सफलता कही जाती है। उपन्यास में पात्रों का फलक विस्तृत रहने से जीवन के हर क्षेत्र के पात्रों की भावानुभूति और मानसिक स्थितियों का विश्लेषण इसमें पाया जाता है। सभी का चरित्र-चित्रण भी विशद्ता से किया गया है। कहीं-कहीं तो पात्रों को याद रखने के लिए आयाम-सा करना पड़ता है, जैसे-'सुशीला' उपन्यास में। ये उपन्यास मानवों के सहज, स्वाभाविक चरित्र-चित्रण की दृष्टि से खरे उतरते हैं।

कथोपकथन भी कथावस्तु और चरित्र-चित्रण की तरह अत्यन्त रोचक व प्रवाहपूर्ण रहे हैं। 'सुशीला' उपन्यास के संवाद छोटे-छोटे रसपूर्ण व ज्ञानवर्द्धक भी है। उसी प्रकार 'मुक्तिदूत' के संवादों में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण व लालित्य भरा पड़ा है। संवाद स्वाभाविक और प्रसंगानुकूल है। निरर्थक कथोपकथन की संख्या कम रहती है। आदर्श कथोपकथन पात्रों के भाव, मनोवेगों, प्रवृत्तियों और घटनाओं की प्रभावान्विति के साथ कार्य प्रवाह को भी आगे बढ़ाता है। उपन्यासकार अपने पात्रों के वार्तालाप में परिस्थितियों के अनुसार मोड़ पैदा कराकर जीवन के आचार-विचार, व्यवहार, धर्म-सिद्धान्त आदि विषयों का भी रसात्मक दिग्दर्शन कराते हैं, जो उपन्यास की कथावस्तु के साथ पूर्णतः संगठित होने के कारण नीरस या बाधक नहीं प्रतीत होता। सबसे बड़ी विशिष्टता यह है कि ये उपन्यास धार्मिक होने के कारण उद्देश्य प्रधान रहते हैं और नैतिक, आचारात्मक या सैद्धांतिक नियमों, व्यवहारों का निरूपण इनमें होना अत्यन्त स्वाभाविक है। दुराचारों की तुलना में सदाचार एवं धर्म की महता का निरूपण कौशल के साथ इनमें दिखलाया गया है। इसके विपरीत मानव की प्रवृत्ति, जीवन की समस्याओं का समाहार ऐसे उपन्यासों में अत्यल्प रहता हो तो आश्चर्य क्या? उपन्यास के अन्त तक नैतिक आदर्शों की प्रभावान्विति पैदा करने की क्षमता रहती है। इन उपन्यासों के कथानक पुरातन होने के कारण नर-नारी के सुख-दुःख, जय-पराजय, क्रोध, करुणा, संघर्ष, राग-द्वेष आदि का मांगलिक निरूपण किया गया है, जिनको पढ़कर हमारे हृदय की चित्तवृत्तियों का उत्कर्ष हो सकता है।

जैन उपन्यासों में एक ध्यानाकृष्ट करने वाली विशेषता है, सुन्दर रसात्मक, वर्णनों की। वे वर्णन जीवन जगत् के व्यवहार, धर्म, आचार-विचार सम्बंधी या सामाजिक या व्यक्तिगत सम्बंध हो या प्रकृति के सुन्दर विविध पक्षों से सम्बंधित हों, इनकी रम्यता, भव्यता अवश्य मनमोहक होती है। सुंदर दृश्य,

चित्र-वर्णनों का उत्कृष्ट रूप 'मुक्तिदूत' उपन्यास में दृष्टिगत होता है। एक से बढ़कर एक भव्य, काव्यात्मक सजीव वर्णन प्रकृति के कोमल और भयानक स्वरूप को पढ़कर उपन्यासकार की प्रतिभा व कल्पना शक्ति की सराहना किए बिना नहीं रहा जाता। इन सब विशेषताओं के बावजूद भी जैन उपन्यास की संतोषप्रद-यथेष्ट-प्रगति नहीं हुई है। अभी इसका सृजन करने के लिए विविध क्षेत्र और प्राचीन कथानकों का भण्डार अछूता पड़ा है। प्राचीन कथा-ग्रंथों का द्वार तो खुला हुआ है ही, आधुनिक जीवन और वातावरण से भी विशद् वस्तु प्राप्त कर नवीन ढ़ंग से सैद्धान्ति दृष्टि कोण को दृष्टिगत रखकर उपन्यास लिखने के लिए प्रयत्न अपेक्षित है।

हिन्दी जैन उपन्यास साहित्य के उपलब्ध प्रमुख उपन्यासों की कथावस्तु यहाँ दी जाती है।

मनोवती :

श्री जैनेन्द्र किशोर लिखित यह उपन्यास प्रारंभिक युग की कृति है। अतः इसमें आधुनिक औपन्यासिक कला का प्रायः अभाव है। आज तो इस विधा की समुचित उन्नति हो चुकी है और उसके प्रत्येक तत्त्व का संश्लेषण, विश्लेषण भी हो रहा है। लेकिन 'मनोवती' उपन्यास उस काल में लिखा गया था जब हिन्दी साहित्य में उपन्यास लेखन प्रारंभ हो रहा था।

कथावस्तु :

इसकी कथावस्तु पौराणिक है और इसमें नए युग के परिवर्तन और समस्त भावों का चित्रण नहीं हुआ है। इसकी कथावस्तु इस प्रकार है–

हस्तिनापुर के सेठ सौभाग्यशाली लक्ष्मी पुत्र थे। उनकी मनोवती नाम की एक अत्यन्त धार्मिक एवं सुशील पुत्री थी। वयस्क होने पर माता-पिता ने उसकी शादी जौहरी हेमचंद के पुत्र बुद्धिसेन के साथ कर दी, जो बल्लभपुर-निवासी थे।

मनोवती ने अपने गुरु से प्रतिज्ञा ली थी कि प्रतिदिन गजमुक्ता का हार भगवान को चढ़ाकर भोजन ग्रहण करूँगी। प्रथम बार सुसराल जाकर भी उसने अपने नियमानुसार मंदिर में गजमुक्ता चडाकर उसका पालन किया। प्रातःकाल नगर की मालिन ने जब ये कीमती मोती देखे तो प्रसन्न होकर पुरस्कार पाने के लोभ से वहाँ के महाराज की छोटी रानी की माला में गूथकर ले गई। मालिन के इस व्यवहार से बडी रानी को गुस्सा भी आया और वह रूठ गई। राजा ने उसे ऐसे गजमोतियों का हार ला देने का आश्वासन देकर मनाया। दूसरे दिन प्रातःकाल नगर के जौहरियों को बुलाकर गजमोती लाने का आदेश दिया। सभी

जौहरियों ने लालच वश इनकार कर दिया। हेमदत्त-मनोवती के ससुर ने राजदरबार में तो इनकार कर दिया, लेकिन घर जाकर सोचने लगे कि जब यदि मनोवती घर में गौना करके आयेगी तब तो भेद अवश्य खुल जायेगा और राजा को मालूम पड़ जाने से मेरी संपत्ति लूट लेंगे और मैं निर्धन बन जाऊँगा। अतएव, अन्य पुत्रों से परामर्श कर बहू घर में न आ सके, इसलिए छोटे पुत्र बुद्धिसेन को ही घर से निर्वासित कर दिया।

मजबूर बुद्धिसेन घर से निकाल दिए जाने पर श्वसुर-गृह हस्तिनापुर आता है और पत्नी को सारी घटना बतला देता है। फिर दंपती संपत्ति प्राप्त करने के लिए निस्तब्ध रात्रि में चुपचाप घर से निकल जाते हैं। धर्मपरायण पत्नी की सहायता व उत्साह से दोनों रत्नपुर पहुँच कर वहाँ के राजा को प्रसन्न कर लिया। रत्नपुर के राजा ने भी उसके कौशल-चातुर्य पर प्रसन्न होकर अपनी पुत्री का विवाह उससे कर दिया व दहेज में अत्यन्त धन-संपत्ति दी। दोनों पत्नियों के साथ सुखपूर्वक रहते हुए कितने वर्ष व्यतीत हुए। एक बार धर्मनिष्ठा मनोवती को जिनालय बनवाने की इच्छा हुई, जो उसने पति से प्रकट की। पत्नी की प्रेरणा पाकर एक करोड़ रुपये का भव्य जिनालय बनवाना शुरू किया। अब उसका व्यापार चारों ओर फैला था और वह करोडों की संपत्ति का मालिक था।

उधर वल्लभपुर में बुद्धिसेन के माता-पिता व भाई-भाभिओं की दशा बुरी बन गई थी। जिनदेव की अवज्ञा स्वरूप उन्होंने बुद्धिसेन को घर से बाहर निकाल दिया था, तब से आर्थिक दशा बहुत बिगड जाने से आजीविका के लिए वे इधर-उधर भटक रहे थे। तभी सौभाग्य या दुर्भाग्य वश वे मजदूरी के लिए यहीं आ गए, जहाँ भगवान का भव्य मंदिर बन रहा था। शुरू-शुय में तो क्रोध वश व बदले की भावना से बुद्धिसेन ने उन सभी से मजदूरी करवाई, किन्तु कुछ दिनों के बाद मनोवती के कहने से उनका सम्मान किया और अपने निवास पर ले जाकर सभी प्रेम से मिले। बीते दिनों को सभी भूल गये और आनन्द-मंगल से रहने लगे, तभी बल्लभपुर के नरेश द्वारा निमंत्रित होने पर सभी वहाँ चले गये।

यही इस उपन्यास की कथावस्तु है, कथावस्तु में रोचकता है तथा घटनाएँ भी जिज्ञासा प्रेरक हैं। नवीनता कुछ विशेष नहीं है। नारी के सौन्दर्य और संपत्ति का निरूपण कथावस्तु में प्राचीन प्रणाली पर हुआ है। कथावस्तु की एक विशेषता है कि इसमें लौकिक प्रेम के साथ अलौकिकता का भी समन्वय किया गया है। उसी प्रकार बदले की भावना की अपेक्षा क्षमावृत्ति से ही महानता प्राप्त

होती है, यह मनोवती की कथा द्वारा व्यक्त किया हैं। पूरी कथावस्तु में आदर्शात्मक पक्ष पर विशेष जोर दिया गया है।

चरित्र-चित्रण : पात्र :

इस उपन्यास में प्राचीन पात्र मनोवती और बुद्धिसेन हैं। अन्य सब पात्र गौण हैं। मनोवती इसकी नायिका हैं। इसका चित्रण एक आदर्श भारतीय ललना के रूप में हुआ है। धर्म और आदर्श में उसकी अनन्य श्रद्धा है। अपनी प्रखर बुद्धिमत्ता के कारण वह आठ महीने में ही धर्म शिक्षा में पारंगत हो जाती है और उसकी धर्म-परायणता का ज्वलंत उदाहरण तब मिलता है, जब गजमुक्ता न पाने पर तीन दिन का उपवास करती रह जाती है। नारी सुलभ संकोच की भावना उसमें व्याप्त है। पतिपरायणता व भारतीय आदर्श से ओत-प्रोत मनोवती दु:ख में भी पति का साथ न छोड़कर उसे धैर्य बँधाती है और प्रसन्न रहने की कोशिश करती है। पति दूसरी शादी करता है, तब भी बुरा नहीं मानती, पर पति के सुख का ही ख्याल करती है। जैन धर्म में अटल विश्वास रहते हुए वह सदैव पति को भी सदाचार और सत्कर्मों की ओर प्रेरित करती है। मनोवती के चरित्र-चित्रण में लेखक को काफी सफलता मिली है। त्याग और क्षमा धर्म का भी मनोवती परिचय देती है, जब बुद्धिसेन स्वयं अपने माता-पिता व भाई-भाभियों से बुरा व्यवहार करता है, लेकिन मनोवती सम्मानपूर्वक उन्हें अपने घर बुलाती है और क्षमा माँगकर सबसे प्रेम से मिलती है।

बुद्धिसेन को इस उपन्यास का नायक कहा जा सकता है, लेकिन जितनी कुशलता और सफलता से मनोवती का चित्रण लेखक कर पाए हैं, उतना बुद्धिसेन का नहीं हो पाया है। उसका पात्र मनोवती की तरह उभरता नहीं है। मनोवती के तेजस्वी, उदात्त, धर्मपरायण चरित्र के सामने बुद्धिसेन का पात्र कुछ फीका-सा लगता है। आरंभ में वह सदाचारी के रूप में आता है, लेकिन पीछे 'धनता पाई काहि मद नाहिं' कहावत के अनुसार धन के कारण क्रूर और कृतघ्नी बन जाता है। न केवल परिवार के प्रति-बल्कि मनोवती के प्रति भी उसका आचरण बदल जाता है। मनोवती के उपकारों को विस्मृत कर तुरन्त दूसरी शादी कर लेता है। एक सदाचारी पत्नी को चाहने वाले पुरुष के चरित्र में क्रमश: परिवर्तन आना चाहिए। लेकिन लेखक ने त्वरित गति से परिवर्तन दिखलाया है, अत: अस्वाभाविकता आ गई है। अन्य पात्रों का चरित्र-चित्रण तो नहीं हो पाया है। मनोवती के पात्र के सामने सभी पात्र दब गए हैं, जिससे उपन्यास के विकास व औपन्यासिक कला में बाधा पहुँचती है।

उपन्यास की शैली में प्रभावोत्पादकता की कमी है। मनोवती की

अभिव्यंजना करने के लिए जिस प्रवाहपूर्ण भाषा की आवश्यकता रहती है, इसका यहाँ अभाव है। हाँ, कथोपकथन से पात्रों के चरित्र-चित्रण और कथा के विकास में पर्याप्त सहायता मिली है। जब महारथ अपनी पुत्री मनोवती से कहता है कि–इस नियम का कदाचित निर्वाह न हो, क्योंकि जब तक तूँ हमारे घर में हैं, तब तक तो सब कुछ हो सकता है, परन्तु ससुराल जाने पर अड़चन पड़ेगी। मनोवती उस समय निर्भीक और नि:संकोच होकर उत्तर देती है–जो उस समय स्थिति देखते हुए कुछ खटकता-सा है। सामान्य रूप से कथोपथन स्वाभाविक और मर्यादा युक्त है।

भाषा–शैली :

इस उपन्यास की भाषा, प्रारंभिक युग की होने के कारण साहित्यिक गरिमा से मंडित न होकर सरल बोलचाल की भाषा है। अनेक स्थानों पर लिंग-दोष विद्यमान है। जहाँ एक ओर तड़की, सुनहरी, चौपरे, जोति, दिखो आदि देशी शब्द पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं, वहाँ खातिरदारी, हासिल, हताश, आफताब, मुराद, महताब, फसाद आदि उर्दू के शब्दों की भी भरमार है। इसके अलावा भोजपुरी भाषा का प्रभाव भी इनकी भाषा पर परिलक्षित होता है–फिर भी बोलचाल की भाषा होने के कारण शैली में सरलता आ गई है। यद्यपि औपन्यासिक तत्त्वों की कसौटी पर यह खरा नहीं उतरता है, पर प्रयोगकालीन रचना होने के कारण इसका महत्त्व है। "हिन्दी उपन्यासों की गतिविधि को अवगत करने के लिए इसका महत्त्व 'चन्द्रकान्ता संतति' से कम नहीं है।[1]

श्री जैनेन्द्र किशोर ने कमलिनी, सत्यवती, सुकुमाल, मनोरमा और शरदकुमारी ये पाँच उपन्यासों की भी रचना की है, लेकिन आज ये अनुपलब्ध हैं। एक 'सुकुमाल' की प्राचीन प्रति कहीं-कहीं प्राप्त होती है। सभी उपन्यासों में धर्म और सदाचार की महत्ता अभिव्यक्त करने वाली पुरातन कथावस्तु ग्रहण की गई है। प्रारंभिक रचना होने से उसमें औपन्यासिक कला का विकास नहीं हुआ है।

सुकुमाल :

जैनेन्द्रकिशोर जी ने इस छोटे उपन्यास की रचना ई० 1905 में की थी, जब हिन्दी साहित्य ने इतिहास में भी उपन्यासों का प्रारंभिक युग ही चल रहा था। इसके उपोद्घान् में लेखक ने स्वयं ही लिखा है कि–इस उपन्यास में न तो 'प्रेमी तथा प्रेयसी की रसभरी कहानी है और न इसमें तिलिस्म तथा ऐयासी के झटके हैं। यह उपन्यास केवल पापों का निराकरण कर शिवरमणी (मुक्ति) से

1. डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ० 61.

संयोग कराने में समर्थ है।[1] प्रारंभिक युग की कृति होने के कारण उपन्यास के तत्त्वों की कमी एवं रचना कौशल न होने पर भी घटना-प्रवाह के कारण रोचकता व उत्सुकता बनी रहती है। कर्मों की मीमांसा के कारण सुकुमाल-प्रमुख नायक-के जन्म-पूर्वजन्म को महत्त्व दिया गया है। अतएव, कथा के भीतर कथा का प्रवाह चलता है, क्योंकि दार्शनिक ग्रंथ और उपन्यास दो भिन्न-भिन्न साहित्य हैं। जैन धर्मों के पाँच महाव्रतों की महत्ता व श्रेष्ठता सिद्ध करने हेतु पाँच मुख्य कथा नागश्री, नागशर्मा और आचार्य सूर्यमित्र के द्वारा बताई गई हैं। साधारण भाषा शैली का यह उपन्यास अपने युगीन संदर्भ में महत्त्व रखता है। वैसे आधुनिक रचना शैली, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण या मार्मिक कथोपकथादि का अभाव है।

कथानक :

मुख्य कथानक नागश्री एवं सुकुमाल का है। नागश्री सुर्यमित्र मुनि से ज्ञान प्राप्त कर विद्वान् बन जाती है और उसके ज्ञान की कसौटी राजा चन्द्रवाहन, नागश्री के राजपुरोहित पिता, दरबारियों और प्रजाजनों के समक्ष ली जाती है। नागश्री सबके सामने धर्म के गूढ़ तत्त्वों की चर्चा करती है। उसके गुरु सूर्यमित्र नागश्री के पूर्वभव की कथा कहते हैं, जो पिछले जन्म में उनका सुयोग्य शिष्य वायुभूत था। फिर वायुभूत के जन्म की कथा प्रारंभ करते हैं कि वायुभूत मगध के राजा अतिबल के पुरोहित सोम शर्मा का छोटा बेटा था, जो पढ़ने से दूर ही रहता था। पिता के अनेक प्रयत्नों के बावजूद भी अशुभ कर्मों के उदय स्वरूप विद्याभ्यास में उसे रुचि भी नहीं उत्पन्न होती थी। पिता की मौत के बाद अज्ञानवश दोनों भाइयों को—अग्निभूत और वायुभूत को—राजपुरोहित बना दिया, लेकिन एक बार विद्वान् प्रतिद्वन्द्वी से वाद-विवाद या चर्चा करने की अपेक्षा प्रश्नों के कागज़ को फाड़ दिया। अत: राजा ने गुस्से में आकर नगर से बाहर कर दिया। पश्चाताप स्वरूप दोनों भाई अपनी माता से परामर्श कर राजगृह के पुरोहित—अपने मामा सूर्यमित्र के—पास विद्याध्ययन के हेतु जाते हैं। सूर्यमित्र मुनि अपने पूर्व भव में राजपुरोहित थे, लेकिन राजा की अँगूठी खो जाने के बाद किसी सुधर्माचार्य नामक जैन मुनि के ज्ञान से प्रभावित होकर तब उनसे भविष्य जानने की विद्या सीखने के लिए ठगाई करके जाते हैं। लेकिन सम्यक ज्ञान को जानने के बाद अज्ञान दूर हो जाने से सुधर्माचार्य से दीक्षा अंगीकार करते हैं। सूर्यमित्र के पास आने के बाद ये दोनों मूर्ख भाई पढ़-लिखकर विद्वान् बनते हैं, लेकिन बड़ा भाई अग्निमित्र शांत व विद्वान् है, जबकि अनुज वायुभूत क्रोधी और अविवेकी है।

1. श्री जैनेन्द्र किशोर—'सुकुमाल' उपन्यास का उपोद्घात, पृ० 1.

इधर इस जन्म की नागश्री अपने दूसरे भव में श्रावक सुरेन्द्र दत्त और श्राविका यशोभद्रा का पुत्र सुकुमाल बना। माता-पिता दोनों जैन धर्म के संस्कारों से अलंकृत थे। पिता ने पिछली उम्र में पुत्र का मुख देखकर अहोभाग्य समझकर संसार से दीक्षा ग्रहण कर ली और मुनि श्री वर्धमान की भविष्यवाणी सुकुमाल भी जैनाचार्य की वैराग्यमूलक वाणी सुनकर वैराग्य ग्रहण करेगा—इसके कारण उसकी माता को चिंता होने लगी। श्राविका यशोभद्रा को यह अच्छा तो नहीं लगा, लेकिन जिसके भाग्य में जैन शास्त्र की सिद्धि और तपश्चर्या लिखी हो, उसे कौन व्यर्थ कर सकता है? बड़े होने के बाद सुकुमाल अनेक भोग-विलास भोगने पर भी एक दिन महल के उपवन स्थित जिनालय में से मुनिराज की वाणी सुनकर संसार के प्रति उदासीनता आ जाने से रस्सी के सहारे महल से भागकर मुनिराज से दीक्षा ग्रहण करता है। सुकुमाल मुनि बनकर जंगल में अपनी काया का उत्सर्ग करने के लिए समाधिलीन बन गए। एक दिन वहीं एक स्यालिनी (सियारनी) और उसकी पिल्ली ने सुकुमाल मुनि के पैरों को नोंच दिया, लेकिन वे एक सच्चे योगी की भाँति अविचल क्षमा भाव से तप करते ही रहे और अनेक वर्ष असह्य तप करते हुए समाधि मरण से देवयोनि प्राप्त की। यही सुकुमाल पूर्व जन्म में नागश्री था और नागश्री अपने पूर्व जन्म में राजपुरोहित सोम शर्मा का छोटा पुत्र वायुभूत था। नागश्री का पिता नाग शर्मा—जो मुनि बनने के बाद समाधि मरण से देव बना था, वह अच्युत स्वर्ग से च्युत होकर सुकुमाल के पिता सुरेन्द्र दत्त सेठ बना। नागशर्मा की पत्नी श्री देवी ब्राह्मणी सम्यक दर्शन के अभाव से सुकुमाल की माता यशोभद्रा बनी और नागश्री का जीव—जो पद्मनाम देव हुआ था—पुण्य के प्रभाव से विख्यात धर्मात्मा सुकुमाल हुआ।

इस प्रकार सुकुमाल उपन्यास में पाँच महाव्रतों की महत्ता, श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए पाँच कथाएँ वर्णित की गई हैं। कथा के भीतर कथा चलती रहने से पाठक को पात्रों की स्थिति याद रखने में मनोयोग देना पड़ता है। कहीं-कहीं धार्मिक तत्त्वों की गूढ़ चर्चा के कारण कथा में नीरसता भी पैदा हो जाती हैं। वैसे उपन्यासकार का धार्मिक सिद्धान्तों की चर्चा का उद्देश्य सिद्ध होता है। भाषा-शैली सरल है। जिज्ञासा पूर्ति कथानक का मुख्य अंग रहा है। आलंकारिक भाषा या नवीन शैली रहित होना स्वाभाविक है। धार्मिक वातावरण की गंभीरता व कथा के प्रवाह में उपदेश देकर जैन धर्म के महाव्रतों का वर्णन लेखक ने अच्छा दिया है।

रत्नेन्दु :

हिन्दी जैन साहित्य-सृजन में जैन साधुओं का भी महत्त्व पूर्ण योगदान

रहा है। वे प्राचीन जैन-ग्रन्थों का गहरा अध्ययन कर फिर जैन समाज के ज्ञान व मनोरंजन हेतु उन्हें आधुनिक भाषा-शैली में अभिव्यक्त करते हैं। मुनि श्री तिलकविजय जी भी ऐसे ही साहित्य सेवी साधु हैं, जिनका आध्यात्मिक क्षेत्र में अपूर्व स्थान है। धर्मनिष्ठ होने के कारण धर्मानुराग एवं करुणा का प्रवाह आपके हृदय में निरंतर प्रवाहित होता है। धर्मानुराग की सारिणी में प्रस्फुटित श्रद्धा, विजय, उपकारवृत्ति, धैर्य, क्षमता आदि गुणों से युक्त कमल अपनी भीनी-भीनी सुगन्ध से जन-जन के मन को आकृष्ट करते हैं। उपन्यास के क्षेत्र में भी इनकी मस्त गन्ध पृथक् नहीं। वास्तव में अध्यात्म विषय का शिक्षण उपन्यास द्वारा सरस रूप से दिया गया है। कड़ुवी कुनैन पर चीनी की चासनी का परत लगा दिया गया है। इस उपन्यास में औपन्यासिक तत्त्वों की प्रचुरता है। पाठक आदर्श की नींव पर यथार्थ का प्रसाद निर्माण करने की प्रेरणा ग्रहण करता है।[1]

कथा-वस्तु :

जिज्ञासावृत्ति को उत्तेजित करते रहने की कला का प्रयोग लेखक ने कुशलता से किया है। प्रारंभ में ही हम पाते हैं कि रत्नेन्दु अपने 15-20 साथियों के साथ जंगल में शिकार के लिए गया है। लेकिन साथियों से बिछुड़ जाने पर अकेला हो गया है। और इधर अन्य साथियों के हृदय में चिन्ता है, लेकिन नयपाल नामक उसका साथी व मित्र रत्नेन्दु की करुण पुकार सुनकर कष्ट निबारने के लिए जाता है, जहाँ एक सुन्दर कोमलांगी राजकुमारी पद्मिनी को कापालिक की जाल में फंसा हुआ देखता है। वह अपनी तलवार से कापालिक के खूनी पंजे से पद्मिनी को मुक्त करता है। सघन वृक्ष की शीतल छाया में पहुँचकर पद्मिनी अपना दुःख निवेदन करती है और आपबीती कहती है। वह चंपानगर के राजा की राजपुत्री है, लेकिन यह दुष्ट कापालिक अचानक उसको बलि के लिए अपहरण कर यहाँ लाया है। राजज्योतिषी ने रत्नेन्दु के विषय में पहले से कहा था, अतः वह उसे तभी से आत्मसमर्पण कर चुकी थी। श्रद्धा-विभोर होकर कहती है—ज्योतिषी ने कहा—कुछ ही समय बाद रत्नेन्दु चन्द्रपुर की गद्दी का मालिक होगा। आपकी कन्या के योग्य वही वर हैं। उसी समय से में उसे अपना सर्वस्व समझ बैठी और इस असाध्य संकट मैं उनका नाम स्मरण किया। मैंने प्रतिज्ञा की है कि रत्नेन्दु के साथ विवाह करूँगी, अन्यथा आजन्म ब्रह्मचारिणी रहूँगी। इस प्रकार लेखक ने घटना-क्रम का सूत्र अच्छी तरह जोड़ दिया है। फिर इस मिलन के पश्चात् पुनः वियोग होता है।

1. डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ० 61.

कापालिक का पुत्र पद्मिनी का पुनः अपहरण करता है, लेकिन तपस्वियों की सहायता से अपने पिता के पास पहुँच पाती है। रत्नेन्दु उसे प्राप्त करने के लिए घूमता रहता है। इसी भ्रमण में उसकी भेंट एक मृत्यु के नजदीक पड़े हुए धर्मात्मा श्रावक से होती है, जो अन्त समय में नवकार मंत्र को सुनकर देवगति प्राप्त करना चाहता है। यह जानकर रत्नेन्दु उनकी आखिरी इच्छा परिपूर्ण करने के लिए नवकार मंत्र का श्रद्धा से स्मरण करवाता है, जिसके प्रभाव से श्ररवक उत्तम गति प्राप्त करता है।

तदनन्तर रत्नेन्दु घूमता हुआ चम्पानगरी में आ पहुँचता है और वहाँ विधिपूर्वक पद्मिनी के साथ उसका पणिग्रहण होता है। कुछ दिन वहाँ आनन्द चैन से रहने के बाद माता-पिता की याद आने पर देश लौट आता है और वहाँ राज्य संपदा का उपभोग करता है इस बीच एक बार सर्पदंश के कारण वह मूर्छित हो जाता है, लेकिन श्मशान में आकर पूर्वोक्त श्रावक–जो मरने के बाद देवगति में गया था–विषहरण कर उसे जीवन प्रदान करता है। राज्य का कार्यभार संभालते और आनन्द से जीवन व्यतीत करते हुए एक बार रत्नेन्दु बसंत ऋृतु में अपने सैन्य के साथ उपंवन में विहार करने जाता हैं और इस ऋतु में वृक्ष को सूखते हुए देखकर एकाएक उसको संसार की क्षणभंगुरता देखकर वैराग्य आ जाता है। उसकी धर्म विवेकमय दृष्टि खुल जाती है और आत्म-सिद्धि के लिए वह चल पड़ता है। थोड़ी ही देर हमारे सामने साधु के वेश में उपस्थित होता है।

चरित्र-चित्रण :

कथा-वस्तु में घटनाओं की प्रधानता है, जो जीवन के तथ्यों की अभिव्यंजना करती हैं। लेखक ने पात्रों के चरित्र के भीतर बैठकर झांका है, जिससे चरित्र मूर्तिमान हो उठे हैं। चरित्र-चित्रण लेखक ने प्रत्यक्ष न कर कहीं-कहीं कथोपकथन के द्वारा तो कहीं घटना के चित्रण में किया है। प्रारंभ में ही रत्नेन्दु की शूरवीरता एवं धीरता का परिचय उसके साथियों के वार्तालाप द्वारा प्राप्त होता है, जब वह वन में अकेला भूला पड़ जाता है। उसके बिछुड़े साथी नयपाल द्वारा कितने सुन्दर ढंग से उसकी वीरता का वर्णन किया है:–

" 'नहीं', नहीं, यह बात कभी नहीं हो सकती, आपके विचारों को हमारे हृदय में बिल्कुल अवकाश नहीं मिल सकता। वे किसी हिंसक जानवर के पंजे में आ जाय यह बात सर्वथा असंभव हैं। क्योंकि मुझे उनकी वीरता और कला-कुशलता का भली-भाँति परिचय है। 'उसी प्रकार रत्नेन्दु के भीतर दया,

करुणा तथा परोपकार वृत्ति भी भरी पड़ी है। इसी स्वभाव वश वह पद्मिनी को दुःख-मुक्त करता है। और धर्मात्मा की अंतिम इच्छा पूर्ण करता है वह दृढ़ निश्चयी भी प्रतीत होता है, जो एक बार संसार की क्षण भंगुरता व मिथ्या रूप देख तुरन्त ही राज वैभव ठुकराकर आत्म कल्याणार्थ सन्यस्त ग्रहण कर लेता है। पद्मिनी का चरित्र-चित्रण भी लेखक ने कुशलता से किया है। नारी की श्रद्धा, निष्कपटता, त्याग एवं सतीत्व का परिचय मिलता है। उसमें लज्जा है, स्नेह है, ममता-मृदुता है, तो अधर्म के प्रति कठोरता भी है। इसीलिए वह अधर्म के फन्दे में फंसकर भी अपने शील को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए सचेष्ट है। वह अड़िग-पतिव्रता धर्म का पालन भी करती है। अपने होने वाले पति रत्नेन्दु को एकनिष्ठ प्रेम करने लगती है। इस उपन्यास की विशेषता के सम्बंध में डॉ० नेमिचन्द्र जी लिखते हैं–"लेखक ने पात्रों के चरित्र के भीतर बैठकर झांका है, जिससे चरित्र मूर्तिमान हो उठे हैं। भाषा, विषय, भात्र, विचार, पात्र और परिस्थिति के अनुकूल परिवर्तित होती गई हैं। यद्यपि भाषा सम्बंधी अनेक भूलें इसमें रह गई हैं, तो भी भाषा का प्रवाह अक्षुण्ण हैं।"

सुशीला :

यह उपन्यास संपूर्ण रूप से धार्मिक है। धार्मिक लक्षणों व सिद्धान्तों की व्यंजना लेखक ने रोचक कथावस्तु, विविध पात्रों के मार्मिक चरित्र-चित्रण एवं प्रकृति के सुन्दर वर्णनों द्वारा स्पष्ट, सरल और आकर्षक शैली में किया है। इसी कारण कर्मबन्ध, गुणस्थानक जैसे विलष्ट विषयों को पाठक कथा के माध्मय से आसानी से समझ पाता है।

'सुशीला' उपन्यास के लेखक हैं रचनाम धन्य प्रसिद्ध जैन लेखक पं० गोपालदास बरैया। इसकी कथा–वस्तु आकर्षक और शिक्षाप्रद है, लेकिन घटनाएँ शृंखलाबद्ध नहीं है तथा घटनाओं का प्रमाण अत्यन्त विशाल होने से कभी-कभी शिथिलता आ पाती है। लेकिन अध्याय का आरंभ व अन्त कलापूर्ण ढंग से होता हैं जिससे पात्रों एवं घटनाओं के आर्थिक्य की ओर कम ध्यान रहता है। जीवन के आरम्भ और अन्त की शृंखला हमारे सामने अंत में स्पष्ट हो जाती है।

कथावस्तु :

कथावस्तु पौराणिक ढंग की काल्पनिक प्रतीत होती है। विजयपुर के महाराज श्रीचन्द के पुत्र जयदेव की योग्यता, गुण, शील, विद्या आदि से प्रसन्न होकर महाराज विक्रम सिंह अपनी रूप-गुण-शीला पुत्री सुशीला का ब्याह कर

देते हैं। उदय सिंह नामक अन्य राजकुमार को यह विवाह अच्छा नहीं लगता, क्योंकि उस कामुक लोभी पुरुष की निगाह रूप लावण्यवाती सुशीला पर पहले से मण्डरा रही थी। अत: वह कैसे भी हो उसे प्राप्त करने के लिए प्रपंच-युक्तियाँ लड़ाता है। जयदेव के विनाश के लिए षडयंत्र रचाता है, ताकि बाद में उसे सुशीला प्राप्त हो सके लेकिन सुशीला तो धर्मवान्, शीलवान्, सतीत्व को जानने वाली दृढ़-निश्चयी स्त्री होने से कभी अपने व्रत-नियम से डिगती नहीं।

विवाह के बाद दोनों जब विदा होते हैं तो मार्ग में लुक-छिपकर उदय सिंह ने साथ पकड़कर जल मार्ग से जाने की सलाह देकर अपनी कुयोज़ना का प्रारंभ करता हैं। जब समुद्र के शीतल झोंकों से जयदेव, उनके मित्र व सुशीला सभी को नींद आ गई तो उदय सिंह और बलवन्त सिंह दुष्ट मित्रों के मल्लाह से घुल मिलकर खूब बातें की और नौका को धोखा देकर बीच में ही डुबा दी। नाव में जयदेव का परम मित्र भूपसिंह और सुशीला की दो-तीन सखियाँ भी थीं।

नौका को डुबा देने पर जयदेव भाग्यवश एक तख्त को पकडकर डूबते उतराते किनारे लगा और कंचनपुर नामक नगरी में पहुँचा। उसकी दशा और भीतरी तेजस्विता, योग्यता को पहचानकर वहाँ के प्रसिद्ध जौहरी रत्नचन्द्र से उसे आश्रय दिया। जयदेव रत्न-परीक्षण में अत्यन्त निपुण था, अत: रत्नचन्द्र जयदेव से प्रसन्न रहने लगे। रत्नचन्द्र की पत्नी रामकुंबरी और उसकी प्रथम पत्नी के पुत्र हीरालाल के बीच अनैतिक सम्बंध था। दोनों कामुक और दुराचारी थे। पहले तो रामकुबरी ने जयदेव को फँसाने के लिए भी नाना प्रकार से मायाजाल फैलाई, पर शील-संयमी जयदेव के सामने सब व्यर्थ रहा। जयदेव ने सेठजी को इस सम्बंध में बताया भी था। एक दिन रत्नचन्द्र अपने कार्यवश स्नेहपुर गए लेकिन पत्नी के चरित्र पर संदेह होने से मार्ग में से ही लौट आए और आधी रात घर पहुँचे। यहाँ आकर रामकुंबरी और हीरालाल के कुकृत्य को देखकर क्रोध से उसकी आँखें लाल हो गईं और क्रोध में ही दोनों पापियों को रंगे हाथ पकड़कर सजा देने की तीव्र इच्छा हुई, लेकिन तत्क्षण विराग और उदासीनता आ जाने से पत्र लिखकर संपूर्ण संपत्ति की व्यवस्था का भार जयदेव के हाथ में सौंपकर वे मुक्ति के पथ पर अग्रसर होने के लिए चल पड़ते हैं। सुबह जयदेव यह सब देख कर अवाक् रह गया। बाहर से किवाड़ बन्द कर दिया गया होने से दोनों दुराचारियों का पाप प्रकट हो गया। जयदेव दोनों को खूब सुनाता है, उपदेश देता है लेकिन कामी लोगों को लज्जा कहाँ? जयदेव

थोड़े दिन कार्यभार समेटता रहा लेकिन इन दोनों की निर्लज्जता से ऊबकर एक विश्वासपात्र आदमी को संपत्ति का भार सौंपकर अज्ञात दिशा की ओर चल पड़ा।

उधर कुमारी सुशीला की दशा भी अत्यन्त बुरी थी। उदयसिंह और उसके मित्र ने सुशीला को पकड़कर सूर्यपुरा नामक गाँव के उद्यान के एक मकान में छिपा दिया, वहाँ कितने दिनों तक मूर्छित रही। क्रूर उदयसिंह ने सती सुशीला पर हाथ लगाना चाहा लेकिन उसकी रौद्र मूर्ति, अद्भूत साहस व दृढ़ शील-तेज से डरकर वह हक्का-बक्का रह गया। फिर तो उसने दूती भेजकर सुशीला को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए प्रयत्न किए लेकिन दूती को सुशीला के द्वारा आड़े हाथों ले जाने पर मुँह की खाकर वापस आना पड़ा। सुशीला की प्रिय सखी रेवती ने उसका पता लगाने के अनेक प्रयत्न किए, पर वह सफल न हुई।

जयदेव जब कुंचनपुर से लौट रहा था तब रास्ते में एकाएक भूपसिंह के साथ उसका मिलाप हो गया। फिर दोनों सुशीला का पता लगाने के लिए व्यग्र होकर सचेष्ट रहने लगे। उदयसिंह की ओर दोनों को शंका थी। अतः भूपसिंह ने तुरन्त पता लगा लिया कि उसने ही उद्यान के बंगले में कैद कर रखा है। जयदेव मालिन की सहायता से सुशीला के निकट पहुँचकर संकेत से अपना परिचय देकर उसे आश्वस्त करता है। फिर योजना बनाकर तीनों पुनः विजयपुर की तरफ रवाना हुए। चारों दिशाओं में आनन्द-मंगल छा गया और दुःखी माता-पिता को आनन्द एवं सांत्वना मिली।

हीरालाल की पत्नी सुभद्रा पतिव्रता और सुशीला थी, लेकिन दुष्ट, कामुक हीरालाल ने कभी उसको समुचित सम्मान नहीं दिया। अंततः राजकुंबरी व हीरालाल के पाप कृत्यों का परिचय समाज को मिल जाने से दोनों को नगर में काला मुँह करके घुमाया जाता है। और सुभद्रा तथा उसके पुत्र को संपत्ति सौंप दी जाती है। बैरागी रत्नचन्द्र दीक्षित होकर विमलकीर्ति मुनि के नाम से प्रसिद्ध हुए। अन्त में श्रीचन्द, विक्रम सिंह और भूपसिंह के पिता रजवीर सिंह को वैराग्य आ जाने से अपने पुत्रों को कार्यभार सौंपकर सन्यस्त ग्रहण करते हैं। रानी मदन वेगा और विद्यावती भी आर्जिका हो जाती हैं।

इस प्रकार पुरातन ढांचे की काल्पनिक कथावस्तु में लेखक ने धार्मिक शिक्षा और व्यावहारिक शिक्षा का संदेश रखकर उसको मनोरंजन के साथ ज्ञानवर्द्धक भी बनाई है। घटना, स्थल व पात्र अनेक होने से कथावस्तु का सूत्र जोड़े रखने में लेखक को काफी कुशलता प्राप्त हुई है। पाठक को भी दत्त चित्त

होकर उपन्यास पढ़ना है कि हाथ में कहीं कथा का सूत्र छूट न जाए। धार्मिक, सामाजिक आचरण की महत्ता और आदर्श भारतीय नारी, के गुणों के साथ जैन धर्म के गूढ़ सिद्धान्तों का निरूपण लेखक ने कथा के माध्यम से कर दिया है। उपन्यास से सिद्धान्त-चर्चा के कारण थोड़ी-सी नीरसता आ गई है। साथ-ही-साथ बोझिल भी प्रतीत होता है, लेकिन लेखक अपने उद्देश्य में सफल रहते हैं। 13वें और 16वें अध्याय में तो पूर्णरूप से रत्नचन्द्र सेठ की साधु महाराज से धार्मिक चर्चा का निरूपण हुआ है। प्रत्येक अध्याय की कथावस्तु का प्रारंभ और अन्त प्रकृति-चित्रण से ही किया है।

पात्र :

पात्रों की संख्या विशेष होने पर भी उपन्यासकार ने प्रमुख पात्रों का चारित्रिक विश्लेषण सुन्दर शैली में किया है। पुरुष पात्रों में जयदेव, भूपसिंह, रत्नचन्द्र, हीरालाल, उदयसिंह आदि और बाकी पात्रों में सुशीला, रेवती, सुभद्रा और रामकुंबरी प्रधान हैं। इन पात्रों के चरित्र-विश्लेषण पर ही कथास्तंभ खड़ा किया गया है।

जयदेव उच्चकुलीन राजपुत्र है। बचपन से ही वह संयमी, अभ्यासी एवं सादगी से रहने वाला है। कष्ट विपत्ति में वह सुमेरू के समान दृढ़ और सहनशील है, जो उत्तरदायित्व निभाने में निष्कपट और सदाचारी है। अपनी पत्नी के प्रति अनुरक्त है तथा अन्य स्त्री के प्रति दृष्टि ऊँची कर देखता तक नहीं है। इसीलिए रामकुबंरी द्वारा अनेक प्रलोभनों के बावजूद वह फँसता नहीं है। समय आने पर जी तोड़कर श्रम करने में पीछे हटने वाला नहीं हैं।

रत्नचन्द्र अपने नगर का प्रसिद्ध जौहरी है न्यायी और कर्त्तव्य परायण होने से नगर में उनका अच्छा सम्मान था। मनुष्य परखने की कला में भी वे उतने ही कुशल थे, जितना रत्न परखने की कला में। आदर्श और सदाचार को वह जीवन के लिए आवश्यक तत्त्व मानते हैं। इसीलिए दुश्चरित्र पत्नी व पुत्र का व्यवहार देखकर क्रोध भी आता है और अन्त में सच्ची विरक्ति आ जाने से सन्यस्त ग्रहण कर लेते हैं। अपने भावों और प्रतिक्रियाओं को दबाकर ज्ञान बुद्धि से सोचकर संसार के प्रति ही वैराग आ जाने से दीक्षा लेकर विमलकीर्ति नाम के मुनि हो गये। उसका पुत्र हीरालाल व्यसनी एवं दुराचारी और क्रूर प्रकृति का है। वह अपनी पत्नी व बच्चे के प्रति सद्व्यवहार से रहने के बदले अपरमाता के साथ व्यभिचार करता है। निर्लज्जता एवं कामुकता उसके भीतर भरी पड़ी है, जिसका दुष्परिणाम भी उसे भुगतना पड़ता है।

जयदेव का परिचयात्मक चरित्र-चित्रण करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है—जयदेव जन्म से ही दयालु हृदय एवं शान्ति प्रकृति का व्यक्ति है। विजयपुर

के निवासियों ने उसे कभी किसी से लड़ते-झगड़ते अथवा कटु-वचन कहते नहीं सुना। एक बार एक निरपराधी जीव को पीटते देखकर उसे मूर्च्छा आ गई थी।

भूपसिंह जयदेव का अन्तरंग मित्र है। सुख-दुःख में सदैव परछाई की तरह उसका साथ निभाता है। उदयसिंह के द्वारा जब नौका डुबाई जाती है, तब वह जैसे-तैसे बच पाता है और होश संभालते ही जयदेव व सुशीला को खोजने के लिए अथक प्रयास करता है। भूपसिंह के बारे में परिचय देते हुए कहा गया हैं कि—इस समय भूपसिंह की आयु 24 वर्ष के अनुमान है। वह पिता की शिक्षा से ऐसे साँचे में डाला गया है कि श्रेष्ठ से श्रेष्ठ राजाओं में जो गुण आवश्यक है वे सब इस समय उसमें वर्तमान है। राजनीति, धर्मनीति, युद्धनीति, समाज आदि संपूर्ण विषयों में वह असाधारण ज्ञान रखता है। इसके अतिरिक्त काव्य कोष, व्याकरण न्यायादि विषयों में भी उसका अच्छा प्रवेश है वह इस समय राज्य कार्य बड़ी कुशलतापूर्वक चलाता है।

उदयसिंह एक साहूकार का पुत्र है, किन्तु वासना एवं बुरी संगति के कारण उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। कामवासना के कारण वह बलात्कार को बुरा नहीं समझता। लेखक ने सभी पुरुष पात्रों के चरित्र-चित्रण में औपन्यासिक कला की अपेक्षा उपदेशक या धर्मशास्त्र का दृष्टिकोण विशेष रखा है। अतः पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण नहींवत् हो पाया है।

स्त्री पात्रों में एक ओर सुशीला जैसी रमणीय शीलवती नारी है, तो दूसरी ओर रामकुंबरी जैसी दुराचारिणी नारी का चरित्र अंकित किया गया है। दोनों का यथार्थ रूप से चरित्र-विश्लेषण किया गया है। पाठकों के समक्ष नारी के दोनों रूप उपस्थित किए गए हैं, जो हमें समाज में दृष्टिगत होते हैं। सुशीला के आंतरिक गुणों का वर्णन करते हुए लिखा गया है कि—सुशीला के विचार उत्कृष्ट हैं, उत्युत्कृष्ट हैं। वह प्रत्येक बात में से जो सिद्धान्त शोध के निकालती है, वे कुछ अपूर्व ही होते हैं। वह यद्यपि अभी अविवाहित है, परन्तु विवाहित स्त्रियों का क्या धर्म है, उसे वह भलीभाँति जानती है। कुलीन वंशोद्भावक पतिपरायण स्त्रियों के धर्म का उसे खूब परिचय है। क्षमा, शील, संतोष प्रकृति धर्मों ने उसके हृदय को अपना विश्रामस्थान बना लिया है। सांसारिक नाना प्रपंचों के समीर ने उसके शरीर को कभी स्पर्श भी नहीं किया।

प्रत्येक सर्ग में प्रकृति का मधुर, आह्लादक और सहज वर्णन प्राप्त होता है। प्रकृति प्रायः उद्दीपन के रूप में ही चित्रित की गई है। पात्रों की मनोदशा को अभिव्यक्त करने के लिए प्रकृति भी उसी रंग में रंगी मिलती है, लेकिन

कहीं-कहीं प्रकृति व पशु-पक्षियों की केलिक्रीड़ा का सुरम्य वर्णन स्वतंत्र रूप से भी किया गया है, जैसे समस्त पशु-पक्षी प्रसन्न चित्त दिखलाई देते हैं। सूखे पड़े हुए मेंढकों के शरीर में जीव आ गया है, वे इधर-उधर उछलते हुए मद को मात कर रहे हैं। सारस, हंस, मयूर आदि पक्षी चैन से क्रीड़ा कर रहे हैं। पानी के बहुत ही समीप बकगणों का ध्यान लग रहा है। एक साथ चलते हुए एक साथ मधुर शब्द करते हुए और एक साथ उड़ते हुए स्नहमय सारस के सरस जोड़ो को देखकर भूपसिंह के हृदय में शीघ्र ही प्राप्त होने वाले दाम्पत्य प्रेम की मीठी-मीठी कल्पनायें उठने लगीं। कोकिल के कोमल आलाप से चित्त उत्कंठित होने लगा और मयूरों के आनन्द-नृत्य से मुख पर स्वेद झलकने लगा।[1] प्राकृतिक चित्रणों के द्वारा भावों को साकार बनाने की कहीं-कहीं अद्भुत चेष्टा की गई है। प्रकृति के चित्रमय वर्णनों में लेखक ने आलंकारिक शैली का सफल प्रयोग किया है।

लेखक ने इस उपन्यास में आध्यात्मिक व सांसारिक प्रेम के स्वरूप का मार्मिक निरूपण कर उनकी महिमा अंकित की है। लेखक इसकी विशिष्टता निरूपित करते हुए लिखते हैं—यह समस्त चेतनात्मक जगत् इसी प्रेम का फल है। प्रेम न होता तो संसार भी नहीं होता। जो प्रेम की उपासना नहीं करता, वह मानव जन्म का तिरस्कार करता है। प्रेम की पूजा करना प्राणिमात्र का पवित्र पुण्य कर्म है। प्रेम से पाप का सम्बंध नहीं है। प्रेम में द्वित्व नहीं है। प्रेम के समदृष्टि राज्य में 'निज' और 'पर' का भेद नहीं है। जो प्रेम का उपासक है, वह सच्चा सेवक है, वह परत्व बुद्धि को सर्वथा छोड़कर एकत्व के एक प्राणत्व के आनन्द राज्य में विहार करता हुआ स्वर्ग सुख का परिहास करता हैं"[1] लेकिन प्रेम की ऐसी उदात्त विचारधारा की अभिव्यक्ति कामुक उदयसिंह के द्वारा सुशीला को अनुकूल बनाने के लिए भेजी गई दूती के मुँह असंगत और हास्यास्पद-सी लगती हैं।

जैन-दर्शन की मीमांसा पूरे उपन्यास में यत्र-तत्र सर्वत्र देखने को मिलती है। लेकिन कथा के प्रवाह में इतनी घुल-मिल गई है। कि दार्शनिक चर्चा कहीं किसी प्रकार की रुकावट नहीं डालती। जैन धर्म की उच्चता, महत्त्व, दिव्यता व आवश्यकता की चर्चा सर्वत्र बिखरी पड़ी है। कहीं-कहीं जैन दर्शन के प्रमुख सात तत्त्वों जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा व मोक्ष और कर्मावरण, लोकस्वरूप, द्रव्यस्वरूप व विभावालक्षण आदि की भेदोपभेदों के साथ सूक्ष्म चर्चा बीच-बीच में सामान्य जनता के लिए बोलचाल की रसात्मक भाषा शैली

1. सुशीला, पृ० 130.

में प्रयुक्त करने का प्रयत्न प्रशंसनीय है। शुद्ध कलात्मक औपन्यासिक दृष्टि-कोण से यह वृत्ति उपन्यास के लिए बाधा रूप बन सकती है, लेकिन धर्म के दृष्टिकोण-विशेष से लिखे गए इस उपन्यास में यह विचार गांभीर्य अवरोधक कम बनता है। हाँ, कहीं-कहीं जैन धर्म के पारिभाषिक शब्द समझने में नहीं आने से कठिनाई महसूस अवश्य हो सकती हैं। अत: प्रकशक को स्पष्टता करनी पड़ी हैं–यह उपन्यास कोई सामान्य कथा-कहानी नहीं है, लेकिन एक सामाजिक व धार्मिक सैद्धांतिक ग्रन्थ ही कहानी रूप में है, जों इसके पढ़ने से ही स्पष्ट मालूम हो सकेगा। "अत: धार्मिक चर्चा रसानुभूति व ग्रन्थ की कलात्मकता में यदि कहीं बाधक हुई तो भी क्षम्य है। वैसे आचार-विचारात्मक शिक्षा सम्बंधी विचारधारा की बहुलता कथा की समरसता में विरोध नहीं उत्पन्न करती।

डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री इस उपन्यास की विशेषता के संदर्भ में लिखते हैं–यह उपन्यास एक ओर आदर्श जीवन की झांकी देकर नैतिक उत्थान का मार्ग प्रस्तुत करता है तो दूसरी ओर कुत्सित जीवन का नंगा चित्र खींचकर कुपथगामी होने से रोकने की शिक्षा देता है। सदाचार के प्रति आकर्षण और दुराचार के प्रति गर्हण उत्पन्न करने में यह रचना समर्थ है। कला की दृष्टि से भी उपन्यास सफल है। इसमें भावनाएँ सरस, स्वाभाविक और हृदय पर चोट करने वाली है। कथा का प्रवाह पाठक के उत्साह और अभिलाषा को द्विगुणित करता है समस्त जीवन के व्यापार-शृंखला और चरित्र-निर्माण के अनुकूल है। सब से बड़ी विशेषता इस उपन्यास की यह है कि इसक व्यर्थ के हाव-भावों से नहीं भरा गया है, किन्तु जीवन के अन्तर्बाध्य पक्षों का उद्‌घाटन बड़ी खूबी के किया गया है।[1]

गोपालदास बरैया जी के इस उपन्यास की शैली प्रौढ़ है। कहीं-कहीं तो काव्यात्मक सौन्दर्य झलकता है। अलंकारों, मुहावरों और सूक्तियों के उपयुक्त प्रयोगों से भाषा को जीवंत बनाया गया हैं। भाषा सर्वत्र शुद्ध परिमार्जित है। थोड़ी बहुत संस्कृत निष्ठ शैली व भाषा का रूप दृष्टिगत होता है। विषयानुकूल पात्रानुकूल भाषा का लेखक ने प्रयोग किया है। अभिनयात्मक तथा विश्लेषणात्मक कथोपकथन व चित्रमय वर्णनों से उपन्यास को आकर्षक बनाया गया है।

मुक्ति दूत :

आधुनिक युग को जैन साहित्य के श्रेष्ठ उपन्यासकार श्री वीरेन्द्र जैन का यह अत्यन्त सशक्त, सुन्दर उपन्यास है। इसको सभी दृष्टिकोणों से सफल कहा

1. डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ० 67.

जा सकता है। धार्मिक उद्देश्य के परिनिर्वाह के साथ औपन्यासिक तत्त्वों से पूर्णतः रक्षा हुई है। रमणवृत्ति एवं कुतूहलवृत्ति दोनों की परितृष्टि के लिए घटना चमत्कार और प्रबल भावानुभूतियों का मार्मिक अंकन किया गया है। इसमें वीरेन्द्र जी ने पवनंजय के आत्म विकास तथा अंजना की कष्ट-सहिष्णुता, प्रेम, धैर्य की मर्मान्तक कथा का भाववाही सुरेख अंकन किया हैं। अहंकार के अन्धकारागार से पुरुष को नारी ही अपने प्रेम, एकनिष्ठता, त्याग-बलिदान व वात्सल्य के प्रकाश द्वारा मुक्त करने में समर्थ है, इसकी प्रतीति अंजना-पवनंजय के सशक्त चरित्र-चित्रण-द्वारा स्पष्ट किया है। वीरेन्द्रकुमार जी का आधुनिक मनोवैज्ञानिक शैली में लिखित सुन्दर उपन्यास 'अनुतर योगी' प्रकाशित हुआ है। इसके दो खण्ड 'वैशाली का राजपुत्र' और 'असिधारा पथ का यात्री' प्रकाशित हो चुके हैं। तृतीय खण्ड प्रकाशित होने वाला है। आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य वीरेन्द्र जी के साहित्य से अवश्य गौरवान्वित है।

कथा-वस्तु :

'मुक्ति दूत' का कथानक पौराणिक है। 'पद्मपुराण' में इसकी कथा का उल्लेख प्राप्त होता हैं 'हनूमनचरित्र' में भी इस कथा का वर्णन है। जैन साहित्य में नेमि-राजुल, श्रीपाल-मैना की कथा की तरह अंजना-पवनंजय की कथा अत्यन्त लोकप्रिय हैं। प्रायः सभी युग में अंजना-पवनंजय विषयक साहित्यिक रचनाएँ उपलब्ध होती हैं।

आदित्यपुर के महाराज प्रह्लाद व रानी केतुमती का एक मात्र पुत्र पवनंजय है, जो अपने माता-पिता के साथ कैलाश की यात्रा से लौटते मानसरोवर ठहरे। वहाँ का राजा महेन्द्र अपनी पुत्री अंजना की शादी पहले से ही पवनंजय से निश्चित कर चुके थे। पवनंजय मानसरोवर की अपार जल राशि में क्रीड़ा करते समय पास की श्वेत अट्टालिका से मधुर कोमल स्वरवाली अंजना को देखा तो वह प्रणय उन्माद लेकर वापस आया। उसकी प्रेम वेदना देखकर उसका अंतरंग मिग प्रहस्त विमान द्वारा अंजना के राज-प्रसाद पर ले जाता हैं वहाँ प्रसाद के उद्यान में अंजना अपनी सखियों के साथ विहार कर रही थी। अंजना की अभिन्न सखी वसन्तमाला पवनंजय के रूप, यौवन, गुण की प्रशंसा कर रही थी और अंजना-पवनंजय के गुणगान एवं ध्यान में लीन थी। अंजना ने यह कुछ सुना नहीं था, लेकिन जैसे ही ध्यान भंग हुआ तो हर्ष के मारे उसने सखियों से नृत्य गान करने की आज्ञा दी। पवनंजय ने अंजना की तल्लीनता व नृत्यगान की इच्छा का यह अर्थ लिया कि मेरी निंदा का प्रतिकार नहीं करती और विद्युत प्रभ की प्रशंसा से प्रसन्न होकर नाच-गान करवाती है। उसकी

तल्लीनता पवनंजय के विचार व खुशी उसकी स्मृति के कारण थी, यह बात बेचारा पवनंजय जान नहीं पाता और जिसकी वजह से अंजना की करुण कथा का बीज जन्म लेता है। गुस्से में अपने पड़ाव पर लौट आने के बाद अपमान के प्रतिकार स्वरूप प्रातःकाल ससैन्य प्रस्थान करने को प्रारंभ करता है। पवनंजय की कूच के समाचार से राजा महेन्द्र और प्रह्लाद दोनों व्यग्र और चिंतित होते हैं। राजा प्रह्लाद उसके अभिन्न मित्र प्रहस्त को समझाने-बुझाने के लिए भेजते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप वह वापस आकर शादी तो कर लेता है, लेकिन आदित्यपुर जाकर अंजना का त्यागकर अपने अपमान का बदला लिया। अपने भ्रम से समझ लिए अपमान के इस प्रकार के बदले से अंजना, माता-पिता प्रजा, प्रहस्त, अंजना की अंतरंग सखी वसन्तमाला-जो उसके साथ आई है, सभी दुखी थे, विवश और निरूपाय भी हुए। स्वयं पवनंजय अपने अहंकार के कारण उन्मत्त, उदास रहने लगा। माता-पिता के दूसरे व्याह के सूचना को भी वह इन्कार कर देता है।

उसी समय पाताल द्वीप के अभिमानी राजा वरुण पर हमला करता है। और अपनी सहायता के लिए अपने माण्डलिक राजा प्रह्लाद को सहायतार्थ ससैन्य आने का संदेश भिजवाया। पवनंजय अपनी घुटन भरी मनहूस जिन्दगी व वातावरण से मुक्त होने की इच्छा से पिता के बदले स्वयं जाने का फैंसला करता है और पिता की आज्ञा भी प्राप्त करता है। युद्ध क्षेत्र में जाने से पूर्व वह महल में से विदा होता है, तब प्रवेश द्वार पर पति को विदा करने के लिए अंजना मंगलकलश और आरती लेकर सामने आती है। पवनंजय उसे कुलटा, धूर्त समझकर उसकी अवहेलना कर चला जाता है।

बिदा लेने के बाद रास्ते में मानसरोवर से तट पर सैन्य विश्राम करने रात्रि को ठहरा। उस समय निस्तब्ध वातावरण में चकवे के वियोग में तड़पती चकवी को देखकर उसे एकाएक अंजना की वेदना, दर्शन, आकुलता, विरह-दग्धता, छटपटाहट, कष्ट-सहिष्णुता की याद आने लगी। उसी समय निर्णय कर प्रहस्त के साथ विमान में बैठकर अंजना के महल में आता है। अंजना तो रात दिन पति के नाम की माला जपती रहती है और कर्मों के क्षय के साथ भाग्योदय से अवश्य पति का मिलन होगा, ऐसा विश्वास संजोये रखा हैं। पवनंजय आकर अंजना से क्षमा याचना कर पर प्रेम की भीख माँगता है। अंजना भक्तिभावपूर्वक पति का स्वागत कर क्षोभ मिटा देती है। पूरी रात दोनों आनन्द पूर्वक केलि-क्रीड़ा में बिता देते है। जब पवनंजय जाने लगा तो वसन्तमाला ने भविष्य का विचार कर उससे मुद्रिका और मुहर प्राप्त कर ली।

युद्ध क्षेत्र में पहुँचकर अंजना के प्रेम से प्रफुल्लित और प्रेरित पवनंजय हिंसामय युद्ध रोकने की चेष्टा स्वरूप रावण को समझाया लेकिन अभिमानी रावण मानता नहीं है। इससे निरपराधी वरुण की सहायता कर रावण को परास्त करता है। इस प्रसंग में लेखक ने सुन्दर नवीन उद्भावना की है।

उधर पवनंजय की अनुपस्थिति में अंजना को गर्भवती जानकर उसे कुलटा, कलंकिनी समझकर पवनंजय की माता रानी केतुमती उसे नगर से बाहर निकालकर महेन्द्रपुर की सीमा तक छोड़ आने का हुकुम सारथी को देती है। ससुराल से निकाल दिए जाने पर स्नेहमयी सखी वसन्तमाला ने महेन्द्रपुर जाकर अंजना के लिए आश्रय की प्रार्थना की लेकिन वहाँ भी अंजना के कलंक की बात पहुँच जाने से राजा महेन्द्र आश्रय देने से इनकार करता है। दु:खी विवश, गर्भ भार से शिथिल अंजना वसन्तमाला के साथ वन में प्रस्थान करती हैं। यहीं एक गुफा में अंजना एक तेजस्वी बालक को जन्म देती है। यही तो है पवनंजय को अहंकार की कैद से मुक्त करने वाला 'मुक्ति दूत'। एक दिन बीहड़ जंगल के राजा प्रतिसूर्य-जो अंजना के मामा थे-विमान बिगड़ जाने से नीचे उतर आए और उसी गुफा में गए, जहाँ ये दोनों सखियाँ नन्हें शिशु को संभाल रही थीं। परिचय प्राप्त होने पर राजा प्रतिसूर्य उन सबको अपने घर ले गया। रास्ते में विमान में से बालक गिर गया, लेकिन बालक को कुछ न हुआ और शिलाखण्ड चूर-चूर हो गया। विमान को नीचे उतार कर बच्चे को उठा लिया और हनूरूह नगरी पहुँचकर बालक का नाम हनूमन् रखा गया।

विजयी होकर पवनंजय जब आदित्यपुर पहुँचता है तो अंजना के विषय में जानकर अत्यन्त दुखी होकर क्रोध और वेदना की स्थिति में उसे खोजने के लिए निकल पड़ता है। प्रथम अपनी ससुराल महेन्द्रपुर जाता है, लेकिन वहाँ से निराशा प्राप्त हुई तो जंगल की ओर निकल पड़ा। अंजना ने भी पवनंजय के समाचार सुने तो वह चिंतित हुई। प्रतिसूर्य अपने बहनोई राजा महेन्द्र के पास अंजना का समाचार ले जाता है और वहाँ राजा प्रह्लाद को भी देखता है। सभी पवनंजय की खोज के लिए निकल पड़ते हैं। अन्त में सभी पवनंजय को खोजने में सफल होते हैं, अंजना पवनंजय का सुखद मिलन होता है। अंजना की साधना तपस्या फली और पवनंजय को नन्हा-सा बालक मिला 'मुक्ति दूत'-सा।

यही 'मुक्तिदूत' का संक्षिप्त कथानक है, जिसको कुशल लेखक ने रोमांचक घटनाओं, प्रकृति के मृदु-भयानक वर्णनों, मानसिक भावों की क्रिया-प्रतिक्रियाओं और विशद् चरित्रांकन के द्वारा अत्यन्त जिज्ञासावर्द्धक और आकर्षक बनाया है। लेखक ने विशेष मनोवैज्ञानिक व जीवंत हो सका है।

निर्म्नलिखित परिवर्तन भी वीरेन्द्र जी ने अपनी उद्‌भावक कल्पना-शक्ति से किए हैं–

1. 'पद्मपुराण' में बतलाया गया है कि मित्रकेशी पवनंजय की निंदा करती हैं और विद्युतप्रभ की प्रशंसा करती है, तो पवनंजय मित्रकेशी और अंजना दोनों को जला देना चाहता हैं, लेकिन प्रहस्त के कहने से रुक जाता हैं 'मुक्ति दूत' में पवनंजय को इतना क्रोधी न बताकर नायक के चरित्र को महत्ता दी गई है। हाँ, पवनंजय का अंहभाव अपनी निंदा सुनकर जागृत अवश्य होता है और यही तत्त्व कथा प्रवाह को आगे बड़ाने वाला प्रेरक बल सिद्ध होता है।
2. पुराण का पवनंजय मान-सरोवर से प्रस्थान करने पुनः पिता की आज्ञा से लौटा लेकिन वीरेन्द्र जी ने मित्र प्रहस्त द्वारा लौटवाकर अधिक मनोवैज्ञानिक बनाया है, क्योंकि ब्याह के लिए पिता की अपेक्षा मित्र अधिक समझा-बुझा सकता है, विशेषकर इन्कार के लिए परिस्थिति और कारण से मित्र अवगत है, जब कि पिता अनजान हैं उस स्थिति में।
3. वरुण और रावण के युद्ध में प्रसंगकार ने वरुण को दोषी ठहराकर पवनंजय रावण की सहायता की है, जबकि इसमें अभिमानी राजा रावण को दोषी ठहराकर वरुण की सहायता करके रावण को परास्त होते हुए दिखलाया गया है।
4. केतुमती द्वारा निर्वासित होकर महेन्द्रपुर पहुँच कर वसन्तमाला और अंजना दोनों का राजा महेन्द्र के पास जाने का उल्लेख पुराण में किया गया है, परन्तु वीरेन्द्र जी ने केवल वसन्तमाला के जाने का उल्लेख कर अंजना के गौरव की रक्षा की है। अंजना की खोज में व्यस्त पवनंजय और प्रहस्त के वर्णन में भी दोनों के महेन्द्रपुर जाने का उल्लेख पुराणकार ने किया है, पर 'मुक्तिदूत' में केवल प्रहस्त के जाने का उल्लेख है।
5. पुराण में वर्णन प्राप्त है कि कुमार पवनंजय जब अंजना की खोज में गए तब उनके साथ उनका प्रिय साथी अम्बरगोचर भी रहता है, पर 'मुक्तिदूत' में ऐसा वर्णन लेखक ने नहीं किया है।
6. इस प्रकार कथानक में लेखक ने पौराणिकता की सीमा में रहकर अपनी कल्पना को मुक्त रखा है, जिससे कथा वस्तु में स्वाभाविकता व सुन्दरता आ पाई है, लेकिन कथानक का अतिशय विस्तार सहज खटकने वाला लगता है, क्योंकि अनावश्यक विस्तार से कथानक में शिथिलता आ जाती है और पाठक कहीं-कहीं ऊब-सा जाता है। प्रारंभ में प्रासाद वर्णन

एवं अंजना की साज-सज्जा के वर्णन में लेखक ने रीतिकालीन शैली का अनुसरण किया है यदि यह वर्णन संक्षिप्त होता तो उपन्यास के गठन में और निखार आ पाता। इन गिने-चुने प्रसंगों के अतिरिक्त अन्य वर्णन संक्षिप्त, रमणीय और प्रभावोत्पादक है। इसी से पूरे उपन्यास में मधुरता, कोमलता और नवीनता आ पाई है। कथा वस्तु में सुन्दर रसप्रद वर्णन हमें संसार की उलझनों से दूर हटाकर मधुर कोमल कल्पना की दुनिया में ले जाता है।

इस उपन्यास के लेखक ने स्वयं 'रोमांटिक उपन्यास' की संज्ञा से अभिहित किया है, जो सर्वथा समुचित है। क्योंकि पवनकुमार और अंजना की पौराणिक प्रेम-विरह-कथा को उन्होंने आधुनिक युग के परिवेश में उत्कृष्ट मनोवैज्ञानिक कला से सजाया-संवारा है। अंजना-पवन की पौराणिक प्रेमकथा की आधुनिक भूमिका पर ही रचना होने से आख्यान, कथा या उपन्यास शब्दों की अपेक्षा लेखक को अंग्रेजी साहित्य का 'रोमेण्टिक' शब्द विशेष प्रतीति कर लगा है। पौराणिक कथा होने पर भी लेखक ने पौराणिक परिवेश की एक सीमा बांध ली है और उसके बाद वातावरण की सजीवता चारों ओर अक्षुण्ण रखने के लिए कल्पना की डोर छोड़ दी है। कथा एक निःसीम अनंत आकाश की तरह 'मुक्तिदूत' में फैल गई है, जिनमें पात्रों और वर्णनों को तैरने का पूरा मौका मिल गया है। विस्तार मिलने से कथावस्तु में सजीवता, कल्पना-सौंदर्य और गहराई भी आ सकी हैं। (वर्णन भी ऐसे अनुपम सुचारु, सजीव कि हजारीप्रसाद द्विवेदी जी के प्रसिद्ध उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' के वर्णनों का सौंदर्य बरबस याद आ जाता है। वैसे दोनों की विषयवस्तु में काफी भिन्नता है, लेकिन प्रभावोत्पादकता में समानता है।) पौराणिक कथा होने की वजह से यदि भौगोलिक ऐतिहासिक सत्य की उपेक्षा हो गई हो तो क्षम्य होनी चाहिए, क्योंकि 'मुक्ति दूत' उपन्यास है, भूगोल या इतिहास का ग्रन्थ नहीं है।

'मुक्ति दूत' की कथा वैसे अन्य पौराणिक कथाओं की तरह सौन्दर्य-प्रेम, परिणय-कलह, वियोग, संयोग की घटनाओं और वर्णनों से ओत-प्रोत है, जिससे पूर्णतः प्रणय कथा का स्वरूप सामने आता हैं पर जैसा कि 'ज्ञानपीठ' के विद्वान मंत्री श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन ने इस उपन्यास के 'आमुख' में उचित ही स्पष्ट कर दिया है कि-'मुक्तिदूत' की मोहक कथा, सरस रचना, अनुपम शब्द-सौंदर्य और कवित्व से परे जाने लायक कुछ और ही हैं, और वह जो पुस्तक की इस प्रत्येक विशेषता में व्याप्त होकर भी माला के अंतिम मनकों की तरह सर्वोपरी हृदय से, आँख से, माथे से लगाने लायक है। पवनंजय के अहम्,

आत्म विकास एवं आत्म विजय की क्रमशः कथा है। पुरुष पवनंजय का अहम् नारी अंजना के त्याग, बलिदान और मूक आत्म समर्पण के द्वारा पिघल जाता हैं। अंजना अपने त्याग से ऊँचे ही ऊँचे उठती जा रही है, जबकि पवनंजय अहंकार के बोझ से नीचे ही नीचे गिरता जा रहा है। अंजना के समर्पण ने पतित पवनंजय का हाथ थामकर ऊँचा उठा दिया। महासती अंजना का पवित्र प्रेम, संपूर्ण विश्वास अंत तक पुरुष के अहंकार को तोड़ता हुआ उसे मार्गदर्शन भी देता रहा है। अंजना का चरित्र अत्यन्त सशक्त एवं प्रातिभ है। नारी के विषय में इतनी ऊँची से ऊँची कल्पना ही कहीं अर्न्यत्र मिले। 'मुक्तिदूत' की कथावस्तु जितनी तल पर है, उतनी ही सिर्फ नहीं है। उसके भीतर एक प्रतीक कथा चल रही है, जिसे हम ब्रह्म और माया, प्रकृति और पुरुष की द्वन्द्व लीला कह सकते हैं। अनेक अन्तर्द्वन्द्व, मोह-प्रेम, विरह-मिलन, रूप-सौंदर्य, दैव-पुरुषार्थ, त्याग-स्वीकार, दैहिक कोमलता, आत्मिक मार्दव, ब्रह्मचर्य, निखिल रमण और इनके आध्यात्मिक अर्ध कथा के संघटन और गुम्फन में सहज ही प्रकाशित हुए हैं। पवनंजय इस बात का प्रतीक है कि वह पदार्थ को बाहर से सीधे पकड़कर उस पर विजय पाना चाहता है और उसी में उसका पराजय है, एकांगता है। जबकि अंजना का पात्र भावना का हृदयवाद का प्रतीक हैं, जो केवल पुरुष को ही नहीं, समस्त विश्व को शान्ति दे सकता है।"[1] वैसे 'मुक्तिदूत' की कथा में रोमान्स के सब अंग होते हुए भी सर्वत्र करुण कथा ही दिखाई पड़ती है। प्रत्येक पात्र व्यथा-पीड़ा का बोझ लिए चल रहा है। कथा की सार्थकता अंतिम अध्याय की अंतिम पंक्तियों में पूर्ण झलकती है, जहाँ-"प्रकृति पुरुष में लीन हो गई और पुरुष प्रकृति में व्यक्त हो उठा।" कथा में प्रकृति वर्णन के सौंदर्य से गद्य-काव्य का आनन्द, भावनुभूति एवं आह्लादता का अनुभव होता है।

पात्र :

इस उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं पवनंजय, अंजना, वसन्तमाला, प्रहस्त, प्रह्लाद, केतुमती, महेन्द्र और प्रतिसूर्य आदि। इन सबके चरित्र चित्रण में लेखक का रचना कौशल अत्यन्त चमक उठा है।

नायक पवनंजय का चित्रण भाव से भरे हुए पुरुष के रूप में किया गया है, जो अपनी विवशता, एकाकीपन व नारी की कमी को जानता तो है, लेकिन अभिमान-दर्प के कारण कुछ स्पष्टता न कर मन ही मन जलता है, दु:खी होता हैं और फलस्वरूप उन्मत्त-सा घूमता रहता है। वह अंजना के अनुपम लावण्य

1. 'मुक्तिदूत' लक्ष्मीचन्द्र जैन लिखित-'आमुख' से पृ० 4.

से वशीभूत होकर उससे उत्कट प्रेम करने लगता है, लेकिन वह विद्युतप्रभ को प्रेम करती है, ऐसी भ्रमात्मक मान्यता के कारण उसके अहं को ठेस पहुँचती है। अतएव, वह तब तक घुलता रहता है, जब तक मानवीय भावों ने उसका अहम न तोड़ दिया। अहम के बंधन टूटते ही मानवता, प्यार, करुणा व सहानुभूति के गुणों से उसका व्यक्तित्त्व चमक उठा। जब तक दिप्तका रूप धारण करता रहा, पद-पद पर व्यथा का अनुभव करता रहा। अपने अहंभाव को आच्छादित करने के लिए दर्शन की व्याख्या, विश्वविजय की इच्छा तथा मुक्ति की कामना स्व-भावों की अनुकूलता के मुताबिक करता है। जब वह नारी की महत्ता, त्याग, सहिष्णुता समझने में असमर्थ रहता है; तब तक वह अपूर्ण रहता है, लेकिन जब उसके चरित्र में अहं का विनाश और मानवता के विकास का प्रारंभ होता है, वह नारी के वास्तविक रूप से परिचित हो जाता है। साथ ही साथ वह पूर्ण वीर भी है। रावण-वरुण के युद्ध प्रसंग में उसकी वीरता साकार हो जाती है। अंजना का पारस-स्पर्श होते ही वह आदर्श पति, आदर्श पुत्र व मित्र बन जाता है। "पवनंजय को लेखक ने हृदय से भावुक, मस्तिष्क से विचारक, स्वभाव से हठ और शरीर से योद्धा चित्रित किया है।[1]"

अंजना इस उपन्यास का प्रधान केन्द्र बिन्दु है। इसका चित्रण लेखक ने अत्यन्त मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है। यह पातिव्रत का सहज सरल आदर्श-अस्त्र लेकर गौरव से हमारे सामने उपस्थित होती है। वह मूक त्याग की प्रतिभा-सी अचल है। अपने आप में गड़ी रहती है या अपनी ही लघुता देखती हुई पवनंजय को दोषी नहीं ठहराती। अपने भाग्य एवं कर्मों को ही दु:ख का कारण समझकर पुन: मिलन की अडिग आस्था उसके भीतर छिपी हुई है। इसी श्रद्धा-आशा के बल पर ही वह दु:खों को शान्ति से झेल रही है। परित्यक्ता होने का शोक अवश्य है लेकिन धैर्य की अजस्र धारा अनवरत रूप से प्रवाहित होती रहती है। बाईस वर्षों तक अपने नियमों को दृढ़ता से पालती हुई, तिलतिल जलती हुई अंजना जब पवनंजय उसके महल में पधारता है, तब शिकायत किए बिना पूर्ण क्षमादान देती हुई हार्दिक अभिवादन करती है और अपना संपूर्ण अर्पण कर देती है जब पवनंजय कहता है-रानी! मेरे निर्वाण का पथ प्रकाशित करो। तब वह प्रत्युत्तर में कहती है-मुक्ति की राह मैं क्या जानूँ, मैं तो नारी हूँ और सदा बंधन देती आई हूँ।" यहाँ नारी हृदय की महानता का परिचय लेखक ने अपूर्व कौशल के साथ दिया है। एकाध जगह पर अंजना के चरित्र में अस्वाभाविकता आ गई है। गर्भ भार से अंजना किशोरी बालिका के समान

---

1. डा॰ नेमिचन्द्र शास्त्री : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ॰ 72.

उछलती-कूदती है, वह नितान्त अस्वाभाविक लगता है। हाँ, उसका असीम धैर्य, संतोष, पातिव्रत, शालीनता, सहिष्णुता आदि गुण नारी के लिए अवश्य अनुकरणीय हैं।

मित्र प्रहस्त का चरित्र भी काफी महत्त्वपूर्ण है। लेखक ने इस पात्र को गौरवपूर्ण चित्रित किया है। पवनंजय का अभिन्न मित्र प्रहस्त वास्तविकता की भूमि पर खड़ा है, जो पवनंजय को एक वक्त पर मार्के की सलाह देता रहता है। वह उसके भीतर छिपे हुए अहंकार को ताड़कर इशारा भी कर देता है। सबके प्रति सदैव सहानुभूति रखता हुआ वह पवनंजय को प्रेम भी करता है, उसका सच्चा सलाहकार है, मित्र है, लेकिन पवनंजय कभी-कभी उसकी अवज्ञा-सा कर देता है। लेकिन हृदय प्रहस्त कब मित्र-फर्ज चूकने वाला है? जब पवनंजय युवराज्ञी अंजना का अकारण परित्याग केवल अपनी अहंतुष्टि के लिए करता हैं तो सारे नगर में क्षुब्धता व उदासी फैल जाती हैं। कुमार को कुछ कहने की किसी में हिम्मत नहीं है, तब प्रहस्त उससे भेंट करता है। बातचीत के दौरान उसने पवनंजय को सावधान भी कर दिया कि-सबको त्यागकर जो अपने 'मैं' को प्रस्थापित करने में लगा है, वह बीतरागी नहीं, वह सबसे भोगी और रागी है। वह ममता का सबसे बड़ा अपराधी है। अपने 'मैं' को जीत लो और सारी दुनिया विजीत होकर तुम्हारे चरणों में आ पड़ेगी। मुक्ति विमुखता नहीं है, पवन! वह उन्मुक्ता है।

अंजना की सखी वसन्तमाला का चरित्र अत्यन्त स्वाभाविक हो पाया है। अंजना की सखी के अतिरिक्त वह उसकी बहन, सेविका, माँ सर्वस्व है। उसके सुख-दु:ख की सच्ची साथी है। दुनियादारी की समझ उसके भीतर अधिक होने से हर संकट में वह अंजना की रक्षक बन उसकी मर्मान्तक वेदना कम करने की चेष्टा निरन्तर करती रहती है। अंजना के सुख-दु:ख और इच्छा आकांक्षा के आगे सखी की भलाई के लिए न्यौछावर कर दिया है। उसका त्याग अद्वितीय है। अंजना के साथ वह छाया की तरह रह कर उसके परितापों को हल्का करने की सदैव चेष्टा करती रहती है।

प्रधान पात्रों के अतिरिक्त राजा महेन्द्र, प्रह्लाद, रानी केतुमती आदि गौण पात्रों का चरित्र-चित्रण भी पूर्ण सफलता के साथ किया है। रानी केतुमती का बिल्कुल स्वाभाविक सास के रूप में चित्रण किया गया है। हनूसह के राजा प्रतिसूर्य का भी संक्षिप्त चित्रण आकर्षक बन पड़ा है।

कथोपकथन और शैली :

'मुक्तिदूत' उपन्यास का कथोपकथन की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्व है।

कथोपकथन के द्वारा कथा की धारा क्षिप्र गति से आगे बड़ती है। लेखक ने संक्षिप्त और लंबे दोनों प्रकार के कथोपकथनों का प्रयोग किया है। प्रारंभ में पवनंजय और प्रहस्त के लम्बे कथोपकथन हैं, लेकिन आगे चलकर संवादों में संक्षिप्तता का पूरा ध्यान रखा गया है।

कथोपकथन के द्वारा लेखक ने दूसरा भी लाक्षणिक कार्य किया है, वह है चरित्रों की विशेषता पर प्रकाश डालने का। पवनंजय और प्रहस्त के संवाद, अंजना-वसन्तमाला के वार्तालाप से हम उनकी विशेषता जान सकते हैं। पवनंजय के प्रति प्रहस्त का निम्नलिखित उद्‌बोधन पवनंजय की स्वभावगत विशेषता व्यक्त करता है–

'तो जाओ पवनंजय, तुम्हारा मार्ग मेरी बुद्धि की पहुँच के बाहर है। पर एक बात मेरी भी याद रखना। तुम स्त्री से भागकर जा रहे हो। तुम अपने ही आपसे पराभूत होकर आत्मप्रतारण कर रहे हो। घायल के प्रलाप से अधिक तुम्हारे इस दर्शन का कोई मूल्य नहीं। यह दुर्बल की आत्म-वंचना है, विजेता का मुक्ति-मार्ग नहीं है।'

कथोपकथन की तरह शैली भी दो प्रकार की प्रयुक्त की है–सरल और बोझिल। अंजना-पवनंजय के मिलन पूर्व की शैली अत्यन्त भारी हैं। लम्बे-लम्बे कथन, विस्तृत वर्णनों की भरमार, अत्यधिक संस्कृत-निष्ठ-भाषा–जो शब्दाडंबर युक्त प्रतीत होती है–से कथानक गद्य-काव्य-सा दुष्कर भी हो जाता है, जिससे पाठक भारीपन महसूस करता है, लेकिन मिलन के बाद की शैली सरल व प्रवाह युक्त है। भावों की अभिव्यक्ति स्पष्ट और आकर्षक है। संवाद भी छोटे-छोटे व प्रासादिक हैं। संस्कृत के शब्दों के साथ प्रचलित विदेशी शब्दों के व्यवहार से भाषा में प्रवाह, प्रभाव व रोचकता पैदा होती है। 'मुक्तिदूत' की भाषा प्रसाद की भाषा के समान सरस, प्रांजल और प्रवाहयुक्त है। हिन्दी उपन्यासों में प्रसाद के पश्चात् इस प्रकार की भाषा और शैली कम उपन्यासों में मिलेगी। वस्तुतः वीरेन्द्र जी का 'मुक्तिदूत' भाषा सौष्ठव के क्षेत्र में एक नमूना है।[1] उनके बाद के जैन उपन्यासों की भाषा भी ऐसी अद्‌भुत, रोमांचक और प्रभावोत्पादक है। उपन्यासों को एक बार पढ़ना शुरू करने के बाद छोड़ने का दिल नहीं होता।

उद्देश्य :

'मुक्तिदूत' उपन्यास हिन्दी-जैन साहित्य की सर्वोत्कृष्ट रचना कही जायेगी, जिसमें जीवन की मानवीय, मनोवैज्ञानिक, व आध्यात्मिक व्याख्या मिल

1. डा॰ नेमिचन्द्र शास्त्री : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ॰ 75.

सकती है। श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन ने प्रस्तावना में इसके उद्देश्य पर विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि-"आज की विकल मानवता के लिए 'मुक्तिदूत' स्वयं 'मुक्तिदूत' है। इसके पात्रों को प्रतीक रूप में रखा गया है। अंजना प्रकृति की प्रतीक है, पवनंजय पुरुष का और उसका अंहभाव माया का और हनूमन ब्रह्म का है। आज का मनुष्य अपने अहं के कारण स्वयं को बुद्धिशाली और शक्तिमान समझ विज्ञान की उत्पत्ति द्वारा प्रकृति पर विजय मनाना चाहता है। ऐसे नाकाम प्रयत्नों में वह उन्मत्त-सा घूमता-फिरता रहता है, पर उसे विजय नहीं हासिल होती क्योंकि प्रकृति दुर्जेय है। तभी उसे शक्ति-सुख मिल पाता है, जब वह सुखों की अच्छी कल्पना का मोह त्यागकर प्रकृति की महत्ता स्वीकार कर उसकी शरण में अहंभाव विसर्जित कर देता है, तभी वह महान बन सकता हैं, सच्चे सुख का भागी बन सकता है। प्रकृति पुरुष के क्षुब्ध विकल मन से किए जाते भौतिक कार्य-कलापों से शोकाकुल है तथा पुरुष की अल्प शक्ति का परिहास करती हुई कहती है—पुरुष (मनुष्य) सदा नारी (प्रकृति) के निकट बालक है। भटका हुआ बालक अवश्य एक दिन लौट आयेगा।" सचमुच ऐसा ही होता है कि मनुष्य जब भौतिक सुखों की प्राप्ति के संघर्षों से थक जाता है, अकुला जाता है, तब प्रकृति की महत्ता से परिचित होकर उसकी आनन्ददायक गोद में जाकर संतृप्ति प्राप्त करता है। सौंदर्य और मृदुता की अक्षयनिधि—प्रकृति उसे अपने सुकोमल अंक में अमृतमयी शान्ति का आनन्द देती है, तब मानव के समक्ष मानवता का सही रूप प्रकट होता है। मानव को प्रकृति द्वारा प्रेरित होकर अहिंसक बनने की आवश्यकता पर लेखक ने जोर देते हुए कहा हैं कि अहिंसा के द्वारा युद्ध को रोका जा सकता है। मनुष्य अहिंसा को स्वीकार कर जब पुनः प्रकृति के समीप जाता है तो उसे हनूमन रूपी ब्रह्म (आत्म शुद्धि) की प्राप्ति होती है। हर्षावेश में 'प्रकृति पुरुष में लीन हो गई और पुरुष प्रकृति में व्यक्त हो उठा। जिससे प्रकृति की सहज सहायता से पुरुष का ब्रह्म के साथ सदा सम्बन्ध बना रहे। पुरुष व प्रकृति के मिलन की शीतल अमीधारा से चारों ओर शान्ति-सुख के शतदल खिल उठते हैं। आज की व्यस्त मानवता रूपी दानवता के लिए यही मूल मंत्र है कि वह विज्ञान के विनाशकारी आविष्कारों का अंचल छोड़कर सृजनमयी चिदानन्दमयी प्रकृति को पहचानेगा, तभी उसे परम शान्ति की प्राप्ति होगी और विश्व में मानवता की चिरवृद्धि होगी। प्रसाद का 'कामायनी' महाकाव्य भी क्या हमें यही संदेश नहीं देता? 'कामायनी' की अनुपम वात्सल्यमयी त्यागी श्रद्धा मनु की ईष्या, अहंजन्य विकार, अन्य वृत्ति-प्रवृत्तियों का प्रेम और सहृदयता से परिष्कार कर अनन्त

आनंदमय मंगलकारी शिवलोक में ले चलती है। प्रकृति की अँगुली पकड़कर ही पुरुष शिवधाम में शान्ति की चरम आनन्दानुभूति कर सकता हैं।

जैन धर्म मान्यतानुसार मुनष्य को मान, राग, द्वेष और अहंकार का त्याग कर अपनत्व की सीमा से दूर जाकर सबको समानता व समभाव से देखने का दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। 'मुक्तिदूत' के कथाकार श्री वीरेन्द्र जी ने रोचक कथावस्तु के साथ अंजना के विचारों से यही व्यक्त किया है, लेकिन किंचित मात्र भी ख्याल नहीं जाता कि लेखक उपदेश देते हैं। महान विचारधारा का कैसा रसप्रद समन्वय कथा प्रवाह में कुशलता से लेखक ने कर दिया है! अंजना के मुख से उसकी चारित्रिक उदात्ता के अनुरूप ही यह विचार धारा स्फुट होती है कि—अपने को बहुत मत मानो, क्योंकि वही सारे रोगों की जड़ है। मानना ही तो मान है। मान सीमा है। आत्मा तो असीम है और सर्व व्यापी है। निखिल लोकालोक उसमें समाया है। वस्तु मात्र तुममें है, तुम्हारे ज्ञान में है। बाहर से कुछ पाना नहीं है। बाहर से पाने और अपनाने की कोशिश लोभ है, वहाँ जो अपना है, उसी को खो देना है। उसी को पर बना देना है, मान ने हमें छोटा कर दिया है, जानने-देखने की शक्तियों को मंद कर दिया है। हंम अपने में ही घिरे रहते हैं। इसी से चोट लगती है, दुःख होता है। इसी से राग है, द्वेष है, रगड़ है। सबको अपने में पाओ, भीतर के अनुभव से पाओ। बाहर से पाने की कोशिश माया है, झूठ है, वासना हैं। उसी को प्रभु ने मिथ्यात्त्व कहा हैं। स्वर्ग, नरक, मोक्ष सब तुम्हीं में है, उनका होना तुम्हारे ज्ञान पर कायम है। कहा न कि तुम्हारा जीव सत्ता मात्र का प्रमाण है, वह सिमट कर क्षुद्र हो गया है, तुम्हारे 'मैं' के कारण। 'मैं' को मिटाकर 'सब' बन जाओ। जानने-देखने की तुम्हारी सबसे बड़ी शक्ति का परिचय इसमें है।" कितनी उदात्त विचारधारा के साथ स्त्री-सहज कोमलता व नम्रता दीप्त हो उठती है, अंजना की अनन्त श्रद्धा भक्तियुक्त गंभीर वाणी में। सचमुच ही 'मुक्तिदूत' उपन्यास औपन्यासिक कला-कौशल की कसौटी पर पूर्णतः खरा उतरता ही है, लेकिन जैन-दर्शन की विचारधारा की दृष्टि से भी इसमें मानवता, प्रेम, अहिंसा, करुणा व सत्कर्मों के आदर्शों को वाणी प्रदान करने में सफल रहा है। लेखक ने इसमें मानवता का आदर्श त्याग, प्रेम, संयम और अहिंसा के समन्वय में बताया है। भाव, भाषा, शैली, उद्देश्य सभी दृष्टिकोणों से वीरेन्द्र जी का यह आधुनिक युगीन उपन्यास उत्कृष्ट एवं समर्थ है।

चतुर बहू :

1916 ई० में दीपचन्द जी ने इस छोटे से सामाजिक शिक्षा प्रद उपन्यास

की रचना की। उपन्यास में पारिवारिक कथावस्तु के साथ-साथ जैन धर्म के तत्त्वों की चर्चा-महत्ता आदि को लेखक ने गूंथ लिया है। जैन धर्म की शिक्षा और नीति-चर्चा का समायोजन भी लेखक बीच-बीच में करते रहे हैं। इसी कारण छोटी-सी पुस्तिका होने पर भी आंशिक महत्त्व रहता है। भाषा प्रारंभिक काल की खड़ी बोली होने से संयुक्ताक्षरों की बहुलता व अँग्रेजी शब्दों का प्रयोग देख सकते हैं, जो भारतेन्दु कालीन उपन्यासों में प्रायः देखा जाता है। राजस्थान की बोलियों का प्रभाव भी कहीं-कहीं दीखता है। शैली में आलंकारिता या चमत्कार, वाक्-विद्ग्धता न रहकर सरलता ही रही है, जो ऐसे धार्मिक उपन्यासों के लिए विशेष अनुकूल रहती है। इसकी पारिवारिक कथावस्तु में रोचकता का काफी निर्वाह किया गया है और किस युक्ति से चतुर बहू अपने परिवार को धार्मिक शिक्षा के संस्कार देकर परिवार में सम-सलाह का वातावरण पैदा करती है।

श्री नाथूराम 'प्रेमी' ने बंगला के कतिपय उपन्यासों का हिन्दी में सफल अनुवाद किया है। इसी प्रकार बाबू पन्नालाल शर्मा ने भी प्राचीन कथाओं का हिन्दी में सुन्दर अनुवाद किया है। मुनि विद्याविजय ने 'रानीसुलसा'[1] नामक एक उपन्यास लिखा है, जिसमें सुलसा के उदात्त चरित्र का विश्लेषण कर पाठकों के समक्ष एक नवीन आदर्श लेखक ने प्रस्तुत किया है। भाषा और कला की दृष्टि से लेखक को पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई है। मध्यम कोटि का आदर्शात्मक धार्मिक उपन्यास है।

कथा-साहित्य :

उपन्यास साहित्य एवं कथा साहित्य के अंतर का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। वैसे हिन्दी साहित्य में कथा साहित्य के अंतर्गत ही उपन्यास आता है, लेकिन जैन साहित्य पौराणिक, ऐतिहासिक, लौकिक कथाओं पर आधारित होता है, जबकि उपन्यास साहित्य धार्मिक या पौराणिक होने के साथ काल्पनिक भी हो सकता है। किसी प्रकार के ऐतिहासिक या पौराणिक सत्यता का आधार कथा-साहित्य के लिए आवश्यक माना गया है। प्रायः सभी कथाएँ जैन धर्म के प्राचीन ग्रंथों जैसे कि आचाजंग सूत्र, अध्यवनांग, पद्मचरित्र, सुपार्श्च चरित्र, अन्तकृनांग, ज्ञातुधर्म कथाएँ आदि-की कथाओं से कथानक (आधार) ग्रहण कर आधुनिक भाषा शैली व वातावरण के साथ रची गई है। प्राचीन ग्रंथों में कथाओं का विशाल भण्डार भरा पड़ा है। बहुत से कथा ग्रंथों का भावानुवाद किया गया है। बहुत सी कथाओं में केवल कथानक का अंशमात्र लेकर नूतन

1. डा० नेमिचन्द्र शास्त्री : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ० 76.

शैली में रचनाएँ की गई है। फिर भी बहुत से ग्रंथ अभी भी कथा-साहित्य के लिए बाकी पड़े हैं। कथा-चरित्रों का अनुवाद भी किया गया है। इन कथा साहित्य में भिन्न-भिन्न कथावस्तु वाली कहानियाँ लिखी गई हैं। उनमें कला के तत्त्वों का भी अच्छा प्रमाण देखा जाता है इनमें रोचकता के साथ-साथ पात्र, प्रसंग व वातावरण का भी काफी ध्यान रखा गया है।

कथा-साहित्य का महत्त्व प्राचीनकाल में अक्षुण्ण रहा है, क्योंकि संपूर्ण मानव जाति इसमें अपने भावों व चरित्रों का विश्लेषण या तादात्म्य स्थापित कर आसानी से रस प्राप्ति कर सकता है। जैन साहित्य में जीवन के आदर्श को व्यक्त करने वाली दो हजार वर्ष प्राचीन कथाओं का विपुल भण्डार भरा है, जिनका हिन्दी जैन साहित्य में काफी उपयोग किया गया है इन कथाओं से मानव को आनन्द के साथ-साथ जीवन--विकास की प्रेरणा और आध्यात्मिक ज्ञान भी प्राप्त होता है, साथ ही अधनीति, राजनीति, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियों का मार्गदर्शन भी मिलता है, जिनका वर्णन जैन कथा साहित्य में गहराई से किया गया है। "हिन्दी कथाओं की शैली बड़ी ही प्रांजल सुबोध और मुहावरेदार है, ललित लोकोक्तियाँ, दिव्य-दृष्टान्त और सरस मुहावरों का प्रयोग किसी भी पाठक को अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए पर्याप्त है।[1] जैन कथा-साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता यह रहती है कि इसमें प्रथम रोचक कथा वस्तु रहती है, बाद में धार्मिक या नैतिक ज्ञान, जिससे पाठक को प्रथम रसास्वादन मिलने के पश्चात ज्ञान प्रप्ति होती है। इनमें समाज-विकास व लोक-कल्याण की प्रवृत्ति की गहरी छाप भी रहती है। वस्तुतः जैन कथाएँ नीति बोधक मर्मस्पर्शी और आज के युग के लिए नितांत उपयोगी है इनमें व्यापक लोकानुरंजन और लोक मंगल की क्षमता है।[2] कर्म के सिद्धान्त की अटूट आस्था व्यक्त करने वाली कहानियाँ जैन साहित्य में जितनी उपलब्ध होती है, उतनी अन्यत्र नहीं। डॉ॰ सत्यकेतु का मानना है कि-'जैन साहित्य में बौद्धों से भी अधिक कहानियों का भण्डार मिलता है। प्रसिद्ध योरोपीय विद्वान सी॰ एच॰ होन ने कहा है कि-जैनों के कथा कोष में संग्रहीत कथाएँ और योरोपीय कथाओं में निकट साम्य है। श्री हान, हर्टल ने कोबी, ल्यूमेन, आदि यूरोपीय विद्वानों ने जैन कथा-साहित्य के क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण कार्य किया। जैन कथा-साहित्य में धर्म को प्रधानता दी गई है। महापुरुषों की कथा के द्वारा जनता में-नैतिक गुणों का विकास नजर में रखा जाता था। धर्म के सुफल को बताना इस कथाओं

1. डा॰ नेमिचन्द्र शास्त्री : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ॰ 77.
2. वही, पृ॰ 54.

का उद्देश्य होता है। जीवन की विविध समस्याओं को सुलझाने में धर्म के उपयोग की चर्चा, कर्मों का प्रभाव, और परिणाम जन्म-जन्मान्तर में भुगतने की प्रक्रिया विस्तार से और आकर्षक शैली में पाई जाती है। इस काल की सामाजिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक जीवन की झांकी भी इन कथाओं में मिलती है। कथाएँ विस्तार में दी जाती हैं, लेकिन उसका आकर्षण अंत तक बना रहे, इस प्रकार की रचना की जाती है। कथानक में कहीं नीरसता नहीं आने पाती। कथा के बीच-बीच में संकेतों के द्वारा कथा का उद्देश्य स्पष्ट किया जाता है। स्व० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है कि—विक्रम संवत के प्रारंभ से 12वीं शती तक जैन साहित्य में कथा-ग्रंथों की अविछिन्न धारा पाई जाती है। यह कथा साहित्य इतना विशाल है कि उनके समुचित संपादन और प्रकाशन के लिए 50 वर्ष से कम समय की अपेक्षा नहीं होगी।[1] जैन-कथाओं में वर्तमान पर अत्यन्त जोर दिया जाता है। भूतकाल के कर्मानुसार वर्तमान बनता है और वर्तमान के कर्मों के आधार पर भविष्य की नींव रहती है। इन कहानियों में मनुष्य के वर्तमान जीवन की यात्राओं का ही वर्णन नहीं रहता, मनुष्य की आत्मा की जीवन कथा का भी वर्णन मिलता है।[2] जैन कथा साहित्य के सम्बंध में बताया गया है कि-सभी जैन कहानियाँ धर्मोपदेश का अंग माननी चाहिए। जैन धर्मोपदेशक उपदेश के लिए प्रधान माध्यम कहानी को रखता था।[3] भगवान महावीर द्वारा उपदेशित आगम ग्रन्थों में भी लघुरूपक, कथाएँ, कहानियाँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है। प्राचीन सूत्रों से ज्ञात होता है कि 'नायधम्म कहा' में किसी समय भगवान महावीर द्वारा कथित हजारों रूपक कथाओं का संकलन है।

जिन आगम ग्रन्थों से ये कथाएँ ली गई हैं उनका महत्त्व है। ईस्वी के पूर्व चौथी शताब्दी ईस्वी से पाँचवी शताब्दी तक की भारत वर्ष की आर्थिक तथा सामाजिक दशा का चित्रण करने वाला यह साहित्य महत्त्वपूर्ण है। इन नष्ट-भ्रष्ट छिन्न-भिन्न आगम ग्रन्थों में अब भी ऐतिहासिक और अर्ध ऐतिहासिक सामग्री इतनी विपुल है कि उसके आधार पर भारत के प्राचीन इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय लिखा जा सकता है। इन कथाओं में पुरातत्त्व सम्बंधी विविध सामग्री भरी पड़ी है, जिससे भारत के रीति-रिवाज, मेले, त्यौहार, साधु-साम्प्रदाय, दुष्काल-बाढ़, चोर-लूटेरे, सार्थवाह और व्यापार के मार्ग, शिल्प, कला, भोजन,

1. जैन जगत पत्रिका, 1977 अप्रैल, संपादकीय, पृ० 8.
2. डा० ए.एन. उपाध्ये, बृहत् कथाकोष की भूमिका।
3. द्रष्टव्य—डा० एटैक का निबंध, ओन दी लिटरेचर ऑफ दी श्वेतांबर ऑफ गुजरात।

वस्त्र, मकान, आभूषण आदि विविध विषयों पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता हैं। लोक कथा और भाषा शास्त्र की दृष्टि से भी यह साहित्य अत्यन्त महत्त्व का है। डा० विंटरनीज के शब्दों में 'जैन टीका ग्रन्थों में भारतीय प्राचीन कथा-साहित्य के अनेक उज्ज्वल रत्न विद्यमान हैं, जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं होते।[1]

यद्यपि इन जैन-कथा साहित्य में आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य का-सा बाहरी शैलीगत चमत्कार, आधुनिक विचारधारा, मनोवैज्ञानिकता का गहरा रंग या पाश्चात्य वातावरण का प्रभाव नहीं मिलेगा, फिर भी हृदय को धार्मिकता की पवित्रता व कथानक की अत्यन्त रोचकता से मोह लेने की शक्ति अवश्य है, जिससे पाठक को हार्दिक शान्ति का अनुभव अवश्य होता है। हिन्दी कथा साहित्य दो रूपों में उपलब्ध होता है एक तो प्राचीन ग्रंथों की कथाओं का भाववाही सुन्दर अनुवाद किया गया है और दूसरा रूप पौराणिक आधार पर से मौलिक रूप में रचित कथाओं का है। अधिकांश जैन कहानियों में व्रतों की, सम्यकत्व की, चरित्र एवं पंच महाव्रतों की महत्ता सिद्ध की गई है। सम्यकत्व कौमुदी भाषा, वरांग कुमार चरित्र, श्रीपाल चरित्र, धन्यकुमार चरित्र आदि कथाएँ जीवन की व्याख्या प्रस्तुत करती हैं। शीलकथा, दर्शन, रात्रि-भोजन-त्याग कथा, रोहिणी व्रत कथा, दान कथा, पंच कल्याण व्रत कथा आदि विशेष नैतिक दृष्टिकोण को लेकर लिखी गई कहानियाँ हैं। अनूदित कथा साहित्य की संख्या विपुल प्रमाण में है। आराधना कथा कोश, बृहत कथा कोश, सप्तव्यसन चरित्र, पुण्याश्रव कथा कोष के अनुवाद कथा-साहित्य की दृष्टि से उत्तम है। इन ग्रन्थों में एक साथ अनेक कथाओं का संकलन किया गया है, जो जीवन के मर्म को छूती हैं।

आराधना कथा कोष :[2]

उदयलाल कासलीवाल ने चार भागों में इसकी कथाओं का अनुवाद किया है। अनुवाद स्वंतत्र रूप से किया गया है। सभी कथाएँ रोचक हैं। अहिंसा-धर्म की महत्ता, पाप-पुन्य के फल की चर्चा एवं व्रतों का माहत्म्य कथाओं के माध्यम से जनता के सामने प्रस्तुत किया है। आधुनिक शैली में यदि इन कथाओं को थोड़ा-बहुत सजाया-संवारा जाय तो निश्चित ही जनता का मनोरंजन व आत्मिक उत्थान करने में समर्थ हो सकती हैं।

बृहत कथा कोष :[3]

बृहत् कथा कोष की कथाएँ दो भागों में प्रकाशित हो चुकी हैं, अभी

---

1. डा० विन्टरनित्ज 'History of Indian Literature,' p. 4.
2. जैन मित्र कार्यालय–हीराबाग, बंबई (प्रकाशक)।
3. प्रकाशक– भारतीय दिगम्बर जैन संघ, चौरासी।

और दो भाग प्रकाशित होने वाले हैं। प्रा० राजकुमार साहित्याचार्य ने इन कथाओं को इतनी सहज सुन्दर शैली में अनुवादित किया है कि मूल भावों को पूर्णतः अक्षुण्ण रखते हुए रोचकता का पूर्ण निर्वाह किया गया है। इसके प्रथम भाग में 55 कथाएँ और द्वितीय भाग में 17 कथाएँ संग्रहीत हैं। अनुवाद की भाषा सरल, प्रवाह युक्त एवं सुसज्जित है।

दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ :[1]

डा० जगदीश चन्द्र जैन ने जैन आगमों की पुरानी कथाओं को सरल ढंग से भाववाही शैली में अनुवादित किया है। 64 कहानियों को लेखक ने तीन भागों में विभक्त किया है (1) लौकिक (2) ऐतिहासिक (3) और धार्मिक। प्रथम भाग में 34, दूसरे भाग में 17 और तीसरे भाग में 13 कहानियां हैं (4) लौकिक कथाओं में सम्प्रदाय या वर्ग की भेदभाव, बिना लोक प्रचलित कथाओं का संकलन किया गया है। इस वर्ग की कथाओं में कई कहानियां रोचक एवं मर्मस्पर्शी हैं। इन लौकिक कहानियों का मूल थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ बौद्ध धर्म के जातक साहित्य, जैन-धर्म के आगम साहित्य एवं ब्राह्मण साहित्य में प्राप्त होता है।

(2) दूसरा भाग ऐतिहासिक कहानियों का है जिसका संकलन यथासंभव ऐतिहासिक क्रम से किया गया है। भगवान महावीर और बुद्ध के समकालीन अनेक राजा-रानियों का उल्लेख प्राकृत और पालि-साहित्य में आता हैं। जैनों ने इन राजाओं को जैन कहा हैं और बौद्धों ने बौद्ध। वस्तुतः राजाओं का कोई धर्म-विशेष नहीं होता लेकिन ये किसी भी महान धर्म या पुरुष की सेवा-उपासना करना अपना धर्म समझते हैं। इसके अतिरिक्त प्राचीन काल में साम्प्रदायिकता का वैसा जोर नहीं था, जैसा हम उत्तरकाल में पाते हैं। अतएव, उस समय जो साधु-महात्मा नगरी में पधारते थे, राजा उनके दर्शनार्थ नगरजनों के साथ जाते थे। ऐसी दशा में श्रेणिक राजा, (बिंबिसार) कोणिक (अजातशत्रु) और चन्द्रगुप्त आदि राजाओं के विषय में संभवतः यह कहना कठिन है कि वे महावीर के विशेष अनुरागी थे या बुद्ध के। 'इस प्रकार की ऐतिहासिक कहानियों से प्राचीन भारत की सामाजिक अवस्था पर भी प्रकाश पड़ता है। उस समय के सामन्त लोग बहुत विलासी होते थे। बहुपत्नीत्व प्रथा का प्रचलन था। कूटनीति के दांव-पेंच काम में लिए जाते थे, महायुद्ध होते थे, राजाज्ञा का पालन न करने वालों को कठोर दण्ड दिया जाता था, कैदियों को बन्दीगृह में कड़ी यातनाएँ भोगनी पड़ती थीं, सामन्त लोग छोटी-छोटी बातों पर लड़ बैठते

1. प्रकाशक–भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली।

थे। राजा यथासंभव क्षत्रिय धर्म का पालन करते थे। शरणागत की रक्षा करना परम धर्म समझते थे, और नि:शस्त्र पर हाथ उठाना क्षत्रित्व का अपमान समझते थे। राजा और सेठ साहूकार अतुल संपत्ति के स्वामी होते थे। साधारणतया लोग खुशहाल थे, परन्तु दरिद्रता का अभाव नहीं था। दास प्रथा मौजूद थी, स्त्रियों की दशा बहुत अच्छी न थी। ऋणादि चुका न सकने के कारण दासवृत्ति अंगीकार करनी पडती थी। वेश्याएँ नगरी की शोभा मानी जाती थीं। व्यापार बहुत तरक्की पर था। व्यापारी लोग दूर-दूर तक अपना माल लेकर बेचने जाते थे।[1]

(3) तीसरा विभाग धार्मिक है, जिसमें 14 कहानियाँ हैं। इनमें प्राय: श्रमण भगवान महावीर के निर्ग्रन्थ धर्म का प्रतिपादन किया गया है। धर्म प्रचार की दृष्टि से कहानियाँ काफी महत्त्वपूर्ण हैं। 'जिनदत्त का कौशल' जैन व बौद्ध दोनों धर्म में पाई जाती हैं। चण्डाल पुत्रों की कहानी से पता चलता है कि बुद्ध और महावीर के जातिवाद के विरुद्ध घोर प्रचार के बावजूद भी समाज में शूद्र और अशूद्र की भावना का नाश नहीं हुआ था। स्पष्ट है कि महावीर के धर्म में जाति-पांति के लिए कोई स्थान न था। दीपायन ऋषि की कथा 'काण्ड दीपायन जातक' में भी आती है। कपिल मुनि 'धार्मिक साहित्य का एक सुन्दर उपास्थन कहा जा सकता है।

डा० जगदीश चन्द्र जी ने इन प्राचीन धार्मिक कथानकों को नयी भाषा शैली में रोचकता के साथ प्रस्तुत करके जैन ग्रंथों की कितनी ही महत्त्वपूर्ण अज्ञात कथाओं को प्रकाशित किया है। वे कथाएँ रोचक व ज्ञानबर्द्धक हैं। इनके माध्यम से आचार, व्यवहार, प्रथा परम्परा व नीति धर्म का ही बोध नहीं, जीवन-जगत और अध्यात्म तक का ज्ञान लोक जीवन में व्याप्त किया गया है। आख्यान छोटे-छोटे पर प्रभावपूर्ण एवं मर्मस्पर्शी हैं, जिनसे प्रेरणा प्राप्त होती है। लौकिक कथाएँ ऐतिहासिक न होते हुए भी जन साहित्य में प्रिय और प्रचलित हैं। ऐतिहासिक कथानकों को समय की सत्यता का आधार व सर्मथन प्राप्त है, जबकि धार्मिक कहानियों में लौकिकता तथा ऐतिहासिकता के सम्मिश्रण के साथ-साथ भिन्न धर्म की पीठिका भी प्राप्त है। लौकिक कहानियों की संख्या अधिक है। चावल के पाँच दाने की कथा हमारे समाज के काफी जानी पहचानी है, जिसमें ससुर के द्वारा की गई परीक्षा में छोटी बहू रोहिणी को सफल होने से घर की मालकिन बनाने की कथा है। भील और ब्राह्मण शिवभक्त की कथा, घण्टीवाले गीदड़ की कथा, माकन्दी पुत्रों की कथा आदि

1. डा० जगदीशचन्द्र जैन : दो हजार वर्ष पुरानी कहानियां, प्रस्तावना, पृ० 14.

प्रसिद्ध है। ऐतिहासिक कहानियों में जैन मंत्रीवर्य अभयकुमार, सती मृगावती, महारानी चेलना, महावीर की प्रथमशिष्या चन्दनबाला, श्रेष्ठिकुमार शालिभद्र की कथा भी आगम प्रसिद्ध है। प्रस्ताविक में इन कथाओं के सम्बंध में लिखा गया है कि-'प्रस्तुत संग्रह में संकलित चावल के पाँच दाने, बिना बिचारे का फल, छोटों के काम, भिखारी का स्वप्न, चतुर सेवक आदि कथाएँ कुछ रूपान्तर के साथ सर्वसाधारण में प्रचलित हैं, जिनका किसी सम्प्रदाय विशेष से सम्बंध नहीं है। ये लोक कथाएँ भारतवर्ष में पंचतंत्र, हितोपदेश, कथा-सरित-सागर, शुक सप्तति, सिंहासन द्वात्रिंशिका, बैताल पंचपिशाचिका आदि ग्रंथों में पायी जाती हैं। बौद्धों के पालि साहित्य की तरह जैनों का प्राकृत साहित्य भी कथा-कहानियों का विपुल भण्डार है। बौद्ध भिक्षुओं की तरह जैन साधु भी अपने धर्म प्रचार के लिए दूर-दूर देशों में विहार करते थे। ये श्रमण परिभ्रमण करते हुए लोक कथाओं द्वारा लोगों को सदाचार का उपदेश देते थे, जिससे कथा-साहित्य की पर्याप्त अभिवृद्धि हुई है।'[1]

इस संग्रह की सभी कहानियों शिक्षा प्रद एवं प्रभावोत्पादक होने के साथ साम्प्रदायिकता व संकुचितता से दूर है। इससे पता चलता है कि प्रत्येक धर्म मूल में कितना असाम्प्रदायिक होता है। लेकिन क्रमशः वह साम्प्रदायिकता के घेरे में बंध जाता है। इन आख्थानों में एक ओर रोचकता, जिज्ञासा है तो दूसरी ओर धार्मिक शिक्षा व सद्गुणों के विकास का सरल सन्देश।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी इस पुस्तक की भूमिका में लिखते हैं-मेरे मित्र डा० जगदीश चन्द्र जैन एम०पी-एच०डी० ने प्राचीन जैन साहित्य से चुनकर मनोरंजक कहानियाँ संग्रहित की हैं। यद्यपि ये कहानियाँ जैन परंपरा से ली गई हैं तथापि ये केवल जैन साहित्य तक ही सीमित नहीं हैं। ब्राह्मण और बौद्ध ग्रन्थों में भी ये कहानियाँ किसी न किसी रूप में मिल जाती हैं। सच तो यह है कि ये चिरन्तन भारतीय चित्त की उपज हैं। जैन साहित्य बहुत विशाल हैं। अधिकांश में यह धार्मिक साहित्य ही है। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं में यह साहित्य लिखा गया है। ब्राह्मण और बौद्ध शास्त्रों की जितनी चर्चा हुई है, अभी उतनी चर्चा इस साहित्य की नहीं हुई है। बहुत थोडे ही पंडितों ने इस गहन साहित्य में प्रवेश करने का साहस किया है। डा० जगदीशचन्द्र जी ऐसे ही विद्वानों में से है। इन कहानियों को नाना स्थानों से संग्रह करने में उन्हें कठिन परिश्रम करना पड़ा होगा, वह सब ही समझा जा सकता है। संग्रहीत कहानियाँ बड़ी ही सहज पाठ्य हो गई हैं। इन कहानियों में

1. डा० जगदीशचन्द्र जैन : दो हजार वर्ष पुरानी कहानियां, प्रस्तावना, पृ० 2, 3.

कहानीपन की मात्रा इतनी अधिक है कि हजारों वर्षों से, न जाने कितने कहने वालों ने उन्हें कितने ढंग से और कितनी प्रकार की भाषा में कहा है, फिर भी इनका रसबोध ज्यों का त्यों बना हुआ है। साधारणत: लोगों का विश्वास है कि जैन साहित्य बहुत नीरस है, इन कहानियों को चुनकर डा॰ जैन ने यह दिखा दिया है कि जैन आचार्य भी अपने ब्राह्मण और बौद्ध साथियों से किसी प्रकार पीछे नहीं रहे। सही बात तो यह है कि जैन पंडितों ने अनेक कथा और प्रंबध की पुस्तकें बड़ी सहज भाषा में लिखी हैं। डा॰ जैन का यह प्रयत्न बहुत ही सुन्दर हुआ है।'[1]

आराधना कथा कोश :

इस संग्रह की कथाओं को परमानन्द 'विशारद' ने दो भागों में नवीन ढंग से प्रस्तुत किया है। इसमें भी धार्मिक व ऐतिहासिक कथानकों का समायोजन हुआ है। ज्ञान के साथ मनोरंजन इन कथाओं का मूल उद्देश्य होता है, साथ-साथ कोई न कोई बोध-शिक्षा रहती है, जिसका उद्घाटन लेखक अपनी कुशलता व उद्देश्य के अनुरूप प्रत्यक्ष व परोक्ष करता है। कथा कोष के प्रारंभ में मंगलाचरण के रूप में प्रभु नेमिनाथ और सरस्वती की वंदना तथा मुनि राजो को नमन किया गया है। नमस्कार के बाद आराधना का अर्थ स्पष्ट करते हुए कथाकार कहते हैं–

'सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चरित्र, तप, भव-बंधन को छेदत हैं,
जिनसे स्वर्ग मोक्ष को जाते, नरक पशु गति भेदत हैं।'

इस संग्रह में डा॰ जगदीश चन्द्र जैन की सी नूतन भाषा शैली, सहज विचारभिव्यक्ति व उत्कृष्ट रचना-कौशल नहीं है, फिर भी रोचकता बनाये रखने की कोशिश अवश्य की गई है। संस्कृत शब्द बहुलता के कारण थोड़ी क्लिष्टता आ गई है। प्रत्येक कथा के अंत में परमानंद जी गुरु की महिमा का वर्णन करते हैं एवं पाठक-गण को सम्बोधन करके धर्माराधना करने की सीख देते हैं-यथा–हे पाठक! जिस तरह श्री सनतकुमार महामुनि ने सम्यक् चरित्र का प्रकाशन किया, उसी प्रकार प्रत्येक श्रेष्ठ पुरुष को करना चाहिए। कारण उससे लोक-परलोक में सुख की प्राप्ति होती है।'[2]

इसके द्वितीय भाग में लोककथा, धर्म कथा व ऐतिहासिक कथाओं का संकलन किया गया है। धार्मिक कथाएँ विशेष रूप से हैं। ऐतिहासिक कथाओं में सुकुमाल, सगरचक्र, श्रुतकेवली की कथा, परशुराम की कथा, द्विपायन मुनि की कथा आदि संग्रहीत हैं, जबकि धर्म कथाओं में मृगसेन धीवर की,

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : दो हजार वर्ष पुरानी कहानियां, भूमिका, पृ॰ 9.
2. परमानन्द 'विशारद' आराधना कथा कोश, पृ॰ 34.

मिथ्याभिमानी वसुराजा, देवरतिराजा, गोपवती, बीरवती, सात्यकि और रुद्र की कथा, मरीचिकुमार, भीमराज, पुष्पदत्ता आदि कथाएँ हैं। जबकि लौकिक कथाएँ नहींवत् हैं, जैसे कि लौकिक ब्रह्मा की कथा, नीली की, बतीस सेठ पुत्रों की, अढारपिंग की कथा आदि। पुरातन कथावस्तु लेकर रोचकता व आनंदवृद्धि के साथ आध्यात्मिक युग का मानव प्रत्यक्ष उपदेश को ग्रहण करने की अपेक्षा करता है। कथाओं से धार्मिक तत्त्वों के ज्ञान के साथ-साथ तत्कालीन परिस्थितियों के विषय में जानकारी पाठक पा सकता है। लेखक ने इस आराधना-कथा-कोश को लिखने का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए लिखा है-'अन्य मतों की कल्पनाओं का सत्पुरुषों को ज्ञान हो, उद्देश्य थोड़ा बहुत संकुचित दिखाई पड़ता हो, फिर भी इस कोश की बहुत-सी कथाओं का सुन्दर भावानुवाद किया है।

पुरातन कथानकों को लेकर श्री बाबू कृष्णलाल वर्मा ने स्वतंत्र रूप से सुन्दर कथाएँ लिखी हैं। इनकी कथाओं में कहानी कला तो विद्यमान है, साथ ही वस्तु, पात्र और दृश्य तीनों अंगों का ध्यान रखा गया है। भाषा शैली भी आधुनिक व प्रभावशाली है। कथाओं में मनोरंजकता, सहजता व हृदयस्पर्शिता का समायोजन किया गया है। कथाओं में महासती सीता, खनकक कुमार, सुरसंदरी एवं सती दमयन्ति उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं, जिनकी विषय वस्तु की संक्षिप्त विवेचना की जायेगी।

(1) खनक कुमार :[1]

इसमें मानवीय स्वभाव के द्वन्द्वों का लेखक ने सुन्दर मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रण किया है। आज के भौतिकवादी जनमानस के लिए ऐसी कथाएँ अत्यन्त उपादेय हैं। अभिमान, अत्याचार के विरुद्ध सहनशीलता और त्याग के संघर्ष को इसमें अभिव्यक्त किया गया है।

कथानक :

सेवंती नगरी के राजा कनक केतु और रानी मनसन्दरी का पुत्र खनककुमार बचपन से ही भावुक, सदाचारी और धर्माभिमुख था। बाल्यकाल में ही माता-पिता के साथ धर्म-पूजा के शामिल होता था। युवा होने पर संसार के विषय भोगों एवं भौतिक वैभव-विलास से विरक्ति आ गई। माता-पिता के स्नेह के कारण वे अब तक संसार में रहे। लेकिन एक दिन वे सब कुछ छोड़कर दिगम्बर मुनि हो गए। मुनि अवस्था में विचरण करते हुए वे अपनी बहन देवबाला की सुसराल की नगरी में पहुँचते हैं। रानी देवबाला अपने पति के साथ

1. प्रकाशक-आत्मानंद जैन ट्रेक्ट सोसायटी, अंबाला, शहर।

महल के झरोखों में खड़ी थी, तभी जाड़े की कड़कड़ाती ठण्डी में दिगम्बरावस्था में अपने प्रिय भाई को देखकर दु:खी होकर असह्य ठंडी की कल्पना मात्र से कांप उठी। भाई के प्रति ममत्व के कारण त्यागी भाई की ऐसी कष्टदायक स्थिति देखकर वह उदास रहने लगी। सांसारिक भोगों से विरक्त रहने से उसके पति ने मुनि की खाल खींचवा ली फिर भी मुनि ने अपनी दृढ़ता, एकानता, क्षमा व अहिंसा वृत्ति का अपूर्व परिचय देकर समाधिमरण देवगति प्राप्त की।

इस प्रकार कथा में करुण रस का सुन्दर परिपाक हुआ है। कथा में अवान्तर कथाएँ आ जाने से प्रवाह में शिथिलता आ गई है, फिर भी मुख्य कथा में विशेष रुकावट नहीं आने पाई है। कथोपकथन में विशेष सजीवता न होने पर भी छोटे-छोटे वाक्य-गठन से भाषा का रूप अच्छा रहा है। धर्मों की जहाँ तहाँ व्याख्या करते समय कथाकार के पद-औचित्य का उल्लंघन हुआ है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से खनककुमार और देवबाला का चरित्र-चित्रण सुन्दर हुआ है।

महासती सीता :[1]

रामायण की परंपरा प्रसिद्ध कथा में काफी परिवर्तन है, जिसमें पौराणिक आख्यान को अपनी कल्पना द्वारा अत्यन्त चटपटा बना कर सुस्वादु बनाने का प्रयत्न किया गया है। जैन पुराण में राम कथा में काफी परिवर्तन किया गया है। और वर्मा जी ने जैन रामायण का अनुसरण किया है। इसकी कथा वस्तु निम्न रूप से संक्षेप में है।

कथा-वस्तु :

मिथिला नगरी की रानी विदेहा के गर्भ से पुत्र और पुत्री रत्न दोनों पैदा हुए। सर्वत्र आनन्द छा जाता है, लेकिन थोड़ी ही देर में आनन्दोल्लास के स्थान पर उदासी फैल गई, क्योंकि कोई आँख के तारे समान पुत्र को चुराकर ले गया। काफी खोज करने पर भी बालक का पता न चला।

पुत्री का नाम सीता रखा गया। बड़ी होने पर उसके योग्य वर की खोज के लिए राजा जनक चिंतित हुए। उन्होंने सैंकड़ों राजकुमार देखे, पर सीता के योग्य एक भी न जंचा। उसी समय अयोध्यापति दशरथ को बर्बर देश के म्लेच्छ राजाओं का उपद्रव शांत करने के लिए सहायतार्थ बुलाया। जब अयोध्या से सेना प्रस्थान करने लगी तो राम ने आग्रह पूर्वक सेना के साथ आने की अनुमति ले ली। वहाँ आकर मलेच्छ राजाओं पर आक्रमण कर उन्हें पराजित किया। राम

---

1. प्रकाशक-आत्मानंद जैन ट्रेक्ट सोसायटी, अंबाला, शहर।

की वीरता देखकर जनक अत्यन्त प्रसन्न हुए और सीता के योग्य वर समझ उन्हीं के साथ विवाह करने का निश्चय किया।

जब नारद जी ने सीता के रूप की प्रशंसा सुनी तो वे मिथिला गए और आतुरता में ही दरबार में न जाकर अन्त:पुर में गए। सीता अपने कमरे में अकेली बैठी थी, वहाँ नारद जी को एकाएक पाकर और उनके अद्‌भुत रूप को देखकर डर के मारे चिल्लाने लगी। महल के अनुचरों ने नारद की पिटाई की। अपने इस अपमान का बदला लेने के लिए सीता का सुन्दर चित्र खींच कर चन्द्र गति विद्याघर के लड़के भामण्डल को भेंट किया। चित्र देखते ही मोहित हो गया। बस, फिर तो कामज्वर के कारण खाना-पीना सब छोड़ दिया। पुत्र की ऐसी हालत से चिंतित विद्याधर ने नारद को बुलाकर चित्रांकित कन्या का पता जानकर अपनी विद्या के बल पर जनक को निद्रावस्था में ही अपने यहाँ ले आया। जनक के जाग्रत होने पर उसकी पुत्री सीता की शादी अपने पुत्र से करने के लिए कहा, लेकिन जनक ने स्पष्ट इन्कार कर दिया। तब अन्त में विद्याधर ने 'वज्रावर्त' औरे अर्णवावर्त' नामक दो धनुष दिये और कहा कि सीता का स्वयंबर रचकर जो इन दोनों धनुष को तोड़ दे, उसी के साथ सीता का विवाह होगा। जनक ने उसकी शर्त मंजूर रख ली और मिथिला आकर सीता का स्वयंबर रचाया, जिसमें राम ने इन दोनों धनुषों को तोड़कर सीता के हाथ से वरमाला ग्रहण की।

विवाह के उपरान्त थोड़े ही दिनों में कैकेयी के वरदान माँगने पर पिता के वचनों का पालन करने के लिए राम-सीता का वन प्रयाण होता है। फिर कथा में विशेष परिवर्तन नहीं किया गया है। वन में अनेक कारण-कलापों के मिलने पर सीता का हरण हो जाता है। लंका में सीता को अनेक कष्ट सहने पड़ते हैं। हनूमान की सहायता से सीता का समाचार प्राप्त कर राम सुग्रीव की मदद से लंका पर आक्रमण करते हैं। लंका पर विजय प्राप्त कर सीता को लेकर अयोध्या 14 वर्ष के बाद पुन: आगमन करते हैं। अयोध्या में थोड़े समय आनन्द-उल्लास के पश्चात सीता पर मिथ्या दोषरोपण होने पर गर्भवती सीता का राम परित्याग करते हैं। और जंगल में दोहद पूरा कराने के बहाने निर्वासित कर दी जाती है। यहाँ सीता लवण और अंकुशल को जन्म देती हैं, तब पिता-पुत्र का मिलन होता है। परस्पर परिचंय होता है और अयोध्या में राम सभी को ले जाते हैं। वहाँ सीता के शील से अग्नि पानी बन जाता है और सीता संसार की स्वार्थ-परकता देखकर विरक्त होकर जैन दीक्षा ग्रहण करती हैं। तपस्या करने के पश्चात वह स्वर्ग पाती हैं।

इस प्रकार अनेक प्रकार के अस्वाभाविक परिवर्तनों के बावजूद भी कथावस्तु में उत्सुकता एवं रोचकता विद्यमान होने से पाठक उबता नहीं है। कथोपकथन भी प्रभावशाली एवं आकर्षक हैं। संवाद कथा को गतिमय बनाए रखने मे सहायक हुए हैं, यह हम नारद की बड़बडाहट के समय देख सकते हैं-हाँ, यह दुर्दशा, यह अत्याचार, नारद से ऐसा व्यवहार। ठीक है। व्याधियों को देख लूँगा। सीता, तुझे धन-यौवन का गर्व है। उस गर्व के कारण तूने नारद का अपमान किया है। अच्छा है। नारद अपमान का बदला लेना जानता है। नारद थोड़े ही दिनों में तुझे इसका फल चखायेगा, और ऐसा फल चखायेगा कि जिसके कारण तू जन्म भर ह्रदय वेदना में जलती रहेगी।' इस कथन से आगे आनेवाली घटनाओं का भी संकेत छिपा हैं। यहाँ नारद के चरित्र को गिरा दिया गया है। सीता के चरित्र का काफी मार्मिक उद्घाटन कर उसके सतीत्व, गौरव एवं तेज को व्यक्त किया गया है।

सुर-सुन्दरी :

जैन साहित्य में सती सुर-सुन्दरी की कथा अत्यन्त लोकप्रिय है सुरसुन्दरी अपने साहस, धैर्य एवं हिम्मत से पति के द्वारा किए गए अपमान व अवदशा का सामना कर विकट परिस्थितियों में पति की दु:खद परिस्थिति में सहायता करती है। इस कथा को 'सात कौड़ियों में राज' के नाम से भी जाना जाता है। इस पौराणिक कथा में लेखक वर्मा जी ने यथेष्ट कल्पना के द्वारा पर्याप्त परिवर्तन किया है।

कथा-वस्तु :

सुरसुन्दरी एक राजकन्या है और अमरकुमार श्रेष्ठि पुत्र है। दोनों बचपन में साथ अभ्यास करते हैं। बड़े होने पर दोनों के बीच प्रीत जगती है। और दोनों प्रेमपाश में बन्ध जाते हैं। एक बार सोती हुई राजकुमारी की गाँठ से सात कौड़ी निकाली। अमरकुमार के कृत्य से राजकुमारी को बुरा लगा। वह कहने लगी कि सात कौडियों में तो राज्य प्राप्त किया जा सकता है। बड़े होने पर दोनों का ब्याह हो जाता है। कुछ समय आनन्दपूर्वक व्यतीत हो जाने के बाद पिता की आज्ञा ले जहाजों में माल लदवा कर अमरकुमार व्यापार के लिए सुरसुन्दरी के साथ परदेश जाता है। वन में प्रकृति की शीतलता व सौंदर्य देखते हुए दोनों विश्राम करने लगे। सुन्दरी अमर के घुटनों पर विश्वास और शान्ति से सो गई तभी एकाएक पूर्व का अपमान और सुरसुन्दरी के कटु वचन अमर कुमार को याद आ गए। अत: पत्थर को सिर के नीचे रखकर उसे सोता छोड़ चला गया।

सुरसुन्दरी जब जगी तो अपने आंचल में सात कोड़ियों के साथ चिट्ठी पाई। जिसमें लिखा गया था-'इसी सात कौड़ियों में राज लेकर रानी बनो।' सुन्दरी का क्षोभ व वेदना दूर होने पर क्षत्रियत्व जाग उठा। पहले उसे अमर कुमार के इस कठोर व्यवहार पर गुस्सा, नफरत व अपमान का भाव जाग उठता है, लेकिन तुरन्त उसकी आत्मा बोल उठी,-'छिः सुरसुन्दरी। नारी होकर तेरे यह भाव। पुरुष का धर्म कठोरता है, नारी का धर्म कमनीयता और कोमलता। पुरुष का कार्य निर्दयता है, तो स्त्री का कार्य धर्म-दया।"[1] इसके बाद वह निश्चय करती है कि आखिर मैं क्षत्रियाणी हूँ। इस प्रताड़णा का बदला अवश्य लूँगी व करके ही दिखाऊँगी।

रात्रि के समय इस जंगल की गुफा से कठोर ध्वनि करता हुआ एक राक्षस निकला लेकिन उसकी करुण दशा व दिव्य ज्योति को देखकर पुत्रीवत् मानने लगा। थोड़े दिन के बाद एक सेठ वहाँ आता है और उसे ले जाता है। उसकी दृष्टि में पाप समाता है और उसे एक वेश्या के यहाँ बेच देता है। यहाँ अपने सतीत्व की रक्षा करने के लिए किसी प्रकार छुटकारा पा समुद्र की उत्ताल तंरगों में कूद पड़ती है। लेकिन किसी सेठ के नौकरों द्वारा त्राण पाकर फिर आपत्ति में फंस जाती है। जैसे-तैसे सुरसुन्दरी समय काटती है। इसी बीच एक मुनिराज से अपने पति से मिलन का समय पूछती है तो उत्तर पाती है कि निकट के भविष्य में पति-मिलन होने वाला है। अन्त में अपना नाम विमलवाहन रखकर उन्हीं सात कौड़ियों द्वारा व्यापार करती है। एक बार नगर में बहुत बड़े चोर का पता लगाने पर राजकुमारी से ब्याह और आधा राज्य प्राप्त करती है। अमरकुमार भी व्यापार के लिए उसी नगरी में आता है, निर्धन और दीन-हीन दशा में। राज्य के अनुचर उसे चोर समझकर न्याय के लिए दरबार में ले जाते हैं, वहाँ विमलवाहन के रूप में सुरसुन्दरी बैठी है। दोनों का मिलन होता है। अमरकुमार के पश्चाताप करने पर सुरसुन्दरी उसे क्षमा देती है और पति को सब कुछ अर्पण करती हुई राते-रोते कहती है-नाथ! फिर कभी ऐसी परीक्षा में मत डालना। आपकी आज्ञानुसार सात कौड़ियों द्वारा प्राप्त किया हुआ राज्य आपको अर्पण हैं।'[2] मानिनी नारी की प्रतिज्ञा पूर्ण हो जाती है और पुरुष का अहंभाव नत होता है।

इस कृति में लेखक ने नारी-तेज, उसकी महत्ता, धैर्य साहस और क्षमता का पूर्ण परिचय देते हुए अत्याचारियों के अत्याचार शांत एवं शीलवती, दृढ़

1. कृष्णलाल वर्मा : सती सुरसुंदरी, पृ० 25.
2. कृष्णलाल वर्मा : सती सुरसुंदरी, पृ० 52.

मनोवलवाली नारी के सामने शांत हो जाते हैं। सुर सुन्दरी का चरित्र-चित्रण काफी कुशलता से किया गया है। कथोपकथन भी अच्छे हैं। इस कथा की विशेषता भाषा-शैली में विद्यमान है। भाषा शुद्ध साहित्यिक हिन्दी है, जिसमें उर्दू-फारसी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग भी किया गया हैं। "भाषा में स्निग्धता, कोमलता और माधुर्य तीनों गुण विद्यमान है। शैली सरस है, साथ ही संगठित, प्रवाहपूर्ण और सरस हैं। रोचकता और सजीवता इस कथा में विद्यमान हैं। कोई भी पाठक पढ़ना आरंभ करने पर, इसे समाप्त किए बिना श्वास नहीं ले सकता। प्रवाह की तीव्रता में पड़कर वह एक किनारे पहुँच जाता है।"[1]

सती दमयन्ती :

इस पौराणिक कथा में लेखक ने दमयन्ती के शील एवं पातिव्रत के आदर्शों एवं गुणों की महत्ता अभिव्यक्त की है। आदर्श की रक्षा के लिए कहीं-कहीं अवास्तविक घटनाएँ घटती हुई भी बताई गई हैं, जो आज के वैज्ञानिक युग में अविश्सनीय प्रतीत होती हैं।

कथा-वस्तु :

नल परिस्थिति वश या पूर्वोपार्जित कर्मानुसार द्युत क्रीड़ा में स्त्री सहित सब कुछ हार जाता है। अत: नल राजपाट छोड़ बन में चला जाता है और दमयन्ती भी पतिव्रत धर्म का पालन करने हेतु उसके मार्ग का अनुसरण करती है। कूबड़ उसकी भर्त्सना करता है, लेकिन सतीत्व की विजय होती है। नल वन में सोई हुई दमयन्ती को छोड़ चला जाता है। निद्रा भंग होने पर वह अपने आंचल में लिखे लेख के अनुसार मार्ग पर चल पड़ती है। मार्ग में अनेक अघटित घटनाएँ घटती हैं, जिनके द्वारा सतीत्व का तेज और निखर उठता है। अंत में दमयन्ती अपनी मौसी चन्द्रयशा रानी की सहायता से अपने पिता के यहाँ पहुँचती है। इधर इसी नगर में नल भी आया हुआ है। नल सूर्यपाक बनाता है। दमयन्ती उसे पहचान लेती है और दोनों का 12 वर्ष पश्चात् मिलन होता है। नल दमयन्ती को यक्ष सम्बंधी अपनी कथा सुनाता है।

कथा विस्तार, चरित्र-चित्रण, भाषा-शैली आदि में नवीनता होने पर भी लेखक ने पूर्णत: पौराणिकता अपनाई है, जिससे अलौकिक तत्त्वों व घटनाएँ अविश्वसनीय जान पड़ती हैं। उदाहरण के लिए सती के तेज से शुष्क सरोवर का जल से पूर्ण होना, कैदियों की बेड़ी टूट जाना, डाकुओं का भाग जाना इत्यादि घटनाएँ ऐसी हैं। दमयन्ती का चरित्र-चित्रण अलौकिक एवं अमानवीय

1. डा० नेमिचन्द्र शास्त्री : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, द्वितीय भाग, पृ० 87.

बन गया हैं। भाषा सरल और मुहावरेदार आधुनिक हिन्दी है। रोचकता और उत्सुकता आद्योपान्त विद्यमान है।

रूप-सुन्दरी :[1]

भागमल शर्मा लिखित इस कथा में पाप-पुण्य का फल प्रदर्शित किया गया है। मनुष्यों के कार्यों पर परिस्थितियों का भी काफी प्रभाव पड़ता है। परिस्थितियों और वातावरण के अनुसार कभी-कभी मनुष्य नीच से नीच तक और कभी ऊँचे से ऊँचे कार्य भी कर सकता है। प्रतिकूल परिस्थितियों में जो मनुष्य बुरा प्रतीत होता है, वही अनुकूल परिस्थितियों में अच्छे कार्य करके सद्‌गुणी भी बन सकता हैं क्योंकि मनुष्य कोई यन्त्र न होकर अच्छे-बुरे तत्त्वों, कमजोरी आदि द्वन्द्वों से युक्त मानव है। अतः इन सबके साथ उसका व्यक्तिव बनता-बिगड़ता है। लेखक ने रूप सुन्दरी-एक कृषक भार्या-एवं धूर्त साधुकुमार देवदत्त के चरित्र द्वारा उन्हीं तत्त्वों का विश्लेषण किया है।

युवान कृषक पत्नी रूपसुन्दरी सुन्दर एवं बुद्धिमान भी है। अपने पति को सच्चा स्नेह करती है, लेकिन देवदत्त नामक धूर्त युवक उसे अपनी मोह जाल में फांस लेता है। दोनों के बीच स्नेह हो जाता है। स्नेह तो क्या, वासनाजन्य आकर्षण ही होता है। वह ग्लानि एवं लज्जा का अनुभव कर कुपथ से हट जाने का निश्चय कर लेती है। लेकिन कपटी धूर्त देवदत्त उसके पति का मायावी भेष धारण कर असली पति से लड़ने लगता है। रूपसुन्दरी भी समान रूपवाले दो पुरुषों को देखकर सशंकित हो जाती है और अपना न्याय कराने के लिए न्यायालय की शरण लेती है, जहाँ अभयकुमार यथार्थ न्याय करते हैं। सतीत्व को निभाये रखने की दृढ़ प्रतिज्ञा के कारण रूपसुन्दरी का चेहरा भी तेजस्वी हो उठा था। देवदत्त को सभी ओर से काफी धिक्कार मिलता है। उसे भी एक संनिष्ठ स्त्री को अपनी माया से बुरे रास्ते पर ले जाने के प्रयत्न के लिए काफी पश्चाताप होता है। वह रूपसुन्दरी के चरणों में गिर क्षमा चाहता है।

कथा की दृष्टि से इसमें तीव्रता, स्वाभाविकता, उत्सुकता नहीं पाई जाती है, लेकिन चारित्रिक विकास की दृष्टि से कथा सुन्दर है। लेखक कथा वस्तु के द्वारा व्यक्त करना चाहता है द्वन्द्वात्मक चरित्र को प्रभावशाली बनाकर कथा में रोचकता बनाए रखने की कोशिश की है। निम्नोक्त संवाद में मनोभावों की तीव्रता का अच्छा चित्र मिलता है–

मुझे तेरे मधुर प्रेम का एक बार स्वाद मिले तो?

---

1. प्रकाशक–आत्मानंद जैन ट्रेक्ट सोसायटी, अंबाला, शहर।

'हे! ऐसे अभद्र शब्द, खबरदार, फिर मुँह से न निकालना। तेरे जैसे नीच मनुष्यों को तो मेरा दर्शन भी न होगा।' इसमें देवदत्त की कामुकता, लम्पटता व निर्लज्जता का परिचय मिलता है, तो दूसरी ओर कुपथ से सच्चे पथ पर अडिग दृढ़ निश्चयवाली रूपसुन्दरी की दृढ़ता एवं देवदत्त के प्रति नफरत की भावना अभिव्यक्त होती है।

पं० मूलचन्द 'बत्सल' का नाम भी पौराणिक कथावस्तु लेकर कथा साहित्य लिखने वालों में महत्त्वपूर्ण स्थान पाता है। पुराने जैन कथानकों को नवीन ढंग से प्रस्तुत किया है। यद्यपि शैली को यथाशक्ति परिमार्जित बनाए रखने की कोशिश की है, फिर भी प्राचीन कथा वस्तु के वर्णन, चरित्र, कथोपथन आदि में आधुनिक टेकनीक का निर्वाह नहीं हो पाया है।

सती रत्न :[1]

'सती रत्न' में 'वत्सल' जी ने तीन कथाओं को रोचक ढंग से रखा है। कुमारी ब्राह्मी और सुन्दरी प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की दोनों पुत्रियाँ थीं, जिन्होंने अविवाहित रहकर त्याग व तपस्यामय जीवन व्यतीत किया था। 'चन्दनाकुमारी' और ब्रह्मचारिणी अनन्तमति' में भी दोनों राजकुमारी होने पर भी संसार का त्याग कर भागवती दीक्षा अंगीकार करने वाली ये दोनों सतियों की कथावस्तु है। इन कथाओं में अनेक स्थानों पर उपदेशक के रूप प्रस्तुत होने से कथा के प्रवाह में अंतराय के साथ बहुत नीरसता पैदा होती है। कथाओं में मूल तत्त्वों को संनिवेश करने की कोशिश में लेखक को साधारण सफलता मिली है।

पौराणिक कथा वस्तु लेकर आधुनिक शैली में मौलिक कथा-साहित्य लिखने वालों में हम जैनेन्द्र जी का नाम सम्मानपूर्वक ले सकते हैं। न केवल जैन-साहित्य उनसे गौरवान्वित है, बल्कि हिन्दी कथा-साहित्य में भी उनका योगदान महत्त्वपूर्ण होने से हिन्दी साहित्य के इतिहास में उनका स्थान काफी महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि जैनेन्द्र जी ने एक नए आयाम का प्रारंभ नूतन शैली व वस्तु के द्वारा किया है। हिन्दी साहित्य के लब्ध प्रतिष्ठित कलाकार होने पर भी सार्वजनिक सैकड़ों कथाएँ आपने लिखी हैं। उनकी रचनाओं में साहित्यिक गुणों के साथ दार्शनिक गांभीर्य भी मौजूद है। भावुकता और आदर्शवाद के साथ आध्यात्मिकता का प्रेरक बल छिपा रहता है। फिर भले ही वह जैन रचनाएँ न होकर सामान्य जगत एवं जीवन से सम्बंधित हिन्दी साहित्य की रचना हो। भावों की मार्मिक अभिव्यक्ति वे स्पष्ट, सुरेख चित्रों के द्वारा आसानी से कर सकते

1. साहित्य रत्नालय-बिजनौर।

हैं, जो अन्यत्र पाना कठिन है। चित्रबद्धता, भावों की तीव्रता व दार्शनिकता का गांभीर्य उनके साहित्य को ऊपर उठाने में बहुत हद तक सहायक हुए हैं।

'बाहुबली' और 'विद्युत् चोर' उनकी दो प्रमुख कथाएँ जैन साहित्य की अमूल्य निधि हैं। वैसे उनका पूरा साहित्य जैन दर्शन की विचारधारा से प्रेरित हैं। उपरोक्त दोनों कथाओं में कहानी कला के सभी तत्त्वों के पूर्ण संनिवेश के साथ दार्शनिकता का रोचक उद्घाटन किया गया है। पात्रों का चरित्र-चित्रण भी मनोवैज्ञानिक ढंग से किया गया है। कथाओं का उद्देश्य पात्रों की भाव-भंगिमा स्वगत कथन एवं कथोपकथन के द्वारा व्यक्त होता है, साथ ही कथानक को भी गति मिलती है। 'बाहुबली' का चरित्र जैन साहित्य में अत्यन्त लोकप्रिय व श्रद्धा का पात्र रहा है। जैन धर्म, समाज व साहित्य में भरत चक्रवर्ती एवं बाहुबली के तीन प्रकार के युद्ध की कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है, जिसमें तीन युद्धों में विजय प्राप्त होने के समय ही सांसारिक संबंध एवं राग-द्वेष से घृणा उत्पन्न हो जाने से ऊँचे किए गए अपने हाथों से वीर बाहुबली अपने ही बालों को नोंचकर संसार त्याग करते हैं और तपस्या के लिए जंगल में चले जाते हैं। प्रतिभा संपन्न, वीर, सुयोग्य राज्य-व्यवस्थापक एवं उदात्त चरित्र वाले उन्होंने जगत् के सर्वसुखों को निमिषमात्र में त्याग तो दिया लेकिन अहंकार का एक अंश अभी तक जीवित रह गया था। उनकों अपने पिता तीर्थंकर ऋषभदेव के साथ दीक्षित हुए अपने निन्यानवें (99) छोटे भाइयों को पूर्वानुगामी स्वीकार कर वंदन करने के लिए जाने में झिझक थी, और तब तक 'केवल ज्ञान' प्राप्त न होने का कारण जानकर अपने महाप्रतापी भाई बाहुबली को अहंकार रूपी गज से नीचे उतरने का साध्वी बहनें प्रतिबोध देती हैं। क्षणमात्र में अहंकार का पर्दा हटते ही 'केवल ज्ञान' की परम सिद्धि प्राप्त होती है।

इस प्रकार पौराणिक कथानक को ग्रहण करने पर भी कथा में उत्सुकता, चरित्रों का मानसिक विश्लेषण, कथानक में गति एवं वैराग्य की सुन्दर विचारधारा कुशलता से व्यक्त की गई है। "बाहुबली कथा में बाहुबली के चरित्र का विश्लेषण बहुत सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक रूप से हुआ है। इसमें उस समय की परम्परा और सामाजिक विश्वासों की स्पष्ट झांकी विद्यमान है।"[1]

'विद्युच्चर' की कथा भी अत्यन्त रोचक है। पौराणिक कथा वस्तु में लेखक ने अपनी कल्पना के रंगों से सुन्दर कथा वस्तु की सृष्टि की है, जिसमें विद्युच्चर के मनोभावों को सूक्ष्मता से व्यक्त किया गया है। विद्युच्चर तथा राजवी पिता के संवाद में कथानक को आगे बढ़ाने की शक्ति के उपरान्त पात्रों के विचारों की तीव्रता व जनतंत्र का समर्थन भी प्राप्त होता है।

1. डा॰ नेमिचन्द्र जी : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ॰ 10.

विद्युच्चर हस्तिनापुर के राजा संबर का श्रेष्ठ पुत्र था। कुमार ने यथायोग्य शिक्षा-दीक्षा ग्रहण करने के उपरान्त कुशल चोर बनने का निश्चय किया। चोर-विद्या में पारंगतता प्राप्त करने के उपरान्त ममता व मोह बाधक न बने, इसलिए सर्वप्रथम अपने पिता के यहाँ चोरी करने का निश्चय किया। क्योंकि (charity begins at home) की नीति के मुताबिक पिता का रत्नकोष ही प्रथम लक्ष्य के रूप में उसने पंसद किया। कुशल चोर की तरह भण्डार से एक सहस्र स्वर्ण मुद्राएँ चुराईं-जो परिमाण, साहसिकता एवं कौशल्य में बड़ी चोरी कही जायेगी। आज तक सुरक्षित राजकोष में से राजपुत्र के द्वारा ही खजाना चुराया गया और महीनों परिश्रम करने पर भी चोर का पता नहीं था। चोर को खोज निकालने में राज्य व्यवस्था को असफल देख विद्युच्चर ने स्वयं ही चोरी की बात अपने पिता से जाहिर की। पिता को विश्वास न हुआ लेकिन कुमार ने चोरी का विश्वास दिलाया और अपना दृढ़ निश्चय भी जाहिर किया। पिता को अपार वेदना हुई और आँखों से अश्रु बहने लगे। कुमार अपने पेशे में निपुणता प्राप्त करने लगा, उसका आतंक चारों ओर फैल गया। वह डाकुओं के दल का मुखिया था। वह चोरी-डकैती अवश्य करता था, लेकिन निरर्थक किसी का प्राण लेना उसे इष्ट न था। कुछ समय के उपरान्त वह राजगृही नगरी में प्रसिद्ध वेश्या तिलका के यहाँ गया। वहाँ चारां ओर जम्बूकुमार स्वामी के स्वागत की तैयारी देखकर वह भी राजा श्रेणिक के साथ उनके दर्शन के लिए पहुँचा। जम्बूकुमार की मधुर वाणी में धर्मदेशना सुनकर उसे अपने चोरी के धंधे से नफरत हो गई और परिग्रहों को ही संसार के समस्त दुःखों का कारण जान संसार से विरक्ति आ गई और जैन दीक्षा अंगीकार करके आत्म-कल्याण के मार्ग पर अग्रसर हुआ।

कहानी कला की दृष्टि से कथा पूर्ण सफल है और तीव्र, वेधक कथोपकथन इस कहानी के प्राण कहे जायेंगे, जो नीचे के दृष्टान्त पर से जाना जा सकता है।

'पिता जी! हेयोपदेय हो तो भी आपको कर्त्तव्य और अपने मार्ग में उस दृष्टि से कुछ अन्तर नहीं जान पड़ता। आपको क्या इतनी एकान्त निश्चिन्तता, इतना विपुल सुख, संपत्ति, सम्मान और अधिकार, ऐश्वर्य का इतना ढेर क्या दूसरे के भाग को बिना दिये बन सकता है? आप क्या समझते हैं, आप कुछ दूसरे का अपहरण नहीं करते? आपका 'राजपन' क्या और सबके 'प्रजापन' पर ही स्थापित नहीं है? आपकी प्रभुता औरों की गुलामी पर ही नहीं खड़ी? आपकी संपन्नता औरों की गरीबी पर, सुख-दुःख पर, आपका विलास उनकी

रोटी की चीख पर, कोष उनके 'टेक्स' पर और आपका सब कुछ क्या उनके सब कुछ को कुचल कर, उस पर ही नहीं खड़ा लहलहा रहा? फिर मैं उस पर चलता हूँ ता क्या हर्ज है? हाँ, अन्तर है तो इतना है कि आपके क्षेत्र का विस्तार सीमित है, पर मेरे कार्य के लिए क्षेत्र की कोई सीमा नहीं, और मेरे कार्य के शिकार कुछ छंटे लोग होते हैं, जबकि आपका राजत्व छोटे-बड़े, हीन-संपन्न, स्त्री-पुरुष, बच्चे-बूढ़े सबको एक-सा पीसता है। इसीलिए मुझे अपना मार्ग ज्यादा ठीक मालूम होता है।

'कुमार, बहस न करो। कुकर्म में ऐसी हठ भयावह है। राजा समाज तन्त्र राजाओं द्वारा परिपालित परिपुष्ट विद्वानों की किताबों का ज्ञान यही बतलाता है?-नहीं, तो बताइए, क्यों आवश्यक है? क्या राजा का महल न रहे तो सब मर जाय, उसका मुकुट टूटे तो बस टूट जाए और सिंहासन न रहे तो क्या कुछ रहे ही नहीं? बताइए, फिर क्यों आवश्यक है? इस मार्मिक चुभते हुए वार्तालाप में राजा की अनुपादेयता एवं जनतंत्र के तत्त्वों पर भी अप्रत्यक्ष प्रकाश डाला गया हैं।

बालचन्द्र जैन एम०ए० ने पौराणिक आख्यानों को लेकर नवीन शैली में सुन्दर भावप्रधान कहानियाँ लिखी हैं। 'आत्मसर्मपण' उनका ऐसा ही संकलन है, जिसमें अनेक रोचक कहानियाँ संग्रहीत की गई हैं। इसी शीर्षक की प्रथम कहानी में नारीत्व की महत्ता प्रतिष्ठापित करने वाले मूर्तिमन्त चित्र लेखक ने खींचे हैं। नेमिनाथ प्रभु की वाग्दत्ता राजुल कुमारी के त्यागमय वचनों में नारी के गौरव, प्रभुत्व तथा ऋजुता के साथ दृढ़ता व तेज भी आविर्भूत होता है नेमि जी यदि संसार त्याग कर तपश्चर्या लीन हो सकते हैं, तो राजुल फिर क्यों पीछे रहे? उसने भी संसार के सर्व ऐश्वर्यों से पल मात्र में मुँह मोड़कर आर्यिका व्रत ग्रहण कर लिया। 'साम्राज्य का मूल्य' कहानी में भौतिकता के मोह भरे पदों को क्षण मात्र में चीरकर आध्यात्मिकता के नए स्वर को गुंजित किया है चक्रवर्ती महाराजा भरत का अहं महान वीर बाहुबली के अभूत पूर्व त्याग के सामने चूर-चूर हो जाता है। कहानी के अंत में भरत के इन शब्दों में दम्भ के प्रति ग्लानि का भाव स्पष्ट लक्षित होता है-मैं तो सिर्फ आपका प्रतिनिधि बनकर प्रजा की सेवा कर रहा हूँ। मेरा कुछ भी नहीं है, मैं अकिंचन हूँ। 'दम्भ का अंत' कहानी में मानवी की आंतरिक परिस्थितियों का सुन्दर चित्रण किया गया है। मनुष्य किस प्रकार की परिस्थिति में अपने हृदय की बात छिपाना चाहता है, वह कृष्ण के चरित्र द्वारा अच्छा बताया गया है। सरल, निष्कपट हृदय वाले वीर, धर्म-प्रेमी नेमिकुमार कृष्ण के हृदय को परख कर उनकी आलोचना भी शान्त स्वर में करते हैं। उनके मृदु मानस पर गहरा आघात पड़ता

है। वे द्वारिका से दूर, अति दूर जाकर संयम ग्रहण करते हैं। 'रक्षाबंधन' में त्याग, प्रेम और सहनशीलता की उद्भावना सुन्दर ढंग से की गई हैं। मुनियों पर भीषण उपसर्ग आने पर भी वे डरकर भागते नहीं, परेशान हुए बिना स्वस्थता से अत्याचारों को सहन करते-करते कर्मों की निर्जरा' करते हैं। कहानीकार ने मुनि विष्णुकुमार के वचनों द्वारा त्याग और संयम का लक्ष्य प्रकट करते हुए कहलाया है-दिगम्बर मुनि सांसारिक भोग और वैभव के लिए अपने शरीर को नहीं तपाते। उन्हें तो आत्म सिद्धि चाहिए। वही एक अभिलाषा, वही एक शिक्षा है।" रक्षा बंधन का प्रचलन भी मुनि-रक्षा के कारण हुआ था, इस तथ्य को यहाँ स्वीकारा गया है। 'गुरु-दक्षिणा' में लेखक के हृदय के भावों का प्रतिबंध दिखाई पड़ता है। नारी हृदय की महत्ता यही है कि उसका स्नेह मृदुल और कठोर कर्त्तव्यों के बीच प्रवाहित होता जा रहा है।' 'निर्दोष' कहानी मनुष्य की वासना एवं कमजोरियों पर प्रकाश डालती है। नारी हृदय की दाम्भिकता का रूप भी यहाँ प्रकट होता है। महारानी श्रेष्ठि सुदर्शन जैसे निर्मोही व सरल व्यक्ति पर बलात्कार का आरोप लगाती है। लेकिन अंत में रानी को अपनी भूलों का पछतावा होता है। और वह सेठ से क्षमा चाहती है। 'आत्मा की शक्ति' में आत्म शक्ति के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। दुनिया भर की शक्तियों का महत्त्व सर्वश्रेष्ठ है। अत: इसको प्राप्त करने के लिए निश्चय ही संयम, त्याग, दृढ़ता एवं मनोनिग्रह को आत्मसात् करने की कोशिश करनी चाहिए। जब इसका विकास होता है, तो मनुष्य के भीतर तेज का गौरव फुट निकलता हैं और भय, निराशा, कायरता, वेदना सब कुछ दूर चले जाते हैं। क्योंकि मनुष्यत्व देवत्व से भी ऊँचा होता है।

'बलिदान' कहानी में कर्त्तव्य को अंकित किया गया है। धर्म की रक्षा हेतु छोटा भाई निष्कलंक हँसते-हँसते अपना बलिदान देकर बड़े भाई अकलंक की रक्षा करता है। अपने अग्रज अकलंक–बाद में जो जैन धर्म के विद्वान प्रसिद्ध आचार्य श्री अकंलक देव से प्रसिद्ध हुए–को छिपा कर स्वयं राजा के सिपाहियों की तलवार का शिकार बनता है। आत्म-बलिदान की गाथा इसी एक वाक्य पर अवलम्बित है-भैया! शीघ्रता करो। वे आ पहुँचे। जैन धर्म की रक्षा तुम्हारे हाथ है। धर्म के प्रचार एवं प्रसार हेतु बडे भाई को सुरक्षित रख स्वयं की बलि देने के आग्रह पर वे दृढ़ रहकर 'नमो सिद्धाणम्' बोल कर शान्ति से प्राण त्याग करते हैं।

'सत्य की ओर' कहानी में त्याग और विवेक शक्ति का महत्त्व अंकित किया गया है, जिनके द्वारा संदेह की दीवार गिर जाती है। विद्युच्चर चोर की महत्ता इसी वाक्य में दिखाई पड़ती है–हाँ, श्रीमान्। कुख्यात विद्युच्चर मैं ही हूँ।

मुझे राज्य की आवश्यकता नहीं है महाराज, मुझे इससे घृणा है। इसी विद्युच्चर के पात्र को लेकर श्री जैनेन्द्र जी ने भी सुन्दर मानवीय भावों एवं मार्मिक कथोपकथन युक्त रोचक कथा लिखी है, जिसमें लोकधर्म की प्रेरणा को व्यक्त किया गया है।

'मोह-निवारण' में भी आत्म-शक्ति की तरह भीतरी शक्ति की सर्वोपरिता अभिव्यक्त की गई है। सभी शक्तियों को यह शक्ति अपने अधिकार में रखती है। विवेक जागृत होने पर मोह का नाश होता है और आत्मशक्ति तेजस्वी हो उठती है।

'अंजन निरंजन हो गया' कहानी में विषय वासना से झुलसे प्राणी को आत्मिक ज्ञान-आभा-की एक चमक प्राप्त होते ही उनका व्यक्तित्व खिल उठता है। श्यामागणिका के मोहपाश में आबद्ध अंजन अपनी आत्मशक्ति पर स्वयं चकित हो जाता है। अंजन को अपनी शक्ति व सफलता का ज्ञान हुआ, पर सफलता के पश्चात वीरों को हर्ष नहीं होता, उपेक्षा हो जाती है और नम्रता प्रकट होती है। 'सौंदर्य की परख' में क्षण भंगुर सौंदर्य की प्रतीति में मनुष्य निरर्थक बंध कर नाना प्रकार के कष्टों को सहन करता है और जब बाह्य सौंदर्य का नशा उतर जाता है, तो यथार्थ का अनुभव होने लगता है।

'वसन्त सेना' कथा में नीच और पतित समझी जाने वाली नारी में भी सच्चाई, हार्दिक प्रेम एवं त्याग की भावना अन्तर्निहित होती है, यह वसन्त सेना के पात्र द्वारा स्पष्ट होता है। वसन्त सेना वेश्या पुत्री होने पर भी पातिव्रत के आदर्श का पूर्ण पालन करती है। अपने प्रियतम चारुदत्त के निर्धन हो जाने पर भी उसे पूर्ववत अपार स्नेह करती हुई कहती है-मेरा धन तुम्हारा हैं चारु! मैं आपकी दासी हूँ, मुझे अन्य न समझिये नाथ!'

'परिवर्तन' में कठोर हृदय राजा श्रेणिक जैन मुनि को कष्ट देकर व निन्दा करते हुए भी खुश होते हुए रानी चेलना को आनंद से कहते हैं कि-वैसे मुनि को समाधि भंग कराने के लिए कष्ट दिए और फिर भी मुनि शान्त भाव से सहते रहे, एक शब्द भी बोले नहीं। तब परम धार्मिक रानी चेलना दु:खपूर्ण शब्दों में कहती है कि 'चार दिन नहीं नाथ। चार महीने बीत जाने पर भी साधु उपसर्ग उपस्थित होने पर डिगते नहीं।' इस प्रकार रानी चेलना के ऐसे मार्मिक कथन से राजा श्रेणिक को पछतावा होता है। मुनि से क्षमा याचना करने जाते हैं और तब से जैन धर्म एवं जैन साधुओं का समादर करने लगे। नारी के कोमल संसर्ग एवं प्रभावोत्पादक व्यवहार से पत्थर हृदय वाला पुरुष भी कितना बदल जाता है, यह दर्शनीय है।

इस प्रकार बाबू बालचन्द्र जैन ने पौराणिक आख्थानों में जान डालकर सभी कहानियों को रोचक बनाया है। श्री नेमिचन्द्र जैन इन कहानियों की विशेषता पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं-'प्लोट, चरित्र और दृश्यावलि (Back Ground) की अपेक्षा से इस संग्रह की कहानियों में लेखक बहुत अंशों में सफल हुआ है, किन्तु स्थिति को प्रोत्साहन देने और कहानियों को तीव्रतम स्थिति में पहुँचाने में लेखक असफल रहा है और उत्सुकता का गुण भी पूर्ण रूप से इन कहानियों में न ही आ सका है। कल्पना और भाव का संमोहक सामंजस्य करने का प्रयास लेखक ने किया है, पर पूर्ण सफलता नहीं मिल सकी है।[1]

प्रो॰ महेन्द्र कुमार न्यायाचार्य की चार-पाँच कहानियाँ 'ज्ञानोदय' में प्रकाशित हुई हैं, जिनमें रमण प्रभाचन्द्र, जटिल मुनि और बहुरूपिया अच्छी कहानियाँ कही जाएंगी। वैसे इनमें टेकनीक का सर्वथा अभाव है। कहानी के लिए परम आवश्यक गुण का भी पूर्ण निर्वाह नहीं हो पाया है। तथा कथा के प्रवाह में भी बीच-बीच में संस्कृत के श्लोक आने से शिथिलता आ गई है-फिर भी इनका आरंभ अच्छा रहा है। तीव्रतम परिस्थिति एवं कलात्मक अन्त का सर्वत्र होने पर भी धार्मिकता व मार्मिकता के कारण कहानियाँ अच्छी हैं।

'मोक्षमार्ग की सच्ची कहानियाँ' नामक कथा संग्रह में पं॰ बुद्धिलाल जी जैन ने छोटी-छोटी धार्मिक कहानियाँ लिखी है। इसमें सत्य, प्रेम, अहिंसा, दानधर्म आदि का महात्म्य वर्णित किया गया है। उपदेशात्मकता के साथ-साथ मनोरंजन भी इअन कथाओं से प्राप्त होता है कथा की रोचकता के कारण उपदेशात्मक वृत्ति नीरसता पैदा नहीं होने देती है। पुरानी शैली की इन कहानियों की भाषा शुद्ध खड़ी बोली है।

स्व भगवत् स्वरूप जैन 'भगवत्' भी आधुनिक जैन साहित्य के प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय कलाकार हैं। उन्होंने काफी परिमाण में साहित्य सृजन किया है। कहानीकार के रूप में वे विशेष प्रसिद्ध हुए हैं। मानवी, दुर्गद्वार, विश्वासघात, रसभरी, उस दिन, पारस और पत्थर, मिलन आदि उनके प्रमुख सुन्दर कहानी-संग्रह हैं। सभी संग्रहों की कहानियाँ पौराणिक कथा वस्तु पर आधारित हैं, फिर भी रोचक कथावस्तु व सर्वथा नूतन भाषा शैली, कहानी कला के तत्त्वों के कारण रसभोग्य बनने में सफल रही हैं। भगवत जी भी अपने उद्देश्य में काफी अंश तक सफल हुए हैं। रसात्मकता, जिज्ञासा पूर्ति और आचार-विचार, दर्शन सम्बंधी आदर्श तत्त्वों का कथाओं में परोक्ष रूप से निरूपण किया गया

---

1. डा॰ नेमिचन्द्र जी : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ॰ 98.

है उन्होंने धार्मिक कथा वस्तु के अतिरिक्त सामाजिक कहानी संग्रह, नाटक एवं धार्मिक काव्यादि का भी सृजन किया है, लेकिन कथा-साहित्य का उन्होंने सविशेष निर्माण किया हैं। अब उनके कहानी संग्रहों की प्रमुख कहानियों की विषय वस्तु देखने का उपक्रम किया जाएगा।

उस दिन :

अतीत की कथा वस्तु पर लिखी गई इन कहानियों के लेखक के विचार इस प्रकार हैं–"ये जो कहानियाँ मैं आपके सामने पेश कर रहा हूँ, सब जैन साहित्य की विभूतियाँ हैं, पौराणिक कथानक हैं। जो कुछ हैं, पौराणिक संपत्ति हैं। सिर्फ भाषा शैली का पहिरावन मेरा है। जहाँ तक मुझसे बन पड़ा है, नयी शैली, नयी भाषा और कहने के नए तरीके से काफी कायाकल्प कर दिया है। पात्रों के नाम और प्लोट दो चीजें ही मैंने ली हैं, जो कि उनकी आभाएँ कही जा सकती हैं। और यों शरीर नया, आत्मा पुरानी है।"[1] इसमें सात कहानियाँ हैं-उस दिन, पत्थर का टुकड़ा, उपरम्मा, शिकारी, आत्मसमर्पण, राजपुत्र और पूर्णिमा।

'उस दिन' में त्यागी धन्यकुमार एवं हलवाहक की कथा है, जो खेत में से निकले धन को अपना न समझकर अन्य का समझते हुए उसे स्वीकारने से दोनों इन्कार करते हैं, क्योंकि जितना अंतर प्रकाश और अंधेरा, जमीन और आकाश में है, संभवत: उतना ही अन्तर परधन के स्वामीत्व के सम्बंध में 'आज' और 'उस दिन' (गौरवमय प्राचीन काल) में होगा। कहानी का प्रारंभ लेखक ने कलापूर्ण ढंग से किया है-"स्वच्छ आकाश! शरीर को सुखद धूप। नगर से दूर रम्य-प्राकृतिक, पथिकों के पद-चिह्नों से बनने वाला-गैर कानूनी मार्ग, पगडण्डी। इधर-उधर धान्य के अन्नदाता कृषक! कार्य में संलग्न और सरस तथा मुक्त मधुमासी पक्षियों के जोड़े। श्रावण-प्रिय मधुस्वर से निनादित वायु मण्डल। और समीर की प्राकृतिक आनन्ददायक झंकृति।

"महामानव धन्यकुमार चला जा रहा था, उसी पगडण्डी पर। प्रकृति की रूप-भंगिमा को निरखता, प्रसन्न और मुदित होता हुआ।[2]

'पत्थर का टुकड़ा' में गरीब लेकिन सहृदयी प्रेमी का वर्णन है। गरीबी जीवन का अभिशाप शायद हो, लेकिन अमानवीय अमीरी की अपेक्षा गरीबी में मानवता व करुणा सविशेष होती है। प्रेम की गहराई तक गरीब जितना पहुँच सकता है, अमीर शायद ही। अहिदेव और महिदेव नामक दो गरीब भाई परदेश

1. भगवतस्वरूप : उस दिन–दो शब्द, पृ० 2.
2. वही, पृ० 18.

जाकर गाढ़े पसीने की कमाई से रत्न खरीद कर थोड़े समय के लिए मोहवश, स्वार्थ के चक्कर में पड़ते हैं, लेकिन धन को ही ऐसे कुचक्र का मूल समझ रत्न को फेंक फिर से स्नेहपूर्वक पूरा परिवार रहता है।

'उपरम्मा' में रावण के एक दूसरे पहलू पर प्रकाश डाला गया है। जैन साहित्य में रावण को जैन धर्मानुयायी बताकर उसके अच्छे अंगों को विशेष उजागर किया है। उपरम्मा जैसा अत्यन्त सुन्दर परस्त्री को स्वेच्छा से त्याग दिया और परपुरुषगमन रूप जघन्य पाप को प्रदर्शित किया। वरना रानी उपरम्मा रावण के प्रति आसक्त होकर स्वयं आत्म समर्पण करने गई थी। रावण से प्रतिबोध पाकर उसका हृदय आत्मग्लानि से भर गया। उसने महसूस किया कि 'रावण कितना महान है, कितना उच्च है, वह पुरुष नहीं, पुरुषोत्तम है. वंदनीय है!!!

'आत्म समर्पण' में सच्चे विराग की महिमा बताई गई है क्योंकि वासना युक्त विराग दम्भ है। विराग का कलंक हैं। जबकि ईच्छा शक्ति एवं वासना से मुक्त चित्त-शक्ति से प्राप्त वैराग्य सच्चा संयम है। शुभचन्द्र और भर्तृहरि दोनों वैराग्य के पथ पर चल दिए। संभवत: आत्म विकास के लिए शुभचन्द्र की आध्यात्मिकता ने एक मौका दिया, जिससे वह तेजस्वी राजपुत्र न रहकर थोड़े ही समय में परम शान्ति वैराग्य मण्डित दिगम्बर साधु की श्रेणी में जा बैठे और माया-मोह को छोड़; परम वैरागी बन गए। जबकि भतृहरि ने तपस्वीराज नामक साधु की 12 वर्ष कठिन सेवा करके जंत्र, तंत्र, मंत्र एवं अन्य विधाएँ प्राप्त कीं और फिर गुरु की इजाजत लेकर शिष्य समुदाय के साथ आश्रम बनाकर रहे एवं भैया को खोज कर निर्धन भैया को 'कलंकरस' नामक औषधि भेजी, जो ताम्बे को सोना बना सकती थी लेकिन निर्मोही शुभचन्द ने पत्थर पर लुढ़का दी। उसके लिए तो पारस पत्थर समान था। स्वयं भर्तृहरि द्वारा लाए गए आधे रस को पुन: फेंक देने पर भर्तृहरि को भाई की मति व व्यवहार पर क्षोभ और गुस्सा आता है। उस पर शुभचन्द्र पवित्र उपदेश देते हुए कहते हैं, 'भर्तृहरि! तुम विराग के लिए यहाँ आए थे। धन-दौलत, मान-सम्मान और राज्य लक्ष्मी को ठुकराकर। मैं देख रहा हूँ कि सोने के लोभ को यहाँ आकर भी तुम नहीं छोड़ सके हो। आज भी तुममें कलंक बाकी है। इतने वर्ष बिताकर भी विराग की पवित्रता को मलिन करने क्यों आए हो? इसे विराग नहीं, दम्भ कहते हैं भोले प्राणी।[1] भर्तृहरि की आँखों से दम्भ का, मोह का पर्दा खिसक कर सच्चे वैराग्य की पावन ज्योति दीप्त हो उठती है। वह भैया के चरणों में गिर जाता है।

---

1. स्व० भगवतस्वरूप : उस दिन—आत्मसमर्पण—कहानी, पृ० 67.

'राजपुत्र' में महाराजा श्रेणिक एवं महारानी चेलना जैसे सुयोग्य माता-पिता के सुयोग्य पुत्र वारिषेण की त्याग-भावना व्यक्त की गई है। आत्म-चिंतन एवं मनन में डूबा हुआ कुमार स्वयं विराग की साक्षात् मूर्ति था। श्मशान के पास साधना में तल्लीन वारिषेण के निकट शहर का कुख्यात चोर राजमहल से चुराए हार को फेंक कर छिप जाता है। फलत: सिपाही वारिषेण को दंभी समझकर राजा के संमुख प्रस्तुत करते हैं। स्वयं राजा प्राण दण्ड की सजा देते हैं-न्याय के सम्मुख ममत्व की हार स्वीकारते हुए-कुमार चुपचाप दण्ड स्वीकार करते हैं, अपनी सफाई तक नहीं देते, केवल संसार व भाग्य की बिडम्बना के बारे मे सोचते रहते हैं। जैसे-ही जल्लाद की तलवार उठी, आश्चर्य! कुमार के तपोबल के सामने वह पुष्पमाला बन गई। राज सिंहासन पर वारिषेण विराजमान हैं, एवं देवता गण पुष्प वृष्टि करते हैं। सभी आश्चर्य से इस कौतुक को देखते रहते हैं। तभी विद्युत चोर भी उपस्थित होकर सब वृतान्त कहकर अपना गुनाह स्वीकार करता है। राजा श्रेणिक पश्चात्ताप से कुमार से क्षमा-याचना करते हैं। लेकिन वारिषेण दुनिया के ऐसे तमाशों से विरक्त होकर मुक्ति के पथ पर अग्रसर होने के लिए निकल पड़ा था।

'पूर्णिमा' नामक अंतिम कहानी में लेखक ने स्पष्ट किया है कि धन, रूप, शक्ति से मानव की महानता नहीं नापी जाती, महानता तो है त्याग, तपस्या, संयम व मानवतापूर्ण वातावरण में। गरीब लकड़हारे ने पूर्णिमा के दिन ब्रह्मचर्य का व्रत कठिन संजोग में भी निभाकर अपनी पवित्रता व दृढ़ता का सबूत दिया, जबकि सामने शहर की सर्वश्रेष्ठ रूपभोग्या नर्तकी पद्मावती को गाढ़े पसीने की कमाई का 500 रुपये देकर भोग के समय व्रत की याद आ जाने से दूर चला जाता हैं और पद्मावती का दिल जीत लेता है।

(2) दुर्गद्वार :

इस संग्रह में भी भगवत जैन ने पौराणिक आधार पर से कहानियाँ लिखी हैं। "कहानी और कथा में इतना ही अन्तर होता है कि कहानी काल्पनिक भी होती है। कथा की आधारशिला सत्य घटना होती है। कहानी का उद्देश्य मनोरंजन या कोई शिक्षा प्रतिपादन होता है, जबकि कथा शिक्षा के साथ-साथ किसी सैद्धांतिक तथ्य की स्पष्टता या पुष्टि करता है। यदि पौराणिक कथाओं को सिद्धान्तों के दृष्टान्त कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी। ऐसी सैद्धांतिक सच्ची घटनाओं का संकलन है इस 'दुर्गद्वार' में।[1]

प्रथम कहानी 'दुर्गद्वार' में अहिंसा का महत्त्व बताया गया है। हिंसा, बलि

1. भगवत जैन : दुर्गद्वार, प्रस्तावना, कपूर चन्द्र जैन, पृ० 3.

चढ़ाकर दुर्गद्वार स्थिर रखने की योजना छोड़कर दुर्ग के द्वार को खंडित दशा में रखना जैन धर्मी राजा सुमित्र बेहतरीन समझते थे। क्योंकि निरपराध मानव की बलि चढ़ाकर राजा कलंकित नहीं होना चाहता था। अहिंसा की अजेय शक्ति या राजा की दृढ़ता के कारण दूसरे दिन दुर्गद्वार को कुछ न हुआ, और वह स्थिर खड़ा रहा।

'शैशव' में हिंसा का क्रूर परिणाम दिखाया गया है। बालक सौमक निर्दोषता से सच्चाई प्रकट कर अपने मित्र की हत्या का पर्दाफाश करता है। अपने बाल साथी समुद्रदत्त की हत्या गहनों के लोभ से उसके पिता ने ही की थी, इस रहस्य के उद्‌घाटन पर सौमक के पिता गोपालन को मृत्यु दण्ड मिलता है। मनुष्य को अपने हिंसक कर्म का फल मिल ही जाता है।

'मातृत्व' चरित्र-चित्रण की दृष्टि से इस संग्रह की अच्छी कहानी है। मरुभूति की चारित्रिक विशेषता मनोवैज्ञानिक ढंग से व्यक्त की गई है। भगवान पार्श्वनाथ के पूर्व जन्म की वह कथा है, जिसमें उन्हें कितने जन्मों तक अपने बड़े भाई कमठ के द्वारा किए गए अनेकानेक कष्टों, परिषहों को सहना पड़ा, लेकिन उन्होंने अपनी सज्जनता व शान्ति न छोड़ी, कभी क्रोध या तिरस्कार न कर शान्त चित्त से क्षमार्थ भावपूर्वक सब सहते रहे और अन्त में तीर्थंकर पद के अधिकारी हुए।

'अपराधी' में नारकीय संपत्ति और उसके फलस्वरूप विपत्ति की स्थिति का वर्णन किया गया है। 'जल्लाद' एवं 'नर्तकी' साधारणतः अच्छी कहानियाँ हैं। अन्य कथा-संग्रह 'पारस और पत्थर' में इसे संग्रहीत किया गया है।

(3) विश्वासघात :

इसमें आठ पौराणिक कथाएँ संग्रहीत की गई हैं-विश्वासघात, पाप का प्रायश्चित, रात की बात, क्षमा के पथ पर, करनी का फल, आत्म शोध, अन्तर्द्वन्द्व और शान्ति की खोज में।

प्रथम कहानी 'विश्वासघात' में मित्र द्वारा किए गए विश्वासघात के कारण राजा वीरसेन के वैराग्य एवं राजा मधु का वीरसेन की स्वरूपवान पत्नी चन्द्रमा पर आसक्त होकर जबर्दस्ती अपने अंतःपुर में रखने की कथा है। चन्द्रमा सौंदर्यवती के साथ बुद्धिशाली एवं व्यवहारिक भी थी, अतः सहायक-मित्र बड़े राजा मधु की आरती उतारने की पति की आज्ञा का विरोध करती है। लेकिन वीरसेन नहीं मानता है और रानी को जो डर था वही हुआ। राजा मधु को अन्त में परस्त्री के साथ इस प्रकार के कुकर्म से पछतावा होता है और

दोनों दिगम्बर साधु से-वीरसेन राजा ने विरक्ति के कारण दीक्षा ले ली थी-दीक्षा ग्रहण कर पाप-मुक्त होने की कोशिश में लगते हैं।

'पाप का प्रायश्चित' में कामुकता के दुष्परिणाम को प्रकट किया गया है, जो ज्ञान को भी अंधा कर अच्छे-बुरे का भेदभाव मिटा देता है। देश भूषण एवं कुल-भूषण दो राजकुमार भाइयों की मानसिक परिस्थिति का सुन्दर चित्रण किया गया है। बचपन से आश्रम में विद्याभ्यास करते रहने से महल में छोटी बहन की स्थिति से वे अनभिज्ञ दो भाई गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते समय स्वागत-सत्कार के समारोह में अपनी बहन के सौंदर्य से मुग्ध होकर पत्नी बनाने का स्वप्न देखते हैं, लेकिन वास्तविकता का पता चलते ही लज्जा एवं आत्मग्लानि से भरकर संसार-त्याग करने का निश्चय करते हैं।

'रात की बात' में संयम-नियम के महत्त्व को अंकित करते हुए रात्रि-भोजन त्याग के लाभ का वर्णन किया है। संयम-नियम रहित मनुष्य पशु समान है तथा इनके पालन से पशु भी-'देवत्व' पा सकता है।

'क्षमा के पथ पर' में रानी सुमन के कुबड़े के साथ व्यभिचार से क्षुभित राजा की क्षमावृत्ति और वैराग्य भावना का मार्मिक अंकन किया गया है।

'करनी का फल' में अनेक गुणों से विभूषित अयोध्या के राजा सूरत की कामभोग के प्रति तीव्र आसक्ति का रोचक वर्णन है। 500 रानियों के साथ यथेच्छा काम भोग करते हुए करनी का फल पाने पर राजा को पछतावा होता है, उसका अच्छा निरूपण किया है। साधु-मुनियों की आवभगत में लीन राजा की उपेक्षा देखकर महारानी सती-साधु निंदा का पाप करने के फलस्वरूप कुष्ठ रोगिणी हो जाती हैं। पापाचार के ऐसे तात्कालित भयंकर फल को देख राजा को विषय-वासना के प्रति नफरत जाग उठती है और संसार का त्याग कर जंगल में तपस्या के लिए चले जाते हैं।

'आत्म बोध' से सामान्य कथा वस्तु है, जिसमें बेवफाई को निरूपित करने वाली सात चोर भाइयों एवं राजकुमारी मंगी की बेवफाई की कहानी है। अंत में सभी संसार त्याग करते हैं।

'अन्तर्द्वन्द्व' इस संग्रह की उत्कृष्ट कहानी है, जिसमें प्रमुख पात्र प्रभव और सुमित्र दो गहरे मित्र का चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिक ढंग से किया गया है। पात्रों का मानसिक विश्लेषण भगवत जी की अनूठी विशेषता है। प्रभव बिछुड़े हुए मित्र सुमित्र के बिरह में दिन-रात व्याकुल रहता है, लेकिन पुनः मिलन के समय उन्हीं मित्र के साथ अनिद्य सुन्दरी को देख मित्रता भूल वासना का शिकार हो जाता है।

प्रभव की मानसिक स्थिति का लेखक वर्णन करते हुए लिखते हैं-प्रभव का मन न जाने कैसा हो उठा था? जिस मित्र के लिए कई रातें वह आराम से सो न सका, जिससे मिलने के लिए वह रात-दिन बेचैन रहा, आज उसके आ मिलने पर जैसे एक बोझ सा, दबाव सा पड़ रहा है। सहसा हो जाने वाली फिक्र जो चैन के रास्ते की ठोकर बन गई है।[1]

अंतिम कहानी 'शान्ति की खोज' में वैभव को सच्चा सुख मानने से कितना पतन होता है और क्षण-क्षण विनाश की ओर ले जाने वाले वैभव, विलास एवं रूप-कामना की प्यास में सुख-शान्ति को खोजना कितना व्यर्थ है-कितनी बड़ी भारी भूल है, इस तथ्य का सुन्दर रोचक शैली में निरूपण किया गया है।

अति स्वरूपवान चौथे चक्रवर्ती राजा सनतकुमार अपने रूप पर स्वयं रीझ गये, अहंकार एवं अभिमान से भरने के कारण इनके देह में वह अपूर्व दीप्ति न रही और सौंदर्य की ऐसी अनिश्चितता देखकर सनतकुमार की आंखें खुल गईं और बाहरी सौंदर्य से आत्मिक सौंदर्य सनातन सत्य को खोजने के लिए पल-पल मृत्यु की ओर जाने वाली जिन्दगी को सार्थक करने के लिए जंगल में चले गये। राज मुकुट युवराज देवकुमार के मस्तक पर आभूषित किया गया।

(4) पारस-पत्थर :

इसमें बहुत-सी कहानियों का संग्रह किया गया है, जिनमें प्रमुख हैं पारस-पत्थर, अभागा, कलाकार, आत्मबोध, परख, प्रतिज्ञापालन, जल्लाद एवं दरवाजा। पुरातन कथा वस्तुओं को आधुनिक विचारधारा एवं नूतन भाषा-शैली से सुसज्जकर प्रस्तुत किया है। उन्हीं के शब्दों में–आज का युग जैसी भाषा-शैली में पढ़ना चाहता है, मैंने कहानियों को वैसे ही रूप में पाठकों को देने की कोशिश की है। यह कहना अहमन्यता होगी कि अब वे निखरे रूप के कारण संजीवन पा गई है। मेरा इतना ही उनके साथ सम्बन्ध है, जितना कि रूपवान व्यक्ति के शरीर से कीमती लुभावना और सामायिक वस्त्रों का।''

पारस-पत्थर के प्रारंभ में प्रसिद्ध साहित्यकार श्री जैनेन्द्र जैन ने लिखा है–''भाई भगवतस्वरूप जी जैन वाङ्मय से वैसी चीजें चुनकर दोबारा जैन समाज को ही देने के प्रयत्न में लगे हैं, यह सराहनीय है।''[2]

'पारस-पत्थर' इसी शीर्षक की कहानी में अनाथ गरीब गौतम मुनिराज की अपरिग्रह वृत्ति एवं संयम से काफी प्रभावित होता है और पारस जैसे

1. भगवत जैन : 'विश्वासघात' में अन्तर्द्वन्द्व–कहानी, पृ० 85.
2. भगवत जैन : पारस पत्थर, पृ० 2 (प्रस्तावना दो शब्द)।

मुनिराज के संसर्ग में आता है तो लोहे-सा गौतम स्वर्ण-सा बन जाता है। उसके जीवन की दशा ही परिवर्तित हो जाती है। "भोजन को जीवन का हेतु न समझ कर जीवन का साधन मात्र समझना चाहिए, क्योंकि-संसार में अकेले आये हैं। कोई किसी का राजा नहीं, साथी नहीं। सब अपना-अपना सुख-दुःख आप झेलते हैं। मैं तुम्हें जीवनदान दूंगा। वह जीवन जो वास्तविक जीवन है। अजर अमरता पर जिसका आधिपत्य है। भोजन के हेतु ही जीवन नहीं है, गौतम, जीवन के हेतु ही भोजन करना सत्यता है।''

दूसरी कहानी अनुरुद्ध में महात्मा अनुरुद्ध एवं वेश्या मदनपताका के चरित्रों का चित्रण अत्यन्त गहराई से किया गया है। विराग की आड़ में बैठी वासना एवं दम्भ का पर्दाफाश इसमें किया गया है।

'कलाकार' की कथा वस्तु 16वीं 17वीं शताब्दी की है। पद्मनगर के राजा का प्रियपात्र 'हाल' का पुत्र गुलाल बहुरूपिये का स्वांग भरते-भरते निपुण हो गया और सच्चा कलाकार 'स्वांग' में निजता खो देता है। एक बार युवराज की आज्ञा से शेर का स्वांग भरते समय युवराज के उकसाने पर उन्हें पंजों के नाखनू से घायल कर मार डालता है। युवराज की मृत्यु के शोक को कम करने के लिए महाराज की आज्ञा पर दिगम्बर साधु का वेश धारण करना पड़ा, लेकिन यह उसके कलाकार जीवन का अंतिम वेश था। सच्चे हृदय से यह मुनिराज बन गया। ''वह निमित्त को दोष नहीं देता, क्योंकि वह तो नादानी है। भाग्य और निमित्त दो बड़ी शक्तियाँ हैं, जिनके सामने बेचारा गरीब प्राणी खिलौना मात्र रह जाता है।'' अन्त में साधु वेश में उपदेश देता हुआ ब्रह्मगुलाल उसी स्वांग की असत्यता को भूलकर सच्चे साधुपन में खो गया और वेश का महत्व सिद्ध कर दिया। 'मां ने, बाप ने, स्त्री ने, सब ने जी-तोड़ कोशिश की, पर ब्रह्मगुलाल ने साधुता का त्याग करना स्वीकार न किया। वह नगर से दूर, वन में आत्म-आराधना में लीन हो गया।

'आत्म-बोध' की कथा वस्तु प्राचीन है। 'सुकुमाल' उपन्यास में जिसकी चर्चा आगे आ चुकी है, उसी के एक अंश रूप कथावस्तु है। सूर्यमित्र नामक राजपुरोहित रहस्य एवं भविष्य जानने की इच्छा से अल्पकाल के लिए दिगम्बर साधु का वेश धारण करके अंत में सचमुच ही उसी रंग में रंग जाते हैं। पवित्र वेश एवं आचार-विचार का प्रभाव उन पर पड़ता है। आत्म बोध प्राप्त होने पर फिर उस विद्या पाने का मोह नष्ट हो जाता है। बाद में वे केवल महान तपस्वी ही नहीं, आचार्य भी बने एवं अपने गुरु सुधर्माचार्य से पश्चाताप के स्वर में कहते हैं-नहीं प्रभो! अब मुझे विद्या की जरूरत नहीं, अब मुझे उससे कहीं

मूल्यवान वस्तु आत्मबोध मिल चुका है। उसे पा लेने पर किसी की इच्छा नहीं रहती।

'परख' कहानी में एक गुरु के दो शिष्य भूतबलि एवं पुष्पदन्त की कसौटी की कथा है। क्योंकि ज्ञान का भण्डार गुरु किसी सुयोग्य शिष्य को सौंपना चाहते थे। दोनों शिष्य उनकी कसौटी से पार उतरे और गुरु ने भी संतोष व प्रेम से उस भण्डार को सौंप दिया। अनन्तर शास्त्र उद्धारक, शास्त्र रचयिता और ज्ञान-प्रवर्तक का श्रेय इन दोनों शिष्यों के हिस्से में आया।

'प्रतिज्ञापालन' में दृढ़ता एवं निष्ठापूर्वक किये गये कार्य से प्राप्त फलसिद्धि का सुन्दर वर्णन है, फिर कार्य चाहे छोटा हो या बड़ा।

'नीति की राह पर' में कथाकार ने प्रतिज्ञापालन करने से भी मन से उठे हुए विचारमात्र को प्रतिज्ञा की भांति पालन करने वाले वीर-प्रतिज्ञ की महानता अंकित की है। कुबेर कान्त नामक अति समृद्ध नवयुवक की मनोदशा का लेखक ने अच्छा निरूपण किया है। संपन्न पिता के द्वारा एक हजार आठ कन्याओं के पाणिग्रहण के विधान एवं धूमधाम के अयोजन का विरोध करने की हिम्मत एक-पत्नी-व्रत का निर्धारण कर चुके कुबेरकान्त में नहीं है। यहाँ उसकी उलझन भरी मानसिक दशा का मार्मिक चित्रण किया गया है। अन्त में उसके व्रत की अडिग निष्ठा के कारण उसके पिता को झुकना पड़ता है और प्रियदत्ता नामक सुकन्या से विवाह संपन्न होता है।

'जल्लाद' की कथा प्रतिज्ञा-पालन का महत्व अभिव्यक्त करती है। जल्लाद के एक छोटे-से व्रत ने उसे अहिंसक और सम्मानीय बना दिया तथा राजा के लिए भी आदर्श स्थापित कर दिया। चतुर्दशी के दिन किसी की हत्या न करने का व्रत साधु से लेने पर प्राणान्त दण्ड की सजा पाने पर भी व्रत निभाने के लिए जल्लाद की दृढ़ता देख राजा उसे मुक्त करता है और धन देकर सम्मान करता है।

'चरवाहा' में करनी का फल अंकित किया गया है। कर्मानुसार फल पाने का अधिकारी प्रत्येक व्यक्ति होता है। गरीब लेकिन ईमानदार अकृत द्रव्य और उसकी मां मजदूरी करते हुए भी एक दिन परम उपकारी दिगम्बर साधु को आहारदान देकर पुण्य के भागी बनते हैं।

(5) मिलन :

'मिलन' प्रेरणात्मक पौराणिक कहानी संग्रह का प्रकाशन अभी सन् 1975 में उनके अनुज वसन्त जैन ने करवाया, क्योंकि भगवत जी का देह विलय 1944 ई० में हुआ था। सहज रूप से बोध प्राप्ति एवं आनंद-रस-प्राप्ति

इनकी कहानियों में सर्वत्र छिपा रहता है। सुन्दर रोचक कथावस्तु, वातावरण, विश्लेषणात्मक चरित्र-चित्रण एवं मार्मिक कथोपकथन के द्वारा जैन संस्कृति एवं विचारधारा का प्रचार-प्रसार उनके कथा-साहित्य का महत् उद्देश्य है, जिसमें वे काफी हद तक सफल भी हुए हैं।

इस संग्रह में मिलन, पूंजीपति, लुटेरा, प्रतिशोध, खून की प्यास एवं चरवाहा छः कहानियाँ संग्रहीत हैं, जिनमें से अंतिम 'चरवाहा' अन्यत्र भी संकलित है।

'मिलन' का प्रारंभ ही लेखक ने सुंदर विचारात्मक ढंग से किया है—वासना को इसलिए भी बुरा कहा गया है कि वह विषयी के प्राप्त ज्ञान को भी खो देती है। वह सौंदर्य मदिरा पीकर मनुष्य पागल हो जाता है। भूल जाता है कि में किस अनर्थ की ओर दौड़ रहा हूँ। और उसी उन्मत्त दशा में वह ऐसा भी कर बैठता है कि फिर पीछे जिन्दगी भर उसके लिए रोने, पछताने, मुँह दिखाने भर के लिए जगह न पाये। यक्ष दत्त युवराज साधु मुनि की चेतावनी के कारण महा अनर्थ से बच जाता है। क्योंकि अपनी ही सगी माँ मित्रवती से मिलन के लिए वह वासना से उद्दिप्त होकर जा रहा था, लेकिन परोपकारी मुनि महाराज ने जब सच्चाई बताई कि तूं मित्रवती का ही पुत्र है, जिसे रत्न कम्बल में लपेटकर वह नदी के किनारे वस्त्र धोने गई थी और पीछे से कुत्ते ने खाने की चीज समझकर उठा लिया। बाद में राजा यक्ष एवं रानी राजिला ने तुझे बेटे की तरह पाला। यक्षदत्त की आँखें खुल गईं, मनुष्यता जग उठी और-माँ-बेटे का पवित्र मिलन हुआ।

'पूंजीपति' का प्रारंभ सुन्दर प्राकृतिक वर्णन से किया गया है। प्रकृति के सौंदर्य के कारण कभी-कभी उसके कारण पैदा होती समस्याओं का भी लेखक ने निरूपण किया है। चम्पापुरी के महाराज अभयवाहन और उनकी सौंदर्यवती महारानी पुण्डरिका दोनों को वर्षा ऋतु मुग्ध करती प्रतीत होती है, उसी समय महल के सामने नदी में एक लकड़हारे को अथक परिश्रम करते देखा तो दयावश बुलाकर कुछ मांगने को कहा, लेकिन वह तो काफी अमीर था, वहाँ का अखूट ऐश्वर्यशाली श्रेष्ठि था। लेकिन वह अत्यन्त कृपण था, जबकि उसकी पत्नी नागवसु उदार एवं महान स्त्री थी। वह अपने पति के धनलोभ को धिक्कारती थी। श्रेष्ठि इकट्ठी की गई संपत्ति से नहीं, बल्कि परिश्रम करके धन इकट्ठा करते-करते रत्न का मंदिर बनवाना चाहता था, लेकिन मंदिर बनने से पूर्व धन बटोरते-बटोरते ही वह चल बसा।

दृढ़ता व एकाग्रता का एक अंश जीवन को धन्य बनाता है। इस तथ्य को

प्रतिपादित करती हुई कहानी 'लुटेरा' में बताया गया है कि अच्छे व्रत की शिक्षा का पालन मनुष्य को महान बना देती है। रात्रि-भोजन त्याग के कारण ही धनदत्त लुटेरा जहरीले लड्डू खाने से बच जाता है एवं ढेर सारी संपत्ति का अकेला मालिक बन जाता है। लेकिन इसी माया के कारण घिनोने काम किये गये हैं, ऐसा सोचकर संपत्ति के प्रति तिरस्कार व वैराग्य पैदा होता है और धन के मोह को त्याग साधु बन जाता है। क्योंकि एक छोटे-से व्रत पालने के कारण उसके विचारों में आमूल परिवर्तन आ गया था। छोटे-से व्रत पालने से यदि अपार संपत्ति मिल सकती है तो व्रतों के पालने से ली हुई साधु जिन्दगी से आत्म कल्याण प्राप्त होना ही है! धन की निदर्यता ने लुटेरे की आंतरिक दशा को झकझोर साधु मार्ग की ओर प्रेरित किया।

'प्रतिशोध' में निर्दयी मनुष्य अपने से निर्बल या अधीनस्थ मनुष्य पर जुल्म ढाता है, लेकिन बाद में करनी के फल से सजा भोगते समय वह दया का भिखारी बन जाता है, इस तथ्य का उद्घाटन किया गया है। महाराजा सुघोष ने पाकशाला के अधिकारी जयदेव को छोटी-सी गलती के कारण निदर्यता से मरवा डाला और फिर दूसरे जन्म में वह जयदेव के दूसरे जन्म के रूप से वह जिह्वालम्पट मारा गया।

'खून की प्यास' कहानी की कथावस्तु में महाराज अरविंद मौत की शय्या पर लेटे-लेटे 'पहला सुख निरोगी काया' का महत्व अनुभव कर रहे थे। अहिंसा के महान सिद्धान्त का परोक्ष प्रतिपादन इसमें किया गया है। महाराज अरविंद अपने असह्य दाह ज्वर को शांत करने के लिए रक्त से वापिका भरने की आज्ञा अपने शान्त, अहिंसक पुत्र कुरुचिन्द को करता है। पिता की आज्ञा का पालने करने के लिए वह डरते हुए मन से हिरनों का शिकार करने के लिए जंगल में जाता तो है, लेकिन उसकी अन्तरात्मा में ज्ञान होता है और वह अहिंसा की पुनीत दृढ़ता के साथ वापस लौटता है। लाख के लाल रंग का पानी वापिका में भरवाकर पिता को निमग्न करवा दिया जाता है। थोड़े समय के लिए महाराज को रोग-शांति का भ्रम होता है, लेकिन चुल्लू भर चखने से वास्तविकता का पता चलने पर क्रोध से पागल होकर पुत्र को मारने के लिए जब छूरी को लेकर आगे बढ़ता है, तब फिसलकर औंधे मुँह गिर जाने से अपने ही पेट में वही छूरी घुस जाने से खून का फव्वारा छूटता है। उसकी खून की प्यास बुझी कि नहीं, पता नहीं।

6. मानवी :

ऐतिहासिक कथाओं पर आधारित इस संग्रह की कहानियाँ नारी जीवन में

उत्साह, श्रद्धा, करुणा, प्रेम एवं सात्त्विक भावों की अभिव्यंजना करने में काफी सक्षम है। इस संकलन में जो छः कहानियाँ नारीत्व, अतीत के पृष्ठों से, जीवन पुस्तक का अंतिम पृष्ठ, चिरंजीवी और अनुगामी हैं, उनका आधार प्राचीन कथाग्रन्थ पद्मपुराण, सम्यकत्व-कथा-कौमुदी, श्रेणिक-चरित और पुण्याश्रवकथा-कोष आदि रहे हैं। नारी के आत्म विकास के लिए सहायक प्रेरणा रूप इन कहानियों का अत्यन्त महत्त्व है।

'नारीत्व' कहानी में नारी के सतीत्व एवं उत्साह का अपूर्व महात्म्य दिखलाया गया है। अयोध्या के महाराज मधूक की महारानी की धीरता की स्वर्णिम झलक, साहस, कर्तव्य परायणता, पतिव्रता का तेज एवं सतीत्व के गौरव को बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। जब राजा मधूक दिग्विजय के लिए गमन करते हैं, तभी पीछे से दुष्ट राजाओं का आक्रमण होता है। उस समय महारानी देश-स्वातंत्र्य की महत्ता अनुभव कर स्वयं रणांगण में उपस्थित घमासान युद्ध में दुश्मनों के दांत खट्टे कर देती है और विजय प्राप्त कर बता देती है कि नारी अबला नहीं है, वक्त आने पर किसी भी योद्धा से कम सबला नहीं है। स्वदेशगमन के बाद राजा को इस समाचार से प्रसन्नता के स्थान पर असूया, जलन पैदा होती है, और रानी को प्रासाद से बाहर कर देते हैं। तत्पश्चात् महाराज को दाह-रोग होता है, जो सैकड़ों उपचार के बावजूद भी शान्त होता नहीं है। अन्त में सती महारानी की अंजुली के पानी के छींटों से रोगमुक्त होता है। नारी के दिव्य तेज के सामने अहंकारी पुरुष को झुकना पड़ता है। उसके अहं के समक्ष नारी की कोमल प्रकृति की जीत हुई। महाराज को महारानी की महत्ता प्रतीत हुई।

'अतीत के पृष्ठों से' कहानी में भी नारी के विविध रूप एवं स्वभाव का दिग्दर्शन कराया गया है। जिनदत्ता के उदार व धार्मिक हृदय के प्रकाश के सामने स्वयं देवी को भी झुकना पड़ता है। अन्त में घातक, क्रूर, ईर्ष्यालु हृदयवाली मां की लाड़ली पुत्री कनकश्री का देवी के कुण्ठित खड्ग से ही वध हो जाता है। कनकश्री की ईर्ष्यालु मां का पाप प्रकट होने पर उसे दण्ड दिया जाता है। क्योंकि सत्य छिपाने से छिपता नहीं। लाख मिथ्या प्रचार करने पर या आवरण डालने पर भी सच्चाई प्रकट हुए बिना नहीं रहती। इस कहानी में हृदय को स्पर्शने की अजब ताकत है। घटना चमत्कार इतना विलक्षण है कि पाठक रसमग्न हुए बिना नहीं रहता।

'जीवन का अंतिम पृष्ठ' कहानी में रात्रि-भोजन त्याग का विशद महात्म्य अंकित किया गया है। एक छोटी जाति की लड़की अपने कुटुम्बियों द्वारा

अत्यन्त सताये जाने पर भी रात्रि भोजन-त्याग के व्रत का पूर्ण पालन करती है। परिणामस्वरूप आगे वह सुख-समृद्धि को प्राप्त करती है। मानव जीवन को सुखी व संपन्न बनाने के लिए व्रत, संयम, त्याग का अत्यन्त महत्व है।

'मातृत्व' में शीर्षक के मुताबिक निस्वार्थ सच्चे मातृहृदय का परिचय प्राप्त होता है। एक बालक पर समान रूप से अधिकार व स्नेह जतलाने वाली दो स्त्रियों में वसुदत्ता के समक्ष एक ओर अपार धन-वैभव तथा दूसरी ओर बच्चे का प्रश्न खड़ा होता है तो वह धन-संपत्ति को स्वीकार करना चाहती है, तब असली मां अतुल वैभव को ठुकरा कर पुत्र को अपनाती है। यहीं पर दोनों के हृदय के जमीन-आसमान का अन्तर प्रकट होता है।

'चिरजीवी' सती के तेज एवं गौरव की अभिव्यंजना व्यक्त करती कथा है। प्रभावती अपने सतीत्व से अनेक कष्टों एवं दु:खों में से रास्ता करती हुई दुष्टों को अपनी शक्ति का परिचय देती है। उसके सतीत्व के प्रभाव से देवों के विमान भी रुक जाते हैं, और वे सती की अटलता, पवित्रता देख उसे हर प्रकार से सहाय करते हैं। अन्त में इस महान नारी के कर्म के प्रभाव से सभी उसका यशोगान करते हैं तथा सतीत्व का प्रकाश चारों ओर फैल जाता है।

'अनुगामिनी' में स्त्री-पुरुष के धर्म-पथ पर अनुगामिनी बनकर उज्ज्वल आदर्श हमारे सामने प्रस्तुत करती है। जब बज्रबाहु की भोग-लिप्सा तथा विषयवासना मुनिराज के दर्शन मात्र से शांत होकर अदृश्य हो जाती है, तो वह मुनिराज के चरणों में बैठकर वैराग्य का महत्व समझ प्रिय पत्नी और वैभव का त्याग कर देता है, तब उसके चेहरे पर विराग की उज्ज्वल आभा चमक उठती है। अपने पति को विरक्त होते देख मनोरमा भी पति और भाई के मार्ग का अनुसरण करती है। उसका भाई बहनोई के उत्कृष्ट अनुराग के पश्चात उच्च वैराग्य को देख संसार की अनित्यतता अनुभव कर उसी समय मुनि बन जाता है। उन दोनों के संयम-त्याग से अभिभूत हो मनोरमा भी अनुगामिनी बनती है। भगवत जी ने इसी कथानक पर आधारित एक एकांकी की रचना भी की है।

'मानवी' संकलन में भाषा, भाव, कथोपकथन और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है। पुराने कथानकों को सजाने और संवारने में कलाकार की कला निखर गई है। सभी कहानियों का आरंभ उत्सुकतापूर्ण रीति से हुआ है। कहानियों में रहस्य का निर्वाह भी उत्सुकता जागृत करने में सक्षम है। विशेषत: तीव्रतमस्थिति (climax) ज्यों-ज्यों निकट आती है, कहानी में एक अपूर्व वेग का संचार होता है, जिससे प्रत्येक पाठक की उत्सुकता बढ़ती जाती है। यही है भगवत की कला, उन्होंने परिणाम सोचने

का भार पाठकों के ऊपर छोड़ दिया है।[1] उनकी भाषा-शैली पर प्रकाश डालते हुए डा० नेमिचन्द्र जी आगे लिखते हैं—कलाकर ने पात्रों का चरित्र-चित्रित करने में अभिनवात्मक शैली का प्रयोग किया है, जिससे कथाओं में जीवन्तता आ गई है। तर्कपूर्ण और तथ्य विवेचनात्मक शैली का प्रयोग रहने पर भी सरसता कथाओं की ज्यों की त्यों है। चलती-फिरती भाषा के प्रयोग ने कहानियों को सरल व बुद्धि ग्राह्य बना दिया है।[2] प्रसिद्ध विद्वान् एवं जैन साहित्य के इतिहासकार पं० नाथूराम 'प्रेमी' भगवत जी के विषय में लिखते हैं—इसमें संदेह नहीं कि जैन समाज में कहानी लेखकों का अभाव है और आप इस रिक्त स्थान को भरने का प्रशंसनीय प्रयत्न कर रहे हैं। आपकी मैं हृदय से उन्नति चाहता हूँ।[3] उसी प्रकार इसी संकलन में जैन साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् पं० जुगलकिशोर जी 'मुख्तार' ने लिखा है कि—श्रीयुत भाई भगवत् स्वरूप जी जैन-समाज के एक अच्छे कहानी लेखक और कविता लेखक हैं। आपकी कहानियाँ एवं कविताएं प्राय: रोचक तथा शिक्षाप्रद होती हैं। पुरानी कहानियों को नया लिबास पहनाने में आप कुशल हैं। लिखते भी बहुत हैं, जैन समाज का शायद ही ऐसा कोई पत्र हो, जिसमें आपकी कविता या कहानी प्रकाशित न होती हो।[4]

इस प्रकार छोटी-छोटी पावन घटनाओं के आधार पर से भगवत जी ने अत्यन्त ही रोचक शैली में ज्ञान के साथ आनंदप्रद कहानियाँ जैन साहित्य को भेंट की हैं। कथा और पात्रों की विचारधारा के द्वारा अप्रत्यक्ष धार्मिक विचारधारा रही होने से पाठक कहीं भी उपदेशक की नीरसता महसूस नहीं करता। कथा-साहित्य में हार्दिकता एवं साहित्यिकता का भी पूरा-पूरा निर्वाह किया गया है।

विद्वान लेखक अयोध्या प्रसाद गोयलीय जी ने 'गहरे पानी पैठ' में 118 छोटी-छोटी पर मार्मिक चिंतन व ज्ञान प्रद कहानियाँ रसात्मक शैली में लिखी हैं। छोटी कथावार्ता, चिंतन कणिका, कहावतों, अनुभवों का रोचक संग्रह तैयार किया है, जिसको उन्होंने तीन विभागों में विभक्त किया है—(1) बड़े जनों के आशीर्वाद से—जिसमें 55 कहानी, आख्यान, संस्मरण एवं चुटकुले हैं। (2) इतिहास जो पढ़ा—इसमें 47 कथाएं हैं (3) जिसे कि आंखों से जो देखा-इसमें

1. डा० नेमिचन्द्र जी : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ० 101.
2. डा० नेमिचन्द्र जी : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ० 102.
3. द्रष्टव्य-उस दिन-कथा संग्रह-स्नेह शब्द, पृ० 13.
4. उस दिन-कथा संग्रह-स्नेह शब्द, पृ० 10.

16 कहानियाँ हैं। इस संग्रह की कहानियाँ केवल कहानियों तक सीमित न होकर किंवदंतियाँ, संस्मरण, चुटकुले और व्यंग्योक्ति के रूप में भी है। जीवन के विविध अनुभवों और साहित्य के अगाध संयम के पश्चात् जो रत्न निकाले हैं, इनको व्यंग्यात्मक एवं हल्की-फुल्की शैली में प्रस्तुत किया है। इन कथाओं में लेखक की कला का अनेक स्थलों पर परिचय मिलता है। आकर्षक वर्णन शैली और बलशाली मुहावरेदार भाषा हृदय और मन को पूरा प्रभावित करती है। इनमें वास्तविकता के साथ ही भाव को अधिकाधिक महत्व दिया गया है। वस्तुतः श्री गोयलीय ने जीवन के अनुभवों को लेकर मनोरंजक व्याख्यान लिखे हैं। साधारण लोग जिन बातों की उपेक्षा करते हैं, आपने उन्हीं को कलात्मक शैली में लिखा है। अतः सभी कथाएँ जीवन के उच्च व्यापारों के साथ सम्बंध रखती है।[1] वैसे इस संग्रह में कहानियों के लिए आवश्यक तत्वों का-यथा घटना, कथोपकथन, चरित्र-चित्रण, वातावरण आदि–पूर्णतः समावेश नहीं हो पाया है, फिर भी नूतन आकर्षक शैली एवं भावों की प्राण भूमि के कारण वे सजीव व रोचक बन पड़ी हैं। इसके साथ ही जिज्ञासा का निर्वाह तथा मानसिक तृप्ति सभी में उपलब्ध है। इनको पढ़कर हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ता है, जो कहानी शिल्प की दृष्टि से कहानियों की विशेषता व सजीवता का उज्ज्वल दृष्टान्त है। भाव जितने उत्कृष्ट हैं, भाषा उतनी ही प्रभावशील एवं भावानुकूल बनी है। कथा के प्रवाह को आगे बढ़ाने के लिए सहायक भाषा का एक उदाहरण देखिए–'तुम्हारे जैसे दातार तो बहुत मिल जायेंगे, पर मेरे जैसे त्यागी विरले ही होंगे, जो एक लाख को ठोकर मारकर कुछ अपनी ओर से मिलाकर चल देते हैं।'[2] इसी प्रकार ईष्या के परिणाम को लेखक व्यंग्य व विनोदात्मक शैली में प्रस्तुत कर हमारे हृदय को प्रभावित करने की कुशलता का परिचय देते हैं–जैसे–भोजन के समय एक के आगे घास और दूसरे के आगे भूसा रख दिया गया। पंडितों ने देखा तो आग-बबूला हो गये। सेठ जी! हमारा यह अपमान? महाराज! आप ही लोगों ने तो एक दूसरे को गधा और बैल बतलाया है।' इस संग्रह की विशेषताओं पर अपना मंतव्य व्यक्त करते हुए डा॰ नेमिचन्द्र जी लिखते हैं–हिये की आँखों से गोयलीय जी ने जिन रत्नों को खोजा है, उनकी चमक अद्भुत है। अधिकांश रचनाएँ मार्मिक और प्रभावशाली हैं। भाषा और शैली की सरलता गोयलीय की अपनी विशेषता है। उर्दू और हिन्दी का ऐसा सुन्दर समन्वय अन्यत्र शायद ही मिल सकेगा। यही कारण है कि एक

1. डा॰ नेमिचन्द्र जी : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ॰ 103, 104.
2. अयोध्याप्रसाद गोयलीय–गहरे पानी बैठ–'त्यागी' कहानी, पृ॰ 24.

साधारण शिक्षित पाठक भी इन कहानियों का रसास्वादन कर सकता है। अभिव्यंजना इतने चुभते हुए ढंग से हुई है, जिससे आख्यानों का उद्देश्य ग्रहण करने में हृदय को तनिक भी श्रम नहीं करना पड़ता। मिश्री की डली मुँह में डालते ही धीरे-धीरे घुलने लगती है और मिठास अपने आप भीतर तक पहुँच जाती है।[1]

'ठाकुर' उपनाम से प्रख्यात पं॰ बलभद्र जी न्यायतीर्थ की कहानियाँ भी 'जैनसंदेश' में प्रकट होती रहती थीं। इनकी कथाओं में कथा-साहित्य के तत्वों के साथ-साथ जीवन की उदात्त भावनाओं का भी सुन्दर रूप अंकित होता है। उद्देश्य रोचक ढंग से मुखरित होने से नीरसता या उकताहट कम आने पाई है। बलभद्र जी का प्राथमिक प्रयास होने से कथाओं में कथानक, संवाद एवं कला के विकास की अपूर्णता रह जाने पाई है। फिर भी वर्णनात्मक व परिमार्जित शैली के कारण कथाएँ आकर्षक हैं।

बाबू कामता प्रसाद जी ने भी प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों पर से आधारित कहानियाँ काफी मात्रा में लिखी हैं–विशेषकर उन्होंने धार्मिक ऐतिहासिक स्त्री-पुरुषों की यशः पताका फहराने वाली छोटी-छोटी कथाएं लिखी हैं, जैसे–पंचरत्न, नवरत्न आदि। इसके उपरान्त भगवान पार्श्वनाथ की कथा भी उन्होंने आधुनिक भाषा-शैली में प्रस्तुत की है। उनकी प्रायः पुस्तकें 'दिगम्बर जैन' मासिक पत्रिका के लिए ग्राहकों को उपहार देने के लिए लिखी गई हैं। जैन कथाएँ लिखने के उद्देश्य को व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं–जैन कथाओं ने एक समय सारे संसार का कल्याण किया था। आज हिन्दी वालों को उसका पता नहीं है। बहुत-सी बातें तो स्वयं जैनी भी नहीं जानते हैं। बस, इसीलिए कि लोग जैन कथाओं और जैन पुरुषों को जाने-पहचाने, मैंने यह उद्योग किया है। कहानी का आधार कल्पना मात्र है, लेकिन कोरी कल्पना नहीं है। वे सत्य घटनाओं पर निर्भर है, ऐतिहासिक है। + + + + + प्रस्तुत इन कहानियों में ऐतिहासिक घटनाओं का पल्लवित रूप है। उनसे जैन संघ की उदार समाज व्यवस्था और जैनों के राष्ट्रीय हित-कार्य का भी परिचय होता है।[2]

नवरत्न :

'नवरत्न' कहानी-संग्रह में जैन धर्म के प्रसिद्ध ऐतिहासिक नव पुरुष-रत्नों की ज्योति को प्रकाश में लाने का कार्य कामता प्रसाद जी ने किया है। इस रचना के उद्देश्य पर विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं–हम जानते हैं कि

1. डा॰ नेमिचन्द्र जी : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ॰ 106.
2. कामता प्रसाद जैन : पंचरत्न, दो शब्द, पृ॰ 2.

साहित्य कला की दृष्टि से हमारी कहानियाँ ऊँचे दर्जे की नहीं कही जा सकती और इसलिए विद्वान् समाज में उनका मूल्य विशेष न आंका जाय तो इसका हमें खेद नहीं है, क्योंकि पहले तो यह हमारा बाल-प्रयास है और दूसरे हमारा उद्देश्य इसमें साहित्यपूर्ति के अतिरिक्त कुछ अधिक है। जैनों की अहिंसा और भीरुता के कारण भारत का पतन हुआ है, ऐसी मिथ्या धारणा व भ्रम सामान्य लोगों में जो फैला है, उसको गलत साबित करने के लिए जैन वीरों के चरित्र प्रकट करके अहिंसा तत्व की व्यवहारिकता स्पष्ट कर देना ही श्रेष्ठ है। उनको पढ़ने से पाठकों को जैन अहिंसा की सार्थकता और जैनों के वीर पुरुषों का परिचय विदित होगा और इसी बात में इस रचना का महत्व गर्भित है।[1]

वीर पुरुषों की कथाओं का कथानक ऐतिहासिक आधार से ग्रहण किया गया है। इसमें लेखक ने अपनी कल्पना शक्ति से भी काम लिया है, लेकिन ये पूर्णतः कपोल कल्पित न होकर भाषा शैली, वर्णनों से प्रस्तुतीकरण में नवीनता अवश्य है। सभी की कथा वस्तु पात्र, प्रसंग के लिए प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थ, शिलालेख, युनानी इतिहासकार आदि का संदर्भ दिया है, जिससे कथा की सत्यता के लिए टीका करने के लिए कोई प्रमाण नहीं रहता। हाँ, थोड़ी-बहुत नवीनता या विचित्रता लगे, लेकिन अप्रामाणिकता नहीं। जबकि देवेन्द्र प्रसाद जैन की 'ऐतिहासिक स्त्रियाँ' नामक कथा संग्रह में लेखक ने प्रचलित कथा वस्तु में जो कुछ नवीनता या परिवर्तन किया है, उसके लिए कोई आधार प्रस्तुत नहीं किया है, जिससे पारंपरित कथावस्तु में कथा की भिन्नता के लिए तुरन्त विश्वास नहीं बैठता।

(1) तीर्थंकर अरिष्टनेमि :

कहानी के प्रारंभ में युद्ध का सजीव सुंदर वर्णन है। भगवान श्री कृष्ण के चचेरे भाई युवराज नेमिकुमार की विनोदप्रियता, जरासिन्धु के साथ किये गये युद्ध में उनकी वीरता, धीरता एवं शौर्य को देखकर श्रीकृष्ण भी सोच में पड़ गये व अपने भविष्य के लिए सशंक हो गये। बाद में भोजवंशीय राजा उग्रसेन की पुत्री राजमती से विवाह का प्रस्ताव रखते हैं। बारात के समय नेमिनाथ के दिल में वैराग्य पैदा करने के लिए पशुओं को बाड़े में बंधवाकर उनका क्रन्दन, हाहाकार सुनकर नेमिकुमार संसार के प्रति उदासीन होकर सन्यस्त लेने के लिए उद्यत हो जायें ऐसा षड्यंत्र श्रीकृष्ण करते हैं। योजनानुसार होता भी ऐसा ही है। बारात के विवाह मण्डप जाने के रास्ते में मेहमानों के भोजनार्थ मारने के लिए बांधे गये पशुओं के करुण चीत्कार को सुनकर नेमिनाथ के हृदय में हिंसा में

1. कामता प्रसाद जैन : 'नवरत्न' प्रस्तावना, पृ॰ 12.

प्रति घृणा एवं निर्दोष पशुओं के प्रति ममता, करुणा जगती है। वे उसी समय हिंसा के स्थान पर अहिंसा का महत्व प्रतिपादन करते हुए सभी को मुक्त करवाते हैं, और संसार के सम्बंधों की निरर्थकता, कृष्ण के हृदय का कपट अनुभव कर ग्लानि पैदा होने से स्वयं गिरनार पर जाकर कठिन तपस्या करते हैं। अनन्तर 'केवल ज्ञान' प्राप्त कर जगत में जैन धर्म की अहिंसा, करुणा, समानता का संदेश फैलाते हैं। उनके पीछे राजकुमारी राजमती भी गिरनार पर तपस्या के लिए जाती है। प्रारंभ में वह नेमिकुमार को डाँटती है, उलाहना देती है, लेकिन नेमिनाथ के उपदेश से आत्म-कल्याण एवं मानव-कल्याण के पथ पर अग्रसर होने के लिए सन्यस्त ग्रहण करती है। भगवान अरिष्टनेमि की महानता या विशेषता उस बात में है कि जैनियों तो उन्हें तीर्थंकर के रूप में स्वीकारते हैं, प्रत्युत वैदिक मतानुयायियों में भी वे आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद और महाभारत में भी उनका उल्लेख स्पष्ट किया गया है।

(2) सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य :

चन्द्रगुप्त मौर्य के विषय में यह बात बिल्कुल नवीन होने पर भी ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य भी है कि वे जैन मुनि हो गये थे। जैन धर्म सम्बंधी उनका ज्ञान गहरा था। चन्द्रगुप्त ही उत्तरावस्था में उसके राज्य में भयंकर अकाल पड़ा था, तब जैन धर्म की रक्षा हेतु बड़े-बड़े आचार्यों को दक्षिण में भेजा गया था। आचार्य भद्रबाहु के ज्ञान और तप से चन्द्रगुप्त बहुत प्रभावित थे, आचार्य को वे अपना गुरु मानते थे। उनके साथ हैलव ने भी आत्म कल्याण के लिए 'परम पद' का विहारी बन जाना उचित समझकर दीक्षा अंगीकार की थी। युवराज बिन्दुसार को राजगद्दी सौंपकर चन्द्रगुप्त निकल पड़े थे। राजर्षि चन्द्रगुप्त और श्रुत केवली भद्रबाहु का समाधिकरण श्रवण बेलगोला के कटवप्र पर्वत पर हुआ था। इन्हीं की पवित्र स्मृति में यहाँ पर सम्राट बिन्दुसार और युवराज अशोकबर्द्धन ने कई भव्य जिन मंदिरों और निषधिकाओं का निर्माण करवाया। चन्द्रगुप्त की समाधि मृत्यु की याद में उसको 'चन्द्रगिरि' नाम दिया गया और आज भी शिलालेख में अंकित इस बात से यह स्पष्ट होता है कि मुकुट बद्ध सम्राटों में सम्राट चन्द्रगुप्त ही ऐसे थे, जिन्होंने दिगम्बरीय दीक्षा ग्रहण कर जैन धर्म के महात्म्य को स्वीकार किया था।

(3) सम्राट 'ऐल' खारवेल :

'ऐल' सम्राट का विरुद्ध सूचक शब्द है। ऐल खारवेल जैन धर्मी थे। कलिंग के इस राजकुमार की शादी सिंहपथ (कलिंग की एक नगरी) की जैन धर्मी राजकुमारी से हुई थी। खारवेल ने कुमारी पर्वत पर जिन मंदिर बनवाकर

प्रभु आदिनाथ की मूर्ति प्रतिष्ठापित की थी। उस समारोह में सम्मिलित होने के लिए समग्र भारत से चतुर्विध संघ उपस्थित हुआ था और उन्होंने वेदी राष्ट्रीय सम्राट खारवेल और महारानी राजदुलारी की धर्म परायणता, वीरता व प्रजा-वत्सलता को श्रद्धांजली देने के लिए पत्थरों में लेख कुतरवाये, जो आज भी उड़िया के उदयगिरि-खण्डगिरि पर्वत की हाथी गुफा में मौजूद है।

(4) वीर चामुण्डराय :

चामुण्डराय दक्षिण के कुडुणिवर्म रायमल जी महाराज के प्रधान अमात्य थे, जो वीर बाहुबली थे। श्रावक होने के नाते उनकी वृद्धा माता को पोदनपुर स्थित बाहुबलि की मूर्ति के दर्शन की उत्कट अभिलाषा होने पर चामुण्डराय ने दक्षिण से उत्तर की ओर संघ निकाला और माता के साथ हजारों स्त्री-पुरुषों को सम्मान व प्यार से यात्रा करवाई। वे जितने उच्च कोटि के रणवीर थे, उतने ही महान् धर्मात्मा सज्जन थे। वीरता के अनेक बिरुद को अलंकृत करते हुए, महोत्कृष्ट वीरवृत्ति रखने पर भी जन्म से ही वे दृढ़ धर्म परायण एवं भावुक थे। जैन धर्म की अहिंसा गृहस्थ की वीरता के लिए कोई रुकावट नहीं पैदा करती, यह हम चामुण्डराय के दृष्टान्त से समझ सकते हैं। उन्होंने श्रवण बेलगोल के पर्वत पर ही शासन-देव की इच्छा से बाहुबली जी की भव्य प्रतिभा को सुंदर जिनालय के मध्य स्थापित किया।

(5) चारित्र्यवीर मारसिंह :

मारसिंह क्षत्रिय होने पर भी जैन धर्मी था। क्योंकि प्रायः सभी तीर्थंकर क्षत्रिय होने से उनके वंशज भी जैन धर्म के प्रति आसक्ति रखते थे। युद्ध में महाराज गंगराज धर्म प्रेमी सेनापति मारसिंह के रण कौशल का बखान करते थकते न थे। उन्हीं के साथ प्रधान अमात्य वीर चामुण्डराय भी थे। उन्होंने पिछली अवस्था में श्री अजित सेनाचार्य के पास दीक्षा अंगीकार पर संलेखना व्रत लेकर समाधि-मरण प्राप्त किया था।

(6) जिनधर्म रत्न गंगराज :

प्रारंभ में वे महाराज विष्णुवर्धान के महा सेनापति थे। महाराज विष्णुवर्धन प्रारंभ में जैन-मतावलम्बी थे, लेकिन बाद में तांत्रिकों के टोने-टोटके में पड़ गये थे। लेकिन महासेनापति गंगराज निर्भीक व धर्म प्रेमी थे, जिन शासन देव की कृपा से अपने राज्य में जिन धर्म ध्वजा लहरा सके। उनकी पत्नी लक्ष्मी देवी भी जैन धर्म में अटूट् श्रद्धा रखती थी और अपने पति को भी जैन धर्म के प्रति अनुरागी बनाये रखती थी। शुभचन्द्राचार्य की निश्रा में जैन मंदिर में बड़ा आनंदोत्सव हो रहा था, और वहीं महाराज को भी जैन धर्म की महत्ता प्रतीत

होने से वे जैन धर्म के प्रति आस्थावान हो गये। बाद में निरन्तर उनकी श्रद्धा होती रही और वे तेजस्वी रणवीर राजवी के साथ निष्ठावान जैनी भी बने रहे।

(7) सम्यकत्व चूडामणि हुल्ल :

राजा रायमल्ल के मंत्री चामुण्डराय, और विष्णुवर्धन के सेनापति गंगराज के समान नरसिंह देव के महामंत्री हुल्ल जैन धर्म के सच्चे पोषक थे। वे बड़े ही शूरवीर व कुशल मंत्री थे। उनकी पत्नी जैन धर्म की सच्ची आराधिका थी। उनकी इच्छा व आग्रह से सेनापति हुल्ल ने दो जैन मंदिरों का तथा यात्राश्रमों का निर्माण करवाया।

(8) वीरांगना सावियव्वे :

दक्षिण भारत के किसी एक सामान्य घराने की बहू सावियव्वे दक्ष गृहिणी के साथ-साथ वीर नारी भी थी और धार्मिक भी उतनी ही थी। नित्य-प्रति मंदिर में पूजन अर्चन करती थी। एक बार नगर पर दुश्मनों का हमला होने पर पति के साथ लड़ते-लड़ते वीर गति को प्राप्त करती है। उस वीरांगना की वीर स्मृति में एक 'वीर गल' (मूर्ति या स्तंभ) का निर्माण किया गया।

(9) सती सुन्दरी :

श्रावस्ती के जैन धर्मानुयायी राजपूत सहृद ध्वज ने महमूद गजनवी के आक्रमण को अपने नगर से दूर हटा दिया था। उसके छोटे भाई की पत्नी सती सुन्दरी को जैन धर्म पर अनन्य श्रद्धा थी। गौड़ जिले के लोग आज भी सती सुन्दरी के शील व चरित्र्य की प्रशंसा करते थकते नहीं हैं। उसके जेठ ने उसकी लाज लेनी चाही तो अपना प्राण देकर भी जिनदेव का स्मरण करती हुई वह शील की रक्षा करती है।

इस प्रकार 'नवरत्न' ऐतिहासिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण न हो, लेकिन जैन इतिहास में जिनकी वीरता, धीरता व अनन्य श्रद्धा-भक्ति महत्वपूर्ण है, अमर है, ऐसे व्यक्तियों का परिचय रोचक कथा के द्वारा कामता प्रसाद जी ने सरल भाषा शैली में करवाया है। साथ ही अलंकार रहित सीधी-सादी भाशा में जैन धर्म की महत्ता प्रतिपादित करने के अपने उद्देश्य में भी वे बहुत अंशों में सफल हुए हैं।

पंचरत्न :

यह भी कामता प्रसाद जी का कथा-संग्रह है, जिसमें उन्होंने पाँच महान् जैन धर्म प्रेमी चरित्रों की कथा रोचक शैली में आलोकित की है। इनकी संक्षिप्त कथा-वस्तु निम्नलिखित है–

(1) सम्राट श्रेणिक बिम्बसार :

जैन धर्म के प्रति अत्यन्त आस्थावान महाराज श्रेणिक अपने प्रारंभिक जीवन में जैन धर्म के कट्टर विरोधी और आलोचक थे, लेकिन महारानी चेलना जैन धर्मी होने से क्रमशः महाराज को भी जैन धर्म की अहिंसा, उदात्तता, समन्वय भाव आदि विशेषताओं से परिचय करवाकर आकर्षित करती है। बाद में तो वे भगवान महावीर के अनन्य भक्त बन गये और उनके उपदेशों का चारों ओर प्रचार-प्रसार करवाया। प्रभु महावीर से चर्चा, विचारण, प्रश्नोत्तरी करके जीव, जगत, धर्म आदि सम्बंधी अनेक समस्याओं का निराकरण करवाते रहे। अनेक जिन मंदिरों एवं उपाश्रयों का निर्माण करवाया। प्रारंभ में वे युवराज पद से हटाये गये थे, लेकिन बाद में महाराजा बनाये गये। प्रथम महारानी ब्राह्मण कन्या नंदिनी थी, जो बौद्ध धर्मी थी। लेकिन उसका पुत्र अभयकुमार जैन धर्म के प्रति आस्थावान था और उसने महावीर से दीक्षा ग्रहण की थी। अतः रानी चेलना के पुत्र अजातशत्रु को युवराज बनाया, जिसने अंत समय में श्रेणिक को बहुत कष्ट दिये थे और उनकी असामयिक मृत्यु हुई हो गई थी। प्राचीन ग्रंथों में महाराज श्रेणिक को अनन्य जैन धर्म उपासक सम्राट के रूप में अत्यन्त आदरपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है।

(2) सम्राट महानन्द :

मगध के सम्राट महानंद ने मुरा नामक दासी से ब्याह करके उसे सम्राज्ञी बनाया। उसी से पद्म नामक बेटे का जन्म हुआ। वैसे तो वह प्रतापी और उदार था, लेकिन पुरातन पंडितों के हृदय में शूद्र जाति से उत्पन्न होने के कारण उसके प्रति ईर्ष्याग्नि धधक रही थी और इसी से नन्द साम्राज्य का पतन हुआ। पंडित प्रवर संस्कृत वैयाकरणी पाणिनी महानंद के दरबार के रत्न और तक्षशिला के प्रमुख आचार्य थे।

(3) कुरुम्बाधीश्वर :

द्राविड़देश की आदिवासी जातियों में एक कुरुम्ब नामक जाति भी थी जो बिल्कुल आदिमवस्था में ही रहती थी। इन कुरुम्बों को सभ्यता एवं संस्कार निकट के वन में रहते जैन मुनि ने सिखलाये और उनमें से एक युवक को शास्त्र-शस्त्र, नीति व धर्म की विद्या सिखला कर निष्णांत बनाया गया। वही 'कुरुम्बाधीश्वर' कहलाया। उसने अपने दरबार के लिए एक पक्का मकान व जैन मंदिर बनवाया, सेना की स्थापना की, तथा किला भी बनवाया। जैन मुनि के उपदेश एवं शिक्षा से वह मांस-भक्षी जाति सभ्य व संस्कारी बन गई। आपस में बैर झगड़े के बदले वे लोग प्रेम व सहकार से रहने लगे। इनके विकास की

कथा चोलवंशीय राजा अन्होल के पास पुरोहितों द्वारा पहुँच गई। दोनों के बीच हुए युद्ध में कुरुम्बु की विजय हुई और पराधीन चोल राजा को क्षमा कर दिया गया। फिर से जैन धर्म से प्रचार की लगन से उसे युद्ध खोर बना दिया और उसके राज्य का पतन हो गया लेकिन कुरुम्बाधीश जैन धर्म के लिए अमर शहीद हो गये।

(4) नृप बिज्जलदेव :

बिज्जलदेव जैन धर्मी था और अपने नगर कल्याणपुर के पुरोहित की पद्मिनी नामक सुन्दर और विद्वान् कन्या पर मोहित हो उससे ब्याह करता है पद्मिनी के भाई वासव की धर्मांधता ने देश और जैन धर्म को भारी धक्का पहुँचाया। वह शैव धर्मी था और 'लिंगायत' नाम शैव धर्म की स्थापना की थी। अपने बहनोई बिज्जलदेव को अपने पथ का विघ्न समझकर दो बार मार डालने का षडयंत्र करता है लेकिन असफल होने से राजदण्ड के भय से स्वयं आत्महत्या कर लेता है। राजा बिज्जलदेव सच्चे जैनी होने से अपने साले के दुष्कृत्य को क्षमा देते हैं।

(5) सेनापति वैच्चप :

दक्षिण के विजयनगर के राज-सिंहासन पर राजा बुवकाराय विराजमान थे। उस समय बाहर से आक्रमण का भय रहता था। नगर के भीतर भिन्न-भिन्न धर्मवाले एक-दूसरे को हीन बताते थे और जैन साधुओं व जैनियों को उपासना के लिए कोई पवित्र स्थल नहीं दिया जाता था। वैसे राजा वैष्णव धर्म पालने पर भी सभी को समान न्याय व प्रेम करता था, वह सर्वधर्म सहिष्णु था। श्रीयण्ण जैनी महाजन का पुत्र सेनापति वैच्चप जैनों, बौद्धों और वैष्णवों के बीच सहकार व प्रेम की भावना पैदा करने की कोशिश करता रहता था। वीरता के साथ सामान्य जनता की समस्यओं को समझने की बुद्धि कौशम्ब व धीरता भी थी। अपने धर्म को चाहने के साथ अन्य धर्मों का भी वह आदर करता था। अपने राज्य की रक्षा के लिए यवनों के आक्रमण के सामने वह मर्दानगी से लड़ा और वीरगति को प्राप्त किया। लेकिन विजयनगर एवं कोंकण में विजयनगर के महाराज का विजयध्वज फहराया। युद्ध में वीरगति को प्राप्त सैनिकों के स्मारक चिह्न 'वीरगल' में एक वीर सेनापति वैच्चप का भी था।

इस प्रकार कामता प्रसाद जैन ने आधुनिक हिन्दी जैन-साहित्य में कथा-साहित्य के अतिरिक्त निबंधकार और इतिहासकार के रूप में भी अपना विशिष्ट योगदान दिया है। उनके कथा-साहित्य में कहीं-कहीं प्रत्यक्ष उपदेशात्मकता रहने पर भी हार्दिक अनुभूति के कारण खटकता नहीं है।

ऐतिहासिक स्त्रियां :

देवेन्द्र प्रसाद जैन लिखित यह कथा-संग्रह 1913 ईस्वी में प्रकाशित हुआ था। लेखक ने इसमें आठ प्रसिद्ध सतियों की कथा में उनके सतीत्व, पवित्रता, कष्ट-सहिष्णुता, उदारता, पवित्रता एवं धर्म-निष्ठा के गुणों को उजागर किया है। इन सतियों में राजमती, सती सीता, चेलना देवी, मनोरमा देवी, मैना सुन्दरी, वीरनारी द्रोपदी, साधु चरित्रा रानी अंजना सुन्दरी, श्रीमती रानी रयनमंजूषा की कथा का वर्णन किया गया है। महासती सीता एवं वीरनारी द्रोपदी की कथा में रामायण व महाभारत की प्रसिद्ध कथा वस्तु से थोड़ा-बहुत परिवर्तन भी किया गया है। जैन धर्म से सम्बंधित ग्रन्थों के आधार से ग्रहण की गई कथाओं में परिवर्तन की विशेष गुंजायश नहीं रहती है। लेखक ने इन सतियों की कथा में कहीं ऐतिहासिक आधार पर संकेत नहीं दिया है, वैसे पौराणिक ग्रन्थों में इन सबके विषय में जानकारी उपलब्ध होती है। अन्त में लेखक ने इस पुस्तक लिखने का अपना उद्देश्य भी स्पष्ट रूप से बता दिया है कि—धन्य है भारतवर्ष। जहाँ ऐसी-ऐसी रमणी रत्न जन्म धारण कर इस भूमि को पवित्र कर रही हैं। यद्यपि ऐसे उदाहरणों से भारत का संपूर्ण इतिहास भरा पड़ा है, तथापि हमने कुछ आदर्श होने योग्य शीलवती, सतीत्व परायण नारियों के चरित्रों का यह संग्रह किया है। सहृदय पाठक, पाठिकाएँ इससे अवश्य शिक्षा ग्रहण करेंगी।[1]

इस छोटी-सी पुस्तक में देवेन्द्र प्रसाद जी ने रोचक कथा-वस्तु प्राचीन कथा शैली पर प्रस्तुत की है, जिसे पढ़ने के लिए पाठक का मन निरन्तर उत्सुक रहता है। भाषा में कहीं भी आलंकारिकता न होकर सरलता व स्वाभाविकता रही है। लेखक ने रसास्वादन के साथ-साथ शिक्षा का भी उद्देश्य रखा है, फिर भी उनका उपदेश का रूप कथा-प्रवाह को कहीं भी विशृंखलित नहीं बनाता।

'जयभीखू' ने 'वीर धर्म की कहानियाँ' में धार्मिक परिवेश के साथ साहित्यिक भाषा शैली में सुन्दर कथाएँ लिखी हैं।

पं॰ सुखलाल जी संघवी ने भी पौराणिक आधार पर से चार प्रमुख तीर्थंकर—ऋषभदेव, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ व महावीर की कथा अत्यन्त साहित्यिक ढंग से लिखी है, जिनमें ऐतिहासिकता का भी पूरा ख्याल रखा गया है। पंडितजी ने कथा में बिम्ब वर्णनों की रोचकता के साथ विश्वस्त सूत्रों को भी ठीक से पकड़ रखा है।

'चतुर महावीर' में श्री सत्यभक्त ने सुंदर रोचक कहानियाँ लिखी हैं। इनमें

1. देवेन्द्र जैन : ऐतिहासिक स्त्रियाँ, पृ॰ 82.

साम्प्रदायिकता की हल्की-सी झलक भी नहीं दिखती। इनको मानव धर्मों की कहानियाँ भी हम कह सकते हैं। मानव-जीवन को संस्कार-सौरभ देने के प्रयास स्वरूप इन कथाओं का प्रणयन किया गया है, जिसके लिए श्री सत्यभक्त जी का प्रयत्न अवश्य स्तुत्य कहा जायेगा। इस संग्रह में स्थूलिभद्र, जामालिकुमार, कार्तिकेय आदि की सुंदर बोध प्रद कहानियाँ हैं।

'खिलती कलियाँ मुस्काते फूल'[1] देवेन्द्र जैन द्वारा लिखित आधुनिक युगीन मनोदशा के अनुरूप छोटी-छोटी, वार्तालाप, विचार विनिमय को व्यक्त करती कहानियों का सुंदर संग्रह है। इसमें मानव को उदारता, सहनशीलता, प्रेम, सत्य एवं अहिंसा की महत्ता का परिचय दिया गया है। प्रत्यक्ष उपदेश न लगकर रोचक व हृदयग्राही बन पड़ा है। स्वयं लेखक का इस विषय में कहना है कि-कथाएँ बुद्धिबर्द्धक विटामिन हैं 'खिलती कलियाँ, मुस्काते फूल' में वही पाठकों को प्रस्तुत किया जा रहा है। यदि प्रबुद्ध पाठकों को यह विटामिन पसंद आया तो शीघ्र ही इससे अधिक सुन्दर शक्तिबर्द्धन विटामिन प्रस्तुत किया जायेगा।[2]

इस प्रकार आधुनिक हिन्दी जैन कहानियों के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इसमें हिन्दी कहानी साहित्य की तरह मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पद्धति, बाहरी सजावट या शिल्पगत नूतनता, चमक, दमक, सामाजिक, राजकीय, व्यक्तिगत संघर्ष, व्यक्तिगत मूल्यों की स्थापना, नारी-पुरुष की यौनगत समस्या आदि का विश्लेषण प्राप्त होने की संभावना नहीं रहती। धार्मिक साहित्य होने से प्राचीन आगम ग्रन्थों पर से कथा वस्तुओं को ग्रहण कर नवीन भाषा-शैली में धार्मिक बोध के साथ कथाएँ लिखना जैन लेखकों का उद्देश्य रहना स्वाभाविक है। चाहे आधुनिक युगीन और कोई विशेषताएँ न हों तो भी रोचकता, जिज्ञासा व सरसता इन कथाओं में अवश्य निहित है। हिन्दी साहित्य को एक भिन्न प्रकार के कथा-साहित्य की भेंट करके उसकी समृद्धि में यत्किंचित योगदान देने का श्रेय निःसंदेह जैन साहित्य को देना चाहिए।

नाटक :

भारतवर्ष में नाटक परम्परा चिर प्राचीन है। नाटक-साहित्य संस्कृत साहित्य में विशाल परिमाण में उपलब्ध होता है। आधुनिक युग में नाट्यस्वरूप पाश्चात्य नाट्य साहित्य से विशेष प्रभावित हुआ है। हमारी प्राचीन परम्परागत पद्धति पर भी नाटकों का सृजन हुआ है। जब से मनुष्य में अनुकरण की प्रवृत्ति

1. प्रकाशक : त्रीतारक गुरु जैन ग्रन्थालय-पदराडा, उदयपुर।
2. देवेन्द्र जैन-खिलती कलियाँ, मुस्काते फूल, प्रस्तावना, पृ० 13.

पाई जाने लगी, तभी से अभिनेयता के रूप में नाटक मनुष्य का चिर सहचर बना है। वेदों में संवाद, गीत, अभिनय एवं रस की प्राप्ति होती थी। इसीलिए तो कहा जाता है कि ब्रह्मा ने ऋग्वेद से संवाद, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस को लेकर पांचवें वेद-नाट्य-वेद-की रचना देवों की विनंती से की, जिसमें मनोरंजनात्मक रचना या क्रिया देखी-सुनी जा सके। भरत मुनि ने 'नाट्य शास्त्र' ग्रन्थ में नाटक के विभिन्न अंगों पर विस्तार से विवेचन किया है। संस्कृत साहित्य में कालिदास, राजशेखर, भास, अश्वघोष, भवभूति, पिशाखदत्त, हर्षदेव, क्षेमेन्द्र, विद्यामाधव प्रभृति प्रसिद्ध व समर्थ नाटककारों की उत्तमोत्तम कृतियाँ पाई जाती हैं। जब संस्कृत की धारा क्षीण होती गई और राज्याश्रय बन्द-सा हो गया तो प्राकृत और अपभ्रंश में नाटक की अपेक्षा चरितकाव्यों की रचना सविशेष होने लगी।

नाटक का मूलभूत सिद्धान्त 'अनुकरण' एवं दूसरा तत्व समाज या प्रेक्षक होता है। 'नाटक' शब्द से ही संवाद का बोध होता है, जिसका अभिनेता के द्वारा प्रेक्षकों के सामने प्रस्तुतीकरण होता है। हमारे भारत में दोनों प्रकार के नाटक पाए जाते हैं, यथार्थोन्मुख एवं आदर्शोन्मुख। संस्कृत में नाटक को रूपक और दशरूपके अन्तर्गत गिना जाता है, जिसका प्रमुख उद्देश्य लोकरंजन होता है। 'नाट्यदर्पण' कार रामचन्द्र गुणचन्द्र ने नाटक का लक्षण बताते हुए लिखा है कि–जो प्रसिद्ध आद्य (पौराणिक एवं ऐतिहासिक) राज-चरित का ऐसा वर्णन हो और जो अंक, आय, दशा से सम्बंधित हो वह नाटक कहलाता है।[1] 'साहित्य दर्पण'कार विश्वनाथ ने नाटक का लक्षण बताते हुए लिखा है–नाटक वह रचना है, जिसकी कथावस्तु रामायणादि एवं इतिहास में प्रसिद्ध हो, जिसमें विलास, समृद्धि आदि गुण तथा अनेक प्रकार के ऐश्वर्यों का वर्णन हो, जहाँ सुख-दु:ख की उत्पत्ति दिखाई जा सके और अनेक रसों का समावेश हो सके, जिसमें 5 से 10 तक अंक हो, जिसका नायक पुराणादि में प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न धीरोदात्त, प्रतापी, गुणवान, कोई राजर्षि अथवा दिव्य या दिव्यादिव्य पुरुष हो, जहाँ शृंगार अथवा वीर रस प्रधान हो तथा अन्य रस अंगीभूत हो, जिसकी निर्वहण संधि अत्यन्त अद्‌भुत हो, जिसमें चार या पाँच पुरुष प्रधान कार्य के साधन में व्याप्त हों, गो की पूछ के अग्रभाग के समान जिसकी रचना हो।[2]

नाटक की सफलता का परीक्षण रंग मंच से होता है। जो नाटक जितना

---

1. रामचन्द्र गुणच्चन्द्र : नाट्यदर्पण, पृ० 3 श्लोक, 5.
2. आ० विश्वनाथ, 'साहित्य दर्पण', षष्ठ परिच्छेद, पृ० 7, 12.

रंगमंचीय, उतना ही अधिक वह सफल एवं लोक भोग्य हो सकता है। रंग मंच युग विशेष की जन रुचि व आर्थिक स्थिरता पर निर्भर होता है। आधुनिक काल में नाटक में लक्षण जन रुचि के कारण बदलने पड़ते हैं। बाबू गुलाब राय लिखते हैं–नाटक के जीवन की अनुकृति को शब्दगत संकेतों में संकुचित करके, उसको सजीव पात्रों द्वारा एक चलते-फिरते सप्राण रूप में अंकित किया जाता है। नाटक जीवन की सांकेतिक अनुकृति नहीं है, वरन् सजीव प्रतिलिपि है। नाटक में फैले हुए जीवन व्यापार को ऐसी अवस्था के साथ रखते हैं कि अधिक से अधिक प्रभाव उत्पन्न हो सके।[1] जीवन के आदर्शों की व्याख्या के साथ सामाजिकों को आनंदोपलब्धि कराना नाटक का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। आधुनिक धारणा के अनुसार नाटक जीवन की व्याख्या है, जो हमारी समस्याओं एवं हलों को हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है। नाटक नैतिक मूल्यों की दृष्टि से मानवीय अभिव्यक्ति का एक श्रेष्ठ साधन है। सैद्धांतिक रूप से यह साहित्य का आत्म निरपेक्ष रूप है, इनमें लेखक के व्यक्तित्व का प्रवेश नहीं होता। लेखक इसमें जो कुछ भी कहना चाहता है, केवल संवादों के माध्यम से कहता है, अन्यथा सब कुछ घटनाओं से स्वत: व्यंजित होता है। आज नाटक आकार में लघुता, उद्देश्य में सूक्ष्म मनोविश्लेषण तथा माध्यम में पाठ्य और कलात्मक अभिनय की ओर जा रहा है।[2]

आधुनिक हिन्दी नाट्य साहित्य में इसके अनेक प्रकार पाये जाते हैं। भारतेन्दु काल से ही इसका प्रारंभ व विकास हो चुका था, जो अद्यावधि आगे अनेक रूपों में बढ़ता जा रहा है। हिन्दी जैन साहित्य में नाटक की रचनाएँ प्राप्त होती हैं, लेकिन इसका प्रमाण विपुल नहीं कहा जा सकता। बहुत-सी रचनाओं में पद्यमय संवाद का रूप पाया जाता है, जिस पर भारतेन्दु कालीन पारसी थियेट्रीकल कम्पनी के नाटकों की शेरो-शायरी का प्रभाव लक्षित होता है। इनमें पात्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, संघर्ष की स्थिति एवं चरम परिणति का मार्मिक अंकन कम रहता है। इसका कारण यह भी संभव हो सकता है कि ये नाटक सामाजिक मनोवैज्ञानिक न होकर धार्मिक घटना-प्रवाह से युक्त होने से इनमें संवाद की उपादेयता, स्वाभाविकता एवं रंगमंचीयता पर विशेष ध्यान दिया गया है। प्रहसनों की संख्या नहीं के बाराबर है। जैन साहित्यकार प्राचीन नाटकों का अनुवाद भी करते रहे हैं। यहाँ अनूदित साहित्य के विषय में विशेष न लिखते हुए केवल पं० नाथूराम 'प्रेमी' जी की दो अनूदित नाट्य रचनाओं का

1. द्रष्टव्य–हिन्दी साहित्य कोश, पृ० 373.
2. वही–पृ० 381.

संक्षेप में जिक्र करेंगे। 'प्रेमी' जी ने मूल नाटकों के भावों की पूर्ण रक्षा कर सुन्दर और सुबोध-शैली में संस्कृत नाटकों का अनुवाद किया है। 'ज्ञान सूर्योदय' एवं 'अकलंक देव' दो नाटकों में प्रथम नाटक रूपकात्मक है। रूपकात्मक नाटकों का प्रचलन संस्कृत साहित्य में सविशेष देखा जाता है। इसमें काम, क्रोध, मोह, माया, के कारण अशान्त मानव के जीवन-विकास के लिए दया, प्रेम, अहिंसा, मानवता आदि गुणों की आवश्यकता होती है। इसलिए ऐसे गुणों, अवगुणों को रूपक के द्वारा पात्रों का स्वरूप देकर नाटक रचे जाते हैं। हिन्दी जैन साहित्य में इस प्रवृत्ति का अनुकरण मध्यकाल से ही देखा जाता है।

ज्ञान-सूर्योदय :

'प्रेमी' जी ने इस संस्कृत रूपक-नाटक का सुंदर ब्रज-खड़ी बोली में अनुवाद किया है, जिसमें पद्य ब्रज व खड़ी बोली दोनों में है और गद्य खड़ी बोली में लिखा गया है। मूल भावों की अक्षुण्णता के साथ प्रवाह का भी ध्यान रखा गया है, जिससे मूल कृति-सा ही आनंद प्राप्त होता है। अनूदित कृति का लेशमात्र ख्याल नहीं आता। इस नाटक की कथा वस्तु आध्यात्मिक है। ज्ञान की महत्ता निर्विवाद है। इससे अज्ञान के आवरण को हटाकर सम्यकता के प्रकाश की आवश्यकता नाटकीय ढंग से व्यक्त की गई है। 'इस नाटक में पात्रों का चरित्र-चित्रण और कथोपकथन दोनों बहुत सुंदर हैं। शास्त्रीय नाटक होने से नांदीपाठ, सूत्रधार आदि है। मति और विवेक का वार्तालाप कितना प्रभावोत्पादक है, यह निम्न उद्धरणों से स्पष्ट है :–

मति– आर्यपुत्र! आपका कथन सत्य है, तथापि जिसके बहुत-से सहायक हों, उस शत्रु से हमेशा शंकित रहना चाहिए।

विवेक–अच्छा कहो, उसके कितने सहायक हैं? काम को शील मार गिरायेगा। क्रोध के लिए क्षमा बहुत है। संतोष के सन्मुख लोभ की दुर्गति होगी ही और बेचारा दम्भ-कपट तो संतोष का नाम सुनकर छू-मन्तर हो जायेगा।

मति– परन्तु मुझे यह एक बड़ा भारी अचरज लगता है कि जब आप और मोहादिक एक ही पिता के पुत्र हैं, तब इस प्रकार शत्रुता क्यों ?

विवेक .... आत्मा कुमति में इतना आसक्त और रत हो रहा है कि अपने हित को भूलकर वह मोहादिक पुत्रो को इष्ट समझ रहा है, जो कि पुत्राभास है और नरक गति में ले जाने वाला है।[1]

1. डा॰ नेमिचन्द्र जी : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, भाग-2, पृ॰ 109.

इसी प्रकार नाटक के बीच-बीच में आती हुई कविता भी सुन्दर है, जिसे पढ़कर संस्कृत के प्रसिद्ध सुभाषितों की सहसा याद हो आती है। क्षमा अपनी बेटी शान्ति से कहती हैं कि विधाता के प्रतिकूल होने से सुख की अपेक्षा दु:ख विशेष प्राप्त होता है—यथा—

'जानकी-हरन वन रघुपति भवन ओ,
भरत नरायन को बनचर के बान सों।
वारिधि को बन्धन, मयंक अंक क्षयीरोग,
शंकर की वृत्ति सुनि भिक्षाटन दान सों,
कर्ण जैसे बलवान कन्या के गर्भ आये,
बिलखे वन पाण्डु कुपुत्र जुआ के विधान सों।
ऐसी ऐसी बातें लोक जहां तहां बेटी,
विधि की विचित्रता विचार देख ज्ञान सों।''

आध्यात्मिक कथावस्तु होने से नाटक में दार्शनिक तत्वों का विवेचन होना स्वाभाविक है, लेकिन सुन्दर भाव, रोचक भाषा एवं जीवनोत्कर्ष के लिए लाभप्रद-विचारों से युक्त होने के कारण नाटक सुन्दर रहा है।

अकलंक नाटक :

इसमें प्राचीन समय के अकलंक व निकलंक नाम दो जैन धर्म उद्धारक त्यागी भाइयों की कथा है। निकलंक नामक छोटे भाई ने धर्म रक्षा हेतु अपने प्राण की आहुति देकर बड़े भाई अकलंक की रक्षा की। महाराज पुरुषोत्तम के इन दोनों पुत्रों ने बचपन से ही अष्टाह्निका पर्वत पर ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा लेकर जैन धर्म की पताका फहराने का निश्चय कर लिया था। अतएव, उम्र लायक होने पर दोनों शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करने के लिए बौद्ध गुरु के पास चले क्योंकि उस समय बौद्ध धर्म का अत्यन्त बोलबाला था तथा अन्य धर्मों का प्रभाव लुप्त प्राय: हो रहा था। अत: दोनों बौद्ध पाठशाला में लुक-छिपकर अध्ययन करने लगे। एक दिन इन्होंने बौद्ध गुरु का पाठ अशुद्ध होने पर उसको चुपचाप शुद्ध कर दिया। शाला के बाहर घूमते हुए गुरु ने बहुत माथा-पच्ची के बाद लौटकर भीतर देखा तो अशुद्ध पाठ शुद्ध है तो विचारने पर महसूस हुआ कि अवश्य इनमें कोई जैन है, अन्यथा सिवा जैन इसे कोई शुद्ध नहीं कर पाते। जैन शिष्य को पकड़ने के लिए अनेक प्रकार के षडयन्त्र किये गये जिसमें अकलंक-निकलंक पकड़े गये। उन्हें कारागृह में बन्द कर दिया गया। प्रात: काल ही दोनों कोध प्राण दण्ड मिलने वाला था। अत: रात में ही वे किसी तरह भाग निकले। लेकिन राजा के सिपाहियों ने उनका पीछा किया, अत: छोटे भाई ने बड़े विद्वान

भाई को धर्म रक्षा हेतु गड्ढे में छिपा दिया और स्वयं ने सैनिकों का सामना करते हुए प्राण दे दिये। आगे जाकर थोड़े ही समय में अकलंक देव प्रसिद्ध जैन विद्वान हुए। बौद्ध विद्वानों को अपनी प्रतिभा एवं अकाट्य तर्कशक्ति से परास्त करते रहे, साथ में ही महारानी मदनवेगा-जो जैन धर्मी थी, से भी जैन धर्म के प्रसार में काफी सहायता मिलती रही। एक बार मदनवेगा रानी रथोत्सव करना चाहती थी, लेकिन इसमें राज्य के बौद्ध गुरु विघ्न रूप थे। उन्होंने कहा कि किसी जैन विद्वान से वाद-विवाद में परास्त होने के बाद ही जैन रथोत्सव हो सकेगा, अन्यथा नहीं। रानी राजगुरु के इस आदेश से चिंतित रहने लगी। उसने अन्न-जल का त्याग कर दिया। स्वप्न में चकेश्वरी देवी ने सांत्वना देकर अकलंक देव को बुलाने का आदेश दिया। संयोगवशात् दूसरे दिन अकलंक देव सभा में आये और बौद्ध गुरु से शास्त्रार्थ करने लगे। तीन दिन तक बौद्ध गुरु के न हारने से अकलंक देव को चिंता होने लगी और उन्होंने चक्रेश्वरी देवी की आराधना करके समस्या का हल पूछा, तो देवी ने बताया कि पर्दे के भीतर बौद्ध गुरु के बदले बौद्धों की देवी तारादेवी बोल रही है, अतः दोबारा प्रश्न पूछने पर देवी चुप हो जायेगी। देवी ने बौद्ध राज गुरु के पराजय के अनेक और भी कारण बतलाये। दूसरे दिन शास्त्रार्थ में राजगुरु का पराजय हुआ और धूमधाम से रानी का रथोत्सव निकाला गया।

इस नाटक में मूल कथानक को छोड़कर व्यर्थ प्रसंगों को नहीं लिया गया है। तीन अंक के इस नाटक के प्रारंभ में मंगलाचरण, सूत्रधार, नटी का आगमन होता है, दृश्य-परिवर्तन भी यथायोग्य हुए हैं। शैली प्राचीन होने पर भी कथोपकथन तथा पात्रों का चरित्र-चित्रण अच्छा हुआ है। इसी कथा को लेकर पं० मक्खनलाल दिल्ली वाले ने भी 'अकलंक' नाटक लिखा है। उनका नाटक भाव-भाषा की दृष्टि से साधारण होते हुए अभिनयात्मक है।

जैनेन्द्र किशोर आरावाला का नाम नाटककार की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है। उन्होंने बहुत-से नाटकों का प्रणयन उस समय किया, जिस समय हिन्दी नाटक साहित्य में भी नाटकों का प्रारंभ हो रहा था। आपने 1 दर्जन से भी ज्यादा नाटकों की रचना कर हिन्दी जैन नाट्य साहित्य की श्रीवृद्धि करने में सहयोग दिया है। वैसे इनके नाटकों की शैली प्राचीन है, फिर भी इनका काफी महत्व है। आरा में आपके प्रयत्नों से एक नाटक मण्डली की स्थापना की गई थी, जिसके द्वारा आपके नाटकों का अभिनय किया जाता था। आप स्वयं विदूषक का अभिनय करते थे। आपकी मृत्यु के बाद यह मंडली बन्द हो गई थी। आपके नाटकों में प्रमुख मनोरमा देवी, अंजना सुंदरी, द्रोपदी, प्रद्युम्न

चरित और श्रीपाल चरित के अतिरिक्त सोमासती और कृपणदास से प्रहसन है और 'कलि कोतुक पद्य-बद्ध रचना है, जिस पर उर्दू का प्रभाव अत्यधिक हो आए प्रहसनों में 'कृपणदास' व 'राम रस' में जीवन के उत्थान-पतन की विवेचना करते हुए कुसंगति से सर्वनाश की ओर इशारा किया गया है। 'आपके प्राय: नाटक अप्रकाशित हैं और आरा निवासी श्री राजेन्द्र प्रसाद जी के पास सुरक्षित है। पौराणिक उपाख्यानों को लेखक ने अपनी कल्पना द्वारा पर्याप्त सरस और हृदय ग्राह्य बनाने का प्रयास किया है। टेकनीक की दृष्टि से यद्यपि इन नाटकों में लेखक को पूरी सफलता नहीं मिल सकी है, तो भी इनका सम्बंध रंगमंच से है। कथा विकास में नाटकोचित उतार-चढ़ाव विद्यमान हैं। वह लेखक की कला-विज्ञता का परिचायक है। इनके सभी नाटकों का आधार सांस्कृतिक चेतना है। जैन संस्कृति के प्रति लेखक की गहन आस्था है। इसलिए उसने उन्हीं मार्मिक आख्यानों को अपनाया है, जो जैन-संस्कृति की महत्ता प्रकट कर सकते हैं।[1]

महेन्द्रकुमार :

पं० अर्जुनलाल शेठी लिखित इस काल्पनिक नाटक की कथावस्तु का आधार सामाजिक, धार्मिक एवं राष्ट्रीय तत्व है। इस नाटक में गृह एवं समाज के वास्तविक चित्र मिलते हैं, जिसमें यह अभिव्यक्त किया गया है कि शराब के बुरे व्यसन से धनपतियों समाज को बरबाद कर देते हैं एवं जुआ तथा सट्टा आदि में फंसकर सपरिवार तबाह हो जाता है। पूंजीपतियों का मनमाना व्यवहार, दहेज की भयानकता, स्त्रियों की कटुता आदि सामाजिक बुराइयों पर प्रकाश डाला गया है। इस नाटक में पात्रों की संख्या भी काफी है। तथा पात्रानुरूप भाषा के प्रयोग के कारण खिचड़ी-सी बन गई है। लेखक का लक्ष्य सामाजिक बुराइयों को व्यक्त कर लोक-शिक्षा देने का होने से घटनाएं शृंखलित नहीं हैं।

कथा-वस्तु :

महेन्द्र कुमार सेठ सुमेरुचन्द्र का छोटा भाई है। सेठ सुमेरुचन्द्र की पत्नी कर्कशा एवं कठोर-हृदया है, जिसे अपना देवर महेन्द्रकुमार फूटी आँखों सुहाता नहीं है। वह प्रतिदिन अपने पति से शिकायत करती रहती है और सेठ जी पत्नी की बातों में विश्वास कर अपने भाई को डांटता ही रहता है। भाई-भाभी की रोज-बरोज की झिड़कियों व कलह से त्रस्त होकर महेन्द्र परदेश जाने के लिए उत्सुक होता है और अपनी माँ से इजाजत लेने के लिए जाता है। विवश माँ विदेश न जाने के लिए अनेक यत्न करती है लेकिन महेन्द्र ने एक न मानी और

1. डा० नेमिचन्द्र जी : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ० 102.

भारतमाता का उद्धार करने की ठान कर निकल पड़ा। उधर दिन-ब-दिन जुए के चक्कर में फंसा हुआ सुमेरु सब कुछ हार गया और पत्नी के आभूषण तक मांगने लगा लेकिन पत्नी ने अपने गहने देने से इन्कार कर दिया। दूसरी कथा में एक ब्रह्मचारी और उनका मित्र नन्दलाल जापान आ रहे थे। मार्ग में एक विशाल मंडप में मादक कान्फ्रेन्स होते देख रुक गये, जहाँ सभी नशे में धुत्त थे। वे सभी इस प्रस्ताव को पास कर रहे थे कि देश में अधिक से अधिक भांग, तम्बाकू, सिगरेट आदि का प्रचार हो। ब्रह्मचारी नवयुवकों की ऐसी तबाही देख चिंतित एवं दु:खी हुए। उन्होंने अपने उपदेशात्मक संभाषण द्वारा उनको सीधी राह बताने की चेष्टा की। इसी समय एक सुंदर, सुशील कन्या का स्वयंवर रचा जा रहा था, जिसमें अनेक कुमारों के साथ महेन्द्र भी पहुँचा और वरमाला उसी के गले में पड़ती है। सुमित्रा एवं महेन्द्र का पाणिग्रहण हुआ। ब्रह्मचारी राज दरबार में भी पहुँचता है और वहाँ राजकुमार की चरित्र भ्रष्टता, मद्यपान और व्यभिचार के समस्त दूषण प्रकट किये, साथ ही सुमित्रा के साथ बलात्कार करने की चेष्टा का प्रमाण भी दिया। तीनों को दरबार में उन्होंने पेश किया। राजा ने राजकुमार को कैद की सजा दी और उन दोनों का सम्मान किया। राजा बाद में ब्रह्मचारी व सुमित्रा के आग्रह से राजकुमार को छोड़ दिया । महेन्द्र को प्रजा कल्याण तथा ज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए नेता बनाया गया और इस समाज-कार्य में ब्रह्मचारी ने भी अपना पूरा सहयोग देने का वादा किया। ब्रह्मचारी और कोई नहीं, सुमित्रा का पिता ही था, यह भेद भी बाद में खुलता है। पिता-पुत्री का मिलन होता है और सब प्रजा कार्य करते हुए आनंद से रहते हैं।

भाषा :

इस नाटक की कथावस्तु में अनेक पात्र होने से भाषा भी भिन्न-भिन्न प्रकार की व्यवहृत हुई है। 'कुणधणा' आदि मारवाडी एवं करे है, उडायुं हुई आदि गुजराती भाषा के शब्दों के साथ अंग्रेजी भाषा के शब्दों का खुलकर प्रयोग नाटककार ने किया है। कथा एवं भाषा विश्रृंखलित होने पर भी संवादों की रोचकता एवं संक्षिप्तता के कारण नाटक अभिनय योग्य हो सकता है।

अंजना[1] :

जैन साहित्य में अंजना सुन्दरी का कथानक इतना लोकप्रिय रहा है कि उसका आलम्बन लेकर उपन्यास, नाटक एवं कथा-साहित्य की रचना की गई है। सुदर्शन जी और कन्हैयालाल जी ने पृथक्-पृथक् रचना की है। सुदर्शन ने

1. प्रकाशक-जिनवाणी प्रचार कार्यालय-बंबई।

'अंजना' एवं कन्हैयालाल ने 'अंजनासुन्दरी' नाम रखा है। सुदर्शन जी का नाटक अधिक साहित्यिक व रोचक है, तो कन्हैयालाल जी ने विशेष मनोवैज्ञानिक बनाने की कोशिश की है। दोनों का लक्ष्य नारी के आदर्श चरित्र प्रस्तुत करने का है। दोनों में अंजना का करुण चरित्र-चित्रण हृदय द्रावक बन पड़ा है। कथावस्तु की रोचकता, संवादों की सूक्ष्मता, व्यंजनात्मकता तथा वातावरण की मार्मिक अभिव्यक्ति के साथ दोनों नाटक अभिनेय हैं। 'अंजना-सुन्दरी' की कथा वस्तु में थोड़ा-बहुत परिवर्तन किया गया है। मूल कथानक में अंजना अपनी सास को अंगूठी बताती है, लेकिन उसे विश्वास नहीं आता और महल से अंजना को निकाल देती है। इस बात को अधिक विश्वसनीय बनाने के लिए अंगूठी के खो जाने की कल्पना कन्हैयालाल ने की है। लेकिन सुदर्शन ने इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए ऐसी योजना की है कि पवन अपनी अंगूठी के नग के नीचे अपने हस्ताक्षरांकित एक कागज का टुकडा अवश्य रखता था, जो ईर्ष्यावश ललिता ने वह अंगूठी बदल डाली। अंजना को इस बात की जानकारी नहीं थी। अत: असली अंगूठी के अभाव में सास का संदेह करना स्वाभाविक प्रतीत हो। सुदर्शन जी के नाटक में संवादों की तीव्रता, पात्रों का चरित्र-चित्रण अधिक रोचक व स्वाभाविक हो पाया है। ''प्रकृति के सुकोमल दृश्यों के सहारे मानवीय अंत:करण को खोलकर प्रत्यक्ष करा देने की कला सुदर्शन जी में है। इसलिए अंजना में प्रकृति के माधुर्य और सौन्दर्य का सम्बंध जीवन के साथ-साथ चित्रित किया गया है सुदर्शन जी के 'अंजना' नाटक में वाणी ही नहीं, हृदय बोलता हुआ दृष्टिगोचर होता है। सुखदा के विचारों का क्रम देखिए–'सुखदा-एक-एक कर दस वर्ष बीत गये, परन्तु मेरी आँखों के सम्मुख अभी तक वहीं रम्य मूर्ति उसी सुंदरता के साथ घूम रही है। यही ऋतु थी, यही समय था, यही स्थान था, यही वृक्ष था, सूर्य अस्त हो रहा था, मन्द-मन्द वायु चल रहा था। प्रकृति पर अनूठा यौवन छाया हुआ था।'[1] इस नाटक में सुखदा और महारानी के वार्तालाप में भी काफी प्रभावोत्पादकता झलकती है। दोनों अपने निर्णय में अड़िग दीखती हैं–

महारानी–लेकिन तुम्हारा मनोरथ सफल नहीं हो सकता।

सुखदा– तो आजीवन अविवाहित रहूँगी।

महारानी–उसमें समाज-निन्दा का डर है।

सुखदा– मर जाऊँगी।

महारानी–लोग हंसेंगे।

---

1. डा० नेमिचन्द्र जी : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ० 114.

सुखदा– लोकोपवाद रोकने में विधि भी अक्षम है।[1]

विजय में विजेता को अन्धा कर देने की शक्ति है। + + + पाप विजय के पीछे-पीछे ही घूमता रहता है।[2] संवाद में तीव्रता सर्वत्र दीखती है।

'अंजना पवनंजय' नाटक जिस वाणी प्रचारक कार्यालय की ओर से प्रकाशित किया गया है, जिसकी कथावस्तु अंजना से सम्बंधित प्राचीन व प्रसिद्ध है। इस नाटक में बेहोश हो जाने पर प्रायः सभी पात्रों का 'मुझे संभालो, मैं अचेत होता जा रहा हूँ।' उक्ति में संस्कृत नाटकों का प्रभाव लक्षित होता है। इसी कथा वस्तु को लेकर पद्मराज गंगवाल जैन ने भी 'सती अंजना' नाटक लिखा है। यह नाटक भी पूर्ण अभिनेय है। बीच-बीच में कविता रखी गई है। शेर-शायरी भी प्रत्येक पात्र के संवाद में रहती है, जो बहुत-सी जगह अस्वाभाविक-सी प्रतीत होती है, विशेषकर प्रौढ़ पात्र के मुँह से। यह नाटक राजस्थान में जगह-जगह पर प्रसिद्ध कलाकारों द्वारा अभिनीत किया गया है। इसलिए नाटककार ने लम्बी-लम्बी कविताएं फिल्मी गीतों की तर्ज पर रखी हैं, जिससे आसानी से गाया जा सके। कहीं गजल के ढंग पर छोटी कविता या छन्द भी रखे हैं, जैसे–बांके नामक नागरिक गाता है–

लुभा ले मन को कागज पर उसे तस्वीर कहते हैं,
न पड़ जाय कोई जिसको, उसे तकदीर कहते हैं।
समय पर काम जो दे दे उसे तदबीर कहते हैं,
बिना मेहनत ही मिल जाय, उसे तकदीर कहते हैं।

अंजना भी पति-विरह में शेर-शायरी में मनोव्यथा व्यक्त करती है–

अंजना–दिन बीते, रातें बीती, ऋतुएं बदली, महीने, वर्ष और युग बदले, किन्तु हाय। मुझ अभागिन का भाग्य नहीं बदला।[3]

शेर– **तड़पती हूँ कि ज्यों, मछली षिन पानी तड़फती है।**
दरश पाने को प्रियतम के, अभागिन यह तरसती है।
हुई है जिन्दगी दूभर, नहीं कुछ भी सुहाता है।
विरह की वेदना से अब, कलेजा मुँह को आता है।।[4]

संवाद इसके भी छोटे-छोटे और शक्तिशाली हैं। यवन और वरुण के निम्नोक्त संवाद में लघुता एवं तीव्रता दृष्टव्य है :–

1. अंजना–सुदर्शन कृत–पृ० 5.
2. अंजना–सुदर्शन कृत–पृ० 62.
3. अंजना-सती अंजना-पद्मराज जैन, पृ० 8.
4. अंजना-सती अंजना-पद्मराज जैन, पृ० 36 अंक दूसरा, दृश्य पहला।

वरुण—ह: ह: ह: इतना भरोसा?

पवन—नहीं, आत्म विश्वास।

वरुण—इतना घमण्ड? पवन-नहीं, न्याय की ताकत।

वरुण—यह ललकार? पवन-हां, अन्याय का प्रतिकार।

वरुण—यह अरमान? पवन-नहीं, न्याय का सम्मान।[1]

इसी प्रकार पवन की माता केतुमती और अंजना की सरवी-दासी-वसंतमाला के संवाद में भी तीव्र आघात-प्रतिघात तथा ओज भरा पड़ा है-यथा-

केतुमती—सेविका होकर सीखा रही हो मुझे?

वसन्त—नहीं, न्याय की प्रार्थना कर रही हूँ, माता जी।

केतुमती—मैं ऐसी प्रार्थना को ठोकर मारती हूँ।

वसन्त—आप सच्चाई को ठोकर मार रही हैं।

केतुमती—बन्द करो बकवास, याद रखो तुम सेविका हो।

वसन्त—जानती हूँ, मगर अन्याय की सेविका नहीं मैं।[2]

अंजना सम्बंधी सभी नाटकों में चरित्र-चित्रण की दृष्टि से वसन्त माला का चरित्र अधिक सहानुभूति पूर्ण और उदात्त हो पाया है। एक दासी होकर भी वह माता-पिता, पति-सास-ससुर सबसे अधिक अंजना के निकट रहकर सखी, दासी, बहन और माँ का कर्तव्य निस्वार्थ भाव से बजाती है। अन्याय का प्रतिकार करती हुई अंजना के कठोर दु:ख व अत्याचार में वह हंसती हुई साथ देती है, बल्कि उसके दु:खों को हल्का से हल्का करने की निरन्तर कोशिश करती रहती है। अंजना का चरित्र भी पाठक की हमदर्दी व प्रेम जीत लेता है। वह प्रेम, सेवा एवं करुणा की साक्षात मूर्ति ही है। कदम-कदम पर दु:ख, अपमान और लांच्छन ही उसकी तकदीर में लिखे होने पर भी कर्मों का फल समझकर धैर्यपूर्वक शान्ति से सहती हुई पति-भक्ति में लीन-एकाग्र-सी रही है। वसन्तमाला की तरह पवनंजय का मित्र प्रहस्त भी सच्चा मित्र धर्म बजाता है निराशा, हताशा के समय सलाह, आश्वासन व धैर्य बंधाकर पवनंजय को स्वस्थ रखने की कोशिश करता है, तो अहंकार व अभिमान भरे उसके व्यवहार के समय योग्य मित्र की तरह वास्तविकता भी समझाता है। पवनंजय के प्रति पाठक का दिल कभी रोष का अनुभव करता है, लेकिन उसके गहरे पश्चाताप के बाद निर्मल व्यवहार से पुन: पाठक का दिल जीत लेता है। अन्य सभी पात्रों का भी अच्छा चरित्र-चित्रण किया गया है।

---

1. पद्मराज जैन—सती अंजना, पृ० 64.
2. वही—पृ० 73.

न्यामत सिंह के नाटक :

न्यामत सिंह ने सती कमलश्री, सती विजयासुंदरी, सती मैनासुंदरी, श्रीपाल नाटक आदि अनेक नाटकों की रचना की है, जिसमें जैन जगत् के प्रसिद्ध चरित्रों की प्रसिद्ध कथा-वस्तु ली गई है। इनके प्रायः सभी नाटकों की कथा-वस्तु भाषा-शैली, संवाद शैली एक-सी है। प्राचीन कथावस्तु को आधुनिक साज-सज्जा के साथ प्रस्तुत करके नाट्य-साहित्य के प्रारंभिक काल के अनुरूप प्रस्तुत किया गया है। इन नाटकों की नींव में जैन धर्म का कोई न कोई सिद्धान्त या विचारधारा रही है। देशकाल एवं वातावरण को विशेष महत्व नहीं दिया गया है। उनके नाटकों का अभ्यास आधुनिक युग के नाटकों के परिप्रेक्ष्य में नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि जिस समय से नाटक लिखे गये थे, तब आधुनिक नाटकों का प्रादुर्भाव तो हो चुका था, लेकिन पाश्चात्य नाट्य-साहित्य की टेकनीक व विचारधारा का विशेष प्रभाव दृष्टिगत नहीं हुआ था। उस समय पारसी थियेट्रीकल कंपनी के सस्ते मनोरंजक नाटकों की काफी धूम मची थी। अतः संभव है कि न्यामतसिंह के नाटकों पर भी उसका प्रभाव पड़ा हो और संवादों में भद्दापन, हंसी-मजाक, ठिठोली तथा शेर-शायरी गजल में वार्तालाप चलता हो। पारसी कंपनी के नाटकों को ग्रामीण व अशिक्षित जनता विशेष पसंद करती थी लेकिन शिक्षित जनता व साहित्यकार ऐसे नाटकों से दुःखी होते थे और साहित्यिक नाटकों की रचना की और भारतेन्दु जी व उनकी मण्डली विशेष प्रवृत्त हुई व उनका रंगमंच पर सफल, शिष्ट अभिनय भी करने लगे। राधेश्याम कथावाचक, प्रतापनारायण 'बेताव', 'आगांह' आदि नाटककार पारसी रंगमंच के लिए विशेषतः नाटक लिखते थे और पद्यमय संवाद तथा अंग्रेजी शब्दों का प्राचुर्य इन नाटकों में विशेष रहता था। न्यामत के नाटकों में भी ये विशेषताएँ देखी जाती हैं। पद्य में संवाद तो ठीक है लेकिन प्राचीन वातावरण के अनुकूल अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग मेल नहीं खाता। वातावरण की गरिमा एवं स्वाभाविकता का परिपालन नहीं होता। अब उनके कुछ नाटकों के विषय में विचार किया जायेगा।

सती कमलश्री नाटक :

यह धार्मिक नाटक अभिनय योग्य है। स्त्री शिक्षा, धर्म परायणता, साहिष्णुता, पवित्रता एवं दान धर्मादि सदगुणों का जिक्र कथावस्तु के बीच-बीच में किया गया है। लेखक के शब्दों में ही–'इसमें मौके-मौके पर धर्म की शिक्षा और गृहस्थ नीति की शिक्षा कविता के द्वारा अच्छी तरह से दर्शाई गई है। जिसकी आजकल बड़ी आवश्यकता है। इस नाटक में इस बात को भी अच्छी

तरह से विस्तारपूर्वक खिलाया गया है कि पहले के समय में श्री भविष्यदत्त जैसे वैश्य पुत्र कैसे बलवान और गुणवान होते थे, जो अपनी बुद्धि और भुजबल से राजाओं तक को युद्ध में परास्त करके और उनकी कन्याओं से शादी करके स्वयं राज्य किया करते थे। + + + इस नाटक को किस्सा या कहानी समझ कर इसका अभिनय नहीं करना चाहिए, बल्कि जैन शास्त्र जानकर इसको विनयपूर्वक पढ़ना चाहिए, क्योंकि इसमें श्री जैन शास्त्र का रहस्य दिखाया गया है।' इस नाटक का नाटककार के कथनानुसार ऐतिहासिक एवं पौराणिक आधार प्राप्त है। आदि पुराण व भविष्यदत्त चरित्र आदि जैन शास्त्र में पोदनपुर नगर अफगानिस्तान या गन्धार देश की तरफ था, ऐसा उल्लेख है, पोदनपुर की तरह हस्तनापुर-हस्तिनापुर-नामक शहर,-जो आज तो एक वीरान जगह बन गया है। उस समय बहुत चहल-पहल वाला शहर था। इस शहर में राजा पहमाल राज्य करता था, धनदत्त बहुत बड़ा सेठ और हरिबल एक श्रीमंत जैन महाजन था, जिसकी स्त्री का नाम लक्ष्मी देवी था। उनकी बेटी कमलश्री गुणवान व रूपवान थी, जो इस नाटक की मुख्य पात्री है। उसकी शादी इसी शहर में धनदेव नामक श्रेष्ठि से हुई थी और भविष्यदत्त नामक पुत्र हुआ।

कथानक :

संस्कारी व सुन्दर कमलश्री की शादी धनदेव से होने के बाद बहुत समय तक सन्तान का अभाव खटकने लगा। संसार से उदास होकर वह मुनिराज से दीक्षा लेने को उद्यत हो जाती है, लेकिन मुनिराज ने गर्भिनी जानकर उसे दीक्षा न दी। गर्भ की बात जानकर कमलश्री अत्यन्त प्रसन्न हुई। समय पर भविष्यदत्त नामक पुत्र को जन्म दिया। कुछ समय बाद धनदेव धनदत्त सेठ की पुत्री सुरूपा के सौन्दर्य में आसक्त हो गया और उसके साथ विवाह कर कमलश्री को पीहर भेज दिया। सुरूपा को बन्धुदत्त नामक पुत्र हुआ। अब विमाता के दुर्व्यवहार से असंतुष्ट भविष्यदत्त ननिहाल चला गया। उधर सुरूपा के अधिक लाड़-प्यार से बन्धुदत्त बिगड़ गया। बड़े होने पर भविष्यदत्त माँ की इजाजत लेकर व्यापार करने के लिए चलता है, बन्धुदत्त भी साथ में जाता है। मार्ग में मैनागिरि पर्वत पर भविष्यदत्त को धोखा देकर छोड़ दिया गया और स्वयं जहाजों को लेकर चला गया। यहाँ भविष्यदत्त को काफी कष्ट सहने पड़े और भाग्यवश तिलकपुर पट्टन पहुँच कर तिलकासुंदरी नामक राजकन्या से उसका विवाह हुआ। उधर बन्धुदत्त का जहाज चोरों ने लूट लिया। भविष्यदत्त तिलका के साथ हस्तिनापुर लौट रहा था कि मार्ग में दयनीय दशा में बन्धुदत्त भी आ मिला। भविष्य दत्त ने उसे सान्त्वना दी और साथ ले लिया। दुर्भाग्यवश तिलकासुन्दरी की मुद्रिका

लाने के लिए जहाज से उतरे हुए भविष्यदत्त को पुनः धोखा देकर जहाज को आगे बढ़वा कर तिलका सुंदरी को हथियाने की कुचेष्टा करता है। मोहान्ध होकर उस पर बलात्कार करना भी चाहता है, लेकिन उसके दिव्य तेज के समक्ष उसे पराजित होना पड़ा। बन्धुदत्त अपार संपत्ति एवं सुंदर कन्या को लेकर अब नगर वापस लौटा तो सारे नगर में खबर फैल गई। सुरूपा पुत्र के वैभव एवं बहू को देखकर प्रसन्न हो गई। तिलका के साथ बन्धुदत्त के विवाह का समाचार चारों और फैल गया। उधर मुद्रिका लेकर जब किनारे पर पहुँचकर भविष्यदत्त ने जहाज को न देखा तो निराश होता है। जैसे-तैसे हस्तिनापुर पहुँच कर अपनी माँ से मिलाप होता है। दुःखी माँ कमलश्री पुत्र को सकुशल देख प्रसन्न होती है। सारी घटना सुन बेचारी दुःखी होती है। सारे नगर में बन्धुदत्त के दुराचार का समाचार फैल जाता है। दुःखी एवं निराश तिलका को पति के पुनरागमन से खुशी हुई। राज-दरबार में सुरूपा एवं बन्धुदत्त का मुँह काला हो गया। भविष्यदत्त और तिलका सुंदरी कमलश्री के साथ सुख-चैन से रहने लगे और धनदेव को सती कमलश्री से क्षमा मांगनी पड़ी। बन्धुदत्त ने कोपित होकर पोदनपुर के युवराज के समीप पहुंच कर गजपुर के महाराज की कन्या से शादी करने के लिए प्रेरित किया। लेकिन गजपुर के राजा ने अपनी कन्या सुमता के लिए भविष्यदत्त को चुन लिया था। अतः दोनों राजाओं में युद्ध हुआ। भविष्यदत्त ने सेनापति पद पर प्रतिष्ठित होकर अतीव वीरता से लड़ाई कर विजयलक्ष्मी को प्राप्त किया। सुमता की शादी आनंदोल्लास के साथ भविष्यदत्त के साथ संपन्न हुई। तिलका सुंदरी पटरानी हुई।

'इस नाटक में वातावरण-की सृष्टि इतने गंभीर एवं सजीव रूप में की गई है कि अतीत हमारे सामने आकर उपस्थित हो जाता है। धोखा और कपट नीति सदा असफल रहती है, यह इस नाटक से स्पष्ट है। कथोपकथन स्वाभाविक बन पड़ा है। चरित्र-चित्रण की दृष्टि से यह नाटक सुरुचिपूर्ण और स्वाभाविक है। इस नाटक की शैली पुरातन है। भाषा उर्दू मिश्रित है तथा एकाध जगह अस्वाभाविकता भी प्रतीत होती है।'[1] गजल, शेर-शायरी और कव्वालियों में प्रायः संवाद चलते रहते हैं। नाटककार पंजाब के होने से उर्दू शब्दों की भरमार है, जैसे—याराना, जहूर, शराब, हसद, आलप्रभ, बदजुबानी बुब्ज़कीना आदि—साथ ही थरमोमिटर जैसे अंग्रेजी के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। पद्यात्मक संवाद का एक उदाहरण द्रव्टव्य है—तब भविष्यदत्त अपने भाई की चालाकी देखकर दुःखी होता है, तो सोचता है—

1. डा॰ नेमिचन्द्र जी : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ॰ 117.

शेर– **क्या भाइयों में मुहब्बत और वफादारी,**
क्या यारों में मुहब्बत और यारी-
आज सब एकदम जाती रही दुनिया से क्या,
शरारत, मक्र, दगा, धोखा, फेज, रिया यकायक
तमाम ख्यें जमीन पर छा गई; क्या दया व धर्म का,
जमाना पलट गया, रहम व इंसाफ का तख्ता उलट गया।''

दुःखी, निराश भविष्यदत्त अकेला आगे बढ़ता हुआ तिलकपुर पट्टन पहुँचता है, जहाँ समृद्धि ही समृद्धि दिखाई पड़ती है। प्रथम मंदिर देखकर भविष्यदत्त वहां जाकर भगवान महावीर की मूर्ति के चरणों में गिरकर प्रार्थना करता है–

(चाल) **इन दिनों जोशे जनू है तेरे दिवाने की,**
अय महावीर जमाने का दिनकर तू है,
सारे दुखियों के लिए एक दिवाकर तू है,
तूने पैगाम अहिंसा का सुनाया सबको
बस, जमाने का हितोपदेशी सरासर तू है।

इस प्रकार की शेरो-शायरी में ही नाटक के प्रायः सभी पात्र बातचीत करते हैं, जो कहीं-कहीं अस्वाभाविक अवश्य हैं।

सती विजयासुन्दरी नाटक :

'कमल श्री' नाटक की तरह इसमें भी प्राचीन कथावस्तु को उपदेशात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। नाटककार के शब्दों में 'इसमें शील धर्म की महिमा दिखाई गई है कि किस प्रकार एक गरीब लकड़हारे ने शीलव्रत का पालने करके राजा की पदवी को प्राप्त किया तथा सती विजयासुन्दरी से अपने पति के खोये हुए राज्य को किस प्रकार प्राप्त किया और अपने पुत्र जीवंधर को किस प्रकार राजगद्दी पर बैठाया। 'इस नाटक में भी कव्वाली, शेर और गजल में ही पूरे-पूरे संवाद चलते हैं, जो कहीं-कहीं चुभते हैं। वैसे भाषा उर्दू प्रधान होने से मिठास काफी है। कहीं-कहीं तो दुनियादारी, धर्म-कर्म, की बातों को अच्छी तरह से चर्चित किया गया है। राजा सत्यंधर की सुशील गुणवान रानी विजयासुंदरी कहती है–

धार्मिक राजा है जो और धर्म का अवतार है,
धर्म पर चलता है, जो तजकर विषय को, काम को।
अपने सुख के वास्ते मन छोड़िये इस राज को,
सोच लीजियेगा जरा इस काम के अंजाम को। (पृ० 30)

राजा सत्यंधर का केवल बेफिक्र होकर मौज मजा और 'ऐशोआराम के लिए राजगद्दी व राजकाल किसी सुयोग्य व्यक्ति के हाथ में न सौंपकर एक अनपढ़, नीच लकड़हारे के हाथ में सौंपकर निश्ंचित हो जाना बुद्धि को ग्राह्य नहीं हो पाता। ठीक है कि एक बार लकड़हारे ने वेश्या पद्मावती के घर जाकर भी रंगरेलियों के बीच में से व्रत-नियम की याद आ जाने से तुरन्त उठकर चले जाने की हठता बताई थी और इससे राजा प्रभावित भी हुआ था। लेकिन इसी वजह से उसे राजकाज सौंप देना कहां की अक्कल है? केवल व्रत-नियम की दृढ़ता से ही वह विश्वासी एवं राजकाज में कुशल-चतुर होगा ऐसा कैसे स्वीकार्य-संभव हो सकता है? मंत्री धर्मदत्त और महारानी विजयासुन्दरी ने काफी समझाया-बुझाया तथा भविष्य का सोचकर ही कार्य करने को कहा, लेकिन राजा अपने निश्चय में दृढ़ था। अत: लकड़हारे को राज्य की बागडोर सौंपकर वे स्वयं निश्ंचित बन गये। राजा मंत्री वसुदत्त की शंका का अपने तर्क से समाधान करते हुए कहते हैं–'वज़ीर साहब, आप घबराइये मत, ऐसा नहीं हो सकता कि काष्टांगार हमसे कोई दगाबाजी करे या किसी किस्म की जालसाजी करे। राज की बागडोर तो हमारे हाथों में रहेगी, उसको तो सिर्फ अपने ऐजन्ट के तौर पर मुकर्रर किया जा सकता है।' राजा को अपनी इस जल्दबाजी एवं अविवेक का फल भी तुरन्त मिलता है। काष्टांगार ने राजा का कत्ल करवा दिया और खुद राज्य हड़प लिया। साथ ही वह सगर्भा रानी को भी मार डालना चाहता था, ताकि आने वाली संतान राजगद्दी वापस लेने की चेष्टा न करे, रानी व सन्तान न रहने से भविष्य का कोई खतरा न रहे। लेकिन दम तोड़ते हुए राजा ने रानी को विमान से भाग जाने का आदेश दिया। रानी कैकेय यंत्र में बैठकर भाग छूटती है एवं पुत्र को जन्म देकर पालती-पोसती हुई अनेक प्रयत्नों के बाद पुन: राजगद्दी प्राप्त कर पुत्र को स्थापित करती है। उस समय देवियाँ आनंद-मंगल के गीत गाती हैं। इस गीत में गांधी जी का नामोच्चारण देशकाल व वातावरण की दृष्टि से अनुचित व देशकाल-दोष कहा जायेगा, लेकिन देश भक्ति के प्रवाह में नाटककार खींचते हुए ऐसा कर बैठे हैं।

इस प्रकार शील एवं व्रत धर्म की महत्ता प्रदर्शित करता हुआ यह नाटक रंगमंचीय दृष्टिकोण से एक-दो दृश्यों को दूर कर अवश्य अभिनयात्मक कहा जायेगा।

सती मैना सुंदरी नाटक :

जैन ग्रंथों में सती मैना सुन्दरी एवं राजा श्रीपाल का रास बहुत ही लोकप्रिय और श्रद्धापात्र माना गया है। चैत एवं आश्विन के शुक्ल पक्ष में नव

दिन तक व्रत उपासना करके राजा श्रीपाल व मैनासुन्दरी की कथा याद करके उनकी दृढ़ता, शील, धर्म परायणता, न्याय वृत्ति को श्रद्धांजलि दी जाती है। जैन दर्शन में कर्म के महत्व को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना गया है, क्योंकि आदमी अपने कर्मों के अनुकूल ही सुख-दुःख प्राप्त करता है। शीलव्रत एवं शुद्ध आचरण के द्वारा सुख प्राप्त करता है, तो बुरे कर्मों के कारण दुःख, कष्ट सहन करने पड़ते हैं। प्राचीन रोचक कथावस्तु को ग्रहण कर इसमें नाटककार ने इस सनातन सत्य की अभिव्यक्ति अपने पात्रों से करवाई है। मैनासुंदरी अपने कर्मों को पिता के राज-वैभव की तुलना में विशेष महत्व देती है। इसी वजह से उज्जैन नगरी के राजा पहुपाल गुस्से में आकर लाड़ली बेटी का कुष्ठ रोगी श्रीपाल के साथ व्याह कर देते हैं। लेकिन मैना अपने कर्मों के फल में अविचल विश्वास रखती हुई व्रत-धर्म एवं सेवा-सुश्रुषा से पति और उनके 500 कुष्ठ रोगी साथियों का रोग मिटाती है। अनेक कष्टों को धैर्यपूर्वक सहने के बाद अंत में वह सुख-सौभाग्य को प्राप्त करती है। श्रीपाल राजा पुनः राजगद्दी पर प्रतिष्ठित होते हैं और वह पटरानी बनकर सुख-वैभव भोगती है। तकदीर बड़ी चीज होने के साथ निःस्वार्थ पुरुषार्थ का सच्चा महत्त्व मैना का चरित्र व्यक्त करता है। इस नाटक का अभिनय किया जा सकता है, लेकिन कलातत्व, साहित्यिकता इसमें कम मात्रा में है। वातावरण संवाद की गरिमा, लघुता-तीव्रता, चरित्रों का मार्मिक अप्रत्यक्ष रूप से चित्रण आदि का नाटक में होना आवश्यक है, इन सबकी अनुपस्थिति इस नाटक में वर्तमान है। फिर भी रोचक कथावस्तु तथा अभिनेयता का गुण विद्यमान है। नेमिचन्द्र जी इस नाटक के सम्बंध में लिखते हैं-'मैनासुंदरी नाटक का अभिनय किया जा सकता है, पर उसमें कला नहीं है। व्यर्थ का अनुप्रास मिलाने के लिए भाषा को कृत्रिम बनाया गया है। शैली भी बोझिल है। साहित्यिकता का अभाव है।'[1] 'श्रीपाल नाटक' में मैनासुंदरी की अपेक्षा अधिक नाट्य तत्त्व पाये जाते हैं। इसके कथोपकथन भी प्रभावोत्पादक हैं तथा गद्य-पद्य दोनों में लक्ष्य की मधुरता और क्रमबद्धता है। अभिनय की दृष्टि से भी वह बहुत अंशों में सफल है। उर्दू शब्दों की भरमार होने पर भी अच्छा नाटक है।

वर्द्धमान महावीर :

ब्रजकिशोर नारायण ने इस नाटक की रचना कर भगवान महावीर के आदर्श जीवन को अंकित किया है तथा महावीर का सत्य, अहिंसा का संदेश जन-सामान्य में प्रसारित करने के उद्देश्य से इस अभिनयात्मक नाटक की रचना की गई है।

1. डा० नेमिचन्द्र जी : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ० 115.

कथानक :

महावीर की कथावस्तु अत्यन्त प्राचीन व प्रसिद्ध है। महावीर की जीवनी को इस नाटक में कथोपकथन के माध्यम से व्यक्त किया गया है। जन्म से ही वर्धमान असाधारण दीखते थे। बचपन में साथी बालक भी उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हो जाते थे। उनकी अद्भुत अहिंसक वीरता व अलौकिक शक्ति, तेज व कार्यों के कारण उनके माता-पिता ने भी उन्हें तीर्थंकर के रूप में स्वीकार कर लिया था। कुमार के युवा होने पर विवाह की चिंता राजा-रानी को होने लगी, लेकिन वैरागी बेटा बराबर इन्कार करता रहा। माता-पिता के अधिकाधिक आग्रह से फिर आज्ञाकारी पुत्र ने आदेश के पालन करने हेतु विवाह करना स्वीकार किया। माता-पिता की मृत्यु के बाद अग्रज नंदिवर्द्धन से आज्ञा लेकर पत्नी यशोदा और पुत्री प्रियदर्शना को छोड़कर दीक्षा ग्रहण कर ली, क्योंकि संसार के पदार्थों, भोग-वैभव राज्य लिप्सा से उन्हें कब से अरुचि हो गई थी। अत: समाज में स्वार्थ-परायणता, हिंसा, असत्य के स्थान पर अहिंसा, मानवता और सत्य का प्रचार करने के लिए वे निकल पड़े। प्रारंभ में बारह वर्ष उग्र तपश्चर्या, मनोनिग्रह एवं चिंतन-मनन में, कष्ट-संकटों को सहते हुए गुज़ारे। बाद में 'केवल ज्ञान' को प्राप्त कर शिष्यों का समुदाय बनाकर उपदेश देना प्रारम्भ किया। उनके शिष्यों में मेखलीपुत्र गोशाला एवं उनके जामाता जामालि ने महावीर का घोर विरोध किया, निंदा की लेकिन अंत में दोनों को पश्चाताप और कष्ट की मौत मरना पड़ा। महावीर ने तो उन दोनों के प्रति प्रेम और करुणापूर्ण व्यवहार रखा था। गौतम इन्द्रभूति को प्रथम गणधर (शिष्य) पद पर स्थापित कर अन्य प्रमुख आचार्यों को गणधर बनाकर जैन धर्म का प्रचार-प्रसार किया। अन्त में 72 वर्ष की आयु में महावीर पावापुरी पहुँचे और वहाँ दिव्य उपदेश देते हुए कार्तिक की अमावास्या को समाधिमरण लेकर 'मोक्ष' प्राप्त किया। उनकी मोक्ष प्राप्ति के मंगल अवसर को मनाने के लिए दीप जलाने की प्रथा प्रारंभ हुई है ऐसा माना जाता है। हिंसा-अज्ञान का अंधकार दूर कर जैसे अहिंसात्मक ज्ञान की ज्योति प्रभु महावीर ने फैलाई, इसके प्रतीक रूप में दीपक जलाकर उजाला प्रकट करने का प्रचलन प्रारंभ हुआ।

इस नाटक का कथानक जैन आगम के आधार पर से लिया गया है और नाटककार श्वेतांबर मान्यता में विश्वास करते हुए लगते हैं, क्योंकि दिगम्बर मान्यता में महावीर को अविवाहित और साधनाकाल में दिगम्बरावस्था में ही स्वीकारा गया है। लेखक ने इसको विशेषकर अभिनय के लिए लिखा है और अपने उद्देश्य में वे सफल भी हुए हैं। क्योंकि सभी घटनाएं दृश्य हैं और सूक्ष्म

घटनाओं का अभाव है। नृत्य और संगीत का भी इसमें अभाव है। अभिनय सम्बंधी त्रुटियाँ बहुत कम पाई जाती हैं। कथानक भी सरल है, और दृश्य-परिवर्तन रंगमंचानुसार हुआ है। संगीत की बिल्कुल अनुपस्थिति ऐसे धार्मिक नाटक को नीरस बना देता है। कथोपकथन नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करने की क्षमतावाले हैं। काव्य और अकाव्य दोनों प्रकार के कथोपकथन हैं, जो कथा की गति को आगे बढ़ाने में एवं चरित्रों की विशेषता पर प्रकाश डालने में समर्थ है। रानी त्रिशला और सुचेता का निम्नलिखित संवाद कथा के प्रवाह को तीव्र बनाने के साथ वर्धमान के गुणों पर भी प्रकाश डालता है–

'त्रिशला-सुचेता! मै तालाब में सबसे आगे तैरते हुए दोनों हंसों को देखकर अनुभव कर रही हूँ, जैसे मेरे दोनों पुत्र नंदिबर्द्धन और वर्द्धमान जलक्रीड़ा कर रहे हैं। दोनों में जो सबसे आगे तैर रहा है वह–सुचेता–'वह कुमार नंदिवर्द्धन है महारानी।'

त्रिशला-'नहीं सुचेता, वह वर्द्धमान है। नंदिवर्धन में इतनी क्षिप्रता कहाँ ? देख, देख किस फुर्ती से कमल की परिक्रमा कर रहा है शरारती कहीं का।' फिर भी कथोपकथनों के द्वारा पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति को व्यक्त करने की नाटककार ने कोशिश नहीं की है। यदि वे चाहते तो माता-पिता की मृत्यु, तपस्या, साधना, आदि के अवसरों पर महावीर के स्वाभाविक अन्तर्द्वन्द्व का आयोजन-निरूपण-कर सकते थे। वर्धमान के अतिरिक्त अन्य मुख्य पात्रों का-नन्दिवर्द्धन, यशोदा, त्रिशला, प्रियदर्शना आदि का-वैयक्तिक विकास न दिखलाकर उनके चरित्रों को गौण बना दिया है। नाटक के लिए आवश्यक कार्यावस्था और अर्थ प्रकृतियों का भी संपूर्ण निर्वाह नहीं हो पाया है। फिर भी शान्त रस की प्रभावक निष्पत्ति तथा पूर्ण अभिनेयात्मकता के कारण नाटक सुंदर बन पड़ा है। 'रस-परिपाक की दृष्टि से यह रचना सफल है। न यह सुखान्त है, और न दुखान्त ही। महावीर के निर्वाण-लाभ के समय शांत रस का सागर उमड़ने लगता है। अहिंसा मानव के अन्तस् का प्रक्षालन कर उसे भगवान बना देती है। यही इस नाटक का संदेश है। वर्तमान की समस्त बुराइयाँ इस अहिंसा के पालन करने से ही दूर की जा सकती है।[1]

स्व॰ भगवत्स्वरूप जैन ने भी धार्मिक नाटकों की रचना की है। नाटकों में आधुनिक भाषा शैली एवं रंगमंचीय निर्देशन का पूरा वातावरण बना रहता है। अभिनेय योग्यता इनके नाटकों की विशेषता है। 'गरीब' उनका करुण रस प्रधान सामाजिक नाटक है, जिसमें समाज की विषमता, पूँजीपति की शोषणप्रियता,

1. डा॰ नेमिचन्द्र जी : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ॰ 120.

समाज-सुधार के प्रति अमीरों का विद्रोहात्मक व्यवहार आदि का दिग्दर्शन कराया गया है। लक्ष्मी की चंचलता व माया का मोहक रूप दिखाकर लेखक ने मानव-हृदय को धन के अहं से नहीं, बल्कि मानवता और करुणा से प्रकाशित करने का संदेश व्यक्त किया है। मुख्य कथा के साथ गृह-कलह, दहेज की निर्दय प्रथा को अंकित करने वाली अवान्तर कथाएं भी साथ चलती हैं, जो दर्शक को रस-विभोर बना देती हैं। भगवत् जी का यह सुन्दर नाटक है। 'भाग्य' उनका पौराणिक कथानक से युक्त नाटक है जो पूर्णतः अभिनय योग्य है। नाटककार ने रंगमंचीय बनाने का काफी ख्याल रखा है। साज-सज्जा, अभिनय, रंग, वेशभूषा आदि के विषय में आवश्यक सूचनाएँ दी हैं। नाटककार का आग्रह है कि-'जहाँ तक हुआ है, उसे सार्वजनिक बनाने का प्रयत्न किया है। कथानक को प्रायः सभी घटनाएँ देने की चेष्टा की है, किन्तु स्टेज करने वालों की सुविधा, असुविधा का ध्यान पहले रखा है। + + + + इसी तरह कम से कम पात्र, चुने हुए आधुनिक ढंग के संवाद और थोड़े समय में समाप्त हो सकने योग्य संक्षिप्त प्लोट आदि उन सभी बातों को पहले कुछ सोचा, बाद में लिखा गया। साथ ही, कुछ वे बातें भी शायद आपको इसमें मिल सकें, जो नाटक-साहित्य की कसौटी पर कसी जाया करती हैं। सही है कि आज इस ढंग के नाटक लिखने का चलन कम हो गया है, यह पुरानी पारसी कम्पनियों की देन है। लेकिन यथार्थवाद का पथ लेकर यह कहा सकता है कि भले ही इस शैली को साहित्यिक न कहा जाय, किन्तु स्टेज पर यह जो प्रभाव छोड़ती हैं, वह मननशील साहित्यिक शैली की नाटिकाएं नहीं।[1] लेखक ने प्रारंभ में ही 'फ्लेश-अंक' की टेकनिक का प्रयोग किया है, जो आधुनिक साहित्य की विशेषता कही जायेगी।

नाटककार ने पौराणिक कथानक के बीच में भी आधुनिक विचारधारा का संनियोजन सुंदर रूप से किया है। अहिंसा और न्याय के संदर्भ में अच्छे विचार प्रस्तुत किये हैं। जब धवलराय को सजा देने के लिए भूमण्डल राजा कहता है, तब श्रीपाल उसे मुक्त करके क्षमा करने को कहते हैं। वे कहते हैं-'तो क्या महाराज का यह ख्याल है कि बुरों को बुराई के रास्ते पर ही ढकेलते रहना समझदारी है। सच तो यह है कि इसी रवैये पर बुरों की तादाद बढ़ती है। उन्हें भी आज़ादी के साथ भलाई का रस चखने दिया जाए , तो सांप का दिल भी उसके शरीर की तरह मुलायम बनाया जा सकता है।'[2] भगवत् जी

---

1. भगवत जैन-'भाग्य' नाटिका, भूमिका, पृ० 4.
2. भगवत जैन-'भाग्य' नाटक, पृ० 113.

की भाषा में रोचकता काफी है। संवाद भी छोटे-छोटे एवं कथा को गति देने वाले हैं। कहीं-कहीं अंग्रेजी के शब्दों से युक्त शुद्ध साहित्यिक भाषा है।

भगवत् जी के सात अहिंसा पूर्ण एकांकियों का संग्रह 'बलि जो चढी नहीं' भी सुन्दर भाषा-शैली में लिखा गया है। इसमें धार्मिक, पौराणिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय कथानक युक्त एकांकियों को लेखक ने पूर्णतः अभिनयात्मक रूप प्रदान किया है। जैन साहित्य के भण्डार की अभिवृद्धि करने में भगवत् जैन का योगदान प्रशंसनीय कहा जायेगा। 16 दृश्यों के 'दहेज के दुःखद परिणाम' नाटक में पं० ज्ञानचन्द्र जैन ने हास्य एवं व्यंग्य के द्वारा समाज में पनप रही दहेज की विषम-भयंकर फलगामी प्रथा पर प्रकाश डाला गया है। इस सामाजिक नाटक में दहेज के कारण दुःखद परिणामों की ओर अंगुलि-निर्देश किया गया है। नवयुवक विजय अपने दहेज लोभी बाप सेठ धनपाल की इच्छा के विरुद्ध जाकर बिना दहेज लिये ही सुशील लड़की से शादी करने का फैसला कर लेता है और अपने निर्णय में दृढ़ भी रहता है। धन की अपेक्षा योग्य संस्कार व सुशीलता को वह प्रमुखता देता है। विजय की मुख्य कथा के साथ दहेज लेकर बेटे की शादी करने वाले ससुर तथा बेटे की बुरी दशा का वर्णन करने वाली कथा भी साथ चलती है। छोटे से नाटक में छोटे-छोटे दृश्यों में लेखक ने काफी कुशलता से सामाजिक बुराइयों पर व्यंग्यात्मक शैली में प्रकाश डाला है। कथोपकथन की भाषा सरल है तथा बीच में कहीं गीत या लम्बे स्वगत कथन नहीं आने से रोचकता बनी रही है एवं कथा का प्रवाह विश्रृंखलित होने पर काफी प्रभाव पड़ने की संभावना रहती है।

नंदलाल जैन ने तेरह अंकों में विभाजित अहिंसा प्रधान सामाजिक नाटक 'भारत के सपूत' लिखा है। समाज में विधवा, गरीब एवं अनाथ बच्चों की करुण दशा पर प्रकाश डाला गया है। समाज सुधारक रमाकान्त और उसका मित्र मनोहर दोनों समाज में फैली बदियों को दूर करने की कोशिश करते हैं। एक ओर गरीब असहायक दीनानाथ है, तो दूसरी ओर धनिक लोभी अत्याचारी सेठ धनपाल है। सेठ जी के इकलौते बेटे को सांप डंस जाता है, तो उसकी आँखें खुल जाती हैं। शेठ और शेठानी की हैजे में मौत हो जाती है। अतः वे अपनी संपत्ति भारतवर्षीय अनाथाश्रम को देने जाते हैं। इस आश्रम के पंडित जी गरीब अनाथ बच्चों, विधवाओं आदि की तन-मन-धन से सेवा करते हैं। मनोहर इसी आश्रम में पल-पोसकर बड़ा हुआ है। सामान्य आश्रम से यह भिन्न प्रकार की आदर्शात्मक संस्था है। इसकी अच्छाई एवं सुव्यवस्था की पात्रों द्वारा बार-बार दुहाई दिलवाना कुछ अस्वाभाविक भी प्रतीत होता है। गुण्डों के चंगुल

में विधवा कान्ता की रक्षा कर उसके छोटे बच्चे कन्हैया के साथ मनोहर आश्रम में ले आता है। बीच-बीच में रमाकान्त एवं मनोहर के गीतों में प्रेम व अहिंसा, दया, ममता व सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार का संदेश दिया जाता है। अंत में जैन धर्म की महत्त्वपूर्ण विचारधारा अहिंसा की उपादेयता प्रतिपादित करते हुए लिखा गया है कि—संसार में अहिंसा से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। कोई देवी या माता संसार में किसी की बलि नहीं चाहती। और न वह मांस-भक्षण करती है। वह तो केवल इन धूर्तों ने अपने पापी पेट के लिए ढोंग रचा रखा है। मैं संसार को उपदेश करती हूँ कि संसार में सभी जीवों पर दया करो, कभी किसी को मत सताओ। जाओ बेटा। तुमने संसार की आँखें खोल दी हैं। तुम्हारा यश संसार में अक्षय हो। इसके आगे जब मनोहर देवी के मंदिर में निर्दोष पशु की जगह स्वयं बलि के लिए तैयार हो जाता है, तब उसका मित्र उसकी अहिंसा, हिम्मत एवं साहस की प्रशंसा करता हुआ कहता है—

धर्म अहिंसा में बसे-हिंसामांहि अधर्म
जो हिंसा करते अधम, पावें नरक अधर्म।[1]

इस प्रकार एक ओर समाज में दलितों, पीड़ितों, असहायों की दशा का नाटकीय ढंग से निरूपण है, तो दूसरी ओर निर्दोष पशुओं की बलि का जघन्य कार्य रोक कर अहिंसा प्रस्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। नाटक रंगमंचीय है एवं भाषा भी सरल है, वातावरण का चित्रण विशेष नहीं हो पाया है। पात्रों में भी रमाकान्त तथा मनोहर का अच्छा चरित्र-चित्रण हो सका है, जबकि अन्य गौण पात्रों में सेठ धनपाल जी, विधवा कान्ता, गरीब दीनानाथ, पंडित जी आदि के लिए अवकाश नहीं रहता है।

दीवान अमरचंद :

स्व॰ रतनलाल गंगवाल ने जयपुर के राष्ट्रप्रेमी अहिंसक, न्यायी तथा करुणाशील दीवान अमरचंद जी की जीवनी पर से यह नाटक लिखा है। जयपुर नगर के छोटे दीवान होने पर भी वे सादगी और सरलता से रहते थे। जैन धर्म के तत्वों के प्रति उनकी अपार श्रद्धा थी। उनकी अटूट श्रद्धा से प्रभावित होकर जयपुर के महाराज ने निर्दोष प्राणी की हत्या पर प्रतिबंध लगवाया था। दीवान गरीबों की निःस्वार्थ सेवा-सहायता करते रहते थे। जयपुर के उत्कर्ष के लिए समाज में प्रवर्तित प्राचीन सड़ी-गली रूढ़ियों को तोड़ने के लिए वे निरंतर सतर्क रहते थे। इतने बड़े पद पर अधीनस्थ होने पर भी वे अत्यन्त दयालु एवं नम्र थे। अपने राज्य में कहीं भी असंतोष या अव्यवस्था न बनी रहे, इसके लिए वे

1. नंदलाल जैन—'भारत के सपूत', पृ॰ 38.

निरन्तर सतर्क रहते थे। नाटक संक्षिप्त है, फिर भी कथानक सारपूर्ण, गर्भित व रोचक है। जैन धर्म की अहिंसा, दया, ममता, एवं प्रेम पूर्ण व्यवहार की विचारधारा परोक्ष रूप से व्यक्त की गई है। संदेश प्रत्यक्ष न होकर संवाद के माध्यम से आने से नीरसता या बोझ नहीं लगता। भाषा में राजस्थानी भाषा का थोड़ा-बहुत प्रभाव दिखता है। बीच में आते गीत कथावस्तु और पात्र पर प्रकाश डालने वाले हैं।

राजकुमार जैन भी कवि के उपरांत नाटककार के रूप में भी आधुनिक जैन साहित्य में महत्त्व स्थान रखते हैं। उन्होंने भी प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर से जैन धर्म व जगत की प्रसिद्ध स्त्री चन्दनबाला एवं सुरसुंदरी की कथा पर से 'सती सुर सुंदरी नाटक' और 'सती चन्दनबाला' नाटक की रचनाएं की हैं। सती चन्दनवाला में जैन धर्म की प्रसिद्ध प्रथम स्त्री आंबिका (साध्वी) चंदना की धर्मप्रियता, कष्ट-सहिष्णुता, त्याग-विराग एवं हृदय की कोमल वृत्तियों को व्यक्त करने वाली घटनाओं का राजकुमार जी ने सुंदर साहित्यिक भाषा शैली एवं आकर्षक कथोपकथनों में निरूपण किया है। उसी प्रकार 'सती सुरसुंदरी' में राजकुमारी सुरसुंदरी की ओजस्विता, पातिव्रत धर्म, सहनशीलता का भाववाही भाषा में चरित्रांकन किया है। इन दोनों विषयों पर कथा-साहित्य भी काफी उपलब्ध होता है। नारी के आदर्शात्मक चरित्रों को प्रस्तुत कर जैन साहित्यकार जैन समाज के नारी रत्नों का परिचय देकर नारी वर्ग को प्रेरणा देना भी चाहते हैं।

इस प्रकार हिन्दी नाटक-साहित्य पर दृष्टिपात करने पर पायेंगे कि प्राय: नाटक अहिंसा धर्म की महत्ता चरितार्थ करने के उद्देश्य से लिखे गये हैं, जिनका आधार प्राचीन ग्रन्थ रहे हैं। इन नाटकों में हिन्दी नाटकों की तरह साज-सज्जा, मनोविश्लेषणात्मकता, भाषा शैली की विदग्धता, वातावरण का नियोजन आदि चाहे प्राप्त न हो लेकिन ये नाटक अभिनय को दृष्टिकोण में रखकर विशेषत: लिखे गये हैं। और उनकी भाषा शैली अत्यन्त सुबोध रही है। इनमें से थोड़े-बहुत नाटक तो अत्यन्त उच्च कोटि के हैं, एवं रोचकता का गुण भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है।

निबंध-साहित्य :

आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य में सबसे समृद्ध विधा निबंध साहित्य की रही है। उपन्यास, नाटक की तुलना में विविध विषयों पर अपरिमित निबंध विद्वानों के द्वारा लिखे गये हैं। इन निबंधों में सैद्धांतिक, विचारात्मक, आचारात्मक, दार्शनिक, गवेषणात्मक आदि विविध प्रकार के हैं। इन निबंधों की भाषा-शैली

में प्रवाह, विचारात्मकता एवं सुबोधात्मकता अवश्य निहित है। आधुनिक काल को गद्य युग का श्रेय दिलवाने में निबंध-साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान कहा जाता है।

आधुनिक युग में गद्य को साहित्य की कसौटी मान ली जाय, तो निबंध को गद्य की कसौटी कहा जा सकता है। क्योंकि साहित्य की इस विधा में सर्वाधिक सुगठन, विचारों व शैली की परिपक्वता, चुस्तता, प्रवाह आदि की आवश्यकता रहती है। आधुनिक निबंध-साहित्य संस्कृत के निबंध या प्रबंध से सर्वथा भिन्न रूप से स्वीकृत है, एवं पश्चात्ताप साहित्य की देन कहा जायेगा क्योंकि यह आज लेटिन के 'एग्बीजीयर' (निश्चितर्तापूर्वक परीक्षण करना) से निकले फ्रेन्च के 'एसाइ' और अंग्रेजी के 'ऐसे' (Essay) का पर्याय हो गया है, जिनका शाब्दिक अर्थ प्रयत्न, प्रयोग या परीक्षण होता है और प्रयोग की दृष्टि से जो लघु अथवा मर्यादित दीर्घ कलेवर की उस अनवस्थित गद्य रचना के लिए प्रयुक्त होता है, जिसमें निबन्धकार आत्मीयता, वैयक्तितता या निर्वाधिकता के साथ किसी एक विषय या उसके किन्हीं अंशों या प्रसंगों पर अपनी निजी भाषा शैली में भाव या विचार प्रकट करता है।[1] यहाँ हमारा प्रयोजन निबंध की परिभाषा, तत्व या विकास के सन्दर्भ में चर्चा करने का कतिपय रहता नहीं है, क्योंकि निबंध को एक परिभाषा में बांधना अत्यन्त कठिन है। भारतीय व पाश्चात्य काव्य शास्त्रकारों ने, साहित्यकारों ने इसके संदर्भ में भिन्न-भिन्न पहलुओं को लेकर विस्तार से विचार किया है। एक बात निबंध के सम्बंध में निश्चित है कि वह सर्वथा व्यक्तिगत एवं स्वानुभूति मूलक विधा है। अत: आचार्य शुक्ल ठीक ही कहते हैं–'निबंध-लेखन जिधर चलता है, उधर अपनी संपूर्ण मानसिक सत्ता अर्थात् बुद्धि और भावात्मक हृदय साथ लिए रहता है।' और जोन्सन महोदय भी इसी कारण 'निबंध' को मन की उच्छृंखल गति-स्थिति की साहित्यिक अभिव्यक्ति' कहते हैं। (A loose sally of mind and irregular indigested piece of literature not a regular and orderly performance of literature) निबंध आस्तिक अभिव्यक्ति होने पर भी उसमें विचारों की सुस्तता, भाषा का गठन, सीमित विस्तार, स्वच्छन्दता में भी नियमितता एवं हार्दिकता के साथ मौलिक निजीपन अपेक्षित रहता है। इसी के परिणाम स्वरूप ही प्रत्येक निबंधकार की शैली भिन्न-भिन्न होती है और शैली पर से ही निबंधकार की प्रतिभा, योग्यता व मौलिकता का परिचय उपलब्ध होता है। विचारों की गंभीरता के साथ विषय के प्रतिपादन की शैली निबंध का प्राणतत्व

1. साहित्य कोश : पृ० 408.

कहा जायेगा। निबंध के लिए विषयों का क्षेत्र अपरिमित रहने से विषयों के मुताबिक निबंधों के प्रकार भी अनेक प्रकार से यथा वर्णनात्मक, विचारात्मक, भावात्मक, गवेषणात्मक, आलोचनात्मक, मनोविश्लेषणात्मक आदि हो सकते हैं। जैन साहित्य में यद्यपि विपुल संख्या में निबंधों की रचना हुई है, फिर भी उत्कृष्ट कोटि के मौलिक निबंधकारों की संख्या अल्प कही जायेगी। प्रमुख प्रतिभासंपन्न निबंधकारों में सर्वश्री पं॰ नाथूराम प्रेमी, युगवीरजी, पं॰ सुखलाल संघवी, जिनविजय जी महाराज, मुनि कल्याणविजय जी, पं॰ कैलाशचन्द्र शास्त्री, जैनेन्द्र जैन, कामताप्रसाद जैन, नेमिचन्द्र शास्त्री, अगरचन्द जी नाहटा, डा॰ अ॰ ज॰ उपाध्ये, डा॰ हीरालाल जैन आदि का योगदान काफी महत्वपूर्ण है। इनके अलावा भी अनेक अच्छे निबंधकारों की सेवा जैन साहित्य को उपलब्ध हो सकी है। अन्य विधाओं की अपेक्षा इस विधा को बहुश्रुत पंडितों एवं विद्वान् साहित्यकारों की लेखनी से समर्थ-समृद्ध होने का गौरव प्राप्त हुआ है। इन निबंधों को ऐतिहासिक, पुरातत्व, आचारात्मक, दार्शनिक, साहित्यिक, सामाजिक और वैज्ञानिक इन सात विभागों में विभक्त किया जा सकता है। वैसे विषयों की दृष्टि से जैन निबंध साहित्य और भी कई भागों में बांटा जा सकता है, लेकिन इनका वर्गीकरण करने के लिए उक्त विभाग ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

ऐतिहासिक :

ऐतिहासिक निबंधों की संख्या सर्वाधिक पाई जाती है। इस प्रकार के निबंध लिखने वालों में श्रद्धेय प्रेमी जी का नाम सर्वप्रथम लिया जा सकता है। इनके अतिरिक्त युगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर', पं॰ सुखलाल संघवी, पं॰ कल्याणविजय जी, मुनि जिनविजय जी, कामताप्रसाद जैन, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, पं॰ कैलाशचन्द्र शास्त्री, पं॰ भुजबली शास्त्री, प्रो॰ खुशाल चन्द्र गारावाला प्रभृति विद्वानों का योगदान उल्लेखनीय है। पं॰ नाथूराम 'प्रेमी' जी ने शुद्ध ऐतिहासिक ग्रन्थ न लिखकर जैनाचार्यों, जैन कवियों एवं अन्य साहित्य-निर्माताओं के विषय में अनगिनत शोधात्मक, परिचयात्मक निबन्ध लिखे हैं। प्रेमी जी ने अपनी मौलिक सूझ-बूझ, मार्मिक ज्ञान एवं गहन-अभ्यास-अध्ययन से निबंध भंडार भरकर गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। साथ ही उन्होंने सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी तीर्थ क्षेत्र, वंशगोत्र आदि के नामों के विकास व व्युत्पत्ति, आचार शास्त्र के नियमों का भाष्य तथा विविध संस्कारों का विश्लेषणात्मक, गवेषणापूर्ण शैली में निबंध लिखे हैं। अनेक जैन राजाओं की वंशावली, गोत्र, वंश परम्परादि का निरूपण भी उन्होंने एक जागृत शोधकर्ता

के समान किया है। अनेक जैन पत्र-पत्रिकाओं में प्रेमी जी के ऐतिहासिक शोधात्मक निबंध प्रकाशित हो चुके हैं। उनके प्रत्येक निबंध में शैली की गंभीरता, विचार निष्ठा, सुगमता एवं प्रवाह का प्रशंसनीय रूप देखने को अवश्य मिलेगा। दुरुह से दुरुह विषयों को बड़े रोचक और स्पष्ट रूप से छोटे-छोटे शब्दों में व्यक्त करने की अद्वितीय समर्थता उनमें विद्यमान है। "प्रेमी जी ने स्वामी सामंतभद्र, आचार्य प्रभाचन्द्र, देवसेन सूरि, अनन्तकीर्ति आदि नैयायिकों का, आचार्य जिनसेन और गुणभद्र प्रभृति संस्कृत भाषा के आदर्श पुराण निर्माताओं का, आचार्य पुष्पदत्त और विमलसूरि आदि प्राकृत भाषा के पुराण निर्माताओं का, स्वयंभू, त्रिभुवन स्वयंभू प्रभृति प्राकृत भाषा के कवियों का, कविराज हरिचन्द, वादिम सिंह, धनंजय महासेन, जयकीर्ति, वाग्भट, आदि संस्कृत कवियों का, आचार्य पूज्यपाद देवनंदी और शकटावन प्रभृति वैयाकरणों का एवं बनारसीदास, भगवतीदास आदि हिन्दी भाषा के कवियों का अन्वेषणात्मक परिचय लिखा है।[1] प्रेमी जी न केवल हिन्दी जैन साहित्य के अपितु हिन्दी साहित्य के भी सम्मानीय लेखक के रूप में प्रसिद्ध हैं।

पं॰ जुगलकिशोर जी मुख्तार 'युगवीर' का नाम भी ऐतिहासिक निबंध लिखनेवालों में आदर से लिया जाता है। जैन साहित्य के अन्वेषणकर्ताओं में आपका नाम मूर्घन्य है। उनके ऐतिहासिक, दार्शनिक, वैचारिक निबंधों का संग्रह, 'युगवीर निबंधावली भाग 1-2' में किया गया है, जिनमें उनकी गंभीर विद्वत् शैली स्पष्ट प्रतीत होती है। आपने करीब 15 ऐतिहासिक निबंध लिखे हैं। कवि और आचार्य की परंपरा, निवास स्थान, समय निर्णय, आदि के विषय में खोज करने का श्रेय आपके निबंधों को भी दिया जाता है। इनकी लेखन शैली की यह विशेषता है कि एक ही विषय को समझाने के लिए वे बार-बार बताते चलते हैं, ताकि सामान्य से सामान्य पाठक भी समझ सके। इसमें कहीं पुनरावृत्ति का आभास लगे लेकिन सजगता के साथ ही एक बात को बार-बार दोहराते हैं। 'युगवीर निबंधावली' मुख्तार जी के इन 41 लेखों का संग्रह है, जो सन् 1907 से 1945 के बीच के 45 वर्षों में भिन्न-भिन्न समय पर लिखे गये थे और 'जैन संग्रह' 'जैन हितैषी', 'सत्यादेय', 'अनेकान्त' आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे। इतनी लंबी अवधि को देखकर यह सहज स्वाभाविक है कि प्रत्युत् लेखों की अनेक बार अब कालातीत हो गई हो, लेकिन आश्चर्य है कि बहुत-सी बात तो मानो वर्तमान स्थिति को ध्यान में रखकर उस समय लिखी हो। बहुमुखी प्रतिभा के स्वामी युगवीर जी ने न केवल जैन साहित्य

1. डा॰ नेमिचन्द्र जी : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ॰ 181, 122.

बल्कि हिन्दी साहित्य पर भी उपकार किया है कि इतने विशाल परिमाण में विद्वता युक्त, विचारशील निबंधों की सृष्टि का सृजन किया है। उनकी कलम निरंतर लेखन कार्य करती रहती है। निबंधों के साथ-साथ यदि उन्होंने उपन्यास नाटक, कहानी साहित्य पर भी अपनी कलम चलाई होती तो अवश्य सफल रहते और जैन साहित्य को ललित वाङ्मय प्राप्त होता। हिन्दी गद्य के विकास में आपका प्रेक्ष्य उल्लेखनीय कहा जायेगा। इस संग्रह में जैन इतिहास धर्म और समाज विषयक लेखों में कुशल अनुभवी विद्वान् एवं निष्पक्ष समालोचक के विचार निहित हैं। महावीर का सर्वोदय तीर्थ लिखकर उन्होंने जैन धर्म के अनेकान्त सिद्धांत की एक प्रशस्त भूमिका निर्माण की। 'सर्वोदय के मूलमंत्र' में उन्होंने अनेकान्त सिद्धान्त का सारतत्व रख दिया है। 'जैन नीति में अमृतचन्द्राचार्य की ग्वालिन की उपमा द्वारा अनेकान्त की सार ग्राहिणी शक्ति का उन्होंने अच्छा परिचय करवाया है और वर्षों तक 'अनेकांत' पत्र में लेखों द्वारा प्रकट करते रहे। जिन पूजाधिकार 'मीमांसा', उपासना तत्त्व, उपासना का ढंग, वीतराग की पूजा क्यों ? व वीतराग से प्रार्थना क्यों ? जैसे लेखों द्वारा तत्सम्बंधी जैन दृष्टिकोण का शास्त्रीय, निर्विकार व निर्मल प्रतिपादन करते हुए प्रचलित धारणाओं और विधियों में परिष्कार करने का प्रयत्न किया। जैनियों में दया का अभाव, जैनी कौन हो सकता है? जाति भेद पर अमित गति आदि निबंधों में शास्त्रीय प्रमाणों से सिद्ध कर दिखाया है कि वर्ण व जाति जैसे अर्थहीन भेदभावों के आधार से किसी को जैन धर्म का पालन व दर्शन-पूजन के अधिकारों से वंचित रखना सर्वथा अनुचित एवं अमानवीय है। 'चारुदत्त सेठ का शिक्षाप्रद उदाहरण, वसुदेव का शिक्षाप्रद उदाहरण, गोत्र स्थिति व सगोत्र विवाह, असवर्ण व अन्तर्जातीय विवाह आदि लेखों में उन्होंने पौराणिक उदाहरण देकर सिद्ध किया है कि ऊँच-नीच व गोत्र आदि भेदभाव सारहीन, निरर्थक है, वह धर्म प्रेरित न होकर समाज प्रेरित है। उनके उग्र समाज सुधारक विचारों से समाज के रूढ़ि चुस्तों को धक्का अवश्य पहुँचा था, लेकिन उनके अकाट्य शास्त्रीय प्रमाणों से युक्त तर्कों को कोई काट नहीं सका। हम पं० जुगलकिशोर जी मुख्तार को जैन समाज में नये युग निर्माण में एक महान अग्रणी कह सकते हैं, जिसके प्रचुर प्रमाण उनके प्रस्तुत लेखों में विद्यमान हैं। + + + + अंन्य विश्वासों व अज्ञानपूर्ण मान्यताओं की कठोर आलोचना के साथ-साथ शास्त्रीय आधार और स्थिर आदर्शों का पक्षपात तथा नव-निर्माण का सावधानीपूर्ण प्रयत्न पंडित जी की अपनी विशेषता है। अपनी कही हुई बातों की पुष्टि के लिए प्रमाणों, तर्कों व दृष्टान्तों की उनके पास कोई कमी नहीं है। उनकी भाषा सरल और धारावाहिनी तथा शैली तर्कपूर्ण और ओजस्विनी है।

संस्कृत व फारसी के मोह और आग्रह से रहित वे ऐसी सुबोध हिन्दी में लिखते हैं, जिसके विषय में किसी को कोई शिकायत नहीं होनी चाहिए। इन सब गुणों से पंडित जी का अपना 'युगवीर' उपनाम, जो उनके पूरे नाम का ही सारगर्भित संक्षेप है, पूर्णत: सार्थक सिद्ध हुआ पाया जाता है।[1] उन्होंने जैन धर्म व साहित्य के अतिरिक्त राष्ट्रीय, सांस्कृतिक, सामाजिक आदि विषयों पर भी निबंध लिखे हैं। पं॰ नाथूराम जी के अनन्तर इतनी विपुल संख्या में ऐतिहासिक, दार्शनिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, गवेषणात्मक निबंध लिखने में उनका स्थान आता है। निबंधकार के साथ-साथ वे सफल आलोचक भी हैं। 'तत्वार्थ विचार' उनका आलोचनात्मक ग्रन्थ है। आलोचक के रूप में वे निष्पक्ष एवं सत्यभाषी हैं। आपकी आलोचनाएँ सफल और खरी होती हैं। 'ग्रन्थ-परीक्षा' आपका एक आलोचनात्मक बृहद् ग्रंथ है, जो कई भागों में प्रकाशित हुआ है।[2] निबंधकार के रूप में तो उच्च कोटि के विद्वान् एवं शास्त्रीय प्रमाणों के पुरस्कर्ता के रूप में प्रसिद्ध हैं ही, निर्भीक निष्पक्षी, प्रगाढ़ अध्ययनशील सफल आलोचक का रूप भी कम प्रसिद्ध नहीं है।

बाबू कामता प्रसाद जैन का भी विशुद्ध इतिहास निर्माताओं में महत्वपूर्ण स्थान है। आपने हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' लिखने में काफी मेहनत उठाई है। इसके अलावा भी अनेक निबंधों की रचना की है, जिनमें राजाओं के वंशों, स्थानों, गोत्रों में संदर्भ में महत्वपूर्ण गवेषणाएँ की है। गद्य साहित्य के विकास में प्रेमी जी की तरह आपके निबंधों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। निबंधों की परिमाण-बहुलता की दृष्टि से आपका स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। भिन्न-भिन्न जैन पत्र-पत्रिकाओं में आपके प्रकाशित निबंध पुस्तकाकार में प्रकाशित हो चुके हैं। तीर्थंकरों, चक्रवर्तियों और जैनधर्मी राजाओं के विषय में आपने काफी अनुसंधान किया है। 'गंगराज वंश में जैन धर्म', मुसलमान राज्यकाल में जैन धर्म, वेराट या विराटपुर, काम्पिल्य, श्रवणबेलगोल के शिलालेख, जैन साहित्य में श्रीलंका, चीन देश और जैन धर्म, ईरान में जैन धर्म, प्रभृति निबंध महत्वपूर्ण है, जिनमें लेखक की व्यवस्थितता के साथ ऐतिहासिक घटनाओं की शृंखला का गठित रूप विद्यमान है। आपके कतिपय ऐतिहासिक निबंधों में ऐतिहासिक त्रुटियाँ अन्वेषक विद्वान पाते हैं, फिर भी सामग्री का संकलन एवं अनुसंधान की दृष्टि से इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

ऐतिहासिक निबंधकारों में पं॰ भुजबली शास्त्री का भी महत्वपूर्ण स्थान

1. डा॰ हीरालाल जैन, नये युग की झलक, प्रस्तावना में से, पृ॰ 14.
2. डा॰ नेमिचन्द्र जी : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ॰ 123.

है। आपने विशाल मात्रा में अनुसंधानात्मक निबंध लिखे हैं, जिनमें 'बारकूट' 'वेणूक', क्या वादिभसिंह अकलंकदेव के समकालीन हैं, वीरमार्तण्ड चामुण्डराय, जैन वीर अंकेय, हुमुंच, तोलव के जैन पालेयगार, सातारराजा निदराय, कारकल का जैन भैरव-राजवंश, दान-चिंतामणि आदि महत्वपूर्ण हैं। दक्षिण के जैन राजवंश धनी-दानी श्रावकों, न्यायाचार्यों, कवियों आदि विषयों पर आपके कई अन्वेषणात्मक विद्वतापूर्ण निबंध प्रकाशित हो चुके हैं। यद्यपि इनमें कहीं-कहीं ऐतिहासिक प्रमाणों की कमी है, तथापि हिन्दी जैन गद्य के विकास में इन निबंधों का योगदान महत्वपूर्ण है। आपकी शैली समास शैली है, जो थोड़े में बहुत-कुछ कर देने में समर्थ है। गंभीर विचारों की अभिव्यक्ति आप सार्थक शब्दों में कर सकते हैं।

बाबू अयोध्याप्रसाद गोयलीय बहुमुखी प्रतिभा से संपन्न साहित्यकार हैं। कवि, संस्मरणकार, कथाकार के अतिरिक्त निबंधकार का रूप भी उल्लेखनीय हैं। कविता, कथा, संस्मरण, तथा निबंध सभी विधाओं पर आपने साधिकार कलम चलाई है और उनसे जो निःसृत हुआ, उससे अवश्य जैन समाज व साहित्य को कल्याण प्रद व रागात्मक चीज प्राप्त हुई है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में आपके निबंध प्रकाशित हो चुके हैं। 'राजपूताने के जैन वीर' 'मौर्य साम्राज्य के जैन वीर' और 'आर्यकालीन भारत' के ग्रन्थाकार संकलन महत्वपूर्ण हैं।

इतिहास और पुरातत्ववेत्ता डा० हीरालाल जैन के भी अन्वेषणात्मक एवं दार्शनिक निबंध प्रकाशित हुए हैं। कई ग्रंथों की भूमिकाएं आपने लिखी हैं, जो इतिहास के निर्माण में विशिष्ट स्थान रखती हैं। जैन इतिहास की पूर्व पीठिका' तो शोधात्मक अपूर्व वस्तु है। इस छोटी-सी रचना में गागर में सागर भर देने वाली कहावत चरितार्थ हुई है। आपकी रचना-शैली में धारावाहिकता पाई जाती है। भाषा सुव्यवस्थित और परिमार्जित है। थोड़े शब्दों में अधिक कहने की कला में आप प्रवीण हैं। महाधवल, धवल सम्बंधी आपके परिचयात्मक निबंध भी महत्वपूर्ण है।[1] श्रवण बेलगोल के जैन शिलालेखों की प्रस्तावना में आपने अनेक राजाओं, यतिओं और श्रावकों पर संशोधनात्मक लेख लिखे हैं।

डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री ने 'हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन' दो भागों में अपभ्रंश, हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास गवेषणात्मक शैली व ललित साहित्यिक भाषा में लिखा है। इसके उपरांत जैन पत्र-पत्रिकाओं में आपके कई दार्शनिक निबंध प्रकाशित हुए हैं। आपका तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा (तीन भाग) ग्रन्थ काफी महत्वपूर्ण है, जिनमें आपका सूक्ष्म गवेषणात्मक

---

1. डा० नेमिचन्द्र जी : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ० 127.

ऐतिहासिक दृष्टि बिंदु प्रतीत होता है। जैन दर्शन एवं साहित्य के मर्मज्ञ होने के साथ हिन्दी साहित्य के भी विशेष ज्ञाता व विवेचक है। भगवान महावीर पर लिखे गये चरित ग्रन्थ में भी आपकी रोमांचक शैली एवं गूढ़ विचारों का प्राधान्य देखा जा सकता है। ऐतिहासिक प्रस्तुतीकरण में नवीनता व सुबोधता के साथ ऐतिहासिक तथ्यों की खोज-बीन का आग्रह अवश्य स्तुत्य कहा जायेगा।

मुनि श्री कान्ति सागर जी ने भी गवेषणात्मक निबंध अच्छे लिखे हैं, विशेषकर जैन-चित्रकला एवं वास्तुकला के विषय में गहराई में जाकर उन्होंने जो निबंध प्रदान किये हैं, इससे एक महत्वपूर्ण दिशा में कार्य हुआ है। ऐसे निबंधों में कला के साथ अनेक स्थानों के भौगोलिक परिवेश पर भी संशोधनात्मक प्रकाश डाला है। 'खण्डहरों का वैभव' और 'खोज की पगडंडियों' इतिहास और पुरातत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण निबंधों का संकलन है। 1940 के 'विशाल भारत' में भी आपके संग्रहालय व स्थापत्य सम्बंधी लेख प्रकट हो चुके हैं। प्रयाग संग्रहालय में 'जैन पुरातत्व' और 'विन्ध्यभूमि का जैनाश्रित शिल्पविधान' निबंध इस विषय में महत्वपूर्ण खोज कही जायेगी। 'मुनि श्री कान्ति सागर के पुरातत्वान्वेषणात्मक निबंधों का विशिष्ट स्थान है। अब तक आपने अनेक स्थानों के पुरातत्व पर प्रकाश डाला है। प्राचीन मूर्तिकला और वास्तुकला का मार्मिक विश्लेषण आपके निबंधों में विद्यमान है। + + + + शैली विशुद्ध साहित्यिक है। भाषा प्रौढ़ और परिमार्जित है।[1] 'खोज की पगडंडियां' निबंध संग्रह इतिहास और पुरातत्व की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने मुनि श्री की इस कृति के सम्बंध में लिखा है–'श्री मुनि कान्ति सागर जी प्राचीन विधाओं के मर्मज्ञ अनुसन्धाता हैं। जैन मुनि लोग पैदल यात्रा करते हैं। इस पैदल यात्रा के समय मुनि जी ने पुरातत्व सम्बंधी अनेक ऐसे स्थलों को देखा है, जहाँ साधारणत: आजकल के आधुनिक दृष्टि-संपन्न अनुसंधाता नहीं पहुँच पाते। इन ऐतिहासिक स्थानों, मंदिरों, देव-मूर्तियों, कला-शिल्पों का बड़ा ही रोचक वर्णन उन्होंने 'खोज की पगडंडियाँ' नामक पुस्तक में दिया है। यह पुस्तक न तो मौजी घुमक्कड़ का यात्रा विवरण है और न पुरातत्व के ऐकान्तिक आराधक की नीरस माप खोज। फिर भी इसमें दोनों के गुण मौजूद हैं। मुनि जी प्राचीन स्थानों को देखकर स्वयं आनंद विह्वल होते हैं और अपने पाठकों को भी उस आनंद का उपभोक्ता बना देते हैं। पुस्तक में किसी प्रकार की 'हाय-हाय' या उच्छवास भरी भाषा बिल्कुल नहीं है। सहज भाव से द्रष्टव्य का वर्तमान रूप और अतीत इतिहास

1. डा० नेमिचन्द्र जी : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ० 127.

बता देते हैं। स्वभावतः उनका अधिक ध्यान जैन इतिहास और परंपरा की ओर गया है। जैन शास्त्रों के वे अच्छे ज्ञाता भी हैं। फिर भी उनकी दृष्टि बहुत ही व्यापक और उदार है। उनका ऐतिहासिक ज्ञान बहुत गंभीर है। वस्तुतः इस समय जैन परंपरा के अधिक आलोड़न की आवश्यकता भी है। कम लोग पुरातत्व के जैन पहलू का परिचय रखते हैं। इसलिए मुनि जी का कहने का ढंग भी बहुत ही रोचक है। बीच-बीच में उन्होंने व्यंग्य-विनोद के भी हल्के छींटे रख दिये हैं। इतिहास को सहज और रसमय बनाने का उनका प्रयत्न बहुत ही अभिनंदनीय है। जो लोग इतिहास को शुष्क और दुरुह बनाते हैं, वे मनुष्य को उसके यथार्थ रूप में समझने देने के सामूहिक प्रयत्न में बाधा ही उत्पन्न करते हैं। मुनि जी ने ऐतिहासिक तथ्यों को बड़े रोचक ढंग से उपस्थित किया है।[1] विद्वान् आलोचक व इतिहासकार द्विवेदी जी के इस विवेचन में निबंधकार की भाषा-शैली, विषय-वस्तु एवं व्यक्तित्व के महत्वपूर्ण तथ्यों का उद्घाटन किया गया है। 'सरस्वती' पत्रिका इस पुस्तक की महत्ता-विशेषता पर प्रकाश डालती है कि–इस पुस्तक में ललित कला, लिपि तथा भौगोलिक और यात्रा शीर्षक तीन भागों में मुनि जी के गंभीर ऐतिहासिक ज्ञान की सर्वत्र छाप है। जैनाश्रित और बौद्ध धर्माश्रित चित्रकला की यात्राएं भी मनोरंजन के साथ-साथ खोज की पगडंडियाँ प्रशस्त कर रही हैं। ऐतिहासिक तथ्यों को रोचक शैली में प्रस्तुत करने में लेखक की सफलता श्लाघ्य है।

लेखक प्राचीन खण्डहरों के प्रति बचपन से ही उत्सुक, जिज्ञासु एवं शोधार्थी बन गये थे। प्राचीन खण्डहर उनके लिए निर्जीव न रहकर सजीवता के प्रतीक समान मित्र, सहोदर, गुरुजन या निकट के आप्तजन बन गये थे। अतः वे कहते हैं, 'ये खंडहर तो मानवता की अखंड ज्योति और राष्ट्रीय पुरुषार्थ और लोक-जीवन के प्रेरणात्मक भव्य प्रतीक हैं।[2] स्वयं जैन न होने पर भी जैन वास्तुकला, चित्रकला का उच्चतम अभ्यास करके प्राप्त ज्ञान को सहज-सरल ढंग से अभिव्यक्त किया है। गुजराती भाषी होने पर भी विशुद्ध व साहित्यिक हिन्दी भाषा में लिखना उनके लिए सहज साध्य बन गया है। इस पर से हिन्दी के प्रति उनकी रुचि एवं अधिकार का अनुमान निकाला जा सकता है।

पुस्तक के प्रथम भाग में नालंदा, विन्ध्याचल, पटना की यात्रा का रसिक

1. मुनि कांतिसागर जी कृत- खोज की पगडंडियाँ, प्रस्तावना, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० 7, 8.
2. मुनि कांतिसागर जी कृत–'खोज की पगडंडियाँ' प्रस्तावना, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ० 11.

अनुभूतिमूलक वर्णन है। पुरातत्व विषयक पारिभाषिक शब्दावली को यथा-साध्य सरल भाषा में स्पष्ट करने का प्रशस्य प्रयत्न किया है। इन सभी स्थलों एवं खंडहरों का जीता-जागता चित्र खींचने के लिए लेखक को एकाधिक बार यात्रा करनी पड़ी है। दूसरे भाग में लिपि, ताम्र पत्रों के विषय में साहित्यिक चर्चा की गई है। अनेक बार यात्रा के परिणाम स्वरूप तीसरे भाग में यात्रा सम्बंधी रोचक अनुभवों एवं विशेषताओं का मधुर वर्णन किया है। कहीं पर भी विवरण का भाग इंगित नहीं होता। पावापुरी की यात्रा समाप्त कर नालंदा की ओर अग्रसर होने का वर्णन लेखक कितनी रोचक शैली में कहते हैं–'राजगृह से नालंदा के लिए दो मार्ग हैं। एक तो सड़क से और दूसरा पगडंडियों से। सड़क से नालंदा जाने में बहुत घूमकर जाना पड़ता है, परन्तु पगडंडियों से केवल 5 मील चलना पड़ता है। इसीलिए हम सड़क से दाहिनी ओर मुड़ने वाली पगडंडियों से चले, जो नदी, नालों और खेतों को पार करती आगे निकल जाती है। कहीं-कहीं यह मार्ग इस प्रकार लुप्त भी हो जाता है कि मार्गदर्शक के बिना सही रास्ते का पता पाना मुश्किल हो जाता है। मार्ग में कई सुन्दर गांव भी पड़ते हैं। प्रातःकाल का समय होने से गांव और भी आकर्षित प्रतीत होते थे। नालंदा के आस-पास की ग्राम्य संस्कृति में घर कर गया है कि वहां के लोगों से उसका मार्ग पूछने पर उनका चेहरा खिल उठता है। सचमुच सौंदर्य और संस्कृति किसी अभिजात वर्ग की ही वस्तु नहीं है, बल्कि ग्राम्य जीवन में तो प्रकृति और संस्कृति का अद्‌भुत तादात्म्य हुआ है।[1] उनके यात्रा-वर्णन को यात्रा संस्मरण का पृथक स्वरूप भी प्रदान कर सकते हैं। लेखक ने यात्रा दौरान भिन्न-भिन्न स्थलों का वर्णन कलात्मक ढंग से ऐतिहासिक तर्क एवं युक्तिसंगत प्रमाण देकर किया है। अतः उनकी उपादेयता व विश्वसनीयता अधिक बढ़ जाती है। साथ ही धार्मिक स्थलों के संदर्भ में प्रसिद्ध विद्वानों के अभिमतों को ऐतिहासिक दृष्टिकोण से व्यक्त किया है। धर्म के साथ जिनको इतिहास और कला में रुचि हो उनके लिए यह पुस्तक अत्युत्तम सिद्ध होगी। पुरातत्व की खोज-बीन को कला के मधुर सहकार के साथ बड़े परिश्रमपूर्वक प्रस्तुत कर लेखक ने एक नवीन ही कृति हिन्दी जैन साहित्य को अर्पित की है।

प्रो॰ खुशालचन्द्र गारावाला का नाम ऐतिहासिक निबंधकारों में आदर से लिया जाता है। 'कलिंगाधिपति खारवेल' और 'गोम्मट प्रतिष्ठापक' आपके महत्वपूर्ण निबंध हैं।

आचारात्मक और दार्शनिक निबंध :

हिन्दी जैन निबंध साहित्य में दार्शनिक निबंध लिखने वालों की संख्या

---

1. कांतिसागर जी : खोज की पगडंडियाँ, पृ॰ 129 (मेरी नालंदा भाषा)।

सर्वाधिक है। इस प्रकार के निबंध विचार प्रधान होने के साथ वर्णन प्रधान भी होते हैं। सभी निबंधकारों का परिचय देना कठिन होने से प्रमुख निबंधकारों का परिचय पर्याप्त होगा। आचार प्रधान निबंधों से जैन समाज प्रायः परिचित होता है, क्योंकि अपने धर्म की जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रत्येक जैन परिवार दार्शनिक ग्रन्थों के अध्ययन को महत्व देता है।

दार्शनिक विचार प्रधान निबंध लिखनेवालों में प्रज्ञा चक्षु पं० सुखलाल जी संधवी का स्थान मूर्धन्य है। 'योगदर्शन' और 'योगविशंतिका 'प्रमाणमीमांसा' आदि में दर्शन और इतिहास दोनों के विवेचन में तुलनात्मक शैली दिखाई पड़ती है। जैन साहित्य की प्रगति', 'भगवान महावीर का आदर्श जीवन', एवं 'चार तीर्थंकर' जैसी इतिहास व कथा-साहित्य की पुस्तक में भी ऐतिहासिक तथ्यों और घटनाओं का पूर्ण ख्याल रखा है। दार्शनिक निबंधों के अतिरिक्त सांस्कृतिक निबंध भी आपने लिखे हैं, जिनकी भाषा परिमार्जित एवं शैली प्रवाहपूर्ण है। भाषा की चुस्तता के साथ थोड़े में बहुत कुछ प्रतिपादित करने की संश्लिष्ट शैली है। जैन दर्शन के साथ बौद्ध दर्शन के भी मर्मज्ञ ज्ञाता है। प्रज्ञा चक्षु होने पर भी मननशीलता, निरन्तर अध्यवसाय, संशोधन की उत्कट लगन, अपरिमित सर्जन शक्ति से पंडित जी ने हिन्दी व गुजराती साहित्य को गौरवान्वित किया है। अभी हाल में ही उनके देहावसान से न कैवल जैन समाज व साहित्य बल्कि पूरा भारत व हिन्दी साहित्य एक महान तत्वचिंतक, विद्वान साहित्यकार और मार्गदर्शक वंचित रह गया। ये अपने आपमें एक जीती-जागती ज्ञान की संस्था से थे। उनकी साहित्यिक विशेषता के संदर्भ में डा० नेमिचन्द्र जी लिखते हैं—"आपकी शैली में मननशीलता, स्पष्टता, तर्कपटुता और बहुभिज्ञता विद्यमान है। दर्शन के कठिन सिद्धान्तों को बड़े ही सरल और रोचक ढंग से आप प्रतिपादित करते हैं।"

पं० शीतलप्रसाद जी इस काल से पथ-प्रदर्शक निबंधकार के रूप में सम्मान के अधिकारी हैं। आपने इतनी विपुल संख्या में लिखा है कि—इन सबके संकलन से जैन पुस्तकालय खड़ा हो सकता है। हिन्दी साहित्य में पं० राहुल सांस्कृत्यायन की तरह नियमित कुछ-न-कुछ लिखते रहने की वृत्ति पंडित जी में भी विद्यमान थी। दर्शन और इतिहास दोनों ही विषय पर उन्होंने विपुल मात्रा में निबंध लिखे हैं। दर्शन का ऐसा कोई विषय नहीं, जो आपकी कलम या नजर से बच पाया हो। निबंधों की तरह यदि आप आध्यात्मिक उपन्यास-क्षेत्र में कलम चलाते तो अवश्य हिन्दी जैन उपन्यास साहित्य का भंडार भर जाता। बहुमुखी प्रतिभा का उपयोग साहित्य-सृजन में अवश्य किया, लेकिन सभी को

प्रकाशित न करवाने से बहुत-सी उत्तम चीजें प्रकाश में आने से रह गई। सीधी-सादी शैली में आपके पुष्ट विचारों को अभिव्यक्ति मिली है।

पं॰ कैलाशचन्द्र शास्त्री दार्शनिक, आचारात्मक एवं ऐतिहासिक निबंध लिखने में सिद्धहस्त हैं। 'न्यायकुमुद चन्दोदय' की प्रस्तावना जो कि दार्शनिक विकासक्रम का ज्ञान भंडार है, जैन-साहित्य की अमूल्य निधि है। स्थाद्वाद सप्तभंगी, अनेकान्तवाद की व्यापकता और चारित्र, शब्दनय, महावीर और उनकी विचारधारा आदि निबंध अपना विशेष स्थान रखते हैं। 'जैन-धर्म' जो अत्यन्त शिष्ट व संयत भाषा में लिखा गया दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन करता हुआ मौलिक ग्रंथ है। उसी प्रकार 'तत्वार्थ-सूत्र' पर भी दार्शनिक विवेचन ज्ञानवर्द्धक एवं प्रशंसनीय है। आपकी शैली आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी से काफी मिलती-जुलती है। दोनों में हम विचारों की गंभीरता के साथ सरल अभिव्यक्ति, अन्वेषणात्मक, चिन्तन व अनुभूतियों की स्पष्टता के दर्शन पाते हैं।

पं॰ दलसुभाई मालवणीया जी ने दार्शनिक निबंधों का सृजन कर हिन्दी जैन साहित्य को समृद्ध बनाया है। जैनागम, जैन युग का प्रारंभ, जैन दार्शनिक साहित्य का सिंहावलोकन आदि आपके महत्वपूर्ण निबंध हैं। आप निरन्तर जैन साहित्य की सेवा में रत रहते हैं। जैन अपभ्रंश एवं प्राकृत साहित्य के आप जाने-माने विद्वान होने के साथ 'जैन साहित्य का बृहद इतिहास' के भी प्रधान संपादक के रूप में भी आपकी विद्वता तथा अध्ययनशीलता द्रष्टव्य है। प्राच्य विद्या व वास्तुकला के विषय में भी आपका गहरा ज्ञान है। जहाँ एक ओर दार्शनिक निबंधों का सृजन करते हैं, तो दूसरी ओर साहित्यिक व दार्शनिक ग्रंथों की तटस्थ आलोचना भी करते हैं। 'भगवान महावीर' में उनकी दार्शनिकता, ऐतिहासिकता एवं संशोधनात्मक दृष्टि बिंदुओं का संतुलन आकर्षक है।

पं॰ दरबारीलाल न्यायाचार्य भी दार्शनिक निबंधकार है। 'न्याय दीपिका' की प्रस्तावना और आप्त परीक्षा की प्रस्तावना के अतिरिक्त अनेकान्तवाद, द्रव्य व्यवस्था पर आपके कई निबंध प्रकाशित हो चुके हैं। आपकी शैली प्रारंभ में शब्द बहुला थी, लेकिन उत्तरोत्तर विकसित होती जा रही है।

पं॰ फूलचन्द जी 'सिद्धान्त शास्त्री' को विद्वान् दार्शनिक निबंधकार का सम्मान दिया जाता है। तत्वार्थ सुंदर जैसे शुद्ध दार्शनिक विषय पर भी सुंदर निबंध लिखे हैं। इसी तरह जैन दर्शन के कर्म-सिद्धान्त के तो आप मर्मज्ञ हैं व एतद्-विषयक निबंध आधुनिक शैली में 'ज्ञानोदय' पत्र में प्रकाशित हुए हैं।

प्रो॰ महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य के दार्शनिक निबंध जैन साहित्य के लिए

गौरव रूप है। अकलंक ग्रन्थत्रय की प्रस्तावना एवं श्रुतसागरीवृत्ति की प्रस्तावना के सिवा भी आपके अनेक फुटकर निबंध प्रकाशित हुए हैं। इनके निबंधों में मौलिकता तथा सिद्धान्तों का सुंदर मार्मिक विवेचन प्राप्त होता है।

पं० चैनसुखदास न्यायतीर्थ भी प्रमुख दार्शनिक निबंधकार है, जिनके आचार-विषयक अनेक निबंध सरल शैली में प्रकाशित हो चुके हैं।

पं० बंशीधर जी व्याकरणाचार्य प्रसिद्ध दार्शनिक निबंधकार हैं। दार्शनिक सिद्धान्त जैसे कि—स्याद्वाद, नय प्रमाण, कर्म आदि पर सुंदर विवेचनात्मक निबंध प्रकाशित हैं, जिनकी भाषा व्याकरण-सम्मत और गंभीर है। भाषा की सरलता गंभीर विचारों को व्यक्त करने में आपको सहायक हुई है। आपने सामाजिक समस्याओं पर भी सुंदर निबंध लिखे हैं। उच्च केटि के विचारक तथा सुधारक होने के कारण इन निबंधों में प्राचीन रूढ़ियों के प्रति अनास्था एवं विरोध की भावना अभिव्यक्त होती है।

पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री भी दार्शनिक निबंधकार हैं। द्रव्य संग्रह की विभेद वृद्धि में अनेक दार्शनिक पहलुओं पर विचार किया गया है। दार्शनिक निबंधों के अतिरिक्त अन्वेषणात्मक एवं भौगोलिक निबंध भी आपने काफी लिखे हैं। आपके निबंधों की शैली तर्कपूर्ण तथा भाषा में कहीं कहीं पंडिताऊपन है।

पं० जगमोहन लाल जी सिद्धान्त शास्त्री ने भी दार्शनिक तथा आचार सम्बंधी निबंध लिखे हैं। विषयक को प्रतिपादित करने की आपकी शैली सरल व तर्क युक्त है। भाषा परिमार्जित और संयत होने के कारण नीरस विषय को भी रोचक ढंग से समझाने की विशिष्टता निहित है।

सामाजिक और साहित्यिक निबंध :

साहित्यिक व सामाजिक निबंध लिखनेवालों में सर्वश्री प्रेमी जी, कामताप्रसाद जैन, प्रो० राजकुमार साहित्याचार्य, श्री अगरचन्द जी नाहटा, पन्नालाल जैन, ऋषभदास रांका, श्री जमनालाल, श्री मूलचन्द 'वत्सल', पं० नाथूराम जी प्रभृति विद्वान उल्लेखनीय हैं।

पं० नाथूराम प्रेमी जी ने अपने 'हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास' में अनेक कवियों की जीवनी के विषय में अन्वेषणात्मक शैली में लिखा है। यह वास्तव में शुद्ध इतिहास न होकर संशोधनात्मक साहित्यिक लेखों का संग्रह है, जो आज तक विद्वानों एवं जैन साहित्य के लिए पथ-प्रदर्शन बना है। प्रेमी जी की तरह बाबू कामताप्रसाद जी ने भी 'हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास'

थोड़े-बहुत नवीन उद्धरणों के साथ लिखा, जिसमें थोड़ी-बहुत ऐतिहासिक त्रुटियों के रह जाने पर भी इसका महत्त्व है। आपने अन्य भी कई सामाजिक निबंध लिखे हैं।

महात्मा भगवानदीन और सूरजभान वकील भी सफल सामाजिक निबंधकार हैं। भगवानदीन जी के 'स्वाध्याय' संकलन में मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक निबंध हैं, जिसकी शैली रोचक व तार्किक है। 'स्वाध्याय' निबंध संग्रह में आध्यात्मिकता की अपेक्षा सामाजिकता व मनोवैज्ञानिकता विशेष है। स्वाध्याय की महत्ता, प्रयत्न, दिशाएँ, अघोमन, आत्मिक चेतना, स्वाध्याय क्यों और क्या? आदि मनोवैज्ञानिक तत्वों पर विद्वतापूर्ण शैली एवं गहराई से चिन्तन किया है। प्रसिद्ध जैन विद्वान श्री दलसुखभाई मालवणीया जी इस ग्रन्थ पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं–महात्मा जी ने जैन शास्त्रों का स्वतंत्र अध्ययन किया है और उन पर अपनी मौलिक एवं सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया है। प्रस्तुत ग्रंथ में उनकी स्वतंत्र विचारधारा का दर्शन पाठकों को होगा। परंपरा के अनुसार यदि इस ग्रन्थ में जैन धर्म और दर्शन की व्याख्या या विवेचना नहीं मिलती है, तो यह नहीं समझना चाहिए कि शास्त्रों की भी नयी व्याख्या आज अत्यन्त आवश्यक हो गई है। ज्ञान की कोई सीमा नहीं है। अतएव, पुरानी बातों का नवीनीकरण आवश्यक है। आशा है इस ग्रंथ का दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में विशेष स्वागत होगा।'

ग्रन्थ के भिन्न-भिन्न अध्यायों में शरीर, मन, चेतना, भौतिकता, असत्य की बेटी कल्पना, भाववासी आदमी, देहवासी आदमी, कला और विज्ञान, गुणों की विशेषता, संस्कारादि भिन्न-भिन्न विविध विषयों पर जो लेख लिखे हैं, वे बाह्य रूप से विषय भेद से उदाहरण प्रतीत होंगे, लेकिन उन सबका केन्द्र बिन्दु है स्वाध्याय। स्वाध्याय की परिस्थितियाँ, कसौटी, स्वाध्यायी की शारीरिक-मानसिक शक्ति, कठिनाइयाँ आदि को अधिक स्पष्ट करने के लिए ही सभी निबंध लिखे गये हैं। अतएव, स्वाध्याय के प्रथम अध्याय के प्रथम परिच्छेद में ही लेखक ने स्वाध्याय का अर्थ, महत्व, व विशेषता का स्पष्टीकरण कर दिया है, जैसे–स्वाध्याय शब्द सीधा-सादा हैं। उसके समझने में किसी को कठिनाई नहीं होनी चाहिए। न जाने क्यों, स्वाध्याय के नाम पर ऐसा रिवाज़ चल पड़ा है जिसका स्वाध्याय से कोई मेल नहीं। यह रिवाज़ है पुस्तकालयों, मंदिरों या उसी तरह की जगहों में जाकर ग्रन्थों को पढ़ना। किताब या ग्रन्थ का स्वाध्याय किसी तरह 'स्व' या 'अपना' नहीं हो सकता। वह हर तरह 'पर' यानी बेगाना ही रहेगा। + + + स्वाध्याय के माने साफ है, 'स्व' याने अपना ध्याय-अध्ययन

करना। अब स्वाध्याय का अर्थ हुआ अपने को पढ़ना, अपने को जगाना और अपनी जानकारी हासिल करना। आज स्वाध्याय के नाम पर जो कुछ हो रहा है वह सब पराध्याय है।[1] वैसे इस कथन के मुताबिक लेखक के इस ग्रन्थ को भी नहीं पढ़ना चाहिए, क्योंकि इसमें लेखक के ही अनुभव, विचार, तर्क या सिद्धान्त की चर्चा होगी, अर्थात् 'पर' की अनुभूतियों को पढ़ना होगा। लेकिन सभी के वश की बात तो यह नहीं हो सकती कि सभी अपने अनुभवों को ही लिखें पढ़ें। कभी दूसरों के ग्रन्थों को पढ़ने से भी लाभान्वित हम होते हैं, दृष्टि विशाल एवं ज्ञान वृद्धि होती है। निबंधकार की भाषा शैली अत्यन्त सरल है। गूढ़ विचारों एवं भावों को भी उन्होंने सरल भाषा, छोटे-छोटे वाक्यों, दृष्टान्तों के द्वारा स्पष्ट करने की कोशिश की है। लेखक ही विद्वता सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है, लेकिन ज्ञान व विद्वता का आडम्बर कहीं दृष्टिगत नहीं होता है।

श्री अगरचन्द जी नाहटा प्रतिभा संपन्न ज्ञानवृद्ध साहित्यकार हैं। आपने कवियों के जीवन, उनके राज्याश्रय, जैन ग्रंथों पर परिचयात्मक तथा संशोधनात्मक असंख्य लेख लिख कर जैन साहित्य पर महती उपकार किया है। अनेक अज्ञात कवियों को आपकी लेखनी प्रकाश में लाने में समर्थ हुई है। जैन एवं जैनेतर कोई भी पत्र-पत्रिका ऐसी न होगी, जिसमें आपका कोई निबंध प्रकाशित न हुआ हो। हिन्दी साहित्य के विवादात्मक प्रश्नों को सुलझाने में आपके निबंधों का श्रेयष्कर योगदान है। 'पृथ्वीराज रासो' के विवाद का अन्त आपके महत्वपूर्ण निबंध के द्वारा ही हुआ है। साहित्यिक, सामाजिक एवं दार्शनिक सभी विषयों पर आपने विद्वतापूर्ण कलम चलाई है। आप हिन्दी साहित्य के भी प्रसिद्ध विद्वान हैं, आज के नये साहित्यकारों को सदैव आपसे सहायता व प्रेरणा प्राप्त होती रहती है। आपके निजी विशाल ग्रन्थागार तथा अनेक हस्तलिखित ग्रन्थों से आपका अध्यवसाय, संशोधन, साहित्यिक अभिरुचि एवं सर्जनात्मक शक्ति का परिचय प्राप्त होता है।

श्रीयुत् लक्ष्मीचन्द्र जैन एक कुशल संपादक के साथ-साथ विद्वान निबंधकार के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। भारतीय ज्ञानपीठ के संपादकीय वक्तव्यों में अनेक साहित्यिक चर्चा उन्होंने की है। महाकाव्य 'वर्द्धमान' व उपन्यास 'मुक्तिदूत' का संपादकीय विवेचन तो महत्वपूर्ण है ही, साथ में वैदिक साहित्य की प्रस्तावना एक नया प्रकाश विकीर्ण करती हैं। आपने सफल निबंधकार के साथ-साथ सहृदयी आलोचक का कर्तव्य अच्छी तरह से निभाया है। आपकी शैली श्लिष्ट, साहित्यिक तथा प्रभावशाली है। गद्य भी आपका उत्कृष्ट कोटि का है, निबंध में धारावाहिकता सर्वत्र पाई जाती है।

1. भगवानदीन—स्वाध्याय-प्रकाशकीय वक्तव्य, पृ० 1.

श्रीमती पंडिता चन्दाबाई जी ने महिलाओं के लिए उपयोगी साहित्य का सर्जन किया है। आपके कई साहित्यिक तथा आचार-विचार सम्बंधी दार्शनिक निबंध संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। आपकी लेखन शैली शुद्ध सरल एवं संयत है।

श्री मूलचन्द्र 'वत्सल' पुराने साहित्यकारों में से हैं। वे कवि और कथाकार के रूप भी प्रसिद्ध हैं। आपने प्राचीन कवियों पर संशोधनात्मक निबंध काफी संख्या में लिखे हैं। आपकी शैली सरल व भाषा सीधी सादी है।

श्री परमानंद शास्त्री ने अपभ्रंश के कितने ही कवियों पर शोधात्मक निबंध लिखे हैं। महाकवि रग्धू के आप विशेष मर्मज्ञ हैं। शब्द-बहुला शैली में कहीं-कहीं शिथिलता है।

प्रो॰ राजकुमार साहित्याचार्य ने दौलतराम और भूधर दास के पदों का आधुनिक विश्लेषण सुन्दर ढंग से किया है। आपकी शैली पुष्ट व संयत है। कवि होने के नाते गद्य में भी काव्यत्व का पुट वर्तमान है।

पं॰ पन्नालाल 'वसन्त' के अनेक साहित्यिक निबंध प्रकाशित हो चुके हैं। 'आदि पुराण' की आपकी लिखी प्रस्तावना काफी महत्वपूर्ण है। इसमें संस्कृत व जैन साहित्य के विकास-क्रम का बड़ा ही रोचक इतिहास है। आपकी शैली परिमार्जित है।

श्री जमनालाल 'साहित्यरत्न' अच्छे निबंधकार कहे जा सकते हैं। 'जैन जगत' पत्रिका में आपके कई साहित्यिक निबंध प्रकाशित हो चुके हैं।

ज्योतिप्रसाद जैन के भी ऐतिहासिक और साहित्यकि निबंध काफी महत्वपूर्ण हैं। शोधात्मक शैली में लिखे गये निबंधों में 'पूज्यपाद' निबंध का विशेष महत्व है।

पं॰ बलभद्र न्यायतीर्थ के सामाजिक एवं साहित्यिक निबंध 'जैन संदेश' नामक जैन पत्रिका में व्यक्त होते रहते हैं। प्रवाह युक्त लेकिन थोड़ी विस्तृत भाषा शैली है।

श्री ऋषभदास रांका आलोच्य काल के प्रौढ़ निबंधकार हैं। इनका देहावसान अभी-अभी हुआ। जैन धर्म एवं समाज ने धर्म प्रेमी विद्वान साहित्यकार की कमी महसूस की है। प्रवाह पूर्ण शैली व वर्णनों की विशेषता आपके निबंधों में पाई जाती है।

कस्तूरचन्द काशनीवाल ने भी शोधात्मक निबंध लिखे हैं। प्रवाहपूर्ण शैली और विषयों की स्पष्टता आपके निबंधों की विशेषता है।

प्रो॰ देवेन्द्रकुमार, विद्यार्थी नरेन्द्र, श्री पृथ्वीराज आदि भी अच्छे निबंधकार

हैं। पं० अजितकुमार शास्त्री ने खण्डनमण्डनात्मक शैली में अनेक निबंध लिखे हैं, जिनकी भाषा विषयानुकूल एवं तर्कपूर्ण है।

श्री मूलचन्द्र कापड़िया भी संपादक के साथ साहित्यिक निबंधकार हैं। उन्होंने प्राचीन ग्रंथों का सुंदर संपादन करते हुए उनकी प्रस्तावनाओं में साहित्यिक चर्चा की है। श्री दरबारी लाल 'सत्यभक्त' चिन्तनशील दार्शनिक और साहित्यकार भी हैं। 'सत्यभक्त' की रचनाओं से केवल जैन साहित्य की ही नहीं, अपितु हिन्दी साहित्य की भी श्रीवृद्धि हुई है। प्रो० विमलदास, श्री पृथ्वीराज, श्री इन्द्र, श्री 'स्वतंत्र' आदि भी आचारात्मक एवं सामाजिक निबंध लिखने वाले सुलेखक हैं।

इन सबके अतिरिक्त एक उल्लेखनीय प्रतिभा संपन्न प्रसिद्ध निबंधकार के रूप में सर्वश्री जैनेन्दुकुमार जैन का नाम विशेष उल्लेखनीय है, जिनकी प्राय: सभी रचनाओं में दार्शनिक विचारधारा का पुट रहता है। हिन्दी साहित्य के उच्च्व कोटि के कथाकार तो आप हैं ही, श्रेष्ठ निबंधकार के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। सुलझी हुई चिन्तनात्मक विचारधारा आपके निबंधों में पाई जाती है, जिसकी मूल भीत्ति जैन-दर्शन रही है। अत: आपके कई निबंध शुद्ध दार्शनिक या आचारात्मक न होते हुए भी उनके हार्द में जैन दर्शन की विचारधारा का प्रभाव लक्षित होता है। हिन्दी साहित्य को आपने एक नया मोड़, नयी शैली प्रदान की है, जिसे 'जैनेन्द्र' शैली कही जा सकती है।

आचार्य नथमलमुनि आधुनिक काल के प्रखर जैन दार्शनिक एवं साहित्यकार हैं। आधुनिक भाषा शैली एवं वातावरण के साथ उन्होंने निबंध साहित्य एवं जीवन चरित की रचना की है। उनके सभी निबंधों में मौलिकता, पाठक के साथ प्रत्यक्ष सम्बंध के कारण सरसता एवं जीवंतता प्रस्फुटित होती है। जैन दर्शन पर चिन्तनात्मक तथा मीमांसात्मक अनेक बहुमूल्य ग्रन्थों का प्रणयन किया है। अनेकान्तवाद के भी आप मर्मज्ञ हैं। फुटकर निबंधों की संख्या पर्याप्त है तथा छोटे-छोटे प्रभावशाली निबंध संग्रह 'बीज और बरगद', 'समस्या का पत्थर और अध्यात्म की छेनी', 'तुम अनंत शक्ति के स्रोत हो' में हमें उनकी तक-प्रधान शैली के दर्शन होते हैं। 'भगवान महावीर' नामक ग्रन्थ में भगवान महावीर की जीवनी ऐतिहासिकता एवं क्रमबद्धता के साथ आत्मकथात्मक ढंग से नूतन शैली में लिखकर उच्च्व कोटि के साहित्यकार का परिचय दिया है। आध्यात्मिक निबंधों में उनकी शैली की रोचकता बनी रहती है। 'ज्ञान नेत्र है, और आचार चरण है। पथ को देखा तो सही, पर उस ओर चरण बढ़ते नहीं तो देखने से क्या बनेगा ? अभीप्सित लक्ष्य दूर का दूर रहेगा, दृष्टा उसे आत्मसात

नहीं कर पायेगा। यथार्थ को जाना, आचरण में लिया तभी साध्य होगा।[1] एकांगिता सत्य को मान्य नहीं होती है तो फिर किसी भी सम्प्रदाय को क्यों मान्य होनी चाहिए?'[2] इसी प्रकार आचार्य तुलसी की जैन दर्शन शास्त्रों के विषय में विद्वता प्रसिद्ध है। मानवीयता, विश्लेषाणात्मकता एवं विचारात्मकता उनके लेख, व्याख्यान, प्रस्तावनाएँ आदि में व्यक्त होती है। 'क्या धर्म बुद्धि गम्य है ?' उनके सुंदर निबंधों का संकलन है। जैन सम्प्रदायों में तेरा पन्थ सम्प्रदाय के आप प्रवर्तक हैं। आप और आपके विद्वान अनुयायी जैन साहित्य तथा दर्शन के विषय में प्रेरणात्मक व उत्साहवर्द्धक सर्जन करते हैं।

'ज्ञान दीप जले' के रचयिता मुनि श्री विद्यानंद जी भी आध्यात्मिक निबंधकार हैं। इसमें उनके आध्यात्मिक विचारप्रधान निबंधों का संकलन जयप्रकाश वर्मा ने किया है। वर्मा जी मुनि श्री के प्रति अत्यन्त श्रद्धावान हैं। इसमें मानव मात्र के कल्याणस्वरूप अध्यात्म की चर्चा की है। किसी निबंधों में सांस्कृतिक पर्वो का आध्यात्मिक दृष्टि से भी अच्छा विश्लेषण किया है, जैसे-'दीप-निर्वाण', 'दीपावली का महत्त्व', 'दिगम्बर मुनि और श्रमण', आदि में यह देखा जा सकता है। अहिंसा, प्रेम, समानता एवं समभाव के मुख्य तत्त्वों की विवेचना रोचक शैली में की है। भोग-विलास की अपेक्षा त्याग वृत्ति व अहिंसा पूर्ण व्यवहार ही मानव-आत्मा को उन्नति की राह पर ले जाता है ऐसा तारतम्य बहुत से निबंधों से स्फुट होता है।

'चन्दन की सौरभ' देवेन्द्र मुनि के साहित्यिक निबंधों का संकलन है, जिनमें मानव-कल्याण की भावना से अनुप्रेरित अनुभूतियों को लेखक ने सुन्दर भावात्मक शैली में अभिव्यक्त किया है। 'भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण' में उन्होंने जैन दर्शन के तथ्यों का सुंदर आलेखन किया है, साथ में संस्कृत जैन-कृष्ण साहित्य का भी विशद् परिचय साहित्यिक शैली में दिया है। इसमें उन्होंने बौद्ध वैशेषिक के साथ जैन दर्शन की तुलना करते हुए तीनों की विशेषताएं व्यक्त की हैं। देवेन्द्र मुनि दार्शनिक के साथ अच्छे निबंधकार तथा कथाकार के रूप में भी प्रसिद्ध हैं।

'मानवता के पथ पर' मुनि लाभचन्द्र जी के मानवता के उन्नायक प्रवचनों का संकलन है। प्रत्येक प्रवचन अपने आप में प्रकाश-स्तंभ, विचारपूर्ण और कल्याणकारी है। इनमें जीवन की अनेक समस्याओं पर गंभीरता से विशद् विवेचन किया गया है। इनमें सामाजिक समस्याओं के साथ धर्म, समाज,

---

1. नथमल मुनि : जैन दर्शन में आचार मीमांसा-प्राक्कथन, पृ॰ 2.
2. नथमल मुनि : जैन धर्म-बीज और बरगद-पृ॰ 18.

विद्यार्थी जीवन, सामाजिक प्रणालियों, मानव और समाज का सम्बंध, भारतीय संस्कृति, विश्व शान्ति, श्रेय और प्रेय, सभ्यता आदि विविध विषयों पर उन्होंने लिखा है। इन सब में जैन धर्म के सिद्धान्त शान्ति, अहिंसा, सत्य व अपरिग्रह के तत्व की मूलतः विशेष चर्चा की है। निबंधकार की भाषा शुद्ध साहित्यिक के साथ चिंतनप्रधान है। मुनि जी के प्रवचन नयी पीढ़ी के तर्क और समस्याओं का मौलिक समाधान है। मानतवावादी दृष्टिकोण तथा उपयोगितावाद आपके चिन्तन के मूल स्वर हैं। अपने चिन्तन की गहराई द्वारा समस्याओं का मौलिक समाधान खोज निकालना आपकी प्रमुख विशेषता है। 'मानवता के पथ पर' पुस्तक में मुनि श्री ने जिन भावों का विवेचन किया है, वे वस्तुतः भौतिकवाद के सामने मानवतावादियों की ओर से मजबूत मोर्चा है। हिंसा और अहिंसा की, अनैतिकता और नैतिकता की, असत्य और सत्य की, भौतिकता और आध्यात्मकता की लड़ाई में मानवता प्रकाश-स्तंभ बनकर खड़ी है।[1] वैसे ये उनके व्याख्यान हैं, लेकिन उनको निबंधों के रूप में प्रकाशित किया गया है और ये व्याख्यान स्वतंत्र निबंध की सत्ता रखने में सक्षम हैं। इनमें सांस्कृतिक एवं सामाजिक विषयों को उठाकर तार्किक रूप से चर्चा की गई है। 'सभ्यता का अभिशाप' नामक निबंध में यथार्थ ही लिखते हैं–'अर्थ रूपी इंजन हमको खींचे लिये जा रहा है और हम खींचे जा रहे हैं। अंधकार से परिपूर्ण गहरे गर्त की ओर, मानवता से दूर, पशुत्व से भी हीन किसी विकटतम पागलपन की ओर। राष्ट्रीय उत्थान के विषय में भी उन्होंने काफी विचारा है। नारी-विषयक निबंधों में नारी के गौरवमयी अतीत के साथ वर्तमान में नारी की आधुनिकता, उच्छृंखलता, असहिष्णुता एवं भोग-विलास के पति आकर्षण की ओर इशारा किया है। लेखक का दृष्टिकोण विशाल व विचार गहरे हैं। कहीं भी दार्शनिकता की जाल में उनके शुद्ध विचार उलझे नहीं हैं, बल्कि सर्वत्र उनकी हार्दिकता दीखती है।

आधुनिक युगीन जैन निबंध साहित्य के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्टतः फलित होता है कि हिन्दी जैन साहित्य में निबंध साहित्य विपुल राशि में उपलब्ध होता है। अभी भी बहुत संभव है कि कितने ही नामी-अनामी निबंधकारों की रचनाएँ या उनके योगदान का यहाँ उल्लेख करना हमसे रह गया हो, जिसके लिए हमें अफसोस है।

जीवनी, आत्मकथा व संस्मरण साहित्य :

आत्मकथा व संस्मरण को हम सर्वथा आधुनिक युग की देन कह सकते

---

1. मुनि श्री लाभचंद्र जी–'मानवता के पथ पर', संपादकीय-कुमार सत्यभक्त, पृ० 2.

हैं। जब कि जीवनी-साहित्य का रूप पहले भी प्राप्त होता है, चाहे भाषा का माध्यम कोई भी हो। जीवनी और आत्मकथा को साहित्य के अन्तर्गत एक विशेष साहित्य-रूप का स्थान दिया जाता है, क्योंकि यह काल्पनिक कथा एवं सामान्य इतिहास से भिन्न चीज हैं। सामान्यत: 'किसी व्यक्ति विशेष के जीवन वृत्तान्त को जीवनी कहते हैं। 'जीवन चरित' कालान्तर में किंचित शुद्ध होकर 'जीवन चरित्र' बन गया और इसी का आधुनिक रूप 'जीवनी' अब सर्वाधिक प्रचलित है। जीवन चरित्र में दोनों शब्द को अलग करें तो जीवन के अन्तर्गत स्थूल-बाह्य घटनाओं को और चरित्र के अन्तर्गत चरित्र नायक की आन्तरिक विशेषताओं को ले सकते हैं। इस प्रकार जीवन चरित्र अथवा जीवनी में किसी मनुष्य के अन्तर्बाह्य दोनों ही जीवनी का लेखा होता है।'[1] जीवनी में नायक के संपूर्ण जीवन या जीवन के यथेष्ट भाग की चर्चा होती है। जीवनी में जिन्दगी भर का हाल ले सकना संभव न होने पर उसका एक छोर स्फुट संस्मरण को माना जाता है और दूसरा छोर जन्म से लेकर मृत्यु तक के इतिहास से जीवनी को माना जा सकता है। वास्तविक जीवन वही है, जिसमें तथ्यों के अन्वेषण में और उन्हें प्रस्तुत करने में विशेष ध्यान रखना चाहिए और जीवनी प्रमाणिक तथा सम्यक् जानकारी पर आधारित होनी चाहिए। कथा साहित्य की भांति कल्पना की उड़ान को स्थान न होकर वास्तविकता को मृदु-रोचक बनाया जा सकता है।

जीवनी :

जीवनी की यह महत्वपूर्ण विशेषता कही जायेगी कि जीवनी लेखक के लिए उचित है कि यह चरित नायक के जीवन को क्रमशः अन्वेषित एवं उद्घाटित करे। प्रारंभ से ही चरित नायक में महत्ता और विश्लेषणकता के दर्शन करने लगना अच्छा नहीं रहता, क्योंकि ऐसा करने से नायक का चरित्र स्वाभाविक रूप से निर्मित नहीं हो सकता। जीवनी और आत्मकथा साहित्य का ऐसा रूप है, जिसके द्वारा मनुष्य की जिज्ञासावृत्ति तृप्त होकर कुछ सीखना, जानना एवं जीवन को उर्ध्वगामी बनाने की चाह रखता है। वैसे जीवनी लिखना आत्मकथा की अपेक्षा थोड़ा सरल है, जबकि आत्मकथा में आपबीती को संपूर्ण सत्य एवं हार्दिकता के साथ जग समक्ष रखना हौसले के साथ निर्भीकता की अपेक्षा रखता है।

जीवन चरित लिखने की प्रणाली हमारे प्राचीन साहित्य में अत्यन्त कम

1. हिन्दी साहित्य कोश, पृ० 305.

देखी जाती है। नाभादास कृत 'भक्तमाल' तथा अन्य कुछ ग्रन्थों में जीवन सम्बंधी जो भी इतिवृत्त मिलते हैं, उनमें गुण दोष की मात्रा अधिक है। फलतः जीवनी लेखन का वास्तविक तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण हमें प्राचीन साहित्य की अपेक्षा आधुनिक काल में पश्चिमी साहित्य से विशेष मिला। हिन्दी का जीवनी साहित्य नायक के जीवन तथ्यों के वैज्ञानिक विश्लेषण, सम्यक् निरूपण और मनोवैज्ञानिक अध्ययन की दिशा में गतिशील है। हिन्दी जैन साहित्य में साधु-मुनियों की जीवनी विशेष उपलब्ध होती है, जिनमें जीवन की वास्तविकता का निरूपण अच्छा किया गया है। साथ ही साहित्यिक शैली में जीवन के महत्वपूर्ण भाग को प्रस्फुटित किया गया है। जैन साहित्य में अपभ्रंश भाषा में गुरुओं की जीवनी या चरित लिखे गये हैं, जिनमें भक्ति भावना वश गुणों का कीर्तन विशेष देखा जाता है। आधुनिक काल में भी विशेषतः आचार्य या गुरुओं की जीवनी उनके अनुयायी या 'श्रावक'[1] द्वारा लिखी गई है। आलोच्य काल में निम्नलिखित जीवनियाँ प्राप्त हो सकी हैं–

(1) जगद्गुरु श्री हरिविजय सूरी की जीवनी :

मुगल सम्राट अकबर के समय में जैन धर्म व शासन की प्रतिष्ठा बढ़ानेवाले विद्वान् लोकप्रिय जैनाचार्य की जीवनी श्री शशिभूषण शास्त्री ने भिन्न-भिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों के आधार पर से आलेखित की है। आत्म-साधना एवं श्रेय में तल्लीन आचार्य लोक-कल्याण तथा लोकोदय की उपेक्षा करते हैं, ऐसे आरोप को आचार्य जी ने अपने कार्यों द्वारा निर्भ्रान्त कर दिया है।

ई॰ 1722 में लिखी गई इस जीवनी के चरित्र-नायक का जन्म सं॰ 1596 में कार्तिक शुक्ल द्विज को हुआ था और बचपन से ही संसार से विरक्ति आ जाने से दीक्षा अंगीकार कर समाज-कल्याण का कर्तव्य बजाने का निश्चय किया। प्राणीमात्र के प्रति दया व अनुराग होने से अपने संपर्क में आने वाले को प्रेमपूर्वक उपदेश द्वारा शांति व धीरज बंधाते हैं। जीवदया के वे प्रवर्तक-प्रचारक थे। गुणीजनों के प्रति विनम्री तथा अनुरागी थे। अतः उच्च स्थिति पर पहुँचने पर भी गांव-गांव घूमकर जीव दया तथा अहिंसा का सदुपदेश देकर लोगों को मानवता व करुणा का संदेश देते थे। सम्राट अकबर उनकी विद्वता एवं प्रतिभा से काफी प्रभावित हुए थे और उनके उपदेश से ही अमुक तिथियों पर हिंसा बन्द रखने का हुकुम निकाला था।[2] उन्होंने काफी ग्रन्थों का प्रणयन किया था

1. धर्म धर्मावलम्वी।
2. द्रष्टव्य-वील डयुरेट्–Our Oriental Heritage, p. 467.

लेकिन दो ही उपलब्ध होते हैं–'जम्बूदीप प्रज्ञा सटीका' तथा 'अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ स्तव:–फिर भी उनकी असाधारण विद्वता में लेशमात्र संदेह नहीं रहता।

इस जीवनी में तिथिवार एवं संवत् का निश्चित् उल्लेख होने से उसकी ऐतिहासिकता में शंका नहीं होती लेकिन आचार्य महाराज के जीवन को विस्तृत एवं गहराई में न प्रस्तुत कर केवल उनकी सामाजिक क्षेत्र की विशेषता एवं उच्च मानवीय गुणों का उल्लेख किया है। लेखक ने सरल-शुद्ध भाषा में आचार्य श्री की जीवनी लिखकर जैन-जगत् के प्रेरणा स्वरूप जीवन पर प्रकाश डाला है।

(2) सच्चे साधु :

जगतपूज्य विजयधर्म सूरि महाराज की जीवनी अभयचंद भगवानदास गांधी द्वारा प्रकाशित की गई है, जिसमें चरित-नायक के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं, विद्वता, महत्ता आदि का सुंदर साहित्यिक शैली में वर्णन किया है।

जीवनी के नायक का जन्म सं॰ 1924 में हुआ था। नायक के जन्म समय का आकर्षक वर्णन करते हुए लेखक लिखते हैं–"दिशाएँ हंसने लगीं। हवा प्रसन्न होकर वृक्षों के साथ खेलने लगी। वृक्ष की डाली मानो नाच-नाच कर इस महापुरुष के आगमन की खुशी मनाने लगी।" सौराष्ट्र के महुवा शहर में जन्मे हुए विजयधर्म का बचपन का नाम मूलचन्द था।बालक मूलचन्द के बचपन का सुन्दर वर्णन लेखक ने किया है। उनका स्वभाव, आरंभ, संस्कार, बचपन की बुरी आदतों का बेझिझक वर्णन किया है, जो अच्छी व प्रमाणिक जीवनी का अंग होता है। संसार के कडुवे-मीठे अनुभवों के बाद अपरिणित स्थिति में ही भावनगर में विराजमान बुद्धिचन्द महाराज से दीक्षा ग्रहण की थी। उन्होंने गहन अध्ययन कर अज्ञान अंधकार को दूर किया था तथा क्रमश: न्याय तथा व्याकरण शास्त्रों के ग्रन्थों का अध्ययन पूर्ण किया। जहाँ-जहाँ विहार करते, वहाँ-वहाँ जैन पुस्तकालय व पाठशाला बंधवाने के लिए प्रेरणा तथा अनुमोदना देते रहते थे। 'यशोविजय ग्रन्थालय' का निर्माण भी उनकी प्रेरणा व सहयोग से हुआ। सबसे पहले माण्डल में 'यशोविजय ग्रन्थ जैन पाठशाला' स्थापित की। अनन्तर बारह विद्यार्थी एवं छ: साधुओं को लेकर जैन विरोधियों के साम्राज्य स्वरूप काशी नगरी में गये। वहाँ भी अनेक कष्टों के बावजूद 'हेमचन्द्राचार्य पुस्तकालय' नामक संस्था-स्थापित की। सं॰ 1964 में बनारस में बहुत बड़ी सभा में काशी नरेश सर प्रभुनारायण सिंह जी के हाथ से संस्कृत में लिखित प्रतिष्ठा-पत्र प्राप्त किया। इस घटना के बाद 'धर्म सूरि' से 'विजय

धर्म सूरि' नाम से प्रसिद्ध हुए। प्रारंभ में काशी-बनारस और कलकत्ता उनका कार्यक्षेत्र रहा। बाद में गुजरात एवं सौराष्ट्र की ओर विहार प्रारंभ किया। बनारस में गऊघाट पर एक पशुशाला उनके प्रयत्नों से बनवाई गई। उस समय के अधिकारियों तथा स्थानों के नाम से चरित्र नायक के सम्बंधों का जीवनी में निश्चित वर्णन करने से सच्चाई में संदेह नहीं रहता। शासक वर्ग के अधिकारियों का परिचय भी प्राप्त होता है। जीवन लेखक ने चरित्र नायक के सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों का संवत्, स्थानों में प्रामाणिक उल्लेखों के साथ वर्णन किया है। अपनी विद्वता के कारण उनको 'ऐशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल' के एशोसिएट मेम्बर बनाये गये। आचार्य महाराज ने बहुत-से जैन धर्म के ग्रन्थों की रचना की ओर बहुत-से ग्रंथों का संपादन भी किया। करीब-करीब 24 ग्रंथों का प्रणयन गुजराती, संस्कृत, इंग्लिश, हिन्दी और मराठी भाषा में किया था। इस पर से उनकी विद्वता एवं बहुज्ञता का परिचय भी प्राप्त होता है। सन् 1922 में ग्वालियर के शिवपुरी नामक गांव में उनका देहविलय हुआ—जैन धर्म व समाज पर अनंत उपकार करते जाने से उनका नाम और कार्य अमर हो गया।

जीवनी लेखक की भाषा साहित्यिक हिन्दी है तथा तथ्यों के बारे में लेखक सतर्क रहे हैं कि कहीं केवल गुण स्तुति न करके कमियों का उल्लेख करना भी चूके नहीं हैं। जैन समाज में ही नहीं वरन् पूरे भारत एवं पश्चिम के विद्वानों में भी धर्मविजय सूरि जी की ख्याति फैल चुकी है। अतएव, ऐसी जीवनी का अपना महत्व भी होता है। न केवल जैन धर्म के प्रसार-प्रचार में अग्रदूत आचार्यों का जीवन परिचय प्रकाश में लाने की वजह से ही नहीं, बल्कि जैन साहित्य के दृष्टिकोण से भी ऐसी जीवनियों का काफी महत्व है।

3) श्री भूपेन्द्र सूरि :

जैन-संप्रदाय के युवा कवि और लेखक मुनि श्री विद्याविजय जी ने जैन धर्म व समाज के विद्वान मुनि श्री भूपेन्द्र सूरि जी की जीवनी गीतिका छंद में अंकित की है। इसकी विशेषता यह है कि इसको वाद्यों के साथ गाया जा सकता है। जीवनी की भाषा सुन्दर व शैली रोचक है। नायक के जीवन में मानव मात्र के कल्याण की भावना अभिव्यक्त होती है। प्रारंभ में लेखक ने चरित्र-नायक की जन्मभूमि भोपाल, माता-पिता, भाई-बहन आदि का सुंदर परिचय दिया है। भोपाल नगरी का सुन्दर वर्णन करते हुए लेखक कहते हैं—

थी नगरी भोपाल की अति, चारुता उस काल में,
पूर्ण था धन-धान्य से वह ओर मंगल भाल में।
एक्यता का पाठ पढ़ती, वीर रस के वास में।

ईस्वी 1930 में प्रकाशित इस जीवनी के नायक का जन्म संवत् 1944 में भोपाल में हुआ था एवं मृत्यु सं॰ 1993 में आरोह में हुई थी।

जीवनी के प्रारंभ में पार्श्व प्रभु के चरण कमलों की वंदना की गई है, जिसमें सुंदर विनयभाव झलकता है। विशेष अलंकारों का मोह रखे बिना, केवल प्रास-अनुप्रास की छटा में जैन धर्म के तत्त्वगत वैराग्य, राग द्वेष रहित भाव, सद्‌गुण ज्ञान, दीक्षा आदि की चर्चा चरित नायक के क्रमिक विकास के साथ-साथ की गई हैं–

धर्म के शुभ तत्त्व को गुरु, नित्य देते ज्ञान से।
आत्म नैया पार होती; विश्व में यश नाम से। (पृ॰ 40)

चरित-नायक को जैन धर्म के प्रति अनंत श्रद्धा एवं प्यार होने से क्रमशः जैनों की अल्प होती जा रही संख्या से वेदपना अनुभव करते हुए वे लोगों की जैन धर्म के प्रति श्रद्धा बढ़ाने के लिए सतत् परिश्रम शील रहे थे। इसीलिए साहित्य मंडल, श्राविकाश्रम, जैन गुरुकुल, शिशु-विश्राम केन्द्र आदि की स्थापना करवाते रहें तथा जैन समाज के सामाजिक कल्याण की प्रवृत्ति में लीन रहते थे। मुनि विद्याविजय जी ने भूपेन्द्र सूरि के शील-गुण, सादगी, उच्च चरित्र, ज्ञान पिपासा एवं जैन धर्म के विकास के लिए प्रशंसनीय प्रवृत्तियों का आकर्षक वर्णन किया है। इसी पुस्तिका में अंत में मुनि कल्याणविजय जी द्वारा संस्कृत भाषा में 'भूपेन्द्र सूरि गुण गुणाष्टकम्' भिन्न-भिन्न विविध छंदों में लिखा गया है।

मुनि श्री विद्यानन्द जी[1] :

लेखक संपादक जयप्रकाश वर्मा ने इसमें मुनि श्री के जीवन के पावक प्रसंगों को निबंध स्वरूप में लिपिबद्ध किया है। प्रारंभ में परिचय देने के बाद जीवनीकार की महत्ता, विशेषता तथा लोक कल्याण की भावना को उजागर किया है। भाषा अलंकार रहित होने पर भी रोचकता का पूर्ण निर्वाह किया गया है।

जीवनी नायक दिगंबर संप्रदाय के विद्वान साधु हैं और साथ ही हिन्दी जैन साहित्यकार भी हैं। लेखक को उनके साथ जो पावन समय व्यतीत करने का पुण्य अवसर मिला था या उनसे भेंट-मुलाकात होती रही थी, उन्हीं पावन क्षणों के पुनीत यादों-संस्मरणों का आलेखन लेखक ने किया है। मुनि जी के विचार, धर्म सम्बंधी मान्यता, शीतल प्रेम युक्त वाणी आदि का वर्णन किया है। इसको निबंध संग्रह या व्याख्यान संग्रह न कहकर मुनि श्री की जीवनी कह सकते हैं,

1. प्रकाशक-लोकोपकारी पुस्तकालय।

लेकिन जीवनी की तरह क्रमबद्धता न रहकर केवल आलोकमय क्षणों का ही इतिहास अंकित है। अहिंसा मूलक आचार से आर्य भूमि को पवित्र करने जैन मुनियों ने मानव को हिंसक पशु-वृत्तियों से ऊपर उठाकर मानवता की दयामयी स्नेहसिक्त आधारशिला पर प्रतिष्ठित किया है। अहिंसा का संदेश फैलाने वाले मुनि श्री जहाँ कहीं विहार करते, सभी को प्रेम से मिलते, उनके सुख-दुःख की बातें सुनते, उनको सत्य और अहिंसा का दीपक हाथ में बताकर ज्ञान का उजाला फैलाते थे। सादगीपूर्ण रहन-सहन एवं कष्ट सहिष्णु भी उतने ही थे। केवल मंच पर बैठकर ही उनको व्याख्यान देने श्रेयस्कर नहीं था, बल्कि मीलों के मीलों 'पैदल चलकर श्रमिक, पीड़ित जनता के दुःख-दर्द पर अपनी शान्त, शीतल प्रेमपूर्ण वाणी का चंदन लेप लगाते थे। बच्चों को भी प्यार से मिलते थे। आत्मध्यानी, तपस्वी के साथ-साथ सामाजिक उत्थान, दुःखी प्राणियों के अभ्युदय के लिए सदैव चिंतित रहते थे। वे दक्षिण भारत के ब्राह्मण कुल के थे, लेकिन कितनी ही पीढ़ी से उनके परिवार में जैन धर्म का पालन होता आ रहा था। अतः मुनि श्री को भी बचपन से जैन धर्म के महान तत्त्वों एवं तीर्थंकरों की मानसिक व शारीरिक तपस्या के द्वारा जितेन्द्रिय बनाने की कर्म साधना के प्रति आकर्षण हो जाने से छोटी उम्र में वैराग्य ग्रहण कर आत्मा के साथ अन्य जीवनों के कल्याण में रत हो गये। मलयालम, संस्कृत, मराठी, हिन्दी, अंग्रेजी आदि अनेक भाषा के ज्ञाता एवं उच्च कोटि के विद्वान् हैं। संस्कृत भाषा पर उनका अद्वितीय अधिकार है। संस्कृत भाषा में उन्होंने बहुत से जैन तीर्थंकरों की स्तुति प्रार्थना भी लिखी है, जो निश्चय ही उनके हृदय की विशालता, सर्वभूतों की मंगल कामना एवं जैन धर्म के प्रति अगाध आस्था की द्योतक है।

'वे आत्मार्थी है, आत्मा अनुसंधानी है और समाज हित में भी बड़े चौकस और अनासक्त वृत्ति से चल रहे हैं। उनकी मुस्कान में समाधान है और वाणी में समन्वय का अनाहत नाद है। उनका हर कदम मानवता की मंगल मुस्कुराहट है और हर शब्द जीवन को दिशा-दृष्टि देनेवाला है। हम कहते हैं कि वे भुजंगी विश्व के बीच चंदन के बिरछ है, अनंत सुवास के स्वामी।'

आदर्श रत्न :

मुनि श्री रत्न विजय जी महाराज की जीवनी उनके शिष्य आचार्य देवगुप्त सूरि ने लिखी है। गुरु-शिष्य दोनों प्रारंभ में श्वेताम्बर संप्रदाय के स्थानकवासी शाखा के साधु थे, बाद में मूर्तिपूजक संप्रदाय में श्रद्धा बैठने से उसमें दीक्षा ग्रहण की थी। लेखक स्वयं जैन दर्शन के विद्वान आचार्य है एवं अपने गुरु के प्रति अत्यन्त श्रद्धा व प्रेम है, जो अनेक जगह व्यक्त होता है। प्रारंभ में कच्छ

भूमि की विशेषता व धार्मिक परिस्थिति का वर्णन करने के पश्चात् जीवनी-नायक के परिवार का परिचय देते हुए लिखा है कि—कच्छ के महापुर (अब 'मापड़') नगरी के धार्मिक दृष्टि वाले शेठ श्री गोविन्दशी की पत्नी हंसाबाई की कुक्ष से बहुत बड़ी उम्र में रत्नचन्द्र का जन्म हुआ था। जन्म पूर्व हंसाबाई को स्वप्न में रत्नों का ढेर दिखाई पड़ा था, अतः बालक का नाम 'रत्न चन्द्र' रखा गया। बचपन से ही बालक का धर्म के प्रति अत्यन्त अनुराग था। बचपन से चतुर और विचारशील होने से धर्म की चर्चा के साथ हिंसा-अहिंसा की सूक्ष्म बातें वे अपनी माता व गुरु से करते रहते थे। धर्म के प्रति लगन एवं संसार के प्रति विरक्ति होने के कारण माँ से आज्ञा लेकर दीक्षा लेना चाहते थे। 11 साल का बच्चा दीक्षा में क्या समझेगा, अतः माँ ने मजाक में कहा 'पर बेटा! तू अकेला दीक्षा लेगा तो तेरी साज-संभाल कौन करेगा अतः तेरे पिता जी को कह दे कि तेरे साथ वह भी दीक्षा ले लें।'[1] मजाक में की गई बात सत्य ठहरती है। गोविन्दश्री शेठ धर्म के प्रति अत्यन्त श्रद्धावान् तो थे ही, पत्नी की हंसी-खुशी से इजाजत मिलने पर पिता-पुत्र ने सचमुच दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया। बाद में तो हंसाबाई ने अत्यन्त विरोध किया, लेकिन दोनों का दृढ़ निर्णय देखकर उनको सम्मति देनी पड़ी। दीक्षा के बाद तीव्र ग्रहण शक्ति तथा सूक्ष्म याद शक्ति से आगम ग्रन्थों, सूत्रों का और अन्य धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन करने के उपरांत आगम ग्रंथों पर लिखी गई टीकाएँ, व्याकरण आदि पढ़ने के लिए संस्कृत भाषा सीख ली। जैन ग्रंथों के अलावा अन्य धार्मिक ग्रंथों का भी गहरा अध्ययन किया। बहुविज्ञ होने से उनका व्याख्यान भी गंभीर ज्ञानपूर्ण रहता था तथा शैली आकर्षक रहती थी। गुरु वंदना, सज्जाई, स्तवन के विषय में अनेक कविताएँ भी लिखी, जिनका संकलन भावनगर के वकील नेमिचन्द्र ने 'रत्न मुनि कृत काव्य-संग्रह' नाम से किया है। तथैव 'मुनिपति चरित्र' और 'मदनयनवेद चरित्र' की संस्कृत-श्लोक-वद्ध में रचना की थी। मुनि श्री को हरिजनों के प्रति अपार प्रेम था। उनको वे सलाह-मशवरा देते, उनके व्यसनों को छुड़ाने की कोशिश करते। उनकी मान्यता थी कि जैन समाज तो बहुत सुन चुका है, सुनानेवाले भी बहुत हैं, लेकिन हरिजनों को सुनने-सुनाने की विशेष आवश्यकता है। अतः सरल भाषा में भजन बनाकर भी उन्हें सुनाते थे। रत्नविजय जी महारज ने घोर-प्रचण्ड-एकाग्रता से 'आतापना' लेकर दिव्य सिद्धियाँ हांसिल की थी, ऐसा जन समुदाय का मानना है। वैशाख-जेठ की असह्य गरमी में गर्म रेत पर दो-तीन घण्टे सोकर सूर्य की आग सहते थे और

1. आदर्श रत्नः मुनि श्री देवगुप्त सूरि, पृ॰ 24.

बाद में अपासरे (निवास स्थान) जाकर केवल छाछ और बाजरी की रोटी ही खाते थे। बल्लभीपुर गांव के लोगों ने तो अनेक चमत्कार देखे थे। कच्छ में जन्में मुनि का स्वर्गवास दमण के पास वापी में हुआ तब लेखक महादेव का चातुर्मास राजस्थान के फलोदी गांव में हुआ था। अतएव, अन्त समय में गुरु के पास पहुँच न पाने से उनको बहुत दु:ख होता है। स्वाध्याय, चिन्तन, आसन के द्वारा एकाग्रता, हार्दिक अनुभूति एवं मूर्ति पूजा में अत्यन्त आस्थावान इस मुनि महाराज का उचित आदर नहीं हो पाया, इस बात का लेखक को विशेष खेद प्रतीत होता है। जीवनी की भाषा-शैली में कहीं-कहीं व्याकरण की गलतियाँ रहने पाई हैं, फिर भी धार्मिक विवेचन के साथ नायक के बाह्य एवं आंतरिक जीवन और विशेषता का प्रामाणिकता के साथ सुन्दर वर्णन किया गया है।

आचार्य राजेन्द्र सूरि जी की जीवनी उनके विद्वान अनुयायी एवं हिन्दी जैन लेखक मुनि श्री विद्यानंद जी ने सुन्दर शैली में लिखी है। इसमें जीवनी को कलात्मक व विचारात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

जैनाचार्य विजयेन्द्र सूरि जी की जीवनी जैन लेखक श्री काशीनाथ सराक ने रोचक शैली में लिखी है।

इन सबके अतिरिक्त छोटी-छोटी जीवनियाँ भी हिन्दी साहित्य में लिखी गई हैं। जैनाचार्यों एवं जैन मुनियों की जीवनियों एवं जैन मुनियों की जीवनियों—जो उनके अनुयायियों द्वारा लिखी गई हैं, इन के सम्बंध में यह सवाल पैदा होता है कि क्या इनको साहित्य के अन्तर्गत समाविष्ट कर सकते हैं? साहित्यिक योग्यता क्या इन जीवनियों में समाहित-अवशिष्ट है या इनसे हिन्दी जैन साहित्य को कुछ उपलब्ध होता है? इसके प्रत्युत्तर में यही कहा जा सकता है कि इन जीवनियों में चाहे श्रद्धा विशेष के कारण अहोभाव की अनुभूति व्यक्त होने पर भी उनकी प्रामाणिकता में पाठक को आशंका नहीं होती। इसके अलावा सभी जीवनियाँ संपूर्ण साहित्यिक शैली में न लिखी गई हो तो भी हिंदी जैन साहित्य के भंडार की श्रीवृद्धि तो अवश्य हुई है और समाज को-विशेषत: जैन समाज को-अपने धर्म के महान व्यक्तियों का परिचय प्राप्त होने के साथ उनके जीवन की महानता, उदात्त भावनाओं से कुछ प्राप्त होती है। अपने जीवन को भी उदात्त एवं कर्तव्यशील बनाने की प्रेरणा मिल सकती है।

तेरा पंथ के संस्थापक आचार्य तुलसी की जीवनी छगनलाल शास्त्री ने 'आचार्य तुलसी जीवन झांकी' नाम से प्रस्तुत की है, जिसमें आचार्य के परिवार

और जीवन के महत्वपूर्ण प्रसंगों के साथ उनकी विद्वता, बहुश्रुतता तथा मानव-कल्याण की प्रवृत्तियों का सुंदर वर्णन किया गया है।

आचार्यों व मुनियों के जीवन चरित्रों के अलावा जैन समाज को प्रसिद्ध व्यक्तियों के जीवन चरित्र भी प्रकट हुए हैं, इन 'जीवन चरित्रों में सेठ माणिक चंद्र, सेठ हुकुमचन्द, कुमार देवेन्द्र प्रसाद, श्री बाबू ज्योतिप्रसाद, ब्र॰ शीतलप्रसाद, ब्र॰ पं॰ चन्द्राबाई, श्रीमगनबाई एवं श्वेतांबर के अनेक यति-मुनियों के जीवन चरित्र प्रधान हैं। इन चरित्रों में से कई एक तो अवश्य ही साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। पाठक इन जीवन-चरित्रों से अनेक बातें ग्रहण कर सकते हैं।[1]

आधुनिक युग में तीर्थंकरों की जीवनियाँ भी काफी मात्रा में उपलब्ध होती हैं आगम ग्रन्थों और पौराणिक आधारों पर से ये जीवनियाँ ग्रहण की गई होने से उनकी वास्तविकता में संदेह की मात्रा कम रहती है। ऐसी जीवनियों को हम कथा-साहित्य के अंतर्गत भी ग्रहण कर सकते हैं, लेकिन तीर्थंकरों की जीवनी का क्रमबद्ध विवरण व दार्शनिक सिद्धांतों की चर्चा बीच-बीच में आने से कथा-साहित्य के अन्तर्गत न लेकर जीवनी साहित्य के साथ ही लिखा जा सकता है। भगवान आदिनाथ, पार्श्वनाथ, अरिष्टनेमि, महावीर की जीवनियाँ विशेष उपलब्ध होती हैं। सभी में थोड़ी-बहुत समानता दृष्टिगत होती है, यथा-तीर्थंकर की जन्मभूमि की समृद्धि व भव्यता का वर्णन, वंश-परिचय, माता के गर्भ में आने पूर्व माता को स्वप्न, ज्योतिष से स्वप्न फल का रहस्य जानना, जन्म से पूर्व स्वप्न, जन्म महोत्सव, इन्द्रादि देवों द्वारा आनंद-उत्सव, कुमारावस्था, वैराग्य-भावना, दीक्षा महोत्सव, तपश्चर्या, कष्टों को (परिषदों) सहने के उपरांत 'केवल ज्ञान' प्राप्ति एवं उपदेश (देशना)। ऐसे चरित्रों की वस्तु में उपदेशात्मकता होने पर भी रोचकता एवं जिज्ञासा बनी रहती है। उसी प्रकार जैन धर्म की प्रमुख सतियों के जीवन चरित्रों में श्री मृगावती चरित, सती अंजना, धारिणी देवी, सुरसुंदरी चरित आदि प्रमुख हैं। वैसे सभी जीवनियों की शैली भी प्रायः समान रहती है, फिर भी भाषा की प्रौढ़ता, विचारों का गांभीर्य, शैली की जीवंतता, तथ्य प्रस्तुतीकरण के अन्तर के कारण भिन्न-भिन्न लेखकों की विशिष्टता व विद्वता दृष्टिगत होती है।

वसंतकुमार जैन ने भगवान ऋषभदेव, भगवान शान्तिनाथ, भगवान पार्श्वनाथ एवं भगवान अरिष्टनेमि के चरित्र-ग्रन्थ सुंदर भाषा एवं अत्यन्त आकर्षक शैली युक्त है। अतः उनकी रचनाओं में रोचकता का निर्वाह पूर्णतः हो पाया है। इन जीवनियों के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए प्रस्तावना में लिखते

1. डा॰ नेमिचन्द्र जी : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ॰ 141.

हैं—आध्यात्मिक रस भौतिक वादियों के लिए एक कड़वी दवा होती है परन्तु यहाँ वही कड़वी दवा मीठे-मीठे बतासे में रखकर पिलाई जा रही है 'लेखक की शैली की मधुरता प्रेक्षणीय है। ऋषभदेव की जन्मभूमि का काव्यात्मक वर्णन करते हुए लिखते हैं—'रंग चलते विहंग गण से चर्चित और मदमाती, इठलाती, सरसाती, स्वच्छ शीतल नीर सहित सरिता से मंडित घर नगरी इन्द्र की पुरी को भी मात दे रही है। 'वसन्त जी रचित जीवनियों में चरित नायक की जीवनी का क्रमबद्ध आलेखन तो रहता है, लेकिन चरित्र-चित्रण भी काफी सुरेख तथा संवाद छोटे-छोटे और अत्यन्त रोचक हैं। सचमुच, उन्होंने आध्यात्मिकता एवं दार्शनिक चर्चा को भी मधुर प्राकृतिक वर्णन एवं तीर्थंकरों के जीवन विकास के सुंदर वर्णनों से हृदय ग्राह्य बना दी है। इन जीवनियों के विषय में विस्तृत वर्णन के लिए यहाँ अवकाश नहीं है, क्योंकि तीर्थंकरों की जीवनी अनेक विद्वान लेखकों द्वारा लिखी गई होने से केवल नामोल्लेख से संतोष करना पड़ेगा।

बाबू कामता प्रसाद जैन ने भी 'भगवान पार्श्वनाथ' और 'भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध नामकचरित ग्रन्थ लिखे हैं, जिसकी भाषा शैली संयत व प्रौढ़ है। तीर्थंकरों के पूर्व जन्मों की कथा में बीच-बीच में उपदेशात्मक शैली देखी जा सकती है।

आचार्य रजनीश ने 'महावीर मेरी दृष्टि में' पुस्तक में नूतन-दृष्टिबिन्दु एवं विचारधारा से महावीर का जीवन और व्यवहार, चिन्तन एवं कर्म को व्यक्त किया है। आचार्य रजनीश ने अन्य भी धार्मिक ग्रन्थों का प्रणयन किया है, जैन धर्म की सैद्धांतिक चर्चा इन्होंने अपने व्याख्यानों में विशेष की है, जिनको प्रकाशित किया जाता है। तीर्थंकरों के-जीवन चरितों की सूची निम्नलिखित रूप से हैं—

पुस्तक	लेखक
1. वर्द्धमान महावीर	दिगम्बरदास जैन, कामताप्रसाद जैन
2. भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण	देवेन्द्र मुनि
3. वर्द्धमान महावीर	जगदीश जैन
4. चौबीस तीर्थंकर	डा० देवेन्द्र कुमार
5. तीर्थंकर महावीर	श्री मधुकर मुनि और नूतन मुनि
6. संभवनाथ चरित्र	प्रताप मुनि
7. महावीर जीवन प्रभा	आनंद सहाय जी महाराज

8. भगवान महावीर एक अनुशीलन देवेन्द्र मुनि
9. भगवान महावीर का आदर्शजीवन पं० सुखलाल जी
10. भगवान महावीर पं० दलसुखभाई मालवणिया
11. भगवान महावीर का आदर्श जीवन मुनि चौथमल जी
12. श्री पारसनाथ चरित्र रामलाल दोला जी

इन सभी में तीर्थंकरों का जीवन राजवंश में जन्में राजकुमार की श्रेणी से क्रमर्शः त्याग, वैराग्य, कष्ट सहिष्णुता, दीर्घ तपस्या, इन्द्रियदमन व मनोनिग्रह के द्वारा पूर्व जन्मों के कर्मों की निर्जरा समताभाव से कर 'केवल ज्ञान' की प्राप्ति के बाद मानव कल्याण हेतु उपदेश से प्रकाशित है। उनका मन, वचन व काया की अहिंसा, करुणा, प्रेम व सत्य के सिद्धान्तों का जनता में प्रचार-प्रसार जीवन-ध्येय रहा है। तीर्थंकरों का उद्देश्य आत्म विकास के फलस्वरूप 'केवल ज्ञान' की संप्राप्ति से अनंतर प्राणी मात्र के कल्याण के लिए निरन्तर सदुपदेश देकर जीवन की सार्थकता का रास्ता प्रशस्त करने में रहता है। अतः स्वाभाविक है कि इनमें धार्मिक विचारधारा बीच-बीच में रहती है, जैन धर्म के विशिष्ट पारिभाषिक शब्दावली का आ जाना भी सहज है, लेकिन इससे किसी प्रकार के पाठकों को असुविधा पैदा नहीं होती।

अन्य तीर्थंकरों की जीवनी के सम्बंध में वाद-विवाद या विरोध नहीं उठता, लेकिन भगवान महावीर के जीवन, दीक्षा सम्बंध में जैन संप्रदाय में दो प्रमुख संप्रदायों के कारण अन्तर आ जाता है। क्योंकि श्वेताम्बर सम्प्रदाय वाले महावीर को विवाहित-पत्नी यशोदा-व पुत्री प्रियदर्शना, दामाद जामालिकुमार स्वीकारते हैं एवं दीक्षा के बाद श्वेत वस्त्र धारण किये हुए स्वीकारते हैं, जबकि दिगंबर संप्रदाय वाले महावीर को अविवाहित एवं दिगंबर स्थिति में ही विचरण करते हुए मानते हैं। अन्य दार्शनिक सिद्धान्तों में भी छोटे-मोटे अन्तर इन दो प्रमुख संप्रदायों में प्रवर्तित होने से महावीर की जीवनी में अन्तर आ जाना स्वाभाविक है, क्योंकि लेखक जिस संप्रदाय में विश्वास करते हैं, उसी मान्यता, विश्वास के मुताबिक जीवनी लिखेंगे।

जीवनी के अनन्तर आत्मकथा को देखा जाय तो आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य में अत्यन्त कम-केवल दो-आत्मकथा उपलब्ध होती है। शायद अधिक लिखी गई हो और मुझे प्राप्त न हुई हो ऐसी संभावना भी हो सकती है, लेकिन जहाँ तक मेरी कोशिश रही है, वहाँ तक श्री गणेशप्रसाद वर्णी जी की 'मेरी जीवन-गाथा' एवं श्री अजितप्रसाद जैन की 'अज्ञात-जीवन' आत्मकथा प्राप्त हो सकी है। दोनों को ही उत्कृष्ट कोटि की आत्मकथा कही जायेगी, जिनसे हिन्दी

जैन साहित्य व समाज तो उपकृत होगा ही, सभी पाठकों को रसात्मकता के साथ कुछ विशेष प्राप्त होने की अनुभूति अवश्य होती है। प्रेरणा, उत्साह, संकटों का हंसते हुए सामना करके निर्दिष्ट पथ पर अग्रसर होकर उद्देश्य के प्रति दृढ़ निश्चयी होने की प्रेरणा प्राप्त होती है।

"आत्मकथा लेखक के अपने जीवन का सम्बंध वर्णन है। आत्म कथा के द्वारा अपने बीते हुए जीवन का सिंहावलोकन और एक व्यापक पृष्ठभूमि में अपने जीवन का महत्व दिखलाया जाना संभव है। + + + जीवन चरित्र आत्मकथा से इस अर्थ में भिन्न है कि किसी व्यक्ति द्वारा लिखी गई किसी अन्य व्यक्ति की जीवनी जीवन चरित्र है। और किसी व्यक्ति द्वारा लिखी गई स्वयं अपनी जीवनी आत्मकथा, आत्म-चरित या आत्म-चरित्र हिन्दी में आत्म-कथा के अर्थ में प्रयुक्त प्रारंभिक शब्द है और तत्वत: आत्म कथा से भिन्न नहीं है।[1] आत्म कथा का उद्देश्य आत्मांकन द्वारा आत्म परिष्कार एवं आत्मोन्नति करने की होती है। दूसरा उद्देश्य यह भी है कि लेखक के अनुभवों का लाभ अन्य लोग उठा सकें। आत्म-कथा-लेखक की रचना युग तथा समय के प्रमाण रूप में पढ़ी जानी चाहिए, क्योंकि इसमें ऐतिहासिक घटनाओं एवं आंदोलनों का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष वर्णन वास्तविक रूप से होता है।

हिन्दी भाषा में सर्वप्रथम जैन कवि बनारसीदास की 'अर्द्ध कथानक' आत्मकथा प्रसिद्ध है और दूसरी डा० राजेन्द्र बाबू की। अभी तो थोड़ी बहुत आत्मकथाएं प्रकाशित हुई हैं, फिर भी इनकी संख्या अल्प ही कहीं जायेगी। गद्य की यह एक ऐसी विधा है, जिसमें कुछ अन्तर्भूत किया जाता है लेकिन ज़ाहिर में व्यक्त करने में कठिनाई महसूस होती है। वृत्तियों, प्रवृत्तियों एवं कमज़ोरियों का निर्भीकता तथा खेलदिली से स्वीकारोक्ति सबके लिए संभव नहीं होता। फिर भी आजकल हिन्दी के लेखकों का ध्यान इस दिशा में थोड़ा-बहुत आकृष्ट हुआ है, जो आनंद की बात कही जायेगी। आत्मकथा की अल्पसंख्या के कारण पर प्रकाश डालते हुए डॉ० नेमिचन्द्र लिखते हैं कि—यही कारण है कि किसी भी साहित्य में आत्म कथाओं की संख्या और साहित्य की अपेक्षा कम होती है। प्रत्येक व्यक्ति में यह नैसर्गिक संकोच पाया जाता है कि वह अपने जीवन के पृष्ठ सर्व-साधारण के समक्ष खोलने में हिचकिचाता है, क्योंकि उन पृष्ठों के खुलने पर उसके समस्त जीवन के अच्छे या बुरे कार्य नग्न रूप धारण कर समस्त जनता के समक्ष उपस्थित हो जाते है और फिर होती है उनकी कटु आलोचना। यही कारण है कि संसार में बहुत कम विद्वान

1. हिन्दी साहित्य कोश, पृ० 28.

ऐसे हैं, जो उस आलोचना की परवाह न कर अपने जीवन की डायरी यथार्थ रूप में निर्भय और निधड़क हो प्रस्तुत कर सके।[1]

मेरी जीवनगाथा :

वर्णी जी की यह गाथा औपन्यासिक शैली में लिखी गई है, जिसमें उपन्यास की तरह जीवन के निकट का सत्य तथा जीवन की मार्मिक घटनाओं को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने की रोचक शैली का स्वत: निर्वाह हुआ है। 'वर्णी जी ने अपना आत्म चरित लिखकर जहाँ एक ओर जैन समाज का उपकार किया है, वहाँ हिन्दी के भंडार को भी भरा है। एतदर्थ वे बधाई के पात्र हैं।'[2] पं० गणेशप्रसाद वर्णी जी ने अपनी आत्मकथा में अपनी कमजोरी हठाग्रह आदि को स्वीकार करके जिनसे भेंट मुलाकात हुई, उनके सम्बंधों में भी सच्चाई से जो अनुभव हुआ, उस सबको व्यक्त किया है। जीवन की व्यावहारिक दार्शनिकता, जैन धर्म की दार्शनिकता, विशेषता, जैन समाज की सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियों का तादृश्य चित्रण इसमें हमें प्राप्त होता है। वर्णी जी ने यह आत्म कथा लिखकर जैन समाज का ही नहीं, अपितु हिन्दी साहित्य का भी महती उपकार किया है। इस जीवनी के महत्व पर प्रकाश डालते हुए संपादकीय वक्तव्य में लिखा गया है-'पूज्य वर्णी जी द्वारा लिखी गई यह 'मेरी जीवन गाथा' केवल उनकी अपनी ही जीवनी नहीं है, अपितु वह समाज का 50 वर्षों का ज्वलन्त इतिहास है। इसमें प्रत्यक्षीकृत मार्मिक घटनाओं, सामाजिक प्रवृत्तियों और जीवन-सुधार के हृदयस्पर्शी सूत्रों का ग्रथन है। इसे कितने ही लोग हिन्दी 'पद्मपुराण' कहते हैं, नि:संदेह यह 'पद्मपुराण' की तरह जीवन निर्माण के लिए पढ़ने योग्य है।

पूरी आत्मकथा में हम वर्णी जी के जीवन की सुंदर, असुंदर सामान्य महत्वपूर्ण, प्रकाश-अंधकार, अच्छाई-बुराई युक्त घटनाओं को उनकी संपूर्ण सच्चाई के साथ देख पाते हैं। कहीं भी उन्होंने कुछ छिपाने की न कोशिश की है, न संकोचवश कुछ छोड़ा है। कठोर परिश्रम व्रत एवं स्वाध्याय व सादगीपूर्ण जिन्दगी को उसके सही स्वरूप में पाठक के सामने खुली किताब की तरह खोल दिया है, पाठक को जो कुछ समझना या स्वीकार करना हो, उस पर छोड़ दिया है। घटनाएं एवं पात्रों के परिचय इतने रोचक हैं कि कथा की तरह छोड़ते नहीं बनता। सरल तथा रोचक शैली आत्मकथा का प्राण है, जिससे यह नीरसता से बच जाती है और सब उसमें समान भाव से रसानुभूति का आनंद ग्रहण कर

1. डा० नेमिचन्द्र जी : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ० 130.
2. मेरी जीवन गाथा-प्रस्तावना, द्वारकाप्रसार मिश्र।

सकते हैं। नम्रता व वास्तविकता जो आत्मकथा के लिए परमावश्यक है, उन दोनों का इसमें पूर्णतया निर्वाह किया गया है। प्रारंभ में ही वर्णी जी बताते हैं—न तो मैं शोधक हूँ, और न साहित्यकार हूँ। मैं तो भगवान महावीर के महान सिद्धान्तों का अनुयायी मात्र हूँ, और स्वतंत्र विचारक हूँ। मुझे उनके मार्ग का अनुसरण करने में जो आनंदानुभव आता है, वह बचनातीत है।"

वर्णी जी सचमुच सत्य के अन्वेषण एवं उपदेशक हैं। अतएव, यात्रा के दौरान कठिनाइयों के साथ स्वयं की मूर्खता को स्पष्टतः बताते हैं। वर्णी जी सारे जैन समाज के लिए आदरणीय एवं श्रद्धाभाजन हैं। आबाल-वृद्ध सभी को उनके जीवन से कुछ न कुछ सीखने को मिलता है। अपने जीवन की मार्मिक घटनाओं को वे व्याख्यानों में रसात्मकता से वर्णन करते थे। आत्मकथा लिखकर वे प्रकाशित करना नहीं चाहते थे, आत्म प्रशस्ति का डर जो लग रहा था, लेकिन बहुत दबाव डालने पर ही तैयार हुए। प्रारंभ में जैन धर्मी न होकर वैष्णव धर्मी थे, लेकिन बचपन से जैन धर्म के प्रति उत्कट अनुराग था। क्रमशः यह अनुराग बढ़ने से जैन धर्म के तत्त्वों के गहन अभ्यास के साथ व्रत, स्वाध्याय तथा नियमों का चुस्तता से पालन करने लगे, देव-मंदिरों का दर्शन, पूजन उनको आनंद-शान्ति देता था।

आत्मकथाकार ने केवल भ्रमण एवं यात्राओं का नीरस वर्णन ही नहीं किया है, अपितु रोचक शैली में बीच-बीच में प्रकृति का सुंदर वर्णन भी किया है। मैनागिरि की यात्रा करते हुए पर्वत के निकटस्थ सरोवर का वर्णन करते हुए कहते हैं—स्नानादि से निवृत्त होकर श्री जिन मंदिर के लिए उद्यमी हुआ। प्रथम तो सरोवर के दर्शन हुए जो अत्यन्त रम्य था। चारों ओर सारस आदि पक्षीगण शब्द कर रहे थे। चकवा आदि अनेक प्रकार के पक्षीगण शब्द कर रहे थे। कमल के फूलों से वह ऐसा सुशोभित था, मानों गुलाब का बाग ही हो।[1] जैन धर्म का गहराई में ज्ञान प्राप्त करने के लिए भिन्न-भिन्न विद्वानों के पास जाते रहते थे। इन यात्राओं के वर्णन में इतनी सजीवता, जीवटता एवं मौलिकता का रंग है कि पाठक उस रंग में रंगे बिना नहीं रह सकता, आसानी से तादात्म्य स्थापित कर लेता है।

इस आत्मकथा की एक और विशेषता है कि इसमें वर्णी जी की मार्मिक जीवन कथा के साथ जैन समाज के सामाजिक, ऐतिहासिक व धार्मिक इतिहास के साथ शिक्षा विकास का क्रम पाया जाता है, क्योंकि वर्णी जी एक व्यक्ति न होकर संस्था है। उनके साथ अनेक संस्थाएँ जुड़ी है, क्योंकि खुद को जैन

1. वर्णी जी : मेरी जीवन गाथा–पृ॰ 29.

धर्म व दर्शन का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अत्यन्त शारीरिक व मानसिक कष्ट उठाने पड़े थे, अतः भविष्य की पीढ़ी को सुगमता से ज्ञान प्राप्ति हो सके, इस उद्देश्य से जगह-जगह पाठशालाएँ स्थापित कीं। आज के हमारे समाज में जो अमीर-गरीब के बीच अन्याय, भेदभाव, धोखेबाजी, पूर्वग्रह आदि वर्तमान है, उनका चित्रण आपने 'कुंबडीवाले' प्रसंग में अच्छी तरह किया है। गरीब सब्जी बेचनेवाली के पास भी ईमानदारी व न्याय नामक चीज है, लेकिन समाज के अगुवा कहलाने वाले शेठ जी व धनिक स्त्री को न लाज-शरम है, न पाप का भय है और न ही गरीबों की इज्जत संभालने की भावना। 'धनिक मनुष्य अपने पैसों से सैकड़ों पाप छिपा लेते हैं, लेकिन एक निर्धन सुई की नोक के बराबर भी पाप नहीं छिपा पाता, उसे अपने पाप का फल भुगतना ही पड़ता है। यह कैसा अन्याय। हमारे समाज में यही विषमता है। समाज तंत्र में जब तक यह विषवेल रहेगी तब तक उन्नति की आशा नहींवत् होगी। इस तथ्य को सुंदर रीति से व्यक्त करते हुए लिखते हैं—पाप चाहे बड़ा मनुष्य करे या छोटा, पाप तो पाप ही रहेगा। उसका दण्ड दोनों को समान ही मिलना चाहिए। ऐसा न होने से ही संसार में आज पंचायती सत्ता का लोप हो गया है। बड़े आदमी चाहे जो करें, उनके दोष को छिपाने की चेष्टा की जाती है और गरीबों को पूरा दण्ड दिया जाता है, यह क्या न्याय है ? देखो, बड़ा वही कहलाता है, जो समदर्शी है। सूर्य की रोशनी चाहे दरिद्र हो चाहे अमीर, दोनों के घरों पर समान रूप से पड़ती है।[1] समाज का सच्चा रूप इस ग्रंथ के पृष्ठ-पृष्ठ पर अंकित है।

आत्मकथा में जितने भी पात्रों का परिचय दिया गया है, जिनसे संसर्ग, मुलाकात या थोड़ा-बहुत जिनके साथ में काल-यापन किया है, उन सभी का इतना स्पष्ट एवं सुरेख चित्रण किया गया है कि उनकी जीती-जागती तस्वीर हमारे सामने आ जाती है। उपन्यास शैली से भी बढ़कर रोचक चरित्र-चित्रण किया गया है। चिरोंजी बाई, स्व० गोपालदास बरैया, अर्जुनदास सेठी, रामदास भाऊ, पाण्डे आदि का चित्रात्मक परिचय दिया है। आज से 50, 60 वर्ष पूर्व के समाज की स्थिति, रहन-सहन, रीति-रिवाज, जनता की मनोवृत्ति, अतिथि-सत्कार, हार्दिकता, धार्मिक स्थलों की स्थिति, धार्मिक व सामाजिक संस्थाओं का निर्वाह, शिक्षा की पद्धति, शिक्षार्थी का जीवन, आदि विषयों की जानकारी हमें इस ग्रंथ से आसानी से मिल जाती है। यह ग्रन्थ इतिहास की सच्चाई व सूक्ष्मता से पूर्ण होने से जीवनी के आनंद के साथ समाज की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों का ज्ञान भी देती है। सच्चे व्रत के विषय में आपने कई जगह

1. वर्णी जी : मेरी जीवन गाथा, पृ० 105.

सुन्दर निराकरण किया है–'जिस कार्य से आकुलता बढ़ जावे, उसे मत करो। कोई भी काम करो, समता से करो।' पूज्या चिरोंजीबाई के ये शब्द लेखक को प्रेरणा देते रहते थे। बाबा शिवलाल जी भी व्रत के औचित्य पर ध्यान देते हुए कहते हैं–शरीर को सर्वथा निर्बल मत बनाओ। व्रत-उपवास करो अवश्य, परन्तु जिसमें विशेष आकुलता हो जाय ऐसा शक्ति का उल्लंघन कर व्रत मत करो। व्रत का तात्पर्य तो आकुलता दूर करना है।[1]

आत्मकथा की भाषा इतनी आकर्षक एवं सरल है कि सामान्य पाठक भी आसानी से आत्मसात कर सकता है। उनकी भाषा शैली में छोटे-छोटे वाक्यों की सुगठितता एवं अपूर्व छटा है। प्रवाहबद्ध भाषा में धर्म के तत्त्वों की चर्चा भी कुशलता से कर लेते हैं। डा॰ नेमिचन्द्र शास्त्री उनकी विशेषता पर अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि–इस साढ़े तीन हाथ के मिट्टी के पुतले का व्यक्तित्व आज गजब ढा रहा है। समस्त मानवीय गुणों से विभूषित इस महामानव में मूक परोपकार की अभिव्यंजना, साधना और त्याग की अभिव्यक्ति एवं बहुमुखी प्रतिभा विद्वता का संयोग जिस प्रकार से पाया है, शायद ही अन्यत्र मिले। इतनी सरल प्रकृति, गंभीर मुद्रा, ठोस ज्ञान, अटल श्रद्धादि गुणों के द्वारा लोग सहज ही इनके भक्त बन जाते हैं। जो भी इनके संपर्क में आया, वह अन्तरंग में मायाशून्यता, सत्यनिष्ठा, प्रकाण्ड पांडित्य, विद्वता के साथ चारित्र्य, प्रभावक वाणी, परिणामों में अनुपम शांति एवं आत्मिक और शारीरिक विद्वता आदि गुण राशि से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। इसके अतिरिक्त अज्ञान-तिमिरान्ध जैन समाज का ज्ञान-लोचन उन्मिलित करके लोकोतर उपकार करने का श्रेय यदि किसी को है तो श्रद्धेय वर्णी जी को। पूज्य वर्णी जी का जीवन जैन समाज के लिए सचमुच में एक सूर्य है। वे मुमुक्षु हैं, साधक हैं और हैं स्वयं बुद्ध। उन्होंने अपनी आत्मकथा लिखकर जैन समाज का नहीं, अपितु मानव-समाज का बड़ा उपकार किया है।[2]

अज्ञात जीवन[3]:

दूसरी आत्मकथा बाबू अजीतप्रसाद की 'अज्ञात जीवन' है, जो आजकल अनुपलब्ध है। आत्मकथा का नाम ही उपन्यास जैसा है कि पाठक को एकाएक अपनी ओर आकर्षित करने में समर्थ है। अजीत प्रसाद जी जैन समाज में इतने

1. वर्णी जी : मेरी जीवन गाथा, पृ॰ 170.
2. डा॰ नेमिचन्द्र जी : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ॰ 138.
3. प्रकाशक-रायसाहब रामदयाल आरवला, प्रयाग।

ख्याति प्राप्त हैं कि उनका जीवन अज्ञात न रहकर सर्वविदित है। जैन समाज पर उन्होंने काफी उपकार किये हैं। उन्होंने अपनी इस आत्मकथा में बाल्यावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक की सभी महत्वपूर्ण घटनाओं को संपूर्ण ईमानदारी के साथ क्रमबद्धता से पिरोया है। इसमें सामाजिक कुरीतियों का उन्होंने सुन्दर वर्णन किया है। रोचकता एवं सरसता का गुण पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। 'यद्यपि लेखक ने आत्मकथा का नाम 'अज्ञात जीवन' रखा है, किन्तु लेखक का जीवन समाज से अज्ञात नहीं है। समाज से सम्मान और आदर प्राप्त करने पर भी वह अपने को अज्ञात ही रखना अधिक पसंद करता है, यही उसकी यह सज्जनता की सबसे बड़ी पहचान है। इस आत्मकथा में सामाजिक कुरीतियों का पूरा विवरण मिलता है। भाषा संयत, सरल और परिवार्जित है। अंग्रेजी और उर्दू के प्रचलित शब्दों को भी यथास्थान रखा गया है।[1]

संस्मरण :

आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य में संस्मरण का जो ग्रन्थ प्राप्त होता है, वह किसी एक व्यक्ति के विषय में किसी एक ही लेखक द्वारा न लिखकर जैन धर्म, समाज व साहित्य के अनेक तेजस्वी विद्वान एवं कीर्ति स्तंभ समान साहित्यकारों और विद्वानों के संस्मरण, प्रसिद्ध साहित्यकार एवं समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा लिखे गये हैं। जिसका नाम है 'जैन जागरण के अग्रदूत'।[2] इस महान ग्रंथ के प्रमुख संपादक महोदय हैं प्रसिद्ध विद्वान श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय। वैसे अभिनंदन ग्रन्थ में भी संस्मरणों, मुलाकातों आदि को संगृहीत किया जाता है। साहित्य, समाज में प्रसिद्ध महानुभावों के प्रवेश को ऐसे ग्रंथों में विविध विद्वानों के द्वारा श्रद्धांजलि अर्पित की जाती है, जो सर्वथा उचित ही होता है। ऐसे संस्मरणों को पढ़कर पाठक को कुछ जानने के उपरान्त इस बोध का भी परिचय-अनुभव-होता है। महान व्यक्तियों के संस्मरण से हम अपने जीवन को गंभीर बनाकर जीवन की सार्थकता के विषय में भी प्रयत्नशील रहने की प्रेरणा पाते हैं, रोचक स्मृतियों की घटना से आनंद तो प्राप्त होता ही है, हम उन पवित्र स्मृतियों से धन्य व पावन भी बनते हैं। आलंकारिक शैली में संस्मरण का महत्व प्रदर्शित करते हुए डा॰ शास्त्री लिखते हैं—यह मानी हुई बात है कि महान व्यक्तियों के पुण्य संस्मरण जीवन की सूनी और नीरस घड़ियों में मधु घोल कर उन्हें सरस बना देते हैं। मानव-हृदय, जो सतत् वीणा के समान भावनाओं की झंकार से झंकृत होता रहता है, पुण्य संस्मरणों से पूत

1. डा॰ नेमिचन्द्र जी : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ॰ 141.
2. प्रकाशक—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।

हो जाता है। उसकी अमर्यादित अभिलाषाएँ नियंत्रित होकर जीवन को तीव्रता के साथ आगे बढ़ाती हैं। फलतः महान व्यक्तियों के स्मरण-जीवन की धारा को गंभीर गर्जन करते हुए सागर में विलीन नहीं कराते, बल्कि हरे-भरे कगारों की शोभा का आनंद लेते हुए उसे मधुमती भूमिका का स्पर्श कराते हैं–जहाँ कोई भी व्यक्ति वितर्क बुद्धि का परित्याग कर रसमग्न हो जाता है और पर-प्रत्यक्ष का अल्पकालिक अनुभव करने लगता है।[1]

इस ग्रंथ में गोयलीय जी ने प्रमुख तत्त्व चिंतन, दानवीर, धार्मिक एवं समाज-सेवक 37 व्यक्तियों के संस्मरण अथक परिश्रम एवं उत्साह से अंकित किये व करवाये। संकलन में वर्णित सभी संस्मरणों को चार भागों में विभक्त किया गया है–प्रथम खंड त्याग और साधना के दिव्य प्रदीपों की अमर ज्योति से आलोकित हैं–ये दिव्य दीप हैं–शीलतप्रसाद, बाबा भागीरथी वर्णी, आत्मार्थी, कानजी महाराज, ब्र० पं० चन्दाबाई, तथा बैरिस्टर चम्पतराय जी की बहन) इन दिव्य दीपों में तेल और वर्तिका संजोने वालों में श्री गोयलीय जी के अतिरिक्त अन्य लेखकों में वर्णी जी, नाथूराम 'प्रेमी', नेमिचन्द्र शास्त्री, पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, साहू शांतिप्रसाद जी, प्रो० खुशालदास गारावाला, श्री राजेन्द्र कुमार जैन और छोटेलाल जैन हैं। इन सबकी शैली में अपूर्व उत्साह, प्रवाह, माधुर्य एवं जोश है। सबकी भावना में सहजिकता के साथ श्रद्धा का तत्त्व भी शामिल है, जो स्वाभाविक भी है।

दूसरा काम तत्त्व ज्ञान के आलोक-स्तंभों से शोभित है। ये आलोक स्तंभ ग्रंथ हैं–गुरु गोपालदास बरैया, पं० उमराव सिंह, पं० पन्नालाल बाकलीवाल, पं० ऋषभदास, पं० महावीर प्रसाद, पं० अरहदास, पं० जुगलकिशोर मुख्तार और पं० नाथूराम 'प्रेमी'। इस स्तंभ के लेखकों में भी गोयलीय जी के सिवा क्षुल्लक गणेशप्रसाद, पं० सुखलाल जी संघवी, पं० नाथूराम प्रेमी और श्री कन्हैयालाल 'प्रभाकर' प्रमुख हैं। इन सभी संस्मरणों में रोचकता इतनी अधिक है कि गूंगे के गुड़ के स्वाद की अनुभूति ही संभव हो सकती है। सभी लेखक जैन साहित्य और हिन्दी साहित्य के जाने-माने लेखक हैं। सभी की भाषा में ओज, माधुर्य, प्रवाह तथा हार्दिकता छलकती है।

तीसरे भाग में अमर समाज सेवक हैं, जिन्होंने समाज में नवरचना का प्रकाश फैलाया है-वे हैं–बाबू सूरजभानु वकील, बाबू दयाचन्द गोयलीय, कुमार देवेन्द्रप्रसाद, बैरिस्टर जुगलमंदिर लाल बैनी, अर्जुनलाल सेठी, बैरिस्टर चंपनराय, बाबू ज्योतिप्रसाद, बाबू सुमेरुचंद एडवोकेट, अजीतप्रसाद वकील,

1. डा० शास्त्री : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ० 141.

बाबू सूरजमल और महात्मा भगवानदीन। इस स्तंभ के लेखकों में नाथूराम प्रेमी, श्री कन्हैयालाल मिश्र, भगवानदीन, गुलाबराय, श्री अजितप्रसाद, श्री कामता प्रसाद, श्री कौशलप्रसाद जैन, श्री दौलतराय मिश्र, श्री जैनेन्द्रकुमार और श्री गोयलीय जी हैं। जिस प्रकार प्रयाग में त्रिवेणी के संगम स्थल पर गंगा, यमुना और सरस्वती की भिन्न-भिन्न धाराएं एक में मिल जाती हैं और पवित्र संगम स्थल का निर्माण करती हैं, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न लेखकों की पृथक्-पृथक् शैली इस एक संस्करण में मिल त्रिवेणी सी पवित्रता व माधुर्य का वातावरण पैदा करती है। भिन्नता में प्रवाह-ऐक्य यहाँ मौजूद है। इस स्तंभ के लेखकों ने अपने संस्मरणों के द्वारा मानो मंदिर के द्वार पर खड़े पुजारी की-सी नम्रता एवं भक्ति भावना से पंचामृत का रसास्वादन किया है और पाठकों को करवाया हैं।

चतुर्थ भाग श्रद्धा और समृद्धि के ज्योति रत्नों से जगमगा रहा है—वे रत्न हैं—राजा हरसुखराय, सेठ सुगभचन्द्र, राजा लक्ष्मणप्रसाद, सेठ माणिक चन्द, महिला रत्न भगनबाई, सेठ देवकुमार, सेठ जम्बूप्रसाद, सेठ मथुरादास, सर मोतीसागर, रा० ब० जुगमंदिरलाल, रा० ब० सुल्तान सिंह और सर सेठ हुकुमचन्द। इनके संस्मरणों के आलेखनकर्त्ता हैं—गोयलीय जी, प्रेमी जी, नेमिचन्द्र शास्त्री, जैनेन्द्र कुमार पं० कैलाशचन्द्र, कन्हैयालाल मिश्र, तथा कामताप्रसाद जैन आदि। सभी आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् निबंधकार हैं। इस संकलन की विशिष्टता, उपादेयता, महत्ता व उत्कृष्टता के सम्बंध में साहित्यिक शैली में नेमिचन्द्र जी—जो स्वयं भी इसके एक प्रमुख लेखक हैं—लिखते हैं—'सचमुच में यह संकलन बीसवीं शताब्दी के जैन समाज का जीता-जागता एक चित्र है। समस्त पुस्तक के संस्मरण रोचक प्रभावक और शिक्षाप्रद हैं। इस संग्रह के संस्मरणों को पढ़ते समय अनेक तीर्थों में स्नान करने का अवसर प्राप्त होगा। कहीं राजगृह के गर्मजल के झरनों में अवगाहन करना पड़ेगा, तो कहीं-कहीं के समशीतोष्ण ब्रह्म-कुण्ड के जल में, तो कहीं पास ही के सुशीतल जल के झरने में निमज्जन करना होगा। आपको गंगाजल के साथ खारा उदक भी पान करने को मिलेगा, पर विश्वास रखिए, स्वाद बिगड़ने न पायेगा।'[1]

इस संकलन में बीसवीं शताब्दी के दिवंगत और वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, प्रमुख दिगम्बर जैन कार्यकर्ताओं के संस्मरण व परिचय दिया गया है, जो निरन्तर लोकोपयोगी कार्य एवं जैन समाज के जागरण तथा उन्नति में किसी न किसी प्रकार सहयोग देते रहे हैं। "जैन जागरण के अग्रदूत अपनी दिशा में इन धुंधले और मिटे जा रहे पथ चिह्नों को श्रद्धा से, श्रम से, सतर्कता से समेटकर

1. डा० नेमिचन्द्र जी : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ० 144.

सेफ में रख लेने का ही एक मौलिक प्रयत्न है और यह प्रयत्न अपनी जगह इतना सफल रहा है कि 'आज' उसका मान करने में चूक भी जायें, तो 'कल' उसका सम्मान कर स्वयं अपने को कृतार्थ मानेगा। + + + यह पुस्तक, यह जलती मशाल, इस चयन का महत्त्व बताती, उसक तरीका सीखाती और नये जागरण के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में साधनों को हांक लगाती है। मेरा विश्वास है कि हाक कण्ठ की नहीं, हृदय की है और कानों तक ही नहीं, दिलों की गुफाओं तक गूँजेगी। + + + यहाँ जो लेख है, वे जीते जागते लेख हैं, 'वकालत' नहीं, जनता की अदालत में 'असालतन' आने वालों में है। वे न उनकी कलम के आंसू हैं, जो पैसे लेकर स्यामा करते हैं और न उनके ओठों की मुस्कुराहट, जो दिल के सोते-सोते भी ओठों से हंसना जानते हैं। वे उनकी कलम के करिश्मे हैं, जो अपने ही दु:ख में रोते और अपने ही दु:ख में हंसते हैं। यही कारण है कि भीतर के पन्नों की तस्वीरों में रंगों की चमक भले ही कहीं हल्की हो, पर भावनाओं की दमक हर जगह झलकी हुई है। + + + और अब तक इस चमन के माली श्री गोयलीय के लिए क्या कहूँ, जो सदा साधनों की उपेक्षा कर, साधना के ही पीछे पागल रहा और जिसके निर्माण में स्वयं ब्रह्मा ने पक्षपात करके शायर का दिल, सिंह का साहस और सपूत की सेवा वृत्ति को एक ही जगह केन्द्रित कर दिया।"[1] इसके संपादक महोदय गोयलीय जी उस बृहद् संस्मरण के सम्बंध में प्रकाश डालते हुए लिखते हैं-'हमारे यहाँ तीर्थंकरों का प्रामाणिक जीवन-चरित्र नहीं आचार्यों के कार्य-कलापों की तालिका नहीं, जैन संघ के लोकोपयोगी कार्य की सूची नहीं, जैन सम्राटों, सेनानायकों, मंत्रियों के पराक्रम और शासन प्रणाली का कोई लेखा नहीं, साहित्यिकों और कवियों का कोई परिचय नहीं। और तो और हमारी आंखों के सामने कल, परसों, गुजरने वाली विभूतियों का कहीं उल्लेख नहीं और जो दो चार बड़े-बूढ़े मौत की चौखट पर खड़े हैं, इनसे भी हमने उनके अनुभवों को नहीं सुना है और शायद मस्तिष्क में दस-पाँच पीढ़ी में जन्म लेकर मर जाने वालों तक के लिए परिचय लिखने का उत्साह हमारे समाज को न होगा।

प्राचीन इतिहास न सही, जो हमारी आँखों के सामने निरन्तर गुजर रहा है, उसे ही यदि हम बटोर कर रख सकें, तो शायद इसी बटोरपन में कुछ जवाहर पायें जो आगे की पीढ़ी के हाथ लग जायें। इसी दृष्टि से-'बीती ताकि विसार दे, आगे की सुधि लेय।' नीति के अनुसार संस्मरण लिखने का डरते-डरते

1. जैन जागरण के अग्रदूत-कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', यह एक जलती मशाल है, शीर्षकस्थ, पृ० 13.

प्रयास किया है। यह पुस्तक इतिहास और जीवनी का भी काम दे सकती है।''[1] संक्षेप में यह संपूर्ण ग्रन्थ अपनी शैली, नवचेतना, संदेश, भाव-माधुर्य में बेजोड़ कहा जायेगा। गोयलीय जी को ऐसा संस्मरणात्मक ग्रन्थ तैयार करने के लिए हार्दिक अभिनन्दन, क्योंकि यह ग्रन्थ हिन्दी-जैन-साहित्य ही नहीं, बल्कि हिन्दी साहित्य को भी गौरव रूप प्रदान कहा जायेगा।

जीवनी, आत्मकथा एवं संस्मरण के अतिरिक्त विभिन्न विषयों के निबंधों के संकलन भी अभिनंदन-ग्रंथों के नाम से प्रकाशित हुए हैं। इनमें निम्न ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं–

श्री प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ, श्री वर्णी अभिनंदन ग्रंथ, श्री ब्र० पं० चन्दाबाई अभिनंदन ग्रंथ, श्री हुकुमचन्द अभिनंदन ग्रंथ, श्री आचार्य शांतिसागर श्रद्धांजलि ग्रंथ, 'श्रीयुत अगरचन्द्र एवं भंवरलाल नाहटा अभिनंदन ग्रंथ' में विभिन्न विद्वानों एवं परिचितों के द्वारा लिखे गये संस्मरणों का संकलन किया गया है। अभिनंदन ग्रंथों के सर्जन से हिन्दी जैन साहित्य के साथ हिन्दी साहित्य का भी महती उपकार हुआ है, क्योंकि हिन्दी साहित्य में भी अभिनंदन ग्रंथों की दिशा में अभी बहुत कुछ करने को बाकी है, तब उसके भंडार भरने में ये ग्रन्थ सहायक बनते हैं। इन ग्रंथों के द्वारा अभिनन्दनीय व्यक्तियों को सम्मान देते हुए उनकी साहित्यिक, सामाजिक व धार्मिक सेवाओं की कद्र की जाती है तथा उनकी विशेषताओं पर प्रकाश डाला जाता है।

इस प्रकार गद्य के विभिन्न रूपों को देखने से सरलता से महसूस किया जा सकता है कि आधुनिक हिन्दी जैन गद्य हिन्दी साहित्य की तरह विस्तृत एवं नूतन शैली की संश्लिष्टता से चमकता हुआ न हो, फिर भी उसका महत्त्व स्वीकार करना ही चाहिए। हिन्दी साहित्य के एक नये रूप का भण्डार भरने का कार्य इससे अवश्य हुआ है। गद्य के रूपों में उपन्यास, कहानी की कमी के प्रति अंगुली निर्देशन करते हुए कहा जा सकता है कि न केवल जैन लेखक, बल्कि हिन्दी साहित्य के लेखकों का भी इस ओर ध्यान आकृष्ट हो और वे अपनी कलम से जैन प्राचीन ग्रंथों से कथानक ग्रहण कर उपन्यास-कथा-साहित्य का सृजन कर हिन्दी-जैन साहित्य को गौरवान्वित करेंगे। आत्मकथा और संस्मरण का क्षेत्र अभी काफी खाली कहा जायेगा, जिसकी और प्रवृत्त होने की आवश्यकता महसूस की जाती है।

आज के वैज्ञानिक युग में मुद्रण कला की सुविधा के कारण बहुत से दार्शनिक साहित्यिक निबंध ग्रंथों का प्रकाशन होता रहता है लेकिन नये

1. जैन जागरण के अग्रदूत–अयोध्याप्रसाद गोयलीय, ये टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ, पृ० 11.

वातावरण, विचार शैली एवं विश्लेषणात्मक ढंग से सुन्दर (कथा) उपन्यास-साहित्य की ओर प्रवृत्त होने की आवश्यकता रहती है, इसके लिए न केवल जैन साहित्यकार बल्कि हिन्दी साहित्य के लेखकों को भी अच्छे कथानकों को लेकर कार्य करना चाहिए, ताकि हिन्दी-जैन-साहित्य को भी समृद्ध होने का गौरव प्राप्त हो सके।

यह बात भी उल्लेखनीय है कि हिन्दी गद्य के विकास गें दिगम्बर-साधुओं का योगदान भी प्रशंसनीय है। शुद्ध साहित्यिक हिन्दी में चरित-जीवनी, निबन्ध-साहित्य का सृजन कर इसके भण्डार को भरा है।

षष्ठम अध्याय

आधुनिक हिन्दी-जैन-काव्य का कला-सौष्ठव

साहित्य तथा काव्य का अंतरंग उसका भाव पक्ष है और बहिरंग कला पक्ष। दोनों ही महत्त्वपूर्ण हैं, दोनों का सम्बंध अविभाज्य है। बहिरंग काव्य के अन्तरंग को ललित, सुचारु बनाकर शोभा प्रदान करता है, तो अन्तरंग कलापक्ष या बहिरंग को सार्थकता प्रदान करता है। काव्य के सम्बंध में एक प्राचीन रूपक प्रसिद्ध है, जिसमें कविता की तुलना लावण्यमयी युवती से की गई है कि शब्दार्थ जिसका शरीर है, अलंकार आभूषण है, रीति अवयवों का गठन है, गुण स्वभाव और रस आत्मा है। इस रूपक में शरीरस्थ आत्मा की तरह रस को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया गया है। काव्य के बाह्यरंग छन्द (वृत्त) शब्दार्थ (भाषा) अलंकार, व गुण रीति है। काव्य का अन्तरंग भावना, कल्पना और विचार के अन्तर्भाव से निर्मित होता है। इसीलिए तो 'शब्दार्थो काव्यम्' भी कहा गया है। किसी भी उच्च साहित्य के लिए भाव पक्ष के साथ कला पक्ष का भी महत्व रहता है। क्योंकि यदि भाव पक्ष को काव्य की आत्मा कहा जाय तो कला पक्ष उन भावों की सुन्दर प्रभावपूर्ण अभिव्यक्ति के लिए सहायक शरीर रूप है, भाव पक्ष मनोहारी मूर्ति तो कला पक्ष मूर्ति को प्रस्थापित करने वाला आकर्षक मन्दिर। उत्कृष्ट तीव्र भावों को उच्च कला पक्ष ही यथोचित रूप से अभिव्यक्त कर पाता है। मनुष्य की आत्मा के लिए जितना शरीर का महत्व है, साहित्य में भावरूपी आत्मा को आधार देने के लिए कला रूपी शरीर का महत्व है। कुछ रसिक जन तो कला तत्त्व को काव्य में अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं, लेकिन वास्तव में साहित्य में अन्तरंग सौंदर्य का बाह्य सौंदर्य से विशेष प्रदेय महत्व है। वास्तव में काव्य में सौन्दर्य व भावानुभूति की मार्मिक प्रतीति बहिरंग व अन्तरंग के योग्य समन्वय से ही निष्पक्ष होती है। काव्य के विविध अंग परस्पर पूरक हैं तथा इनके समग्रगत प्रभाव से ही रस निष्पत्ति संभव हो पाती है। क्योंकि–'शब्द और अर्थ के इस साहित्य में शब्द काव्य का रूप है और अर्थ अथवा भाव काव्य का तत्त्व है। काव्य में शब्द और अर्थ का अनन्य भाव से समन्वय होता है।[1]

यथार्थ ही कहा गया है कि–"कला पक्ष को बहुधा भाव पक्ष से स्वतंत्र

1. डा० रामानंद तिवारी–काव्य का स्वरूप, पृ० 88.

और अधिक श्रम साध्य समझा जाता है, परन्तु वह वस्तुतः कवि के व्यक्तित्व और उसके मनः संगठन से अनन्यतः सम्बंधित होता है। वस्तुतः भाव पक्ष से कला पक्ष का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता है, क्योंकि भाव की तरलता, गहनता और अनन्यता के रूप में भी कला पक्ष में विशद्, संकोच अथवा गूढ़ता का योग हो जाता है।''[1]

काव्य के बहिरंग या कला पक्ष के विविध प्रमुख अंग रूप भाषा, छंद, अलंकार व गुण के सम्बंध में थोड़ा बहुत विचार करना अनुचित न रहेगा।

भाषा व शैली :

काव्य के कला पक्ष में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान सर्व-स्वीकृत है। बिना भाषा काव्य का सृजन संभव नहीं हो पाता। ''भाषा भाव और विचारों को स्पष्ट रूप में रखने का साधन है, इसलिए वह स्वच्छ होनी चाहिए, कारीगरी से रहित।''[2] भाषा रूपी देह में काव्य की आत्मा रूप व्यंजना प्राणों का स्पन्दन है। शब्द-देह काव्यात्मकता का मंदिर होने से किसी प्रकार गौण या कम महत्वपूर्ण नहीं होता। शब्दों का सौष्ठव काव्य की (भावगत चेतना) आत्मा के सौंदर्य की अभिव्यक्ति के अधिक अनुकूल होता है। काव्यांग के सहज सामंजस्य को कला-सौष्ठव भी कहा जाता है। आनंदबर्द्धन के विचार में 'शब्दों के अंग-सौष्ठव से काव्य के रस और सौंदर्य की व्यंजना होती है।' भाषा ही भावों की अभिव्यक्ति का परमावश्यक साधन है। काव्य के भीतरी तत्त्व भाव, व्यंजना, ध्वनि, रस के साथ बाह्य तत्त्व के लिए प्रमुख भाषा के साथ छंद, अलंकार, गुण-नाद आदि का अत्यन्त महत्व होता है। भाषा रूपी देह के बिना भाव रूपी आत्मा संस्थित नहीं हो सकती। साथ ही काव्यानंद की उपलब्धि के लिए अलंकार, छंद-नादयोजना का साथ महत्वपूर्ण है। डा॰ नगेन्द्र के विचारों में-''काव्य की भाषा सहज, पात्र एवं प्रसंग के अनुकूल, मूर्ति विधाविनी और मधुर होनी चाहिए''।[3] कवि की भाषा में हृदय के भावों को संस्पर्श करने की पूरी क्षमता होनी चाहिए। इसी में कवि की भाषा का सार्थक्य है, काव्य की उत्कृष्टता है।

''भाषा की भांति शैली की सरलता, सबोधता एवं स्वच्छता पर भी विद्वानों ने बल दिया है। सरल शैली सार-ग्राहिणी सामर्थ्य रखती है, इसी के द्वारा कविता लोक-सामान्य भाव भूमि पर प्रतिष्ठित होती है और व्यापक प्रभाव

---

1. हिन्दी साहित्य कोश, पृ॰ 202-203.
2. आ॰ रामचंद्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ॰ 146.
3. डा॰ नगेन्द्र-'साकेत-एक अध्ययन', पृ॰ 155.

उत्पन्न करती है।''[1] छंद, अलंकार, बिंब-प्रतीक आदि के सुचारु व समुचित विधान से शैली को उत्कर्ष प्राप्त होता है। ''उचित शब्द चयन ही कविता की वास्तविक कला है और इसके बिना उसमें कलात्मकता आ नहीं सकती।''[2] भाषा को काव्य या साहित्य का व्यावहारिक पक्ष कहा जा सकता है। लयबद्ध, नादानुकूल, आलंकारिक व व्यंजक भाषा आदर्श काव्य-भाषा कही जाती है। भाषा भावाभिव्यक्ति का एक प्रबल व प्रमुख साधन है। व्यक्ति के मन, संघटन एवं स्वभाव का परिणाम ही उसकी भाषा-शैली है। अतः भाषा-शैली में व्यक्तित्व का संपूर्ण प्रकाश होता है और उसके माध्यम से व्यक्तित्व का अध्ययन भी हो सकता है। व्यक्ति निष्ठ होने के कारण ही साहित्य के बोध पक्ष और रूप पक्ष को अलग करना संभव नहीं है, क्योंकि भाषा और विचार अन्योन्याश्रित है। भाषा का सामर्थ्य उसकी व्यंजना शक्ति में है। इसी व्यंजना तत्त्व के पोषण से अर्थ गौरव की सृष्टि होती है। रीति और गुण भाषा के ही तत्त्व होते हैं। प्रसाद, ओज और माधुर्य अथवा वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली के रूप में प्राचीन काव्यशाला ने जिन भाषा-तत्त्वों की ओर संकेत किया था, वे सार्वदैशिक और सार्वकालिक हैं। इन्हीं के व्यक्तिगत प्रयोग से विशिष्ट लेखन शैली का निर्माण होता है। भाषा शैली की भिन्नता के कारण ही एक ही विषय पर लिखी गई कृतियों में सहज अन्तर संभाव्य होता है तथा शैली की उत्कृष्टता-निकृष्टता पर कृति का मूल्यांकन आधारित रहता है। इसीलिए तो कहा गया है कि शैली ही व्यक्तित्व है। (Style is a man) अतः शैलीगत विशेषताएं ही व्यक्तिगत विशेषता सिद्ध होती है। प्रत्येक कवि की भाषा शैली में स्वाभाविक अन्तर पड़ जाने से कवियों का भी विभिन्न स्तर निर्णीत होता है। हाँ, एक दूसरे का प्रभाव ग्रहण करने की दृष्ट-अदृष्ट परम्परा अवश्य रहती है।

छन्द :

भाषा की तरह छंद-योजना का महत्व काव्य में लय, गति व नाद के लिए अपेक्षित है। छंद-विधान नाद-सौंदर्य पर अवलंबित होता है। यह बाहरी वस्तु न होकर काव्य में आत्म विभोरता व सजीव आत्मभिव्यंजना के लिए शास्त्रीय विधान है। यह विधान काव्य के लिए बंधन न होकर लय-सौंदर्य की वृद्धि व पोषण के लिए आधार शिला है। साधारण गद्य की भाषा से काव्य की एक पंक्ति में भी, भावविभोरता, प्रवाह व नाद-सौंदर्य होने से पाठक को आनंद विभोर बना देता है। कवि लय और छंद के माध्यम से अपने अन्तर्जगत के

---

1. आ० नंददुलारे वाजपेयी-हिन्दी साहित्य-बीसवीं शताब्दि, पृ० 22.
2. दिनकर : मिट्टी की ओर, पृ० 152.

भावों की अभिव्यक्ति सरलता से कर पाता है। वैसे आजकल बिना छन्द या मुक्त छन्द की कविता का प्रवाह बहता है लेकिन उन सभी में वह प्रेषणीयता व आकर्षकता नहीं रहती, जो पाठक के हृदय को स्वतः अपनी ओर आकृष्ट करे। प्रवाह में बहाकर आलोकित कर पायें। जिस प्रकार नदी के स्वाभाविक प्रवाह को तीव्र और गतिशील बनाने के लिए पक्के घाटों की आवश्यकता रहती है, उसी प्रकार भावनाओं और अनुभूतियों को प्रभावोत्पादक बनाने के लिए छन्दों की आवश्यकता काव्य में महसूस की जाती है। भाषा के लाक्षणिक प्रवाह के लिए भी छन्द का बंधन अनिवार्य-सा रहता है। छन्दबद्ध रचनाएं स्मृति-पटल पर जल्दी से अंकित हो जाती हैं। छन्द की आवश्यकता व महत्ता पर अपने विचार व्यक्त करते हुए डा॰ नेमिचन्द्र शास्त्री लिखते हैं–''साहित्यकार लय और छन्द के माध्यम से अपनी अनुभूतियों की अचल तन्मयता में एकात्म अनुभव की भावना में विभोर हो कला को चिरन्तन प्राण तत्व का स्पर्श कराता है। अतएव छन्द कवि के अन्तर्जगत की वह अभिव्यक्ति है, जिस पर नियम अकुशल नहीं रखा जा सकता, फिर भी भिन्न-भिन्न स्वाभाविक अभिव्यक्ति के लिए स्वर के आरोह और अवरोह की परम आवश्यकता है। स्पंदन कंपन और धमनियों में रक्तोष्ण का संचार लय और छन्द के द्वारा ही संभव है। + + + चुस्त भावनाओं की अभिव्यंजना के लिए यह विधान उतना ही आवश्यक है, जितना शरीर के स्वरयंत्र को शक्तिशाली बनाने के लिए उच्चारणोपयोगी अवयवों का सशक्त रहना।''[1] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल छन्दों की विशेषता पर प्रकाश डालते हुए उचित ही लिखते हैं कि ''छन्द वास्तव में बंधी हुई लय के भीतर भिन्न-भिन्न ढांचों का (Patterns) योग है, जो निर्दिष्ट लंबाई का होता है। लय सवर के चढ़ाव-उतार के छोटे-मोटे ढांचे ही हैं जो किसी छन्द के चरण के भीतर व्यस्त रहते हैं। + + + छन्द के बंधन के सर्वथा त्याग में हमें तो अनुभूतनाद-सौंदर्य की प्रेषणीयता का (Comunicability of Sand impulse) प्रत्यक्ष लाभ दिखाई पड़ता है। हाँ, नये-नये छन्दों के विधान को हम अवश्य अच्छा समझते हैं।[2] अलंकार के अतिरिक्त काव्य के रूप निर्माण के लिए छन्द-संगती की आवश्यकता बनी रहती है। छन्द काव्य की गति है, प्रवाह है।

अलंकार :

जिस प्रकार काव्य को चिरन्तन बनाने के लिए उत्कट गहरे भावों की

1. डा॰ नेमिचन्द्र जी : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ॰ 154, 155.
2. आचार्य राचन्द्र शुक्ल-चिन्तामणि-भाग-2, पृ॰ 143. 'काव्य में रहस्यवाद' निबंध।

अपेक्षा रखी जाती है, ठीक उसी प्रकार उन तीव्रानुभूतियों को अभिव्यक्त करने के लिए चमत्कारपूर्ण अलंकार शैली की भी आवश्यकता बनी रहती है। कलात्मक पक्ष व भावात्मक पक्ष दोनों की अनिवार्यता काव्य को सप्राण व रोचक बनाने के लिए रहती है। काव्य-देह को सजाने-संवारने का मुख्य भार अलंकार पर रहता है लेकिन अधिक अलंकारों की सज्जा से काव्य की सुन्दरता विकृत हो जाती है, जिस प्रकार अधिक अलंकारों के बोझ से नारी की सहज स्वाभाविक सुंदरता नष्ट होकर कृत्रिम-सी दिखाई पड़ती है। अत: अलंकार बाह्य सज्जा रूप होने पर भी काव्य के लिए साधन है, साध्य नहीं। जब उसे साध्य मानकर कवि अलंकारों का अधिकाधिक प्रयोग करता है, तब वह (बोझ) घातक सिद्ध होते हैं। उनकी मान्यता और उनका चमत्कार स्वयं एक पृथक आकर्षण का कारण बनकर काव्य के मूल तथा मुख्य सौंदर्य की ओर से हमारी दृष्टि को खींच लेता है। अलंकार काव्य के सौंदर्य में वर्द्धन करने के स्थान पर स्वयं सौंदर्य का आश्रय बनकर काव्य के सौंदर्य को गौण बना देता है। अत: उनका अल्प व अनुरूप होना आवश्यक है। अनुरूपता, अल्पता व सुसंगति के द्वारा अलंकार कविता-कामिनी के सौंदर्य का संवर्द्धन कर सकते हैं। काव्य के अलंकारों में अर्थालंकार ही अधिक महत्वपूर्ण होते हैं। अर्थ शब्द के आन्तरिक चिन्मय तत्त्व हैं। अत: अर्थालंकार काव्य की आत्मा से सम्बंधित है। आचार्य कुन्तक ने वक्रोक्ति में और आनंद वर्द्धन ने ध्वनि में समस्त अर्थालंकार का अन्तर्भाव करने का प्रयत्न किया है। काव्य के व्यक्तित्व के सौंदर्य विधान एकाकार होकर ही अलंकार सौन्दर्य के साधक हो सकते हैं। अत: संतुलन, सामंजस्य, विविधता, वैचित्र्य के अनुरूप ही अलंकारों का प्रयोग उचित है। अलंकार की विशेषता के संदर्भ में आचार्य शुक्ल ने यथार्थ ही लिखा है कि–भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं का रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी-कभी सहायक होनेवाली युक्ति ही अलंकार है।[1] अलंकारों की महत्ता पर अपने विचारों को वाणी प्रदान करते हुए डा॰ नेमिचन्द्र शास्त्री लिखते हैं–कवि की प्रतिभा प्रस्तुत की अभिव्यंजना पर निर्भर है। अलंकार इस दिशा में परम सहायक होते हैं। मनोभावों को हृदय-स्पर्शी बनाने के लिए अलंकारों की योजना करना प्रत्येक कवि के लिए आवश्यक है। जैन कवियों ने प्रस्तुत के प्रति अनुभूति उत्पन्न करने के लिए जिस अप्रस्तुत की योजना की है, वह स्वभाविक एवं मर्मस्पर्शी है, साथ ही प्रस्तुत की भांति भावोद्रेक करने में सक्षम भी। कवि अपनी कल्पना के बल से

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि-भाग-2, पृ॰ 183.

प्रस्तुत प्रसंग के मेल में अनुरंजक अप्रस्तुत की योजना कर आत्माभिव्यंजन में सफल हुए हैं। + + + आत्माभिव्यंजन में जो कवि जितना सफल होता है, वह उतना ही उत्कृष्ट माना जाता है और यह आत्माभिव्यंजन तब तक संभव नहीं, जब तक प्रस्तुत वस्तु के लिए उसी के मेल की दूसरी अप्रस्तुत वस्तु की योजना न की जाय। मनीषियों ने इस योजना को ही 'अलंकार' कहा है। काव्यानंद का उपभोग तभी संभव है, जब काव्य का कलेवर कलामय होने के साथ अनुभूति की विभूति से संपन्न हो। जो कवि अनुभूति को जितना ही सुन्दर बनाने का प्रयास करता है, उसकी कविता उतनी ही निखरती जाती है। यह तभी संभव है, जब उपमान सुंदर हो। अतएव अलंकार अनुभूति को सरस और सुन्दर बनाते हैं। कविता में भाव-प्रवणता तभी आ सकती है, जब रूपयोजना के लिए अलंकृत और संवारे हुए पदों का प्रयोग किया जाय। दूसरे शब्दों में इसी को अलंकार कहते हैं।[1] डा० नगेन्द्र अलंकारों की उपयोगिता के संदर्भ में लिखते हैं—भाषा में अलंकारों की उपयोगिता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। अलंकार जहाँ भाषा की सजावट के उपकरण होते हैं, वहाँ वे भावोत्कर्ष में भी सहायक होते हैं। उनकी एक मनोवैज्ञानिक भूमि होती है। वे कथन में स्पष्टता, विस्तार, आश्चर्य, जिज्ञासा कौतूहल आदि की सर्जना करते हैं।[2] वस्तुतः 'अलंकार केवल वाणी की सजावट के ही नहीं, भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार है। भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान है।[3]

हिन्दी जैन काव्य-साहित्य भावपक्ष से जितना समृद्ध है—भावों में भक्ति, स्तुति का रागात्मक प्रवाह है, तो दार्शनिक विचारधारा व चिंतन का गंभीर सागर भी है—उतना ही उसका कला-सौष्ठव प्रशंसनीय कहा जा सकता है। भावों के लिए जैन दर्शन व भक्ति की एक सुनिश्चित सीमा-मर्यादा होने पर भी उत्तम भाव सृष्टि खड़ी की है, जब कि भाषा, अलंकार, छंद, सूक्ति-प्रयोग आदि के लिए कोई मर्यादा नहीं हो सकती। हाँ, एक बात अवश्य है कि जैन विचारधारा से सम्बंधित इन काव्यों में मुक्त शृंगार, आनंदोल्लास, मस्ती व प्रेमादि की चर्चा न होकर वैराग्य, सत्य, संयम, अपरिग्रह, भक्ति आदि से सम्बंधित धार्मिक, तात्त्विक विचारधारा को यथा-शक्य कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त किया है। जैन समाज में प्रचार-प्रसार का उद्देश्य इन कवियों का होने से स्वाभाविक है कि

---

1. डा० नेमिचन्द्र शास्त्री : हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन, पृ० 63, 64.
2. डा० नगेन्द्र : रीति काव्य की भूमिका, पृ० 86.
3. पंत-पल्लव-प्रवेश, पृ० 22.

कलापक्ष में अलंकारों की सजावट, भाषा की चमक-दमक, व्यंग्योक्ति की सूक्ष्मता, तीव्रता, छन्दों की विविधता या कला की बहार कम प्राप्त होगी।

जैन काव्य-साहित्य का भावपक्ष चाहे अति मार्मिक या छायावादी काव्य की तरह तीव्र भावानुभूतिपरक नहीं है, फिर भी प्रभावोत्पादक अवश्य कहा जायेगा। जबकि धार्मिक साहित्य होने के कारण कला पक्ष को सजाने-संवारने की आवश्यकता काव्य-सर्जकों ने तीव्र रूप से महसूस न कर सरलता-सुबोधता को ही महत्व देना अभीष्ट समझा है। डा० श्रीलालचन्द्र जैन ने पूर्णतः उपयुक्त लिखा है कि–जैन साहित्य-सर्जना की पृष्ठभूमि में साहित्यिक रुचि का इतना बड़ा योग नहीं है, जितना धर्म-भावना का। धर्म प्रेरणा ने उनकी लेखनी को साहित्य-सर्जना की दिशा दी। इसलिए उनकी किसी भी विधा की भूमिका में हमें धर्म की झांकी मिल जाती है। सच तो यह है कि जहाँ धर्म है, वहाँ जैन-साहित्य है, जहाँ जैन साहित्य है, वहाँ धर्म है। जैन साहित्य को जैन धर्म से अलग करके देखना धार्मिक और साहित्यिक दोनों दृष्टियों से अनुचित होगा।[1]

जैन कवि प्रायः जनवाणी में अपने भावों की अभिव्यक्ति करते आये हैं। उनकी भाषा प्रायः सहज रही है। यहाँ हम आधुनिक हिन्दी जैन काव्य भाषा पर विचार कर लेना समीचीन समझते हैं। काव्य-साहित्य धार्मिक भावनाओं से प्रेरित होने पर भी साहित्यिक क्षेत्र में समकालीन नव्यताएं लेकर अवतीर्ण हुआ है, जिसके अंतर्गत विविध छंद भी हैं, राग भी हैं और भाषा का माधुर्य भी है। हाँ, क्योंकि इस साहित्य का प्रणयन प्रायः राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात एवं आगरा के आस-पास के प्रदेश में विशेष हुआ होने से वहाँ की भाषा का प्रभाव स्वाभाविक रूप से दृष्टिगत होता है।

आधुनिक हिन्दी जैन काव्य की भाषा :

आधुनिक हिन्दी जैन काव्य के रचयिताओं ने अपनी रचनाओं में सरलता एवं सुबोधता को ही विशेष महत्व दिया है। सरल भाषा में रचित काव्य जन-सामान्य को अधिक बोधगम्य होता है। काव्य की भाषा गद्य की भाषा से अधिक मार्मिक तथा रसात्मक होती है, लेकिन वह कोश-भाषा नहीं होनी चाहिए। साहित्यिकता स्वीकार्य होती है, दुरुहता नहीं। लोकप्रिय काव्य के माध्यम के लिए वही भाषा स्वीकृत होनी चाहिए, जिसमें कवि अपने भावों की अभिव्यक्ति हार्दिक रूप से कर पाये। आधुनिक हिन्दी जैन काव्य के

---

1. डा० श्रीलालचन्द्र जैन : हिन्दी जैन ब्रज प्रबंध काव्य में रहस्यवाद, भूमिका, पृ० 10.

भाषा-वैशिष्ट्य हम उसके भिन्न-भिन्न तीन काव्य-स्वरूपों के परिप्रेक्ष्य में ही देखने की चेष्टा करेंगे। महाकाव्य व खण्डकाव्य में प्रयुक्त भाषा को देखने के उपरान्त आधुनिक युग में उपलब्ध मुक्तक रचनाओं में भाषा के रूप का विवेचन करेंगे।

आधुनिक युग में हिन्दी जैन साहित्य के अंतर्गत गद्य की तुलना में प्रबंध काव्य की उपलब्धि परिमित है। उपलब्ध महाकाव्य 'वर्धमान' एवं 'वीरायण' दोनों में हम भिन्न-भिन्न भाषा-शैली पाते हैं। जैन काव्यों में जहाँ एक ओर संस्कृत-गर्भित क्लिष्ट भाषा प्राप्त होती है, वहाँ दूसरी ओर सरल कहीं-कहीं ग्रामीणता का स्पर्श करती हुई-भाषा भी देख सकते हैं। अनूप शर्मा के 'वर्धमान' जैसे महाकाव्य में संस्कृत शब्दावली तथा संस्कृत क्रियाओं तक का प्रभाव विद्यमान है। कहीं-कहीं 'क्यति', 'नमामि' जैसे तिङन्त प्रयोग भी मिलते हैं।[1] अतः दुरुहता का आ जाना स्वाभाविक है। कहीं-कहीं तो पूरा छंद बिना क्रिया के भी चलता है। यत्र-तत्र पांडित्य-प्रदर्शन की भावना के कारण भी अप्रचलित शब्दों का प्रयोग किया गया है। 'वर्धमान' में ऐसे शब्दों की कमी नहीं है—यथा—वैधस, विशिष्ट, दिवोकसी, चतुष्क, पिशक, शशाद, प्लव, अंसुभत्पमला, वरेणुका, हरिमंथ, परिक्षाम, चिभिक कृपीटयोनि, कीलाम, लासिक, व कमन्थ आदि। कवि ने वैदुष्य-प्रदर्शन की दृष्टि से अथवा चमत्कार उत्पन्न करने की दृष्टि से ऐसे शब्दों का प्रयोग किया होगा। किन्तु इसका परिणाम उल्टा ही निकला है। भाषा मार्मिक, ग्राह्य एवं प्रभावशाली उस कोटि तक नहीं हो पाती है, वहाँ तक उसे होना चाहिए थी।

उपर्युक्त क्लिष्ट व अपरिचित शब्द प्रयोगों के बावजूद भी जहां प्रश्नोत्तर शैली का कवि ने प्रयोग किया है, वहाँ भाषा अवश्य सरल है। आध्यात्मिक, दार्शनिक तत्त्वों की चर्चा के समय कवि ने सरल भाषा का प्रयोग किया है और संभवतः 'वर्धमान' के रचनाकार की यही सबसे बड़ी सफलता भी मानी जायेगी। वैसे तो संस्कृत शैली पर काव्य लिखा गया होने से दीर्घ वृत्त एवं कठिन शब्द-बाहुल्य तो रहेगा ही, लेकिन दार्शनिक विचारों का सरल भाषा में विनियोजन आधुनिक हिन्दी जैन महाकाव्य का सफल प्रयोग कहा जायेगा। दार्शनिक ग्रंथों में इस शैली को 'पूर्व पक्ष' और 'उत्तर पक्ष' कहते हैं। जिससे दार्शनिक विचारधारा आसानी से सुस्पष्ट हो सकती है, ऐसा एक उदाहरण दृष्टव्य है—

---

1. द्रष्टव्य—अनूप शर्मा—'वर्धमान', पृ० 15.

अधी कहेंगे किस निन्द्य जी को ?
कषाय, क्रोधादिक-युक्त जो कि हो।
'कुबुद्धि' लोभीजन कौन है शुभे!
सदैव जो द्रव्य लहे अधर्म की।[1]

इसी प्रकार त्रिशला, सिद्धार्थ के वार्तालाप में भी इसी सरल-रोचक भाषा का दर्शन होता है। त्रिशला के सौंदर्य वर्णन व राजा सिद्धार्थ की महानता के वर्णन में सरल एवं कर्ण प्रिय शब्दों का प्रयोग ही प्राप्त हैं–जैसे–रानी त्रिशला के लिए कवि कहते हैं–

सरोज-सा वकत्र, सुनेत्र मीन से,
सिवार-से केश, सुकंठ कम्बु-सा।
उरोज ज्यों कोक, सुनाभि भोर-सी,
तरंगिता थी त्रिशला-तरंगिणी।[2]
सुनी सुधामंडित माधुरी-धुरी,
अभी सुवाणी त्रिशला मुखाब्ज से।
पिकी कुहू रोदन में रता हुई,
प्रलम्ब भू में परिवादिनी बनी।[3]

त्रिशला के सौंदर्य वर्णन में भाषा का सौंदर्य दृष्टव्य है–

नितंब संपीडित पाद-युग्म में, मनोहरा मेचक नुपुरावली।
विराजती थी त्रिशला पदाब्ज में, सरोष भू की जिस भांति भंगिमा।

'वर्द्धमान' में जहाँ सिद्धार्थ की सभा तथा महत्ता का वर्णन करते हैं, वहाँ भाषा सहज सरल है–

'सुवर्णा-वर्णा, ललिता, मनोहरा, सभा लसी यों पद-ब्यास-शालिनी।
विरंचि सिद्धार्थ-युता लखी गई, शरीरिणी ज्यों अपरा सरस्वती।।[4]
सदा द्विजावास तथैव निर्मल, विशाल थे जीवन धाम राज्य के।
तड़ाग-से शोभित पद्मयुक्त वे, नरेश तृष्णा हरते अधीन की।।[5]
परन्तु जो सर्वदा सर्वदा उन्हें, विचारते थे वह यों निराश थे।
न पीठ पाई अरि-वृन्द ने कभी, न वक्ष देखा परनारि ने तथा।।

1. अनूप शर्मा-वर्धमान-सर्ग-6, पृ० 36.
2. अनूप शर्मा-वर्धमान-सर्ग 1, पृ० 55, 81.
3. द्रष्टव्य-अनूप शर्मा-वर्धमान-सर्ग-6, पृ० 61, 105.
4. द्रष्टव्य–अनूप शर्मा–वर्धमान-सर्ग-1, पृ० 43.
5. द्रष्टव्य–अनूप शर्मा–वर्धमान-सर्ग-1, पृ० 47.

तथैव सर्वज्ञ न भूमिपाल थे, न जानते थे इतना कदापि वे।
नकार होती किस भांति की अहो! अनाथ को, आश्रित को, अभाग्य को॥[1]

कवि अनूप जी ने महाकाव्य में अपनी भावमयी कल्पना में अर्थ और मृदुता के अनेक सुमन खिलाये हैं, शब्दों की कल्पना में अर्थ और मृदुता का इतना सुष्ठु रूप दिया है कि सैद्धांतिक परिभाषाएँ और कल्पनाएँ काव्यमय हो गई है। स्वप्नों के संसार के लिए कवि कैसी भाव-प्रवण भाषा का प्रयोग करते हैं-

निशिथ के बालक स्वप्न नाम के,
प्रबुद्ध होके त्रिशला-हृदयाब्ज में, मिलिन्द से गुंजन शील हो गये।
उगा नहीं चन्द्र, सगूढ़ प्रेम है, न चांदनी केवल प्रेम-भावना।
न रुक्ष है, उज्जवल प्रेम पात्र है, अतः हुआ स्नेह प्रचार विश्व में॥

'आंसू' जैस दृग जल के लिए कवि की कल्पना व भाषा-माधुर्य देखिए-

वियोग की है यह मौन भारती, दृगम्बु धारा कहते जिसे सभी।
असीम स्नेहाम्बुधि की प्रकाशिनी, समा सकी जो न सशब्द वक्ष में॥

मार्मिक तथा व्यवहारिक युक्तियों के कारण कहीं-कहीं तो 'वर्धमान' की भाषा अत्यन्त ग्राह्य हो पाई है-यथा-

पुरन्ध्रित स्वगीर्य प्रतीति प्रीति है। या
मनुष्य का जीवन धूप-छांह सा। नितान्त अज्ञात प्रवृत्ति प्रेम की।
ऐसे ही-दिनेश ही एक न तेजमान है, निसर्ग का प्रेम द्वितीय सूर्य है।

ऐसे ही, सुंदर भाषा के कारण ही दार्शनिक संवाद अनुभूति-गम्य बन पड़े है, जिसका 'वीरायण' काव्य में सर्वथा अभाव है। 'वीरायण' की भाषा में सरलता अधिक है, साहित्यिकता कम, जबकि 'वर्धमान' में साहित्यिकता विशेष है, सरलता कम। भाषा में गांभीर्य तथा कल्पना वैभव जितना 'वर्धमान' की भाषा में पाया जाता है, मूलदास कृत 'वीरायण' महाकाव्य में प्रायः नहीं है। 'वर्धमान' की भाषा में यत्र-तत्र क्लिष्टता भी है, तथापि दार्शनिक विचारधारा में भाषा का प्रवाह ध्यानाकर्षक हैं-

कहो शुभे! ध्येय पदार्थ क्या ? महान कल्याणक जैन शास्त्र ही।
कहो, कहो भूपर गेय वस्तु क्या ? जिनेन्द्र द्वारा परिगीत तत्त्व ही।

---

1. द्रष्टव्य-अनूप शर्मा-वर्धमान-सर्ग-1, पृ० 44, 36, 37.

कहो कि क्या पाप धरित्रि में शुभे ? असत्यता, क्रोध-कषाय आदि ही।
नरेन्द्र वामे! फल धर्म का कहो। त्रिलोक-स्वामित्व जिनेन्द्र संपदा।[1]

शृंगार एवं शान्त रस के वर्णन में कवि की भाषा माधुर्य-गुण-युक्त है; लेकिन सर्वत्र इस शैली का निर्वाह संस्कृत छंदों-वृत्तों के कारण नहीं हो पाया है। वीर-रस की गुंजायश नहीं होने से ओज शैली का तो प्रश्न ही नहीं उपस्थित होता, लेकिन दीर्घ समास व कठिन शब्दावली के कारण भाषा में ओजस्विता यत्र-तत्र दिखाई पड़ती है। 'वर्धमान' के कवि ने विषय की असमर्थता की पूर्ति काल्पनिक वर्णनों, अलंकृत काव्यांशों, चमत्कार-उक्तियों तथा अध्ययन-प्रसून आध्यात्मिक निष्कर्षों के आधार पर की है। अनेक अप्रचलित संस्कृत तत्सम शब्दों के प्रयोग द्वारा पांडित्य प्रदर्शन की प्रवृत्ति को तुष्ट किया है। कवि की कल्पना-शक्ति प्रारंभ से ही अत्यधिक ऊर्वर रही है।[2] वहाँ बहुत-से विवेचकों को इस हिन्दी जैन महाकाव्य की भाषा क्लिष्ट और दीर्घ समास-बहुला प्रतीत होती है, वहाँ कितनों के द्वारा उसकी गंभीर गौरवयुक्त भाषा-शैली की प्रशंसा भी हुई है। इसकी भाषा शैली की विशेषता पर प्रकाश डालते हुए डा० पं० विश्वनाथ उपाध्याय लिखते हैं-शब्द-संधान की दृष्टि से 'वर्धमान' हरिऔध के 'प्रिय-प्रवास' से भी अधिक प्रौढ़ काव्य है। अशिथिलता इसकी विशेषता है। शब्द एक-दूसरे से कसे हुए हैं, एक हिल्लोलाकार में सर्वत्र बढ़ते हुए चलते हैं। उनमें एक अनवरत दिगन्त भेदी आवर्त उत्पन्न करने की शक्ति अवश्य है। इस दृष्टि से कवि के अद्भुत शब्द-संधान और मानसिक संयम पर आश्चर्य होता है। पर्यायवाची शब्दों पर कवि का असाधारण अधिकार दिखाई पड़ता है। लगता है, हिन्दी और संस्का का पूरा शब्द-कोश पहले ही कवि के मन में यथावत उपस्थित है। + + + अनूप शर्मा के इस काव्य में उनका 'शब्द-सम्राट' रूप सबसे अधिक मुखर है।[3] 'वर्धमान' महाकाव्य की भाषा डा० बनवारीलाल शर्मा के विचारानुसार 'प्रिय-प्रवास' की-सी संस्कृत-बहुला शुद्ध खड़ी बोली है, पर उसमें सुदीर्घ समस्त पदावली का आधिक्य नहीं है।[4]

इसकी भाषा के साथ-साथ शैली की सरलता-क्लिष्टता भी विचारणीय है। जहाँ एक ओर सरलता प्राप्त होती है, वहाँ दुरुहता के भी दर्शन होते हैं।

---

1. द्रष्टव्य-अनूप शर्मा-वर्धमान, पृ० 181, 33-34.
2. डा० रामचन्द्र तिवारी-अनूप शर्मा : 'कृतियाँ और कला' के अन्तर्गत निबन्ध सुकवि अनूप की महान कृति 'वर्धमान', पृ० 146.
3. पं० विश्वनाथ उपाध्याय-वर्धमान और द्विवेदी युगीन काव्य परंपरा, पृ० 159.
4. डा० बनवारी लाल शर्मा-स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी प्रबंध काव्य, पृ० 62.

संस्कृत परंपरागत काव्य होने से समास शैली सहज न लगकर 'आडम्बर शैली' प्रतीत होती है। लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि सर्वत्र समास-शैली का ही निर्वाह किया गया है। सहज स्वाभाविक शैली का दर्शन भी हमें अधिकांश स्थलों पर होता है। त्रिशला एवं सिद्धार्थ के स्वस्थ दाम्पत्य जीवन के वर्णन में भाषा-शैली की स्वाभाविकता रमणीय व प्रशंसनीय है। ऐसे प्रसंगों में शैली की प्रवाहमान तरलता आकर्षित करती है। 'वर्धमान' की भाषा व परम्परा-प्रियता के सम्बंध में अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए डा० लालता प्रसाद सक्सेना लिखते हैं कि-भाषा-शैली पर 'प्रिय-प्रवास' का प्रभाव है।[1] 'भावों को प्रभावोत्पादक बनाने और उनकी प्रेषणीयता की वृद्धि के लिए समास, सन्धि और विशेषण पदों का प्रयोग बहुलता से किया है। रस-विदर्धन, रस-परिपाक और रसास्वादन कराने की क्षमता इस काव्य की शैलीगत विशेषता है। यद्यपि कवि ने संस्कृत के समासान्त पदों का प्रयोग खुलकर किया है, परन्तु उच्चारण-संगति और ध्वनि अक्षुण्ण रूप में विद्यमान है। संस्कृत-गर्भित पदों के रहने पर भी कृत्रिमता नहीं आने पाई है। यद्यपि आद्योपांत काव्य में संस्कृत के क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग किया है, तो भी पद-लालित्य रहने से काव्य का माधुर्य विद्यमान है। क्रिया पदों में भी अधिकांश क्रियाएं संस्कृत की ज्यों की त्यों रख दी गई है, जिससे जहाँ-तहाँ विरूपता-सी प्रतीत होती है।[2] डा० शास्त्री के इस कथन से हम सहमत नहीं हो सकते, क्योंकि कृत्रिमता, क्लिष्ट व अपरिचित शब्द प्रयोगों के रहने पर भी काव्य भाषा सरल नहीं हो सकती, इनकी उपस्थिति से काव्य की भाषा दुरुह या कृत्रिम होती जाती है। काव्य में माधुर्य आ सकता है, सरलता नहीं। अलंकार प्रधान भाषा-शैली एवं पूर्णतः संस्कृत समास वृत्तों के द्वारा महाकाव्य में हरिओध जी की शैली का सफल अनुकरण किये जाने पर भी विशाल मात्रा में अपरिचित शब्द प्रयोग के कारण सामान्यतः रसानुभूति प्राप्त करने में कठिनाई रहती है।

इससे विपरीत कवि मूलदास के 'वीरायण' महाकाव्य में भाषा की सरलता कहीं-कहीं उस कोटि तक पहुँच जाती है कि भाषा में महाकाव्योचित गरिमा और गहराई न रहकर ग्रामीणता आ जाती है। तुलसीदास की अवधी का अनुकरण इसमें किया गया है, लेकिन 'रामचरित मानस'-सी शुद्ध कलापूर्ण तथा व्यंजनात्मक भाषा का प्रयोग न होकर गुजराती, राजस्थानी, ब्रज और अवधी का मिश्रित रूप लक्षित होता है। सौराष्ट् के गांवों की बोली का प्रभाव

---

1. डा० लालताप्रसाद सक्सैना-हिन्दी महाकाव्यों में वैज्ञानिक तत्त्व, पृ० 98, 99.
2. डा० नेमिचन्द्र शास्त्री-हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन-भाग-2, पृ० 22.

भी यत्र-तत्र पाया जाता है। 'वर्धमान' महाकाव्य में संस्कृत-बहुला भाषा कवि का पांडित्य-प्रदर्शित करती है, तो 'वीरायण' की ब्रज-अवधी मिश्रित भाषा कवि का सामान्य जन-मानस तक पहुँचने का उद्देश्य प्रतिपादित करती है। भाषा में मिठास भी है तथा वर्णनों की प्रेक्षणीयता से भाषा को काफी रोचक बनाया गया है। कहीं-कहीं भाषा में गद्यात्मकता का रूप भी दिखाई पड़ता है-जैसे 'सन्ध्या प्रतिक्रमण भी करना, वैरभाव तज क्षमा उबारना।[1] लेकिन इससे कहीं भावों में आघात नहीं पहुँचता। मुहावरों, सामान्य दृष्टान्तों, सूक्तियों से भी इस जैन महाकाव्य में भाषा की दमक बढ़ाई गई है, यथा-वृथा न गाल फूलाऊँ ही। 'ऐसे अनेक मुहावरे पाये जाते हैं। 'जितना ज्यादा होता बन्धी, उतना बनाता यह स्वच्छन्दी', 'पर पीड़न सम पाप नहीं है।' 'जि सद्ग्यान तय ही निरर्थक, बालू दिवाल नाहिं जिमि सार्थक। 'पारसमनि के परस, कनक तुरत जैने।[2] 'कान्ताकमल प्रिय सुत जाया, बिना पात्र सद्विद्या पाया। पागल, रंक, नीच, नरनाहा, बने मदोन्मत्त पूछें कहा।।' ऐसी सूक्तियों से एक ओर जहां कवि का लोकजीवन सम्बंधी मनोवैज्ञानिक ज्ञान प्रतीत होता है, वहाँ दूसरी ओर भाषा शैली में स्वाभाविक सुंदरता आ जाती है। डा॰ अंबाशंकर नागर 'वीरायण' की भाषा शैली के विषय में लिखते हैं-गुजरात के वर्तमान हिन्दी सेवियों में 'वीरायण' महाकाव्य के कर्ता मूलदास का नाम उल्लेखनीय है। अवधी में रचित 'वीरायण' महाकाव्य की भाषा-शैली की सुंदरता देखिए-

नील कंज सम सुहत शरीरा, नख-दुति मानहु उज्जवल हीरा।
भरित कपोल गोल अरुणा रे, कंठ सुललित कंबु अनुसारे।।
पूर्ण चन्द्र आनन छवि छाये, देखत काम कोटि लजवाये।
ध्वज अंकुशल धनुपद गय रेखा, नाभि-भंवर जन गंभीर देखा।
रानी अनुज्ञा किंकर पाई, प्रभुदित वदन सुनाई बधाई।।[3]

'वीरायण' की भाषा का माधुर्य निम्नलिखित पंक्तियों में भी द्रष्टव्य है-

विश्व विजय वीरायण महिमा, सकल सुलभ फलकी है सीमा।
सूत्राधार शिरोमणी भाषा, लिखा वीर प्रभु का इतिहासा।।
सुगमय है शैली इन केरी, कहत सुनत समुझत नहीं देरी।
चौपाई चारी फल दाता, सरल सोरठा कछु सोहाता।। 1-12.

इस आधुनिक हिन्दी जैन महाकाव्य की भाषा-शैली में माधुर्य व प्रसाद

1. वीरायण-सर्ग-1-21.
2. वीरायण-सर्ग-3-83.
3. डा॰ अम्बाशंकर नागर-गुजरात के हिन्दी गौरव ग्रन्थ, पृ॰ 14.

गुण प्रायः सर्वत्र पाया जाता है। वीर रस के वर्णनों में भावानुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है। कवि ने यत्र-तत्र ध्वन्यात्मक शब्दाबली का प्रयोग किया है। उदाहरण द्रष्टव्य है–

ढमकत ढोल त्र्यंबालु भेरि गहवर गाजहि।
तड़-तड़ निनाद के तुरीन के, ठवें ठवें नगारे वावहीं।।
धुनि शंख की सुनि जात ना, डर खात कायर भागहीं।
हाँ, हाँ, मरे, हाँ, हाँ मरे, बचहि कोऊ न पावे।।[1]

इसी प्रकार–

वज्र फुरन्दर कर कर में राजे, घर घरार घररर रव गावे।

महाकाव्य की भाषा-शैली की एक यह भी विशेषता है कि नाद-सौंदर्य के कारण भाषा में मिठास व स्वाभाविक का पुट मिल गया है-यथा-

गजदन्त से गजदन्त लागत, अनल कण दरसान यों।
घर्षत बादल प्रगट झरकत, झल झलक विद्युत ज्यों।।
मातंग गण्डस्थल फूटत, उछलत रुधिर प्रवाह क्यों?
महि फार डार बहार निकसन, अद्रि से जलधार ज्यों।[2]

इस हिन्दी जैन महाकाव्य पर 'मानस' कार की भाषा-शैली का प्रभाव है। किंतु कवि स्वरूप से न तो अवधी भाषा का समुचित प्रयोग कर सका है और न छन्द का ही।

काव्य की भाषा सर्वत्र दोषरहित या मधुर ही है, ऐसा भी नहीं है। शब्द-प्रयोगों में कवि ने बहुत सी तोड़-मरोड़ भी की है। जैसे–अवश्य के लिए अवसि, मरण का मर्णा, सयाना का श्याना आदि। गुजराती भाषा एवं ठेठ गाँव की बोली के शब्दों का भी अनेक बार प्रयोग किया है–यथा–'बाहर' के लिए 'बहार', वापरों, दिवाल, केम(क्यों?) लूछना, अहि तर्हि, गभरात, पीगले' आदि ऐसे बहुत-से शब्दों को देखा जा सकता है। न केवल शब्द-प्रयोग, बल्कि मुहावरे भी कहीं-कहीं गुजराती भाषा के मुहावरों से पूर्णतः प्रभावित है–जैसे–'अंगुली से नख अलग समाना' पर गुजराती के 'आंगलीथी नख वेगलो' का प्रभाव स्पष्ट है।

महाकाव्यों की भाषा शैली पर विचार लेने के पश्चात् अब उपलब्ध खंड काव्यों की भाषा-शैली पर विचार कर लेना चाहेंगे। जैन खण्ड काव्यों एवं मुक्तकों में सरल, सुबोध भाषा ही अधिकतर मिलती है।

श्री धन्यकुमार जैन 'सुधेश' के 'विराग' खण्डकाव्य में भावानुरूप भाषा

---

1. द्रष्टव्य : 'वीरायण', सर्ग-2, पृ० 100, 195.
2. वीरायण-सर्ग-2-197.

का प्रयोग हुआ है। शान्त रसपूर्ण इस खण्ड काव्य में भाषा का योगदान भी महत्वपूर्ण है। शुद्ध खड़ी बोली का प्रयोग प्रशंसनीय है। 'विराग' काव्य की सफलता उसकी हार्दिक अनुभूतियों के साथ सरल, भावपूर्ण व आकर्षक भाषा-शैली पर ही निर्भर करती है। कुमार वर्धमान को विवाह के लिए राजी करने के लिए माता त्रिशला ने अथक प्रयास किया, तथापि वर्धमान को अनुकूल बनाने में सफल न हो पाने पर माता त्रिशला के मुख से अत्यन्त मार्मिक शब्दों की व्यंजना कवि ने करवाई है, जो पाठक के हृदय को भी द्रवित कर देती है। उदाहरण के लिए–

यदि काश! कहीं विधि तुमको, अन्तस्तल माँ का देता।
मेरा ममत्व तो तुम पर, द्रुत विजय प्राप्त कर लेता।।[1]

इसी प्रकार कुमार की आध्यात्मिक, सामाजिक, अहिंसक विचारधारा को भी कवि ने सुबोध भाषा में प्रस्तुत किया है। भाषा के लाघव का परिचय दिया है–यथा–

बन गई सम्यक अब लो, मदिरा के प्याले पीना।
जीने के लिए न खाना, पर खाने को ही जीना।[2]

भाषा की व्यंगात्मक शक्ति का परिचय भी उपर्युक्त दृष्टान्त में प्राप्त होता है। प्रश्नात्मक भाषा-शैली में विचारों की सरलता द्रष्टव्य है–

इस चिर अशांति का जग से, किस दिन विलोप अब होगा?
निर्दोष मूक इन पशुओं को अभय प्राप्त कब होगा?[3]

नारी सौंदर्य के वर्णन में भाषा की कोमलता सराहनीय है–

अवगुंठन तब हट जाने,
से स्वर्ण-हार यों चमके
ज्यों पावस ऋतु के श्यामल
मेघों में विद्युत दमके।

तब महिषी देख रही थी,
मोहक मुख मंजु मुकुर में,
पीछे से देख छटा से,
नृप मुदित हुए निज उर में।

कहीं-कहीं सरल भाषा भी कितनी हृदय ग्राह्य तथा बिम्ब प्रस्तुत करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है–कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

1. देखिए-विराग-सर्ग-1, पृ० 23.
2. देखिए-विराग-सर्ग-3, पृ० 39.
3. द्रष्टव्य-धन्यकुमार जैन-'विराग' सर्ग-3, पृ० 34.

विटपों ने सादर श्रद्धा,
से शीश झुकाया हिलकर,
सुमनों ने मोद जताया,
सम्पूर्ण रूप से खिल कर।

विटपों द्वारा श्रद्धा से शीश झुकाने की क्रिया में एक जीवन्त बिम्ब उभर कर हमारे सामने आ जाता है।

समानता और असमानता पर गहरा व्यंग्य किया गया है। सरल भाषा में इतना तीखा व्यंग्य केवल सफल कवि ही कर सकता है। निम्नोक्त पंक्तियों में व्यंग्य, आक्रोश और तीखापन देखिए–

निर्धन और धनी में, है नर्क-स्वर्ग की दूरी,
गृह एक अभावों का ही, निधि भरी एक के पूरी।
नर जो पशु मुण्ड चढ़ाने, देवी के पास शरण में
कहते, यह शक्ति सहायक, इच्छित वरदान ग्रहण में।

डॉ॰ नेमिचन्द्र जैन के शब्दों में 'विराग' खण्ड काव्य की भाषा सरल, सुबोध और भावानुकूल व शैली रोचक, तर्कपूर्ण एवं ओजयुक्त[1] है। कहीं-कहीं व्याकरण दोष भी रह गया है। जैसे–दूसरे सर्ग में 'निर्बल' के स्थान 'निबल' तथा त्रिशला के लिए 'जाना' है पुल्लिंग-प्रयोग शब्द को तोड़ने-मरोड़ने की वृत्ति कही जायेगी।

'विराग' काव्य की तरह अन्य खंड काव्य 'राजुल' की भाषा में भी हमें माधुर्य गुण पर्याप्त रूप से प्राप्त होता है। कवि बालचन्द्र जी ने भावों के अनुकूल आकर्षक भाषा शैली से इस काव्य को मंडित किया है। भाषा की मार्मिकता राजुलमती के इस कथन में देखिए–

वे मेरे फिर मिले मुझे, खोजूंगी कण-कण में।

\+ + +

तुमने कब मुझको पहिचाना!
देखा मुझको बाहर से ही, मेरे अन्तर को कब जाना।

\+ + +

नारी ऐसी भी क्या हीन हुई!
तन की कोमलता ही लेकर नर के सम्मुख दीन हुई।

'राजुल' काव्य में राजुल की संपूर्ण मनोदशा के मार्मिक वर्णन के समय कवि ने योग्य भाषा शैली का प्रयोग किया है–राजुल की चाह, उमंग, ग्लानि,

1. डा॰ नेमिचन्द्र जैन : हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन-द्वितीय भाग-पृ॰ 33.

असमर्थता, नैराश्य, दृढ़ता एवं त्याग के मनोभावों को कवि ने शब्द-चित्रों में अंकित किया है—एक चित्र देखिए—

कल-कल छल-छल सरिता के स्वर, संकेत शब्द थे बोल रहे।
आँखों में पहले तो छाये, धीरे-से उर में लीन हुए।

नेमिचन्द्र जी के विचार से—'भाव और भाषा की दृष्टि से यह काव्य साधारण प्रतीत होता है। लाक्षणिकता और मूर्तिमत्ता का भाषा में पूर्णतया अभाव है। हाँ, भावों की खोज अवश्य गहरी है।[1]

'राजुल' व 'विराग' खंड काव्य में भाषा का माधुर्य एवं भावानुरूप स्वरूप लक्षित होता है, तो अन्य आधुनिक हिन्दी जैन खंड काव्यों में भाषा की सरलता या अत्यन्त सीधा-सादा रूप भी दिखाई पड़ता है, जैसे—भंवर लाल शेठी के 'अंजनापवनंजय', भगवत स्वरूप जैन के 'सत्य-अहिंसा का खून' काव्य में। 'अंजना-पवनंजय' काव्य में कवि ने कला पक्ष को कमजोर कर दिया है। भाषा-शैली को मार्मिक और अलंकारों से सुसज्ज करने की ओर प्राय: कवि का ध्यान कम गया है। अत: गद्य का सा रूप भी कहीं-कहीं आ जाता है। वैसे जैन-समाज में इसके प्रचार-प्रसार हेतु कवि ने भाषा का स्वरूप सरल ही चाहा है। कहीं-कहीं काव्य-पंक्तियों में बार-बार क्रिया का प्रयोग भी किया गया है, यथा—

मन था या अनघड़ पत्थर था, लोहा था या बज्जर था।
प्रेम-भिखारिन परम-सुंदरी, नारी को जहाँ न स्थल था।

यत्र-तत्र भाषा-शैली में रोचकता भी छाई है जैसे—

आनंद-मंगल छाया जग में, हुआ प्रशंसित शील-सिंगार।
सती अंजना का अति सुंदर, छाया जग में जय-जयकार॥

'सत्य-अहिंसा का खून' जैसे छोटे खण्ड काव्य में भाषा की स्वाभाविकता विशेष लक्षित होती है। बोल-चाल के उर्दू शब्दों का प्रयोग कवि ने त्याज्य नहीं माना है जैसे—

अजब-गजब, मुहताज, शोहरत, बयान, माज़रा, अक्ल, गोया, खामोश आदि। वैसे ही संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग भी कवि ने किया है, उदाहरण के लिए—क्षेत्र, कुशल, स्वस्तिका, पर्यक, स्फटिक, स्वस्तिमती, श्रीमुख आदि।

'स्व० भगवत जी की यह रचना यद्यपि भाषा और साहित्य की दृष्टि से उनकी प्रारंभिक और शैशवावस्था की अनुमान की जाती है, किन्तु भावों की

1. डा० नेमिचन्द्र जैन : हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन-द्वितीय भाग, पृ० 28.

दृष्टि से वह आज भी उतनी ही नयी, उपयोगी और प्रेरणादायक है, जितनी कभी अतीत काल में रही होगी।[1] काव्य-भाषा में मुहावरों का प्रयोग भी यत्र-तत्र हुआ है, जिससे शैली में जीवन्तता आ गई है जैसे-'होता दगा किसका सगा', 'विनाश के समय विपरीत बुद्धि' आदि।

उपर्युक्त उपदेशात्मक काव्य में कला पक्ष की बारीकियाँ प्राय: कम दीख पड़ती है। क्योंकि कवि का प्रमुख उद्देश्य आंतरिक अनुभूति के कलात्मक चित्रण का न होकर जैन दर्शन के सामान्य तत्वों व महत्व को प्रतिष्ठित करने का प्रतीत होता है और सरल व सुबोध भाषा-शैली के द्वारा अपने उद्देश्य की परिपूर्ति चाहते हैं।

आधुनिक हिन्दी-जैन मुक्तक काव्य रचनाओं में श्रीमती रमारानी जैन द्वारा संपादित 'आधुनिक जैन कवि' में विविध धाराओं की भिन्न-भिन्न कविताएँ संकलित हैं, जिनकी भाषा-शैली विषयानुसार भिन्न-भिन्न है। संकलन के अतिरिक्त महत्वपूर्ण जैन पत्रिका 'अनेकान्त' में भी हिन्दी-जैन कविताएँ प्रकाशित होती रही हैं। आधुनिक युग के प्रारंभिक काल के कवियों की भाषा प्राय: सरल है। आध्यात्मिक हेतु-प्रधान कविता होने से भाषा में चित्रात्मकता, प्रतीकात्मकता तथा शैली में वक्रता नहीं मिलती। किंतु 'सीकर' 'हिल्लोल' व उर्मिगीतों में गीतकारों की स्वानुभूतियों का मार्मिक चित्रण होने से भाषा में माधुर्य, कोमलता व तीव्रता प्राप्त होती है। 'युग-प्रवाह' के कवियों की भाषा प्रगतिवादी कवियों की भांति सुधार व सहानुभूति तथा क्रान्ति की भावना से युक्त है। अत: उनकी शैली में कहीं-कहीं व्यंग्य, तीखापन, करुणा व वेदना का स्वर विशेष रूप से उभरा है। शैली में प्रसादिकता व ओजस्विता दोनों गुणों का निर्वाह हुआ है। तीनों प्रकार के काव्यों की भाषा-शैलियों के कुछेक दृष्टान्त देखिए-

(1) 'युगवीर' के काव्य 'मीन-संवाद' में 'मीन' के प्रतीक द्वारा मनुष्य की हिंसा-वृत्ति व कठोर-कार्य की भर्त्सना की गई है-

रक्षा करे वीर दुर्बलों की, नि:शस्त्र पर शस्त्र नहीं उठाते,
बातें सभी झूठ लगी मुझे थी, विरुद्ध ये दृश्य यहाँ दिखाये।

इसलिए चाहिए कि-

'है कोई अवतार नया,
महावीर के सदृश्य जगत में, फैलाये सर्वत्र दया।

(अज-सम्बोधन)

1. श्री कपूरचन्द्र जैन : 'इन्दु'-काव्य की भूमिका, पृ० 7.

अत: 'सफल जन्म' में भगवत् जी मानव-जीवन-साफल्य का सुन्दर भाषा में वर्णन करते हैं–

दो दीन का जीवन-मेल, फिर खंडहर-सी नीरवता।
यश-अपयश बस दो ही, बाकी सारा सपना है।।
दो पुण्य-पाप रेखाएँ, दोनों ही जग की दासी।
है एक मृत्यु-सी धातक, दूसरी सुहृद माता-सी।
जो ग्रहण पुण्य को करता, मणिमाला उसके पड़ती।
अपनाता जो पापों को, उसके गर्दन में फांसी।

\+ + + + + + +

वह पराक्रमी मानव है, जो 'कल' को 'आज' बनाकर,
क्षण भंगुर विश्व-सदन में, करता निज जन्म सफल है।

भाषा की सरलता उपर्युक्त उदाहरण में स्पष्ट लक्षित है।

(2) सुन्दर भावात्मक, लय प्रधान भाषा शैली के उदाहरण–

'अछूता हार' तथा 'बंदी का विनोद' मुक्तक रचनाओं में (गद्य काव्य) जगन्नाथ मिश्र ने आशा-निराशा, वेदना, चाह आदि भावों को कोमल भाषा में व्यक्त किया है–

पूर्व दिशा का आकाश धनमालाओं से आच्छादित हो गया। नाविक-गण अपनी-अपनी नौका किनारे बांध गिरि-कंदराओं में छिप गये।

मैं अकेला हार गूंथने में निमग्न था, पर्वत-श्रृंग तूफान के वेग से हिल गया। धूल से मेरी आँखें भर गईं। सारे फूल प्रबल झकोरों में पड़कर तितर-बितर हो गये।

मेरे पास साल ले जाने के लिए केवल अधूरा हार बचा।[1]

'बंदी का विनोद' काव्य की कुछेक पंक्तियों की भाषा देखिए–

'मेरी पि,वपंची मधुर गीत गाती नहीं। उसकी झंकृति में वेदना भरी है। प्रकृति की नीरव-रंग स्थली में कभी बैठकर, तारों को छेड़ता हूँ, हृदय-पटल पर शीतल आँसू की बूँदे ढुलक पड़ती हैं। मैं तत्काल ही वीणा रख देता हूँ।

'तब' काव्य में केदारनाथ मिश्र ने हल्के रहस्यवाद के साथ ज्ञान-प्रकाश प्राप्त करने की उत्कण्ठा उसी भावानुकूल भाषा में व्यक्त की है–

'भेजूंगा तब मौन निमंत्रण हे अनन्त! तू आ जाना,
मेरे उर में अपना अविनश्वर प्रकाश फैला जाना।[2]

---

1. श्रीमती रमा जैन संपादित–'आधुनिक जैन कवि' के अन्तर्गत 'अधूरा हार', पृ॰ 136.
2. अनेकान्त, वर्ष-1, अंक-3, पृ॰ 152.

(3) प्रगतिवादी विचारधारा से प्रभावित काव्यों की भाषा-शैली विचार-प्रेरक व गतिशील रही है। भगवत जैन के 'नर-कंकाल' काव्य की ऐसी भाषा-शैली देखिए–

घने अभावों और व्यथाओं में पलकर जो बड़ा हुआ,
प्रकृति जननी की कृपा-कोर से अपने पैरों खड़ा हुआ।
सित भविष्य के मधु सपनों में, भूला जो दुःख की गुरुता।
रुचिर कल्पनाओं की मन में जोड़ा करता जो कविता।
इन्द्रधनुष जिसकी अभिलाषा, वर्तमान जिसका रोख,
युग-सी घड़ियां बिता-बिता, जो खोज रहा अपना वैभव।
तिरस्कार-भोजन, प्रहार-उपहार, भूमि जिसकी शय्या।
धनाधिकों के दया-सलिल में खेता जो जीवन-नैया।'

भवानी दत्त शर्मा की 'मेरी जीवन साध' कविता में शब्द के पुनरावर्तन से भाषा में प्रवाह मिलता है–जैसे–

नर हित में रत रहूँ निरन्तर, मनुज-मनुज में करु न अन्तर,
नस-नस में बह चले देश की प्रेम धार निर्बाध मेरी जीवन-साध।

ईश्वरचन्द्र की 'अर्चना' में उत्कट प्रभु-भक्ति के भावों के साथ कलात्मक भाषा की छटा भी निखर आई है–

और वीतराग पुनीत
देव! तुमसे ही अलंकृत मुक्ति का संगीत।
क्षमा-निशि के गहन-तम को,
भेद ज्योतिर्मान।
लोल लहरों पर लिखे निर्वाण के मृदु गीत।
ओ वीतराग पुनीत।[1]

इसी प्रकार 'छलना' काव्य में कवि गणपति गोयलीय ने हृदयोर्मिका सरल भाषा में सुन्दर अंकन किया है–

जब यौवन की प्रथम उषा में, मैंने आँखें खोलीं,
भव-सागर के पार पूर्ति है, हंस आशाएं बोली।
सोचा क्यों न चलूं उस पार,
बैठा तरि पर ले पतवार,
में था अनुभव हीन युवा, कैसे पतवार चलाता,
ऐसा नाविक मिला न जो, उस पार मुझे पहुँचाता।

1. आधुनिक जैन कवि, पृ० 227.

वे तब स्वर्ग-ज्योति सी आई,
मुझे देखते ही मुसकाई।

भगवन्त गणपति की 'अतीत गीत' में भाव भाषा व कला का सुन्दर समन्वय द्रष्टव्य है–

अहे वीणा के टूटे तार!
तूं अनन्त में लीन हो रहा और सो रहा मौन;
रागिनियाँ सुनाती तो हैं, पर तुझे जगाये कौन?
थका संसार पुकार-पुकार, अहे वीणा के टूटे तार!

युगवीर जी की कविता 'मेरी चाह' में भाव व भाषा का माधुर्य द्रष्टव्य है–

घर-घर चर्चा रहे धर्म की,
दुष्कृत दुष्कर हो जावें,
ज्ञान चरित उन्नत कर अपना,
मनुज जन्म फल सब पावें।

रोग-मरी दुर्भिक्ष न फेले,
प्रजा शान्ति से जिया करे
परम अहिंसा धर्म जगत में,
फैल सर्वहित किया करे।

इसी प्रकार परमेष्ठिदास की 'महावीर संदेश' में भी ऐसे ही भाव के साथ भाषा का प्रवाह मौजूद है–

प्रेम भाव जग में फैला दो, करो सत्य का नित्य व्यवहार,
दुराभिमान को त्याग अहिंसक, बनो यही जीवन का सार।
धर्म पतित-पावन है अपना, निशदिन ऐसा गाते हो,
किन्तु बड़ा आश्चर्य आप फिर क्यों इतना सकुचाते हो।

गणपति जी की 'अनुरोध' कविता की भाषा-शैली पर माखनलाल चतुर्वेदी की कविता 'फूल की चाह' का स्पष्ट प्रभाव लक्षित है–

जब प्रभात में रवि किरणें आकर मुझको विसाकें दें,
मेरी क्षुद्र आखों पर अलकगण मायावरण गिरा दें,
पवन प्रवाह थिरकता हंसना-बढ़ना मुझको सिखा दें,
भ्रमरावलियाँ गुण गा-गाकर मानिनी मुझे बना दें।
तब होगा प्रारंभ पतन का मेरे वह निश्चय है,
उस यौवन में आत्म-विस्मरण हो जाने का भय है,

तब हाँ, तब बनपाल! शीघ्र ही मुझको चुन ले जाना,
चढ़ा पार्श्व-अनुचर चरणों मे जीवन सफल बनाना।

कहीं-कहीं भाषा में मुहावरों के प्रयोग से जीवन्तता पैदा की गई है। जैसे-'वीरवाणी' काव्य में-

स्वार्थों पर जय पावे, मिथ्या की माँ मारी जावे,
सुख की घटा फिर थहरावे, ताप-कषाय पीठ दिखलाये,
दोष-दलिनी! प्राणी-समूह को कर दे अब निर्दोष।

ऐसे ही नरेन्द्रकुमार जैन की स्तुति परक कविता 'आया तुम्हारे द्वार भगवन्' कविता में भी भाषा की स्वाभाविकता सराहनीय है-

दो दिन की मेरी जिन्दगानी, दुनिया दुःख की निशानी,
जब आ जाये कालचक्र तब, उठ जाये सब डेरा रे।।

कहीं-कहीं मुक्तक काव्य-रचना पर राजस्थानी, गुजराती भाषा में शब्दों का प्रभाव भी दृष्टिगत होता है। जैसे-राजस्थानी जैन मुनि नेमिचन्द्र के स्तुति-परक पद में पाया जाता है-

पद्म प्रभु वासुपूज्य दोऊ राते वर्णे सोभे सोय।
चन्द्र प्रभु ने सुवधिनाथ उज्ज्वल वर्णे जिन विख्यात।।1।।
मल्लिनाथ ने पार्श्वनाथ, नीले वर्णे दोऊ हाथ।
मुनि सुव्रत ने नेमिनाथ, अंजन वर्णे दो साख्यात।।2।।
सोले कंचन वर्णा गात, चौबीस जिन प्रणमुं प्रभात।
'नेम' भणे पुनम परसाद, उदयापुर जिन किना याद।।3।।[1]

मुनि रूपचंद के 'अन्धा चांद' संग्रह की कविताओं में भाषा का अनवरत प्रवाह, विचारों की सशक्त अभिव्यक्ति तथा व्यंग्यात्मकता के साथ आधुनिक प्रतीक व व्यंगात्मक शैली का रूप प्राप्त होता है-जैसे-

चुराई हुई रोशनी से रोशन, चांद की दर्द-भरी चाल पर,
देखो तो सही ये सितारे कितने हंस रहे हैं।

\+ \+ \+

अब तो ऐसा लग रहा है, कि जो बाहर से जितना अधिक चमकता है,
वह भीतर उतना ही अधिक कालापन लिए हुए है।'[2]

इसी प्रकार कवि व्यंग्य में कहते हैं-

पता नहीं मानव की बुद्धि को क्या हो गया है,

1. मुनि नेमिचन्द्र जी-'नेमवाणी' संग्रह, पृ० 16.
2. मुनि रूपचन्द जी-अन्धा चांद, पृ० 3.

कि उसके हर एक कार्य में, सच्चाई कम है और नकल बाजी ज्यादा है।[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट विदित होता है कि–आधुनिक हिन्दी जैन काव्य की भाषा शैली में चाहे गहराई, कलात्मकता, तीव्रता, प्रतीक विधान आदि विशेषताएँ कम मात्रा में रही हैं, लेकिन सरलता, प्रवाह, सुबोधता एवं माधुर्य सर्वत्र पाया जाता है। पूरे काव्य साहित्य में प्रसाद गुण का महत्व दिखाई पड़ता है और यही काव्य रचयिताओं का प्रमुख उद्देश्य रहा है। सुगम व रोचक भाषा शैली के द्वारा ही अपने हृदय के भावों को व्यक्त करने की चेष्टा इन कवियों ने की है।

भाषा-शैली के उपरांत भाव को तीव्र करने वाले तथा भाषा को चमकीली व अलंकृत करने वाले अलंकारों की महत्ता व हिन्दी जैन काव्य में इसके स्थान पर संक्षेप में विचार किया जायेगा।

अलंकार :

किसी भी काव्य को ललित स्वरूप प्रदान करने में अलंकारों का योगदान निर्विवाद है। भाषा में चमत्कार, शैली में सुंदरता व भावों में उत्कर्ष व स्पष्टता लाने के लिए अलंकार-योजना के बिना बाह्य-सौंदर्य सहज नहीं होता-फिर अलंकार अर्थमूलक हो या शब्दमूलक, संस्कृत साहित्य से प्रभावित हों या पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित नूतन प्रकृति के हों। महाकाव्य के विशद् वर्णन व चरित्र-चित्रण की विशेषताएँ स्पष्ट करने में अलंकार अनेक रूप में सहायक होते हैं। काव्य की शोभा बढ़ाने का ही केवल कार्य नहीं करते, अपितु शिल्प व रचना सौन्दर्य की सूक्ष्मता अभिव्यक्त कर भावों की प्रेषणीयता बढ़ाने का कार्य भी अलंकार करते हैं। प्राचीन संस्कृत-काव्य शास्त्रकारों से लेकर आधुनिक पौर्वात्य और पाश्चात्य विद्वानों ने समीचीन व शिष्ट अलंकारों की उपयोगिता को एक कण्ठ से स्वीकार किया है। संस्कृत में तो आचार्यों का एक वर्ग ही ऐसा है, जो अलंकार को काव्य-धर्म मानते हैं। आचार्य दण्डी अलंकारों को काव्य धर्म समझ इनसे काव्य शोभित होना स्वीकारते हैं। (काव्य-शोभा करात् धर्मानलंकारान् प्रवक्षते-काव्यादर्श) आचार्य वामन भी प्रकारान्त से यही बात मानते हैं कि अलंकार सौन्दर्य का पर्याय होता है। (काव्यं ग्राह्यं अलंकारात्' तथा 'सौन्दर्य अलंकारः' काव्यालंकार सूत्र।) चन्द्रोलोककार जयदेव तो अलंकारविहीन काव्य को काव्य ही नहीं स्वीकारते। न केवल अलंकारवादियों ने बल्कि रसवादी आचार्यों ने भी रस के प्रतिपादन के लिए अलंकारों का

1. मुनि रूपचन्द जी-अन्धा चांद, पृ० 30.

पर्याप्त महत्व स्वीकार किया है। 'काव्य-प्रकाश'कार मम्मट का 'अनलंकृति पुनः क्वापि' विधान इसी बात का द्योतक है। हिन्दी साहित्य में भी अलंकारों की परम्परा अक्षुण्ण रही है। संस्कृत काव्य ग्रंथों व शास्त्रों से प्रभावित अलंकारों का प्रवाह व प्रभाव हिन्दी रीतिकालीन साहित्य में देखा जा सकता है। आधुनिक काल के काव्य-साहित्य पर भी अलंकारों का प्रभाव दृष्टिगत होता है। इसीलिए तो छायावाद के प्रसिद्ध कवि सुमित्रानंदन पंत अलंकारों के अपरिहार्य महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं—अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं, वरन् भाव अभिव्यक्ति के भी विशेष द्वार हैं। भाषा की पुष्टि के लिए, राग की पूर्णता के लिए आवश्यक उपादान हैं। वे वाणी के आचार, व्यवहार, रीति-नीति हैं, पृथक स्थितियों में पृथक स्वरूप, भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के भिन्न-भिन्न चित्र हैं।[1]

अलंकारों के अपूर्व प्रयोग के कारण रीतिकाल को तो 'कला-काल' की संज्ञा भी प्राप्त है। रीतिकालीन कवि-आचार्य केशवदास की अलंकारों को अति महत्व देती निम्न उक्ति तो अत्यन्त प्रसिद्ध है—

जदपि सुजाति सुलच्छनि सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषन बिनु न बिराजई, कविता वनिता मित्त॥

संपूर्ण रीतिकाल में अलंकारों का महत्व स्वीकृत हुआ है। अलंकारों की जैन काव्य में स्थिति के संदर्भ में डा॰ प्रेमसागर ने जो विचार मध्यकालीन हिन्दी जैन काव्यों के सम्बंध में किये हैं, वे आधुनिक हिन्दी जैन काव्यों के लिए भी उतने ही सही हैं—'जैन हिन्दी कवियों की रचनाओं में अलंकार स्वभावतः आये हैं। अर्थात् अलंकारों को बलात् लाने का प्रयास नहीं किया गया है। जैन कवियों ने भाव को ही प्रधानता दी है। भावगत सौंदर्य को अक्षुण्ण रखते हुए यदि अलंकार आते भी हैं, तो उनसे कविता बोझिल नहीं हो जाती। जैन कवियों की कविताओं से प्रमाणित है कि उनमें अलंकारों का प्रयोग तो हुआ है, किन्तु उनको प्रमुखता कभी नहीं दी गई। वे सदैव मूलभाव की अभिव्यक्ति में सहायक-भर प्रमाणित हुए हैं। जैन कवियों का अनुप्रास पर अधिकार था।[2]

हिन्दी जैन काव्यों में अलंकार-प्रयोग के चातुर्य पर प्रकाश डालते हुए नेमिचन्द्र जी लिखते हैं—"हिन्दी-जैन-कवियों की कविता-कामिनी अनाड़ी राजकुलांगना के समान न तो अधिक अलंकारों के बोझ से दबी है और न ग्राम्य

1. पंत-पल्लव प्रवेश, पृ॰ 22.
2. डा॰ प्रेमसागर जैन-हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि, पृ॰ 445-446.

बाला के समान निराभरणा ही है। इसमें नागरिक-रमणियों के समान सुन्दर और उपयुक्त अलंकारों का समावेश किया गया है।[1]

आधुनिक हिन्दी जैन कविता में अलंकारों का सन्निवेश सहज और अनुप्रास ही है। जैन कवि न जीवन में अलंकरण को महत्व देते हैं और न काव्य में ही। किन्तु प्रकृत रूप में अलंकरण जैसे जीवन को रम्य बना देता है, वैसे ही काव्य भी रमणीय हो जाता है। आधुनिक हिन्दी जैन कविता में अलंकारों की अधिक संभावना महाकाव्य में हो सकती है। मुक्तक काव्य तो प्रायः नीति, उपदेश तथा चरित्र-निर्माण की दीक्षा देने वाले अनलंकृत ही हैं। महाकाव्य के उपरान्त खण्डकाव्य में भी हम इन्हें देख सकते हैं। सर्वप्रथम हम अनूप शर्मा के 'वर्धमान' काव्य में प्रयुक्त अलंकारों का विवेचन करेंगे।

कवि अनूप शर्मा ने 'वर्धमान' महाकाव्य में दोनों प्रकार के अलंकारों का प्रयोग किया है। शब्दालंकार में श्लेष, अनुप्रास व यमक तथा अर्थालंकार में उपमा, रूपक व उत्प्रेक्षा कवि के अत्यंत प्रिय अलंकार रहे हैं। 'वर्धमान' पर संस्कृत काव्य-ग्रंथों का गहरा प्रभाव अलंकार-योजना में भी देखा जा सकता है। फिर भी कहीं-कहीं नूतन उर्वर कल्पना-शक्ति का परिचय मिलता है।' महाकाव्यों के अनुरूप 'वर्धमान' में वर्णन-सौंदर्य, पद-लालित्य, अर्थ-गांभीर्य, रस-निर्झर और काव्य-कौशल सभी कुछ है। पद-पद पर रूपकों, उपमाओं और अन्य अलंकारों की छटा दर्शनीय है। इतना श्रमसाध्य कौशल होने पर भी संगति और प्रवाह की रक्षा का प्रयत्न हैं। भगवान महावीर के पिता राजा सिद्धार्थ की राजसभा सरस्वती का प्रतीक है।

सुवर्ण-वर्णा, ललिता, मनोहरा, सभा लसी यों पद-न्यास-शालिनी।
विरंचि सिद्धार्थ-युता लखी गई, शरीरिणी ज्यों अपरा सरस्वती।।[2]

उपर्युक्त अलंकार में श्लेष के बल पर सौंदर्य उत्पन्न किया गया है। संस्कृत परंपरा की चमत्कारमय श्लेष-यमक योजना का मोह कवि से नहीं छूट पाया है। इसी कारण 'वर्धमान' रसवादी काव्य की अपेक्षा चमत्कारवादी विशेष बन गया है। लेकिन कवि ने जहाँ सादृश्यमूलक अलंकारों की योजना की है, वहाँ काव्य सुन्दर बन पड़ा है। त्रिशाल के सौंदर्य-वर्णन में कवि ने रूपक द्वारा चित्र प्रस्तुत किया है–

सरोज-सा वस्त्र, सुनेत्र मीन-से,
सिवार-से केश, सुकंठ कम्बु-सा।

1. डा० नेमिचन्द्र जैन-हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन, पृ० 163.
2. श्रीयुत लक्ष्मीचन्द्र जैन-'वर्धमान' आमुख, पृ० 4.

उरोज ज्यों कोक सुनाभि भौर-सी,
तरंगिता थी त्रिशला तरंगिणी।[1]

उसी प्रकार त्रिशला कल्प-वल्लरी है

सुपुष्यिता दन्त प्रभा प्रभाव से, नृपालिका पल्लविता सुपाणि से।
सुकेशिनी सेचक-भृंग-युथ से, अकल्प थी शोभित कल्प वल्लरी।।[2]

कवि की अधिक ऊर्वर कल्पना शक्ति से कहीं-कहीं रूपक हास्यात्मक या ऊहात्मक भी बन जाते हैं। त्रिशला की अंगुली को महाभारत की कथा बना देने में जहाँ एक ओर अत्युक्ति प्रतीत होती है, वहाँ दूसरी ओर एक अंगुली के चिह्नों से महाभारत की कथा के भागों की साम्यता विचित्र भी लगती है, जैसे—

नलोपमा, अक्षवती, स-ऊर्म्मिका, मनोहरा सुंदर पर्व-संकुला।
नरेन्द्र जाया कर अंगुली लसी, कथा महाभारत के समान ही।।60।102

त्रिशला की मधुर वाणी सुनकर कोयल वन में रोती-रोती फिर रही है और वीणा धराशायी हो गई-दोनों का सौन्दर्य व गर्व चूर-चूर हो गया—

सुनि सुधामंडित माधुरी घुरी अभी सुवाणी त्रिशला मुखाब्ज से,
पिकी कुछ रोदन में रता हुई, प्रलम्ब भूमें परिवायिनी हुई बनी।।[3]

यहाँ कवि ने त्रिशला की मधुर वाणी की प्रशंसा अप्रस्तुत अलंकार द्वारा सुंदर रूप से की है। राजा सब कुछ देने वाले माने जाते हैं लेकिन लोगों को यह देखकर निराशा होती थी कि उन्होंने कभी अरि को पीठ और पर-स्त्री को वक्षदान नहीं दिया। उसी प्रकार से सर्वज्ञ भी नहीं थे, क्योंकि उन्होंने अभ्यागत अशरण, अभागे-अनाथ को कभी कुछ नहीं देने का 'नकार' नहीं जाना,

परन्तु जो सर्वद सर्वदा उन्हें, विचारते थे वह यों निराश थे।
न पीठ देखी अरि-वृन्द ने कभी, न वक्ष देखा परनारि ने तथा।
तथेव सर्वज्ञ न भूमिपाल थे, न जानते थे इतना कदापि वे।
नकार होती किस भांति की अहो, अनाथ को, आश्रित को, अभागे को।।[4]

'वर्धमान' के अलंकारों में कहीं नये और सुन्दर उपमान भी दिखाई पड़ते हैं, जैसे नूपुरों को सरोष, भूभंगिमा की उपमा देना—

---

1. अनूप शर्मा—'वर्धमान' सर्ग-3, पृ॰ 81.
2. वही-सर्ग-1, पृ॰ 50-59.
3. अनूप शर्मा-सर्ग-1, पृ॰ 60-105.
4. अनूप शर्मा—'वर्धमान' सर्ग-1, पृ॰ 44-36-37.

नितम्ब संपीडित पाद-युग्म में, मनोहरा भेचक नूपुरावली।
विराजिता थी त्रिशला पदाश्त में, सरोष ध्रकी जिस भांति भंगिमा।

इसी प्रकार त्रिशला के नितम्बों को चन्द्रकान्त मणि के शिलाक्ष्य से, कर्णों की, नेत्रों की शाण प्रस्तर से उपमा देने में भी कवि की कल्पना-शक्ति की रुचिरता का परिचय मिलता है। निम्नलिखित श्लेष में कवि ने राजा सिद्धार्थ और तालाब में साम्यता पैदा की है-

सदा द्विजावास तथैव निर्मल, विशाल थे जीवनधाम राज्य के,
तड़ाग-से शोभित पद्मयुक्त वे, नरेश तृष्णा हरते अधीन की।[1]

कवि को श्लेष, उपमा व रूपक अलंकार विशेष प्रिय है। भारत वर्ष की शोभा का कवि सुंदर आलंकारिक शैली में वर्णन करते हैं-

सुकेश-सी कानन श्रेणियाँ जहाँ, प्रलब्ध माला भाय अर्क जन्हुजा,
कटिस्थ विन्धादि नितम्ब वेश-सा, लसा पद-क्षालम शील सिन्धुता।।[2]

'वर्द्धमान' में प्रयुक्त चमत्कार प्रधान श्लेष के बार-बार प्रयोग पर अपना अभिमत देते हुए डा॰ विश्वंभर नाथ उपाध्याय जी लिखते हैं कि-"यह आश्चर्य का विषय है कि अनूप शर्मा इस परंपरा के दोषों से परिचित होते हुए भी इसी का अनुकरण करते रहे। 'प्रिय-प्रवास' में हरिऔध जी ने संस्कृत के उत्तरकालीन काव्यों के 'वस्तु-विधान' को अपनाकर भी श्लेष-यमक की परंपरा को पूर्णतः छोड़ दिया था। अनूप शर्मा इस चमत्कारवादी परंपरा को नहीं छोड़ सके।[3]

अलंकार-निर्देशन के लिए अर्थावृत्ति, शब्दावृत्ति और अनुप्रास आदि का भी 'वर्धमान' में यथोचित प्रयोग किया गया है-यथा-

अधोवस्त्रा, अभिता, अशंसिता, अशोच देहा, अमानिता।
अदर्शनीया, अनलंकृता जमा, अभागिनी भी सबला अमानुषी।।[4]

उसी प्रकार-

'तडाग थे स्वच्छ तडाग हो यथा, सरोज थे प्रफुल्ल सरोज हो यथा।
शशांक था मंजु शशांक हो यथा, प्रसन्नतापूर्ण शरत्वस्वभाव था।।

(140-4)

राजा सिद्धार्थ की हेमंत के साथ आलंकारिक शैली में कवि तुलना करते हैं-

1. अनूप शर्मा-वर्धमान-सर्ग-1, पृ॰ 47-48.
2. वही-वर्धमान-सर्ग-1, पृ॰ 37-11.
3. विश्वंभरनाथ उपाध्याय-अनूप शर्मा-कृतियों और कला, पृ॰ 153.
4. वर्धमान, पृ॰ 486-189.

भयन्द हेमन्त अलेप भूप की, सुदीर्ध हेमन्त निःशेष आयु थी।
सुतहय हेमन्त रवीय पार्थ के, विनष्ट हेमन्त नलेव शत्रु थे।। (45-48)

लेकिन इस प्रकार के वर्णन संस्कृत साहित्य में पुनः पुनः पाये जाते हैं। और इसमें बहुत-सी जगह पर खोजने पर अलंकार-साम्य भी मिल जाता है। संस्कृत-के बहुत से आलंकारिक छन्दों से प्रभावित होकर अनूप जी ने कहीं-कहीं भाव ग्रहण किया है, तो कहीं-कहीं शाब्दिक प्रभाव ग्रहण किया है। परम्परागत अलंकारों के अतिरिक्त कवि ने इस महाकाव्य में अपनी भाव मयी कल्पना में अनेक नये सुमन सजाये हैं। कहीं-कहीं शब्दों की कल्पना में अर्थ और मृदुता का इतना सुष्ठु रूप दिया है कि सैद्धांतिक परिभाषाएं और कल्पनाएँ काव्यमय हो गई हैं। जैसे—त्रिशला के स्वप्नों की परिभाषा और स्वप्न का सार किस तरह सजीव हो उठता है, इसका कवि ने सुन्दर वर्णन किया है—

निशिथ के बालक, स्वप्न नाम के प्रबुद्ध हो के त्रिशला हृदयाब्ज में मिलिन्द से गुंजनशील हो गये।[1]

उगा नहीं चन्द्र, सगूढ़ प्रेम है, न चांदनी केवल प्रेम भावना।
न रूक्ष है, उज्ज्वल प्रेमपात्र है, अतः हुआ स्नेह-प्रचार विश्व में।

'आंसू' के लिए कवि की सरस उक्ति देखिए—

'वियोग की है यह मौन भारती, दृगम्बु-धारा कहते जिसे सभी।[2]
असीम स्नेहाम्बुधि की प्रकाशिनी, समा सकी जो नस शब्द वक्ष में।।[3]

कवि की यत्र-तत्र धार्मिक उक्तियों में कल्पना के साथ विद्वता व सामान्य जन-व्यवहार का ज्ञान भी परिलक्षित होता है जैसे—

पुरन्धित स्वगीर्य प्रतीत प्रीति है। 'मनुष्य का जीवन धूप-छांह सा।
दिनेश की एक न तेजमान है, निसर्ग का प्रेम द्वितीय सूर्य्य है।[4]
'नितानत अज्ञात प्रवृत्ति प्रेम की।

सुंदर आंलकारिक भाषा-शैली के कारण ही दार्शनिक संवाद भी सुंदर बन पड़े हैं—

'कहो शुभे! ध्येय पदार्थ क्या?' 'महान कल्याणक जैन शास्त्र ही।'
'कहो कहो भूपर गेय वस्तु क्या?' 'जिनेन्द्र धारा परिगीत तत्व ही।'

---

1. वर्धमान, पृ० 105.
2. वही, पृ० 631.
3. वही, पृ० 424.
4. वही, पृ० 312.

'कहो कि क्या पाप धारित्रि में शुभे?' 'असत्यता, क्रोध, कषाय आदि ही।'
'नरेन्द्र वामे! फल धर्म का कहो।' 'त्रिलोक-स्वामीत्य जिनके संपदा।'[1]

सूक्ति अलंकार-से भी काव्य में मानव-स्वभाव का सुंदर चित्रण हो पाया है–

न दुग्ध-सा श्वेत चरित्र जीव भी, धरित्रि में है अपवाद-से बचा।
विपत्ति भी मानव की गुणावती प्रकाशती है करती प्रकृष्ट है॥

इस प्रकार भाषा-शैली व अलंकारों की दृष्टि से 'वर्धमान' को पूर्णतः सफल महाकाव्य के रूप में स्वीकृत किया जा सकता है। उत्कृष्ट कोटि की कला का इसमें दर्शन होता है।

'स्थानक वासी मुनि श्री की प्रेरणा से सौराष्ट्र के कवि मूलदास ने अनेक वर्षों के अथक परिश्रम एवं साधना से 'रामचरित मानस' की शैली पर 'वीरायाण' नामक महाकाव्य लिखा, परन्तु इसका जैन समाज में विशेष प्रचार-प्रसार नहीं हो सका।'[2]

'वीरायण' महाकाव्य में कवि मूलदास जी ने भी अनेक अलंकारों का प्रयोग किया है। शब्दालंकार में अनुप्रास व अर्थालंकार में उपमा रूपक, उत्प्रेक्षा व दृष्टान्त कवि के प्रिय अलंकार दीख पड़ते हैं, क्योंकि प्रायः प्रत्येक पृष्ठ पर इनमें से किसी न किसी एक अलंकार का प्रयोग कवि ने इतने सहज ढंग से किया है कि ऐसा प्रतीत होता है अलंकार कवि की भाषा के अनुगामी बनकर बहते चले हैं। सभी अलंकार वर्णनों के अनुरूप अपने आप उपयोग में आ गये हैं। शब्दालंकार में प्रास-अनुप्रास देखिए–

'पारसमनि के परस-कथीर कनक तुरत बने।
वज्र पुरन्धर कर-कर में राजे, चरचरार धररर रव गाजे।
महावीर महिमा अमित मो से, कहा न जाय,
क्षुद्र छीप से ज्यों कभी महोदधि न मपाय।'

कवि को अनुप्रास अत्यन्त प्रिय है। कवि की गौरवमयी वाणी इसमें प्रकट होती है–

शूरवीर समरथ दृश्य की प्रश्व, सरस बस बतलावहू।
समशेर धर कर समर फऊ, रणरंग जंग जमावहू॥
कायर नपुंसक विरुद्ध घर घर, मरद कब मत आवहू।
दुहु दृश्य मोदक स्वर्ग रू जस, समय नाहि गुमावहू॥2-190

1. वर्धमान, पृ० 181.
2. डॉ० लक्ष्मीनारायण दूबे-'हिन्दुस्तान त्रैमासिक-फरवरी-मार्च' 1977, पृ० 24.

वर्णानुप्रास का एक सुन्दर दृष्टान्त द्रष्टव्य है–

स्थल-स्थल जल निर्मल अरन, कल कल करत वहंत।
सहज वेरको विसर निज पशु पंछी विचरंत।। 3-436

कोमल वर्ण ल, य, प आदि की पुनरावृत्ति से भाषा में मधुरता आ गई है। इसी प्रकार अर्थालंकार में कवि ने उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और दृष्टान्त, अपह्नुति आदि का समुक्ति प्रयोग किया है–

उपमा : मधुर वचन शीतल जिमि चंदन, परिजन मन को करती रंजन।
मोह कोह संसार ही सारा, तृषा इव तजे जिनेश्वर प्यार। 3-92-94
दुजा ओष्ठ कर जोर अपारा, जीर्ण वसन सम तुर्त विदारा। 3-93

अपह्नुति :नंदनवन इनको कह देना, सहत कविजन कभी बने ना।
यह तो यह सम है कहेना, और साभ्य इनको हि लगेना। 3-435

दृष्टान्त : इस विधि दीन दुःखी हयग्रीवा, किमि मिटहीं यह दुःख असीवा।
जिमि जल सूखत दुःखित मीना, कृपन अपन धन जावत दीना।। 2-102.

एक ही दोहे में दो-तीन अलंकार प्रयुक्त करने की कवि की निपुणता-कला-का उदाहरण देखिए–

वदन शरद शशि सोहता, दृग विकसित जनु कंज
भुज विशाल अनुपम उभय, मस्त वृषभ सम कंध।। 2-340

उपमा और उत्प्रेक्षा का संयोग कवि राजकुमार प्रियमित्र के सौंदर्य वर्णन में करते हैं–

ओष्ट प्रवाल लाल भल राजे दंत पंक्ति कलि अनार छाजे
गोल कपोल कछुक न अरुणारे, कंबु कंठ शोभा अति मारे।। 2-345

रूपक-कण्टक डालि गुलाब की, भांहि द्वेष रूप कंटक हिं नाहिं।
वैसे काहूं से करहीं, सब जनप्रिय भाषा उच्चरहिं।। 3-53.

अचल कुंवर ने मुनि की वाणी सुनकर संसार-सागर तैरने के लिए दीक्षा ग्रहण की–

धर्म घोष आचार्य की, सुन सुखद मुदृ बान।
सुनत अचल दीक्षा ग्रही, भव अब्धी जलयान।। 2-333

रूपक या अन्य अलंकारों की अपेक्षा पूरे महाकाव्य में उपमा व उत्प्रेक्षा का ही प्रयोग कवि ने अत्यधिक किया है–कवि को ये दो विशेष प्रिय दीखते हैं।

'क्षमा अजब हथियार कहाता, देत लेत जन उभय कमाता।'

जैसी पंक्ति में क्षमा रूपी शस्त्र की महत्ता बताई गई है कि आदान-प्रदान करने वाले दोनों को गौरवान्वित करता है।

उदाहरण अलंकार का एक नमूना देखिए–

माया बंधन मनुज को जकरावत जल जोर।
कठिन काष्ट छेदत अली, पंकज सकत न तोर॥ 3-463

नाम परिनगणन अलंकार :

कवि ने जहाँ सुंदर से सुंदर उत्प्रेक्षा, उपमा व दृष्टान्त अलंकारों का उचित उपयोग अपने भावों को स्पष्ट करने के लिए किया है, वहाँ, ज्ञात खण्ड वन के-जहाँ भगवान महावीर दीक्षा के लिए आते हैं–उपवन, उद्यान की शोभा के वर्णन में एक ही साथ सभी प्रकार के पशु-पंछी और फल-फूल, वृक्षों के वर्णन के साथ उद्यान की शोभा का वर्णन परिगणन वृत्ति से करते हैं, यथा–

नारियेल वट वृक्ष विशाला, जमरूख, सीताफल, तरु ताला।
नारंगी दाडिम द्राक्षादि, पुंगि उतंगि लविंग लतादि॥
चंदन, एलची, केतकी केरे, चम्पक, निम्बू, खजूरी घनेरे।
आमल जाम्बु किंशुक वृक्षा, निज शोभा से खींचत लक्षा॥
सब मिल ज्ञातखंड उपवन में, आई सवारी गाढ़ वृक्षन में।
अर्जुन केल-कदंब तमाला, सीसम साग अशोक, रसाला॥ 432

इसी प्रकार नववधू यशोदा की साज सज्जा के वर्णन में, यशोदा के पिता द्वारा दी गई पहेरावनी-भेंट की सूची में भी रत्न, माणिक, वस्त्र-आभूषण, हाथी-घोडों की नामावलि कवि ने प्रस्तुत की है। वैसे यशोदा की सुंदरता का आलंकारिक-वर्णन किया है–

नवसर हार कंठ सोहे कस, बदन चंद सम्मुख तारा जस।
अलतायुक्त रक्त चरनों की, अंगुलि नख द्युति ज्यों चरननों की॥186॥

एक ही चौपाई में उपमा, उत्प्रेक्षा व रूपक अलंकार में बालक वर्धमान के रूप-सौंदर्य का कवि मनोहारी वर्णन करते हैं–

नीलकंबु सम सुहत शरीरा, मुख-दुति मानहु उज्ज्वल हीरा।
भरित कपोल गोल अरुणारे, कंठ सुललिल कंबु अनुसारे।
पूर्ण चन्द्र आनन छवि छाये, देखत काम कोटि लजवाये।
नयन पद्म शुभ प्रकाशवन्ता, कुंचित केश कृष्ण सोहन्ता॥

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कवि ने अलंकारों का (उचित) समीचीन उपयोग भावों की सरलता व ग्राह्यता के लिए किया है, न कि अपनी वाक् विदग्धता या पांडित-प्रदर्शन के लिए किया है। क्योंकि कवि का प्रमुख प्रयोजन तो भगवान महावीर का चरित सरल, सुन्दर प्रवाहमयी शैली

में प्रस्तुत करने का है। अतः अलंकार तो कवि ने भाव-प्रवाह में स्वंतः प्रवाहित होते हुए चले आए हैं।

महाकाव्य के अनन्तर आधुनिक हिन्दी जैन खण्ड काव्यों में अलंकारों के प्रयोग पर संक्षेप में दृष्टिपात करना समीचीन होगा।

'विराग' में कुमार वर्धमान के वैराग जन्य शान्त अनुभूतियों के तीव्र संवेग-आवेग के साथ माता त्रिशला के हृदय की अदम्य कामनाएँ एवं पुत्र-प्रेम से तड़पती भावनाएँ कलात्मक रूप से चित्रित हैं। कवि ने उन भावों को सुंदर अलंकारों तथा मार्मिक शैली से अभिव्यक्ति भी प्रदान की है। वैसे अलंकारों की कृत्रिम साज-सज्जा कवि का मुख्य प्रयोजन नहीं रखा है, लेकिन प्रकृति के वर्णन में या कुमार के सौन्दर्य-वर्णन में वे स्वयं छा गये हैं। काव्य के प्रारंभ में ही प्रातःकालीन प्रकृति की शोभा-रमणीयता का वर्णन करते समय सुंदर अलंकार चमक उठे हैं। पनिहारिनें प्रभात बेला पनघट पर जाकर पानी भरती हैं, तब उनकी शोभा देखते ही बनती है—उत्प्रेक्षा का रम्य प्रयोग भी द्रष्टव्य है—

अवगुण्ठन तब हट जाने,
ये स्वर्ण हार यों चमके,
ज्यों पावस ऋतु के श्यामल,
मेघों में विद्युत दमके।

आगे बढ़ भानु-किरण भी,
उनका मुख-पंकज छूती,
मानों सुरपुर से आयी,
बन किसी देव की दूती।

तब महिषी देख रही थी,
मोहक मुख मंजु मुकुर में,
पीछे-से देख छटा से,
नृप मुदित हुए निज उर में।

शब्दालंकार का उदाहरण देखिए—

तब तक तव कीर्ति रहेगी,
जब तक रवि चन्द्र जगत है।
वह जग का मत कल होगा,
जो आज तुम्हारा मन है। पृ० 72.

'त' और 'क' की पुनरूक्ति से भाषा में गति का प्रवाह आ गया है—

विटपों ने सादर श्रद्धा-
से शीश झुकाया हिलकर

सुमनों ने मोद बताया,
सम्पूर्ण रूप से खिलकर।

'स' वर्ण की पुनरावृत्ति से काव्य में माधुर्य भर गया है।

रूपक अलंकार के द्वारा कवि नियति-नटी की महत्ता प्रदर्शित करते हैं–उसके द्वारा चलाये गये रथ में सभी को बैठना पड़ता है–

था इष्ट न उनको बाधक,
बनना कुमार के पथ में।
अतएव विवश हो चलते,
थे नियति-नटी के रथ में। 2. पृ० 33.

तुमसे ही चले युगों तक,
शुभ नाम जगत में कुल का।
दु:ख नद के पार पहुँचने,
निर्माण करो तुम पुल का। 2, पृ० 32.

बालचन्द्र जैन के 'राजुल' काव्य में कवि का प्रिय अलंकार अनुप्रास रहा है। अंत्यानुप्रास का प्रवाह द्रष्टव्य है–

भूलूं कैसे उन्हें, प्राण अपने भी भूलूं,
खोजूंगी में उन्हें, वनो-गिरि में भी डोलूं,
किया समर्पित हृदय आज तन भी मैं सौंपूं;
रहे कहीं भी किन्तु सदा वे मेरे स्वामी,
में उनका अनुकरण करूं बन पथ अनुगामी।

इसी प्रकार-अब न रही हैं सुखद वृत्तियाँ, शेष बची हैं मधुर स्मृतियाँ। भावों की मार्मिकता निम्नलिखित अन्त्यानुप्रास अलंकार युक्त पंक्ति में व्यक्त हो पाती है–

नारी ऐसी क्या हीन हुई!
तन की कोमलता ही लेकर नर के सम्मुख दीन हुई!

प्रास-अनुप्रास की छटा का सौंदर्य देखिए–

कल-कल, छल-छल सरिता के स्वर, संकेत शब्द थे बोल रहे।

भंवरलाल सेठी के 'अंजना पवनंजय' खंड काव्य में भी कवि को शब्दालंकार ही प्रिय है। जैन काव्य में अनुप्रास का बाहुल्य पाया जाता है।

बरसों बीत गये दु:खिया को, पाये नहीं घी के दर्शन।

या– **'छाया जग में जय-जयकार'**

भगवत जैन के 'सत्य अहिंसा का खून' काव्य में भी वर्णानुप्रास का

अंत्यानुप्रास का महत्व लक्षित है, कवि ने यत्र-तत्र इसका प्रयोग कर भाषा में मधुरता भरने का प्रयत्न किया है जैसे–

मुनि पद धारण कर लिया, पाया पद सर्वार्थ।
सिद्ध-सिद्ध कर कार्य वह जगत किया किरतार्थ॥

विधि की वक्रता सुंदर विरोधाभास अलंकार द्वारा व्यक्त की गई है–

कर्मों का कैसा चक्र अज़ब,
यों अकल-गजब के बीच में है।
कस्तूरी मृग के पेट में है,
और कमल घृणाकर कीच में।

खंड काव्य के उपरान्त हिन्दी जैन मुक्तक रचनाओं में भी अलंकारों का विवेचन काम्य है। मुक्तक रचनाएं प्रायः भाव परक हैं। अतः इनमें रूपक एवं उपमा अलंकारों का प्राधान्य रहा है। 'सफल जन्म' में पाप-पुन्य की तुलना मृत्यु एवं माता के साथ की गई है–

दो पुण्य-पाप रेखाएँ, दोनों ही जग की दासी,
है एक मृत्यु-सील धातक, दूसरी सुहृद माता-सी।

पराक्रमी मनुष्य को 'कल' से शिक्षा लेकर 'आज' को सार्थक बनाकर 'विश्व-सदन' में अपना जन्म सफल करना चाहिए–

वह पराक्रमी मानव है, जो 'कल' को आज बनाकर,
क्षणभंगुर विश्व-सदन में, करता निज जन्म सफल है।

'नर-कंकाल' में व्यंग्यात्मक भाव कैसे रूपक व्यक्त हुए हैं–

तिरस्कार-भोजन, प्रहार-उपहार, भूमि जिसकी शय्या,
धनाधिपों के दया-सलिल में, खेता जो जीवन-नैया॥

'युगवीर' जी की 'होली होली है' पूरे सांगरूपक का उदाहरण है–

ज्ञान-गुलाल पास नहीं, श्रद्धा,
समता-रंग न होली है।
नहीं प्रेम-पिचकारी कर में,
केसर-शांति न धोली है।
स्याद्वाद की सुमृदंग बजे नहीं,
नहीं मधुर-रस बोली है।
ध्यान-अग्नि प्रज्वलित हुई नहीं,
कर्मेन्धन न जलाया है।
असद्भाव का धुंआ उड़ा नहीं,
सिद्ध स्वरूप न पाया है।

भीगी नहीं जरा भी देखो,
सानुभूति की चोली है।
पाप-धूलि नहीं उड़ी, कहो फिर,
कैसे होली होली है। (अनेकांत-पर्व-3, क्रिया 4).

'प्रेमी' की 'सद्धर्म-संदेश' का रूपक भी द्रष्टव्य है–

'मंदाकिनी दया की जिसने यहाँ बहाई,
हिंसा-कठोरता की कीचड़ भी धो बहाई।
समता-सुमित्रता का ऐसा अमृत पिलाया,
द्वेषादि-रोग भागे, मद का पता न पाया।

गणपति गोयल की 'छलना' में उपमा का रूप देखिए–

हो तब स्वर्ग-ज्योति-आई, मुझे देखते ही मुस्काई।

वीणा में सजीवारोपण द्वारा कवि मार्मिक भाव जगाते हैं–

अहे वीणा के टूटे तार।
तू अनन्त में लीन हो रहा और सो रहा मौन;
रागिनियाँ सुनाती तो हैं, पर तुझे जगाये कौन ?
थका संसार पुकार-पुकार, अहे वीणा के टूटे तार!'

शब्दालंकार में वर्णन प्रास-अनुप्रास एवं अन्त्यानुप्रास का प्रभाव विशेष है–अनुप्रास का प्रवाह देखिए–

घर-घर चर्चा रहे धर्म की,
दुष्कृत दुष्कर हो जावें,
ज्ञान चरित उन्नत कर अपना,
मनुज जन्म सफल सब पायें।
ऐसे ही-सरिता, सरवर, सागर में, गिरि-गह्वर में, नगर-नगर में,
डगर-डगर में वसुधा भर में, जल-थल में अनंत अंबर में
एक बार हो उठे पुनः माँ! तेरा ही जयघोष।'

इन दो पंक्ति में ही कवि ने वर्णानुप्रास, अंत्यानुप्रास एवं वर्णों के द्वित्वों से माधुर्य भर दिया है।

उदयाचल पर लाल-सूर्य की लाली छाई,
उषा सुंदरी अहो, जगाने तुमको आई।

अन्त्यानुप्रास का एक और उदाहरण–

सोचा ज्यों न चलूं उस पार,
बैठा तरि पर ले पतवार।

'लोल-लहरों पर लिखने निर्वाण के मृदुगीत,
ओ बीतराग पुनीत।

'मेरी जीवन साध' कविता में अलंकार के द्वारा भाषा में अपूर्व माधुर्य छलक उठता है-

परहित में रत रहूं निरन्तर, मनुज-मनुज में करूं न अन्तर।
नस-नस में बह चले देश की प्रेमधार-निर्बाध मेरी जीवन साध।।

छन्द :

भाषा तथा अलंकार की भांति छंद योजना के क्षेत्र में भी हिन्दी जैन कवियों ने कोई नूतन प्रयोग न कर प्रबंध काव्यों में परंपरागत छंदों को ही अपनाया है। 'वर्धमान' महाकाव्य में वंशस्थ छंद का विपुल मात्रा में प्रयोग किया गया है। 'वीरायण' तुलसीदास जी के 'मानस' की दोहा-चौपाई शैली' में लिखा गया है। मुक्तकों में विविध राग-रागिनियों पर आधारित पदों की रचना की गई है। मुक्त छन्द का प्रयोग भी यत्र-तत्र स्वीकृत हुआ है। जैन कवियों ने संस्कृत छंदों के साथ प्राचीन छंदों का प्रयोग भी कुशलता से किया है। ''जैन साहित्य में संस्कृत छन्द और पुरातन हिन्दी छन्दों और गीतों का प्रयोग आज अनेक जैन कवि कर रहे हैं।[1] सर्वप्रथम हम महाकाव्यों में छन्द प्रयोग पर विचार करेंगे, तदनन्तर खण्डकाव्य एवं मुक्तक रचनाओं के अंतर्गत छन्द प्रयोग पर विचार होगा।

'वर्धमान' महाकाव्य में कवि अनूप शर्मा ने वंशस्थ, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, इन्द्रवज्रा छन्दों का कुशलता से प्रयोग किया है। इनमें वंशस्थ छंद का सर्वोपरी स्थान है। कवि ने हरिऔध जी की परंपरा में संस्कृत छन्दों का प्रयोग कर अपनी छन्द-पटुता व विद्वता का परिचय दिया है। वैसे उन्होंने अपने खण्डकाव्य एंवं मुक्तकों में धनाक्षरी आदि शब्दमेल छन्दों का प्रयोग अत्यन्त कुशलता से किया है। वंशस्थ का प्रयोग 'सिद्धार्थ व वर्धमान' में अपरिमेय मात्रा में कर उस पर अपनी सिद्धहस्तता व्यक्त कर दी है। 1936 योगों में से 1922 योगा केवल वंशस्थ के हैं। कवि ने महाकाव्य के शास्त्रीय नियम के अनुसार पूरे सर्ग में एक छन्द का प्रयोग तथा सर्गान्त में भिन्न छन्द प्रयोग का निर्वहण किया है। छन्द से महाकाव्य में बंधन के कारण प्रवाह की प्रभावान्विति बनी रहती है। क्योंकि इसमें छन्दों के द्वारा ही कथा वस्तु की शृंखला बनी रहती है। छन्द के द्वारा विशेष लय पैदा होने से काव्य में रोचकता बनी रहती है। फिर छन्द में तुक

1. डा० नेमिचन्द्र शास्त्री : हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन, भाग-2, पृ० 162.

बद्धता न हो तो काम चलता है। छन्द की लयात्मकता के भीतर भाव की अन्विति, प्रभाव और तीव्रता अखंड रहती है।

'सिद्धार्थ की भांति 'वर्धमान' में वंशस्थ, मालिनी व द्रुतविलंबित आदि अनेक वर्ण-वृत्तों का सुंदर प्रयोग हुआ है, किन्तु सर्वोत्तरी प्रधानता वंशस्थ छन्द की है। ''आधुनिक महाकवियों में अनूप शर्मा ने इस छन्द का प्रयोग सबसे अधिक किया है। 'वर्धमान' महाकाव्य में कुछ स्थानों को छोड़कर आद्योपान्त इसी छन्द का प्रयोग हुआ है। इससे पूर्व शायद ही किसी कवि ने इस छन्द का इतना विशद प्रयोग किया हो।'[1] वर्धमान में विशेषतया चर्चित वंशस्थ छंद समवृत्त है, जिसमें नगण, भगण, मगण, व रगण से 12 वर्ण होते हैं। 'जतो तु वंशस्थ मुदित नरो। (वृत्त रत्नाकार 343) इस छन्द का लाघवपूर्ण प्रयोग निम्नलिखित उक्तियों में देखा जा सकता है-

मनुष्य का जीवन एक पुष्प है, प्रफुल्ल होता है यह प्रभाव में,
परन्तु छाया लख-सांध्यकाल की, विकीर्ण हो के गिरता दिनान्त में।[2]

वंशस्थ का सर्वत्र समुचित व लाघव प्रयोग महाकाव्य में दृष्टिगत होता है।

जैसे- **'प्रभो! मुझे हो किसी भांति चाहते ?'**
'यथैव निः श्रेयस चाहते सुधी।'
'प्रिये! मुझे हो किस भांति चाहती ?'
'यथैव साध्वी पद-पार्श्वनाथ के।।'[3] **(158।76)**

यहाँ छन्द की रमणीयता, लाघवता के साथ भाषा की प्रश्नात्मक संवाद-शैली भी द्रष्टव्य है। ऐसी शैली से संवाद में प्रभाव व रोचकता पैदा होती है। इस छन्द में भाषा जकड़-सी जाती है, क्योंकि इसमें फैलाव बहुत कम होता है। फिर अनूप जी ने इसमें भाषा-सौंदर्य अक्षुण्ण रखा है। 'धनाक्षरी की भांति वंशस्थ प्रयोग में अनूप जी अद्वितीय हैं। नाना रसों के इस छन्द का प्रयोग सफलता से हुआ है। इस वृत्त करुण, श्रृंगार, शान्त तीनों प्रमुख रसों के अनुकूल है और दोनों महाकाव्यों में इन रसों के वर्णन के लिए पर्याप्त अवसर मिलता जाता है। + + + + कवि ने इस वृत्त के प्रयोग से (वर्धमान में 1922 छन्द वंशस्थ के) अपने को 'वंशस्थ सिद्धकवि' सिद्ध कर दिया है। किसी भी भाव

1. डा० वीणा शर्मा-आधुनिक हिन्दी महाकाव्य,पृ० 45.
2. वर्धमान,पृ० 306, सर्ग-10, 10।85.
3. वही,पृ० 158, 176.

को इस वृत्त में सुकरता से प्रस्तुत करने में समर्थ है। मूर्तिकार के हाथों में जैसे मुदित मृदु मृत्तिका होती है, वैसे ही अनूप जी के प्रतिभाकरों में वंशस्थ रहा है।[1]

वंशस्थ के अतिरिक्त 'वर्धमान में द्रुत विलंबित, शार्दूलविक्रीडित आदि का भी प्रयोग कवि ने सफलता से किया है। द्रुत विलंबित :–'वर्धमान' में वंशस्थ के बाद इस छन्द का प्रयोग हुआ है लेकिन वंशस्थ के सामने इसका प्रमाण अत्यन्त कम है। दो-चार जगह मालिनी, एक दो जगह इन्द्रवज्रा का शार्दूलविक्रीडित का उपयोग हुआ है। इस 12 वर्ण के छन्द में नगण, भगण, भगण और रगण का योग रहता है। रूप वर्णन एवं प्रकृति वर्णन में भी छन्द का प्रयोग होता है। (द्रुत विलंबित माहनमोमरी। छन्दोमंजरी, 2, 10) इस छन्द का एक उदाहरण देखिए :–

सुलभ जीवन का न रहस्य है, अति सुदुर्लभ मृत्यु विभेद भी,
कुछ पता न चलता तब अंत में, उठ चले गृह को वह शीघ्र ही।[2]
मनुज है प्रकृतिस्थ अवश्य पे, इतर है जग आत्मस्वरूप से,
जगत है जड़ चेतन जीव है, परम पुद्गल तत्त्व-अतत्त्व है।[3]

शार्दूलविक्रीडित :

'वर्धमान' महाकाव्य में अंतिम तीन छन्द यह हैं। इसके कुल 19 वर्ण होते हैं तथा 12 वर्णों के बाद यति आती है। सगसतत् और अन्त में एक गुरु होता है। (सूर्योश्चैर्यादिय: सगो सततमा: शार्दूलविक्रीडितम।' छन्दोमंजरी, 2-6) यह छन्द श्रृंगार, वीर व करुण के लिए विशेष उपयुक्त है। 'वर्धमान' में प्रयुक्त इसका एक उदाहरण :–

ऐसा मार्ग प्रशस्त है, न जिसमें है भ्रान्ति शंका कहीं,
छायी अम्बरमध्य जैन मत की आनंद कादम्बिनी।
देखी सौख्य वसन्त के पवन-सी सामायिकी की साधना,
काम क्रोध मदादि कंटक बिना सन्मार्ग है धर्म का।[4]

वंशस्थ के विपुल तथा सफल प्रयोग करने के लिए हिन्दी जैन महाकाव्य के रचयिता धन्यवाद के पात्र है। संस्कृत वर्णवाले छन्दों का 17 सर्गों की महान

---

1. डा० पूतूलाल शुक्ल-अनूप शर्मा-कृतियाँ और कला के अन्तर्गत-'महाकवि अनूप की छन्द योजना' निबंध, पृ० 308.
2. वर्धमान, पृ० 341.
3. वही, पृ० 347.
   'अनूप शर्मा : कृतियाँ और कला' के अन्तर्गत महाकवि अनूप की छन्द योजना 'निबंध', पृ० 308.
4. वर्धमान, पृ० 585.

रचना में कुशलता से उपयोग करके महाकाव्य की सर्गबद्धता का भी यथेष्ट निर्वाह किया है। सर्ग-प्रारंभ में एक छन्द तथा अंत में अन्य छंद के नियम का भी समुचित निर्वाह हुआ है।

'मानस' की पद्धति पर दोहा-चौपाई-शैली पर 'वीरायण' की रचना हुई है। इसमें दोहा व चौपाई छन्द की ही प्रमुखता है, कहीं-कहीं सोरठा छंद का भी प्रयोग किया गया है। लघु आकार दोहे में कवि ने अनेक मधुर, गूढ़ भाव भर दिए हैं, विशेषकर दृष्टान्त या उदाहरण देने के लिए आध्यात्मिक मनोवैज्ञानिक सत्य-तथ्य अभिव्यक्त करने के लिए दोहा छंद का उपयोग कवि ने लाघवता से किया है। कवि ने प्रयुक्त छंद के विषय में प्रारंभ में ही स्पष्ट कर दिया है कि-

सुगम्य है शैली इनकेरी, कहत सुनत समुझत नहिं देरी।
चौपाई बारी फलदाता, सरल सोरठा कछु सोहाता। 9-3
लिखे दोहरा दो मन है रे, इस उत चित शान्ति को प्रेरे।
कहे हरिगीत में ही खरे, महावीर प्रभु के गुन मधुरे। 1-5.

कवि को छन्द, अलंकार प्रबन्ध रीति आदि में अपनी प्रवीणता या कुशलता न होने के कारण दुःख नहीं है। इन सबमें अपनी लघुता स्वीकार कर कवि ने वैसे विनय प्रदर्शित किया है, लेकिन महाकाव्यों में ये सभी आवश्यक तत्त्व हमें प्राप्त होते हैं। कवि स्व-लघुता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि-

'छन्द प्रबंध भाव सरभेदा, कवित रीत कुछ नहि को कहेता।
इनका है अफसोस न मन में, भले जिनहू न मोहि कविजन में।। 369
मैं नहि पंडित नहि कवि ज्ञानी, तदपि भक्ति की रीत पिछानी।
लिखा काव्य मति के अनुसारा, संत सुजन कवि करहु स्वीकारा।।
17, 389, 340.

चौपाई छन्द :

चौपाई छन्द 'वीरायण' का प्रमुख छन्द है, जिसका आदि स्रोत मिलता है अपभ्रंश के पद्धड़िया छन्द में। अपभ्रंश साहित्य में पद्धड़िया का कड़वक के रूप में प्रयोग किया गया है। अपभ्रंश की इसी कड़वक वाली शैली हिन्दी की 'चौपाई-दोहा' शैली की उत्पादिका है।[1] डा० हीरालाल जैन का कथन है कि 'कड़वकवाली शैली महाकाव्यों में ही प्रयुक्त होती थी।'[2] हिन्दी के कवियों ने

1. डा० रामसिंह तोमर : 'प्रेमी अभिनंदन ग्रन्थ' के अन्तर्गत-जैन साहित्य की हिन्दी साहित्य को देन। पृ० 468.
2. डा० हीरालाल जैन : नागरी प्रचारिणी पत्रिका, अंक 3-4, पृ० 113.

भी इसी परंपरा को अपनाया, जिसमें जायसी का 'पद्मावत' और तुलसी का 'रामचरित मानस' लिखे गये और आगे हिन्दी जैन महाकाव्य 'वीरायण' भी दोहा-चौपाई शैली में लिखा गया। जैन हिन्दी में भी साधारु का 'प्रद्युम्न चरित', लालचन्द का 'पद्मिनी चरित', रामचन्द का 'सीताचरित्र' और और 'भूधर जी का 'पार्श्वपुराण' दोहा-चौपाई में लिखे गये उपलब्ध होते हैं। वैसे चौपाई का प्रमुख प्रयोग कथानक को जोड़ने के लिए होने से मुख्यतः महाकाव्य में प्रयोग होता है।[1] लेकिन हिन्दी जैन कवियों ने अपने मुक्त काव्यों के लिए भी चौपाई का मुक्त प्रयोग किया है। विशेषकर मध्यकालीन जैन-भक्त कवियों ने। चौपाई में 10-8-12 पर विश्राम के साथ 30 मात्राएँ होती हैं और अन्त में दो गुरु कर्णतुर होते हैं, पर कभी-कभी 1 गुरु भी होता है।[2] 'वीरायण' में चौपाई अपनी संपूर्ण सुंदरता के साथ दिखाई पड़ती है। पद-पद पर चौपाई की मिठास-रमणीयता मन हर लेती है। ज्ञात-खण्ड उपवन की शोभा का वर्णन कैसे घड़िया´चौपाई में कवि ने किया है-

उड़त फुहार सलिल निर्मल यों, दंपति पिचकारिन डारत ज्यों।
शीतल संद सुगंध समीरा, बहन लगे आवत जिन वीरा॥
स्वागत छन्द विहंग उच्चारे, कदलिका हिल पंखा डारे॥
वृक्ष अशोक निकट शीबिका से, उतरे जिनवर अमित सुलासे॥

449-9-3

चौपाई के समान ही दोहा छन्द भी 'वीरायण' में प्रमुख हुआ है। एक या दो चौपाई के बाद दोहा या सोरठा इस अनुप्रास से काव्य में आये हैं :-

दोहरा :-जैसे संस्कृत का 'श्लोक' और प्राकृत का गाथा (गाहा) मुख्य छन्द माना जाता है, उसी प्रकार अपभ्रंश का दोहा। इसीलिए तो अपभ्रंश को 'दुहाविधा' कहते हैं।[3] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'दोहा' की उत्पत्ति स्थल अमीर जाति के 'विहनानों' में माना है-खोजा है।[4] लेकिन लिखित रूप से दोहरे का सर्वाधिक प्राचीन रूप 'विक्रमोर्वशीय' के चतुर्थ अंक में देखा जा सकता है। 7वीं शती में योगेन्द्र के 'परमात्मप्रकाश' और 'योगसार' में भी अपभ्रंश के दोहों का ही प्रयोग हुआ है। जैन कवियों ने भक्ति, अध्यात्म व उपदेश के लिए दोहों का प्रयोग सर्वाधिक किया है।

---

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी-हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० 220.
2. डा० गौरीशंकर मिश्र 'जितेन्द्र' छन्दोदर्पण, पृ० 52.
3. डा० प्रेमसागर जैन : हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि, पृ० 92.
4. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी-हिन्दी साहित्य का आदिकाल, पृ० 92.

'दोहरे के विषम चरणों में 13-13 और सम में 11-11 मात्राएं होती हैं। (अन्त में डा रहता है)। विषय का निर्माण अष्टक चौकाल और सम का अष्टका-त्रिकल से होता है, जबकि दोहे का विषय चरण उल्लाला (सम) का और सम अहिर का चरण होता है।[1] 'वीरायण' में कहीं-कहीं एक चौपाई के बाद और कहीं-कहीं दो चौपाई के बाद दोहरा छन्द प्रयुक्त हुआ है। दोहे के विषम चरण के अन्त में एक मात्रा कम कर देने से 'दोहरा' होता है। आचार्य 'भानु' ने इसे शास्त्र-नियम के विरुद्ध माना है। पर यह अपभ्रंश छन्दशास्त्र 'कवि दर्पण' द्वारा उपदोहक है, जिसे आचार्य भिखारीदास ने 'दोहरा' कहा है। 'वीरायण' के प्रत्येक काण्ड के अंत में पांच-छः दोहरों का क्रम रहा है। उसी प्रकार काण्ड के प्रारंभ में भी तीन-चार दोहरा छन्द या सोरठा छन्द का प्रयोग हुआ है। दोहरे का दृष्टान्त देखिए–

माया बंधन मनुज को, अकरावत बल बोर।
कठिन काष्ट छेदत अली, पंकज सकत न तोर।। 3-463
तामें बुधजन अति प्रबल, माया मोह कहंत।
कीर्ति की रति ना करे, सो जीते इन संत।। 3-464
जन्म, लगन संयम ग्रहण, वर्धमान इतिहास।
गुरुवर कृपा हुंते कथे, प्रेम सहित मूलदास। 3-467

'वीरायण' में कहीं-कहीं दोहरा के स्थान पर 'सोरठा' छन्द का प्रयोग भी प्राप्त है। वैसे भी बहुत से जैन कवियों ने सोरठा छन्द का प्रयोग दोहे के स्थान पर किया है। सोरठा दोहे का उल्टा छंद है, जिसके विषम में 11 और सम में 13-13 मात्राएं होती है। सोरठा में विषम चरण तुक रहता है और समचरण बेतुका। 'वीरायण' में चतुर्थ काण्ड के प्रारंभ में पार्श्वनाथ सरस्वती वंदना में सोरठा छन्द का प्रयोग सुंदर रूप से हुआ है और सूक्ति के प्रयोग में भी सोरठा का मार्मिक रूप देखा जा सकता है–यथा–

पर पीडन सम पाप, अवरन होता अवनि में।
होत सबकु संताप, यहाँ न ठहरत संतजम।। 4-123
समस्त सकल विदेश, पार्श्वनाथ प्रभु तुम चरन।
गावत गति हमेश, ग्रन्थारमे मुनि जनौ।
आवत आप ही आप, बल-बुद्धि सिद्धि सकल।
तुमरे भजन प्रताप, मनवांछित फल मिलत है।।2।।
महावीरायन ग्रंथ, कर समरन तब सरसती।
यथामती आरंभ, करन चहो करुना करहु।।3।।

1. डा० गौरीशंकर मिश्र-छन्दोदर्पण,पृ० 140.

श्वेतांबरी समरथ्थ, वाहन हंस बीना धरी।
गिन किंकर ग्रहिरथ्थ, रसना में बसु मात तुम॥4॥

इसी प्रकार एकाध जगह पर शार्दूलविक्रीडित छन्द का भी सफल प्रयोग किया है षषक कांड में प्रारंभ में प्रभु-वंदना का वर्णन इसी छन्द में है। त्रैयान्सनाथ प्रभु की स्तुति का नाराध छंद भी आकर्षक है, लेकिन ऐसे छन्दों की संख्या इनी-गिनी ही है—एक उदाहरण इस छन्द का द्रष्टव्य है—

बन्दों जी अरिहंत-संतवर के, बन्दो प्रभू जी सिद्ध जी।
आचार्यो पद-वंदना करत हो, बन्दो उपाध्याय जी॥
बन्दो साधु सप्रेम क्षेम चहिके, बन्दो उबे साध्वी जी।
ये पंच परमेश क्लेश हरहू, चिते सदा ही रिझी॥

इस प्रकार 'वीरायण' महाकाव्य में दोहा-चौपाई की प्रमुखता के साथ कवि ने यत्र-तत्र अन्य छन्दों का भी प्रयोग किया है।

'विराग' खंडकाव्य में छन्द के भीतर लय-गति का प्रच्छन्न रूप से निर्वाह हुआ है। 'सारस' छंद का इसमें अधिक प्रयोग हुआ है। 12, 12 की यति वाले 24 मात्राओं का यह छंद होता है। इस छंद में गति व प्रवाह का निर्वाह अधिक होता है। शान्त रस के लिए यह छन्द विशेष उपयुक्त होता है। 'विराग' काव्य के कवि को सायास छन्द योजना नहीं करनी पड़ी है, बल्कि भावों के प्रवाह में छन्द बनते गये हैं। एकाध स्थान पर छन्द भंग भी हुआ है, लेकिन प्रवाह के कारण इतना सकता नहीं है। इस सम्बंध में डा० नेमिचन्द्र जी लिखते हैं—'विराग' की शैली रोचक, तर्कयुक्त और ओजपूर्ण है। भाव छन्दों में बांधे नहीं गये हैं, अपितु भावों के प्रवाह में छन्द बनते गये हैं। अतः कविता में गत्यावरोध नहीं है। हाँ, एकाध स्थल पर छन्दों का भंग है, पर प्रवाह में वह खटकता नहीं है। भाषा सरल, सुबोध और भावानुकूल है।'[1] कवि ने छंद और यति भंग को बचाने के लिए ही लिंग दोष या शब्दों को तोड़-मरोड़ दिया है, लेकिन यथाशक्ति छन्द की पूर्णता का निर्वाह किया है।

बलचन्द्र जैन ने अपने 'राजुल' खंड काव्य में रोला व सद्य सवैया दोनों छन्दों का कुशलता से प्रयोग किया है। कवि ने छंद में यथा-साध्य यति भंग के दोष से बचने की कोशिश की है। 'रोला' में सामान्यतया 11, 13 पर विश्राम के साथ 24 मात्राएं होती हैं। अंत में डा के अतिरिक्त और 15, 11 सब रहते हैं और 8, 8, 8 पर भी विराम देखा जाता है।[2] रोला के चरण का निर्माण तीन

1. डा० नेमिचन्द्र शास्त्री—हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन-भाग-2, पृ० 33.
2. डा० गौरीशंकर मिश्र—छन्दोदर्पण-पृष्ठ 19.

अष्टकों से होता है। 11 वाले खंड के बाद त्रिकल रखकर इसकी सम प्रवाहिकता की रक्षा की जाती है जैसे :-

भूलूं कैसे उन्हें, प्रण अपने भी भूलूं,
खोजूंगी में उन्हें, मैनों गिरि में भी डोलूं
किया समर्पित हृदय, आज तन भी मैं सोंपू।

इस काव्य में रोला के अतिरिक्त 'मत्त सवैया' छन्द का भी उपयोग हुआ है। कवि ने प्रकृति वर्णन और मानसिक स्थिति के चित्रण के समय इस छन्द का अच्छा आयोजन किया है मत्त सवैया में 16, 16 मात्रिक खंड पदपादा कुलक के होते हैं। अन्त में डा नहीं रह सकता, बल्कि होता है।[1] उदाहरण के लिए देखिए-

कल-कल छल-छल सरिता के स्वर, संकेत शब्द थे बोल रहे,
आँखों में पहले छाये, धीरे-से-उर में लीन हुए।

'अंजना-पवनंजय' खंडकाव्य में कवि भंवरलाल ने तोटक छंद का प्रयोग किया है। तोटक छंद में 16-14 पर विश्राम के साथ 30 मात्राएं होती हैं। इसके चरण निर्माण चौपाई 'हाकलि' चरणों के मेल से होता है। अंत में ऽऽ, ।ऽ, सभी रहते हैं।[2] उदाहरण के लिए-

मन था या अनघड़ पत्थर था, लोहा था या वज्जर था।
प्रेम-भिखारिन परम-सुंदरी, नारी को वहाँ न स्थल था।।

आधुनिक हिन्दी जैन मुक्तक काव्यों में विविध छन्द प्राप्त होते हैं, तो देशी रागों पर आधारित पद भी मिलते हैं। मात्रिक व वार्णिक प्रकार के छंदों का जैन काव्यों में प्रयोग हुआ है-इनमें मात्रिक को प्रमुखता प्राप्त हुई है। हिन्दी काव्य साहित्य में मात्रा मेल छंदों का प्राधान्य है, जबकि संस्कृत साहित्य में वर्णिक छंदों को विशेष अपनाया गया है। हिन्दी जैन काव्यों में पूजा-स्नात्र भजनादि से सम्बंधित पदों का देशी रागों पर सृजन किया गया है, जिनका जैन समाज में पूजा-स्ना्ा के समय उपयोग किया जाता है।

स्व० भगवत जैन के 'सफल जन्म' काव्य की निम्नलिखित पंक्तियों में मात्रिक छंद 'विधाता' का प्रयोग हुआ है। इसमें 14-14 की यति के साथ 23 मात्राएं होती हैं-

दो दिन का जीवन मेल, फिर खण्डहर सी नीरवता।
यश-अपयश बस दो ही, बाकी सारा सपना है।

1. डा० गौरीशंकर मिश्र-छन्दोदर्पण, पृ० 69.
2. वही, पृ० 52.

तुक के विशिष्ट क्रमायोजन (Arrangement of rhym) द्वारा तीन या चार चरण वाले अनुबंध या अनुच्छेद (Stanza) का निर्माण भी दिया गया है। इसमें मात्राओं की समानता की अपेक्षा तुकान्त का अधिक ध्यान रखा गया है—यथा—

घर घर चर्चा रहे धर्म की,
दुष्कृत दुष्कर हो जावे,
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना,
मनुज जन्म-फल सब पावें।

गणपति गोयलीय की 'छलना' कविता में अष्ठपदी शरण अन्त्यानुप्रास का उदाहरण उपलब्ध होता है। उनकी कविताओं में प्राय: छन्द के शिथिल रहते हैं तथापि अन्त्यानुप्रास होने से उनमें लय का क्रम बना रहता है। गेयता का गुण विद्यमान होने से छंद की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। श्री हुकुमचन्द भारिल्ल के पूजा-स्नात्र सम्बंधी स्तोत्रों व स्तवनों में, साधु-साध्वी द्वारा दैनिक धर्मचर्या के लिए प्रणित स्तवनों को छन्द के बंधन की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती, वैसे उनमें भाषा का लाघव, माधुर्य, लय-ताल, देशी राग या ढालों का आकलन होने से स्वत: ही सुंदर बन पड़ते हैं। ऐसे स्तवनों में छन्द की उपस्थिति हो या न हो, लय व प्रवाह ही प्रमुख अनिवार्यता बनी रहती है। भक्ति की भावना के साथ राग का माधुर्य सम्मिश्रित रहता है। 'कुसुमांजली' एवं 'पुष्पांजली' के पदों में यही बात देखी जा सकती है। मुनि रूपचन्द जी की छोटी-छोटी स्फुट रचनाओं में छंदहीनता होने पर भी भाषा के प्रवाह के साथ भावों की व्यंग्यात्मक सशक्त अभिव्यक्ति से ही आकर्षकता आ जाती है। इस संदर्भ में श्रीयुत अगरचन्द नाहटा जी का विचार है कि-राग-रागनियों का जैन विद्वानों को अच्छा ज्ञान था, यह तो उनके सैकड़ों पद, स्तवन, सझाय आदि रचनाओं से स्पष्ट है, पर उनकी सबसे बड़ी एवं उल्लेखनीय संगीत की सेवा तो यह है कि उन्होंने लोक-संगीत को शताब्दियों तक बड़े अच्छे रूप में जीवित रखा और प्रचारित किया। हजारों लोकगीतों को देशियों में उन्होंने अपनी ढालें, रास, चौपाई, आदि ग्रन्थ रचे हैं और अपनी उन रचनाओं के प्रारंभ में जिस लोकगीत का आदि पद एवं कुछ पंक्तियाँ उन्होंने उद्धृत कर दी हैं।[1]

परमेष्ठिदास की 'महावीर संदेश' कविता में चतुष्पद छंद का उदाहरण उपलब्ध है, जिसमें 16 और 14 पर विश्राम रहता है तथा अन्त में नहीं रह सकते। मत्त सवैया की दो मात्राओं को निकाल कर इसका आविष्कार किया

1. श्रीयुत् अगरचन्द नाहटा—संगीत मासिक पत्रिका—पृ० 49, मार्च 79.

गया है। भगवत जैन की 'नरकंकाल' कविता में भी यही छंद प्रयुक्त हुआ है–30 मात्राओं वाला चतुष्पद छंद 16-14 की यति के साथ-मत्त सवैया छंद का प्रयोग भी उनकी कविता में देखने को मिलता है।

ईश्वरचन्द्र की 'अर्चना' कविता मुक्त छन्द का उदाहरण है, जिसमें मंगल अन्त्यानुप्रास का ही तुकान्त रूप देखने को मिलता है। अतएव कविता में प्रवाह के साथ गेयता भी बनी रही है–यथा–

ओ वीतराग पुनीत
देव! तुमसे ही अलंकृत मुक्ति का संगीत।
अमा-निशि के गहन तम को भेद ज्योतिर्मान।
रश्मि कमनियाँ सरस, कोमल, चपल गतिमान।
लोक लहरों पर लिखें निर्वाण के मृदुगीत,
ओ वीतराग पुनीत

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि जैन काव्य में कवियों ने पारम्परिक छंदों का प्रायः प्रयोग किया है। 1970 ईस्वी के बाद की जैन मुक्तक रचनाओं में भिन्न तुकांत, रूपायत, अन्त्यानुप्रास, अतुकान्त आदि नूतन शैली के छंद तथा मुक्त छंद का प्रयोग भी मिलता है। 'नईम', दिनकर सोनवलकर, मुनि रूपचन्द आदि की भाव प्रधान मुक्तक रचनाओं में मानवता-वादी स्वर के साथ नूतन शैली का भी दर्शन होता है।

सप्तम अध्याय

आधुनिक हिन्दी-जैन-गद्य-साहित्य का शिल्प-विधान

प्रस्तुत अध्याय में हमें उपलब्ध हिन्दी-जैन-गद्य-साहित्य के शिल्प पर विचार करना है। गद्य के अंतर्गत लगभग सभी विधाएं-कथा, नाटक, निबंध, जीवनी, संस्मरण व आत्मकथा हैं।

आधुनिक युग में गद्य का प्रारंभ, महत्ता, एवं विकास का संक्षिप्त विवेचन हमने पिछले अध्याय में किया है, अत: यहाँ गद्य के लिए आवश्यक तत्त्वों के संदर्भ में संक्षिप्त विचार कर लेना समीचीन है। कविता और गद्य में मूल अन्तर यह है कि एक का वेग अत्यन्त क्षिप्र होते हुए भी छन्दोबद्ध रहता है, मर्यादित रहता है, जबकि दूसरा (गद्य) मुक्त रहकर गंभीर बना रहता है। एक में भावों की प्रधानता रहती है, तो दूसरे में विचार की प्रधानता। किन्तु जहाँ दोनों का आनुपातिक योग रहता है वहीं काम्य स्थिति बन जाती है। गद्य को कवि की कसौटी माना जाता है (गद्य कविता निकष: वदन्ति)। सुन्दर गद्य रचना करना किसी कवि की सफलता सिद्ध करता है। क्लेमेन्ट मेरी का गद्य-पद्य के शैलीगत अंतर के सम्बंध में विचार द्रष्टव्य है। 'काव्य की गति अति क्षिप्र और अधिक प्रेरणामूलक रहती है। उसमें विचार-प्रवाह छन्दों के कूलों में बंधकर अधिक सुनिश्चित और मार्मिक बन जाता है। परन्तु गद्य अनन्त महासागर की विस्तृत भूमिका लेकर चलता है, जहाँ विरोधी दिशाओं में बह जाना असंभव बात नहीं। + + + गद्य लेखन का बहुत बड़ा भाग होता, जिसमें विचार और भावना का आनुषंगिक समन्वय रहता है। कहीं विचार भावना पर हावी हो जाता है तो कहीं भावना विचार पर।[1] आधुनिक युग में गद्य-साहित्य की प्रत्येक विधा में भावना और प्रेरणा का स्थान विचार और तर्क ने ले लिया है। परिणाम स्वरूप हम देखते हैं कि जीवन और साहित्य में बौद्धिकता का महत्व विशेष हो गया है, भावना का ह्रास होता जा रहा है। वैसे गद्य का मूल लक्ष्य बौद्धिकता के साथ ज्ञानवर्द्धन का होता है। सफल गद्य के लिए सुगठित शैली एवं संतुलित तत्त्वों की उपस्थिति अनिवार्य-सी होती है। क्योंकि गद्य-शैली को हम भाषा की

1. द्रष्टव्य-सीस्टर क्लेमेन्ट मेरी-हिन्दी साहित्य का स्वातंत्र्योत्तर विचारात्मक गद्य, पृ० 261-271.

ऐसी अभिव्यक्ति मान सकते हैं, जो अनिवार्यत: लेखक की मनोवैज्ञानिक विशिष्टताओं को उद्भाषित करती है और अन्तत: विषय और लक्ष्य को वाणी देती है।[1] गद्य के तीन कार्य माने गये हैं, जिनका सम्बन्ध बुद्धि, कल्पना और संवेदना से है। ये तीनों ही भाषा-शैली के अंग हैं। भाषा और शैली की सार्थकता यही है कि हमारे विचार हमारी अनुभूति बन सके अथवा कल्पना पाठकों में जागृत हो सके और दोनों का प्रमाण संतुलित रहे। साहित्यकार जीवन की कुरूपता से समझौता नहीं करता। वह उसे सुंदर में बदलने की चेष्टा करता है। यह उपयोगितावादी दृष्टि है, परन्तु साहित्य यदि संस्कृति का वाहक है तो उसे यह सृष्टि लेकर चलना ही पड़ता है। द्विवेदी जी के शब्दों में 'साहित्य के उपासक अपने पैर के नीचे की मिट्टी की उपेक्षा नहीं कर सकते। हम सारे बाह्य जगत् को असुंदर छोड़कर सौंदर्य की सृष्टि नहीं कर सकते। सुंदरता सामंजस्य का नाम है।[2] क्रोचे की भांति डा॰ द्विवेदी जी साहित्य के मानसी सौंदर्य बोध को मात्र अभिव्यंजना नहीं मान सकते। वे उसे लोक-मंगल में प्रतिफलित देखना चाहते हैं। उनका ख्याल है कि साहित्य की साधना तब तक बन्ध्या रहेगी, जब तक हम पाठकों में ऐसी अदमनीय आकांक्षा जाग्रत न कर दें, जो सारे मानव-समाज को भीतर से और बाहर से सुंदर तथा सम्मान-योग्य देखने के लिए सदा व्याकुल रहे।[3] अत: साहित्य की सार्थकता या लोक कल्याण की प्रवृत्ति गद्य के द्वारा स्पष्ट अभिव्यक्त हो पाती है। उपन्यास, कहानी, नाटक या निबंध में साहित्यकार अपने भावों व विचारों को सुस्पष्ट रूप से सशक्त भाषा शैली के माध्यम से पाठक तक पहुँचा पाता है।

आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य के अंतर्गत प्राप्त उपन्यास साहित्य में तथा आधुनिक हिन्दी उपन्यास साहित्य में विषय वस्तु एवं उद्देश्य के दृष्टिकोण से काफी अन्तर दृष्टिगत होता है, लेकिन टेकनीक की दृष्टि से इन उपन्यासों पर आधुनिक शैली का प्रभाव अवश्य है, या यों कहिए कि विषय वस्तु से सर्वथा भिन्न ये उपन्यास चरित्र-चित्रण, संवाद, वातावरण, वर्णनात्मकता, भाषा आदि दृष्टिओं से आधुनिक परिवेश अवश्य ग्रहण किये रहते हैं। अत: इनके भीतर हमें इन सभी तत्त्वों का परीक्षण-निरीक्षण करना होगा, ताकि निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सके कि प्राचीन जैन ग्रन्थों से प्रसिद्ध कथावस्तु या काल्पनिक धार्मिक विषय वस्तु ग्रहण करके लिखे उपन्यासों में और सब तत्त्व विद्यमान हैं

1. Lane Cooper—'The Art of the Writer' : Introduction by Wiltelm Walkernage, p. 10.
2. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी–अशोक के फूल, पृ॰ 181.
3. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी–अशोक के फूल, पृ॰ 129.

कि नहीं? इससे पूर्व उपन्यास के आवश्यक तत्त्वों के सम्बंध में संक्षेप में देखा जाय तो अनुचित नहीं रहेगा।

उपन्यास जीवन की ही प्रतिच्छवि होने से जीवन की यथार्थता उसमें इच्छित रहती है। जीवन की सुंदरता, असुंदरता, सत्य, असत्य, घात-प्रतिघात, आशा-निराशा सब कुछ उसमें अंकित रहता है। जीवन और जगत् के व्यापक रूप को उपन्यास में प्रतिच्छवित किया जाता है। उपन्यास पद्य में महाकाव्य के निकट रहता है, जीवन की विविधता, विस्तृतता, वर्णनात्मकता, पात्रों की बहुलता आदि में साम्य है, लेकिन महाकाव्य काव्य का स्वरूप होने से वहां कल्पना को काफी अवकाश है, जब उपन्यास वास्तविक जगत् से सम्बंधित होने से यथार्थ को महत्व दिया जाता है। कल्पना तत्त्व को अवकाश नहीं है ऐसी बात नहीं, लेकिन यथार्थ का भी ख्याल रखा जाता है। जबकि नाटक के साथ विस्तार में समानता होते हुए भी काफी अंतर है। नाटक के तत्त्वों और उपन्यास के तत्त्वों में विभिन्नता, रंगमंच-वर्णन, वेश-भूषा, संवाद व उद्देश्य में देखी जाती है। नाटक दृश्य विधा है, जबकि उपन्यास पाठ्य विधा होने से इसमें लेखक के विचारों को विशेष स्थान मिल सकता है, जबकि नाटक में नाटक-कार सृष्टि से विधाता की तरह पूर्णतः पर्दे के पीछे ही रहता है। प्रत्यक्ष आने की कोई सत्ता उसे नहीं होती।

अपने वर्तमान रूप में उपन्यास पश्चिमी साहित्य की देन कही जायेगी। वैसे हमारे प्राचीन संस्कृत, अपभ्रंश साहित्य में कथा-कहानियाँ मिलती हैं, लेकिन आधुनिक कथा-साहित्य का रूप रंग पश्चिम के इसी साहित्य से पूर्णतः प्रभावित है, प्राचीन कथा साहित्य की टेकनीक से नहीं। आज उपन्यास अंग्रेजी (Novel) शब्द के पर्याय में व्यवहृत होता है। उपन्यास की विशेषता पर प्रकाश डालते हुए क्लेरारीव ने जो विचार व्यक्त किये हैं, वे काफ़ी महत्वपूर्ण हैं–उपन्यास यथार्थ जीवन और व्यवहार का तथा उस युग का जिसमें वह निर्मित हुआ एक चित्र है। उन्नत और उदात्त भाषा में रोमान्स उन सबका वर्णन करता है जो न कभी घटित हुए है और न जिनके घटित होने की संभावना है। उपन्यास उन परिचित वस्तुओं का वर्णन करता है, जो प्रतिदिन हमारे सामने घटित होती हैं, जो हमारे या मित्रों के अनुभव की हैं। उपन्यास की परिपूर्णता इसी में है कि वह हरेक दृश्य का वर्णन ऐसे सहज सरल रूप में करे कि वह पूरी तरह संभाव्य हो उठे और हमें (कम से कम उपन्यास पढ़ते समय) यथार्थ की प्रतीति या भ्रम होने लगे। हम सोचने लगे कि उपन्यास के पात्रों के सुख-दुःख हमारे हैं।' इसीलिए उपन्यास यथार्थ जीवन का काल्पनिक चित्र

कहा जाता है। 'मनुष्य की जीवनधारा चिर प्रवाहशील, प्रगतिशील है। देश और काल के अनुसार उसमें सदैव परिवर्तन हुए हैं। उसके क्रिया-कलाप, पारस्परिक व्यवहार, मनोदशा, रागात्मक आकर्षण-विकर्षण के रूप-एवं क्षेत्र समय के प्रवाह में बदलते रहे हैं। उसके मन पर असंख्य संस्कार पड़ते गये हैं, मनो-ग्रंथियाँ बनती गई हैं और उसके व्यवहार में विविधता, विचित्रता आती गई है।[1] उपन्यास आज के प्रगतिशील मानव को यथार्थ परिवेश में चित्रित करने का प्रयत्न करता है। युगीन संदर्भों में उपन्यास जैसी गद्य की सशक्त विधा से अनेकविध अपेक्षाएँ रखी जाती हैं और वह भी इस क्षेत्र में प्रगतिशील है। उपन्यास विधा की चर्चा से गद्य के शिल्प विधान का प्रारंभ करते समय उपन्यास के प्रमुख तत्त्वों को यदि संक्षेप में देख लिया जाय तो अनुचित नहीं होगा।

कथा वस्तु :

मनुष्य का जीवन गतिशील व कर्मशील होने से घटनाएं व्यापारों तथा क्रियाकलापों के बीच बहते हुए जीवन की विविध घटनाएं-आंतरिक व बाह्य-उपन्यास की कथा वस्तु के लिए अनेक रूप धारण कर लेती हैं। इसी विषय वस्तु की संघटना के निर्वाह में उपन्यास की कला निहित होती है। वैसे हमारा जीवन, जीवन की घटनाएँ, क्रम सब कुछ अप्रत्याशित या विशृंखलित होता है, क्रमबद्ध कुछ नहीं होता, अतः क्रमबद्ध घटनाओं से युक्त ही कथावस्तु हो, ऐसी आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। फिर भी लेखक के लिए यह सुविधा रहती है कि अनिश्चित स्वच्छन्द जीवन-क्रम की घटनाओं जैसे कुछ विशिष्ट घटनाओं को चुनकर उन्हें सुनिश्चित ढंग से शृंखलाबद्ध कर पाठक को रोचक कथा वस्तु का आनंद आस्वाद कराये। हेनरी जोन्सन अपने विचारों को इस संदर्भ में व्यक्त करते हुए लिखतं हैं कि–अगर किसी लेखक की बुद्धि, कल्पना कुशल है, तो वह सूक्ष्मतम भावों से जीवन को व्यक्त कर देती है। वह वायु के स्पन्दन को जीवन प्रदान कर सकती है। लेकिन कल्पना के लिए कुछ आधार अवश्य चाहिए।

कथा वस्तु के शिल्प विधान की दृष्टि से उपन्यासों के दो भेद किए जाते हैं, एक तो वे जिनकी कथा असम्बद्ध या शिथिल होती है (novels of loose plot) और दूसरा वे जिनकी कथावस्तु सम्बद्ध या सुगठित (novels of oragenic plot) पहले में बहुत-सी घटनाओं का घटाटोप मात्र होता है, उनमें आपस में कोई सहज अथवा तर्क संगत प्रायः नहीं होता। वर्णनान्विति (unity

1. शिवनारायण श्रीवास्तव : 'हिन्दी उपन्यास', पृ० 439.

of narrative) कार्य-कलापों पर नहीं निर्भर करती वरन् नायक के व्यक्तित्व पर निर्भर करती है। नायक ही उन बिसरे हुए सूत्रों, तत्त्वों और घटनाओं में सम्बंध स्थापित करता है। और चरित्र को लेकर उपन्यास के भिन्न-भिन्न अवयवों का ढांचा खड़ा किया जाता है। ऐसे उपन्यासों में लेखक की इच्छा का प्रतिबिंब मात्र होता है। भिन्न-भिन्न घटनाओं में कोई युक्ति संगत है या नहीं, इस पर उसका ध्यान नहीं रहता। सुगठित कथा वस्तु में घटनाएं एक दूसरी से इस प्रकार सम्बंधित रहती हैं कि वे साधारणतः अलग नहीं की जा सकतीं और सब अंतिम परिणाम या उपसंहार की ओर अग्रसर होती हुई उसको ऐसा रूप प्रदान करती हैं कि उसके भिन्न-भिन्न अवयव एक दूसरे से मिले हुए प्रतीत होते हैं। ऐसे उपन्यासों की रचना एक व्यापक विधान के अनुसार की जाती है और उनकी सफलता घटना-समूहों पर निर्भर रहती है। फिर भी इन दोनों का भेद बहुत साधारण है।

चरित्र-चित्रण :

उपन्यास में चरित्र-चित्रण भी अत्यन्त महत्व का तत्त्व है। इसीलिए प्रेमचंद जी को कहना पड़ा कि—'मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ।' उपन्यास की कला का उद्देश्य, सफलता-असफलता, उत्कृष्टता-निकृष्टता आदि सभी इसी अंग पर विशेष निर्भर करता है। उपन्यास के पूर्वकथित समस्त तथ्यों का मूलाधार एक मात्र चरित्र ही तो है। सफल चरित्र वस्तु उपन्यास को ऊँची कोटि तक पहुँचाता है। उपन्यासकार की मनः कल्पित सृष्टि में यदि हम अपनी वास्तविक सृष्टि की अनुरूपता न पा सकें, यदि इस नवीन सृष्टि के पात्र हमें किसी अनजाने देश के लगें और यदि उनके साथ हमारी वैसी ही सहानुभूति न हो सकी, जैसी अन्य मानवों के साथ होती है, तो वे मानव सृष्टि के चित्र नहीं, किसी अन्य सृष्टि के भले हों। उपन्यास के चरित्रों के सुख-दुःख हमारे सुख-दुःख जैसे प्रतीत हों तभी वे मानव के सफल चित्र कहे जा सकते हैं। 'चरित्रांकन की सफलता तो यह है कि पुस्तक बंद कर देने तथा सूक्ष्म विवरण भूल जाने पर भी उसके पात्र हमारी स्मृति में जीवित रह सकें। यह सजीवता तभी आ सकती है जब उपन्यासकार मानवता की सामान्य पीठिका पर अपनी कल्पना की कूंची से रूप उकेरें, रंग भरे, जिसमें न तो अतिरंजना ही हो, और न ही अव्याप्ति हो।'[1]

उपन्यास में विस्तृत वर्णन, काल्पनिक वा यथार्थ चित्रों तथा मनोविश्लेषण के द्वारा पात्रों की मनःस्थिति, विचार-व्यवहार स्वाभावादि का परिचय परोक्ष या

1. शिवनारायण श्रीवास्तव : 'हिन्दी उपन्यास', पृ० 448.

प्रत्यक्ष रूप से पाठकों को मिलता है। उपन्यास के प्रारंभिक युग में और बाद में प्रेमचन्द युग में भी उपन्यासकार प्रत्यक्षत: चरित्रांकन में सहायक होते थे, लेकिन आज के मनोवैज्ञानिक युग में लेखक विश्लेषण पद्धति से उनके भीतर प्राण-शक्ति संजोकर उसे जीवन के प्रांगण में आंख-मिचौली खेलने के लिए छोड़ देते हैं। उनकी अच्छाई-बुराई, आवेग, विवशता, यौन-कुंठाएं सभी विश्लेषणात्मक ढंग से प्रस्तुत करते जाते हैं। अत: पाठक-पाठक के बीच कोई पर्दा नहीं। जीवन के घात-प्रतिघात में बहता हुआ पात्र स्वयं अपनी दुर्बलता-सबलता को अनावृत्त करता है, उजागर करता है। आजकल पात्रों के आदर्शवादी अंकन की अपेक्षा बिल्कुल यथार्थपरक अभिव्यक्ति पाठक व लेखक दोनों को अधिक सुगम, सुरेख व स्वाभाविक प्रतीत होती है। रुचि समय की अनुगामिनी होती है, अत: आधुनिक युग में चरित्र-चित्रण में काव्यों की काल्पनिक कला के बदले लोक-प्रतिबिंब को कथा-साहित्य की अनुभूति बनाने की वृत्ति को विशेष महत्व मिला है। आज के वातावरण में पात्रों की चरित्र-विकास पद्धति में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह भी देखा जाता है कि उसके बाह्य विकास व व्यवहार के बदले उसके अन्तर्मन की यात्रा का अन्तर्द्वन्द्व अधिक सूक्ष्मता से अभिव्यक्त किया जाता है। पात्र की भीतरी उलझन और प्रवृत्तियों से विशेष परिचय प्राप्त होता है। अत: कथा वस्तु की ओर लेखक का ध्यान या आकर्षण कम रहता है। फिर भी कथा वस्तु का अपना पूर्ण महत्व कथा-साहित्य में रहता है, चाहे प्रस्तुत करने के ढंग भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। दोनों एक-दूसरे के पूरक व गति प्रेरक हैं, कथा वस्तु के घात-आघात व क्रियाशीलता से पात्र का व्यक्तित्व बनता-बिगड़ता है व पात्र की क्रियाएँ, चेष्टाएँ कथा वस्तु को जीवन्तता, सूक्ष्मता व गति प्रदान करता है।

कथोपकथन :

कथावस्तु को गतिशील तथा पात्रों के चरित्र-चित्रण में सहायक बनने का सौभाग्य कथोपकथन को अवश्य प्राप्त होता है। कथा साहित्य के किसी रूप में संवादों का महत्व कभी कम हुआ नहीं है और होगा भी नहीं। छोटे-छोटे लाक्षणिक, मार्मिक संवादों से न केवल कथा रोचक बनती है, बल्कि पाठक के साथ निकटता पैदा कर प्रमुख पात्रों की विशिष्टताओं पर प्रकाश भी डांला जाता है। आलोंबेट्स कथोपकथन की विशेषता के लिए उचित ही कहते हैं कि–Composition which produces the effect of human talk as nearly as possible the effect of conversation which is overheard.[1] किसी

1. आलोंबेट्स–'The on writing of English', Siriz-1, p. 130.

भी उपन्यास या कथा साहित्य की सफलता के लिए यह अत्यन्त आवश्यक रहता है कि कथोपकथन कहीं नीरस या अधिक लम्बे न हो जाने चाहिए। सरलता, मधुरता एवं प्रवाह भी अन्तर्गत रहने चाहिए। दैनिक जीवन में हम जिस प्रकार की बातचीत करते हैं, उन्हीं का संनिष्ठ अंकन होना चाहिए। लम्बे-लम्बे स्वकथनों व संवादों से यथाशक्ति बचना चाहिए, ताकि पाठक ऊब न जाय और फिजूल का समय बरबाद न हो। अधिक स्वकथनों से कथा प्रवाह में तथा चरित्र-विकास में बाधा पैदा होती है। अतः आवश्यक कथनों को ही सुंदर रूप से कथा के भीतर लेखक स्थान दे। अनर्गल, असम्बद्ध व विशृंखल संवाद कभी कथा के लिए उपकारक नहीं होते। लेखक को अपने विचार, उद्देश्य या सिद्धान्तों को संवादों के मध्य में प्रस्तुत करना युक्ति संगत नहीं होना चाहिए या वह अनधिकार चेष्टा कहलायेगी। इसीलिए अलोंबेट्स ने कहा है कि–"The use of question mark does not convert a passage into dialouge." (अर्थात् 'उद्धरण चिह्न लगा देने से ही कोई उक्ति कथोपकथन नहीं हो जाती।)

देशकाल या वातावरण :

उपन्यास की पूरी सृष्टि-कथावस्तु, पात्र व कथन सबको-अधिक सजीव सक्षम व सुसंगत बनाने के लिए देशकाल या बाह्य परिस्थितियों के चित्रण का महत्व काफी आंका जाता है। आधुनिक कथा-साहित्य में केवल बाह्य परिस्थिति का ही नहीं, वरन् प्रमुख पात्रों की आंतरिक परिस्थितियों का जीवंत अंकन भी अपेक्षित रहता है या आवश्यक-सा ही बन गया, कहीं-कहीं तो यह भीतरी वातावरण की मुखरता में बाह्य वातावरण बेचारा चुप-सा रह गया। वैसे देशकाल के अंतर्गत कहानी और उपन्यास के सभी बाह्य उपकरण जैसे आचार, विचार, रीति-नीति, रहन-सहन, प्राकृतिक-पीठिका और परिस्थिति आदि का समावेश होता है। सामाजिक परिस्थितियों के चित्रणों में सफलता का अंश कथाकार के वर्णनों की यथार्थता, सूक्ष्मता एवं प्रभावोत्पादकता के बल पर निर्भर रहता है। भौतिक वातावरण की कथा को अधिक मार्मिकता तथा कथा-पात्रों को सफलता मिलती है। कथावस्तु की पाश्चात् भूमिका का परिचय वातावरण की स्वाभाविक स्थिति से पाठक को प्राप्त हो जाना है। लेकिन बाह्य वातावरण को अधिक निरुद्देश्य स्थान देने से बचना चाहिए, ताकि निरर्थक वर्णनों से कथा वस्तु का प्रवाह अवरुद्ध न हो या वह समूचा नीरस न बन जाये। इसका मतलब यह कदापि नहीं है कि वर्णनों को कथा में स्थान नहीं देना चाहिए। रोचक, जीवंत व कलात्मक वर्णनों से कथावस्तु, पात्र सभी में रमणीयता पैदा हो जाती है। वातावरण के सफल तथा मनोरम्य चित्रणों पर से तो कथा साहित्य का मूल्य

निर्धारित होता है। कहीं-कहीं प्राकृतिक वर्णनों में प्रतीकात्मकता का उपयोग भी लेखक करता है, जो अधिक ग्राह्य भी होते हैं। अतः वास्तविकता, सौंदर्य, विस्तार व गांभीर्य पैदा करने के लिए कथा के अनुरूप वातावरण, वर्णन सदैव आवकार्य होना चाहिए।

भाषा-शैली :

उपन्यास का यह तत्त्व बाह्य तत्त्व होने पर भी काफी महत्व रखता है। उपन्यासकार की भाषा-शैली पात्रानुकूल व प्रसंगानुकूल होने के साथ उसमें स्वाभाविकता, सरलता, लाघवता, व माधुर्य का गुण भी साथ में अपेक्षित रहता है। शैली की जीवन्तता, मार्मिकता एवं तर्क संगतता पर लेखक की कसौटी होती है। जितनी अधिक स्वाभाविकता व सरसता रहेगी, भाषा शैली में उतना अधिक निखार व मौलिकता का दर्शन होता है। व लेखक की भिन्न-भिन्न श्रेणियाँ इन्हीं की बदौलत हो जाती हैं। आधुनिक युग में तो विविध शैलियों से कथा साहित्य का सृजन किया जाता है। कहीं-कहीं भाषा शैली लेखक के अपने विचार-सिद्धान्त के अनुकूल रहती है, जिसमें कथा वस्तु और पात्र-विश्लेषण में निरर्थकता और नीरसता आ जाती है। जबकि पात्रानुकूल भाषा के स्वरूप से पात्रों की भिन्न-भिन्न परिस्थितियाँ व स्तर तुरंत स्पष्ट होकर उजागर हो जाते हैं। शैली की नूतनता से पाठक बंध-सा जाता है और रोचकता बनाये रखने की आवश्यकता अपने आप आ जाती है। जिस प्रकार कथा के आंतरिक मूल तत्त्वों का विशिष्ट महत्व है, बिना उसके कथा का सृजन संभव नहीं, इसी प्रकार बाह्य तत्त्व के रूप में भाषा-शैली शिल्पगत विशिष्टताओं का भी अपना विशिष्ट स्थान है। भाषा-शैली की साज-सज्जा, चमक-दमक, कोमलता, स्वाभाविकता, ध्वन्यात्मकता, मनोवैज्ञानिकता के बिना उपन्यास फीका, रूप-रसहीन रह जाता है। रमणीयता एवं रोचकता का गुण भाषा शैली की नूतनता, स्वाभाविकता सुन्दरता पर ही अवलंबित है।

उद्देश्य :

सभी रचनाओं में प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से उद्देश्य तत्त्व संलग्न रहता है। उद्देश्य रहित स्वकृति प्रायः पाठक को कम अपील करती है। जीवन की विविध अनुभूतियों में से किसी न किसी की अभिव्यक्ति लेखक करता है। उपन्यास में भी जीवन के किसी अंश या आदर्श की, या विचारधारा की व्याख्या या विश्लेषण अन्य तत्त्वों के जरिये से करता है। जीवन-दर्शन का अभिगम सूक्ष्मतः उपन्यासकार व्यक्त करता है, तो रचना का सौन्दर्य बढ़ता है लेकिन मुखर हो जाता है तो उपन्यास की रसात्मकता में बाधा पहुंच जाने से निबंध या दर्शन

ग्रन्थ की प्रतीती होती है। उपन्यास में लेखक चरित्रों के मनोवेगों, उनकी समस्याओं के द्वारा कथा के विभिन्न प्रसंगों तथा पहलुओं के द्वारा मानव-मन तथा जगत् के सत्यों और समस्याओं का सुन्दर समाहार और विश्लेषण परोक्ष रूप से व्यक्त करता है तब वह आकर्षक और ग्राह्य हो जाता है। साधारण रचना में भी उसके पात्रों या घटनाओं में नैतिक भावना या जीवन दर्शन की झलक मिल ही जाती है। जगत् व जीवन के प्रति अनुभूत सत्यों का ज्ञानबोध लेखक कहीं न कहीं अभिव्यक्त किये बिना नहीं रहता है, आवश्यकता है केवल उनको कलात्मक, रुचिपूर्ण ढंग से निहित करने के कौशल की। इसका तात्पर्य यह नहीं कि उपन्यास में कोई पूर्व निश्चित उद्देश्य या जीवन दर्शन रहना ही चाहिए। कभी तो वह जाने-अनजाने ही लेखक की जीवन-जगत् से सम्बंधित भावनाएं, क्रिया-प्रतिक्रियाएँ पात्रों व प्रसंगों के द्वारा स्वयं ही उद्घाटित हो जाती है, क्योंकि किसी सिद्धान्त, सत्य या दर्शन को प्रतिपादित करने के लिए या खण्डन-मण्डन करने के लिए लेखक उपन्यास की रचना नहीं करता। 'वह तो मानव-जीवन का निरीक्षण करके केवल उसके बहुत से छाया-चित्र उपस्थित करता है। इन छायाचित्रों में ही वह मूलभूत सत्य लिपटा होता है, जिसे ढूंढ निकालना आलोचक का काम होता है। अतएव, किसी भी बड़े उपन्यास में केवल लेखक के मानव-जीवन सम्बंधी निरीक्षण मात्र होते हैं, जिनमें सर्जन-शक्ति निहित होती है। इन्हीं निरीक्षणों का मनन तथा प्रतिपादन करके एक नित्य सत्य का सर्जन होता है। उपन्यासों में जीवन दर्शन का यही अर्थ है।[1] + + + उपन्यासों में जीवनी की व्याख्या का विचार हमें दो प्रकार से करना चाहिए, एक तो उनके आधार पर और दूसरे उनमें निहित सदाचार, धर्म अथवा आदर्श के आधार पर। इसी से यह विवाद उपस्थित होता है कि उपन्यास के उद्देश्य में नीति का निरूपण आवश्यक है या नहीं, लेकिन इसकी चर्चा हमें यहाँ अपेक्षित नहीं है। कथा साहित्य के शिल्प विधान के अंतर्गत हमने देखा कि इसके प्रमुख तत्त्वों के रूप में कथा वस्तु, चरित्र-चित्रण, संवाद, वातावरण, भाषा शैली व उद्देश्य रहते हैं। निबंध, जीवनी, समालोचना, आत्मकथा, पत्र-डायरी भी गद्य के महत्वपूर्ण विविध स्वरूप ही हैं, लेकिन इनके शिल्प विधान में भिन्न तत्त्वों का सहयोग रहता है; जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे। यहाँ आलोच्यकालीन आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य के उपलब्ध उपन्यास साहित्य के शिल्प विधान का परीक्षण करना उचित है।

सर्वप्रथम गोपालदास बरैया कृत 'सुशीला' उपन्यास प्राप्त है। उसे हम

1. शिवनारायण श्रीवास्तव : हिन्दी उपन्यास, पृ॰ 455-456.

भाषा-शैली, वातावरण, संवाद, चरित्र-निरूपण आदि दृष्टि से आधुनिक युग की कृति के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। फिर भी उसकी संपूर्ण 'टेकनीक' आधुनिक वातावरण, वर्णन-प्रणाली एवं विचारधारा के अनुरूप नहीं प्रतीत होती। इसके बहुत-से कारण हो सकते हैं। (1) लेखक सोद्देश्य उपन्यास लिखने बैठे हैं, धार्मिक शिक्षा, दीक्षा व संस्कार आधुनिक पीढ़ी में फैले इस हेतु उन्होंने सज्जन, संस्कारी, धार्मिक तथा दुर्जन, असंस्कारी, उद्दंड दो प्रमुख नायक-प्रतिनायक की काल्पनिक सृष्टि की। नारी के भीतर भी संयम, लज्जा, चारित्र्य, धर्म भावना, सहिष्णुता, शीलव्रत, सुकुमारता व विनय आदि गुणों का प्रसार हो, इस नीति के अनुसार उन्होंने सुशीला नायिका का चरित्र प्रस्तुत किया है। स्वयं लेखक इस उपन्यास की आवश्यकता व उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं कि–वर्तमान समय में पाठकों की रुचि उपन्यासों की ओर दिन-प्रतिदिन झुकती जाती है। अनेक लोगों को तो व्यसन-सा हो गया है कि थाली परोसी हुई रखी रहती है, परन्तु बाबू साहब उसकी ओर देखते ही नहीं हैं। हमारे जैन समाज में भी उपन्यास के सैकड़ों भक्त हैं, परन्तु वे व्यर्थ समय खोने और भिन्न धर्म और भिन्न वासनाओं से वासित हृदय होने के सिवाय, कुछ लाभ नहीं उठा सकते हैं। ऐसी अवस्था में उपन्यासों के द्वारा लोगों को यदि चरित्र संशोधन की तथा धर्म श्रद्धा की शिक्षा दी जाये तो सहज ही में बहुत-सा लाभ हो सकता है। इस विचार से तथा संसार का झुकाव किस ओर को हो रहा है, यह देखकर इस उपन्यास लिखने का प्रारंभ किया गया है।[1] ग्रन्थकर्ता ने इस उपन्यास की रचना जैन धर्म के अपूर्व सिद्धांत-रत्नों को कथा के प्रवाह में मिला दिये हैं। जैन धर्म के तत्त्वों का स्वरूप नायक जयदेव, रतनचंद मुनि एवं सुशीला के कथनों, विचारों में दिखाई पड़ता है। इसलिए स्वाभाविक है कि जैन धर्म के बल्कि सामान्यत: सभी धर्मों के प्रमुख सिद्धान्त जैसे सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा, अपरिग्रह, समानता, संयम आदि के विषय में चलती चर्चा-विचारधारा को सभी जानें-समझें, अनुभव कर सकें, यह प्रमुख उद्देश्य रहा है। लेकिन जैन धर्म की दार्शनिक परिभाषा में इन तत्त्वों का उल्लेख हुआ है, वहाँ पाठक गांभीर्य या कठिनता अनुभव करता है, जो बिल्कुल स्वाभाविक है। (2) दूसरी बात यह है कि कथा वस्तु ऐतिहासिक, काल्पनिक, पौराणिक या तो आधुनिक वातावरण या मानस के अनुकूल सामाजिक या व्यक्तिपरक भी नहीं है। अत: आधुनिक वातावरण में ऐतिहासिक पात्रों की नामावली या राजा-महाराजाओं, राजकुमारों के क्रिया-कलापों का मेल नहीं बैठता। कथानक यदि पूर्णत:

1. गोपालदास बैया–सुशीला उपन्यास-भूमिका, पृ॰ 2.

ऐतिहासिक होता तो तत्कालीन परिवेश, परिस्थितियों और वातावरण को अनुभव करने के लिए पाठक उत्सुक रहता, कुछ जानने के लिए उसे आधार मानता और उस काल के साथ तन्मय होकर उस ऐतिहासिक स्पन्दनों को अपने भीतर भोग कर रसास्वादन कर पाता है। आधुनिक-सम सामायिक वातावरण के साथ तो उसका मानसिक रूप से तादात्म्य हो ही जाता है। स्वाभाविक रूप से अपने वातावरण को अनुभूत कर पाने में कठिनाई या विचित्रता कम लगती है। (3) तीसरी विशेषता यह कभी हय कही जायेगी कि ऐतिहासिक पात्रों व कथा वस्तु के साथ अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग उपयुक्त नहीं प्रतीत होता, उर्दू-संस्कृत के शब्दों का प्रयोग नहीं खलता है, जितना अंग्रेजी शब्दों का। (4) चौथी बात उपन्यास को कम आकर्षित करने वाली यह है कि जैन सिद्धान्तों का विवेचन उपन्यासकार ने प्रत्यक्षत: किया है, जो सामान्य और जैनेतर पाठकों को ऊबाते हैं। लेखक का मुख्य प्रयोजन धार्मिक वातावरण, विचार व दर्शन का प्रसार ही है, यह स्वीकार होने पर भी यदि कलात्मक ढंग, सुग्राह्य कथावस्तु के साथ स्वाभाविक ढंग से होता तो विशेष ग्राह्य हो पाता। इनके अतिरिक्त एक बात यह भी उल्लेखनीय है कि यदि लेखक ने जैन जगत् की किसी प्रसिद्ध व्यक्ति या ऐतिहासिक कथा वस्तु लेकर रचना की होती तो अपने उद्देश्य में अधिक सफलता प्राप्त हो सकती या आधुनिक समाज से कथा का बीज या वातावरण ग्रहण किया होता तो स्वाभाविक रूप एवं सरलता रहती।

इस उपन्यास में कथा वस्तु की रोचकता, जिज्ञासा तथा प्रवाह बनाये रखने के लिए आगे का प्रसंग पहले कहकर बाद में विस्तृत रोचक वर्णन उपन्यासकार ने किया है। लेखक की यह लेखन-पटुता ही मानी जायेगी कि जैन विचारधारा का पृष्ठ-पृष्ठ पर दिग्दर्शन कराने पर भी कथा का प्रवाह-क्रम कहीं टूटता नहीं है, या रस-प्राप्ति में कहीं बाधा नहीं खड़ी होती। सूक्ष्म वैशिष्ट्य एवं पांडित्य पूर्ण इस रचना में लेखक ने कला-कौशल से पाठक की जिज्ञासा को अंत तक निभाये रखी है। यहाँ केवल मनोरंजक कथा ही नहीं है, ...न्तु शिक्षा रूपी रत्नों का भंडार है।[1]

प्रस्तुत उपन्यास की कथा वस्तु का विवेचन अन्यत्र किया जा चुका है। ...ाँ केवल एक तथ्य उल्लेखनीय है कि उपन्यासकार ने कथा वस्तु को रोचक ...ने का पूर्ण प्रयास किया है और महद अंश में सफल भी हुए हैं। केवल ...वां, ग्यारहवां और तेरहवां सर्ग धार्मिक चर्चा से पूर्ण होने से कथा क्रम में ...क बनते हैं। तात्त्विक भूमि का पर प्रस्तुत उपन्यास का अनुशीलन वांछित

...ष्टव्य-सुशीला-उपन्यास, मूलचन्द कापड़िया का प्रकाशकीय कथन, पृ० 6.

है। कथावस्तु की भांति प्रमुख पात्रों के चरित्र-चित्रण के सन्दर्भ में भी हम विचार कर चुके हैं कि बरैया जी ने अपनी कृति में पात्रों का मानसिक सूक्ष्म विश्लेषण नहीं किया है, बल्कि नाट्यात्मक ढंग से प्रत्यक्ष रूप से ही प्रमुख पात्रों को प्रस्तुत किया है। चरित्र-चित्रण में आधुनिक शिल्प की अपेक्षा प्राचीन पद्धति का निर्वाह विशेष किया है, तो हम प्रमुख पात्रों के रूप-वर्णन में देख सकते हैं।[1] अतएव, यहाँ हम उपन्यास के शिल्प विधान के प्रमुख अंग संवाद, भाषा-शैली के सम्बंध में विचार करेंगे।

संवाद :

'सुशीला' उपन्यास संवाद की दृष्टि से अत्यन्त सफल व रोचक उपन्यास कहा जायेगा। इसके संवाद छोटे-छोटे तथा पात्रों की विशेषताओं पर प्रकाश डालने वाले हैं। कहीं-कहीं तो दो पात्रों की बातचीत से कथा वस्तु को तो गति मिलती है, लेकिन अन्य चरित्रों पर भी प्रकाश पड़ता है। संवाद कथा-साहित्य का महत्वपूर्ण तत्त्व कहा जाता है। अन्तर्बाह्य दोनों रूप से इसकी आवश्यकता बनी रहती है। एक ओर से यह रचना को आकर्षक व जीवंत बना देते हैं, दूसरी ओर चरित्र-चित्रण एवं कथावस्तु को आगे बढ़ाने में सहायक होते हैं। कहीं-कहीं नाटक की तरह लम्बे-लम्बे स्वगत कथन भी आते हैं, जो लम्बे होने पर भी सोद्देश्य होने से खलते नहीं हैं। राजकुमारी सुशीला के पिता राजा विक्रम सिंह पुत्री के लिए भावि वर की चिंता करते हुए जयदेव के सम्बंध में दो पृष्ठ तक सोचते ही रहते हैं। स्वगत कथन का एक अंश देखिए-'मैं अनेक राजकुमार को देख चुका हूँ, परन्तु उनमें से किसी ने भी मुझे संतोष नहीं पहुँचाया है। उन सबमें बहुत थोड़े और विरल गुण पाये गये हैं। परन्तु जयदेव के गुणों की गिनती ही नहीं हो सकती। एक दया ही उसके हृदय में ऐसी शक्तिशालिनी और सुन्दर है कि अन्य गुणों की उसमें अपेक्षा ही नहीं है। वीर पुरुष का उन्नत हृदय ऐसी दया से शोभायमान रहना चाहिए, जिसका कि जयदेव ने मुझे उपदेश दिया था और जिसे वह स्वयं अहर्निशि धारण किये रहता है। उस रात जयदेव के वार्तालाप में तर्क बुद्धि की प्रखरता, काव्य रुचिरता और व्यवहार-कुशलता के साथ-साथ राजनीति की जैसी योग्यता प्रकट हुई थी, वैसी योग्यता वर्तमान में अन्य किसी राजकुमार में भी प्राप्त होगी, यह कल्पना मात्र है।[2] जयदेव और भूपसिंह के निम्नोक्त संवाद से विक्रमसिंह की चारित्रिक विशेषता प्रकट होती है।

1. द्रष्टव्य-गोपालदास बरैया कृत-सुशीला उपन्यास, पृ० 164.
2. सुशीला-उपन्यास, पृ० 83.

जयदेव :

यदि आप कुछ समय पहले आ जाते तो अच्छा होता। सहज की विलासपुर के नरेश से भेंट हो जाती। मैं उन्हें अभी पहुँचा के आ रहा हूँ। बड़े सज्जन नरेश हैं।

भूपसिंह :

विलासपुर नरेश के दर्शन तो मुझे कभी नहीं हुए, परन्तु पिता जी से उनकी बहुत प्रशंसा सुनी है। कहते हैं बड़े उदार हृदय, दृढ़-प्रतिज्ञ और पराक्रमी राजा हैं। खेद है कि मैं ऐसे अच्छे एकान्त अवसर में उनसे न मिल सका। अस्तु, पर यह तो कहिए कि वे आपकी इस एकान्त विद्या-कुटीर में आये कैसे?[1]

जबकि सुशीला, रेवती व चंद्रिका के संवादों से चपलता, मस्ती, हंसी-मजाक का वातावरण पैदा होने से उपन्यास को जीवंत बनाने में सहायता मिलती है। प्रारंभ में सुशीला के माता-पिता की बातचीत से सुशीला के गुणों का दिग्दर्शन हो जाता है, एवं जयदेव के गुणों की बारीकियाँ प्रस्फुटित होती हैं।

वातावरण :

इस उपन्यास में पं॰ गोपालदास जी ने प्राकृतिक वातावरण का सुन्दर चित्रण जगह-जगह पर किया है। प्रकृति के कोमल सौन्दर्य के साथ उनकी भीषणता, नीरवता, आदि का भी वर्णन किया है। मानव-जगत् की बाह्य सृष्टि का वर्णन यत्र-तत्र मिलता रहता है, लेकिन भीतरी वातावरण का वर्णन लेखक ने प्राचीन ढंग से किया है। पात्रों की सोच-विचार प्रक्रिया से उसकी उथल-पुथल, संघर्ष, ऊहापोह आदि का यहाँ नितान्त अभाव है, अत: मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से आन्तरिक जगत् के चित्रण को यहाँ स्थान नहीं मिला है। इसके साथ ही किसी समय विशेष की ऐतिहासिक विषय वस्तु न होकर भी राजा-महाराजा, राजकुमार-राजकुमारी, शत्रु, दूत, युद्ध आदि का वर्णन बाह्य रूप से राजसी वातावरण खड़ा कर देता है। लेखक ने राजकीय जासूसी, कपट, खटपटों तथा युद्धों का हूबहू चित्रण किया है लेकिन पूर्णत: ऐतिहासिक वातावरण का प्रभाव नहीं जम पाया है। सामाजिक दृष्टि से रीति-रिवाज, व्यवहार, बोल-चाल, रहन-सहन, धर्म आदि में भी यह विशेषता लक्षित नहीं होती, जिससे उपन्यास न शुद्ध सामाजिक रहता है और न राजकीय, बल्कि दोनों का मिश्र प्रभाव पाठक के चित्त पर पड़ता है। सबसे आकर्षक चीज इसमें प्राकृतिक रमणीयता का है। यह पहले उल्लेख कर दिया गया है। (विषय वस्तु

---

1. सुशीला-उपन्यास, पृ॰ 78.

के संदर्भ में) कि इस उपन्यास के प्रत्येक 'सर्ग का'[1] प्रारंभ मधुर, स्वाभाविक प्रकृति वर्णन से ही होता है, चाहे रात्रि का, चन्द्रोदय, सूर्योदय, सूर्यास्त, उषा का, सांध्य बेला का वर्णन हो–लेकिन प्रकृति यहाँ स्वतंत्र न होकर उद्दीपक के रूप में ही आई है। पात्रों की मनोदशा को अभिव्यक्त करने के लिए प्रकृति भी उसी रंग में रंगी मिलती है, लेकिन कहीं-कहीं पशु-पक्षी की केलि क्रीड़ा का स्वतंत्र वर्णन भी है, यथा-समस्त पशु-पक्षी प्रसन्न चित्त दिखलाई पड़ते हैं। सूखे पड़े हुए मेंढ़कों के शरीर में जीव आ गये हैं। वे इधर-उधर उछलते हुए बड़े-बड़े बक्कियों के मद को मात कर रहे हैं। सारस, हंस, मयूर आदि पक्षी चैन से क्रीड़ा कर रहे हैं। पानी के बहुत समीप बकगणों का ध्यान लग रहा है। एक साथ चलते हुए एक साथ मधुर शब्द करते हुए और एक साथ उड़ते हुए स्नेहमय सारस के सरस जोड़ों को देखकर भूपसिंह के हृदय में शीघ्र ही प्राप्त होने वाले दाम्पत्य प्रेम की मीठी-मीठी कल्पनाएं उठने लगीं। कोकिला के कोमल आलाप से चित्त उत्कंठित होने लगा और मयूरों के आनंद-नृत्यों से मुख पर स्वेद झलकने लगा।[2]

'सन्ध्या हुई। वरुण दिशा के पास सूर्यदेव आये। देखते ही उसके गालों पर ललाई दौड़ आई। बड़े प्रेम से उसने उसकी अभ्यर्थना की। क्षितिज-मण्डल पर दूर-दूर तक गुलाल नजर आने लगा।[3] धीरे-धीरे संध्या हो गई। प्रभाकर महाराज आँखें मिलाते-मिलाते मुँह ढकने की ताक में लगे। प्र्पाची देवी उनकी यह दशा देख धीरे-धीरे विकट रूप धारण करके कोप परिस्फुटित लाल-लाल आँखें दिखाने लगी। परन्तु इस ललाई का फल कुछ भी नहीं हुआ। वे घृष्ट नायक बन के चल ही दिये। उनके जाने की देरी थी कि अन्धकार महाशय आ धमके। भूमि, वृक्ष, लता-पत्तादिकों पर क्रम से काले परदे पड़ गये। ऐसा जान पड़ने लगा कि मानों यामिनी-कामिनी को वैधव्य दीक्षा देने के लिए काली साड़ी पहिनाई गई है।' प्रकृति पात्रों के सुख-दु:ख आदि भावनाओं के अनुसार उल्ललित या उदास रहती है। उद्दीपक के रूप में प्रकृति का जहाँ वर्णन हुआ है, वहाँ उपदेशात्मक रूप में भी प्रकृति दृश्यमान होती है। प्रकृति के छोटे-छोटे सुन्दर सुरम्य चित्रों की वजह से आध्यात्मिक विचारधारा नीरस या बोझिल नहीं हो जाती।

---

1. 'सर्ग' का प्रयोग काव्य में होता है, गद्य-साहित्य में 'अध्याय' के लिए 'सर्ग' शब्द प्रयोग नहीं होता, लेकिन यहाँ लेखक ने किया है।
2. द्रष्टव्य-सुशीला-उपन्यास, पृ॰ 130.
3. वही, पृ॰ 92.

भाषा-शैली :

यह उपन्यास काफी समय पहले लिखा गया है, फिर भी गोपालदास जी की भाषा प्राय: साहित्यिक रही है। एक निश्चित उद्देश्य को लेकर चलने वाले धार्मिक उपन्यास में भाषा की मार्मिकता, वर्णनों की सुरम्य छटा या विश्लेषणात्मक शैली की अपेक्षा रख ही नहीं सकते। फिर भी बरैया जी ने भाषा में स्वाभाविक अलंकारों की सृष्टि से उपन्यास को रोचक बनाया है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टांत आदि अर्थालंकार व प्रास-अनुप्रास, यमक आदि शब्दालंकारों का उचित प्रयोग कर शैली में साहित्यिक वातावरण खड़ा कर दिया है–जैसे–सूर्य का अरुण वर्ण प्रतिबिंब समुद्र की उछलती हुई जल-किल्लोलों में तितर-बितर होता हुआ ऐसे भ्रम को उत्पन्न करता है, मानों तपाये हुए सुवर्ण की धाराएं ही लहरा रही हैं।[1] तो कहीं रूपक में भावों को स्पष्ट करते हैं–विधाता रूपी सुनार ने अपने संसार का एक आभूषण बनाने के लिए सूर्य रूपी सुवर्ण के गोले को किरण रूपी संडासी पकड़े हुए पानी में डाल दिया। उपमा का प्रयोग तो लेखक ने अनेकों बार किया है। दार्शनिक विचारधारा को व्यक्त करने के लिए रूपक और दृष्टान्त अलंकार का समीचीन प्रयोग भाषा शैली में किया गया है–यथा–रूपक के लिए–सम्यक्त-सलील के न मिलने से मिथ्यात्व-आतप-दग्ध दूरभव्य संसार में इसी प्रकार चक्कर खाते रहते हैं।[2] या दृष्टान्त अलंकार में सम्यक्त के महत्व को बताते हुए लिखते हैं–थोड़ी ही देर में सूर्य देव का उदय होने वाला है, जिस प्रकार सम्यक्त के प्रादुर्भाव से कुछ पहले 'करण-लस्थि' के प्रभाव से मिथ्यात्व दूर भाग जाता है, उसी प्रकार सूर्योदय के पहले संध्याक्त लालिमा से अंधकार बिना हो गया।[3] ऐसे ही 'आखिर झूठ-झूठ है और सच-सच है, काल की हांडी बहुत समय तक नहीं चलती।' इस तरह पृष्ठ-पृष्ठ पर अलंकारों का सौन्दर्य निखरा हुआ प्राप्त होता है।

भाषा शुद्ध खड़ी बोली है तथापि गुजराती व अंग्रेजी के अनेक शब्दों का यत्र तत्र प्रयोग स्वाभाविक हुआ है, यथा-भूपसिंह के खीचे में से (गुजराती शब्द) कागज कलम निकालकर निम्नलिखित चिट्ठी लिखी। (पृ० 132) जयदेव ने वसीयतनामों को नियत करके उसे दूकान का कार्यवाहक 'मैनेजर' बना दिया। मुझे वहाँ की 'रिपोर्ट' दर तीसरे दिन बराबर मिला करती है। तदुपरांत चहुं ओर, असन, वसन, बिन आदि ब्रजभाषा के शब्द-प्रयोग से भाषा में मिठास आ गई है।

1. द्रष्टव्य-सुशीला-उपन्यास, पृ० 118, द्वितीय खण्ड, सर्ग-2.
2. द्रष्टव्य-सुशीला-उपन्यास, पृ० 80.
3. वही, पृ० 4.

सौन्दर्य के वर्णन में लेखक की भाषा अलंकारमय व प्राचीन कथा-साहित्य की भाषा-शैली से अत्यधिक प्रभावित हुई है। संक्षिप्त संवादों में भाषा की तीव्रता व हल्का-फुल्कापन दोनों देखा जाता है। अमुक स्थल पर भाषा में व्याकरण सम्बंधी दोष भी रहे हैं, लेकिन उपन्यास की आध्यात्मिकता व कथा की रोचकता के कारण उसके प्रति कम दृष्टिपात जाता है। (शान्ति के बदले शान्तता, अपने आत्मा आदि) छोटी-मोटी भूलें इतने बड़े उपन्यास में नगण्य समझी जायेंगी। जैन दर्शन के पारिभाषिक शब्दों से युक्त जहाँ भाषा होती है, वहाँ दुरुहता आ जाना स्वाभाविक है, यथा-संसादन-गुणस्थान, सम्यक्त सहित, स्वस्थपन, अप्रमत आदि। वैसे इनके द्वारा उपन्यासकार का तत्सम्बंधी ज्ञान अवश्य प्रकट होता है। जैन धर्म के तत्त्वों की चर्चा स्थल-स्थल पर आ जाने से प्रकृति के सुन्दर वर्णनों पर वे हावी हो जाते हैं। और प्राकृति की सुरम्यता की महत्ता कम हो जाती है। फिर भी पूर्णतया इस उपन्यास की भाषा शैली आधुनिक साहित्य की कही जायेगी।

उद्देश्य :

उपन्यास का यह तत्त्व प्रत्येक उपन्यासकार के विचार, व्यक्तित्व, समाज आदि से सम्बंधित रहता है। प्रत्येक उपन्यास का उद्देश्य भिन्न-भिन्न हो सकता है, लेकिन जैन उपन्यास साहित्य के लिए तो यह एक महत्वपूर्ण आदर्श या उद्देश्य रहता है कि उपन्यास के अन्य तत्त्व चाहे कैसे भी हों, उद्देश्य तो जैन धर्म की विचारधारा का किसी एक प्रमुख सिद्धान्त को साहित्यिक शैली में प्रस्तुत करने का रहता है। फिर प्रस्तुतीकरण का ढंग भिन्न हो सकता है। श्री वीरेन्द्र जैन ने 'मुक्ति दूत' उपन्यास में जैन धर्म की विचारधारा परोक्षतः व्यक्त की है, फिर भी उस कोमल, करुण, अहिंसात्मक वातावरण की खुश्बू चारों ओ: फैल जाती है। यहाँ गोपालदास जी ने धार्मिक तत्त्वों की चर्चा सीधे रूप से स्वयं की है। जयदेव, सुशीला, एवं विशेषकर रतनचंद मुनि के पात्र द्वारा जहाँ भी मौका मिला धर्म के तत्त्वों की विशदता से चर्चा की है। विशेषकर सर्ग 7, 11 और 13 में तो पूर्ण रूप से आध्यात्मिक चर्चा ही चलती है। धार्मिक वातावरण की महत्ता सिद्ध करने के लिए सांसारिक कुटिलता को खल-दुष्ट पात्रों के द्वारा प्रदर्शित किया गया है। धार्मिक सिद्धान्तों का रोचक विवेचन कथा वस्तु के प्रवाह में करके अपने उद्देश्य को सिद्ध किया है। सातवें सर्ग में विषय वासना, कषायों, रागों से मनुष्य की दुर्गति किस प्रकार होती है और यदि इन्हें ही जीत लिया जाय तो जीव को नारकीय दु:खों से मुक्ति मिल जाती है। इसके लिए श्रेष्ठ उपाय है तृष्णा का त्याग करके दिगम्बरीय दीक्षा का अवलंबन ग्रहण

किया जाय और जीवन को धन्य बनाया जाय। 11वें सर्ग के प्रारंभ में अध्यात्म रस की ज्ञानपूर्ण चर्चा लेखक ने बड़ी ही आलंकारिक व सुरुचिपूर्ण ढंग से बताई है। सेठ रतनचन्द को मुनिराज धर्म की देशना (उपदेश) देकर धर्म के प्रति अधिक उत्साही करते हैं और जगत के व्यवहारों की निरर्थकता बताते हुए कहते हैं–'संसार में कहीं भी सुख नहीं है। इन्द्रियजनित सुख पराधीन, परिणाम में दुःखदायी और केवल अविचारित रूप है। सच्चा सुख मोक्ष में है। वह सर्वथा नित्य, शुद्ध और स्वाद्य है। वह आत्मा का स्वभाव है। संसार के संपूर्ण विभावों को परित्याग करके केवल आत्म स्वभाव में लवलीन होने से उस अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति हो सकती है। ऐसा करने के लिए अर्थात् केवल आत्म स्वभाव में तल्लीन होने के लिए जैनेश्वरी दीक्षा ही एक मात्र साधन है। + + + परन्तु यह जैनेम्बरी दीक्षा बड़ी कठिन है। इसको वे ही धारण कर सकते हैं, जिनका संसार में मोह छूट गया है और जिन्हें यथार्थ में विषय सुखों से विरागता आ गई हो। यह सिंहों का कार्य है, न कि इन्द्रियों के अधीन रहनेवाले कायर पुरुषों का। 20वें सर्ग में कन्याशाला के वर्णन, वहाँ के भीत्ति-चित्रों एवं उस पर अंकित आदर्श सूत्रों और कथाओं में एक ओर जैन धर्म का प्रभाव लक्षित होता है तो दूसरी ओर सूरत की दिगम्बर जैन श्राविकाशाला का प्रभाव लेखक के दिमाग पर महसूस होता है। इस प्रकार के धार्मिक कथायुक्त उपन्यासों में बीच-बीच में उपदेशात्मक वर्णनों का आ जाना अत्यन्त स्वाभाविक है। आठवें सर्ग में प्रेम के स्वरूप का बहुत ही मार्मिक विश्लेषण किया गया है। जैसे–'यह समस्त चेतनात्मक जगत इसी प्रेम का मूल है। प्रेम न होता तो संसार भी नहीं होता। जो प्रेम की उपासना नहीं करता, वह मानव-जन्म का तिरस्कार करता है। प्रेम की पूजा करना प्राणी का पवित्र पुण्य कर्म है। प्रेम से पाप का सम्बंध नहीं है। प्रेम के समदृष्टि राज्य में 'निज' और 'पर' का भेद नहीं है? जो प्रेम का उपासक है वह सच्चा सेवक है, यह परत्व बुद्धि को सर्वथा छोड़कर एकत्व के एक प्राणत्व के आनंद राज्य में विहार करता हुआ स्वर्ग सुख का परिहार करता है।[1] लेकिन प्रेम की ऐसी उदात्त विचारधारा दुष्ट उदय सिंह द्वारा भेजी गई दूती के मुख से सर्वथा अनर्गल प्रतीत होती है। सुशीला ने इस कथन का प्रतिवाद भी उचित ढंग से ही किया कि–तुम्हारा प्रतिपादित किया हुआ प्रेम-प्रेम नहीं है, लेकिन पैशाचिक, पाशविक किंवा अमानुषिक कर्म है। पशुओं में ऐसा ही प्रेम देखा जाता है।[2] 11वां सर्ग संपूर्ण रूप से जैन दर्शन की मीमांसा

1. द्रष्टव्य-सुशीला-उपन्यास, पृ० 145.
2. वही, पृ०

के रूप में ही आया है लेकिन कथा के प्रवाह में यह सारी विचारधारा सम्मिश्रित हो गई है कि दार्शनिक चर्चा कहीं भी बोझ या रुकावट सी नहीं प्रतीत होती। सेठ रतनचंद, मुनिराज व उनके शिष्यगण की प्रश्नोत्तरी इसी प्रकार की है, जिसमें जैन धर्म की उच्चता उदात्तमन एवं भव्यता को प्रदर्शित किया गया है। इसी सर्ग में कहीं-कहीं जैन धर्म के पारिभाषिक शब्द आ जाने से जैन तत्वों से अनभिज्ञ पाठक को कठिनाई महसूस होती है। जैसे कर्मावरण, लोक स्वरूप, द्रव्य स्वरूप, विभाव लक्षण (कर्मों का पर्दा) आदि की चर्चा ऐसी ही है। 13वें सर्ग में कहीं-कहीं जैन धर्म के पारिभाषिक मूल तत्त्व जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्झरा एवं मोक्ष ये सात तत्त्वों की भेदोपभेदों के साथ सूक्ष्म चर्चा बीच-बीच में आती है। 16वां सर्ग भी रतनचंद्र सेठ की जिज्ञासा-पूर्ति के लिए मुनि श्री तर्क-वितर्क एवं प्रमाण के साथ समाधान करते हैं, जिनमें जैन दार्शनिक सिद्धान्तों की चर्चा रही है, जो उद्देश्य की पुष्टि के लिए उपकारक है। सासादन गुणस्थानक, सम्यक्तसहित, स्वस्थान अप्रमत्त: सातिन्द्रेय, अप्रमत्त आदि दार्शनिक विचारधारा के वर्णन से लेखक जैन धर्म के मार्मिक पंडित है और निज धर्म उन्नति हेतु इस उपन्यास की रचना की है। अत: प्रकाशकीय निवेदन में स्पष्टत: कहा गया है कि यह उपन्यास कोई सामान्य कथा कहानी नहीं है, लेकिन एक सामाजिक व धार्मिक सैद्धांतिक ग्रन्थ ही कहानी के रूप में है, जो इसके पढ़ने से ही स्पष्ट मालूम हो सकेगा।

इस प्रकार 'सुशीला' उपन्यास को उसके विन्यास की दृष्टि से सफल व महत्त्वपूर्ण उपन्यास स्वीकार किया जा सकता है।

मुक्ति दूत :

हिन्दी जैन साहित्य के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्रीयुत वीरेन्द्र जैन का यह उपन्यास एक सशक्त व सफल उपन्यास कहा जायेगा, जिसके लिए न केवल जैन साहित्य बल्कि हिन्दी साहित्य जगत् भी गौरव ले सकता है। इस उपन्यास के अनुसार लेखक का आत्म कथानक शैली में लिखा गया उत्कृष्ट उपन्यास 'अनुत्तरयोगी-तीर्थंकर महावीर' तीन भागों में प्रकट हो चुका है। वह भी कथा, चरित्र-चित्रण, प्रकृति-निरूपण, भाषा-शैली एवं शिल्प-विधान प्रत्येक दृष्टिकोण से सर्वश्रेष्ठ उपन्यास कहा जायेगा। 'मुक्ति दूत' जैन धर्म के सिद्धान्तों को आधारभूमि बनाकर लिखा गया है। इसको लेखक महोदय ने 'रोमान्टिक उपन्यास' की संज्ञा से अभिहित किया है, जो इसकी कथावस्तु देखते हुए सर्वथा समुचित प्रतीत होता है। क्योंकि पवनकुमार और अंजना की पौराणिक-प्रेम-विरह कथा को उन्होंने आधुनिक युग की मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पद्धति व समुन्नत साहित्यिक शैली से सजाया-संवारा है।

'मुक्ति दूत' की कथावस्तु के विषय में चतुर्थ अध्याय में विस्तृत विवेचन किया गया है। इसलिए अब इसकी चर्चा यहाँ अनावश्यक या पुनरावर्तन समझी जायेगी। केवल संक्षेप में यह कहना उचित रहेगा कि 'मुक्ति दूत' की कथा जैन जगत् के लिए अपरिचित नहीं है। वैसे अन्य पौराणिक कथाओं की तरह सौन्दर्य प्रेम, परिणय, कलह से युक्त सर्वांगीण प्रणय कथा है, फिर भी उन सबसे अलग, अतुलनीय एवं अनोखा वातावरण लेकर यह उपन्यास लिखा गया है, जिसके लिए उपन्यासकार अभिनंदन के पात्र हैं। कथा वस्तु के विषय में 'आमुख' में ही ज्ञानपीठ के विद्वान संपादक लक्ष्मीचन्द्र जैन ने सर्वथा युक्तिसंगत बता दिया है कि-मुक्ति दूत की मोहक कथा, सरस रचना अनुपम शब्द-सौंदर्य और कवित्व से परे जाने के लिए भी माला के अंतिम तीन मनकों की तरह सर्वोपरी हृदय से, आंख से और माथे से लगाने लायक है। पवनंजय के अहम्, आत्म विकास एवं आत्म विजय की क्रमशः कथा है। + + + मुक्ति दूत की कथावस्तु जितनी तल पर है सिर्फ उतनी नहीं है, उसके भीतर एक प्रतीक कथा चल रही है, जिसे हम ब्रह्म और माया, प्रकृति और पुरुष की द्वन्द्व लीला कह सकते हैं। अनेक अन्तर्द्वन्द्व, मोह-प्रेम, विरह-मिलन, रूप सौंदर्य, दैव-पुरुषार्थ, त्याग-स्वीकार, दैहिक कोमलता, आत्मिक मार्दव, ब्रह्मचर्य, निखिल रमण और इनके आध्यात्मिक अर्थ कथा के संघटन और गुम्फन में सहज ही प्रकाशित हुए हैं। पवनंजय इस बात का प्रतीक है कि वह पदार्थ को बाहर से सीधे पकड़कर उस पर विजय पाना चाहता है और उसी में उसका पराजय है, एकांगिता है, जबकि अंजना का पात्र भावना या हृदयवाद का प्रतीक है, जो केवल पुरुष को ही नहीं, समस्त विश्व को शांति दे सकता है।'' वीरेन्द्र जी ने मूल पौराणिक कथा को विशेष ग्राह्य, मनोवैज्ञानिक व असरकारक बनाने के लिए कहीं-कहीं परिवर्तन-परिवर्धन किये हैं, जो पाठक को विशेष रस युक्त लगते हैं। 'सुशीला' की तरह मुख्य कथा के साथ अवान्तर कथाएँ नहीं होने से मुख्य कथा वस्तु पर ही पूरा ध्यान केन्द्रित हुआ है। इसकी कथा में रोमान्च के सब गुण होते हुए भी वह सर्वत्र करुण-कथा ही दिखाई पड़ती है। प्रत्येक पात्र व्यथा, पीड़ा का बोझ लिए चल रहा है। कथा की सार्थकता अन्तिम अध्याय की अंतिम पंक्तियों में पूर्ण झलकती है जहाँ 'प्रकृति' पुरुष में लीन हो गई और पुरुष प्रकृति में अभिव्यक्त हो उठा।

गोपालदास जी के 'सुशीला' उपन्यास में पात्रों का चरित्र-चित्रण प्रत्यक्षी रूप से ओर सरल ढंग से हुआ है, वहाँ मुक्ति दूत में प्रसंग, घटनाएँ, संवाद के द्वारा विश्लेषणात्मक और मनोवैज्ञानिक रूप से परोक्षतः किया गया है। पात्रों की

संख्या भी अत्यधिक नहीं है, वर्णनों की भरमार अवश्य काफी है। प्रमुख पात्रों में पवनंजय, अंजना, प्रहस्त, वसन्तमाला, राजा प्रह्लाद, रानी केतुमती, आदि का सुन्दर से सुन्दरतम् चरित्र चित्रण हो पाया है, तो गौण पात्रों में अंजना के माता-पिता, भाई, सखी, मामा हनूरूह, वरुण, रावण आदि का भी अच्छा परिचय दिया है। पवनंजय का पात्र कहीं-कहीं अच्छा उभरता है। वह वीर प्रतापी, तेजस्वी तो था, लेकिन अपने अहं, वहम तथा अविश्वास के कारण निर्दोष अंजना का त्याग कर एकाकीपन की पीड़ा भुगतता है, साथ ही अपनी क्षुद्रता का परिचय भी देता है। लेकिन अंत में पश्चाताप की आग में जलते हुए पवनंजय को परित्यक्ता अंजना की शरण में ही शांति प्राप्त होती है और नारी के प्राणों का स्पन्दन पाकर ही पवनंजय प्रकाश प्राप्त कर सकता है। दूसरी ओर अंजना का समस्त जीवन है एक सशक्त आदर्श का, त्याग एवं प्रेम का। उसके अनुपम तेज, सतीत्व-बल तथा प्रेम-पुंज के सामने पवनंजय का अंह झुकता है। "नारी के चरित्र का इतनी ऊँची और ऐसी अद्‌भुत कल्पना शायद ही कहीं हो। अंजना शरत् बाबू के ऊँचे-से ऊँचे स्त्री पात्र से ऊपर उठ गई है। अब तक के मानव-इतिहास में नारी पर मुक्ति मार्ग की बाधा होने का जो कलंक चला आया है, इस उपन्यास में लेखक ने उस कलंक का भाजन किया है। अंजना का आत्म समर्पण पुरुष के 'अहं' को गलाकर, उसके आत्म उद्धार का मार्ग प्रशस्त करता है। अंजना का प्रेम निष्क्रिय आत्मक्षय नहीं है, वह है एक अनवरत साधना; कहें कि 'अनासक्त योग।'[1] उपन्यासकार ने दो प्रमुख पात्रों के साथ सहायक पात्रों का भी सुन्दर चरित्रांकन किया है, जिनकी चर्चा हम पीछे कर चुके हैं। इसलिए कथावस्तु एवं चरित्र-चित्रण के सन्दर्भ में विस्तृत चर्चा अनावश्यक है।

संवाद :

कथावस्तु की रोचकता एवं पात्रों के चरित्र-चित्रण की तीव्रता-मार्मिकता में 'मुक्ति दूत' ने जितनी सफलता पाई है, उतनी ही अपने कथोपकथन में भी। जहाँ एक ओर छोटे-छोटे तीव्र, प्रश्नात्मक संवादों की विपुलता पाई जाती है, वहाँ लम्बे-लम्बे स्वगत कथन तथा उपदेशात्मक कथन भी काफी मात्रा में हैं। अधिक से अधिक काव्यात्मक सौन्दर्य और मानव व प्रकृति के अन्तर्बाह्य सौंदर्य को उद्‌घाटित करने वाले हैं। चरित्रों की विशेषताओं पर प्रकाश डालने का महत्वपूर्ण कार्य कथोपकथन करते हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–'प्रहस्त, संसार की कोई भी रूपराशि कुमार पवनंजय को नहीं बांध सकती। सौंदर्य की उस

1. द्रष्टव्य-लक्ष्मीचन्द्र जैन : मुक्ति दूत-का आमुख, पृ॰ 12.

अक्षय धारा को मांस की इन क्षायक रेखाओं में नहीं बांधा जा सकता। और वह दिन दूर नहीं है, प्रहस्त! जब नाग-कन्याओं और गंधर्व-कन्याओं का लावण्य पवनंजय की चरण-धूलि बनने को तरस जायेगा।

'ठीक कह रहे हो पवन! अंजना इसे अपना सौभाग्य मानेगी। क्योंकि यह तो चरण धूलि बनने के पहले आदित्यपुर के भावि महाराज के भाल का तिलक बनने का नियोग लेकर आई है।[1]

इस कथोपकथन में एक ओर से पवनंजय का अहम्, राजसी सत्ता-स्वभाव, अवज्ञाभाव लक्षित है, तो दूसरी ओर मित्र प्रहस्त की श्रद्धा, अंजना के सहज सौभाग्य का विश्वास तथा मित्र के प्रति ममता और कल्याण-भाव दृष्टिगत होता है। ठीक उसी प्रकार निम्नलिखित संवाद में अंजना का दृढ़ विश्वास, कर्तव्य निष्ठा और गौरव झलकता है, तथा वसन्त माला की आशंका, सखी प्रेम हम महसूस कर सकते हैं–

'अंजन! कुमार पवनंजय प्रस्थान कर गये। अपने सैन्य को साथ लेकर वे अकेले ही चल दिये हैं–'

बीन का तार जैसे टन्न-से अचानक टूट गया, भटकती हुई वह झंकार रोम-रोम में झनझना उठी। पता नहीं यह आघात कहाँ से आया। बेबूझ अपार विस्मय से अंजना की वे अबोध-आँखें वसन्त के चेहरे पर बिछ गईं। अपने बजूद से वह पूछ बैठी–'कारण?'

'ठीक कारण ज्ञात नहीं हो सका। पर एकाएक मध्यरात में महाराज प्रहलाद के पास सूचना पहुँची कि कुमार कल सूर्योदय के पहले अकेले ही प्रस्थान करेंगे, अपनी सेनाओं को उन्होंने कूच की आज्ञाएँ दे दी हैं। उसी समय अनुचर भेजकर महाराज ने कुमार को बुलवाया, पर वे अपने डेरे में नहीं थे।

कारण कुछ गंभीर और असाधारण है। इस बार वे भी उनके मन की थाह न ले सके हैं–और पूछने का साहस भी वे नहीं कर सके।'

'क्या पिता जी को यह संवाद मिल गया है वसन्त ?' हाँ, अभी जो अश्वारोहियों की टुकड़ी गई है, उसी में महाराज आदित्यपुर के महाराज प्रह्लाद के साथ कुमार को लौटा लाने गये हैं।' अंजना ने वक्ष में निःश्वास दबा लिया। किसी अगम्य दूरी में दृष्टि अटकाये गंभीर स्वर में बोली–

'बांध कर में उन्हें नहीं रखना चाहूँगी, बसन्त। आने को दिशाएँ खुली हैं उनके लिए। पर संयोग की रात जब लिखी होगी, तो दीपान्तर से उड़कर

1. श्री वीरेन्द्र जैन-मुक्ति जैन-34, पृ॰ 10.

आयेंगे, इसमें मुझे जरा भी संदेह नहीं है। पगली वसू, छिः आँसू ? अंजना के भाग्य पर इतना अविश्वास करती हो, बसन्त?'[1]

उपन्यास के पूर्वाद्ध में संवादों का क्रम काफी है, लेकिन उत्तरार्द्ध में समृद्ध वर्णनों की भरमार में संवाद-नद का प्रवाह कहीं क्षीण हो जाता है, तो कहीं विलुप्त-सा हो जाता है। अंजना के एक-एक उद्‌गार में मानों उसके हृदय की कोमलता, करुणा, प्रसन्नता और धैर्य का अपार तेज फूट निकलता है, जबकि पवनंजय के कथोपकथन से एक वीर अज्ञेय योद्धा एवं अभिमानी स्वामी का ममत्व टपक पड़ता है। अंजना की विचारधारा को कहीं-कही संवादों के माध्यम से लेखक ने प्रस्तुत किया है–

'....... हाँ, यह जो तोड़ फैंकने की बात कह रही हूँ–इसमें एक खतरा है। आत्मनाश नहीं होना चाहिए। कषाय नहीं जागना चाहिए। सर्वहारा होकर हम चल सकते हैं, पर आत्मह्रास होकर नहीं चला जा सकेगा। मूल को आघात नहीं पहुँचाना है। संघर्ष से तो परे जाना है, उसकी परम्परा को तो छेदना है। विषय को सम लाना है, फिर संघर्ष से विषम को विषमतर बनाये कैसे चलेगा? + + + लोकाचार को मुक्ति मार्ग के अनुकूल करना होगा, प्रगतिशील जीवन की मांगों के अनुरूप लोकाचार के मूल्यों को बदलते जाना होगा। निश्चय के सत्य को आचरण, व्यवहार के तथ्य में उतारना होगा।[2]

'कर्म की सत्ता को अजय और अनिवार्य मानकर चलने को कह रही हो जीजी ? और यह भी कि मनुष्य होकर उसका कृतित्व कुछ नहीं है ...... ? फिर जड़ के ऊपर होकर चेतन की महानता का गुणगान क्यों है? फिर तो मृत्यु और ईश्वरत्व का आदर्श निरी मरीचिका है। हमारे भीतर मुक्ति का अनुरोध निरी क्षणिक छलना है ? + + + और यों आत्म निर्माण में से लोक मंगल का उदय होगा। तीर्थंकर के जन्म लेने में उस काल और उस क्षेत्र में प्राणी मात्र की कर्म वर्गतणाएँ काम करती है। निखिल लोक के सामूहिक पुण्योदय और अभ्युदय के योग से वह जन्म लेता है। उस काल के जीवन मात्र के शुभ परिणाम और शुभ कर्मों की पुंजीभूत व्यक्तिमत्ता होता है यह तीर्थंकर।[3] एक ओर जहाँ अंजना के ऐसे वार्तालाप में गूढ़, गंभीर चिंतन, मनन एवं हार्दिक बौद्धिकता है तो सरला, स्निग्ध वाणी के संवाद भी प्राप्त होते हैं। वैसे इसके प्रमाण कम हैं और मानवीय संवेदना तथा तात्त्विक विश्लेषणात्मक चिंतन प्रधान वाणी-वैभव

---

1. मुक्तिदूत-34, पृ॰ 12.
2. मुक्तिदूत-34, पृ॰ 87.
3. वही, पृ॰ 89, 90.

विशेष है। फिर भी छोटे-छोटे प्रेमपूर्ण सरल वाणी के उदाहरण भी देखे जा सकते हैं–'छि: जीजी, तुम रो रही हो---? अपनी अंजना पर अभिमान नहीं कर सकती? इतनी अवशता क्यों? अंजना अकिंचन है सही, पर उसे दयनीय मत मानो जीजी, उसके भाग्य पर और उसके कर्म पर अविश्वास मत करो।

वातावरण :

शब्दों के शिल्पी वीरेन्द्र जैन ने अपने इस महान उपन्यास में प्रकृति के मनोरम एवं भयंकर दोनों रूपों का सजीव और अत्याकर्षक ढंग से चित्रण किया है। प्रकृति के मनोहर, उल्लासकारी, कोमल चपल रूप के साथ बीहड़, दुर्गम, गंभीर, भयानक रूप इस उपन्यास में कदम-कदम, पृष्ठ-पृष्ठ पर दिखाई पड़ते हैं, जो शायद ही किसी उपन्यास में हो। प्रकृति के महाकाव्य की कोटि का उपन्यास इसे माना जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी। पहाड़, नदी, मयूरवन, बीहड़ जंगल, शैलों, मान-सरोवर, दीपों, खाई-खंदक, गुफाओं, बड़े-बड़े सुन्दर बन-उपवन, उद्यानादि प्रकृति चित्रों के वर्णनों के साथ आदित्यपुर के स्फटिक महल, रत्नकूट प्रासाद, अजितंजय प्रासाद, शास्त्रागार, किले, महल के वन-उपवन आदि मनुष्य निर्मित अद्भुत रोमांचकारी, भव्य वर्णनों में मानों जीवन्तता साकार हो उठी है। लेखक ने कहीं कोई कसर नहीं रखी है। कल्पना की ऊँची से ऊँची चोटी से स्पर्श करने वाले भव्य, वर्णनों को बार-बार पढ़ते हुए जी अघाता नहीं, पुनश्चय-पुनश्च हृदय-मन को प्रसन्नता व हार्दिकता से भर देने के लिए मन उत्सुक रहता है। एक-एक शब्द को लेखक ने मानो छैनी से काट-काट कर गढ़ा हो, जो अपनी तमाम शक्तियों के बावजूद भावना के सागर में पाठक को गोता मारने के लिए विवश करता है। स्थलों एवं प्रकृति के आह्लादकारी, मुग्धताप्रेरक वर्णनों के साथ मानव-हृदय का वातावरण भी पूरे उपन्यास में बिखरा पड़ा है, जो उनके भावों को परिस्थितियों के पूरे संघर्ष में प्रस्तुत कर सकते हैं। प्रत्येक पात्र का आंतरिक वातावरण 'कैसा है'? और 'क्यों है?' का बहू चित्र खींचने का वीरेन्द्र जी ने सुंदर प्रयत्न किया है। उपन्यास की प्रथम क्ति से ही प्रकृति के रूप सौंदर्य को कृतिकार ने उद्घाटित करना प्रारम्भ कर या है जो अंत तक चलता ही रहा है–

'वनों में वासन्ती खिली है। चारों ओर कुसुमोत्सव है। पुष्पों के झरते पराग दिशाएं पीली हो चली हैं। दक्षिण पवन देश-देश के फूलों का गन्ध उड़ा ा है, जाने कितनी मर्मकथाओं से मन भर जाता है। आम्र धराओं में कोयल ाण-प्राण की अन्तर्पीड़ा को जगा दिया। चारों ओर स्निग्ध, नवीन, हरीतिमा

का प्रसार है। दिशाओं की अपार नीलिमा आम्रगण से भी उठी है।' और देखो, कैलास शिखर की सौंदर्य राशि–'देखो न प्रहस्त, कैलास के ये वैडूर्यमणिप्रभ धवलकूट, ये स्वर्ण मंदिरों की ध्वजाएँ, मान-सरोवर की यह रत्नाकर-सी अपार जलराशि, हंस-हंसिनियों के ये मुक्त विहार और दूर-दूर तक चली गई श्वेतांजन पर्वत श्रेणियाँ, क्या इन सबसे भी अधिक सुन्दर है वह विद्याधरी अंजना?' सांझ घनी हो गई है। मान सरोवर के सुदूर जल क्षितिज पर, चांद के सुनहरे बिंब का उदय हो रहा है। उस विशाल जल विस्तार पर हंस-युगलों का क्रीडारव रह-रहकर सुनाई पड़ता है। देवदास भवन और फूल घाटियों की सुगन्ध लेकर वसन्ती वायु होले-होले बह रही है।[1] अपनी ही शोभा में क्षण--क्षण नित-नूतन सुन्दरता के चित्रों से भरा पड़ा है। उसके प्रत्येक पृष्ठ पर प्रकृति उभरती है, अपना पूर्ण भंषर लेकर, किसका वर्णन किया जाय? किसको छोडा जाय? प्रकृति के इस काव्य को स्पंदित-स्फुटित करने के लिए वीरेन्द्र जी ने कौर-कसर नहीं उठा रखा है, फिर भी सब कुछ बिल्कुल सहज है, स्वाभाविक है। 'अनेक मंगल वाद्यों की उछाह भरी रागिणियों से सरोवर का वह विशाल तट-देश गूंज उठा।

कैलाश के स्वर्ण-मंदिरों के शिखरों पर जाकर वे ध्वनियाँ प्रतिध्वनित होने लगीं। अनेक तोरण, द्वार, गोपुर, मंडप और कवियों से तटभूमि रमणीय हो उठी है। मानों कोई देवोप्रतिम नगरी ही उतर आई है। स्थान-स्थान पर बालाएं अक्षत-कुंकुम, मुक्ता और हरिद्रा के चौक पूर रही हैं। दोनों राजकुलों की रमणीय मंगलगीत गाती हुई उत्सव के आयोजन में संलग्न हैं। कहीं पूजा-विधान चल रहे हैं तो कहीं हवन-यज्ञ। विपुल उत्सव, नृत्यगान आनंद मंगल से वातावरण चंचल है।[2] आदित्यपुर नगरी का कैसा वर्णन है। 'शरद ऋतु के उजले बादलों से आदित्यपुर के भवन आकाश की पीठिका पर चित्रित है। विस्तीर्ण वृक्ष घटाओं के पार, राज-प्रासाद की रत्न-चूड़ाएँ बाल सूर्य की कान्ति में जगमगा रही हैं। सघन उपवनों और पत्र-सरोवरों की आकुल गन्ध लेकर उन्मादिनी हवा बह रही है। श्यामल तरु राजियों में कहीं अशोक से कुंकुभ झर रहा है, तो कहीं तुच्छ भौरों से केशर और मल्लिकाओं से स्वर्ण रेणु झर रही हैं। अंजना के अंग-अंग एक अपूर्व सुख की पुलकों से सिहर उठते हैं।[3] उसी प्रकार रानी अंजना के 'रत्नकूट प्रासाद' की भव्यता का वर्णन भी अनोखा है।

1. मुक्तिदूत-34, पृ० 4, 5.
2. वीरेन्द्र जैन : मुक्ति दूत, पृ० 16.
3. वही, पृ० 18.

महल की सर्वोत्तम अटारी पर चारों ओर स्फटिक के जाली-बूटों वाले रेलिंग और वातायन है। बीचों-बीच वह स्फटिक का ही शयन कक्ष है, लगता है जैसे क्षीर समुद्र की तरंगों पर चन्द्रमा उतर आया है। फर्शों पर चारों ओर मरकत और इन्द्रनील मणि की शिलाएँ जड़ी हैं। कक्ष के द्वारों और खिड़कियों पर नीलमों के तोरण लटक रहे हैं, जिनकी मणि-घंटिकाएं हवा में हिल-हिल कर शीतल शब्द करती रहती है। उनके ऊपर सौरभ की लहरों से हल्के रेशमी परदे हिल रहे हैं। कक्ष में एक ओर गवाक्ष के पास खटकर पद्मराग मणि का पर्यक विहग है। उस पर तुहिन-सी तरल मसहरी झूल रही है। उसके पट आज उठा दिये गये हैं। अन्दर फेनों-सी उभरती शय्या बिछी है। मीना सचित छतों में मणि-दीपों की झूमरें झूल रही हैं। एक ओर आकाश के टुकड़े-सा विशाल बिल्लोरी सिंहासन बिछा है। उस पर कांच के फूलों दुनी, सुख, स्पर्श, भसृण गद्दियाँ और तकिये लगे हैं। उसके आसपास उज्ज्वल मर्मर पाषाण के पूर्णाकार हंस-हंसिनी खड़े हैं, जिनमें नीले और पीले कमल तैर रहे हैं। कक्ष के बीचों-बीच पन्ने का एक विपुलाकार कल्पवृक्ष निर्मित है, जिसमें से इच्छानुसार कल घुमा देने पर अनेक सुगंधित जलों के रंग-बिरंगे सीकर झलकने लगते हैं। मणि-दीपों की प्रभा में वे सीकर इन्द्र धनुष की लहरें बन-बनकर जगत की नश्वरता का नृत्य रचते है। कक्ष के कोनों में सुंदर बारीक बालियों स्फटिकमय दीपाधार खड़े हैं, जिनमें सुगंधित तेलों के प्रदीप जल रहा है।[1] महल का मुग्धकारी वैभवी वर्णन तो आगे चलता रहता है, यहाँ तो केवल एक झांकी ही प्रस्तुत की गई है। वैसे ही महापराक्रमी, प्रभावी राजकुमार पवनंजय के 'अजितजय प्रासाद' की मोहनीय धीर गंभीरता और निर्वचनीयता अजेय है। पुत्र की एक-एक इच्छा को तृप्त करने का महाराज का निर्णय महल के प्रत्येक अंग-उपांग एवं विशिष्टताओं में मानो पूर्ण हो रहा है—

यह है कुमार पवनंजय का 'अजितजय प्रासाद'। राजपुत्र के चिर दिन के सपनों को इस रूप में दिया है। अबोल बालपन से ही कुमार में एक जीगिषा जाग उठी थी—वह विजेता होगा। वय-विकास के साथ यह उत्कंठा, एक महत्वाकांक्षा का रूप लेती गई। ज्ञानवर्द्धन ने सृष्टि की विराटता का वातायन खोल दिया। युवा कुमार की विजयाकांक्षा सीमा से पार हो गई। यह मन ही मन सोचता। वह निखिलेश्वर होगा, वह तीर्थंकर होगा।[2] + + + उसी के ठीक पीछे पादमूल में ही आ लगाई वह पहाड़ियों से भरा बीहड़ जंगल। किसी प्राचीर या

1. वीरेन्द्र जैन-मुक्तिदूत, पृ० 20, 21.
2. वही, पृ० 38.

मुंडेर से उसे अलग नहीं किया गया है। महल के पूर्वार्द्ध वातायन ठीक उसी पर खुलते हैं। कृत्रिम का यह सीमान्त है और प्रकृति का आरंभ। ठीक महल की परिधा पर वे भयानवी झाड़ियाँ झुक आई है। महल को चारों ओर से घेर कर यह जो कृत्रिम परिधा बनी है, वह देखने में बिल्कुल प्राकृतिक-सी लगती है। बड़े-बड़े भीमाकार शिला खण्ड और चट्टानें उसके किनारे पर अस्त-व्यस्त बिखरे हैं, जिनमें पलाश और करोंदों की घनी झाड़ियाँ उगी हैं। विशद परिधा के अन्दर हरा-नीला पुरातन जल बारहों महीने भरा रहता है, बड़े-बड़े कछुए, अजगर, मच्छ और केकड़े उसमें तैरते दिखाई पड़ते हैं।[1] विस्तार भय से प्रकृति एवं महल के भव्य वर्णन को आगे नहीं उद्धृत किया जाता। वीरेन्द्र जी जैसे कुशल शब्द-शिल्पी के लिए भव्य से भव्यतम वर्णनों का भंडार प्रस्तुत करना अत्यन्त आसान-सा प्रतीत होता है। पूरे उपन्यास में विविध-नयन रम्य वर्णन की माला देखते हुए अचानक ही बाण की 'कादम्बरी' या हजारीप्रसाद द्विवेदी जी के 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास की बरबस याद आ जाती है। घटनाएँ, चरित्रों की दिव्यता-भव्यता से ऊपर प्रकृति, नगर, राजमार्ग आदि की अनेकानेक छटाओं के हृदयस्पर्शी चित्र अधिक महत्वपूर्ण रहे हैं।

उसी प्रकार प्रकृति का भयानक रूप, अगम्यता, दुरूहता आदि का 'मुक्ति दूत' में विस्तृत वर्णन आता है। अंजना व वसन्तमाला के जंगल-प्रयाण से ऐसे वर्णनों का प्रारंभ हो जाता है—कहीं-कहीं तो प्रकृति के मुग्ध, सुचारु वर्णन से पाठक प्रफुल्लता महसूस करता है, तो विशेष रूप से उसकी उग्रता और बीहड़ता देख भय, सन्नाटा का वातावरण फैल जाता है। ऐसे लम्बे वर्णनों से कभी-कभी ऊब-भी आ जाती है। वन-उपवन, नदी, जंगल, गुफा, खाई-खंदक, पहाड़ों की विषमता के चित्रों ने काफी पृष्ठ रोक लिये हैं, लेकिन वे हैं बिल्कुल सजीव और यथार्थ, कल्पना का मुक्त उड्डयन सच्चाई का साथ लेकर हुआ है। वह मातंगमालिनी नाम की अटवी, पृथ्वी के पुरातन महावनों में से एक है, जो अपनी अगमता के लिए आदिकाल से प्रसिद्ध है। + + + पृथ्वी और वनस्पतियों की अनुभूत शीतल गन्ध में अंजना और वसन्त की घहिर चेतना खो गई। ...... आसपास दृष्टि जाती है, उन तमिस्त्र की गुफाओं में विचित्र जन्तुओं और भयानवें पशुओं के झुंड चीत्कारें करते हुए संघर्ष मचा रहे हैं। इन्हीं के बीच उन्हें ऐसी मनुषकृतियाँ भी दीखती, जिनके बड़े-बड़े विकराल दांत मुँह से बाहर निकले हुए हैं, माथे पर उनके त्रिशूल से तीखे सींग है और अन्तहीन कषाय में प्रमत्त वे दिन-रात एक-दूसरे से भिट्टियाँ लड़ रहे हैं। .... कि

1. वीरेन्द्र जैन : मुक्तिदूत, पृ० 38.

अचानक पृथ्वी में से एक सनसनाती हुई फुंकार सी उठी और अगले ही क्षण स्फूर्त विष की नीली लहरों का लोक चारों ओर फैल गया। सहस्रों फनोंवाली मणिधर भुजंग भूगर्म से निकलकर चारों ओर नृत्य कर उठे। उनके मस्तक पर और उनकी कुंडलियों में अद्‌भुत नीली और पीली और हरी ज्वालाओं से झगर-झगर करते मणियों के पुंज झलमला रहे हैं। उनकी लौ में से निकल कर नाना इच्छाओं की पूरक विभूतियाँ अप्रतिम रूप सी परियों के रूप धारण कर एक में अनन्त होती हुई अंजना और बसन्त के पैरों में आकर लोट रही हैं, नाना भंगों में अनुरोध-अनुनय का नृत्य रचती वे अपने को निवेदन कर रही हैं।[1]

इस ओर जंगल में भी प्रकृति अपने मधुररव से गुंजन भी करती सुनाई पड़ती है–'ऊषा की पहली स्वर्णाभा में नहाकर प्रकृति मधुर हो उठी। शैल घाटियाँ पंखियों के कलगान से मुखरित हो गई। झरने की चूड़ा पर स्वर्ण-किरीट और मणियों की राशियों लूटने लगी।[2]

मानव-प्रकृति की भिन्न-भिन्न छटाओं-दशाओं की लेखक ने मनोवैज्ञानिक ढंग से चर्चा की है। प्रकृति को काव्यात्मक रूप से जहाँ सजाया है, वहाँ मानव प्रकृति को साहजिकता व स्वाभाविकता से गहरी थाह लेकर प्रस्तुत किया है।

सौंदर्य की सृष्टि पूरे उपन्यास में छलक-छलक कर उभर आना चाहती है–अपने पूरे वैभव को साथ लिए-काव्यात्मक सौंदर्य लिए प्रत्येक वर्णन अपनी विशिष्टता व्यक्त करता है।' 'मुक्तिदूत' के कथानक का विस्तार मानो अनन्त आकाश में है, इससे पात्रों को अधिक से अधिक फैलने का अवसर मिला है। मानुषोत्तर पर्वत, लवण समुद्र, अनन्त द्वीप समूह विजयार्ध की गिरिमाला आदि के कल्पक सौंदर्य से कथा में बड़ी गूढ़ता आ गई है।' (आमुख, पृ० 17)।

भाषा-शैली :

"श्री जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' के बाद महाकाव्य के स्तर पर, सार्वदैशिक और सार्वकालिक गुणवत्ता की हिन्दी में शायद यह अपने ढंग की अनोखी कृति है। क्लासिकल और रोमानी सृजनात्मकता का इसमें एक अनूठा समन्वय हुआ है।[3] 'मुक्तिदूत' की भाषा-शैली कहीं सरल से सरलतम हो जाने से पाठक को साथ ले चलती है, तो कहीं दुरुह हो जाने पर पाठक उसका साथ निभा नहीं पाता है। भाषा-शैली में काव्यात्मक गुण के कारण लम्बे-लम्बे वाक्य-विन्यास, भावों की गहराई के कारण शब्दों की बारीकियाँ थोड़ी

1. मुक्तिदूत-उपन्यास, पृ० 204, 205.
2. वही, पृ० 204, 211.
3. मुक्तिदूत-आमुख, पृ० 1 (कवर पृष्ठ)।

अगम-सी रहती है, लेकिन शैली अपने सौंदर्य के कारण पाठक को सर्वथा आकर्षक लगती है।" श्री वीरेन्द्र कुमार की शैली की यह विशेषता है कि वह अत्यन्त संवेदनशील है। पात्रों के मनोभावों और भावनाओं के घात-प्रतिघात के अनुरूप यह प्रकृति का चित्र उपस्थित करते जाते हैं। लगता है जैसे अन्तर की गूंज जगत में छा गई है, हृदय की वेदनाएँ चाँद, सूरज, फल-फूलों में रमकर चित्र बनकर प्रकृति की चित्र शाला में आ रंगी हो।[1] उनकी काव्यात्मक, अलंकृत शैली के उदाहरण पृष्ठ-पृष्ठ पर बिखरे पड़े हैं। गद्य में भी इतनी काव्यात्मकता लाना वीरेन्द्र जी की निपुणता है। पवनंजय-अंजना के परिणय की बेला में देखिए-'आज है परिणय की शुभ लग्न-तिथि। पूर्व की उन हरित-श्याम-शैल श्रेणियों के बीच ऊषा के आकुल वक्ष पर यौवन का स्वर्ण कलश भर आया है।' श्री वीरेन्द्रकुमार के स्वभाव में ध्वनि और वर्णन का सहज सम्मोहन है। अनेक छोटे-छोटे वाक्यों में उन्होंने स्पर्श, रस, वर्ण, गन्ध और ध्वनि की अनुभूतियों को सरल लेखनी में उतारा है-यथा-

(1) 'नारिकेल-शिखरों पर वसन्त के सन्ध्याकाश में गुलाबी और अंगूरी बादलों की झीलें खुल पड़ीं।

(2) संघों में से आई हुई कोमल धूप के धब्बे कहीं-कहीं बिखरे हैं, जैस इस कोमल सुनहरी लिपि में कोई आज्ञा का सन्देश लिख रहा है।

(3) प्राण की अनिवार पीड़ा से वक्ष अपनी संपूर्ण मांसल मृदुता और माधुर्य में टूट रहा है, टूक-टूक हुआ जा रहा है।

(4) सू ..... सू.... करती तलवार की विकलता पृथ्वी की ठंडी और निचिड़ गन्ध में उत्तेजित होती गई ..... शून्य में कहीं भी घाव नहीं हो सका है-मात्र यह निर्जीव खम्भे के पत्यारों का अवरोध टकरा जाता है। ठन्न ...... ठन्न ....?'

लेखक की भाषा-शैलीगत यह विशेषता ही कही जायेगी कि उन्होंने विविध भावों, विचारों के अनुरूप शब्दों को काटा है, गढ़ा है एवं सशक्त शैली में अभिव्यक्त किया है। विचार मग्न अंजना का चित्र खींचने के लिए उन्होंने कैसी नीरव, आहटहीन शैली का प्रयोग किया है-'शेष रात के शीर्ष पंखों पर दिन उतर रहा है। आकाश में तारे कुम्हला गये हैं। मान सरोवर की चंचल लहरियों में कोई अदृष्ट बालिका अपने सपनों की जाली बुन रही है। और एक अकेली हंसिनी, उस फूटते हुए प्रत्यूष में से पार हो रही है। वह नीरव हंसिनी, उस गुलाबी आलोक-सागर में अकेली ही पार हो रही थी। वह क्यों है आज

---

1. मुक्तिदूत-आमुख, पृ० 14.

अकेली?' अंजना मातृत्व के पद पर आसीन होने को है तो 'आकाश के छोर पर कहीं श्वेत बादलों के शिशु किलक रहे हैं।' उसी उक्ति में छन्दात्मक सूचन कर दिया है। उसी प्रकार निराशा की प्रतिध्वनि में 'कहीं-कहीं नदी की सतह पर मलिन स्वर्णाभा में वैभव बुझ रहा था।'

'पुस्तक की भाषा इसी भूमिका और वातावरण के अनुरूप सहज संस्कृत प्रधान है। पर लिखते समय मन, प्राण और इंद्रियों की एकाग्रता से भावगुम्फन के लिए रूप, रस, वर्ण, गन्ध और ध्वनि के व्यंजक जो शब्द अनायास लेखनी पर आ जाते हैं, उनके विषय में हिन्दी-संस्कृत का भेद किया नहीं जा सकता। प्रत्येक शब्द की एक विशेष अनुभूति, चित्र, वर्ण और व्यंजना लेखक के मन में व्याप्त है। विशेष भाव के तदनुकूल चित्रण के लिए शब्द-विशेष सहज ही आ जाता है और कभी-कभी कोश (Vocabulary) की भाषा-अभेद अनिवार्य हो जाती है। 'मुक्तिदूत' में भी ऐसा ही हुआ है। प्रवाह में आये हुए अनेक उर्दू शब्दों को जान-बूझकर निकाला नहीं गया है, यथा-परेशान, नज़र, जलूस, दीवानखाना, कशमकश, परवरिश, सरंजाम, वचन आदि। प्रत्येक शब्द अपने स्थान पर लक्षणा या व्यंजना की सार्थकता में स्वयं सिद्ध है। अंग्रेजी का 'रेलिंग' शब्द लेखक ने जान-बूझकर अपनी व्यक्तिगत रुचि की रक्षा के लिए लिया है, क्योंकि लेखक इस शब्द में लक्षित पदार्थ का एक अद्भुत चित्रण सौंदर्य पाता है। अपने बावजूद, और 'जो भी हो' (यद्यपि के लिए) का लेखक ने बार-बार प्रयोग किया है। ये उनकी विशिष्ट शैली के अंग है।[1] इसके साथ ही 'यह लो', 'अरे लो', का प्रयोग भी विशिष्ट भाव प्रदर्शन के लिए लेखक ने बार-बार किया है। 'झालना' (पकड़ना) जैसा गुजराती शब्द भी मौजूद है। उसी प्रकार एक-एक क्रिया के लिए लेखक अनेकानेक मनभावन शब्द चित्र खींचने में चतुर है—शब्दों के चितेरे थे शब्द-खजाने के स्वामी है—'अवलोकन' की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं को उन्होंने भिन्न-भिन्न शब्दों के द्वारा व्यक्त किया है और हर चित्रण अपनी जगह सार्थक और सुन्दर है। वे एक-एक वाक्य में कल्पना और भावों का सागर ऊंडेल देते हैं, यथा—'समर्पण की दीप शिखा-सी वह अपने आप में ही प्रज्ज्वलित और तल्लीन थी।

2. चम्पक और भुवदण्डों पर कमल-सी हथेलियों में कर्लूक की आरतियाँ झूल रही हैं।

3. कपोल पाली में फैली हुई स्मित रेखा उन आँखों के गहन बरारे तटों में जाने कितने रहस्यों से भरकर लीन हो गई।

1. मुक्तिदूत-आमुख, पृ॰ 17, 18.

4. अंजना की समस्त देह पिघल कर मानो उत्सर्ग में पद्‌म पर एक अदृश्य बल कणिका मात्र बनी रह जाना चाहती है।

5. भाले में फलक-सा एक तीक्ष्ण प्रश्न कुमार की छाती में चमक उठा।

"'मुक्तिदूत' की भाषा-शैली में संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ प्रचलित विदेशी शब्दों का व्यवहार भाषा में प्रवाह और प्रभाव दोनों उत्पन्न करता है। 'मुक्तिदूत' की भाषा प्रसाद की भाषा के समान सरस, प्रांजल, और प्रवाह युक्त है। 'प्रसाद' के पश्चात इसी प्रकार की भाषा और शैली कम उपन्यासों में मिलेगी।"[1] यहाँ नेमिचन्द्र शास्त्री का उपर्युक्त कथन उचित नहीं है। लेखक ने अपनी इस कृति के रूप, तंत्र एवं विशेषता पर प्रकाश डालते हुए प्रस्तावना में लिखा है कि-हिन्दी के लेखक, आलोचक और इतिहासकार को उल्लेख योग्य तक नहीं समझा। अपने कथ्य में यह एक आध्यात्मिक और दार्शनिक मिजाज की कृति है। रूप तन्त्र में यह पर्याप्त रूप से प्रयोगशील है। हिन्दी उपन्यास में जब प्रयोगशीलता अनजानी थी, तब 'मुक्तिदूत' के लेखक ने काफी सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चेतना, प्रवाह के चित्रक और प्रतीकात्मक व्यंजना के उद्योतक प्रयोग इस कृति में किये थे। इतनी सूक्ष्मता और चेतना स्तरों की गहन अन्वेषण शीलता, इससे पूर्व हिन्दी उपन्यास में विरल ही देखने में आती है। मतलब कुल मिलाकर यह उपन्यास एक खासी दुरुह रचना है।[2] श्री वीरेन्द्र कुमार जैन का अभिमत वैसे संपूर्ण सही है लेकिन अंतिम पंक्ति में 'दुरुह रचना' कहकर कृति का अवमूल्यन-सा कर दिया है, क्योंकि दुरुहता किसी कृति का गुण न होकर त्रुटि ही कही जायेगी।

उद्देश्य :

'मुक्तिदूत' उपन्यास को केवल जैन धर्म के सिद्धान्तों का साहित्यिक प्रतिपादन करानेवाली रचना समझकर उसकी जो अवहेलना-उपेक्षा की गई है, वह सचमुच दुःख की बात है तथा कृति व कृतिकार के प्रति अक्षम्य अपराध है। इसमें केवल जैन धर्म की नहीं मानव धर्म, विश्व धर्म व युग धर्म के अनेकानेक चिन्तन-विचार्य पहलुओं पर विश्लेषण किया गया है, गहराई में जाकर आदर्श रत्नों को निकाला गया है, राह ढूंढी गई है, प्रकाश पाने की कोशिश की गई है। "'मुक्तिदूत' हृदय और बुद्धि के साहित्यिक प्रेम और अहं के युद्ध में विजयी होने वाले प्रेम का निरूपण करता है। 'मुक्तिदूत' अविभाज्य

1. नेमिचन्द्र शास्त्री-हिन्दी जैन साहित्य-परिशीलन, पृ॰ 74-75.
2. मुक्तिदूत-प्रस्तावना, पृ॰ 26.

मानवता को जिस धर्म, प्रेम और मुक्ति का सन्देश देता है, वह हृदय की अनुभूतियों का प्रतिफल है और इसीलिए उसका प्रतिपादन बहुत ही सीधे और सरल ढंग से हुआ है। लेखक ने बहुत गहरे डूब कर इन आबदार मोतियों का पता लगाया है।"[1]

भौतिकता के इस युग में इसके पीछे दौड़ लगाने से आदमी पाकर भी सब कुछ खो बैठता है, तब आध्यात्मिता, धर्म व प्रकृति की गोद में गये बिना कोई चारा ही नहीं है, वह पवनंजय व अंजना के द्वारा स्पष्ट होता है। "आज के युग में दो एकान्त बुद्धिवाद और भावना या हृदयवाद-अहंकार और आत्म समर्पण के भागों में संघर्ष है, वह पवनंजय के चरित्र में सहज ही व्यक्त हुआ है। पवनंजय इस बात का प्रतीक है कि वह यथार्थ को बाहर से सीधे पकड़कर उस पर विजय पाना चाहता है। यही अहंकार उपवसा है—आज का बुद्धिवाद, भौतिकवाद और विज्ञान की अन्य साहसिक वृत्ति (Adventures) इसी 'अहं' के प्रतिफल है। विज्ञान इस अर्थ में प्रत्यक्ष वस्तुवादी है। वह इंन्द्रिय गोचर तथ्य पर विजय पाने को ही प्रकृति विजय मान रहा है। यहीं उसकी पराजय सिद्ध होती है। इसी में से उपजती है हिंसा और महायुद्ध; और यहीं से उत्पन्न होता है निखिल संघातकारी एटमबम"[2] इसके सामने युद्ध की अपेक्षा प्रकृति की गोद में शांति, सहकार व विश्व-प्रेम की महत्ता घोषित करने का उद्देश्य व्यक्त करता है 'मुक्तिदूत' उपन्यास। इसीलिए तो लेखक ने 'आज की दिशा हारा' मानवता को यह कृति समर्पित की है, क्योंकि आज की विकल मानवता के लिए 'मुक्तिदूत' स्वयं 'मुक्तिदूत' है, जिसमें स्पष्ट किया गया है कि अहं, तर्क और युद्ध की कारा से प्रेम, सहिष्णुता एवं समर्पण-त्याग का प्रकाश ही मुक्त करा सकता है।

'मुक्तिदूत' के भीतर प्रतीक रूप से पात्रों को रखा है। अंजना प्रकृति की प्रतीक है, पवनंजय पुरुष का, उसका अहंभाव माया का और हनूमान ब्रह्म का। आज का मनुष्य अपने अहं के कारण बुद्धिमान और शक्तिशाली समझ कर बुद्धिवाद के बल पर विज्ञान की उत्पत्ति द्वारा प्रकृति पर विजय पाना चाहता है लेकिन हार कर सत्य समझता है कि प्रकृति दुर्जेय है। प्रकृति पर विजय पाना चाहता है लेकिन प्रकृति इसके ऐसे कार्यकलापों से शोकाकुल होकर उपहास-सी करती हुई मानों कहती है—'पुरुष (मनुष्य) सदा नारी (प्रकृति) के निकट बालक है। भटका हुआ बालक अवश्य एक दिन प्रकृति की शरण में लौट

1. मुक्तिदूत-आमुख, पृ० 18.
2. मुक्तिदूत-प्रस्तावना, पृ० 13.

आयेगा।' और सचमुच होता भी ऐसा है। जब भौतिक संघर्षों से मनुष्य आकुल हो उठता है, थक जाता है, तब वह प्रकृति की महत्ता से परिचित होकर उसकी विरामदायिनी गोद में परम शांति पाता है। मृदुता की अक्षय निधि सी प्रकृति उसे अपने सुकोमल अंक में भर लेती है, तब मानव के सम्मुख मानवता का सच्चा स्वरूप प्रकट होता है। पवनंजय को अहिंसक युद्ध के लिए न्याय जिस पक्ष में हो उसकी तरफ से ही लड़कर-चाहे वह अपना विरोधी पक्ष ही क्यों न हो-सदा सत्य का ही समर्थन करने के लिए प्रेरणा देने वाली अंजना के चरित्र द्वारा लेखक ने स्पष्ट किया है कि महायुद्ध की विभीषिका और संहार, अहिंसा और संयम से ही दूर किया जा सकता है। अहिंसा को समझते हुए अन्याय का दमन कर मनुष्य जब पुनः प्रकृति के निकट आता है तो उसे सहज आनंद की प्राप्ति होती है। हर्षातिरेक से 'प्रकृति पुरुष में लीन हो गई, पुरुष प्रकृति में व्यक्त हो उठा।' जिससे प्रकृति की सहज सहायता से मनुष्य का साथ सदा ब्रह्म से बना रहे। महाकवि प्रसाद की 'कामायनी' भी क्या यही संदेश नहीं देती? मनु के अहं को श्रद्धा का विश्वास, प्रेम व समर्पण ही गला सकता है, भौतिकता की दौड़ में हारा-थका पुरुष (मनु) प्रकृति श्रद्धा की प्रेममयी गोद में ही सच्ची शांति प्राप्त करता है, हृदय की उच्चता और चिर आनंद की भूमि पर पहुँच पाता है।

आज की व्यस्त मानवता रूपी दानवता के लिए यही मूल मंत्र है। जब मनुष्य विज्ञान के विनाशकारी आविष्कारों का अंचल छोड़कर सृजनमयी प्रकृति को पहचानेगा, तभी उसे भगवान के वास्तविक स्वरूप की प्राप्ति होगी और विश्व में मानवता की वृद्धि कर सकेगा। लेखक ने मानवता का आदर्श त्याग, संयम और अहिंसा के समन्वय में बतलाया है। औपन्यासिक तत्त्वों की दृष्टि से भी एक दो त्रुटियों के सिवा अन्य सभी रूपों में यह श्रेष्ठ उपन्यास हमें सच्ची मानवता के लिए 'उत्सर्ग' करने की भावना का संदेश देता है।

जैन धर्म के 'मिथ्यात्व दर्शन' सिद्धान्त का साहित्यिक ढंग से प्रस्तुतीकरण लेखक का प्रमुख उद्देश्य होने पर भी किंचित ख्याल नहीं जाता कि लेखक जैन धर्म के उपदेशक या विवेचक बन गये हैं। जैन दर्शन में समभाव और समानता का सिद्धान्त अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि मान-मोह, राग-द्वेष, 'मैं-पर' व अहंकार का त्याग कर सबको समान दृष्टिकोण से शान्त भाव से देखना-समझना चाहिए। यही विचारधारा उन्होंने अंजना के चरित्र की गरिमा व्यक्त करते हुए उसके मुख से व्यक्त की है-'अपने को बहुत मत मानो, क्योंकि यही सारे रोगों की जड़ है। मानना ही तो मान है। मान सीमा है, आत्मा असीम है और

सर्वव्यापी है। निखिल लोका-लोक उसमें समाया है। वस्तु मात्र उसमें है, तुम्हारे ज्ञान में है, बाहर से कुछ पाना नहीं है। बाहर से पाने और अपनाने की कोशिश लोभ है, यहाँ जो अपना है, उसी को खो देना है, उसी को पर बना देता है। मान ने हमें छोटा कर दिया है, जानने-देखने की शक्तियों को मन्द कर दिया है। हम अपने ही में घिरे रहते हैं। इसी से चोट लगती है, दुःख होता है। इसी से राग है, द्वेष है, रगड़ है। सबको अपने में पाओ-भीतर के अनुभव से पाओ। बाहर से पाने की कोशिश माया है, झूठ है; वासना है। उसी को प्रभु ने मिथ्यात्व कहा है। स्वर्ग, नरक मोक्ष सब तुम्हीं में है। उनका होना तुम्हारे ज्ञान पर कायम है। कहा न कि तुम्हारा जीव सत्ता मात्र के प्रमाण है, वह सिमट कर क्षुद्र हो गया है, तुम्हारे 'मैं' के कारण। 'मैं' को मिटाकर 'सब' बन जाओ। जानने देखने की तुम्हारी सबसे बड़ी शक्ति का परिचय इसी में है।[1] कितनी सार्वकालिक व सार्वदेशीय उच्च विचारधारा है, जिसका आचरण यदि जीवन में किया जाय तो जीवन धन्य व सार्थक बन जाय; जीवन आदर्शमय व दृष्टांत रूप हो सकता है। अंजना के आचार व विचार में जैन दर्शन की विचारधारा स्फुट होती है। इस प्रकार न केवल आधुनिक जैन साहित्य के लिए, बल्कि समूचे हिन्दी साहित्य के लिए गौरव समान यह उपन्यास अपने आध्यात्मिक उद्देश्य में पूर्णतः परिपूर्ण होता है। बल्कि भाषा-शैली, भव्य वर्णन, मनोविश्लेषणात्मक चरित्र-चित्रण एवं उत्कृष्ट गद्य-शिल्प विधान की कसौटी पर न केवल सही उतरता है, बल्कि उत्कृष्ट सिद्ध होता है।

वीरेन्द्र जी का दूसरा आत्म कथात्मक शैली में लिखा उपन्यास 'अनुत्तर योगी' (4 भागों में) अति समृद्ध ऐतिहासिक औपन्यासिक शैली में लिखा गया है, जो भगवान महावीर के निर्वाण के 2500 वर्ष की स्मृति-निमित्त-सुमन के रूप में हिन्दी जैन साहित्य को भेंट किया गया है। इसमें भी लेखक ने मनोवैज्ञानिक विश्लेषणात्मक शैली, समृद्ध व साहित्यिक वर्णन-परम्परा से पुष्ट आध्यात्मिक चिंतन को सुष्ठु रूप से प्रस्तुत किया है। 'अनुत्तर योगी' में कवि लेखक की गूढ़, सूक्ष्म आध्यात्मिक चेतना का स्वर मानवतावादी परिप्रेक्ष्य में अभिव्यक्त होता है। प्रत्येक पात्र का चारित्रिक विश्लेषण अनूठे रूप से हुआ है। वीरेन्द्र जैन का साहित्य हिन्दी साहित्य के विवेचक-आलोचक या इतिहासकार की दृष्टि में नहीं आ पाया यह निश्चय ही खेद की बात है। अनेक साधारण से साहित्यकारों का परिचय देने में हिन्दी साहित्य का इतिहास गौरव अनुभव करता है, तब हिन्दी जैन साहित्य के अच्छे-अच्छे रसज्ञ-कवि, उपन्यासकार,

1. द्रष्टव्य-मुक्तिदूत-उपन्यास, पृ० 77.

विद्वान निबंधकार आदि को अपरिचितता के अंधकार से बाहर निकाल कर लोकप्रियता का प्रकाश दिलवाने का यश प्राप्त करना नहीं चाहता। ऐसे अनेक जैन साहित्य के साहित्यकारों की रचना से हिन्दी साहित्य का आध्यात्मिक-साहित्य भंडार अधिक पुष्ट व समृद्ध हो सकता है।

मनोवती :

जीवन की विडम्बनाओं को शांति एवं प्रेम से समाज जीवन के संघर्षों को अहिंसामय वातावरण से यथाशक्य दूर कर मानव जीवन में आध्यात्मिक चेतना को विकसित करने का मुख्य उद्देश्य रोचक कथा वस्तु और वर्णनों के द्वारा करने का जैन कथा साहित्य कर रहा था और आज भी करता है। आज का व्यक्ति प्राचीन या नूतन कथा अंश को आधुनिक वातावरण में पढ़कर विक्षुब्ध चित को शान्त कर सात्त्विक आनंद प्राप्त कर सके, यही उद्देश्य धार्मिक साहित्य का रहता है और इसमें प्राय: सफलता भी प्राप्त होती है। यद्यपि जैन उपन्यास साहित्य अभी शैशवावस्था में है।

'मनोवती' श्री जैनेन्द्रकिशोर द्वारा लिखित काल्पनिक धार्मिक उपन्यास है, जो अपनी काल्पनिक, सरल, रोचक कथा वस्तु के कारण पाठक का मनोरंजन तो करता है, लेकिन साथ में धार्मिक विचारधारा के कारण उनके हृदय को भी उदारचेता पाने का अनुरोध करता है। इसकी कथा वस्तु का उल्लेख पहले हम कर चुके हैं, अत: यहाँ दोहराने की कोई आवश्यकता नहीं है। यहाँ हम केवल पूरे गद्य साहित्य की शिल्प-विधि, भाषा-शैली, वर्णन, उद्देश्यादि का ही विशेषत: विवेचन करना अभीष्ट समझेंगे।

जैनेन्द्रकिशोर जी का यह प्रथम प्रयास होने से स्वाभाविक है कि चरित्र-चित्रण और कथोपकथन में तीव्रता-मार्मिकता का अभाव रह गया हो, फिर भी औपन्यासिक विकास क्रम की दृष्टि से इसका काफी महत्व है।

'मनोवती' का चरित्र प्रमुख होने से उसका मनोविश्लेषणात्मक ढंग से प्रस्तुतीकरण किया गया है। उनके सामने अन्य सभी पात्र दब से गये हैं। एक दो जगह अपने पिता से स्पष्ट निर्भीकता पूर्ण बातें करना कुछ अप्रतीतिकर अवश्य लगता है, फिर भी लेखक ने उस पात्र की विशेषताओं को अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है। रतनसेन का चरित्र अधिक विश्वसनीय स्थिति में हुआ है। वैसे मनोवती के सामने वह उभर नहीं पाता है। गुणों की खान-सी मनोवती के सामने वैभव से अहंकारी बने हुए बुद्धिसेन का व्यवहार कृत्रिम और अवैज्ञानिक-सा जंचता है, क्योंकि बुद्धिसेन जैसे सदाचारी और विनयी व्यक्ति का मानसिक

पतन स्वाभाविक कारण व परिस्थितियों में होना चाहिए। लेखक ने परिवर्तन त्वरित वेग से दिखलाया है, जिससे अस्वाभाविकता आ गई है। जैनेन्द्र किशोर जी ने 'कमलिनी', सत्यवती, सुकुमाल और 'शरतकुमारी' नामक और भी धार्मिक उपन्यास लिखे हैं, लेकिन ये उपलब्ध नहीं हैं।

'मनोवती' की भाषा-शैली :

इस उपन्यास में प्रभावोत्पादकता का अभाव है। मनोभावों की अभिव्यंजना करने के लिए जिस सजीव और प्रभावपूर्ण भाषा की आवश्यकता होती है, उसका इसमें प्रयोग नहीं किया गया है। + + + भाषा चलती-फिरती है। अनेक स्थलों पर लिंग दोष भी विद्यमान है। जहाँ एक ओर तड़की, सुनहरी, बोति, खरा, पराख, दिखोआ आदि देशी शब्द पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं, वहाँ दूसरी ओर आफ़ताब, महताब, मुराद, फसाद, कर्तूत, खातिरदारी, हासिल, हताश आदि अरबी-फारसी के शब्दों की भी भरमार है। आरा निवासी होने के कारण भोजपुरी का प्रभाव भी भाषा पर है। फिर भी बोलचाल की भाषा होने के कारण शैली में सरलता आ गई है।[1]

इसी प्रकार उनके 'सुकुमाल' उपन्यास की भाषा शैली के सम्बंध में कहा जा सकता है। शैली की रोचकता एवं भाषा की स्वाभाविक सरलता के कारण जन्म-पुनर्जन्म की कथा होने पर भी पाठक को पढ़ने का आकर्षण रहता है।

उपर्युक्त कुछेक प्राप्त रचनाओं का शैली विषयक निरीक्षण-परीक्षण करने से यह भावना सहज जागृत हो जाती है कि चाहे यह विशाल मात्रा में उपलब्ध नहीं है, या चाहे आधुनिक हिन्दी साहित्य में प्रयुक्त नूतन शैलीगत विविधता, भाषा-शैली की सूक्ष्मता या गहराई, मनोवैज्ञानिक अन्तर्बाह्य विश्लेषणादि का प्रसार-प्रचार जैन उपन्यास साहित्य में उपलब्ध न हो तो भी इसका अपना विशिष्ट महत्व है। मनोरंजन तथा उच्चतम साहित्य की दृष्टि से उत्कृष्ट नहीं होने पर भी आध्यात्मिक चेतना व सद्-तत्त्वों के प्रसार के लिए ऐसे साहित्य का स्थान काफी ऊँचा है।

रत्नेन्दु :

मुनि श्री तिलक विजय जी ने इस उपन्यास की रचना की है। यदि वे इसी दिशा में आगे बढ़ते तो अवश्य जैन उपन्यास साहित्य को समृद्ध कर पाते जैन मुनि होने से अत्यन्त स्वाभाविक है कि आध्यात्मिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार का उद्देश्य रहता है तथा अपने धर्म के विचार-आचार का जन-मानस में फैलाने के लक्ष्य को सिद्ध करने के लिए उन्होंने रोचक उपन्यास का सृजन करके

1. नेमिचन्द्र शास्त्री : हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन-भाग 2, पृ॰ 60.

अध्यात्मक-विषय को स्पष्ट किया है। फिर भी कहीं रस-क्षति या उकताहट आने नहीं पाई है। रोचक कथा वस्तु (जो हम पहले देख चुके हैं) पात्रों का सुन्दर विश्लेषणात्मक चरित्र-चित्रण, वर्णनों की सुन्दरता, भाववाही आकर्षक कथोपकथन के साथ मुनि श्री ने इसके गठन में अंशमात्र भी शिथिलता नहीं आने दी है। प्रवाहानुकूल भाषा की सशक्तता सर्वत्र विद्यमान है।

इस उपन्यास की शिल्प विषयक महत्ता, योग्यता देखकर अवश्य प्रतीत होता है कि टेकनिक की सफलता से 'रत्नेन्दु' उपन्यास सज्ज होने से पाठक को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल रहता है। उपन्यास में प्रारम्भ में ही हम नायक रत्नेन्दु को अपने साथियों के साथ शिकारार्थ जंगल में जाते समय उसकी चपलता, कार्यक्षमता, धैर्य और स्फुर्ति का संवाद के द्वारा पता पा लेते हैं तथा उसकी वीरता का परिचय उसके बिछुड़े साथी जयपाल की बातचीत से मिलता है। वह रत्नेन्दु के बिछुड़ जाने से भयभीत अन्य साथियों से कहते हैं–'नहीं, नहीं, यह बात कभी नहीं हो सकती। आपके विचारों को हमारे हृदय में बिल्कुल अवकाश नहीं मिल सकता। वे किसी हिंस्र जानवर के पंजे में आ जाय, यह सर्वथा असंभव है। क्योंकि मुझे उनकी वीरता और कला-कुशलता का भली-भांति परिचय है।' इस कथन में रत्नेन्दु की वीरता, धीरता जयपाल का अपने साथी-मित्र रत्नेन्दु पर अटूट् भरोसा तो प्रकट होता ही है, साथ ही साथ कथावस्तु कैसे आगे बढ़ती है, यह जानने की जिज्ञासा भी पाठक को आगे पढ़ने के लिए उत्सुक बना देता है। उसी प्रकार इसी समय जंगल में अधोर कापालिक द्वारा उठाई गई सती पद्मिनी का रत्नेन्दु के नाम के साथ करुण क्रन्दन सुनाई पड़ता है और रत्नेन्दु उसकी रक्षा हेतु उस दिशा में जाता है, जहाँ से रोदन सुनाई पड़ता था। पद्मिनी के तेज, सौन्दर्य और आत्म बल का परिचय भी लेखक ने प्रत्यक्ष न देकर संवाद के माध्यम से करवाया है, जो अधिक ग्राह्य है। लेखक को इसकी कथावस्तु व चरित्र-चित्रण में तो सफलता प्राप्त हुई है लेकिन शिल्प-विधान भी काफी महत्वपूर्ण है।

'यह उपन्यास जीवन के तथ्य की अभिव्यंजना करता है। घटनाओं की प्रधानता है। लेखक ने पात्रों के चरित्र के भीतर बैठकर झांका है, जिससे चरित्र मूर्तिमान हो उठे हैं। भाषा विषय, भाव, विचार, पात्र और परिस्थिति के अनुकूल परिवर्तित होती गई है। यद्यपि भाषा सम्बंधी अनेक भूलें इसमें रह गई हैं, तो भी भाषा का प्रवाह अक्षुण्ण है।[1]

1. नेमिचन्द्र शास्त्री–हिन्दी जैन साहित्य-परिशीलन, पृ॰ 63.

कथा-साहित्य :

पीछे हम उल्लेख कर आये हैं कि हिन्दी साहित्य में उपन्यास व कहानी दोनों कथा-साहित्य के अंतर्गत समाविष्ट किये जाते हैं, जबकि जैन साहित्य में ऐसा नहीं है। यहाँ उपन्यास और कथा-साहित्य को पृथक्-पृथक् स्वीकार किया जाता है। आधुनिक युग में हम पश्चिमी साहित्य की टेकनिक से विशेष प्रभावित हैं, विशेषकर वर्णन, चरित्र-चित्रण, शिल्प विधान व गठन में। कभी-कभी यह भ्रमवश माना जाता है कि कहानी का बड़ा रूप उपन्यास या उपन्यास का लघु रूप कहानी है, लेकिन यह गलतफहमी है। कहानी अपने आप में एक नूतन स्वतंत्र विधा है, जिसने अत्यन्त अल्प समय में श्लाघनीय प्रगति साध ली है। 'गद्य-कथा-साहित्य के एक अन्यतम भेद के रूप में कहानी सबसे अधिक किसी अंश में उपन्यास से भी अधिक लोकप्रिय साहित्यिक रूप है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में यह रूप भी बंगला के माध्यम से पाश्चात्य साहित्य से आया है। + + + + कथा साहित्य के उपर्युक्त बड़े रूपों से कहानी की भिन्नता इतनी ही नहीं है कि उसका कथानक बहुत छोटा है और घटना-प्रसंग और दृश्य तथा पात्र और उनका चरित्र-चित्रण अत्यन्त न्यून, सूक्ष्म और संक्षिप्त होता है; वरन् कहानी प्रस्तुत करने में लेखक के दृष्टिकोण से तथा कहानी का वातावरण अर्थात् समस्त कहानी में परिव्याप्त सामान्य मनोदशा से उसके शिल्प विधान में ऐसी ऐक्यता और प्रभावान्विति आ जाती है, जो कहानी की निजी निधि है और उसके रूपात्मक व्यक्तित्व की पृथकता प्रकट करती है।[1]

यद्यपि कहानी के उपर्युक्त तत्त्व परस्पर अभिन्न रूप में संपृक्त होकर प्रत्येक कहानी में न्यूनाधिक रूप से वर्तमान रहते हैं। किसी कहानी में चरित्र, किसी में कथावस्तु, किसी में केवल वातावरण या अन्य तत्त्व को प्रधानता देते हुए शेष को अपेक्षाकृत कम महत्व दिया जाता है। कहानी के किसी एक तत्त्व पर बल देने के कारण उसमें इतनी अधिक रूपात्मक विविधता पाई जाती है कि कभी-कभी यह परखना कठिन हो जाता है कि कहानी, निबंध, संस्मरण, रेखाचित्र या चुटकले के समीप रहता है। कहानी में व्यापक मानवीय सत्यों का अन्वेषण या उद्घाटन सूक्ष्मता से किया जाता है, स्थूलता के लिए यहाँ अवकाश नहीं होता। समय की व्यवस्तता के कारण एक ही बैठक में बैठकर पाठक इसे समाप्त कर मनोरंजन और संतोष प्राप्त कर सके यह कहानी की मूलभूत शर्त या आवश्यकता रहती है। जीवन के किसी भी सत्य, अनुभूत तत्त्व का उद्घाटन कहानीकार कुशलता से कथा के सूक्ष्म माध्यम के द्वारा करता है।

---

1. द्रष्टव्य–हिन्दी साहित्य कोश, पृ० 211.

वातावरण व परिस्थितियों का भी ब्योरेवार नहीं, संकेतात्मक वर्णन वांछनीय होता है। अपने आप में गठन की चुस्तता के कारण कहानी को किसी का लघु रूप न स्वीकार कर अपनी विशेषताओं के बल पर सर्वाधिक मनोरंजन प्रदान करने वाली साहित्यिक विधा के रूप में महत्व प्राप्त है। गद्य कथा साहित्य के इस रूप का अपेक्षाकृत अल्पकाल में ही इतना शक्तिशाली विकास हुआ है कि उसकी नपे तुले शब्दों में परिभाषा नहीं दी जाती। केवल इतना कहकर संतोष प्राप्त करना पड़ता है कि कहानी गद्य साहित्य का संक्षिप्त, अत्यन्त सुसंघटित और अपने में पूर्ण रोचक कथा रूप है। लेखक और पाठक के बीच कड़ी रूप यह विधा साहित्य का सबसे स्वाभाविक और स्वच्छन्द रूप है। इसके अनन्त प्रकार अलिखित रूप में भी चलते हैं। प्राण वायु की तरह यह आवश्यक मानी जाती है। उसका लिखित रूप भी किसी न किसी तरह हमारी साहित्यिक चेष्टा का अभिन्न अंग है। उसमें अगणित प्रयोग हुए हैं और होते रहेंगे। मानवीय प्रेषण का वह सरलतम रूप हो सकती है और जटिल व उलझा हुआ भी। वह अत्यन्त व्यवस्थित अभिव्यक्ति का रूप धारण कर सकती है, तो अत्यन्त शिथिल भी। 'सच्चे कहानीकार के हाथ में कहानी, कथानक, विकास और परिणति आदि उसके तथा कथित मूल तत्त्वों से सम्बंध उसके कला-सिद्धान्तों के किसी भी झमेले में न पड़कर अत्यन्त प्रभावशाली बन सकती है। ये तत्व उपयोगी भी हो सकते हैं। और व्यर्थ भी, प्रश्न केवल लेखक का है। लेखक कहानी कला के नियम अपने लिए निर्मित करता है, अपनी शैली के द्वारा ही वह अपनी सफलता या असफलता प्रमाणित करता है।[1] विषय और वातावरण की दृष्टि से जहाँ प्राचीन कहानी में राजा, राजकुमार और राजकुमारियों की प्रणय कथाओं के आधिक्य पर, मानव के बाह्य क्रिया-कलाप व स्वभाव के वर्णन पर दृष्टि रहती है तथा संयोग, आकस्मिक घटनाओं से कुतूहल, आश्चर्य जिज्ञासा को शान्त करने की प्रवृत्ति की अतिरंजकता तथा प्रेम वृत्ति की एकछत्रता है, वहाँ आधुनिक कहानी में सामाजिक समानता की प्रवृत्ति के कारण समाज की सभी संस्थाओं, वर्णों और वर्गों के मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन की साधारण घटनाओं को कहानी का विषय बनाया गया है, संयोग और दैवी घटनाओं को कथानक के विकास में केवल साधन मात्र (साध्य नहीं) माना गया है, प्रेम के साथ अन्य प्रवृत्तियों से चित्रण पर भी ध्यान दिया गया है, मानव को देव-दानवों जैसी अति भौतिक सत्ताओं के हाथ का क्रीड़ा-कन्दुक नहीं बनाया गया है, उनकी प्रवृत्तियों का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है और जीवन में महत

1. हिन्दी साहित्य कोश, पृ० 213.

तथ्यों व शाश्वत सत्यों का भी उद्घाटन किया गया है।' शैली की दृष्टि से जहाँ प्राचीन कहानी का प्रारंभ सीधे-सादे नियमित और व्यवस्थित ढंग से होता था, वहाँ आधुनिक कहानी कथानक के किसी भी स्थल से प्रारंभ हो सकती है। यही उसकी वक्रता या विचित्रता है और उसमें चित्रण की प्रवृत्ति अधिक है। दूसरे जहाँ प्राचीन कहानी वर्णन-प्रधान होती थी, वहाँ आधुनिक कहानी रूपकों और प्रतीकों का सहारा लेकर कलात्मक होती जा रही है। उसकी शैली में निरन्तर विकास होता जा रहा है। शैली की दृष्टि से आधुनिक काल की कहानी वर्णन से चित्रण, चित्रण से विश्लेषण और विश्लेषण से सूक्ष्म विश्लेषण की ओर बढ़ रही है तथा विषय की दृष्टि से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष समस्याओं के अन्तर्मन के संघर्षों और रहस्यों की ओर प्रगति कर रही है।[1]

कहानी के कथावस्तु, पात्र व चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देशकाल-वातावरण, भाषा शैली और उद्देश्य आदि विभिन्न तत्त्व हैं, लेकिन शैली तत्त्व कहानी कला का वह महत्वपूर्ण तत्त्व है कि उसके अन्य तत्त्वों का उपयोग अपने विधान में करता है। फलत: उसमें एक तरह से विधान की स्पष्ट व्यंजना है। कहानी कला में रूपविधान के चातुर्य और हस्त-लाघव का सबसे बड़ा प्रभाव इसी शैली के अन्तर्गत देखा जाता है। एक तरह से इस कला में इसके भाव पक्ष की सफलता कला पक्ष के अधीन है और कला पक्ष के अन्तर्गत शैली तत्त्व सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। 'भाषा-शैली गद्य की वह कलात्मकता है जिसके विविध प्रयोग और रूपों से कहानीकार अपने भाव-चित्रों को मूर्त करता है। शैली के रूप विधान पक्ष के अन्तर्गत कहानी निर्माण की विभिन्न प्रणालियाँ आती हैं, जैसे—ऐतिहासिक शैली, पत्रात्मक शैली, नाटकीय शैली, आत्मचरित शैली, डायरी शैली और मिश्रित शैली।[2]

जैन कथा-साहित्य में दो प्रथा पाई जाती है, एक तो संपूर्ण रचना एक ही कथा वस्तु को लेकर लिखी गई होती है जैसे—सुरसुंदरी, खनककुमार, सती दमयन्ती, महासती सीता आदि और दूसरे में कहानी साहित्य की भांति भिन्न-भिन्न कहानियों के संग्रह प्राप्त होते हैं। इनमें जैनेन्द्रकुमार जैन, उदयलाल काशलीवाल, भगवतस्वरूप जैन, प्रो॰ राजकुमार साहित्याचार्य, डा॰ जगदीशचन्द्र जैन, डा॰ ज्योतिचन्द्र जैन, कामताप्रसाद जैन, श्री बालचन्द्र जैन, बाबू कृष्णलाल वर्मा, प्रो॰ महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, बलभद्र जी 'न्यायतीर्थ' आदि का नाम काफी महत्वपूर्ण हैं। वैसे अभी इस क्षेत्र में बहुत कुछ करने को

1. हिन्दी साहित्य कोश, पृ॰ 216.
2. वही, पृ॰ 221.

बाकी है, काफी सामग्री का उपयोग बाकी है। फिर भी जितना कार्य हो चुका है, वह भी उल्लेखनीय है।

उपलब्ध कथा-साहित्य के शिल्प विधान के विषय में प्रत्येक कृति लेकर सभी की चर्चा यहाँ संभव नहीं है, लेकिन समग्रतया संक्षेप में विवेचन उचित होगा। प्राचीन आगम ग्रन्थों में से कथा वस्तु ग्रहण करके 'बृहत कथा कोश', 'आराधना-कथा कोश', 'दो हजार वर्ष पुरानी कथाएँ' आदि अनूदित साहित्य लिखा गया है, लेकिन इनकी भाषा शैली एवं प्रस्तुतीकरण आधुनिक ही रहा है। डा॰ जगदीशचन्द्र जैन ने उन पुरानी कथाओं को सुन्दर स्वाभाविक भाषा-शैली से सजाकर प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ की भूमिका पर प्रकाश डालते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने यथार्थ ही लिखा है कि–'संग्रहीत कहानियाँ बड़ी सरस है। डा॰ जैन ने इन कहानियों को बड़े सहज ढंग से लिखा है। इसलिए ये बहुत सहज पाठ्य हो गई हैं। इन कहानियों में कहानीपन की मात्रा इतनी अधिक है कि हजारों वर्ष से न जाने कितने कहने वालों ने इन्हें कितने ढंग से और कितनी प्रकार की भाषा में कहा है, फिर भी इनका रस बोध ज्यों का त्यों बना है। साधारणत: लोगों का विश्वास है कि जैन साहित्य बहुत नीरस है। इन कहानियों को चुनकर डा॰ जैन ने यह दिखा दिया है कि जैनाचार्य भी अपने गहन तत्त्व विचारों को सरस करके कहने में अपने ब्राह्मण और बौद्ध साथियों से किसी प्रकार पीछे नहीं रहे हैं। सही बात तो यह है कि जैन पंडितों ने अनेक कथा और प्रबंध की पुस्तकें बड़ी सहज भाषा में लिखी हैं।[1]

प्रो॰ राजकुमार ने भी प्राचीन ग्रंथों से अनुवाद किया है, लेकिन यह अनुवाद मूल-का-सा आनंद देता है। बृहत्-कथा-कोश का उन्होंने सरल और सुसम्बद्ध भाषा में अनुवाद किया है जिसमें मूल भावों को अक्षुण्ण रखते हुए भी रोचकता को अंशत: भी नष्ट नहीं होने दिया है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में हमें कहानी साहित्य जिस रूप में प्राप्त होता है, उसमें युगदर्शन एवं मानव दर्शन की सूक्ष्म से सूक्ष्मतम मानसिक चेतना को मनोविश्लेषणात्मक ढंग से प्रस्तुत करते हुए विविध लोकप्रिय नूतन शैली के रूप पाये जाते हैं। केवल छोटी-सी घटना लेकर चारित्रिक विशेषताओं का निरूपण करती हुई, कहीं एकाध-दो पात्रों की मानसिक समस्या, भावना, द्वन्द्व, आदि को व्यक्त करती हुई, कहीं प्रगतिवादी कहानियाँ तो, कहीं नये-नये शैलीगत प्रयोग से लिप्त, अपने नये रूप-रंग-ढंग के साथ प्रकाशित हजारों की संख्या में कहानियों का रसास्वाद या आलोचना-विवेचना कर पाते हैं। उनमें

1. डा॰ जगदीशचन्द्र जैन रचित–दो हजार वर्ष पुरानी कथाएँ–की भूमिका से।

विषयगत विविधता भी पाई जाती है, जैसे—मनो विश्लेषणात्मक सामाजिक, ऐतिहासिक, आध्यात्मिक, राजकीय, आदि। कहानी के क्षेत्र में हिन्दी-साहित्य ने विकास का इतना सर्वोच्च शिखर सर कर लिया है कि उसकी दिन-प्रतिदिन की हिरन गति से आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता। अन्य भाषाओं से अनूदित कहानी साहित्य की तो एक अलग सृष्टि रची जा सकती है। मौलिक सर्जना में भी पाश्चात्य प्रभाव को ग्रहण कर आधुनिक युग में अनेकों कहानीकार के नाम गिनाये जा सकते हैं। यहाँ हमारा उद्देश्य आधुनिक हिन्दी कहानी का विश्लेषण करने का नहीं है। केवल एक इंगित ही पर्याप्त होगा कि जैसा वातावरण, विषय-वैविध्य, भाषा-शैली, नूतन चारित्रिक विश्लेषणात्मक पद्धति, कथा वस्तु का चयन, संवादों की तीव्रता या मार्मिकता हम हिन्दी कहानी साहित्य में देख सकते हैं, ऐसी आशा जैन कथा-साहित्य से रखना असंगत रहेगा। क्योंकि यह साहित्य एक निश्चित सीमा से मर्यादित है, कथा वस्तु भी प्राचीन होने से आधुनिक वातावरण, समाज, युग व मानवदर्शन की झांकी या विश्लेषण संभव नहीं हो पाता और उद्देश्य, भी धार्मिक प्रसार-प्रचार का होने से कहीं-कहीं उपदेशात्मकता या धार्मिक तत्त्वों का निरूपण झलक पड़ना स्वाभाविक है, इसकी अच्छाई या कमी के बावजूद भी। भाषा-शैली तो यही आधुनिक खड़ी बोली प्रयुक्त होती है, लेकिन इसमें भी भाषा के नूतन प्रयोग या शैली की विविधता का चमत्कार यहाँ कम ही देखा जायेगा, क्योंकि सभी का आधार स्थल एक है। फिर भी ऐसा करने का कतिपय इरादा नहीं है कि उपलब्ध आधुनिक कथा-साहित्य उत्कृष्ट कोटि का नहीं है। बहुत सी रचनाओं से रसास्वादन एवं आध्यात्मिक आंनद प्राप्त होता है। दूसरी बात यह है कि उच्च कोटि का विद्वान साहित्यकार चाहे प्राचीन विषय वस्तु को ग्रहण करे या आधुनिक विषय वस्तु या वातावरण ग्रहण करे, उसकी मौलिकता, तार्किकता भावों की समृद्धि तथा टेकनिक की सूझ-सफलता अभिव्यक्त हुए बिना कभी नहीं रहेगी। जैन साहित्य को भी ऐसे रचनाकार मिले हैं जिनको पाकर जैन साहित्य अपने को धन्य मान सकता है। जैन कथाओं में बाह्य क्रिया-कलाप, विविध घटनाएँ, धार्मिक वातावरण तथा रसमय कथोपकथन से पाठक की जिज्ञासा वृत्ति निरन्तर उत्सुक बनी रहती है एवं रसास्वादन प्राप्त होता है। इनमें कहीं-कहीं तो प्राचीन कथा वस्तु के साथ नवीन वातावरण, समाज रचना एवं मानव हृदय के क्रिया-व्यापारों के सूक्ष्म मार्मिक विवेचन परोक्ष या प्रत्यक्ष प्राप्त होता है। जैनेन्द्र कुमार जैन, भगवतस्वरूप जैन, बालचन्द्र जैन के कथा-साहित्य में हम टेकनिक की कुशलता के साथ मानव-जगत की समानता, समभाव,

लोकवाही आत्म विश्लेषण के साथ अन्य चरित्रों के क्रिया-कलापों का निरीक्षण पाते हैं और कथा वस्तु प्राचीन या ऐतिहासिक होने पर भी नूतन शिल्प विधान प्रकट हुए बिना नहीं रहता।

हिन्दी जैन कथा-साहित्य के प्रस्तुतीकरण के प्रयास प्राय: एक समान हैं, फिर भी किसी ने कथा वस्तु को उपदेशात्मक शैली में प्रस्तुत किया है, अथवा आचार-विचार सम्बंधी विवरण देने का उत्साह प्रदर्शित किया है, वैसे ऐसे लेखकों की संख्या कम है। बाबू कामता प्रसाद जी के कथा-साहित्य में उपदेशात्मक विचारधारा स्पष्ट रूप से मिलती है, फिर भी उनकी भाषा शैली विशुद्ध साहित्यिक है। बाबू कृष्णलाल वर्मा के कथा-साहित्य की भाषा शैली अत्यन्त मर्मस्पर्शी, तीव्र भावों की पूर्ण अभिव्यक्ति करने वाली बन पाई है। 'महासती सीता' में नारद जी अपने अपमान का बदला लेने के लिए व्याकुल होकर बड़बड़ाते हुए कहते हैं-"हूँ! यह दुर्दशा, यह अत्याचार! नारद से ऐसा व्यवहार। ठीक है। व्याध्रियों को देख लूंगा। सीता! सीता! तुझे धन-यौवन का गर्व है, उस गर्व के कारण तूने नारद का अपमान किया है। अच्छा है! नारद अपमान का बदला लेना जानता है। नारद थोड़े ही दिनों में तुझे इसका फल चखायेगा और ऐसा फल चखायेगा कि जिसके कारण तू जन्म भर तक हृदय-वेदना से जलती रहेगी।'

इन उपलब्ध कथा संग्रहों में बहुत-सी कथाओं के प्रारंभ तथा अन्त में धार्मिक ढंग से उपदेश-सारांश की पद्धति भी देखी जाती है, जिससे पाठक कुछ बोध ग्रहण कर सके। लेकिन ऐसे तरीके से रोचक कथा वस्तु से युक्त सुन्दर कथा अन्त में नीरस बन जाती है। 'मोक्ष मार्ग की सच्ची कहानियाँ' (भाग 1-2) में मोहनलाल शास्त्री जी ने प्राय: सभी कहानियों के प्रारंभ और अंत में इस प्रथा का सहारा लिया है। जैसे 'वारिषेणकुमार की कहानी' बहुत सुन्दर है, उसके अंत में लिखा है-'सत्य है, पुण्यवान मनुष्य पर कितनी ही विपत्ति क्यों न आये, वह क्षण भर में हर जाती है। इसलिए हम सबको उचित है कि अचौर्य व्रत ग्रहण कर पुण्य का संचय करे।[1] ऐसे ही 'वज्रकुमार मुनि के समान हम सबको धर्म की प्रभावना बढ़ाना चाहिए और दान, पूजा, शील, संयम, रथोत्सव धर्मोपदेश आदि के द्वारा जैन धर्म की उन्नति करना चाहिए।[2] 'हिंसक जीवों को धन श्री के समान दोनों जन्म में दु:ख भोगना पड़ता है। यह जानकर हिंसा का त्याग करना चाहिए।[3] 'साधु भेषधारी चोर की कहानी' में लेखक ने सीधे ही 'सारांश रूप' में लिखा है-'सारांश-चोरी महा पाप है। इस

1. मोहनलाल शास्त्री-मोक्ष मार्ग की सच्ची कहानियाँ, पृ० 38-39.
2. वही, पृ० 31.
3. वही, पृ० 43.

भव में और परभव में दुःखदायक है। ऐसा जानकर चोरी नहीं करनी चाहिए।'[1] सभी कथाओं में ऐसा नहीं पाया जाता है। सद्‌गुणों के विकास एवं बुरे तत्त्वों या दुर्गुणों से बचने के लिए जो विचारधारा होती है, उसे बहुत ही कुशलता एवं विश्लेषणात्मक ढंग से भगवत् स्वरूप जी जैन के कथा संग्रहों में प्रस्तुत किया गया है, जिसे पढ़कर मन प्रसन्नता के साथ आध्यात्मिक विचारधारा का आनंद भी उठा सकता है। उन्होंने अपनी प्रत्येक कहानी के प्रारंभ में कहानी में मर्मरूप में ऐसी पंक्तियाँ रखी हैं, जो कहानी के कथा बिन्दु की ओर भी संकेत करती हैं और साथ में सुविचार रूप चिंतन कणिका भी प्रस्तुत करती हैं। एक-दो दृष्टान्त इसके लिए काफी होंगे–'आत्म शोध' कहानी के शीर्षक के ऊपर उन्होंने संक्षेप में लिखा है–'मनुष्य, स्त्री आदि के लिए क्या-क्या 'पाप' नहीं करता, यहाँ तक कि जान देने को तैयार हो जाता है। किन्तु ..... वे उसको कितना चाहते हैं, यह रहस्य खुलता है, जब मोह का पर्दा दूर होता है।' (पृ० 67) 'शुद्ध और अशुद्ध प्रेम में अन्तर ही इतना है कि-एक में करुणा, कृपा, सहानुभूति, त्याग और सरलता की स्वर्गीय सुगन्ध आती है। और एक में–वासना, स्वार्थ, घृणा और कलह-कपट की नारकीय दुर्गन्ध।'[2] इस कहानी का प्रारंभ भी अत्यन्त कुतूहलपूर्ण है–आकर्षक शैली में पुरानी कथा वस्तु को प्रस्तुत कर कहानी को नया रूप प्रदान करने की क्षमता भगवत जी में प्रचुर मात्रा में है, यथा–

'अचानक प्रभव की नजर सुमित्र पर पड़ी, तो तबियत बाग-बाग हो गई। चिल्लाया जोर से–कहाँ छिपे रहे इतने दिनों-दोस्त! मार डाला यार। तुमने तो। ढूंढते-ढूंढते नाकों दम आ गया।' लेखक छोटी-छोटी चेष्टा या व्यवहार को बहुत ही स्वाभाविकता तथा मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रभावात्मक रूप से प्रस्तुत करने में निपुण हैं। 'अन्तर्द्वन्द्व' में सुमित्र और प्रभव दो मित्रों के बीच में एक स्त्री वनमाला आ गई कि 'गहरी दोस्ती के बीच में आ गई वनमाला-या कहो स्त्री का आकर्षण। स्त्री का आकर्षण हो या रूप की शराब। रूप की शराब कहो या काम बाण। और उस ताकत ने प्रभव को कह दिया, पागल। भूल गया वह हेयाहेय, उचित-अनुचित और अपने आपको भी-कामी में ज्ञान कहाँ ? जैसे दिगम्बरत्व के भीतर छल-छद्म नहीं, विकार नहीं।[3] दार्शनिकता को भी काव्यात्मक शैली एवं मधुर भाषा में प्रस्तुत करने की विशेषता जैन जी की कथाओं में पाई जाती है–यथा–

1. मोहनलाल शास्त्री–मोक्षमार्ग की सच्ची कहानियाँ, पृ० 57.
2. भगवत जैन–अन्तर्द्वन्द्व, पृ० 81.
3. भगवत जैन–अन्तर्द्वन्द्व, पृ० 85.

'महाराज कुछ देर वे क्रुद्ध दृष्टि से देखते रहे उसकी ओर। फिर सहसा उनकी मुखाकृति सौम्य होती गई।

सोचने लगे–'पाप। बड़ा शक्तिशाली है तू। एक क्षण में कुछ का कुछ कर सकता है, एं? और दुनिया में रहकर तुझसे बचना भी तो आसान नहीं है हर किसी को? तब?

पाप के भय ने महाराज के मुँह को म्लान कर दिया। वे चिंतित से, दुःखित से उस विलास-भवन में चहलकदमी करने लगे, जहाँ कुछ समय पहले आनंद की हंसी हंस रहे थे। क्षण-भंगुर विश्व!! अनायास महाराज के मुंह से निकला-'पाप बुरा है।'[1]

जीवन को सफल बनाने की कुंजी रूप विचारों को भी कभी भगवत की कथा शैली में है–'आत्म बोध'। कहानी के प्रारंभ का अंश देखिए या प्रतिज्ञापालन' का शीर्षक वाक्य देखें–'वे सब बातें कीजिए। जिन्हें आत्मोन्नति के इच्छुक काम में लाया करते हैं। दिन-रात ईश्वराधन, दया-दान, स्वाध्याय, आत्मचिंतन और कठिन व्रतोपवास करते रहिए। लेकिन तब तक वह 'सब कुछ' नहीं माना जा सकता, जब तक कि 'आत्म बोध' प्राप्त न हो जाय।[2]

'दृढ़ता और निष्ठापूर्वक जो भी कार्य किया जाता है, चाहे छोटा हो या बड़ा, उसका फल अवश्य प्राप्त होता है।[3] भगवत जैन की भाषा शैली इतनी मधुर, भाव प्रवण और रोचक है कि छोटी-छोटी कथाओं में भी वे सुन्दर विचार, भाव भर देते हैं और पाठक को पढ़ने के लिए मजबूर कर देते हैं–'इस अपार संसार में माता-पिता तथा अन्य हितू से हितू भी कोई सुखी नहीं रख सकते-केवल अपनी अच्छी-बुरी 'करनी का फल' ही जीवन मार्ग में पाथेय है।[4] 'भगवत जैन को 'मानवी' संकलन में भाषा, भाव, कथोपकथन और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। पुराने कथानकों को सजाने-संवारने में कलाकार की कला निखर गई है। सभी कहानियों का आरंभ उत्सुकता पूर्ण ढंग से हुआ है। कहानियों में रहस्य का निर्वाह भी उत्सुकता जागृत करने में सक्षम है। विशेषतः तीव्रतम स्थिति (climax) ज्यों-ज्यों निकट आती है, कहानी में एक अपूर्व वेग का संचार होता है, जिससे प्रत्येक पाठक की उत्सुकता बढ़ती जाती है। यही है भगवत जी की कला, उन्होंने परिणाम

1. भगवत जैन–विश्वासघात कथा संग्रह, पृ॰ 66 (कहानी का फल)।
2. भगवतजैन-पारस-कहानी संग्रह-आत्म बोध कथा, पृ॰ 52.
3. वही-प्रतिज्ञापालन, पृ॰ 75.
4. वही-चरवाहा, पृ॰ 103.

सोचने का भार पाठकों के ऊपर छोड दिया है। + + + कलाकार ने पात्रों का चरित्र-चित्रण करने में अभिनयात्मक शैली का प्रयोग किया है। जिससे कथाओं में जीवटता आ गई है। तर्क पूर्ण और तथ्य विवेचनात्मक शैली का प्रयोग रहने पर भी कथाओं की सरसता ज्यों की त्यों है। चलती-फिरती भाषा के प्रयोग ने कहानियों को सरल व बुद्धि ग्राह्य बना दिया है।[1] भगवत जी ने साहित्यिक भाषा के साथ-साथ उर्दू के शब्दों का भी खुले रूप से प्रयोग किया है जैसे-वेग, बेफिक्र, कसमकश, वाज़िब, गैरहाजिर, नदारद आदि, तो कहीं-कहीं अंग्रेजी के शब्द भी स्वाभाविकता से आ गये हैं।

बाबू कामताप्रसाद जैन की कथाएं प्राय: ऐतिहासिक एवं पौराणिक ही हैं। उनकी भाषा-शैली में सरलता, रोचकता के साथ ऐतिहासिकता का तत्त्व भी शामिल है। लेखक ने अपनी कल्पना-शक्ति से भी काम लिया है, लेकिन वै बिल्कुल कपोल-कल्पित नहीं है। अपनी कहानियों की शैली एवं विशेषता के सम्बंध में उन्होंने 'नवरत्न' व 'पंच रत्न' की भूमिका में जैन कहानी साहित्य के प्रारम्भ और विकास के सन्दर्भ में स्पष्टता की है-'हम जानते हैं कि साहित्य कला की दृष्टि से हमारी कहानियाँ ऊँचे दर्जे की नहीं कही जा सकती और इसलिए विद्वत्-समाज में उनका मूल्य विशेष न आंका जाय तो इसका हमें खेद नहीं है, क्योंकि पहले तो हमारा यह बाल प्रयास है और दूसरे हमारा उद्देश्य इसमें साहित्य पूर्ति के अतिरिक्त कुछ अधिक है। जैनों की अहिंसा एवं भीरुता के कारण भारत का पतन हुआ है ऐसी मिथ्या धारणा व भ्रम सामान्य लोगों में हुआ? लेकिन उसको (गलत धारणा को) बिल्कुल नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए जैन वीरों के चरित्र प्रकट करके अहिंसा तत्त्व की व्यवहारिकता स्पष्ट कर देना ही श्रेष्ठ है। इनको पढ़ने से पाठकों को जैन अहिंसा की सार्थकता और जैनों के वीर-पुरुषों का परिचय विदित होगा और इसी बात में इस रचना का महत्व अंकित है।[2]

लब्ध-प्रतिष्ठित कलाकार जैनेन्द्र जैन ने भी पौराणिक कथाएँ लिखी हैं। उनकी मर्मस्पर्शी मनोवैज्ञानिक भाषा-शैली से तो हिन्दी-साहित्य-जगत सुपरिचित है। कथा-साहित्य में एक नया मोड़ प्रदान करने वाले जैनेन्द्र जी ने जैन कथा साहित्य में भी अपनी प्रतिभा, उदात्त विचारधारा एवं भाव प्रवण भाषा-शैली के कारण एक अनोखा स्थान स्थापित कर लिया है। उनकी तात्विक विचारधारा जैन धर्म के सिद्धान्तों से प्रभावित है। कहानी कला की दृष्टि से भी उनकी

1. डा॰ नेमिचन्द्र शास्त्री-हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन, पृ॰ 102.
2. कामताप्रसाद जैन-'नवरत्न' की प्रस्तावना, पृ॰ 12.

कहानियाँ पूर्ण सफल कही जा सकती हैं। कथा वस्तु की रोचकता, भावप्रवण कथोपकथन, विश्लेषणात्मक चरित्र-चित्रण, आन्तर्बाह्य प्रकृति वर्णन के साथ भावानुकूल भाषा-शैली से सर्वथा सुन्दर उनकी कथाएँ जैन साहित्य का जगमगाता अंश है। 'आपकी रचनाओं में शुद्ध साहित्यिक गुणों के अतिरिक्त विचारों और दार्शनिकता का गांभीर्य भी विद्यमान है। भावुक कथाकार होने के कारण जैनेन्द्र जी के विचारों में भावुकता का होना स्वाभाविक है। आपकी कथाओं में कला के दोनों तत्त्व-चित्रों का एक समूह और उन्हें अनुप्राणित करने वाला भावों का स्पष्ट स्पन्दन-विद्यमान है। भावों और चित्रों का ऐसा सुन्दर समन्वय जैनेन्द्र जी की कला में है, अन्यत्र कठिनाई से मिल सकेगा।[1] 'बाहुबलि' और 'विद्यत्चर' उनकी दो कथाएँ जैन कथा साहित्य की अमूल्य निधि कही जायेंगी।

श्री बालचन्द्र जैन ने भी पौराणिक कथा वस्तु लेकर नवीन शैली में सुंदर कहानियाँ लिखी हैं, जो 'आत्मसमर्पण' नामक कथा संग्रह में संग्रहीत हैं। पौराणिक कहानियों में लेखक ने चरित्र-चित्रण, दृश्यावलियों के अंकन एवं नूतन भाषा-शैली के द्वारा नई जान डाल दी है।

पौराणिक आख्यानों को लेकर कथा ग्रन्थ लिखने वालों में बाबू कृष्णलाल वर्मा का नाम काफी महत्वपूर्ण व प्रसिद्ध है। उन्होंने सती दमयन्ती, महासती सीता, सुरसुंदरी, रूप सुंदरी, खनक कुमार आदि पुस्तकें लिखी हैं। उनकी भाषा-शैली आधुनिक है। रोचक कथावस्तु को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करने की कुशलता उनमें विद्यमान है। उपयुक्त वातावरण, श्लिष्ट-तीव्र कथोपकथन एवं मार्मिक चरित्र-चित्रण के द्वारा कथा को जीवंत व स्वाभाविक बनाते हैं। उनकी भाषा-शैली पर प्रकाश डालते हुए आचार्य नेमिचन्द्र शास्त्री लिखते हैं–'भाषा में स्निग्धता, कोमलता और माधुर्य तीनों गुण विद्यमान हैं। शैली सरस है, साथ ही संगठित, प्रवाहपूर्ण और सरल है। रोचकता और सजीवता इस कथा में विद्यमान है।[2]

पं० मूलचन्द जी–'वत्सल' की कथाओं में यथाशक्य आधुनिक भाषा-शैली का निर्वाह किया गया है, फिर भी पौराणिक-सती विषयक-कथा वस्तु होने से आधुनिक टेकनिक का निर्वाह सर्वत्र होना मुश्किल रहा है। 'सती रत्न' उनकी ऐसी पौराणिक कथाओं का संग्रह है।

अयोध्याप्रसाद गोयलीय ने किवदंतियाँ, संस्मरण, आख्यान, चुटकुले

1. नेमिचन्द्र शास्त्री–हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन, पृ० 90.
2. आचार्य नेमिचन्द्र शास्त्री–हिन्दी जैन साहित्य-परिशीलन, पृ० 87.

आदि रूपों में 'गहरे पानी पैठ' कथा-संग्रह लिखा है, जिसमें उन्होंने जीवन-सागर और साहित्य को मथकर रत्न निकाले हैं। इस संग्रह में भाव प्रवण, ज्ञानदायक और हास्य प्रधान रोचक छोटी-छोटी कथाएँ, चुटकुलों के द्वारा गोयलीय जी ने अपनी साहित्यिक महत्ता सिद्ध कर दी है। 'इन कथाओं में लेखक की कला का अनेक स्थलों पर परिचय मिलता है। आकर्षक वर्णन शैली और टकशाली मुहावरेदार भाषा हृदय और मन को पूरा प्रभावित करती है। इनमें वास्तविकता के साथ ही भाव को अधिकाधिक महत्व दिया गया है। वस्तुतः श्री गोयलीय जी ने जीवन के अनुभवों को लेकर मनोरंजक अख्यान लिखे हैं। साधारण लोग जिन बातों की उपेक्षा करते हैं, आपने उन्हीं को कलात्मक शैली में लिखा है। अतः सभी कथाएं जीवन के उच्च व्यापारों के साथ सम्बन्ध रखती हैं। यद्यपि कथानक, पात्र, घटना, दृश्य-प्रयोग और भाव ये पाँच कहानी के मुख्य अंग इन आख्यानों में समायिष्ट नहीं हो सके हैं, तो भी कहानियाँ सजीव हैं। जिस चीज का हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ता है, वह इनमें विद्यमान है। वर्णनात्मक उत्कण्ठा (Narrative Curiocity) इन सभी कथाओं में है।[1] गोयलीय जी की भाषा और शैली की सरलता, प्रवाह उनकी अपनी विशेषता है। हिन्दी और उर्दू का समन्वय उन्होंने साहजिकता से किया है। इसी कारण विद्वान से लेकर साधारण शिक्षित पाठक भी उनकी कथाओं का समानता से रसास्वादन कर सकता है। अभिव्यंजना इतने चुभते हुए ढंग से हुई है कि आख्यानों का उद्देश्य ग्रहण करने में हृदय को तनिक भी परिश्रम नहीं उठाना पड़ता। भाषा का प्रवाहात्मक एवं प्रभावात्मक स्वरूप देखिए-'तुम्हारे जैने दातार तो बहुत मिल जायेंगे, पर मेरे जैसे त्यागी विरले ही होंगे, जो एक लाख को ठोकर मारकर कुछ अपनी ओर से मिलाकर चल देते हैं।[2] ईर्ष्या का परिणाम भी उन्होंने विनोदात्मक शैली में छोटी-सी कथा में सरलता से व्यक्त कर दिया है। छोटा-सा आख्यान हमारे हृदय पर अपनी व्यंग्यात्मक भाषा-शैली के कारण प्रभाव डालता है-

'भोजन के समय एक के आगे घास और दूसरे के आगे भूस रख दिया गया। पंडितों ने देखा तो आग-बबूला हो गये। 'शेठ जी! हमारा यह अपमान!! महाराज! आप ही लोगों ने तो एक दूसरे को जाय और बैल बतलाया है।'

जैन-सन्देश में पं० बलभद्र जी न्यायतीर्थ की 'ठाकुर' उपनाम से प्रकाशित कथाओं में कथा-साहित्य के तत्त्वों के साथ जीवन की उदात्त भावनाओं का भी सुन्दर चित्रण हुआ है। उनकी शैली भी प्रवाहपूर्ण है, भाषा

1. आचार्य नेमिचन्द्र शास्त्री-हिन्दी जैन साहित्य-परिशीलन, पृ० 103-104.
2. अयोध्या प्रसाद गोयलीय-गहरे पानी पैठ-त्यागी, पृ० 24.

परिमार्जित और सुसंस्कृत है। किन्तु उनका यह आरंभिक प्रयास होने के कारण कथानक, संवाद तथा चरित्र-चित्रण में कहानी कला के विकास की कुछ कमी रही है।

देवेन्द्र प्रसाद जैन भी हिन्दी जैन कथा-साहित्य के एक प्रमुख कथाकार हैं। उन्होंने 'ऐतिहासिक स्त्रियाँ' नामक पौराणिक व ऐतिहासिक कथा वस्तु पर आधारित स्त्रियों की गौरव-गाथा को प्राचीन कथा-शैली में प्रस्तुत किया है। इसे पढ़ने के लिए पाठक का मन निरन्तर उत्सुक बना रहता है। भाषा में कहीं भी व्यर्थ आलंकारिकता नहीं है। सरल एवं सहज बोलचाल की भाषा ही सर्वत्र प्रयुक्त हुई है। कथा में इष्ट उपदेशक का रूप कथा प्रवाह को कहीं भी विश्रृंखलित नहीं बनाता। 'ज्ञानोदय' में महेन्द्र कुमार न्यायाचार्य की वर्ण व्यवस्था का खोखलापन दिखलाकर समता व स्वतंत्रता का संदेश देने वाली तीन-चार कहानियाँ प्रकाशित हुईं। 'श्रमण प्रभाचन्द्र', 'जटिल मुनि' और 'बहुरूपिया' में वैसे टेकनिक का अभाव है और भाषा-शैली में बीच-बीच में संस्कृत के श्लोकों की अवतारणा की गई है, फिर भी जैन कथा के सन्दर्भ में इनका महत्व अस्वीकृत नहीं किया जायेगा। उद्देश्य की दृष्टि से इनकी कहानियाँ अच्छी हैं। कवि परिमल जी ने संवत 1951 में 'श्रीपाल चरित' की पद्य में रचना की थी। उसकी पांडुलिपि शुद्ध करके बाबू ज्ञानचन्द जैन ने सन् 1904 में प्रकट किया। लेकिन प्रत खो जाने के कारण दीपचन्द जी उपदेशक के पास सरल हिन्दी में गद्यानुवाद ज्ञान चंद जी ने करवाया।[1] श्री पाल मैना की कथा जैन समाज में अत्यन्त प्रसिद्ध है। स्वकर्म का सिद्धान्त, त्याग-संयम एवं श्रद्धा के द्वारा विषम परिस्थितियों को दूर करके सुख-संपत्ति एवं सम्मान प्राप्त किया जा सकता है—सुख-दुःख में तटस्थ रहकर सत्कर्मों के द्वारा जीवन सार्थक करने का संदेश इस कथा से प्राप्त होता है। श्री मंचपरमेष्ठि यंत्र और सिद्ध चक्र पूजन की अद्‌भुत महिमा वर्णित करने के लिए 'श्रीपाल-चरित' की रचना हुई है। इस कथा-ग्रन्थ की रचना-प्रक्रिया अत्यन्त रोचक है। मूल कथा वस्तु को सीधे रूप से न रखकर कथा के अन्तर्गत कथा की रचना की गई है। महाराज श्रेणिक व महारानी चेलना गौतम स्वामी से सिद्धचक्र पूजन का महात्म्य पूछते हैं तब उनकी शंका के समाधान हेतु वे श्रीपाल राजा का चरित्र वर्णित करते हैं। इस कथा ग्रन्थ की भाषा-शैली में गुजराती, मारवाड़ी आदि अन्य भाषा के शब्द-प्रयोग भी मिलते हैं, जैसे परणे, ब्याहो, आवो-आवो, लूछो आदि। सुभाषितों का लेखक ने अच्छा प्रयोग किया है—यथा—

1. द्रष्टव्य-श्रीपाल चरित की भूमिका, पृ० 1.

पति निंदा अरू आप बढ़ाई, सह न सकें कुलवती लुगाई।
नयन उधारे सब लखे, नय अये कुछ नांहि,
नयन बिछोहो होत ही, सुध-बुध कछु न रहा हि।
नौकर, बन्धु वा भामिनी, गृहणी कर्मयुत जीव,
ये पांचों संसार में, परवश भ्रमे सदेव।
पुण्य उदे अरि मित्र है, विष अमृत हूवे जाय,
इष्ट अनिष्ट ह्वै पर नमे, उदे पाप वश भाय।
जीव का उसी का किया हुआ शुभाशुभ कर्म ही दुःख-सुख का दाता है।
परदेशी की प्रीत और बालू की भीत।
जिसका घी गिर जाय, सो ही लूखा खाय।

पद्य में से गद्य में अनुवाद किया गया होने से भोः भोः, तिष्ठते आदि संस्कृत के शब्दों को ज्यों का त्यों रख दिया गया है। भाषा की अशुद्धि जगह-जगह पर दिखती है—यथा—सकती, ह्वो। लेकिन लोकोक्ति, कहावत-मुहावरों के सुन्दर प्रयोग से व्याकरण की अशुद्धता के बावजूद भी भाषा मीठी एवं स्वाभाविक लगती है। समाज में व्यवहृत आदर्शों और विचारों का लेखक ने सरल-मधुर शैली में निरूपण किया है।

स्व० श्रीमद् ब्रह्मचारी नेमिदत्त जी ने 'नेमिपुराण' नामक महाग्रन्थ का उदयलाल काशलीवाल ने हिन्दी में अनुवाद किया है। इसकी मूल प्रति हिन्दी लेखक को बड़नगर के स्वरूपचन्द जी के सरस्वती भंडार के अध्यक्ष श्रीयुत तनसुख जी गोथा के द्वारा प्राप्त हुई थी, जो बहुत शुद्ध थी।[1] भगवान श्रीकृष्ण के चचेरे भाई नेमिनाथ जी का वृतान्त इसमें है। इसके साथ ही कंस, जरासंध, बलदेव, कृष्ण, कृष्ण के पिता वासुदेव, उनकी विभिन्न राजकुमारियों से शादी, वासुदेव के भाई समुद्रगुप्त और अन्य भाइयों का जीवन वृतान्त, पूर्व जन्म, कृष्ण की पट्टरानियों का पूर्वजन्म आदि का लेखक ने अत्यन्त विस्तार से वर्णन करके 'नेमिपुराण' शीर्षक का 'पुराण' सत्य सिद्ध किया है।

पौराणिक आख्यानों को लेकर नूतन भाषा-शैली एवं भावों में लिखने वालों में उपरोक्त कथाकारों के अतिरिक्त सर्वश्री अक्षयकुमार जैन, यशपाल जैन, नेमिचन्द्र जैन, बालचन्द्र जैन, रतनलाल 'वत्सल', चन्द्रमुखी देवी, चन्द्रप्रभा देवी, पुष्पा देवी और सरस्वती आदि का योगदान भी काफी महत्वपूर्ण है।

1. द्रष्टव्य—'नेमिपुराण'-का प्राक्कथन, पृ० 8, अनुसंधायिका को यह ग्रन्थ बड़ोदा के 'श्री आत्माराज जैन पुस्तक भंडार' से उपलब्ध हुआ था।

भगवान महावीर के 2500वें निर्वाण वर्ष के उपलक्ष्य के अनुमोदनार्थ सन् 1975 के वर्ष में जैन कथा-साहित्य के भण्डार की सराहनीय श्रीवृद्धि हुई है।

'जैन कथा-साहित्य के अनुपम रत्नों के रहने पर भी अभी इस क्षेत्र में पर्याप्त विकास की आवश्यकता है। यदि जैन कथाएं आज की शैली में लिखी जाएं तो इन कथाओं से मानव का निश्चय ही नैतिक उत्थान हो सकता है। आज तिजोरियों में बन्द इन रत्नों को साहित्य-संसार के समक्ष रखने की ओर लेखकों को अवश्य ध्यान देना होगा। केवल ये रत्न जैन-समाज की निधि नहीं है, प्रत्युत इन पर मानव-मात्र का स्वत्व है।'[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक युग में भी कथा वस्तु सामाजिक धरातल को नहीं स्पर्श कर सकी। हाँ, समय के साथ उनकी भाषा शैली में यत्किंचित आधुनिकता आई। तथापि रोचक शैली में लिखित इन कथाओं को पढ़ने से मानव-मन की गहराइयाँ, धर्म की महत्ता और सद्वृत्तियों की पहचान मिल जाती है।

नाटक :

हिन्दी साहित्य में नाटक के विविध रूपों का जितना उत्कृष्ट विकास हो पाया है, उसकी तुलना में इस सीमित क्षेत्र में नाटकों की संख्या पर्याप्त रूप से कम है। स्वाभाविक है कि धार्मिक उपदेशात्मक लक्ष्य होने से पौराणिक व धार्मिक विषय-वस्तु लेकर नाटक लिखना सबकी रुचि या वश की बात नहीं हो सकती। फिर भी एक बात लक्षित होती है कि जितने नाटक लिखे गये हैं, वे सभी प्रायः अभिनयात्मक व सरल-प्रवाहमयी शैली में लिखे गये हैं। आधुनिक टेकनीक का निर्वाह भी यथाशक्य इन नाटकों में पाया जाता है। विशेषकर 60 के अनन्तर जो नाटक लिखे गये हैं, उनमें आधुनिक साज-सज्जा और संकेतों का विशेष ध्यान रखा गया है, जैसे—श्रीमती कुंथा जैन के रेडियो नाटक, नृत्य-नाटिका एवं रूपकों में पाया जाता है। विषय वस्तु भले ही पौराणिक, धार्मिक या लौकिक रही हो, लेकिन मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, रंगमंचीय साज-सज्जा, आधुनिक समाज का यथासंभव प्रतिबिम्ब अथवा भाषा-शैली की नूतनता आज के नाटकों में पाई जाती है।

हिन्दी जैन नाटकों का प्रादुर्भाव उस समय हो चुका था, जब भारतेन्दु काल में पारसी रंगमंच के नाटकों की धूम मची थी। ग्रामीण व साधारण जनता के लिए ये नाटक अभिनीत होते थे, जो हंसी-मजाक, ठिठोली से युक्त बाजारू किस्म के थे। साहित्यिक रुचि रखने वाले विद्वानों को ऐसे नाटकों में अश्लीलता

1. नेमिचन्द्र शास्त्री—हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन, पृ० 106.

के कारण अभिरुचि नहीं होती थी जो स्वाभाविक था। ऐसे निम्न कोटि के नाटकों में साधारण या गांव की जनता की रुचि के अनुरूप शेरो-शायरी, गजल, नाच-गान आदि का आधिक्य रहता था। अतः उस काल की नाटकीय विशेषताओं से प्रभावित जो नाटक जैन-साहित्य में लिखे गये, उनकी भाषा-शैली भी पद्यमय ही मिलती है, विशेषकर न्यामत सिंह के नाटकों में।

आधुनिक जैन-नाटक साहित्य में सर्वप्रथम जैनेन्द्र किशोर आरावासी का नाम आदर से लिया जाता है, जिन्होंने दर्जन से भी अधिक पौराणिक विषय वस्तु पर आधारित रंगमंचीय नाटक लिखे। वे सभी अप्रकाशित होने से सामान्य पाठक तक पहुँच न पाये। आपके प्रयासों से उन नाटकों का रंगमंचीय अभिनय किया जाता था और विदूषक का पार्ट आप स्वयं खेला करते थे। उनकी मृत्यु के बाद यह मंडली बन्द हो गई थी। आपके नाटकों की भाषा-शैली प्राचीन होने पर भी इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम कहा जायेगा। श्री जैनेन्द्र किशोर के सभी नाटक प्रायः पद्यबद्ध हैं। उर्दू का प्रभाव पद्यों पर अत्यधिक है। 'कलि-कौतुक' के मंगलाचरण के पद्य सुन्दर हैं। + + + मनोरमा सुंदरी, अंजना-सुन्दरी, चीर द्रौपदी, प्रद्युम्न चरित और श्रीपाल चरित नाटक साधारण तथा अच्छे हैं। पौराणिक उपाख्यानों को लेखक ने अपनी कल्पना द्वारा सरस और हृदय ग्राह्य बनाने का प्रयास किया है। टेकनिक की दृष्टि से यद्यपि इन नाटकों में लेखक को पूरी सफलता नहीं मिल सकी है, तो भी इनका सम्बंध रंगमंच से है। कथा-विकास में नाटकोचित उतार-चढ़ाव विद्यमान है। वह लेखक की कलाविज्ञता का परिचायक है। इनके सभी नाटकों का आधार सांस्कृतिक चेतना है। जैन संस्कृति के प्रति लेखक की गहन आस्था है। इसलिए उसने उन्हीं मार्मिक आख्यानों को अपनाया है, जो जैन-संस्कृति की महत्ता प्रकट कर सकते हैं।[1]

अर्जुनलाल सेठी लिखित 'महेन्द्र कुमार' नाटक की कथा वस्तु हम पीछे देख चुके हैं। यह नाटक धार्मिक या पौराणिक न होकर सामाजिक समस्याओं को चित्रित करने वाला है। इसमें नाटककार का उद्देश्य दहेज प्रथा, मद्यपान व्यसन आदि सामाजिक कुरीतियों की ओर इशारा कर समाज-सुधार स्पष्ट दीखता है। इस नाटक में पात्रों की भरमार के साथ भाषा खिचड़ी हो गई है। इस नाटक में कई भाषाओं का सम्मिश्रण है। पात्र भी कई तरह के हैं। कोई मारवाड़ी, कोई अप-टू-डेट, कोई साधारण गृहस्थ। अतः भाषा भी भिन्न प्रकार की व्यवहृत हुई है। 'कुणघणा' आदि मारवाड़ी और 'करे छे', 'उडावुं छुं' आदि

1. नेमिचन्द्र शास्त्री–हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन–भाग 2, पृ॰ 107, 108.

गुजराती शब्दों का प्रयोग भी इसमें हुआ है। यों तो साधारणत: खड़ी बोली है। बीच-बीच में जहाँ-तहाँ अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग खुलकर किया गया है। विश्रृंखलित कथा के रहने पर भी अभिनय किया जा सकता है।[1]

महासती अंजना का पौराणिक कथानक लेकर सुदर्शन जी एवं कन्हैयालाल जी ने क्रमश: 'अंजना' एवं 'अंजना सुंदरी' नाटक की रचना की है। वैसे दोनों नाटक अभिनेय हैं तथा आधुनिक भाषा-शैली से सज्ज हैं। दोनों की कथा में प्रवाह व औत्सुक्य, कथोपकथन में मार्मिकता, सजीवता व गति भी है, चरित्र-चित्रण में मनोवैज्ञानिक-विश्लेषण विद्यमान है, फिर भी सुदर्शन जी का नाटक अधिक साहित्यिक तथा कलापूर्ण है। भावों का उतार-चढ़ाव मर्मस्पर्शी और संक्षिप्त संवाद इसका प्राण है। बीच-बीच में सुन्दर काव्य पंक्तियाँ संजोकर नाटक को साहित्यिक बनाया है। अंजना पति विरह में व्याकुल होकर गाती है–

दिन बीते, रातें बीतीं, ऋतुएं बदलीं, महीने, वर्ष और युग बदले, किन्तु हाय! मुझ अभागिन का भाग्य नहीं बदला–

शेर– **तड़फती हूँ कि ज्यों, मछली बिन-पानी तड़फती है।**
दरश पाने को प्रियतम के, अभागिन यह तड़फती है॥
हुई है जिन्दगी दूभर, नहीं कुछ भी सुहाता है।
विरह की वेदना से अब, कलेजा मुँह को आता है।

'कलेजा मुँह को आता–' मुहावरे का प्रयोग भी नाटककार ने अच्छी तरह से कर दिया। संवादों की भाषा कितनी संक्षिप्त, तीव्र और गति प्रेरक है इसका एक उदाहरण पवनंजय एवं वरुण के निम्नोक्त संवाद में देखिए–

'वरुण– ह: ह: ह: इतना भरोसा!
पवन– नहीं! आत्म विश्वास।
वरुण– इतना घमण्ड!
पवन– नहीं! न्याय की ताकत।
वरुण– यह ललकार।
पवन– हाँ! अन्याय का प्रतिकार।
वरुण– यह अरमान ?
पवन– नहीं। न्याय का सम्मान।' (पृ॰ 64)।

आधुनिक हिन्दी जैन नाटकों की श्रीवृद्धि का श्रेय न्यामत सिंह को दिया जाना चाहिए। उन्होंने सती कमलश्री, विजयासुंदरी, सती मैना सुन्दरी, श्रीपाल

---

1. नेमिचन्द्र शास्त्री–हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन-भाग 2, पृ॰ 113.

नाटक आदि नाटकों की सफल रचना की है। वैसे उनके नाटकों की भाषा-शैली पर पारसी थियेट्रीकल कंपनी के वातावरण का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। पद्यमय संवाद तथा शेरो-शायरी में ही प्रायः कथोपकथन आगे बढ़ते होने से कहीं-कहीं तो ऐसे संवाद अप्रतीतिकर या भद्दे-से लगते हैं। संवादों में ग़ज़ल, के कारण उर्दू शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग है। प्रत्येक पात्र की भाषा उर्दू प्रधान है अतः शरारत, मक्र, धोखा, दगा, फरेब, रिवा, यकायक, याराना, जहूर, शरारत, इसद, आलम, बदजुबानी, बुज्जकीना आदि। उसी प्रकार कहीं-कहीं अंग्रेजी के शब्द थर्मोमीटर, चेइन्ज, एजन्ट, आदि शब्द प्रयोग भी प्राप्त होते हैं। पद्यमय संवाद का एक दृष्टान्त दृष्टव्य है—तिलकपुर पहुँच कर भविष्यदत्त जैन मंदिर देखता है तो यहाँ भगवान महावीर के चरणों में प्रणाम करता है—

(चाल) **इन दिनों जोरो बनूं है तेरे दीवाने को।**
अय महावीर! जमाने का दिनकर तू है।
सारे दुःखियों के लिए एक दयाकर तू है।
तूने पैगाम अहिंसा का सुनाया सबको,
बस जमाने का हितोपदेशी सरासर तू है।

न्यातमत सिंह के सभी नाटकों की भाषा-शैली एक-सी है। सभी में पद्यमय काव्यत्वपूर्ण नहीं—संवाद, शेरो-शायरी-ग़ज़ल आदि का प्राधान्य, तथा प्रवाहपूर्ण शैली पाई जाती है। उनके नाटकों की भाषा-शैली का अध्ययन विवेचन आधुनिक युग के नाटकों के परिप्रेक्ष्य में नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि उस समय केवल नाटक साहित्य का प्रारंभ हो चुका था, लेकिन पाश्चात्य टेकनिक या शैली का प्रभाव अभी तक फैला नहीं था। बल्कि ऊपर बतलाया जा चुका है कि पारसी कम्पनी के सस्ते मनोरंजन प्रधान नाटकों का प्रभाव विशेष है। पद्यमय संवादों के लिए यह बात भी दर्शनीय है कि उस समय छोटे-छोटे गांवों में नौटंकी, रामलीला, यात्रादि के प्रयोगों में वार्तालाप पद्य में अधिक हुआ करते थे। उनका प्रभाव इन नाटकों पर भी देखा जाता है। अतः शेर, शायरी, गजलों का इतना खुलकर प्रयोग नाटककार ने रोचक ढंग से किया है। लोक नाटकों के प्रभाव स्वरूप नाच-गान, हंसी-मजाक ठिठोली का प्रभाव देखा जा सकता है। नाटकों में व्याकरण सम्बन्धी भूलें भी क्वचित दृष्टिगत होती हैं जो क्षम्य कही जायेंगी। यथा—

'तू तो क्षत्राणी है, दुःखों से क्या डरता है।[1] प्रास-अनुप्रास का मेल रखने के लिए शब्दों का अंग-भंग या घटाने-बढ़ाने का क्रम तो पद्यमय संवाद के

1. न्यामत सिंह—श्रीपाल-मैनासुंदरी नाटक-एक्ट छठा, पृ॰ 225.

कारण क्षम्य हो जाता है लेकिन इसी प्रकार लय या राग भंग और प्रास का रूप ठीक रखने के लिए स्त्री लिंग-पुल्लिंग का भेद भी छोड़ दिया गया है, जो थोड़ा खलता है।

'खूब करमों का तमाशा में पिया देख लिया। लशकर (लश्कर) इन्द्र रानी (इन्द्राणी) करिशमा (करिश्मा) किसमत्, परताप (प्रताप) (त्ररण) पृ॰ 98, 136, 130) आदि शब्दों का प्रयोग चुभता है। शिरोमणि के लिए 'श्रोमणी' और 'चक्रवती' के बदले 'चकरवती' में गलत शब्द प्रयोग नजर आता है। इन सब कमियों के बावजूद भी नाटक रोचक कथावस्तु, सुन्दर संवाद तथा उद्देश्यात्मक वातावरण के कारण अच्छी तरह से लोक भोग्य हो सके थे।' इस नाटक (कमलश्री) की शैली पुरातन है। भाषा उर्दू मिश्रित है तथा एकाध स्थल पर अस्वाभाविक भी प्रतीत होती है।[1]

ब्रजकिशोर नारायण लिखित 'वर्धमान महावीर' पूर्णतः अभिनेय है। लेखक ने रंगमंच के लिए ही इस नाटक की रचना की है और अपने उद्देश्य में सफल भी हुए हैं। सभी घटनाएँ दृश्य हैं तथा कथोपकथन की क्षमता नाटकीय प्रभाव पैदा करता है, क्योंकि श्राव्य, अश्राव्य और नियत श्राव्य तीनों प्रकार के संवाद कथानक को गति प्रदान करने वाले तथा पात्रों के विकास पर प्रकाश डालने वाले हैं। अभिनय सम्बंधी त्रुटियाँ बहुत कम पाई जाती हैं। वैसे नाटक के लिए उपकारी से तत्त्व संगीत और नृत्य की कमी रही है। भाषा-शैली आधुनिक और गतिशील है। छोटे-छोटे संवाद प्रभावशाली बन पड़े हैं। रानी त्रिशला और दासी सुचेता का निम्नलिखित वार्तालाप भाषा शैली का प्रवाह व गति व्यक्त करता है–

'त्रिशला-सुचेता! मैं तालाब में सबसे आगे तैरते हुए दोनों हंसों को देखकर अनुभव कर रही हूँ, जैसे मेरे दोनों पुत्र नन्दिवर्धन और वर्धमान जलक्रीड़ा कर रहे हैं। दोनों में जो सबसे आगे तैर रहा है वह .....

सुचेता-वह कुमार नन्दिवर्धन है महारानी!

त्रिशला-नहीं सुचेता, वह वर्धमान है। नन्दिवर्धन में इतनी तीव्रता कहाँ ? इतनी क्षिप्रता कहाँ ? देख, देख, किस फुर्ती से कमल की परिक्रमा कर रहा है शरारती कहीं का।'

श्री भगवत जैन का आधुनिक-हिन्दी-नाटक साहित्य में प्रदात्त भी महत्वपूर्ण प्रदान है। वे कथाकार के अतिरिक्त सफल नाटककार भी हैं। 'गरीब'

---

1. नेमिचन्द्र शास्त्री–हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन–भाग-2, पृ॰ 117.

उनका सामाजिक नाटक है तथा 'भाग्य' पौराणिक है। दोनों की भाषा-शैली विषयानुकूल है। 'गरीब' नाटक की भाषा विशेष रूप से व्यंग्यात्मक एवं गतिशील है। उन्होंने अपने नाटकों को रंगमंचीय बनाने का पूरा ख्याल रखा है। अत: साज-सज्जा, अभिनय, वेश-भूषा आदि संकेतों का अच्छा उल्लेख मिलता है। नाटककार ने अपने नाटकों की भाषा-शैली एवं विशेषताओं के सम्बन्ध में स्वयं लिखा है—जहाँ तक हुआ है, इसे सार्वजनिक बनाने का प्रयत्न किया है। कथानक को प्राय: सभी घटनाएँ देने की चेष्टा की गई है, किन्तु स्टेज करने वालों की सुविधा, असुविधा का ध्यान पहले रखा है। + + + इसी तरह कम से कम पात्र चुने हुए आधुनिक ढंग के संवाद और थोड़े समय में समाप्त हो सकने योग्य संक्षिप्त प्लोट आदि उन सभी बातों को पहले कुछ सोचने के बाद में लिखा गया। साथ ही, कुछ वे बातें भी शायद आपको इसमें मिल सके, जो नाटक साहित्य की कसौटी पर कसी जाया करती है। सही है कि आज इस ढंग के नाटक लिखने का चलन कम हो गया है, यह पुरानी पारसी कम्पनियों की देन है। लेकिन यथार्थवाद की शपथ लेकर यह कहा जा सकता है कि भले ही इस शैली को साहित्यिक न कहा जाय, किन्तु स्टेज पर यह जो प्रभाव छोड़ती है, वह मननशील साहित्यिक शैली की नाटिकाएँ नहीं।[1] नाटककार ने इसमें 'फ्लेशबेक' पद्धति का प्रारंभ में ही प्रयोग किया है, जो आधुनिक साहित्य की विशेषता कही जायेगी। 'गरीब' नाटक की भाषा भी अंग्रेजी के शब्द-प्रयोग से बोलचाल की जीवंत भाषा है। बीच-बीच में कहीं गीत या लंबे स्वगत कथन न आने से कथा का प्रवाह विशृंखलित नहीं हो पाया है। अत: रोचकता का निर्वाह हुआ है। इस नाटक के अभिनय से समाज की विचारधारा पर काफी प्रभाव पड़ सकता है। भगवत जी के इस 'गरीब' नाटक में 'युग की सामाजिक विषमता और उसके प्रति विद्रोह' की भावना है। पूंजीपतियों की ज्यादती और गरीबों की करुण आह एवं धनी और निर्धन के हृदय की भावनाओं का सुन्दर चित्रण किया गया है। रुपयों की माया और लक्ष्मी की चंचलता का दृश्य (स्वरूप) दिखलाकर लेखक ने मानव हृदय को जगाने का यत्न किया है। इसमें अनेक रसमय दृश्य वर्तमान हैं, जो दर्शकों को केवल रसमय ही नहीं बनाते, किन्तु रस-विभोर कर देते हैं। भगवत जी ने वस्तुत: सीधी-सादी भाषा में यह सुन्दर नाटक लिखा है।[2] 'बलि जो चढ़ी नहीं' भगवत जी का अहिंसा से सम्बंधित विविध विषयों का एकांकी संग्रह है। जिनकी कथावस्तु पौराणिक होने

1. भगवत जैन—भाग्य-नाटक-भूमिका, पृ॰ 4.
2. नेमिचन्द्र शास्त्री—हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन-भाग-2, पृ॰ 117.

पर भी भाषा-शैली आधुनिक है। वातावरण की रचना नाटककार ने वास्तविक बनाये रखी है। भाषा की दृष्टि से सहज स्वाभाविक यह नाटक पूर्णतः रंगमंचीय है।

'दहेज के दुःखद परिणाम' पं० ज्ञानचन्द्र जैन का 16 दृश्यों में विभाजित सामाजिक नाटक है, जिसमें दहेज की कुप्रथा के कारण स्वरूप दुःखद परिणामों की ओर सुन्दर रोचक भाषा शैली व वातावरण के आयोजन द्वारा अंगुलि निर्देश किया गया है। इसकी शैली की यह विशेषता कही जायेगी कि हास्य तथा व्यंग्य के द्वारा समाज में फैली दहेज की विषम प्रथा पर आकर्षक शैली में प्रकाश डाला गया है। यह नाटक पूर्णतः रंगमंचीय है तथा जैन जी के इस नाटक के प्रदर्शन से लोगों की विचारधारा या व्यवहार में अवश्य प्रभाव-परिवर्तन आ सकता है।

'सती अंजना नाटक' पद्मराज जी गंगवाल का पौराणिक नाटक है, जिसकी भाषा-शैली आधुनिक है, लेकिन उनकी रसात्मक एवं साहित्यिक नहीं जितनी इसी विषय वस्तु को लेकर सुदर्शन जी के लिखे गये नाटक की है। फिर भी रंगमंचीयता का गुण विद्यमान है तथा कथोपकथन प्रवाहपूर्ण है।

नंदलाल जैन का अहिंसा, करुणा और प्रेम का संदेश देने वाले 'अहिंसा धर्म' नाटक की भाषा शुद्ध खड़ी बोली तथा आधुनिक टेकनिक से पूर्ण है। रतनलाल गंगवाल का 'दीवान अमरचंद' ऐतिहासिक अहिंसा प्रेमी-विद्वान से सम्बंधित नाटक है। कथानक छोटा-सा होने पर भी नाटक भी रंगमंचीयता एवं रोचकता के कारण नाटक लोकप्रिय हो सकता है। बीच-बीच में गीतों का प्रयोग भी हुआ है तथा संदेश भी लम्बे-लम्बे स्वगत कथनों के द्वारा न देकर संवादों में बीच-बीच में आते रहते हैं।

न्यामत सिंह जैन के सुपुत्र राजकुमार जैन भी कवि के अतिरिक्त हिन्दी-जैन नाटक साहित्य में सफल नाटककार के रूप में प्रसिद्ध हैं। उन्होंने भी जैन जगत व धर्म की प्रसिद्ध स्त्री चन्दनबाला तथा सुर सुन्दरी की कथा-वस्तु पर सुन्दर रोचक नाटकों की रचना की है। जैन धर्म के तेजस्वी नारी रत्नों के परिचय के साथ जैन धर्म की महत्ता प्रदर्शित करने के उद्देश्य में वे पूर्ण सफल रहे हैं तथा आधुनिक भाषा-शैली तथा शिल्प विधान का प्रयोग होने से नाटक रंगमंचीय भी बने हैं। वैसे उन्होंने न्यामतसिंह की शैली में ही उर्दू प्रधान भाषा तथा शेरों-शायरी की शैली में नाटक की रचना की है।

'अहिंसा परमोधर्म नाटक' में दयानन्द जैन 'विशारद' ने आधुनिक शैली में अहिंसा का महत्व प्रतिपादित करने वाली कथा वस्तु लेकर नाटक की रचना

की है। इसी कथा वस्तु पर से भगवत जैन ने कहानी तथा 'बलि जो चढ़ी नहीं' एकांकी की सफल रचना की है। दयानंद जी ने इसमें गीत-नृत्य की रचना द्वारा नाटक को रंगमंचीय बनाये रखा है। लेखक ने प्रस्तावना में कहा है कि—अहिंसा धर्म की महानता को लेकर इस नाटक का सृजन किया गया है। + + + प्रस्तुत नाटक का मुख्य अभिप्राय बलि जैसे जघन्य पाप पूर्ण कुकृत्यों की ओर इंगिता करना है और इसके विपरीत अहिंसा धर्म की उच्चता से उसकी तुलना। + + + यह नाटक आधुनिक रीति से तैयार किया गया है, जिसे आज के युग के प्रगतिशील तरुण सफलतापूर्वक रंगमंच पर खेल सकें।[1] दो अंक में विभक्त इस नाटक में प्रथम अंक में 12 दृश्य एवं दूसरे में 10 दृश्यों की योजना की गई है। प्रथम प्रयास होने पर भी टेकनिक की दृष्टि से भी सफल कहा जायेगा। कहीं-कहीं बीच-बीच में संवादों में जैन दर्शन के सिद्धान्तों का विश्लेषण रसास्वादन में बाधा उत्पन्न करता है। जैसे कर्म के सिद्धान्त का, बलि व देवी पूजन के विरुद्ध अहिंसा के सिद्धान्त की चर्चा दो गौण पात्रों के बीच होती है, जो थोड़ी नीरस हो जाती है। उसी प्रकार इन्द्रदत्त जैसे छोटे बालक के मुख से सुख-दु:ख, जीवन-मृत्यु, जीवन की विचित्रता, भय, कष्ट, गरीबी, भाग्य व संसार चक्र आदि के विषय में विस्तृत विचार अस्वाभाविक लगते हैं लेकिन कथा के प्रवाह में बाधक नहीं होने से सह्य होते हैं। संक्षेप में सरल शुद्ध खड़ी बोली में लिखित यह नाटक प्राय: नीरसता नहीं पैदा करता तथा संवाद भी छोटे-छोटे व सशक्त हैं, स्वगत कथन भी बहुत कम और संक्षिप्त है। नाटक कार ने अहिंसा तत्त्व का जोर-शोर से प्रतिपादन किया है।

निबन्ध :

आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य की सबसे सशक्त एवं समृद्ध विधा किसी को कहना हो तो वह निबंध साहित्य को ही कहा जा सकता है। न केवल हिन्दी में, बल्कि संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश में भी आचार-विचार एवं दार्शनिक निबंधों की पर्याप्त उपलब्धि होती है। आज के भौतिक युग में जब धर्म प्रेमी विद्वानों ने महसूस किया कि धर्म के दार्शनिक गूढ़ तत्त्वों को समझना सामान्य जनता के लिए कठिन हो सकता है, तो उन्होंने प्राचीन धर्म ग्रन्थों में से दार्शनिक तत्त्वों को सरल भाषा-शैली व विवेचनात्मक पद्धति से प्रस्तुत करने का प्रशंसनीय कार्य किया। आधुनिक हिन्दी निबंध साहित्य बड़े-बड़े तत्त्ववेत्ता विद्वानों एवं आचार्य मुनियों को प्राप्त कर सौभाग्यशाली सिद्ध हुआ है। इनमें प्रमुख हैं—डा० मोहनलाल मेहता, स्व० पं० सुखलाल जी, पं० दलसुख मालवणिया,

1. दयाचन्द जैन—अहिंसा परमोधर्म-प्रस्तावना, पृ० 3.

आचार्य कान्ति सागर जी, मुनि विद्याविजय, आचार्य नथमल जी, आ॰ तुलसी, पं॰ अगरचन्द नाहटा जी, कामता प्रसाद जैन, पं॰ नाथूराम 'प्रेमी जी', पं॰ भुजबली शास्त्री, पं॰ जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर जी', प्रो॰ हीरालाल, पं॰ अयोध्या प्रसाद गोयलीय. आचार्य नेमिचन्द्र शास्त्री, प्रो॰ ए॰ एन॰ उपाध्ये, मुनि जिनविजय जी, प्रो॰ गोरावाला, जैनेन्द्र कुमार जैन, मुनि कल्याण विजय जी आदि अनेक तेजस्वी रत्नों ने हार्दिकता से, पूरी लगन से-जैन धर्म के आचारात्मक, विचारात्मक, गवेषणात्मक और ऐतिहासिक निबंध लिख कर निबंध साहित्य का भंडार समृद्ध किया है। इन सभी निबंधकारों के निबंधों का विषय प्रायः जैन धर्म व दर्शन से सम्बंधित होने पर भी उनका प्रदान महत्वपूर्ण है। "प्रायः सभी जैन लेखक हिन्दी भाषा के माध्यम द्वारा तत्त्वज्ञान, इतिहास और विज्ञान की ऊँची-से-ऊँची बातों को प्रकट कर रहे हैं। यद्यपि मौलिक प्रतिभा सम्पन्न निबंधकारों की संख्या अत्यल्य है, तो भी अभीप्सित विषय के निरूपण का प्रयास अनेक जैन लेखकों ने किया है।[1] नेमिचन्द्र जी का यह विधान वैसे सही है, लेकिन मौलिक प्रतिभा सम्पन्न निबंधकारों की अत्यल्प संख्या के विधान से सहमत नहीं हूँ, क्योंकि निबंध साहित्य को गौरवानित करने वाले एक से बढ़कर एक विद्वान् यहाँ प्राप्त हैं, हाँ, यदि साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, राजकीय एवं अन्य विषय पर उन्होंने निबंध नहीं लिखे हैं, लेकिन प्राचीन जैन ग्रन्थों, ऐतिहासिक व्यक्ति व स्थल सम्बंधी गवेषणात्मक, विवेचनात्मक निबन्ध लिखे हैं और इस अर्थ में मौलिक निबंधकारों की संख्या उनको अत्यल्प दीखती हो तो पता नहीं। स्वयं नेमिचन्द्र जी एक विद्वान तत्त्व चिंतक, इतिहासकार और निबन्धकार के रूप में जैन जगत साहित्य के यशस्वी नक्षत्र हैं।

यदि सम्प्रदाय की झंझट में न पड़ें तो हिन्दी जैन साहित्य की श्रीवृद्धि प्रायः दिगम्बर सम्प्रदाय के विद्वान एवं मुनिराजों के द्वारा सविशेष हुई है। श्वेताम्बर मान्यता के विद्वान भी हैं, लेकिन तुलना में कम और उन्होंने प्रायः गुजराती व अंग्रेजी भाषा में अपना ज्ञान प्रकाशित किया है।

पं॰ नाथूराम 'प्रेमी' जी का नाम ऐतिहासिक सांस्कृतिक निबन्धकार के रूप में सर्वप्रथम आदर के साथ लिया जाता है। उन्होंने ही अन्वेषण का द्वार खोला, ऐसा कहना अनुचित न होगा। उन्होंने तो तीर्थ क्षेत्र, ऐतिहासिक व्यक्तियों, कवियों के वंश, गोत्र, विविध संस्कार, वातावरण, परिस्थितियाँ, आचार-शास्त्र के नियमों का भाष्य आदि पर निबंध लिखे हैं वे सभी अति महत्वपूर्ण एवं प्रभावपूर्ण है। एक उत्तम अध्ययनशील शोधकर्ता के समान उन्होंने यह कार्य

1. आ॰ नेमिचन्द्र शास्त्री-हिन्दी जैन साहित्य का परिशीलन-भाग-2, पृ॰ 120.

निरन्तर पूर्ण लगन से किया है। प्रेमी जी की भाषा प्रवाहपूर्ण और सरल है। छोटे-छोटे वाक्यों और ध्वनि युक्त शब्दों के सुन्दर प्रयोग ने इनके निबन्धों को सजीव और रोचक बना दिया है।' एक पत्रकार और शोधक के लिए भाषा में जिन गुणों की आवश्यकता होती है, वे सब गुण इनके गद्य में पाये जाते हैं। इनकी गद्य-लेखन शैली स्वच्छ और दिव्य है। दुरुह से दुरुह तथ्य को बड़े ही रोचक और स्पष्ट रूप में व्यक्त करना प्रेमी जी की स्वाभाविक विशेषता है।'[1]

पं० नाथूराम 'प्रेमी' की विवेचनात्मक शैली का एक अंश द्रष्टव्य है–'साहित्य शास्त्र का शायद आपने कभी अध्ययन नहीं किया। उनके मिशन के लिए शायद इसकी जरूरत भी नहीं थी। इसलिए आपने जो कथा-साहित्य लिखा है, उसका अधिकांश साहित्य की कसौटी पर शायद ही मूल्यवान ठहरे, परन्तु यह बड़ा प्रभावशाली है और अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए काफी समर्थ है।'[2]

श्री कन्हैयालाल मिश्र के निबंधों की भाषा-शैली में गंभीरता, हास्य, व्यंग्य सब कुछ विषयानुसार प्राप्त होता है–जैसे–'तब आज की तरह हरेक दफ्तर पर 'नो! वैकेन्सी' की पाटी नहीं टंगी थी, वे चाहते तो आसानी से डिप्टी कलक्टर हो सकते थे, पर नौकरी उन्हें अभीष्ट न थी, वे वकील बने और थोड़े ही दिनों में देवचन्द के सीनियर वकील हो गये। वकील की पूंजी है वाचालता और सफलता की कसौटी है झूठ पर सच्च की पालिश करने की क्षमता। बाबू सूरजभान एक सफल वकील, मूक साधना जिनकी रुचि और सत्य जिनकी आत्मा का सम्बल! काबे में कुछ हो, न हो, यहाँ मयखाने से एक पैगम्बर जरूर निकला।'[3]

जुगलकिशोर 'मुख्तार' साहब भी प्रौढ़ निबन्धकार हैं। उन्होंने भी ऐतिहासिक, गवेषणात्मक और आचारात्मक निबन्ध काफी संख्या में लिखे हैं। उनकी गद्य-शैली की यह एक बड़ी विशेषता है कि वे विषयों को बार-बार का दोष कहीं महसूस नहीं होता। भावों की व्यंजना वे स्पष्ट शब्दों में निर्भीकता से करते हैं। शुद्ध खड़ी बोली में कहीं-कहीं उर्दू के शब्दों का भी वे प्रयोग करते हैं। 'आपकी भाषा में साधारण प्रचलित उर्दू शब्द भी आ गये हैं। मुख्तार साहब

1. नेमिचन्द्र शास्त्री–हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन-भाग-2, पृ० 129.
2. देखिए-पं० नाथूराम प्रेमी-पूज्यनीय बाबू जी 'जैन जागरण के अग्रदूत' अन्तर्गत लेख, पृ० 281.
3. देखिए–की कन्हैयालाल मिश्र–जैन जागरण के दादाभाई-शीर्षक निबंध, 'जैन जागरण के अग्रदूत, ग्रंथ सं०, पृ० 295.

भाषा के शब्द विधान में भी उत्कृष्टता और विशदता का पूरा ध्यान रखते हैं। साथ ही व्यर्थ के शब्दाडम्बर को स्थान देना आपको पसन्द नहीं है। साधारण: आपकी शैली संगठित एवं व्यवस्थित है, किन्तु धारावाहिक प्रवाह की कमी कहीं-कहीं खटकती है। वाक्य आपके साधारण से विचार से कुछ बड़े पर गठन में सीधे-साधे एवं सरल होते हैं।[1] मुख्तार की भाषा-शैली में जहाँ एक ओर विद्वता भी है तो दूसरी ओर विषयानुकूल सरलता एवं व्यंग्य भी भरा पड़ा है–एक उदाहरण देखिए–

'क्या जैनियों की तरफ से श्री अकलंक देव के अनुयायीपन का सूचक कोई प्रयत्न जारी है ? गुरु की अनुकूलता-प्रदर्शक कोई काम हो रहा है ? और किसी भी मनुष्य को जैन धर्म का श्रद्धानी बनाने या सर्व-साधारण में जैन धर्म का प्रचार करने की कोई खास चेष्टा की जाती है ? यदि यह सब कुछ भी नहीं तो फिर ऐसे अनुयायी मन से क्या ? खाली गाल बजाने, शेखी मारने और अपने को उच्च धर्मानुयायी प्रगट करने से कुछ भी नतीजा नहीं है।[2]

मुनि कल्याण विजय जी का ऐतिहासिक निबंध के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान है। जैन राजाओं एवं जैन प्राचीन तीर्थों के शिलालेखों के सम्बंध में अनेक गवेषणात्मक लेख लिखकर नई दिशा सुझायी है। ऐतिहासिक प्रमाणों एवं अन्य धर्मों की तुलना से अपने विचारों को पुष्टि देकर प्रकाशित किये हैं। उनके निबंधों की शैली प्राय: गठनपूर्ण एवं विवेचनात्मक रही है। सरल भाषा-शैली में भी गहन विषयों को प्रस्तुत कर अपने मतों को पुष्ट करने की पूर्ण क्षमता है। संस्कृत-तत्सम शब्दों का प्रयोग बड़ी सावधानी से उन्होंने किया है। यद्यपि कहीं-कहीं वाक्य गठन का अभाव प्रतीत होता है, फिर भी भाषा-शैथिल्य नहीं है। इसी प्रकार लम्बे-लम्बे वाक्य होने के कारण कहीं-कहीं दूरान्वय दोष भी रह गया है। साधारण रूप से उनकी शैली धारावाहिक कही जायेगी।

बाबू कामताप्रसाद जैन इतिहासकार के अतिरिक्त निबंधकार के रूप में भी प्रसिद्ध हैं। उन्होंने भी जैन राजाओं के वंश, गोत्र, तीर्थंकर के स्थान वंश, जैन तीर्थों आदि के सम्बंध में ऐतिहासिक कोटि के निबंध लिखे हैं। यद्यपि उनके निबंधों में कहीं-कहीं ऐतिहासिक काल दोष रह गया है। तथापि उनके निबंधों का योगदान महत्वपूर्ण है। उनकी शैली व्यवस्थित है तथा ऐतिहासिक

---

1. आ० नेमिचन्द्र शास्त्री–हिन्दी जैन साहित्य–परिशीलन-भाग-2, पृ० 124.
2. द्रष्टव्य-जुगलकिशोर मुख्तार-'युगवीर निबंधावली-प्रथम खण्ड में–जैनियों में दया का अभाव' नामक निबंध, पृ० 44.

घटनाओं की शृंखला का गठित रूप आपके निबंधों में पाया जाता है। बाबू कामता प्रसाद जी के सांस्कृतिक निबंध की भाषा-शैली दर्शनीय है-यथा-

'तीर्थंकर के दर्शन होते ही हृदय में पवित्र आह्लाद की लहर दौड़ती है, हृदय भक्ति से भर जाता है। यात्री उस पुण्य भूमि को देखते ही मस्तक नमा देता है और अपने पथ को शोधता हुआ एवं उस तीर्थ की पवित्र प्रसिद्धि का गुणगान मधुर स्वर-लहरी से करता हुआ आगे बढ़ता है।[1]

पं० के० भुजबली शास्त्री ने भी इसी प्रकार के ऐतिहासिक निबंध लिखे हैं। दानी श्रावकों पर आपके कई अन्वेषणात्मक निबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं। मुख्तार जी से विपरीत आपकी समास शैली है। संश्लिष्ट शैली में आप थोड़े में बहुत-कुछ व्यक्त करते हैं। लेखन शैली में वाक्य सुव्यवस्थित और गंभीर होते हैं। 'यद्यपि तथ्यों के निरूपण के ऐतिहासिक कोटियों और प्रमाणों की कमी है, तो भी हिन्दी जैन साहित्य के विकास में आपका महत्वपूर्ण स्थान है। प्राय: सभी निबंधों में ज्ञान के साथ विचार का सामंजस्य है। शब्द चयन, वाक्य-विन्यास और पदावलियों के संगठन में सतर्कता और स्पष्टता का आपने पूरा ध्यान रखा है।[2]

श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय के ऐतिहासिक निबंध महत्वपूर्ण है। संस्मरणकार के अतिरिक्त जागृत निबंध साहित्यकार के रूप में भी प्रसिद्ध है। उनके निबंध ऐतिहासिक चरित्रों से सम्बंधित हैं, जिनको पढ़कर हमारे हृदय में वीरोचित भावना पैदा हो जाती है। उनकी शैली पूर्णत: निजी है—व्यंग्य एवं हास्यपूर्ण शैली में भाषा में उछल-कूद से मार्मिकता आ जाती है। पत्र-पत्रिकाओं में आपके अनेक निबंध प्रकाशित हुए हैं। इतिहास और पुरातत्व के वेत्ता डा० हीरालाल जैन ने दार्शनिक तथा अन्वेषणात्मक निबंध लिखे हैं तथा कई पुस्तकों की भूमिकाएँ लिखी हैं, जो इतिहास के निर्भाण में विशिष्ट स्थान रखती हैं। जैन इतिहास की पूर्व पीठिका की छोटी-सी रचना में उनकी शैली स्पष्ट दीखती है। गागर में सागर भरने वाली प्रौढ़ रचना शैली है। भाषा में धारावाहिकता के साथ सुव्यवस्थितता व परिमार्जितता है।

मुनि श्री कान्तिसागर जी ने जैन शिल्प व स्थापत्य से सम्बंधित दो-तीन निबंध संग्रह लिखे हैं। प्राचीन मूर्तिकला व वास्तुकला सम्बंधी आपके निबंध अनेक स्थानों के पुरातत्व पर प्रकाश डालते हैं। अभी हाल में भारतीय ज्ञानपीठ

1. द्रष्टव्य—कामताप्रसाद जैन—जैन तीर्थ और उनकी यात्रा, पृ० 9.
2. आ० नेमिचन्द्र शास्त्री—हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन-भाग-2, पृ० 126.

से-प्रकाशित 'खण्डहरों का वैभव' व 'खोज की पगडंडियाँ' उनके इतिहास और पुरातत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण निबंधों का संकलन है, जिनकी भाषा शुद्ध-साहित्यिक एवं परिमार्जित है।

ऐतिहासिक निबंधकार प्रो॰ ख़ुशालचन्द गोरावाला की भाषा बड़ी ही परिमार्जित है। पुष्ट चिन्तन और अन्वेषण को सरल और स्पष्ट रूप में आपने अभिव्यक्त किया है। इतिहास के शुष्क तत्त्वों का स्पष्टीकरण स्वच्छ और बोध- गम्य है।

दार्शनिक शैली के श्रेष्ठ निबन्धकार श्री पं॰ सुखलाल जी संघवी है। एक प्रज्ञा चक्षु गुजराती होने पर भी हिन्दी भाषा व व्याकरण पर उनका संयम आश्चर्यजनक है। निरन्तर देश का पर्यटन करते रहने के कारण उनकी लेखनी से अनुभव की गहराई व विचारों की प्रौढ़ता टपकती ही है। दार्शनिक विषयों को वे अनोखी सरलता एवं प्रामाणिकता से स्पष्ट करते हैं। 'दर्शन और इतिहास दोनों के ही विवेचनों में आपकी तुलनात्मक विवेचन पद्धति का पूरा आभास मिलता है। आपकी शैली में मननशीलता, स्पष्टता, तर्कपटुता और बहुश्रुताभिज्ञता विद्यमान है। दर्शन के कठिन सिद्धान्तों को बड़े ही सरल और रोचक ढंग से आप प्रतिपादित करते हैं।[1] आपके सांस्कृतिक निबंधों का गद्य अत्यन्त प्रौढ़ व परिमार्जित है। भाषा-शैली की अभिव्यंजना में चमत्कार के साथ लाक्षणिकता का गुण सर्वत्र विद्यमान है। आपके सांस्कृतिक निबंध का गद्य अत्यन्त प्रौढ़ व परिमार्जित है। हिन्दी जैन साहित्य उनके जैसे शुद्ध तत्वचिंतक, साहित्यकार एवं बहुश्रुत विद्वान पाकर गौरवान्वित हुआ है।'पं॰ सुखलाल जी की ज्ञान-गंभीर फिर भी सुबोध शैली का एक-दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

'मैं बाल-दीक्षा विरोध के प्रश्न पर व्यापक दृष्टि से सोचता हूँ। उसको केवल जैन-परम्परा तक या किसी एक या दो जैन फिरकों तक सीमित रखकर विचार नहीं करता। क्योंकि बाल-दीक्षा या बाल-संन्यास की वृत्ति एवं प्रवृत्ति करीब-करीब सभी त्याग-प्रधान परम्पराओं में शुरू से आज तक देखी जाती है, खास कर भारतीय सन्यास-प्रधान संस्थाओं में तो इस प्रवृत्ति एवं वृत्ति की जड़ बहुत पुरानी है और इसके बलाबल तथा औचित्यानौचित्य पर हजारों वर्षों से चर्चा-प्रतिचर्चा भी होती आई है। इससे सम्बंध रखने वाला पुराना और नया वाङ्मय व साहित्य भी काफी है।'[2]

1. आ॰ नेमिचन्द्र शास्त्री–हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन-भाग-2, पृ॰ 128.
2. पं॰ सुखलाल जी–दर्शन और चिन्तन–'बाली-दीक्षा' शीर्षकस्थ निबंध, पृ॰ 38, दर्शन और संप्रदाय-नामक निबंध, पृ॰ 69.

हम साम्प्रदायिक चिन्तनों का यह झुकाव रोज देखते हैं कि वे अपने चिन्तन में तो कितनी ही कमी या अपनी दलीलों में कितना ही लचरपन क्यों न हो उसे प्राय: देख नहीं पाते और दूसरे विरोधी सम्प्रदाय के तत्त्व-चिन्तनों में कितना ही साद्गुण्य और वैश्य क्यों न हो उसे स्वीकार करने में भी हिचकिचाते हैं।'[1]

पं० शीतलप्रसाद जी दार्शनिक निबंधकारों में मूर्धन्य स्थान पर हैं। उन्होंने निरन्तर कलम चलाई है। जैन दर्शन व आचार-विचार भर काफी लिखा है। यदि वह सब प्रकाशित हो पाता तो जैन साहित्य का भण्डार पर गया होता, लेकिन प्राय: सभी लेख अप्रकाशित हैं। सीधी-सादी भाषा में आपके अभ्यास और अध्ययन का प्रकाश दिया है। दर्शन और इतिहास सम्बन्धी कोई विषय आपकी लेखनी से अछूता रहा नहीं है। उसी प्रकार अपने आध्यात्मिक उपन्यास क्षेत्र में भी कलम चलाई होती तो उस क्षेत्र की श्रीवृद्धि होती, जो आज अत्यन्त क्षीण है।

पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री के दार्शनिक, आचारात्मक तथा ऐतिहासिक निबंध शिष्ट और संयत भाषा-शैली में लिखे गये हैं। जैन धर्म का इतिहास उन्होंने तीन खंडों में अत्यन्त विद्वतापूर्ण व प्रौढ़ शैली में लिखा है। जैन साहित्य के इतिहास में इसका उल्लेखनीय योगदान कहा जायेगा। आपकी शैली में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की-सी गंभीरता, सरलता, अन्वेषणात्मकता तथा अभिव्यंजना की स्पष्टता समान रूप से है—केवल दोनों के विषय क्षेत्र भिन्न-भिन्न हैं।

पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री के निबंधों की भाषा-शैली में दुरुहता का अभाव है—सरल भाषा में अपने विचारों की वे अभिव्यक्ति करते हैं—यथा—'विचारणीय यह है कि जिन प्राणियों के प्रति हम दया-भाव रखते हैं, वे प्राणी क्यों इस अवस्था को प्राप्त हुए। क्या कभी इस प्रश्न पर गंभीरता से विचार किया है। दूसरे शब्दों में संसारी जीव जो नाना गतियों में भ्रमण कर रहा है इसका कारण क्या है? क्यों यह सुख-दु:ख का भोजन बनता है? साधारण-सा जानकार भी यही कहेगा कि अपने कर्मों के कारण ही वह भ्रमण करता है।'[2]

पं० अगरचन्द जी श्री नाहटा न केवल हिन्दी साहित्य के बहुश्रुत विद्वान हैं, लेकिन जैन-साहित्य के भी स्तम्भ समान हैं। साहित्य की विविध दिशाओं में विशेष कर कवियों विषयक-खोज पूर्ण निबंध-लेख-काफी विशाल मात्रा में

1. पं० सुखलाल जी—दर्शन और चिन्तन—'बाली-दीक्षा' शीर्षकस्थ निबंध, पृ० 69.
2. द्रष्टव्य—पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री—'सबसे बड़ा पाप-मिथ्यात्व' शीर्षक निबंध, पृ० 1, 'श्रीगणेशप्रसाद वर्णी स्मृति ग्रन्थ' अन्तर्गत।

लिखे हैं। शायद ही कोई ऐसी जैन-अजैन पत्रिका उनकी प्रतिभा व अध्ययन संपन्न लेखनी की प्रसादी से वंचित-अछूती-रही होगी। श्रीयुत् अगरचन्द जी के साहित्यिक-सांस्कृतिक निबंधों की भाषा-शैली का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-

'प्राकृत भाषा भारत की प्राचीनतम भाषा है। यद्यपि उपलब्ध साहित्य में सबसे प्राचीन ग्रन्थ 'वेद' माने जाते हैं और उनकी भाषा 'संस्कृत' है। पर जब हम संस्कृत और प्राकृत इन दोनों शब्दों पर विचार करते हैं, तो यह मानने को बाध्य होना पड़ता है कि प्राकृत अर्थात् स्वाभाविक जन-साधारण की भाषा और संस्कृत अर्थात् संस्कार की हुई शिष्टजनों की भाषा। संस्कार तो किसी विद्यमान वस्तु का ही किया जाता है। इसलिए सबसे प्राचीन भाषा का नाम 'प्राकृत' ही हो सकता है। यद्यपि इस भाषा में रचा या लिखा हुआ साहित्य उतना पुराना नहीं प्राप्त होता, पर उसकी मौलिक परम्परा अवश्य ही प्राचीन रही है।'[1]

पं० दलसुख भाई मालवणिया जी एक गुजराती-भाषी होने पर भी हिन्दी भाषा, अपभ्रंश-प्राकृत भाषा और उसके साहित्य पर गजब का अधिकार रखते हैं। वे निरन्तर अध्ययन-अध्यापन तथा लेखन-प्रवृत्ति के काम में संनिष्ठता से संलग्न हैं। जैन धर्म एवं दर्शन के विषय में लिखे हुए उनके निबंधों का बहुत महत्व है। उनके निबंधों में विषय की स्पष्टता सरल शैली में पाई जाती है। आलोचनात्मक दार्शनिक निबंधों में कहीं-कहीं अधिक गंभीरता देखने को मिलती है।

पं० मालवणिया जी की भाषा-शैली का रूप द्रष्टव्य है-'किसी भी सम्प्रदाय विशेष के प्रामाणिक इतिहास को लिखने के लिए उस संप्रदाय के अनुयायी वर्ग द्वारा लिखित सामग्री को भी आधार बनाना परम आवश्यक हो जाता है। केवल विरोधी पक्ष की सामग्री को ही आधार नहीं बनाया जा सकता। परन्तु 'लोकाशाह' के युग से लेकर आज तक किसी भी विद्वान स्थानकवासी मुनि ने अथवा गृहस्थ ने विशुद्ध इतिहास के दृष्टिकोण से कुछ लिखा हो, वह मेरे देखने में नहीं आया। यदि किसी ने कुछ लिखा भी है, तो उसमें प्रशस्ति तथा गुणानुवाद ही अधिक है-इतिहास उसमें नहीं है। अनुसंधान, शोध और खोज की दृष्टि से कुछ भी लिखा नहीं गया।'[2]

पं० बंशीधर व्याकरणाचार्य के सामायिक समस्याओं और कर्मवाद पर

1. अगरचन्द जी नाहटा-प्राकृत भाषा का एक मात्र आलंकारिक ग्रंथ-अलंकार दर्पण' पृ० 394-'गुरुदेव श्री रत्नमुनि-स्मृति ग्रंथ-के अन्तर्गत संग्रहीतं
2. द्रष्टव्य-पं० दलसुख मालवणिया-'लोकाशाहा और उनकी विचारधारा' निबंध, पृ० 365-'गुरुदेव की रत्नमूनि-स्मृति ग्रंथ' के अन्तर्गत संग्रहीत।

लिखे निबंधों की भाषा अत्यन्त शुद्ध व्याकरण-सम्मत है; वाक्य भी छोटे-छोटे हैं। 'दार्शनिक निबंधों की भाषा गंभीर और संयत है। सरल से सरल वाक्यों में गंभीर विचारों को रख सकते हैं। उदार और उच्च विचार होने के कारण सामाजिक निबंधों में प्राचीन रूढ़ परम्पराओं के प्रति अनास्था की भावना मिलती है।[1]

पं॰ जगमोहनलाल जी सिद्धान्त शास्त्री के आचारात्मक निबंधों में हम सरल और स्पष्ट भाषा-शैली पाते हैं। एक कुशल अध्यापक के समान वे विषय को गहराई में जाकर समझाने की चेष्टा करते हैं। भाषा परिमार्जित होने से शुष्क विषय को भी रोचक व मनोरंजक बना सकने में समर्थ हैं।

श्री महात्मा भगवानदीन भी दार्शनिक निबन्धकार हैं, जिनकी भाषा-शैली में मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पाया जाता है। निबंधों का विषय भी प्रायः दर्शन व मनोविज्ञान होने से गूढ़ गंभीर विषय को भी वे सरल छोटे-छोटे वाक्यों में व्यक्त करते हैं। डा॰ मोहनलाल मेहता की विश्लेषणात्मक भाषा-शैली हमें उनके निबंधों व भूमिका के लेखों में दृष्टिगत होती है—यथा—

'आचार-और विचार परस्पर सम्बद्ध ही नहीं, एक दूसरे के पूरक भी हैं। संसार में जितनी भी ज्ञान-शाखाएँ हैं, किसी न किसी रूप में आचार अथवा विचार अथवा दोनों से सम्बद्ध हैं। व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए ऐसी ज्ञान-शाखाएँ अनिवार्य हैं, जो विचार का विकास करने के साथ ही साथ आचार को भी गति प्रदान करे। + + + जब तक आचार को विचारों का सहयोग प्राप्त न हो अथवा विचार-आचार रूप में परिणत न हों तब तक जीवन का यथार्थ विकास नहीं हो सकता।'[2]

मुनि नथमल जी ने भी दार्शनिक व आचार-विचार विषयक छोटे-छोटे सुन्दर निबन्ध लिखे हैं। कहीं-कहीं उनके निबन्धों में सम्प्रदाय सम्बंधी विचारों की स्पष्टता विशेष देखने को मिलती है, फिर भी गूढ़-गम्भीर जैन-दर्शन को उन्होंने अपनी कलम से सरल, शैली में प्रस्तुत करने का प्रशंसनीय कार्य किया है। 'समस्या का पत्थर और बुद्धि की छैनी' में उनकी शैली का लाघव व भाषा की स्पष्टता देखी जा सकती है। आचार्य तुलसी के दार्शनिक लेखों एवं विचारों में गुरु-गंभीरता और शैली की प्रौढ़ता देखी जाती है।

बाबू लक्ष्मीचन्द्र जैन कुशल सम्पादक के अतिरिक्त सफल आलोचक व विवेचक भी हैं। भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित जैन-साहित्य के ग्रन्थों की

1. नेमिचन्द्र शास्त्री-हिन्दी जैन साहित्य-परिशीलन-भाग-2, पृ॰ 131.
2. द्रष्टव्य-डा॰ मोहनलाल मेहता-'जैनाचार' की भूमिका, पृ॰ 5.

सम्पादकीय विवेचना के लेख अत्यन्त महत्वपूर्ण और अनेक साहित्यिक चर्चाओं पर प्रकाश डालते हैं। आपकी शैली गंभीर, पुष्ट, संयत और व्यवस्थित है, जिसमें प्रकाश का गुण सर्वत्र पाया जाता है।

डा० ज्योतिप्रसाद जैन एक कुशल सम्पादक के साथ आधुनिक निबंधकार के रूप में जाने-माने हैं। उन के लेखों-निबंधों की शैली धारापूर्ण एवं गद्यसौष्ठवपूर्ण मिलता है। 'प्रकाशित जैन साहित्य' के सम्पादकीय लेखक के अन्तर्गत आपकी सुगठित शैली का दर्शन होता है।

इन सबके अतिरिक्त हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध उपन्यासकार व कहानीकार के रूप में प्रसिद्ध सर्वश्री जैनेन्द्र जैन गंभीर चिन्तनात्मक, दार्शनिक निबंधकार के रूप भी में भी प्रसिद्ध हैं। उनके समस्त चिन्तन की पार्श्व भूमि सुलझी हुई है। जैन-दर्शन के अनेकान्तयात्मक ढंग से उन्होंने तात्विक समस्याओं का समाधान किया है।

आधुनिक युग में विद्वान-आचार्यों एवं मुनियों के व्याख्यानों (उपदेशों) को उनके अनुयायी या श्रद्धावान श्रोता द्वारा प्रकाशित करवाने की प्रथा जैन-समाज में काफी विकसित हुई है। इनमें से बहुत-से ग्रन्थों की भाषा तो अत्यन्त रोचक रहती है, साथ ही सामाजिक विषयों पर भी धर्म की चर्चा के साथ-साथ प्रकाश डाला गया होता है। वैसे यह सवाल पैदा होता है कि इन प्रकाशित व्याख्यान-भाषणों के ग्रन्थों को निबन्ध के अन्तर्गत स्थान दिया जाना चाहिए या नहीं ? जिनमें साहित्यिकता का गुण पाया जाता हो, उन पुस्तकों को निबन्ध, साहित्य के रूप में स्वीकारा जा सकता है और कोरी दार्शनिकता या उपदेश को साहित्य के रूप में स्वीकृत नहीं किया जा सकता।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी-जैन-निबंध-साहित्य परिमाण व गुणवत्ता की दृष्टि से पुष्ट है, उसी प्रकार उसके विविध विद्वानों की भिन्न-भिन्न रचना शैली से अति समृद्ध भी है; विषय के अनेकविध पहलुओं के साथ भाषा-शैली की प्रौढ़ता, गहराई, शुद्धता तथा उत्कृष्टता सचमुच ही जैन-निबंध साहित्य को प्राप्त है।

जीवनी, आत्मकथा, संस्मरण और अभिनंदन-ग्रन्थ की भाषा शैली :

सर्वथा आधुनिक युग की जैन स्वरूप जीवनी व आत्मकथा के तत्त्व-महत्व के सन्दर्भ में थोड़ा-बहुत विचार कर लिया जाय तो अनुचित नहीं होगा। सामान्यतः जीवन-चरित किसी के सारे जीवन में किये गये महत्वपूर्ण कार्य व प्रसंगों से युक्त होता है। उसमें नायक के सम्पूर्ण जीवन या उसके यथेष्ट भाग की चर्चा होनी चाहिए, पर यह कोई नियम नहीं है, जिसका पालन करना हर

समय संभव हो सके। अनेक लोगों के जीवन-चरित्र उनके जीवन-काल में लिखे जाते हैं; अतः यह स्पष्ट है कि ऐसे जीवन चरित्रों में जिन्दगी भर का हाल दे सकना सम्भव नहीं होता। यही कारण है कि जीवनी साहित्य का एक छोर स्फुट संस्मरण को माना जाता है और उसका दूसरा छोर उस जीवनी को स्वीकारा जाता है, जिसमें जन्म से लेकर मृत्यु तक का इतिहास हो। शिप्ले (Shiple) के अनुसार जीवनी में नायक के संपूर्ण जीवन अथवा उसके यथेष्ट भाग की चर्चा करनी चाहिए और अपने आदर्श रूप में एक विशिष्ट इतिहास होना चाहिए। यह ठीक है, पर जीवनी साधारण इतिहास और काल्पनिक कथा दोनों से बहुत भिन्न होती है। पाश्चात्य साहित्य में जीवनी को बहुत पहले-से एक विशेष साहित्य रूप माना जाता है, उपन्यास या इतिहास नहीं।

'यदि जीवनी को कथा-साहित्य से अलग रखना है तो यह कभी न भूलना चाहिए कि वास्तविक जीवनी वही है जिसमें तथ्यों के अन्वेषण में और उन्हें प्रस्तुत करने में विशेष ध्यान रखा जाय और जीवनी प्रामाणिक तथा सम्यक् जानकारी पर आधारित रहे। जीवनी लेखक को उन सभी तथ्यों की जानकारी कर लेनी चाहिए; जिन्होंने उसके चरित-नायक के जीवन पर प्रभाव डाला हो। साथ ही, जीवन लेखक को चरित नायक के जीवन की घटनाओं को उसी क्रम में प्रस्तुत करना चाहिए, जिसमें कि वे घटित हुई थीं।'[1] जीवनी साहित्य में नायक का केवल अतिरंजित एवं अति प्राकृत वर्णन-ब्यौरा रहेगा तो वह जीवनी विश्वसनीय व साहित्यिक नहीं बन पायेगी; लेकिन यदि उसके अन्तर्गत नायक के जीवन-तथ्यों का वैज्ञानिक विश्लेषण, सम्यक् निरूपण और मनोवैज्ञानिक अध्ययन का दिशा सूचन होगा तो वह प्रेरणात्मक और विश्वसनीय जीवनी का महत्व अंकित कर साहित्यिक कृति का महत्व धारण कर लेगी। साहित्यिकता का तत्त्व उसकी भाषा शैली, अभिव्यक्ति की विशिष्टता, साहजिकता व स्वाभाविक निरूपण शैली से स्फुट होगा। अतः जीवनी भी साहित्य की एक अलग महत्वपूर्ण विधा के रूप में अपना महत्व सिद्ध कर पायेगी। आधुनिक युग में तो भारतेन्दु काल से ही प्रेरणा-प्रदान व्यक्ति की स्वाभाविक जीवनी लिखने का उपक्रम प्रारंभ हो चुका था, जिसका उत्तरोत्तर काफी विकास आज हम देख सकते हैं। किसी भी क्षेत्र में विशिष्ट प्रक्षेप करने वाली व्यक्ति की जीवनी लिखी जाती है, जो विश्वसनीय सूत्रों से माहिती उपलब्ध कर, उनसे भेंट-मुलाकात कर, संस्मरणों के द्वारा भी कार्य किया जाता है।

आत्म-कथा :

आत्म-कथा में लेखक के अपने जीवन का विशिष्ट दृष्टिकोण से लिखा

---

1. द्रष्टव्य-हिन्दी साहित्य कोश-भाग-1, पृ० 305.

हुआ वर्णन रहता है। आत्म कथा के द्वारा अपने बीते हुए जीवन का सिंहावलोकन और एक व्यापक पृष्ठभूमि में अपने जीवन की महत्वूपर्ण घटनाओं का अवलोकन संभवित रहता है। आत्मांकन के द्वारा दूसरों को प्रेरणा या लाभ पहुँचाने का प्रधान हेतु होता है। जीवन-चरित्र आत्म-कथा से इस अर्थ में भिन्न है कि किसी व्यक्ति द्वारा लिखी गई किसी अन्य की जीवनी जीवन-चरित्र है और किसी व्यक्ति द्वारा या स्वयं लिखी गई स्वयं अपनी जीवनी आत्म-कथा। स्वतंत्र विधा की दृष्टि से आत्म कथा आदि रूपों का साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान स्वीकृत है।

'आत्म-कथा साहित्य क्यों लिखा जाता है, यह प्रश्न बड़ा संगत है। दो भिन्न दृष्टिकोण लक्षित होते हैं। एक प्रकार से आत्म-कथानक साहित्य का उद्देश्य होता है—आत्म-निर्माण, आत्म-परीक्षण, या आत्म-समर्थन, अतीत की स्मृतियों को पुर्नजीवित करने का मोह या जटिल विश्व के उलझावों में अपने आपको अन्वेषित करने का सात्त्विक प्रयास। इस प्रकार के आत्म-कथानक साहित्य के पाठकों में स्वतः लेखक होता है, जो आत्मांकन द्वारा आत्म-परिष्कार एवं आत्मोन्नति करना चाहता है। आत्म सम्बंधी साहित्य लिखने का एक दूसरा उद्देश्य यह भी है कि लेखक के अनुभवों का लाभ अन्य लोग उठा सकें। महान् ऐतिहासिक आन्दोलनों या घटनाओं के सपंर्क में रहने से डायरी, संस्मरण या आत्म-कथा लेखक को यह आशा होना स्वाभाविक है कि आगामी युगों में उसकी रचना उसके युग तथा प्रसंगों के समय के प्रमाण-स्वरूप पढ़ी जायेगी। यदि धर्म, राजनीति, अथवा साहित्य के इतिहास निर्माण में किसी व्यक्ति का महत्वपूर्ण हाथ रहा हो तो अवश्य ही पाठक उस व्यक्ति के बारे में स्वयं उसकी लिखी बातों को पढ़ना पसन्द करेंगे। ये दोनों स्वत:सिद्ध (महत्वों) उपयोगों के अतिरिक्त आत्मकथा लेखन के मूल में कलात्मक अभिव्यक्ति की प्रेरणा भी हो सकती है। और अपनी पद-मर्यादा अथवा ख्याति से लाभ उठाने की शुद्ध व्यावसायिक इच्छा भी।'[1] आधुनिक काल में साहित्य के अन्य रूपों के साथ आत्म कथा की ओर भी ध्यान आकृष्ट होने की आवश्यकता है। गद्य में आत्म कथा लिखने का प्रारंभ तो आधुनिक काल में हुआ। मध्य काल में जैन-महाकवि बनारसीदास जी की 'अर्द्ध-कथा' पद्य में लिखित हिन्दी-साहित्य की सर्वप्रथम आत्मकथा मानी जायेगी।

जैन साहित्य में जीवनी दो प्रकार की प्राप्त होती है, जिसका उल्लेख हम पीछे कर चुके हैं, (1) तीर्थंकरों की तथा ऐतिहासिक व धार्मिक सती स्त्रियों

1. हिन्दी साहित्य कोश-भाग-2, पृ॰ 89.

की जैसे—चंदनबाला, मैना सुन्दरी, मृगावती आदि-और तीर्थंकरों की जीवनी में भी पार्श्वनाथ चरित, महावीर चरित, नेमिनाथ चरित, ऋषभदेव चरित की संख्या विशेष है। इन तीर्थंकरों की जीवनी या चरित में घटनाओं का क्रम समान होने पर भी कल्पना का अंश भी रह सकता है; फिर भी शैली की उदात्तता के बावजूद भी नूतन प्रसंगों की सर्जना संभव नहीं होती। सतियों की जीवनियों में भी ऐसे ही सामान्य परिवर्तन-परिवर्द्धन-की संभावना रहती है, जबकि दूसरे प्रकार की जीवनी में-आचार्यों या विद्वानों की-यह संभावना कम रहती है, क्योंकि जीवनीकार के प्रत्यक्ष परिचय या आधारभूत सामग्री के साथ लिखी गई होने से वास्तविकता और साक्षी-प्रमाण की विशेष प्रतीति होती है। जीवनीकार के जीवन का वास्तविक मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण और सम्यक् निरूपण के साथ उसके प्रस्तुतीकरण में रोचकता व जीवन्तता होनी आवश्यक है। साहित्यिक शैली में जीवनीकार के जीवन के महत्वपूर्ण भाग को प्रस्फुटित करना अपेक्षित है। जीवनी की यह महत्वपूर्ण विशेषता है कि जीवनी लेखक का कर्तव्य बन जाता है कि वह चरित नायक के जीवन को क्रमशः अन्वेषित एवं उद्घाटित करे। प्रारम्भ से ही चरित्र में महत्ता और विशेषता के दर्शन करने लगना उचित नहीं है, क्योंकि ऐसा करने से स्वाभाविकता या वास्तविकता का ह्रास होने की संभावना बनी रहती है।

शशिभूषण शास्त्री लिखित-'जगद्गुरु श्री हीरविजय सूरी की जीवनी' में लेखक ने आचार्य की विद्वता एवं लोक-कल्याण के कार्यों पर प्रकाश डाला है। इसके लिए उन्होंने समय-समय पर प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं के लेखों तथा पुस्तकों को आधार बनाया है, ताकि इसकी सत्यता में विश्वास बना रहे। अकबर बादशाह के समय हो गये इन आचार्य को जीवनी से जैन जगत के अन्य आचार्यों तथा मुनियों को यह प्रेरणा मिलती है कि जैन साधु केवल आत्म कल्याण में ही रत नहीं रहता। बल्कि दया, ममता, करुणा, अहिंसा पूर्ण व्यवहार व ज्ञान के फैलाने के द्वारा समाजोपयोगी कार्य भी करते हैं। जीवनी में तिथि-बार संवत् आदि का यथा-स्थान जिक्र किया गया है, जिससे घटना-क्रम में विश्वसनीयता बनी रहती है। लेखक की भाषा शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली है तथा शैली में रोचकता का निर्वाह अंत तक बना रहता है।

'सच्चे साधु' में अभयचन्द गांधी ने विजयधर्म सूरि महाराज की जीवनी अंकित की है, जिसकी भाषा पूर्णतः साहित्यिक होने से प्रकृति व मानव मन के सुन्दर चित्र अंकित किये हैं। जीवनी का प्रारंभ ही प्रकृति-वर्णन से ही

लेखक ने किया है–'दिशाएँ हंसने लगीं। हवा प्रसन्न होकर वृक्षों के साथ खेलने लगी। वृक्ष की डालें मानो नाच-नाच कर इस महापुरुष के आगमन की खुशी मनाने लगीं।'[1] लेखक ने जीवनी नायक के बचपन, त्याग, वैराग्य, दीक्षा-अध्ययन, संयम, कार्यक्षेत्र एवं सत्कार्यों का सुन्दर साहित्यिक शैली में वास्तविक घटनाओं के साथ निरूपण किया है।

आधुनिक जैन-साहित्य एवं (दिगम्बर) समाज के महान साधक मुनि विद्याविजय जी द्वारा प्रणित 'श्री भूपेन्द्र सूरि' की जीवनी में लेखक का कवित्व तथा चिन्तनकार का रूप भी देखा जा सकता है। नायक की जन्मभूमि भोपाल नगरी का प्राकृतिक व भौगोलिक वर्णन सुन्दर पद्य में किया है–यथा-

थी नगर भोपाल की अति चारुता उस काल में।
पूर्ण था धन-धान्य से वह और मंगल भाल में।
ऐक्यता का पाठ पढ़ती वीर रस के वास में।'

लेखक की भाषा प्रास-अनुप्रास युक्त होने पर भी पात्र के प्रति श्रद्धा व प्रेम-भावना से पद्य में लिखित यह जीवनी रोचक व साहित्यिक बन पड़ी है। उच्च कोटि की कल्पना, भाव-प्रवणता, आलंकारिक शब्दावली की विशेष उम्मीद रखना उपयुक्त संगत नहीं होती, फिर भी प्रास-अनुप्रास की छटा अच्छी है। जैन धर्म के तत्त्वगत वैराग्य, राग-द्वेष रचित भाव, सद्गुरु, दीक्षा-ज्ञान, जैन धर्म की उन्नति आदि की चर्चा चरित्र-नायक के क्रमिक विकास के साथ-साथ लेखक ने सरल सुन्दर भाषा में की है–

धर्म के शुभ तत्त्व को गुरु नित्य देते ज्ञान से,
आत्म-नैया पार होती, विश्व में यशनाम हो। (पृ॰ 40)

इस जीवनी का-काव्य का–नायक सतत् परिश्रम शील था। परिणामस्वरूप साहित्य-मण्डल, श्राविकाश्रम, जैन गुरुकुल, शिशु विश्राम केन्द्र आदि की स्थापना करवा कर लोक मंगल की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देते थे। मुनि विद्या-विजय जी ने भूपेन्द्र-सूरि के शील, गुण, सादगी, उच्च-चरित्र, ज्ञान-पिपासा तथा जैन-धर्म-उत्कर्ष की प्रवृत्ति का प्रशंसनीय आलेखन किया है। पुस्तिका के अन्त में मुनि कल्याण विजय जी ने संस्कृत भाषा में 'भूपेन्द्र सूरि गुणाष्टकम्' की रचना भिन्न-भिन्न छन्दों में की है।

जयप्रकाश वर्मा लिखित 'मुनि श्री विद्यानंद जी' की जीवनी में प्रखर दिगम्बर जैन साधु के साथ हिन्दी जैन साहित्यकार के जीवन की महत्ता,

---

1. जयचन्द गांधी-सच्चे साधु, पृ॰ 1.

विशेषता तथा लोक-कल्याण की भावना को उजागर किया है। भाषा आलंकारिक न होने पर भी रोचकता तथा स्वाभाविकता का पूरा निर्वाह किया गया है। लेखक ने कहीं भी जीवनीकार के जीवन-प्रसंगों की यथार्थता का अतिक्रमण नहीं किया है। लेखक की भाषा-शैली भी श्रद्धा की सुगन्ध लिए हुए रसात्मक है-'वे आत्मार्थी हैं, आत्मा अनुसंधानी है और समाज हित में भी बड़े-बड़े चौहकस और अनासक्त वृत्ति से चल रहे हैं। उनकी मुस्कान में समाधान है और वाणी में समन्वय का अनाहत नाद। उनका हर काम मानवता की मंगल मुस्कुराहट है और हर शब्द जीवन को दिशा-दृष्टि देनेवाला है। हम कहते हैं कि वे भुजंगी-विश्व के बीच चन्दन के बिरछ है-अनंत सुवास के स्वामी।' 'आदर्श रत्न' जीवनी मुनि श्री रत्नविजय जी महाराज के शिष्य आचार्य देवगुप्त सूरि ने लिखी है, जो जीवनी की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। लेखक स्वयं जैन धर्म के विद्वान आचार्य हैं। अपने गुरु की जीवनी की भाषा-शैली में यत्र-तत्र व्याकरण की गलतियाँ रहने पाई हैं। भाषाकीय प्रौढ़ता का अभाव होने पर भी धार्मिक विवेचन के साथ नायक के बाह्य तथा आंतरिक जीवन के परिचय में प्रामाणिकता व सुन्दर वर्णनात्मकता होने से जीवनी का साहित्यिक एवं धार्मिक महत्व रहता है।

मुनि श्री विद्यानंद जी ने प्रसिद्ध विद्वान मुनि 'राजेन्द्र सूरि जी की जीवनी' सुन्दर शैली में लिखी है। इसमें जीवनी नायक के महत्वपूर्ण जीवन-प्रसंगों एवं उपलब्धियों को कलात्मक ढंग से विचारपूर्ण शैली में प्रस्तुत किया है।

'जैनाचार्य विजयेन्द्र सूरि जी की जीवनी' जैन लेखक श्री काशीनाथ सर्राफ ने रोचक शैली में लिखी है। आचार्य तुलसी की जीवनी श्रीयुत् छगनलाल सराक ने 'तुलसी जीवन झांकी' नाम से सुन्दर भाषा-शैली में लिखी है, जिसमें आचार्य तुलसी की विद्वता, बहुश्रुतता, तथा मानव-कल्याण के कार्यों का विवेचन लेखक ने श्रद्धा व प्रेम से किया है।

इन सबके अतिरिक्त जैन विद्वानों एवं आचार्यों की जीवनी उनके प्रशंसक या अनुयायी के द्वारा लिखने की प्रणालिका जैन साहित्य में प्रारम्भ से है और आज भी विद्यमान है। इनमें से प्रायः सभी जीवनियों का साहित्यिक मूल्य भी रहता है, क्योंकि नायक के जीवन की प्रामाणिक घटनाओं, धर्म-कार्य, दीक्षा-शिक्षा के साथ लोक-कल्याण की प्रवृत्ति और साहित्य का भी सुन्दर शैली में वर्णन रहता है।

आधुनिक युग में तीर्थंकरों का चरित भी काफी मात्रा में प्राप्त होते हैं, जिनकी विषय वस्तु सभी में प्रायः समान रहती है। लेकिन भाषा-शैली की

भिन्नता के कारण प्रत्येक जीवन-चरित का विशिष्ट महत्व रहता है। बहुतों की जीवनी या चरितों की शैली में सीधे रूप से प्रसंगों को वर्णित करने की सरलता के साथ बोधात्मकता तथा दार्शनिकता का पहलू भी रहता है, जबकि संवादों की तीव्रता, ऐतिहासिकता, चरित्र के आन्तरिक जीवन का विश्लेषण, भाषा-शैली की उत्कृष्टता, लाक्षणिकता, तीव्रता व रोचकता बहुत कम चरित्र-ग्रन्थों में पाई जाती है। चतुर्थ अध्याय में इसकी विषय-वस्तु के सम्बंध में हमने विस्तार से विचार किया है। वसन्त कुमार जैन ने भगवान ऋषभदेव, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ जी व महावीर स्वामी की जीवनियाँ मधुर शैली में लिखी हैं, जो आज के 'भौतिकवादियों को आध्यात्मिक रस की कडुवी दबा बतासे की मधुरता में' लिपेट कर पिलाने सदृश्य है। इन ग्रन्थों में दार्शनिकता, ऐतिहासिकता तथा साहित्यिकता तीनों का सुन्दर समन्वय हुआ है। लेखक की मधुर प्रवाहशील भाषा का रूप जगह-जगह पर दृष्टिगोचर होता है—यथा—

लेखक ने वार्तालाप-संवाद द्वारा, प्रश्नोत्तरी की, उदाहरण की पद्धति को अपनाकर सुन्दर वातावरण के साथ ज्ञान तथा शिक्षा का संदेश दिया है। प्रश्नोत्तरी के माध्यम से वर्णित ऐसा ज्ञान बोझिल नहीं बन पड़ता-उदाहरणार्थ—

'अरे यदि कर्म फिर भी ऐसी आत्मा का कुछ बिगाड़ सकते हैं तो--तो--हाँ, हाँ! बोलो तो--क्या ?'

'तो समझो, वह आत्मा महान आत्मा नहीं हो सकती।'

'कल्पना तो सुन्दर है, पर विवेक और न्याय संगत नहीं।' क्यों ?

वह इसलिए कि आत्मा प्रभावशाली है अवश्य, पर कर्मावरण उसको ढक देते हैं तो उसका प्रभाव उसी तक सीमित रहकर लुप्त-सा रह जाता है। 'वह कैसे ?' 'जैसे सूर्य प्रभावशाली होता है, होता है कि नहीं! 'हाँ, हाँ होता है।' पर जब बादल उसके आगे छा जाते हैं तो प्रकाश कहाँ चला है?'

'उसका प्रकाश....उसका प्रकाश छिप जाता है।'

तो क्या सूर्य से भी विशेष आभा वाला या शक्तिशाली बादल है?'

नहीं तो! (पृ॰ 60)

ऐसे दृष्टान्त प्रत्येक पृष्ठ पर मिलते हैं। लेखक की आलंकारिक, भाषा-शैली भी दृष्टव्य है—रंग-बिरंगी कलियों से शोभित, मन्द सुगन्ध पवन से सुरभित, सुमधुर, चहचहाते विहंग-गण से चर्चित और मदमाती, इठलाती, सरसाती शीतल नीर सहित सरिता से मंडित यह नगरी इन्द्र की पुरी को भी मात दे रही है। (पृ॰ 2)।

तीर्थंकरों के चरितों की प्रथा न केवल आधुनिक काल में ही प्रवर्तमान

है, बल्कि मध्यकाल में भी प्रचलित थी। इस सम्बंध में प्रकाश डालते हुए डा॰ विजयेन्द्र स्नातक लिखते हैं-(मध्यकाल में) जैन कवियों ने प्रबंध और मुक्तक दोनों शैलियों को अपनाया। दोहा-चौपाई पद्धति में चरित काव्यों की रचना इनकी उल्लेखनीय विशेषता है, जिनमें विशेषत: तीर्थंकरों की जीवनियों द्वारा से जैन धर्म के सिद्धान्तों को लोकप्रिय ढंग से प्रस्तुत किया गया है। जैन कवियों में स्वयंभू, पुष्पदन्त और हेमचन्द्र उल्लेखनीय हैं। उनके द्वारा लिखित अपभ्रंश के चरित-काव्यों, शैलियों और छन्दों का परवर्ती हिन्दी काव्य पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा।[1] इन जीवनियों या चरित-ग्रन्थों में धार्मिक विचारधारा की चर्चा भी यत्र-तत्र रहने से धर्म के विशिष्ट तत्त्वों का आ जाना बहुत स्वाभाविक है। लेकिन इससे किसी प्रकार के पाठकों को रसा-स्वादन में असुविधा नहीं पैदा होती।

आचार्यों, विद्वानों की जीवनी एवं तीर्थंकरों के चरित्रों के अनन्तर आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य की दो महत्वपूर्ण आत्मकथा की शैली व गठन के सम्बंध में संक्षेप में प्रकाश डालना अनुचित नहीं होगा। जीवनी व आत्मकथा में शैलीगत मूल अन्तर यह है कि जीवनी अन्य के द्वारा वर्णित होती है, अत: शैली में श्रद्धा भाव या प्रशंसा या नायक की महत्ता पर उचित प्रकाश डाला जा सकता है, जबकि आत्मकथा स्वयं नायक के द्वारा लिखी जाने से आत्मश्लाघा या निंदा-स्तुति का डर बना रहता है। निर्भीकता, सत्यान्वेषण तथा मंगलमय दृष्टिकोण, शैली की चुस्तता, आत्मकथा के लिए नितान्त आवश्यक है। पं॰ गणेशप्रसाद वर्णी जी की आत्मकथा 'मेरी जीवन गाथा' एवं 'अजीत प्रसाद जैन' की 'अज्ञात जीवन' दो प्रमुख आत्मकथा है, जिनकी स्वानुभवपरक, सुख-दु:ख पूर्ण घटनाओं को पढ़कर पाठक जीवन की गहराई को जान पाता है। इन दो आत्मकथाओं से न केवल जैन साहित्य बल्कि हिन्दी साहित्य का भी महद उपकार हुआ है।

वर्णी जी की आत्मकथा से आबाल वृद्ध सभी को कुछ-न-कुछ जानने-सीखने को मिलता है। इनकी शैली निराडम्बर एवं हल्की-फुल्की स्वाभाविक बोलचाल की होने से रसास्वादन व सन्देश दोनों प्राप्त हो सकता है। अपने आप पर हंसने की, व्यंग्य करने की वृत्ति-शैली से आत्म कथा में जीवन्तता व मनोरंजनात्मकता आ गई है, फिर भी शैली में विचार-गांभीर्य की कमी कहीं महसूस नहीं होती। छोटे-छोटे वाक्यों में भी इतने सुन्दर गूढ़ भाव भर देते हैं कि पाठक को विचार करने पर बाध्य होना पड़ता है-जैसे-'पाप चाहे बड़ा करे

1. डा॰ विजयेन्द्र स्नातक-हिन्दी कविता का विकास, पृ॰ 2.

या छोटा, पाप तो पाप ही रहेगा। उसका दण्ड उन दोनों को समान ही मिलना चाहिए।' या 'देखो! बड़ा वही कहलाता है, जो समदर्शी रूप हो, सूर्य की रोशनी चाहे दरिद्र हो चाहे अमीर दोनों के घर पर समान रूप से पड़ती है।' भाषा बड़ी ही मधुर एवं भावानुभूतिपूर्ण होने से पाठक उनके विचारों और भावों के साथ तादात्म्य स्थापित पर उनकी यात्राओं के साथ स्वयं भी यात्री बन चल पड़ता है। आचार्य नेमिचन्द्र जी उचित ही लिखते हैं–'घटनाएँ इतने कलात्मक ढंग से संजोयी गई है, जिससे पाठक तल्लीन हुए बिना नहीं रह सकता। भाषा इतनी सरल और सुन्दर है कि थोड़ा-पढ़ा-लिखा मनुष्य भी स्वमग्न हो सकता है। छोटे-छोटे वाक्यों में अपूर्व माधुर्य भरा है।[1] प्रकृति का वर्णन भी उन्होंने यात्रा के प्रसंग में यत्र-तत्र किया है, जिससे आत्म कथा लेश-मात्र भी नीरस न बनकर पूर्णतः साहित्यिक सौन्दर्य लिए रही है। उनकी इस रचना में जहाँ एक ओर उनका प्रकाण्ड पांडित्य, सत्य निष्ठा, दृढतम चारित्र्य बल, अध्ययन की तीव्रतम आकांक्षा व शारीरिक विशुद्धता, कष्ट सहिष्णुता है, तो दूसरी ओर जीवन की अच्छी-बुरी घटनाओं की अभिव्यक्ति में वाणी की सरलता, मृदु-मनोहर अनुभूति पूर्ण शैली तथा निराडम्बरता स्पष्ट प्रतीत होती है।

दूसरी आत्मकथा वकील श्री अजीत प्रसाद जैन की 'अज्ञात जीवन' के अंतर्गत भी बाबू अजीत प्रसाद जी का जैन जगत् के लिए लोकप्रिय व्यक्तित्व की झलक सरल शैली में उपलब्ध होती है। जैन साहब न केवल अपने कार्य-जगत् में संलग्न रहे, बल्कि समाज के अभ्युदय एवं कल्याण-कार्य में भी पूर्ण सहयोग देते रहे।' इस आत्मकथा में सामाजिक कुरीतियों का पूरा विवरण मिलता है। भाषा संयत, सरल और परिमार्जित है। अंग्रेजी और उर्दू के प्रचलित शब्दों को भी यथा स्थान रखा गया है।[2] वैसे आत्मकथा का शीर्षक 'अज्ञात जीवन' है, लेकिन वकील बाबू का जीवन व कार्य की महत्ता से जैन समाज अज्ञात नहीं है। अपने विषय के प्रकाण्ड विद्वान होने पर भी जीवनी की शैली व प्रसंगों में सरलता, रोचकता एवं स्वाभाविकता का पूरा ध्यान रखा गया है। भाषा व शैली में कहीं भी बाह्याडम्बर दीखता नहीं है।

जीवनी व चरित ग्रन्थों में हिन्दी जैन साहित्य में जैन जगत के प्रमुख धार्मिक विद्वान व साहित्यकारों के सम्बंध में भी साहित्यिक कृतियाँ प्राप्त होती हैं, जैसे सेठ माणिक चन्द, सेठ हुकुम चन्द भारिल्ल, कुमार देवेन्द्र प्रसाद, बाबू ज्योतिप्रसाद, ब्र० पं० चन्दा बाई तथा श्रीमती मगन बाई के जीवन-चरित्रों की भाषा-शैली आधुनिक एवं बोधात्मक है।

---

1. आचार्य नेमिचन्द्र शास्त्री-हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन-भाग-2, पृ० 139.
2. वही, पृ० 141.

इसके उपरान्त हिन्दी जैन साहित्य में संस्मरणात्मक साहित्य को आधुनिक युग की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विधा कही जायेगी। पं॰ अयोध्याप्रसाद गोयलीय द्वारा संपादित 'जैन जागरण के अग्रदूत' एक विशिष्ट रचना है, जिसके लिए गोयलीय जी धन्यवाद के अधिकारी हैं। प्रधान संस्मरणात्मक लेखों के लेखक भी स्वयं वे हैं। काव्य लेखकों में जैन साहित्य के ही नहीं, अपितु हिन्दी साहित्य के भी जाने-माने प्रसिद्ध विद्वान् एवं साहित्यकार हैं, जैसे—जैनेन्द्र कुमार जैन, गुलाबराय, नाथूराम 'प्रेमी', वर्णी जी, नेमिचन्द्र जैन, नेमिचन्द्र शास्त्री, पं॰ महावीरप्रसाद, पं॰ कैलाशचन्द्र शास्त्री, श्रीमती कुन्थुकुमारी जैन प्रभृति प्रसिद्ध साहित्यकार हैं।' इन दिव्य दीपों में तेल और वर्तिका संजोने वाले श्री गोयलीय के अतिरिक्त अन्य लेखक भी हैं। इन सबकी शैली में अपूर्व प्रवाह, माधुर्य और जोश है। भाषा में इतनी धारावाहिकता है कि पाठक पढ़ना आरम्भ करने पर अन्त किये बिना नहीं रह सकता। + + + इन सभी संस्मरणों में रोचकता इतनी अधिक है कि गूंगे के गुड़ की तरह उसकी अनुभूति पाठक ही कर सकेंगे। भाषा में ओज, माधुर्य और प्रवाह है। शैली अत्यन्त संयत और प्रौढ़ है। + + + प्रयाग में जैसे त्रिवेणी संगम स्थल पर गंगा, यमुना और सरस्वती की धाराएँ पृथक-पृथक होती हुई भी एक हैं, ठीक उसी प्रकार यहाँ भी सभी लेखकों की भिन्न-भिन्न शैली का आस्वादन भिन्न-भिन्न रूप से होने पर भी प्रवाह ऐक्य है। इस स्तंभ के संस्मरणों को पढ़ने से मुझे ऐसा मालूम पड़ा, जैसे कोई भगवान् भक्त किसी ठाकुरदारी पर खड़ा हो पंचामृत का रसास्वादन कर रहा है।[1]

इसके उपरान्त हिन्दी जैन साहित्य में अभिनंदन ग्रंथ भी प्रकाशित हुए हैं। इनसे आधुनिक जैन साहित्य तो लाभान्वित हुआ ही है, वरन् हिन्दी साहित्य के इस क्षेत्र के भण्डार की अभिवृद्धि का भी प्रशंसनीय कार्य हुआ है। इनमें श्रीयुत् अगरचन्द नाहटा अभिनंदन ग्रन्थ, पं॰ नाथूराम प्रेमी अभिनंदन ग्रन्थ, पं॰ क्षुल्लक गणेशप्रसाद वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ, आचार्य शान्ति सागर श्रद्धांजलि ग्रन्थ, गुरुदेव श्री रत्नमुनि स्मृति ग्रन्थ, ब्र॰ पं॰ चन्दाबाई अभिनंदन ग्रन्थ प्रमुख हैं। इन अभिनन्दन ग्रन्थों से एक ओर से विद्वान, धार्मिक व साहित्य-प्रेमी व्यक्तियों के जीवन प्रसंगों पर (परिचित) अधिकारी व्यक्तियों द्वारा प्रकाश डाला गया है, वहाँ दूसरी ओर जैन धर्म, दर्शन, कला व साहित्य पर भी विभिन्न विद्वानों के विद्वतापूर्ण निबंध भी प्रकाशित हुए हैं, जिनकी शैली आधुनिक साहित्य व वातावरण के सर्वथा उपयुक्त कही जायेगी।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आधुनिक हिन्दी जैन गद्य

1. आचार्य नेमिचन्द्र शास्त्री-हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन-भाग-2, पृ॰ 143.

साहित्य में हिन्दी भाषा के क्रमिक विकास के साथ उसके शिल्प विधान, भाषा व शैली में भी परिवर्तन हुआ है। शैली में बोध प्रदान या उपदेशात्मक वातावरण की अपेक्षा विश्लेषणात्मक पृष्ठभूमि का प्रारंभ कर लिया है। धार्मिक साहित्य होने से सर्वथा धार्मिक सन्देश से रहित शैली संभव नहीं हो सकती। जहाँ एक ओर प्रसिद्ध साहित्यकारों की अभिनव समृद्ध शैली से गद्य-साहित्य समृद्ध है, वहाँ सामान्य लेखकों की गद्य-कृतियों से जैन साहित्य को संपन्नता प्राप्त हुई है। गद्य की विविध शैली व रूप का निखार निबंध साहित्य तथा कथा-साहित्य में विशेष रूप से प्राप्त होता है, जब कि उपन्यास, आत्म कथा, आलोचना का साहित्य अपेक्षा कृत कम प्राप्य है।

उपसंहार

जैन धर्म अत्यन्त प्राचीन है और उसका दर्शन बड़ा ही सहिष्णु है। आज के युग में व्यक्ति और समाज, राष्ट्र व विश्व पृथक-पृथक् नहीं रह सकते; सबके बीच सामीप्य उद्भूत होने 'विश्व-मानव' एवं 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का प्राचीन संकल्प वर्तमान होता दीख पड़ रहा है। वर्तमान युग में पूरे विश्व के मानव-मानव का सम्बंध संपृक्त हो चुका है, जिसकी घोषणा जैन धर्म ने मानव-प्रेम व समानता के सिद्धान्त द्वारा हजारों वर्षों पूर्व कर दी थी। अपने उदात्त तत्त्वों के द्वारा उसने मानव-मानव के बीच प्रेम व अहिंसा पूर्ण व्यवहार का संदेश दिया है। जैन धर्म व दर्शन अहिंसा, सत्य, प्रेम व समभाव के उदात्त तत्त्वों के द्वारा उदार चरित्रों की सृष्टि प्राचीन काल से करता आया है। इसके उदात्त तत्त्व मानव को आत्मदर्शी बनने के लिए उत्साहित करते हैं। व्यक्ति को अपने भाग्य का निर्णय करने की स्वतंत्र-चेतना जैन दर्शन प्रदान करता है और जैन साहित्य उसका लोक-मानस में प्रचार-प्रसार करता है। वह व्यक्ति को अथवा समष्टि को परमुखापेक्षी या परावलम्बी बनने का उपदेश नहीं देता। "प्राणी मात्र के कल्याण व शक्ति की उसकी भावना सदैव स्तुत्य रही है। यह बात भिन्न है कि इसके उच्चतम तत्त्वों का सामान्य जनता में यथायोग्य प्रसार नहीं हो पाया है या रसात्मक साहित्य के द्वारा आधुनिक वातावरण के अनुरूप इसका संदेश फैलाया नहीं गया है। वैसे आचार्यों का सदैव प्रयत्न रहा है कि इस धर्म के उदात्त तत्वों का जन-जन तक व्यापक प्रचार हो; लेकिन प्रतीत यह होता है कि प्राय: जैन समाज तक ही यह प्रयास सीमित रहा है। इसकी उदात्त विचारधारा का आधुनिक युग के संदर्भ में पुन: व्यवस्थित रूप से प्रचार करने की आवश्यकता पैदा हुई है। क्योंकि बौद्ध व जैन धर्म की समानता व समकालीनता के कारण बहुत-सी भ्रांतियाँ पाश्चात्य विद्वानों में उद्भावित हुई थी।[1] लेकिन अब विशिष्ट पाश्चात्य विद्वानों के सद्प्रयासों से इन भ्रांतियों का निराकरण हो चुका है तथा जैन धर्म की विशिष्टता एवं युगीन वातावरण में उसकी उपयोगिता के सम्बंध में पर्याप्त सामग्री प्रकाशित हो चुकी है। आधुनिक जगत् में जैन धर्म के तत्त्वों की उपादेयता के सम्बंध में भारतीय विद्वान् डा०

---

1. द्रष्टव्य–Dr. Umesh Mishra-'History of Indian Philosophy''Jainism'-Chapter-VI Page-223 के अन्तर्गत।

कृष्ण अय्यर के 'जैन-जर्नल' में प्रकाशित लेख का कुछ अंश यहाँ उद्धरित करना समीचीन हैं–Many People complain that Jainism is un-suited to today's world, because it is the path of Assceticism and lays undue stress on *`Tyag'* or sacrifice. It is true that Jainism emphasises the virtues of sacrifice or self-denial but it must be clearly understood that any unworthy sacrifice can-not lead to happiness'. आगे डा० अय्यर इसके विरोध में जैन धर्म के सत्य, प्रेम, अहिंसा, अपरिग्रह एवं समानता की महत्ता पर प्रकाश डालते हैं तथा आज भी उसकी संपूर्ण उपादेयता सर्व स्वीकृत होने पर जोर देते हैं।[1]

यह तो जैन धर्म के महत्व की बात हुई। उसकी संकीर्णता से, मर्यादा से, तीव्रतम कष्ट-सहिष्णुता, सामान्य जीवन व्यवहार में विशिष्ट आचार-विचार, के सम्बंध में भिन्न-भिन्न विचारधारा फैलती रहती है। इसका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ना स्वाभाविक है। युगानुरूप परिवर्तित विचार सरणी के सन्दर्भ में उसकी चुस्तता भी बहुतों को स्वीकार्य नहीं है। प्राचीन काल से तीर्थंकरों एवं महान आचार्यों द्वारा उपदेशित सिद्धान्तों को ही मूल रूप से स्वीकृत रखने की जैन-समाज की वृत्ति में भी संकीर्णता के दर्शन होते हैं। इसके पक्ष में यह भी कहा जा सकता है कि धर्म-दर्शन कोई 'फैशन' तो नहीं होता, जो समय की मांग के साथ बदलता रहे अथवा युग के वातावरण के साथ उसके तत्त्वों में भी परिवर्तन-परिवर्द्धन होता रहे। जैन धर्म का दृढ़ता से पालन और उसके विभिन्न तत्त्वों को जीवन में संनिष्ट करने के आग्रह से अनुयायियों की संख्या यद्यपि न्यून होती जा रही है। आज के उन्मुक्त वातावरण में धर्म को शिथिलताओं के साथ स्वीकार कर आचरण करना जैसे मनुष्य का स्वभाव-सा बन गया है। आज जीवन मूल्य बिखरते जा रहे हैं, उनमें परिवर्तन हो रहा है। जैन धर्मानुयायियों की धर्मपरक चुस्तता बुरी नहीं है, लेकिन आज के युग में वह कहाँ तक ग्राह्य या व्यवहृत हो सकती है ? जब सभी क्षेत्रों में जीवन-मूल्यों में आमूल परिवर्तन होते आ रहे हैं, भौतिकता को अग्रिम स्थान मिलता जा रहा है, तब प्राचीनतम सिद्धान्तों में विश्वास बनाये रखना युवा पीढ़ी के लिए अवश्य कठिन कहा जायेगा। यह परीक्षा काल है। जैन-धर्म व साहित्य में रुचि व जिज्ञासा पैदा करने के लिए सर्वप्रथम जैन धर्म के तत्त्वों की विशिष्टता एवं गहनता को सरल रूप से समाज के समक्ष प्रस्तुत करना होगा। दार्शनिक विचारधारा एवं सिद्धान्तों का जब सामान्य जनता में योग्य रूप से प्रसार होगा तभी उसकी महत्ता-उपादेयता

1. द्रष्टव्य-Dr. Krishna Ayyar—'Relevene of Jainism to Modern Times'. In 'Jain Journal' Oct. 78, pp. 77, 78.

जानकर उसके प्रति आकर्षण पैदा हो सकता है। साहित्य में भी विशिष्ट दार्शनिक सिद्धान्तों की चर्चा सरल-रोचक भाषा-शैली में प्रस्तुत होनी चाहिए। जहाँ तक संभव हो, विशिष्ट शब्दावलियों के मोह को त्याग कर उसका सरल शब्दों में अर्थघटन करना चाहिए। इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए अनेक महान आचार्यों ने धर्म की रक्षा के साथ साहित्य-सृजन एवं सुरक्षा का भार संभाला था। प्राचीन व मध्यकालीन साहित्य में आचार्यों का योगदान भी कम नहीं है। उसी प्रकार आज भी संशोधन कार्य में भी पुन्यविजय जी, जिनविजय जी, धर्म-विजय जी, विद्याविजय जी आदि आचार्यों का उत्साह दर्शनीय रहा है। लेकिन दु:ख के साथ कहना पड़ता है कि विभिन्न संप्रदायों और 'वाड़ों' में यह धर्म आज विभक्त होता ही जा रहा है। आपसी मतभेदों के कारण सभी अपने-अपने राग अलापते हैं। आचार्यों की भांति जैन साहित्य के विद्वानों से भी यह अपेक्षा स्वाभाविक रहेगी कि जैन धर्म के तत्त्वों का रसमय निरूपण वे साहित्य के माध्यम से करें। अपने गहन ज्ञान व विद्वता का लाभ सामान्य जन-समाज तक भी पहुँचायें। निबंध व कथा साहित्य के द्वारा यह कार्य सहज रूप से हो सकता है—इस क्षेत्र में बहुत से प्रतिभा संपन्न विद्वानों ने कार्य किया भी है जैसे—पं० नाथूराम प्रेमी, पं० सुखलाल जी, पं० दलसुख मालवणिया, डा० हीरालाल मेहता, श्रीयुत अगरचन्द नाहटा, पं० नेमिचन्द्र शास्त्री, डा० आचार्य ने. उपाध्ये, पुन्यविजय जी तथा जिनविजय जी प्रभृति विद्वानों के अतिरिक्त और भी बहुत-से कुशल साहित्यकार हैं।

पं० सुखलाल जी ने एक स्थल पर जैनों की परंपरा-प्रियता पर लिखा है कि—'जैन परंपरा ने विरासत में प्राप्त तत्त्व और आचार को बनाये रखने में जितनी रुचि ली है, उतनी नूतन सर्जन में नहीं ली।' पंडित जी का यह विचार साहित्य के संदर्भ में भी सही प्रतीत होता है कि आधुनिक युग में भी प्राचीन या मध्यकालीन साहित्य को पुन: मुद्रित करने की प्रवृत्ति विशेष पाई जाती है, जबकि नूतन साहित्य-सृजन में कम रही है। संस्कृत, अपभ्रंश एवं प्राचीन हिन्दी का साहित्य नि:शंक रूप से समृद्ध है और उसका अनुवाद भी वांछित है। प्रसिद्ध प्राचीन प्रबन्ध काव्यों जैसे—पऊमचरित, रिठ्ठनेमि चरित, तिसट्ठि महापुरिस-गुणालंकार, नागकुमार चरित, यशोधर चरित, महापुराण, पार्श्व पुराण, सुदर्शन चरित, मल्लिनाथ महाकाव्य और हरिवंश पुराण का परिचय सुलभ कराने के लिए पुन: संशोधन-प्रकाशन का कार्य भी होना चाहिए। साथ ही नूतन वातावरण को लक्ष्य में रखकर नये उत्कृष्ट साहित्य के सृजन से रस-प्राप्ति के साथ लोकोत्तर आनंद की भी उपलब्धि होती है।

प्राचीन काल से जैन तत्वों से प्रभावित होकर उसकी आधार-भूमि पर कितने ही ग्रंथों का निर्माण किया गया है। इनमें कुछ दार्शनिक हैं, तो बहुत-सी रचनाएँ धार्मिक तथा साहित्यिक भी हैं। जैन दर्शन की विचारधारा दार्शनिकों की भांति साहित्यकार की मनीषा को आप्लावित करती रही है, उसकी बुद्धि को उद्‌बुद्ध भी करती रही है। फलस्वरूप साहित्यकार की भावना विविध स्रोतों, भिन्न-भिन्न धाराओं में फुटकर साहित्य का स्वरूप धारण करती है। इस दर्शन की सत्य, अहिंसा व प्रेम की पवित्र त्रिवेणी सर्जक के हृदय को प्रभावित कर साहित्य-सृजन में प्रेरणा देती है। फलतः इसके प्रसिद्ध तीर्थंकरों के उदात्त चरित्रों को प्रभावपूर्ण ढंग से इन तत्त्वों को संनियोजित करके साहित्यबद्ध किया गया है। प्राचीन काल से युगीन भाषा-प्रवाह में इसकी दर्शन-प्रणाली को नज़र में रखकर उत्कृष्ट साहित्य सृजन प्रारंभ हो चुका था, जो आज भी अखण्ड धारा में प्रवाहित है। मध्यकाल में भी जैन साहित्य ने न केवल साहित्यिक दृष्टि से बल्कि भाषा शास्त्र के दृष्टिकोण से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान दिया है। हिन्दी-साहित्य क़ी एक अछूती दिशा को संस्पर्श कर साहित्य-भंडार की श्रीवृद्धि की है।

आधुनिक युग के साहित्यकारों ने भी जैन धर्म के इन्हीं प्रमुख तत्त्वों व चरित्रों को ग्रहण कर अपना विशिष्ट योगदान दिया है। आज विभिन्न विधाओं में यह साहित्य प्रकाशित होता रहा है। इस साहित्य के सर्जक चाहे जैन धर्मानुयायी हों या न हों, लेकिन उन्होंने जैन धर्म के मानवीय तत्त्वों को साहित्य के द्वारा प्रकाश में लाने का स्तुत्य कार्य अवश्य किया है। धार्मिक साहित्य होने से विचारधारा से सम्बंधित सीमाएँ तो रहेंगी ही, तथापि विशिष्ट मर्यादाओं के बावजूद भी आधुनिक साहित्यकारों ने अपनी भावनाओं का प्रशंसनीय उन्मेष विविध-साहित्य-क्षेत्र में अभिव्यक्त किया है।

आधुनिक युग विज्ञान व मनोविज्ञान का है यह निर्विवाद है। प्रत्येक भाषा के साहित्य ने युगानुरूप स्वरूप धारण करना उपयुक्त समझा है—चाहे गद्य हो या पद्य हो। पद्य की अपेक्षा गद्य तो ठोस धरातल को ही आधार बनाकर नये-नये रूपों में अभिव्यक्त होता है। चिंतन तथा मानसिक विश्लेषण से गद्य को वास्तविक व स्वाभाविक बनाया है। हिन्दी-काव्य-साहित्य अनेकवादों से गुजरता हुआ प्रवाहित होता जा रहा है, तथैव गद्य ने भी विविध विधाओं के माध्यम से नये रूप धारण किये हैं। इस परिप्रेक्ष्य में आधुनिक जैन साहित्य के अनुशीलन के पश्चात यह बात स्पष्ट उभरती है कि भाषा क्षेत्र में तो उसने अवश्य आधुनिकता धारण कर ली है; लेकिन शैली के माध्यम पर अभी भी

प्राचीन परम्परा का प्रभाव लक्षित है। विषय-वस्तु की दृष्टि से तो विशेष परिवर्तन नहीं हो सकता, क्योंकि धार्मिक साहित्य होने से उससे सम्बंधित विषय वस्तु का चुनाव आवश्यक हो जाता है। लेकिन उसी विषय वस्तु को युगीन वातावरण, विचारधारा या साम्प्रत समाज को भी साथ लेते हुए अवश्य प्रस्तुत किया जा सकता है, ऐसा विचार आता है। जैसे कथानक धार्मिक या प्राचीन ग्रन्थों में से ग्रहण किया जा सकता है, तो उसी प्रकार आधुनिक वातावरण से भी विषय वस्तु को चुनकर उन उदात्त तत्त्वों का संदेश प्रत्यक्ष या परोक्ष दिया जा सकता है, जो हिन्दी जैन साहित्यकार को अभिप्रेत हैं। निबंध साहित्य, कथा-साहित्य, नाटक, आत्मकथा-जीवनी-संस्मरण पत्रादि गद्य स्वरूप में इस प्रकार की नूतनता-आधुनिकता-महत्वपूर्ण हो सकती है। चरित्रात्मक प्रबंध काव्य, तीर्थंकरों की या आचार्यों की जीवनी तथा दार्शनिक निबंध साहित्य में मूलाधार को ग्रहण करते हुए भी चरित्र-चित्रण, संवाद, वातावरण, भाषा-शैली में यह रूप होना चाहिए, जिसकी आधुनिक हिन्दी जैन-साहित्य में प्रायः अनुपस्थिति है। यत्र-तत्र आलोच्य जैन साहित्य की कुछ रचनाओं में आधुनिक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी दृष्टिगत होता है, जैसे—श्री वीरेन्द्रकुमार जैन के उपन्यास 'मुक्तिदूत' या धन्यकुमार जैन के खण्ड काव्य 'विराग' में। 'वर्धमान' महाकाव्य में भी मानव-कल्याण का संदेश स्फुट होता है तो 'वीरायण' महाकाव्य का तो उद्देश्य ही जन-जन में भगवान महावीर के जीवन व संदेश का प्रसार कर उसे लोकप्रिय बनाने का है। नाटक साहित्य में बहुत-से ऐसे नाटक हैं, जिनका मंचन सरलता से हो सकता है। कभी-कभी अभिनय के सफल प्रयत्न किये भी गये हैं, लेकिन जैन धर्म की कठोर अनुशासन या संकीर्णता यहाँ बाधक बन जाती है। तीर्थंकरों की जीवनी का मंचन जैन समाज के विशिष्ट वर्ग या व्यक्तियों को पसंद नहीं आता है, अतः इसका वे सदैव विरोध-प्रदर्शन करते रहते हैं, जिससे भविष्य में कभी जैन नाटकों को अभिनीत करने का किसी को साहस नहीं होता है। इस क्षेत्र में अभी बहुत कुछ करने को शेष है।

आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य में निबंध विधा में प्रशंसनीय कार्य हुआ है, दार्शनिक आचार-विचार परक, वर्णनात्मक और विचारात्मक विषयों पर विद्वान् लेखकों द्वारा उत्कृष्ट निबंधों की रचना हुई। हिन्दी जैन निबंध साहित्यकारों से अभी इस क्षेत्र में और अपेक्षा है। जीवनी-साहित्य भी विशाल परिमाण में प्राप्त होता है, जिनमें तीर्थंकरों के अतिरिक्त गुरु-आचार्यों की जीवनियाँ भी उपलब्ध होती हैं। इसी प्रकार जैन समाज के महत्वपूर्ण व्यक्तियों की थोड़ी जीवनियाँ

प्राप्त होती हैं। यदि इस दिशा में भी धार्मिक या उच्च सामाजिक व्यक्तियों के साथ प्रसिद्ध साहित्यकारों, समाज-सुधारकों तथा विद्वानों के विषय में भी साहित्य प्रकाशित होता रहे तो जैन-समाज की इस विषय में जागृति होगी।

कथा-साहित्य के लिए तो विषय वस्तु की कमी जैन साहित्य में रही ही नहीं है। प्रारंभिक काल से जैन साहित्य में कथा-साहित्य को काफी महत्व प्राप्त हुआ है, क्योंकि प्राचीन जैन-आगम ग्रंथों में तथा 'नायधम्म कथा', पुण्याश्रव कथास्रोत' आदि अनेक ग्रंथों में कथा-कहानियाँ एवं लघु 'रूपकों' का प्रचुर मात्रा में संग्रह है। अतः उनको आधार बनाकर आधुनिक शैली व रुचि के अनुकूल प्रस्तुत करने से जैन-साहित्य के प्रति सामान्य जनता में जिज्ञासा व रुचि पैदा होती है। इस क्षेत्र में काफी साहित्य प्रकाशित हो चुका है। प्राचीन जैन-कथा साहित्य की समृद्धि के लिए स्व० डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने यथार्थ ही लिखा है कि–विक्रम संवत् के प्रारंभ से 19वीं शती तक जैन साहित्य में कथा ग्रंथों की अविछिन्न धारा पाई जाती है। यह कथा-साहित्य इतना विशाल है कि उसके समुचित संपादन और प्रकाशन के लिए 50 वर्ष से कम समय की अपेक्षा नहीं होगी।[1] डा० सत्यकेतु का भी जैन कथा-साहित्य में विपुल भंडार के विषय में ऐसा ही मत है। पाश्चात्य विद्वानों में डा० जेकोबी, श्री टोन, ल्यूमेन, बुलवर्क, टेस्सीटोरी, श्रीमती हर्टल आदि ने जैन-कथा-साहित्य के क्षेत्र में काफी खोजबीन की है। ग्रंथों की सुरक्षा दृष्टि से देखा जाय तो जैन धर्मियों ने प्राचीन भाषा और साहित्य के ग्रंथों की समुचित रक्षा कर समाज व साहित्य की श्लाघनीय सेवा की है। भाषा के अतिरिक्त विषय की दृष्टि से भी जैन साहित्य महत्वपूर्ण रहा है। इसके साथ जैन मुनियों का लिपि-कौशल भी प्रशंसनीय रहा है। स्वयं कलात्मक हस्ताक्षरों में ललित कृतियों का सृजन करते एवं अन्य अच्छे लिपिकों से लिपि करवाते।

आधुनिक जैन-पद्य-साहित्य की उपलब्धि के संदर्भ में केवल यह तथ्य है कि महाकाव्य व खण्ड काव्य सीमित मात्रा में रचे गए हैं, जबकि मुक्तक साहित्य का परिमाण संतोषप्रद है। विषय-नावीन्य तो नहीं मिलेगा, शिल्प-विधान में पहले की अपेक्षा कुछ परिवर्तन दृष्टिगत होता है। भगवान महावीर के 2500वें निर्वाण वर्ष के उपलक्ष्य में इस दिशा में सुंदर काम हुआ। दो-तीन महत्वपूर्ण महाकाव्य, खण्डकाव्य एवं स्फुट रचनाओं के साथ गद्य-साहित्य का भी अच्छा प्रणयन हुआ, जिससे आधुनिक जैन साहित्य का प्रवाह अविछिन्न रहता है। काव्य में नूतन शैली एवं भावाभिव्यक्ति का परिवर्तित रूप लक्षित होता

1. द्रष्टव्य–डा० वासुदेवशरण अग्रवाल–जैन जगत, पत्रिका, अप्रैल-1977, पृ० 8.

है। इसके सन्दर्भ में हमने थोड़ा-बहुत संकेत तृतीय अध्याय में किया है। नूतन-साहित्य-सृजन के साथ-साथ भगवान महावीर से सम्बंधित प्राचीन साहित्य को पुनः प्रकाशित भी इस वर्ष में किया गया।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आधुनिक युग का हिन्दी जैन साहित्य अपनी विविध विधाओं में विकसित हो रहा है। उसकी भाषा शैली तथा रूप में परिवर्तन हो रहा है। भाषा युगानुरूप साहित्यिक खड़ी बोली, शब्द शक्ति सम्पन्न, मुहावरों से युक्त और यत्र-तत्र अलंकारों की छटा बिखेरती-सी दीख पड़ती है, शैली में यद्यपि वांछित नवीनता अभी तक पूर्ण रूप से नहीं आ पाई है तथापि कुछ गद्य लेखकों की रचनाओं में शैली का सजा-संवरा रूप भी हमें आकर्षित किए बिना न रहेगा। काव्य रूपों में भी परिवर्तन परिलक्षित हो रहे हैं—महाकाव्य, खण्ड काव्य तो लिखे ही गए हैं, मुक्तक भी भारी संख्या में प्राप्त हैं; किन्तु सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि जैन-धर्म-तत्त्वों का समावेश पर नवगीत भी लिखे गए हैं, व्यंग्य रचनाएँ भी रची जा रही हैं। नईम तथा दिनकर सोनवलकर का उल्लेख इस सम्बंध में किया जा सकता है। इस प्रकार आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य दिन-प्रतिदिन विकसित हो रहा है। यह यथार्थ है कि अभी इसमें मध्यकालीन काव्य-की सी गरिमा नहीं आ पाई है—अभी यह वैसा सम्पन्न नहीं हो पाया है और लोक रुचि को आकर्षक नहीं लग पाया है, इसका कारण 'रसराज' की उपेक्षा हो सकती है। किंतु नया सर्जक इस कमी को महसूस करेगा और वांछित रूप से रसराज का सन्निवेश कर जैन साहित्य को सम्पन्न बनाएगा—ऐसी प्रतीति करने का कारण है। विश्वास है आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य नये मानव की रचना और उसके कल्याण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करेगा।

❑❑❑

परिशिष्ठ–'क'

सन्दर्भ और आधार ग्रन्थों की सूची

क्र०सं०	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम	प्रकाशक
1.	अजीत कुमार	आचार्य शुक्ल विचार कोश	नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
2.	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	जैन जागरण के अग्रदूत	भारतीय ज्ञानपीठ-दिल्ली
3.	अनूप शर्मा	वर्धमान	भारतीय ज्ञानपीठ-दिल्ली
4.	अगरचन्द नाहटा- भंवरलाल नाहटा	ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह	
5.	उदयलाल कासलीवाल	श्री धन्यकुमार चरित्र	मूलचन्द कापड़िया, सूरत
6.	कामताप्रसाद गुरु	संक्षिप्त हिन्दी व्याकरण	नागरी प्रचारिणी सभा-वाराणसी।
7.	आचार्य कैलाश	जैन साहित्य का बृहत्-इतिहास	पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-संस्थान, वाराणसी।
8.	कृष्णकान्त वर्मा	सात कोड़ियों में राज्य (नाटक)	दिगंबर जैन पुस्तकालय-सूरत।
9.	मुनि कांति सागर	खोज की पगडंडियाँ	भारतीय ज्ञानपीठ-काशी
10.	कामताप्रसाद जैन	वीर प्राणयति	दिगंबर जैन पुस्तकालय-सूरत।
11.	केसरीनारायण शुक्ल	आधुनिक काव्य धारा	
12.	डा० कैलाशचन्द्र शास्त्री	जैन साहित्य का इतिहास भाग 1 से 4	
13	डा० गणपतिचन्द्र गुप्त	साहित्यिक निबंध	लोकभारती प्रकाशन-इलाहाबाद
14	" "	हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास	लोकभारती प्रकाशन-इलाहाबाद
15.	गौरीशंकर मिश्र	छन्दोदर्पण	अनुपम प्रकाशन, पटना
16.	क्षु. गणेशप्रसाद वर्णी	मेरी जीवन गाथा	गनेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रंथमाला-वाराणसी।

क्र०सं०	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम	प्रकाशक
17.	डा० गोकुलचंद्र जैन	चौबीस तीर्थंकर	पराग प्रकाशन-दिल्ली।
18.	गोपालदास वरैया	सुशीला	दिगंबर जैन पुस्तकालय-सूरत।
19.	डा० गोविन्द शर्मा	हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य	
20.	जैनेन्द्रकुमार जैन	पूर्वोदय सांस्कृतिक निबंध-भाग 1	पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली।
21.	" "	जैनेन्द्र की कहानियाँ भाग-1	पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली।
22.	डा० जगदीशचंद्र जैन	दो हजार वर्ष पुरानी-कहानियाँ	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन-दिल्ली।
23.	जिन वाणी प्रचारक	अंजना पवनंजय	जिनवाणी प्रचारक कार्यालय-हरीसन रोड-कलकत्ता।
24.	जुगलकिशोर 'मुख्तार'	युगवीर निबंधावली	वीर सेवा मंदिर ट्रस्ट प्रकाशन-दिल्ली।
25.	जयप्रकाश शर्मा	मुनि विद्यानन्द जी	प्रभात पाकेट बुक्स-मेरठ।
26.	मुनि जिनविजयजी	सिन्धी जैन प्रशस्ति संग्रह	
27.	मुनि जिनविजयजी	जैन पुस्तक प्रशस्ति ग्रंथसार	
28.	आचार्य तुलसी	क्या धर्म बुद्धि गम्य है ?	भारतीय ज्ञानपीठ-दिल्ली।
29.	तिलकविजय जी	रत्नेन्दु	
30.	डा० त्रिभुवनसिंह	आधुनिक निबंध	
31.	देवेन्द्र इस्सर	साहित्य और आधुनिक युगबोध	कृष्ण ब्रदर्स, अजमेर।
32.	दामोदर जी वर्णी	अंग्रेजी साहित्य कोश	भारतीय ज्ञानपीठ-दिल्ली।
33.	दीपचन्द जी वर्णी	श्री जैन वृत्तकथा-संग्रह	दिगंबर जैन पुस्तकालय-सूरत।
34.	दयानन्द जैन	अहिंसा परमोधर्म नाटक	जैनक पुस्तक भवन, हरिसन रोड-कलकत्ता।

क्र०सं०	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम	प्रकाशक
35.	डा० दशरथ ओझा	हिन्दी नाटक उद्‌भव और विकास	
36.	दिनकर	साहित्य मुखी	
37.	पं० दलसुखभाई मालवणीया	जैन धर्म चिन्तन	
38.	धन्यकुमार जैन	विराग	भारतीयवर्षीय दिगंबर जैन संघ-मथुरा।
39.	जैनेन्द्रकुमार जैन	ताप और संताप	हिन्दी प्रचारक संस्थान-वाराणसी।
40.	डा० धीरेन्द्र वर्मा	हिन्दी साहित्य कोश	
41.	आचार्य नंददुलारे वाजपेयी	आधुनिक हिन्दी साहित्य	भारतीय भंडार, लीडर प्रेस-इलाहाबाद।
42.	" "	हिन्दी साहित्य : बीसवीं-शताब्दी	लोकभारती प्रकाशन-इलाहाबाद
43.	डा० नेमिचन्द्र शास्त्री	हिन्दी साहित्य परिशीलन-भाग-1, 2	भारतीय ज्ञानपीठ-वाराणसी
44.	न्यामतसिंह जैन	सतीकमल श्री नाटक	न्यामतसिंह जैन पुस्तकालय-हिस्सार (पंजाब)
45.	" "	मैना सुन्दरी नाटक	न्यामतसिंह जैन पुस्तकालय-हिस्सार (पंजाब)
46.	" "	सती चंदनवाला नाटक	न्यामतसिंह जैन पुस्तकालय-हिस्सार (पंजाब)
47.	मुनि नेमिचन्द्र	अध्यात्म दर्शन	विश्व वात्सल्य प्रकाशन समिति आगरा।
48.	न्यामतसिंह जैन	महावीर चरित्र	न्यामतसिंह जैन पुस्तकालय-(हिस्सार) पंजाब।
49.	मुनि नथमल	तुम अनंत शक्ति के स्त्रोत्र हो	भारतीय ज्ञानपीठ-दिल्ली।
50.	श्री नाथूराम प्रेमी	श्री प्रवचनसार परमागम	दुलीचंद जैन ग्रंथमाला, सोनगढ़।
51.	डा० नेमिचन्द्र शास्त्री	भगवान महावीर और उनकी आचार्य परंपरा-भाग 1 से 4	भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी।

क्र०सं०	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम	प्रकाशक
52.	डा० नगेन्द्र	नई समीक्षा, नये संदर्भ	
53.	डा० नटवरलाल व्यास	गुजरात के कवियों की हिन्दी साहित्य को देन	
54.	प्रेम शंकर	भक्ति काव्य की भूमिका	राधाकृष्ण प्रकाशन-नई दिल्ली।
55.	डा० प्रेमसागर जैन	हिन्दी जैन भक्तिकाव्य और कवि	भारतीय ज्ञानपीठ-दिल्ली।
56.	परमानंद 'विशारद'	सप्त व्यसन चरित	जिनवाणी प्रचारक कार्यालय-हरीसन रोड-कलकत्ता।
57.	पद्मराज गंगवाल	सती अंजना नाटक	नेमिचंद बाकलियाल, किशनगढ़, (राजस्थान)
59.	सं० प्रेमनारायण टंडन	अनूप शर्मा-कृतियाँ और कला	
60.	पन्नालाल जैन-सं० ज्योतिप्रसाद जैन	प्रकाशित जैन साहित्य	जैन मित्र मंडल-दिल्ली
61.	बाबूराम सक्सैना	सामान्य भाषा विज्ञान	हिन्दी साहित्य सम्मेलन-प्रयाग।
62.	डा० बनवारीलाल द्विवेदी	आधुनिक हिन्दी काव्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन	राजश्री प्रकाशन-मथुरा
63.	कवि श्री बलिराम जी बालचन्द्र जैन	श्री हनुमान चरित(अनु०) राजुल-	दिगंबर जैन पुस्तकालय-सूरत।
64.	डा० भगीरथ मिश्र	नाट्य शास्त्र	विश्वविद्यालय प्रकाशन-वाराणसी।
65.	डा० भगीरथ मिश्र	हिन्दी रीति साहित्य	राजकमल प्रकाशन-दिल्ली।
66.	मोहनलाल शास्त्री	सरल जैन भजन संग्रह भाग-1, 2	सरल जैन ग्रंथ भंडार-जयपुर।
67.	मूलचंद जैन 'वत्सल'	जैनाचार्य	दिगंबर जैन पुस्तकालय
68.	मोहनलाल शास्त्री	अध्यात्मक पद संग्रह भाग-1	सरल जैन ग्रंथ भंडार-जबलपुर।

क्र०सं०	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम	प्रकाशक
69.	महात्मा भगवानदीन	स्वाध्याय	जैन सांस्कृतिक संशोधन मंडल-वाराणसी।
70.	स्व० भगवत् जैन	अत्याचार	वसंतकुमार जैन, आगरा।
71.	भगीरथ मिश्र एवं बलभद्र	आधुनिक हिन्दी काव्य	
72.	भंवरलाल सेठी	अंजना-पवनंजय	
73.	स्व० भगवत् जैन	मधुरस	वसंतकुमार जैन, आगरा।
74.	,, ,,	उस दिन	,, ,,
75.	,, ,,	पारस	,, ,,
76.	,, ,,	विश्वासघात	,, ,,
77.	,, ,,	मिलन	,, ,,
78.	,, ,,	दुर्ग द्वार	,, ,,
79.	,, ,,	उसके आंसू	,, ,,
80.	,, ,,	दो उदय	,, ,,
81.	,, ,,	भाग्य	,, ,,
82.	,, ,,	सत्य अहिंसा का खून	,, ,,
83.	,, ,,	गरीब	,, ,,
84.	,, ,,	बलि जो चढ़ी नहीं	,, ,,
85.	मोहनलाल शास्त्री	मोक्षमार्ग की सच्ची कहानियाँ	सरल जैन ग्रंथ भंडार-जबलपुर।
86.	महानंद जी	महानंद पद संग्रह (अनु०)	जिनवाणी प्रचारक कार्यालय-कलकत्ता।
87.	मुन्नालाल समगोरैया नंदलाल जैन	भारत के सपूत (नाटक)	जिनवाणी प्रकाशन-कलकत्ता।
88.	मू०ले० मानविजयजी	श्रीधर्म संग्रह	
89.	अनु० भद्रंकरजी महाराज	श्रीधर्म संग्रह	
90.	डा० मदनगोपाल गुप्त	मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति	'नेशनल पब्लिशिंग हाउस' -दिल्ली।
91.	डा० मोहनलाल मेहता	जैन आचार	पार्श्वनाथ शोध संस्थान-वाराणसी।

क्र॰सं॰	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम	प्रकाशक
92.	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	हिन्दी साहित्य का इतिहास	नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी।
93.	डा॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी।
94.	रामानंद तिवारी	काव्य का स्वरूप	भारतीय मंदिर-भरतपुर।
95.	आचार्य रजनीश	महावीर मेरी दृष्टि में	जीवन जागृति केन्द्र-बंबई।
96.	मुनि रूपचंद	सुना है मैंने आयुष्मान!	भारतीय ज्ञानपीठ-दिल्ली।
97.	रतनलाल गंगवाल	वैराग्य की ओर	वीर प्रेस, जयपुर।
98.	राजकुमार जैन	सती सुर सुन्दरी	न्यामतसिंह जैन पुस्तकालय हिस्सार (पंजाब)।
99.	लक्ष्मीसागर वाष्णेय	हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	" "
100.	रूपनारायण पांडेय	वीर पूजा नाटक (अनु॰)	जिनवाणी प्रचारक कार्यालय-कलकत्ता।
101.	रत्नलाल गंगवाल	दीवान अमरचंद नाटक	नेमिचंद बाकलियाल, किशनगढ़, (राजस्थान)।
102.	" "	श्रद्धा और त्याग	रत्नलाल गंगवाल-जयपुर।
103.	लालचंद जैन	जैन कवियों से ब्रजभाषा प्रबंधकाव्यों का अध्ययन	भारतीय पुस्तक भवन-भरतपुर।
104.	डा॰ राजबलि पांडेय	हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास-भाग-2	
105.	डा॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	आधुनिक हिन्दी साहित्य	
106.	डा॰ लालताप्रसाद सक्सैना	हिन्दी महाकाव्यों में मनोविज्ञानीक तत्व	
107.	रमेश कुंतल 'मेघ'	आधुनिकता बोध और आधुनिकरण	
108.	डा॰ विश्वनाथ प्रसाद	निबंध और निबंध	हिन्दी प्रचारक संस्थान-लखनऊ।
109.	डा॰ विजयेन्द्र स्नातक	कबीर	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।

क्र०सं०	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम	प्रकाशक
110.	डा० वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी	श्रीमद्भागवत के टीकाकार	राजश्री प्रकाशन, मथुरा।
111.	डा० वीणा शर्मा	आधुनिक हिन्दी महाकाव्य	अनुपम प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर।
112.	विनोदशंकर व्यास	युरोपियन साहित्यकार	पुस्तक मंदिर, काशी।
113.	विरेन्द्रकुमार जैन	अनुत्तर योगी तीर्थंकर महावीर, भाग-1,2	श्री वीर निर्वाण ग्रंथ प्रकाशन समिति, इंदौर-1975
114.	विश्वनाथप्रसाद मिश्र	कला एवं साहित्य : प्रवृत्ति और परंपरा	
115.	वीरेन्द्रकुमार जैन	एक और नीलांजना	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली।
116.	श्री 'व्यथित हृदय'	नीति और विवेक	शुकुन प्रकाशन, दिल्ली।
117.	वसंतकुमार जैन	भगवान आदिनाथ	अनिल पाकेट बुक्स-मेरठ।
118.	" "	भगवान शांतिनाथ	अनिल पाकेट बुक्स-मेरठ।
119.	विद्यानंद मुनि	ज्ञानदीप जले	प्रभात पाकेट बुक्स-मेरठ।
120.	श्री 'व्यथित हृदय'	जंबुकुमार से जंबुस्वामी	शुकुन प्रकाशन, दिल्ली।
121.	डा० वासुदेव सिंह	अपभ्रंश और हिन्दी में जैन-रहस्यवाद	
122.	डा० वशिष्ठनारायण सिन्हा	जैन धर्म में अहिंसा।	
123.	शांतिगोपाल पुरोहित	पाश्चात्य समीक्षा शास्त्र	राजश्री प्रकाशन-मथुरा।
124.	डा० शिवनाथ पांडेय	ध्वनि संप्रदाय का विकास	
125.	डा० श्रीकृष्णलाल	आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास	
126.	डा० शम्भुनाथ सिंह	हिन्दी महाकाव्य स्वरूप और विकास	
127.	डा० श्यामनंदन किशोर	आधुनिक महाकाव्य का शिल्प विधान।	
128.	डा० सुष्मा प्रियदर्शिनी	हिन्दी उपन्यास	राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली।
129.	डा० सुरेन्दनाथ दासगुप्ता	भारतीय दर्शन का इतिहास, भाग 1 से 6	राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर

क्र०सं०	लेखक का नाम	पुस्तक का नाम	प्रकाशक
130.	मीस्टर क्लेमेंटे मेरी	हिन्दी साहित्य का स्वातंत्र्योत्तर विचारात्मक गद्य	
131.	पं० सुखलाल	चार तीर्थंकर	
132.	पंडित सूरतलाल	दर्शन और चिन्तन	
133.	डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी	हिन्दी साहित्य की भूमिका	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
134.	,, ,,	हिन्दी साहित्य का आदिकाल	
135.	डा० हरिप्रसाद शुक्ल 'हरीश'	जैन गुर्जन कवियों की हिन्दी कविता	
136.	मुनि हस्तीमलजी महाराज	जैन धर्म का मौलिक इतिहास	
137.	डा० हीरालाल जैन, आ० ने० उपाध्येय	महावीर युग और जीवनदर्शन	भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली।
138.	ज्ञानचंद्र जैन	दहेज के दु:खद परिणाम	दिगंबर जैन पुस्तकालय

परिशिष्ट-'ख'

इंगलिश-संस्कृत और गुजराती

English Reference Books

1.	Barua B.M.	...	Pre Budhistic Indian Philosophy
2.	Cooper Lane	...	The Art of the Writer
3.	Clorarire Romance	...	The Progress of Indian Philosophy
4.	Mehta M.L.	...	Jain Calture
5.	Dr. Mistra. V.D.	...	History of Indian Philsophy
6.	Muni Ratna-Prabha Vijayji	...	Heart of Jainism (Vol. I).
7.	Dr. Radhakrishnan	...	Indian Philosophy
8.	Dr. Sharma C.D.	...	A Critical Survey of Indian Philosophy (Ist Addition)
9.	Mrs. Stevenson	...	The Heart of Jainism

संस्कृत

1. मुनि जिनवियज सूरि कृत 'श्री श्रवण सूत्रम'
2. उमा स्वाति कृत 'तत्त्वार्थ सूत्र'
3. उमा स्वाति कृत 'उतराध्ययन सूत्र'
4. 'आचारांग सूत्र'
5. विमलाचार्य कृत 'प्रश्नोत्तर माला'
6. 'सूत्रकृतांग'
7. 'शब्दकल्पद्रुम'

गुजराती

1. 'जैन धर्मनो प्राण'
2. 'मानविजय गणिवरकृत 'धर्म संग्रह' का गुजराती अनुवाद, अनुवादक-भद्रंकर विजयश्री।
3. श्रीमद्-जीवन-सिद्धि-डा॰ सरयू मेहता।

4. 'भारतीय दर्शन संग्रह-आचार्य भक्त द॰ बा॰ योग।
5. जैन धर्मनो प्राण-पं॰ सुखलाल जी गुजरात विद्यापीठ-अमदाबाद।
6. जैनधर्म नुं चिन्तन–डा॰ दलसुख मालवणिया–प्र॰ अशोक कोरा, गोवालिया टेंक रोड, बंबई।
7. जैन धर्मनो सरल परिचय–भानुविजय जी गणिवर्य
8. पाथेय–पद्मसागर सूरि।
9. गौतम पृच्छा–सं॰ मुनि निरंजनविजय।

परिशिष्ट–'ग'

पत्र-पत्रिकाएँ

1. अखंड आनंद, आलोचना, अनेकांतर (द्विमासिक पत्रिका)
2. कहानी, कुमार
3. जैन जगत, जैन जर्नल, जैन संदेश, जैन युग।
4. तीर्थंकर (मासिक), तुलसी प्रज्ञा (जैन विश्व भारती-लाडनूं (राजस्थान))
5. धर्मयुग
6. Pathway to God (A Journal of Spiritual Life) April, 77.
7. परम्परा (राजस्थान शोध संस्थान-जोधपुर) 1979.
8. फार्बस गुजराती सभा (त्रैमासिक गुजराती पत्रिका) वैचारिकी (भाषा, साहित्य एवं शोध सम्बंधी शोध पत्रिका)।
9. राजस्थान भारती।
10. वीरवाणी।
11. श्रमण (1976)।
12. हिन्दुस्तान (त्रैमासिक)।
13. सुधाबिन्दु (हिन्दी मासिक)।

❑❑❑

नाम– डॉ० श्रीमती सरोज, कैलासचन्द्र वोरा

अभ्यास– एस. एस. सी. (प्रथम वर्ग) B.A. (प्रथम वर्ग) M.A. (हिन्दी में प्रथम वर्ग) Ph.D. (1980), बाद में एक साल Post Ph.D. (1982)

शैक्षणिक अनुभव– पाँच साल S.N.D.T. महिला कालेज में, बाद में O.G.C. की फेलोशिप (चार साल) के दौरान अध्यवसाय रहा। 1987-88 में M.S. University में Teaching Assistance का कार्य और बाद में 1994 से अब तक हिन्दी विभाग-आर्ट्स फेकल्टी में लेक्चरर के रूप में कार्यरत।

शौक- जैन समाज की विविध संस्थाओं में निरंतर कार्यरत सक्रिय सदस्य के रूप में धार्मिक व शैक्षणिक संस्थाओं में हार्दिक सहयोग। पढ़ने-पढ़ाने के कार्य में अत्यन्त रुचि।

प्रकाशन- विविध पत्र-पत्रिकाओं में कवितायें, लेख, निबन्ध, एकांकी आदि रचनायें प्रकाशित, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी जैन साहित्य नामक जैन 1987, जैनतत्त्व ज्ञान संबंधी लेख (गुजराती में प्रकाशित)। चार बार अमेरिका के सफ़र के दरम्यान वहाँ की धार्मिक, शैक्षणिक एवं सामाजिक संस्थाओं की मुलाकात-भेंट-वार्तालाप व प्रबन्ध।

भाषाज्ञान– हिन्दी, संस्कृत, गुजराती और अंग्रेजी।

हमारे हिन्दी के अन्य प्रकाशन

1.	स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटकसाहित्य में लोक-तत्त्व –शैलजा भारद्वाज	1998	350.00
2.	भवानी प्रसाद मिश्र के काव्य में सामाजिक चेतना –श्रीमती मिथलेश कश्यप	1999	250.00
3.	स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी में विचार-तत्त्व –सरोज गुप्ता	1999	350.00

BKP

भारतीय कला प्रकाशन

3421-ए, द्वितीय तल, नारंग कलोनी,

त्रीनगर, दिल्ली-110035